ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

कारण-कार्यनियम

(नियमसार प्रवचन, भाग-१)

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री नियमसार पर
परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
गाथा १ से ३७ और कलश १ से ५३ पर
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगज़र जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

परम पूज्य भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसारजी नामक शास्त्र अध्यात्म प्रधान द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सत्शास्त्रों में से एक सर्वोत्कृष्ट तथा चारित्र प्रधान श्रेष्ठतम शास्त्र है।

परम भट्टारक शासननायक श्री महावीरस्वामी के निर्वाण के पश्चात् अन्य केवली तथा श्रुतकेवली कथित आगम और अध्यात्म विद्या का संकलन चार अनुयोग के असंख्य शास्त्रों में अनेक आचार्यों-मुनिभगवन्तों द्वारा सम्पन्न हुआ है। सनातन दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में कलिकाल सर्वज्ञ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का स्थान अजोड़ है। लगभग चौरासी पाहुड़ शास्त्रों की भेंट आपश्री ने प्रदान की है, तथापि अभी मात्र १२-१५ ही उपलब्ध हो सके हैं।

उन उपलब्ध सत्शास्त्रों में समयसार, प्रवचनसार, नियमसार जैसे उत्तमोत्तम परमागमों में हजारों शास्त्रों का सार समाहित हो जाता है। जैसे समयसार में शुद्धनय से नौ तत्त्वों का निरूपण किया है, वैसे नियमसार में शुद्धनय से ही जीव-अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण इत्यादि विषयों का वर्णन है।

वर्तमान में उपलब्ध भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के उत्कृष्ट परमागमों में अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिये रचित सर्वोत्कृष्ट श्री समयसारजी में दृष्टिप्रधान कथन से शुद्धात्मा का स्वरूप समझाया है। दिव्यध्वनि के सार श्री प्रवचनसारजी में ज्ञानप्रधान कथन से वही स्वरूप वर्णन किया है। श्री नियमसारजी में चारित्र अधिकार की मुख्यता से उसी स्वरूप का वर्णन है। वीतरागता प्रगट करने के प्रयोजन से दृष्टि-ज्ञान-चारित्र के आश्रयभूत शुद्धात्मा का ही वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है।

श्री नियमसारजी की तो आचार्यदेव ने स्वयं के जीवन की सन्ध्याकाल में निज भावना के निमित्त से रचना की होने से कारणपरमात्मा का बहुत ही घोलन किया है।

इस असाधारण परमागम की टीका भावी तीर्थाधिनाथ अतीन्द्रिय आनन्द के रसिक भावलिंगी मुनिराज श्रीमद् पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है। जिनके मुख में से परमागमरूपी मकरन्द झरता है, ऐसे मुनिराज कहते हैं कि गुण के धारक गणधरों से रचित तथा श्रुतधरों की परम्परा से भली प्रकार से व्यक्त किये गये इस परमागम के सार की पुष्टरुचि से यह टीका सहज रची गयी है। टीकाकार ने श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए आध्यात्मिक भावों को स्वानुभूति से प्रमाण करके, परमपारिणामिकभाव में रहे हुए अन्तर रहस्यों को खोला है।

श्री नियमसार भरतक्षेत्र के उत्तमोत्तम शास्त्रों में से एक होने पर भी प्राभृतत्रय की समानता

में इसकी प्रसिद्ध बहुत कम है। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी विक्रम संवत् १९७२ में नियमसार की भूमिका में सत्य ही लिखते हैं कि **'आज तक श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पंचास्तिकाय संग्रह, प्रवचनसार, और समयसार, ये तीन रत्न ही बहुत प्रसिद्ध हैं। खेद की बात है कि उनके जैसा, तथापि कितने ही अंशों में उनसे भी अधिक ऐसा नियमसार रत्न है, उसकी प्रसिद्धि इतनी कम है कि कोई कोई तो उसका नाम भी नहीं जानते।'**

नियमसार अर्थात् भागवत् शास्त्र (गाथा १८७)। श्रुतपरम्परा में शास्त्रों का प्रणयन शिष्यों को सम्बोधन के लिए अथवा व्यक्तिगत उद्देश्य से किया जाता है परन्तु इस ग्रन्थाधिराज की रचना आचार्यश्री ने अपने दैनिक पाठ के लिए की होनी चाहिए, क्योंकि आचार्यश्री की ग्रन्थ की अन्तिम उक्ति द्वारा स्पष्ट होता है कि 'णियभावणाणिमित्तं' अर्थात् निजभावना के अर्थ / निमित्त से पूर्वापर दोषों से रहित जिनोपदेश को जानकर मैंने नियमसार नाम का शास्त्र रचा है।

नियमसार अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षारहित शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप। इस ग्रन्थ में पर्याय की मुख्यता से कथन होने पर भी भावलिंगी सन्तों की दृष्टि तो उसके कारण पर ही रहा करती है।

भव्य जीवों को भाग्योदय से इस नियमसार कृति पर तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखनेवाले महासमर्थ मुनिराजश्री पद्मप्रभमलधारिदेव हुए, जो वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। इस शास्त्रजी में १८७ गाथाओं में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्न अनुसार बारह विभागों में प्रस्तुत किया गया है।

१. जीव अधिकार	७. परम आलोचना अधिकार
२ अजीव अधिकार	८. शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार
३. शुद्धभाव अधिकार	९. परम समाधि अधिकार
४. व्यवहारचारित्र अधिकार	१०. परमभक्ति अधिकार
५. परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार	११. परम आवश्यक अधिकार
६. निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार	१२. शुद्धोपयोग अधिकार

जहाँ मूल में कार्य की गाथा हो, वहाँ टीकाकार उसमें से कारण की बात निकालते ही हैं जैसे कि तीसरी गाथा में कार्यनियम की बात है, उसमें से टीकाकार ने कारणनियम की बात निकाली है। १० से १३ गाथा में उपयोग की चर्चा है तो टीकाकार ने स्वरूप प्रत्यक्ष कारणस्वभाव ज्ञानोपयोग और कारणदृष्टि की बात की है। १५वीं गाथा में वैभाविक पर्यायों से परिचित जीवों को कर्मोपाधि वर्जित स्वभाविक पर्यायों की बात का मर्म स्पष्टीकरण करते हुए टीकाकार ने कारणशुद्धपर्याय का रहस्य बताकर अनन्त उपकार किया है। १९वीं गाथा में संसारी तथा सिद्ध जीव दोनों नयों से

संयुक्त है, ऐसा कहकर द्रव्य की अचिंत्य महिमा बतलायी है। अजीव अधिकार में शेष पाँच द्रव्यों का वर्णन है। शास्त्रकार की शैली अनुसार उसमें भी पुद्गल का वर्णन करते हुए कारणपरमाणु और कार्यपरमाणु का वर्णन किया है। अजीवद्रव्यों का वर्णन करते समय भी अध्यात्मरसिक टीकाकार आनन्द झरते श्लोकों द्वारा उसे प्रकाशित करनेवाले चैतन्य चमत्कारमात्र के स्वरूप को बारम्बार स्मरण करते हैं।

नियम अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो वह, अर्थात् रत्नत्रय। नियमसार अर्थात् नियम का सार अर्थात् शुद्धरत्नत्रय। इस शुद्धरत्नत्रय की प्राप्ति परमतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। इस परमतत्त्व की उपलब्धि अनादि काल से अनन्त-अनन्त दु:खों को अनुभव करते हुए जीव ने एक क्षणमात्र भी नहीं की और इसलिए सुख के लिए उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य भव्यजीवों को / प्राणीमात्र को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है। इस मुख्य मुद्दे के साथ ही दूसरे बहुत सब विषय इसमें ले लिए गए हैं। इस सम्बन्ध उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है—

'किञ्चास्य खलु निखिलागमार्थसार्थप्रतिपादनसमर्थस्य....।' अर्थात् यह नियमसार नामक शास्त्र समस्त आगम के अर्थसमूह का प्रतिपादन करने में समर्थ है...

ग्रन्थ की शुरुआत की गाथा में मार्ग और मार्गफल की जो बात प्रारम्भ की थी, उसका उपसंहार १८६वीं गाथा में प्रस्तुत करके एक श्रेष्ठ और विशिष्ट शिक्षा प्रदान करते हुए लिखते हैं कि

जो कोई सुन्दर मार्ग की निन्दा करे मात्सर्य में।
सुनकर वचन उसके अभक्ति न कीजिये जिनमार्ग में॥१८६॥

इस शास्त्र के भावों का विवेचन करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री भावविभोर होकर कहते हैं – **टीकाकार मुनिराज ने कार्य के साथ ही त्रैकालिक कारण (कारणशुद्धपर्याय) की बात करके टीका में अलौकिक रहस्य खोले हैं। अहो! जंगल में बसनेवाले और आत्मानन्द में लीन रहनेवाले सन्तों के श्रीमुख से परमागमरूपी अमृत की वर्षा हुई, उसमें आया है कि हे भाई! तेरे धर्म का ध्रुव कारण तो तुझमें सदा विद्यमान है, परन्तु तू उसे कारण नहीं बनाता, इसलिए दु:खी है। अहो! अन्तर का कारण मुनियों के आत्मा में से ही अमृत झरे हैं, उसकी यह अचिन्त्य और अपूर्व बात है। भारतवर्ष के लिए अभी यह बात एकदम नयी है। जिसके महाभाग्य होंगे, उसे यह बात सुनने को मिलती है और जिसे अन्दर में यह बात बैठ गयी, उसका तो कहना ही क्या ? उसका तो बेड़ा पार हो गया।**

सन्तों के अन्तरआत्मा में रहे हुए रहस्यों को खोलनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये भावों को ग्रहण करके हम भी उन्हें स्वानुभव से प्रमाण करें, यही भावना है।

उपरोक्त दोनों अधिकारों में आये हुए विषय बिन्दुओं की संक्षिप्त में नोंध इस प्रकार है कि जीव अधिकार में मंगलाचरण, ग्रन्थ प्रतिज्ञा मोक्ष और मोक्षमार्ग की चर्चा, नियमसार नाम की सार्थकता, रत्नत्रयरूप नियम के निरूपण के क्रम में सर्व प्रथम व्यवहार सम्यग्दर्शन का प्रतिपादन, आप्त और आगम की व्याख्या, छह द्रव्यों के नाम निर्देशपूर्वक जीवद्रव्य की विस्तृत व्याख्या के साथ जीव अधिकार का समापन।

दूसरे अजीव अधिकार में १८ गाथाओं में पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल —ऐसे पाँच अचेतन द्रव्यों का सामान्य वर्णन करके अधिकार का समापन किया गया है।

इस नियमसार शास्त्र पर धारावाही अक्षरशः प्रवचन २१४ हैं। जिन्हें सात भागों में प्रकाशित किया जाएगा।

प्रस्तुत कारण-कार्य नियम, भाग-१ में नियमसार जीव अधिकार की गाथा १ से १९ तथा कलश १ से ३६ तथा अजीव अधिकार की गाथा २० से ३७ और कलश ३७ से ५३ तक के ३२ प्रवचनों को समायोजित किया गया है।

प्रवचन प्रकाशन से पूर्व सम्पूर्ण प्रवचनों को सी.डी. से शब्दशः लिखा जाता है। तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार वाक्य पूर्ति हेतु कोष्टक भरा जाता है और प्रकाशन से पूर्व फिर से मिलान किया जाता है। गुजराती भाषा में इस कार्य को श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा सम्पन्न किया गया है। जिसका प्रकाशन राजकोट दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट से हुआ है।

सम्पूर्ण प्रवचनों को हिन्दी भाषा में व्यवस्थितरूप से प्रस्तुत करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन — ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए ..... के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में कारण नियमस्वरूप स्वशुद्धात्मा के लक्ष्य से सभी जीव कार्यनियम अर्थात् निश्चय मोक्षमार्गरूप परिणमित हों, इसी भावना के साथ.....

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़




श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।







श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!




अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की

देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत

में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और

उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	गाथा / श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
०१	२७-०२-१९७१	१-४	१
०२	२८-०२-१९७१	५-७	१६
०३	२९-०२-१९७१	१-२, ८	३३
०४	०२-०३-१९७१	२-३, ९	५१
०५	०३-०३-१९७१	३	६९
०६	०५-०३-१९७१	३	८४
०७	०६-०३-१९७१	४, १०-११	९८
०८	०७-०३-१९७१	५-६, १२	११५
०९	०८-०३-१९७१	६, १३	१३५
१०	०९-०३-१९७१	७	१५५
११	१०-०३-१९७१	८, १४	१७१
१२	११-०३-१९७१	९, १५	१९०
१३	१३-०३-१९७१	९	२०९
१४	१४-०३-१९७१	९	२२४
१५	१५-०३-१९७१	९-१०, १६	२४४
१६	१६-०३-१९७१	१०-१२, १७	२६५
१७	१७-०३-१९७१	११-१२	२८४
१८	१८-०३-१९७१	११-१२, १८	२९९
१९	१९-०३-१९७१	१९ से २२	३१८
२०	२१-०३-१९७१	१३	३४०
२१	२२-०३-१९७१	१३-१४, २३-२५	३५५
२२	२३-०३-१९७१	१५, २६	३७५
२३	२४-०३-१९७१	१५, २७	३९३

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	गाथा / श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
२४	२५-०३-१९७१	१६-१८, २८-२९	४१२
२५	२७-०३-१९७१	३०-३४	४३२
२६	२८-०३-१९७१	३०-३६	४५१
२७	२९-०३-१९७१	१९, ३६	४६८
२८	३०-०३-१९७१	२०-२४, ३८	४८८
२९	३१-०३-१९७१	२५-२७, ३९-४०	५१३
३०	०१-०४-१९७१	२८-२९, ४१-४३	५३४
३१	०२-०४-१९७१	३०-३४, ४४-५१	५५९
३२	०४-०४-१९७१	३५-३८, ५२-५३	५९५

ॐ

परमात्मने नमः।

कारण-कार्यनियम

(परमागम श्री नियमसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन)

(भाग-१)

१

जीव अधिकार

श्लोक-१ से ४

(मालिनी)

त्वयि सति परमात्मन्मादृशान्मोहमुग्धान्,
कथमतनुवशत्वान्बुद्धकेशान्यजेऽहम् ।
सुगत-मगधरं वा वागधीशं शिवं वा,
जितभव-मभिवन्दे भासुरं श्रीजिनं वा ।।१।।

(अनुष्टुप्)

वाचं वाचंयमीन्द्राणां वक्त्रवारिजवाहनम् ।
वन्दे नयद्वयायत्त-वाच्य-सर्वस्व-पद्धतिम् ।।२।।

(शालिनी)

सिद्धान्तोद्धश्रीधवं सिद्धसेनं तर्काब्जार्कं भट्टपूर्वाकलंकम् ।
शब्दाब्धीन्दुं पूज्यपादं च वन्दे तद्विद्याढ्यं वीरनन्दिं व्रतीन्द्रम् ।।३।।

(अनुष्टुप्)

अपवर्गाय भव्यानां शुद्धये स्वात्मनः पुनः।
वक्ष्ये नियमसारस्य वृत्तिं तात्पर्य्यसञ्ज्ञिकाम् ।।४।।

किञ्च ह्न

प्रथम, ग्रन्थ के आदि में श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित प्राकृतगाथाबद्ध इस 'नियमसार' नामक शास्त्र की 'तात्पर्यवृत्ति' नामक संस्कृत टीका के रचयिता मुनि श्री पद्मप्रभमलधारिदेव सात श्लोकों द्वारा मंगलाचरणादि करते हैं —

(हरिगीतिका)

जो भवजयी होकर प्रकाशित, सुगत शिव गिरिधर कहो।
वागीश अथवा जिनप्रभू की, वन्दना करता अहो॥
आपके होते हुए क्यों नमूँ, मुझ-सम हीन जो।
मोहवश अरु कामवश शिव विष्णु ब्रह्मा बुद्ध को॥१॥

***श्लोकार्थ :*—हे परमात्मा! तेरे होते हुए मैं अपने जैसे (संसारियों जैसे) मोहमुग्ध और कामवश बुद्ध को तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेश को क्यों पूजूँ ? (नहीं पूजूँगा) जिसने भवों को जीता है, उसकी मैं वन्दना करता हूँ। उसे प्रकाशमान ऐसे श्रीजिन कहो, सुगत[१] कहो, गिरिधर[२] कहो, वागीश्वर[३] कहो या शिव[४] कहो॥१॥**

(दोहा)

जो श्री जिन-मुख-कमल का, वाहन है अभिराम।
दो नय से सबकुछ कहे वाणी उसे प्रणाम॥२॥

---

१. बुद्ध को सुगत कहा जाता है। सुगत अर्थात (१) शोभनीकता को प्राप्त अथवा (२) सम्पूर्णता को प्राप्त। श्री जिनभगवान (१) मोहरागद्वेष का अभाव होने के कारण शोभनीकता को प्राप्त हैं और (२) केवलज्ञानादि को प्राप्त कर लिया है इसलिए सम्पूर्णता को प्राप्त हैं; इसलिए उन्हें यहाँ सुगत कहा है।

२. कृष्ण को गिरिधर (अर्थात् पर्वत को धारण कर रखनेवाले) कहा जाता है। श्री जिनभगवान अनंत वीर्यवान होने से उन्हें यहाँ गिरिधर कहा है।

३. ब्रह्मा को अथवा बृहस्पति को वागीश्वर (अर्थात् वाणी के अधिपति) कहा जाता है। श्री जिनभगवान दिव्यवाणी के प्रकाशक होने से उन्हें यहाँ वागीश्वर कहा है।

४. महेश को (शंकर को) शिव कहा जाता है। श्री जिनभगवान कल्याणस्वरूप होने से उन्हें यहाँ शिव कहा गया है।

५. वाचंयमीन्द्र=मुनियों में प्रधान अर्थात् जिनदेव; मौन सेवन करनेवालों में श्रेष्ठ अर्थात् जिनदेव; वाक्संयमियों में इन्द्र समान अर्थात् जिनदेव। (वाचंयमी=मुनि; मौन सेवन करनेवाले; वाणी के संयमी।)

श्लोकार्थ :—वाचंयमीन्द्रों[1] का (जिनदेवों का) मुखकमल जिसका वाहन है और दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की जिसकी पद्धति है, उस वाणी की (जिन भगवन्तों की स्याद्वादमुद्रित वाणी की) मैं वन्दना करता हूँ॥२॥

(हरिगीतिका)

सिद्धांतरूपी श्रीपति हैं सिद्धसेन मुनीन्द्र जो।
अकलंक मुनिवर तर्करूपी पंकजों को सूर्य जो॥
पूज्यपाद मुनीन्द्र हैं जो शब्द-सिन्धु चन्द्र सम।
वन्दन इन्हें, इन गुण सहित मुनि वीरनन्दि को नमन॥३॥

श्लोकार्थ :—उत्तम सिद्धान्तरूपी श्री के पति सिद्धसेन मुनीन्द्र की, तर्ककमल[1] के सूर्य भट्ट अकलंक मुनीन्द्र की, शब्दसिन्धु[2] के चन्द्र पूज्यपाद मुनीन्द्र की और तद्विद्या से (सिद्धान्तादि तीनों के ज्ञान से) समृद्ध वीरनन्दि मुनीन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ॥३॥

(दोहा)

भव्यजनों की मुक्ति को, अरु आतम की शुद्धि।
नियमसार टीका कहूँ, यह तात्पर्यवृत्ति॥४॥

श्लोकार्थ :—भव्यों के मोक्ष के लिए तथा निज आत्मा की शुद्धि के हेतु नियमसार की 'तात्पर्यवृत्ति' नामक टीका मैं कहूँगा॥४॥

प्रवचन-१, श्लोक-१ से ४, शनिवार, फाल्गुन शुक्ल २, दिनांक २७-०२-१९७१

पाठ में है न, शील पाहुड़ ? **शील नाम स्वभाव का है।** यह अधिकार पूरा हो गया है, परन्तु यह पण्डितजी इसका थोड़ा लिखते हैं। **आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्ञान-दर्शनमयी चेतनास्वरूप है।** भगवान आत्मा तो ज्ञान-दर्शन की चेतनामय अभेद है, उसे आत्मा कहते हैं। **वह अनादि कर्म के-संयोग से विभावरूप परिणमता है।** है तो वह ज्ञान-दर्शन चेतनामय स्वभाव वस्तु आत्मा, परन्तु अनादि कर्म के संग से विकाररूप से-

---

१. तर्ककमल के सूर्य=तर्करूपी कमल को प्रफुल्लित करने में सूर्य समान।

२. शब्दसिन्धु के चन्द्र=शब्दरूपी समुद्र को उछालने में चन्द्र समान।

दोषरूप से होता है। उनके भेद बहुत हैं। **उनके विशेष मिथ्यात्व-कषाय आदि अनेक है, उन्हें राग-द्वेष-मोह भी कहते हैं। उनके संक्षेप चौरासी लाख भेद हैं।** उस विभाव के चौरासी लाख भेद हैं। कुशील, कुशील। **विस्तार से असंख्यात अनन्त होते हैं। इनको कुशील कहते हैं।**

भगवान आत्मा जानन-देखन-आनन्द, इससे उल्टे जितने विकल्प-भेद हैं, वे सब कुशील कहे जाते हैं। **इनके अभावरूप संक्षेप से चौरासी लाख उत्तरगुण हैं...** विकल्प दु:खरूप हैं। इन सब विभाव का अभाव करके, स्वरूप चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा की अस्ति का विकास करके, अनुभव करके प्रगट दशा हो, उसे चौरासी लाख उत्तरगुण कहने में आता है। विस्तार अनन्त... **यह तो सामान्य परद्रव्य या सम्बन्ध की अपेक्षा से शील-कुशील का अर्थ है प्रसिद्ध व्यवहार स्त्री के संग की अपेक्षा से कुशील के अठारह हजार भेद कहे हैं...** यह सब बात आ गयी है, यह शील और कुशील का अर्थ। **इनका अभाव, शील के अठारह हजार भेद हैं, वे जिनमार्ग के जानकर पालना। लोक में भी शील की महिमा प्रसिद्ध है, जो पालते हैं, वे स्वर्ग-मोक्ष का सुख पाते हैं। उन्हें हमारा नमस्कार वे हमें भी शील की प्राप्ति करो।** हमारा आत्मा आनन्द और ज्ञान-दर्शन का पिण्ड प्रभु है; उसकी ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द की दशा हमें प्रगट हो, यह हमारा स्वरूप है और यह हमारा धर्म है। समझ में आया?

अन्तर बीच में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आते हैं, वह कुशील है, सुशील नहीं; सुशील तो आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञान और दर्शन की चेतनामय अभेदस्वरूप, उसकी एकता से प्रगटी हुई वीतरागी निर्मलदशा, उसे शील और सुशील तथा उसे धर्म कहते हैं। **अन्य वस्तु के संगराची जिनभाव भंग करि** अन्य आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप को छोड़कर अन्य वस्तु मुझसे निजभाव भंग करि, अपना वीतरागभाव है, उसे भंग करके राग-द्वेष उत्पन्न करता है, वह सब कुशील और अधर्म तथा दु:खरूप है। **वर्ते ताहिं कुशील भाव भाखे कुरंग भरी।** वह राग का रंग पुण्य-पाप के विकल्प का रंग वह कुरंग है। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसका अन्तर ज्ञान और आनन्द का रंग लगने से ज्ञान और आनन्द की दशा प्रगट हो, उसे भगवान जैनधर्म कहते हैं। सूक्ष्म बात है। बण्डीजी!

ताहिं तजे मुनिराज शुद्ध जल आनन्दस्वरूप भगवान ऐसे चैतन्य आनन्द के जल को धर्मी जीव अन्तर्मुख होकर पाकर शुद्धरूपी जल, **धोयी कर्मरज** - उसने कर्म की रज

धो डाली है। वह सिद्धि को पाता है और अविचल सुख को पाता है। यह **निश्चय शील शुद्ध...** आत्मा का आनन्द और ज्ञान चैतन्यस्वरूप, उसकी एकाग्रता का ब्रह्मचर्य वह निश्चय ब्रह्मचर्य है। वह निश्चय शील, **व्यवहार रे तिय तजि...** व्यवहार से स्त्री का त्याग वह व्यवहार कहलाता है। **जो पावे शिव विधि।** जिसे भव को-जन्म नहीं, ऐसे धर्मात्मा को, जिनेन्द्र को मैं नमन करता हूँ।

इन **नमूँ पंच पद ब्रह्ममय।** इससे मांगलिक करते हैं। **नमूँ पंच पद ब्रह्ममय,** पाँच पद ब्रह्म आनन्दमय है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, वह तो अतीन्द्रिय आनन्दमय पाँच पद है। यह बाहर का वेश है, वह कहीं पद नहीं है। ऐसे पंच महाव्रत के अन्दर विकल्प उठते हैं, वह कहीं निजपद नहीं है, वह आचार्य, उपाध्याय, साधु पद नहीं है। ब्रह्ममय निजपद है। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, जाना और कहा—ऐसे आत्मा को आनन्दमय करके प्रगट करते हैं। ऐसे... **मंगलरूप** हैं, मांगलिक हैं। **अनूप** अन्त जिसकी कोई उपमा नहीं '**उत्तम चरण सदा लहूँ**', ऐसे भगवान सन्तों के पाँच परमेष्ठी... **फिरि न परुँ भवकूप** फिर से भव में आऊँ नहीं। ऐसे अधिकार पूरा किया।

अब मात्र नियमसार शुरु करना है न? सेठी! नियमसार नहीं लाये? सेठी को नियमसार दो, नियमसार। आँख से दिखायी देता है या तकलीफ है?

अब, यह नियमसार शास्त्र आज शुरु होता है। मांगलिकरूप से आज इसका मंगलाचरण है। **ॐ परमात्मने नमः श्रीमद् भवगत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत** कुन्दकुन्दाचार्य परमात्मा (शुरु करते हैं)। नियमसार, जीव अधिकार।

निमयसार अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यमय के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को नियम कहते हैं। आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्दमय है। उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हो, उसका आश्रय लेकर सम्यग्ज्ञान हो; उसका आश्रय लेकर स्थिरता हो, उसे नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया? और सार अर्थात् विकार के-व्यवहार के विकल्परहित. ऐसा आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप है। उसकी सन्मुखता का दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह विकार रहित; उसे नियमसार कहने में आता है। शुरुआत होती है, हों! पाँच-छह वर्ष पहले पढ़ा है परन्तु यह...

जीव अधिकार..... कुन्दकुन्दाचार्यदेव की गाथा है और टीका, पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि वनवासी / जंगल में रहते थे, उन्होंने इसकी टीका बनायी है। अब पहले नमस्कार करते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करते हुए, नियमसार की टीका अर्थात् स्पष्टीकरण करने से पहले मंगलाचरण करते हैं।

त्वयि सति परमात्मन्मादृशान्मोहमुग्धान्,
कथमतनुवशत्वान्बुद्धकेशान्यजेऽहम्।
सुगत-मगधरं वा वागधीशं शिवं वा,
जितभव-मभिवन्दे भासुरं श्रीजिनं वा।।१।।

मंगलाचरण परमात्मा का। **सात श्लोकों द्वारा मंगलाचरणादि करते हैं।**

हे परमात्मा! देखो! परमात्मा कैसे हैं?—यह पहिचानकर वन्दन करते हैं। अरिहन्तदेव-सर्वज्ञदेव जिन्हें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्रगट हुए हैं; उन्हें कहते हैं कि हे नाथ! **हे परमात्मा! तेरे होते हुए...** इस जगत में आपकी-परमात्मा की-अस्ति होने से **मैं अपने जैसे (संसारियों जैसे)...** मेरे जैसे अर्थात् संसारी जैसे - ऐसा लिया है। **मोहमुग्ध...** मिथ्यात्व में मोहमुग्ध, ऐसे ईश्वर नाम धरानेवालों को कैसे पूँजू? - ऐसा कहते हैं। **और कामवश बुद्ध को...** शब्द है न... शरीर बिना का काम। जो विशय में वश हो गये हैं, स्त्री के वश हुए हैं, जगत के कर्तारूप से मानकर राग के आधीन हो गये हैं, ऐसों को मैं कैसे पूँजू? समझ में आया?

हे परमात्मा! तू तो मोहरहित है, तूने काम को वश किया है; काम के वश तू हुआ नहीं है। ऐसे परमात्मा सर्वज्ञदेव पूर्ण आनन्द को प्राप्त, अरिहन्त पद में हों तो शरीर आदि होता है, परन्तु उनका शरीर परम औदारिक (और) रोग, क्षुधा, तृषा रहित होता है। ऐसे परमात्मा को छोड़कर, इन काम के वश हुए, राग के वश हुए - ऐसों को मैं क्यों नमूँ? अन्तर डालते हैं, अन्तर। समझ में आया? ऐसे बुद्ध को, लो! यह बौद्ध कहते हैं न? बुद्ध भगवान और बुद्ध भगवान, वे सब मोह-मुग्ध थे, उन्हें आत्मा का भान नहीं था। राग में मुग्ध, क्षणिक पद को माननेवाले। आहा..हा..!

ब्रह्मा-विष्णु-महेश... यह सब अज्ञानरूप से वस्तुस्वरूप को माननेवाले,.. ऐसे जीवों को; हे परमात्मा! आपकी वीतरागता और निर्दोषता को मैंने जाना और इसके

अतिरिक्त अन्यों को अब मैं कैसे नमूँ? '....' **को क्यों पूजूँ ? (नहीं पूजूँगा) जिसने भवों को जीता है, उसकी मैं वन्दना करता हूँ।** आहा..हा..! जिन है न? जिन। जिसने आत्मा के आनन्द द्वारा उदयभाव-राग को जिसने जीता है। परमस्वभाव आत्मा का, उसके द्वारा जिसने पहला मिथ्यात्व जीता / नाश किया, पश्चात् अस्थिरता नाश की और जिसे पूर्ण आनन्द और स्थिरता परमात्मदशा प्रगट हुई है। जिसने भव जीते अर्थात् अब भव नहीं, ऐसे 'जिन' को मैं वन्दन करता हूँ। ऐसे परमात्मा को वन्दन करता हूँ। पहले देव को वन्दन किया।

देखो! देव ऐसे होते हैं, उन्हें बतलाया है। जिसे स्त्री हो और हाथ में हथियार हो और राग के आधीन हो गया हो, वे सब परमात्मा नहीं है। ईश्वर आदि नाम धराये हों, परन्तु ईश्वर तो ऐसे होते हैं। जिन्होंने भव को जीता, इसका अर्थ कि जो अभवस्वरूप आत्मा इनने प्रगट किया और उदयभाव—भव का कारण—उसे स्वयं नाश किया। आहा..! उदय क्या और स्वभाव क्या?

सम्यग्दर्शन होते ही पहले तो चैतन्यस्वभाव आनन्द है। यह उदय (भाव) मेरा नहीं, ऐसे जीत लिया है। धर्म की पहली दशा होने पर, भव और भव का कारण मुझमें नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन होने के बाद जरा रागादि रहे हैं, वह भी स्वरूप की स्थिरता द्वारा जिनने राग का व्यय अर्थात् नाश किया है। जिन्हें भव नहीं है, जिन्हें सिद्धपद-परमात्मपद प्राप्त हुआ है; उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं किसी को नमस्कार नहीं करता।

उसे प्रकाशमान ऐसे श्रीजिन कहो,... प्रकाशमान, लो! ऐसा कहा। **भासुरं** चौथा पद है न? **भासुरं**-ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनकी ज्ञान की दशा में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए हैं - ऐसे केवलज्ञानी परमात्मा **प्रकाशमान...** जगत में **भासुरं** प्रकाशमान हुए। ऐसे श्री जिन, ऐसे परमात्मा जिन भगवान को **सुगत कहो,...** उन्हें बुद्ध कहो, ऐसा कहते हैं। ये बुद्ध हुए, वे नहीं। जो यह पहिचान करके (वन्दन करते हैं)। ऐसे के ऐसे ऊपर-ऊपर से वन्दन करे और (पूजे), वह कहीं सच्ची वस्तु नहीं है। वह तो अज्ञान में मरकर चार गति में जानेवाले हैं। समझ में आया?

उन्हें **सुगत कहो, गिरिधर कहो, वागीश्वर कहो या शिव कहो।** परन्तु ऐसी दशा प्राप्त हो, उन्हें यह बोल लागू पड़ते हैं, दूसरे को बोल लागू नहीं पड़ते। नीचे अर्थ है।

(१) बुद्ध को सुगत कहा जाता है। बुद्ध है न, उन्हें सुगत। **सुगत अर्थात (१) शोभनीकता को प्राप्त....** वास्तव में तो आत्मा की आनन्द आदि शोभनीक दशा, उसे प्राप्त (हुए), उन्हें सुगत कहने में आता है। वह सुगत तो जिनेश्वरदेव हैं। समझ में आया? **अथवा (२) सम्पूर्णता को प्राप्त।** सु-गत, जिन्हें भली दशा प्राप्त हुई है अथवा सम्पूर्ण गत जिन्हें सुगत, भला जिन्हें प्राप्त पूर्ण हो गया है। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द—ऐसी दशा को प्राप्त, उसे सुगत कहने में आता है। वे **श्री जिनभगवान हैं.....** वे जिन भगवान सुगत हैं, बाकी कोई सुगत नहीं है।

(१) मोहरागद्वेष का अभाव होने के कारण शोभनीकता को प्राप्त हैं.... परमात्मा को तो मिथ्यात्व नहीं, राग-द्वेष नहीं। सम्यग्दर्शन और वीतरागता प्रगट हुई है, इससे वे शोभा को प्राप्त हैं, वे शोभनीक हैं। शरीरादि और बाहर की इज्जत और पैसा-फैसा, वह शोभनीक है नहीं। भगवान **केवलज्ञानादि को प्राप्त कर लिया है....** सर्वज्ञ प्रभु तो पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द प्राप्त हैं। अहो! ऐसी महासत्ता का स्वीकार, जगत में ऐसे परमेश्वर हैं, ऐसा इसे ज्ञान में लाकर, महासत्ता एक समय की दशा पूर्णता को प्राप्त पूर्ण तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसी सत्ता को जिसने अन्तर में स्वीकार किया है, उसने आत्मा का स्वीकार किया है, तब उस सत्ता का स्वीकार किया है। ऐसी अनन्त-अनन्त पर्यायों की मैं खान, सागर आत्मा, ऐसे चैतन्य भगवान के सन्मुख देखे बिना और सन्मुख होकर आत्मा को माने बिना ऐसे केवलज्ञानी मान्यता में यथार्थरूप से नहीं आ सकते। समझ में आया? लो!

यहाँ सुगत कहा है। जिनदेव को सुगत कहने में आता है। शोभनीक और पूर्णता को प्राप्त। पूर्ण क्या कहलाता है? ऐसे तो सब कहे, केवली, केवली केवलज्ञानी भगवान तीन काल को जानते हैं तथा वापस उन्हें क्षुधा और उन्हें तृषा और उन्हें रोग और उनका उपयोग एक समय में ज्ञान और दूसरे समय में दर्शन, (किन्तु) यह सब केवलज्ञान का स्वरूप नहीं है। अज्ञानी ने स्वयं कल्पित किया हुआ स्वरूप है। समझ में आया? उन्हें सुगत कहते हैं।

अब, **गिरिधर,...** '**अगधरं**' था न? '**अगधरं**'। '**अगधरं**' था न पाठ में? '**सुगतमगधरं**' अग अर्थात् पर्वत के धरनेवाले। उन **(२) कृष्ण को गिरिधर (अर्थात् पर्वत को धारण कर रखनेवाले) कहा जाता है।** कृष्ण थे, एक छोटी अंगुली से उन्होंने बड़ी शिला थी,

उसे उठाया है। वासुदेव थे न? वासुदेव। ऐसी शक्ति थी। गिरिधर-पूरा गिरि-पूरा पर्वत अंगुली से उठाया था। कहते हैं कि उन्हें गिरिधर कहा जाता है। **श्री जिनभगवान अनंत वीर्यवान होने से उन्हें यहाँ गिरिधर कहा है।** उस अंगुली से, छोटी अंगुली से मेरु गिरिधर गोवर्धन उठाया, वह नहीं। यह तो जिसने अनन्त वीर्य से लोकालोक को जाना और वीर्य में (बल में) अपनी शक्ति को रोक रखा, उन्हें यहाँ अनन्त वीर्यवान को गिरिधर कहा जाता है। आहा! समझ में आया? जिनदेव अनन्त वीर्यवान होने से, गिरि अर्थात् अनन्त वीर्यवाले (होने से) उन्हें गिरिधर कहा जाता है।

वागीश्वर,... ब्रह्मा को अथवा बृहस्पति को वागीश्वर (अर्थात् वाणी के अधिपति) कहा जाता है। ब्रह्मा कहते हैं न? चार वेद पढ़े और ऐसे पढ़े इत्यादि। वागीश्वर कहते हैं; और वृहस्पति, इन्द्रों के गुरु—ऐसा कहा जाता है। **श्री जिनभगवान दिव्यवाणी के प्रकाशक होने से....** भगवान की वाणी दिव्य प्रधानता से ॐ ध्वनि खिरे। सर्वज्ञ परमेश्वर हों, जिन्हें परमात्मपना प्रगट हुआ है, उनके ॐध्वनि खिरती है, ऐसी (हमारे जैसी) वाणी नहीं होती। समझ में आया? दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज। समवसरण में... **वाणी के प्रकाशक होने से उन्हें यहाँ वागीश्वर कहा है।** लो! ये वाक् के ईश्वर, वाणी के ईश्वर। वाणी का ईश्वर आत्मा होगा? दूसरे की ऐसी वाणी नहीं है, इस अपेक्षा से व्यवहार से वाणी के ईश्वर कहे जाते हैं। वाणी तो जड़ है, परन्तु दूसरे की वाणी ऐसी नहीं होती। सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त ऐसी वाणी किसी को-छद्मस्थ को-गणधर को भी नहीं होती, इसलिए उन्हें (जिनदेव को) वागेश्वर कहा है।

(४) महेश को (शंकर को) शिव कहा जाता है। शंकर को शिव कहते हैं न? **श्री जिनभगवान कल्याणस्वरूप होने से उन्हें यहाँ शिव कहा गया है।** शिव का अर्थ कल्याणस्वरूप होता है। उपद्रव नहीं, जिसमें विघ्न नहीं - ऐसा आत्मा का कल्याणस्वरूप प्रगट हुआ, अखण्ड आनन्दमय दशा प्रगट हुई, उसे शिव कहा जाता है। बस न? यह हो गया, यह कलश हुआ, पहला कलश हुआ। मंगलाचरण के सात श्लोकों में पहला। (अब) दूसरा।

वाचं वाचंयमीन्द्राणां वक्त्रवारिजवाहनम्।
वन्दे नयद्वयायत्त-वाच्य-सर्वस्व-पद्धतिम्।।२।।

वाचंयमीन्द्रों का (जिनदेवों का) मुखकमल जिसका वाहन है... आहा..हा..! क्या कहते हैं ? **वाचंयमीन्द्र=मुनियों में प्रधान अर्थात् जिनदेव; मौन सेवन करनेवालों में श्रेष्ठ...** एक ओर वागीश्वर कहा, एक ओर मौन सेवन करनेवालों में श्रेष्ठ कहा। इच्छा नहीं है न! वे भगवान तो मौन ही हैं। वाणी के कारण वाणी निकलती है – ऐसा कहते हैं। वागीश्वर – वाणी के ईश्वर, सबकी अपेक्षा खिरी, परन्तु स्वयं तो मौन है। ऐई! पण्डितजी! एक ओर वागीश्वर; एक ओर मौन इन्द्र, मौन के इन्द्र। जो अपेक्षा है, उसे समझना चाहिए न ? **मौन सेवन करनेवालों में श्रेष्ठ अर्थात् जिनदेव; वाक्संयमियों में इन्द्र समान अर्थात् जिनदेव। (वाचंयमी=मुनि; मौन सेवन करनेवाले; वाणी के संयमी।)** में जिनदेव पूरे संयमी हैं; उन्हें इच्छामात्र है नहीं। वाणी, वाणी के कारण निकलती है।

कहते हैं कि **मुखकमल जिसका वाहन है...** वाणी, हों! **और दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की जिसकी पद्धति है,...** क्या कहते हैं ? निश्चय और व्यवहार, दो नयों से जिनके कथन हैं। निश्चयनय से निश्चय का स्वरूप कहते हैं, व्यवहार से भी व्यवहार का स्वरूप है – ऐसा कहते हैं। व्यवहावर नहीं है, ऐसा नहीं है। व्यवहार, धर्म नहीं है; धर्म, निश्चय आत्मा का शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह धर्म; परन्तु व्यवहार होवे, उसे व्यवहारनय बतलाते हैं; निश्चय को निश्चय बतलाते हैं। दो नय का कथन है वीतराग का। इसमें से निकालते हैं न ? भगवान का दो नय का कथन है, परन्तु दो नय का कथन किस प्रकार से ? है, ऐसा दो नय का। समझ में आया ?

जैसे निश्चय से अभेदस्वरूप भगवान आत्मा है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन उस अभेद चैतन्य के आश्रय से प्रगट होता है, वह निश्चय है परन्तु फिर भी एक समय की पर्याय, राग आदि है – ऐसा व्यवहार भी बताते हैं। दो नय का कथन है, तब प्रमाणज्ञान होता है। समझ में आया ? इसका अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहार से भी लाभ होता है और निश्चय से भी लाभ होता है। ऐसा भगवान का कथन है, ऐसा नहीं है। दो नय का विषय है और दो नय की पद्धति कहने की है। यह सब अभी भारी गड़बड़ दो नयों में उठी है न ?

मुमुक्षु : एक नय कहें तो क्या बाधा आती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक नय आवे तो पर्याय, रागादि अस्तिरूप से है, उसका नाश

हो जाता है। गुणस्थान भेद आदि सब व्यवहार है। व्यवहार है, व्यवहारनय का स्वरूप बताते हैं। गुणस्थान भेद, चार तीर्थ, सम्यग्दर्शन आदि पर्याय वह सब व्यवहार है। वह (आत्मा) तो त्रिकाली वस्तु है। व्यवहार, व्यवहाररूप से बताते हैं और निश्चय, निश्चयरूप से (बताते हैं)। भगवान की वाणी दो नयों के आश्रित सर्वस्व कहने की जिसकी पद्धति भाषा है। सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में, सम्यक्चारित्र में सबमें दो नय का कथन है। समझ में आया?

निश्चय का निश्चयरूप से और व्यवहार का व्यवहाररूप से प्रमाणज्ञान कराते हैं। सम्यग्दर्शन, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, उसे सम्यग्दर्शन व्यवहार कहते हैं। है नहीं; है नहीं, उसे कहना, वह व्यवहारनय का विषय है। अन्तरस्वरूप भगवान आत्मा स्वसन्मुख होकर अभेद का आश्रय करे और सम्यग्दर्शन हो, वह सच्चा सम्यग्दर्शन है, परन्तु उस सच्चे के साथ में ऐसा विकल्प भी (होता है)। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, भक्ति का राग होता है। ऐसे दो नय का कथन वीतरागमार्ग में है। एक नय का कथन हो तो एकान्त हो जाता है। कहो, पण्डितजी! यह गजब!

दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की जिसकी पद्धति है, उस वाणी की... मुखकमल जिसका वाहन है, ऐसा कहा न? यह तो एक भाषा है, बाकी वास्तव में तो सम्पूर्ण शरीर में से वाणी निकलती है परन्तु लोकभाषा में जैसे समझ में आवे न, उस प्रकार से बात की है। मुखकमल - ऐसा कहा न? यहाँ से वाणी निकलती है। व्यवहार लोगों को समझाने के लिये, बाकी पूरे शरीर में से है। परमात्मा तीर्थंकर होते हैं, उन्हें तो पूरे शरीर में से ॐध्वनि उठती है। मुँह बन्द होता है, कण्ठ हिलता नहीं, होंठ हिलते नहीं - ऐसी ॐध्वनि भगवान के मुख में से आती है। वह वाणी दो नय के आश्रित कहने की पद्धति है।

निश्चय जीव, व्यवहार जीव। निश्चय जीव अभेद अखण्डस्वरूप (है), वह। एक समय की पर्याय और राग, वह व्यवहार जीव है। ऐसे दो नय का कथन सर्वस्व वीतरागमार्ग में होता है परन्तु दो नय में एक नय जाननेयोग्य है और एक नय आदरणीय है; वरना दो नय पृथक् नहीं पड़ सकते। समझ में आया? यह कहते हैं, हों! बहुत से इसमें से निकालकर। देखो! भगवान की वाणी दो नय के आश्रित है। किसने इनकार किया दो नय के आश्रित नहीं? दो नय का कथन नहीं? यह त्रस जीव, स्थावर जीव, गति आदि

कहे, वह सब व्यवहार है। वह व्यवहार जीव है, परन्तु अखण्ड अभेद चैतन्यमूर्ति आत्मा, जिसे एक समय की पर्याय भी स्पर्श नहीं करती, ऐसा अभेद ध्रुवस्वभाव, वह निश्चय जीव है; कि जिस जीव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। लो! इन दो नय के आश्रय से इसमें कथन है। बहुत से कहते हैं कि एक नय का कथन है, एक नय का कथन है। तुझे किसने एक नय का कहा? एक नय का अभेद विषय, वह आदरणीय है; दूसरा विषय है, वह जाननेयोग्य है। वापस सबमें ऐसा है।

उस वाणी की मैं वन्दना करता हूँ। यह शास्त्र को वन्दन किया। पहले देव को वन्दन किया। आते हैं न तीन बोल? देव-शास्त्र-गुरु तीन। देव-शास्त्र-गुरु तीन। तीन को वन्दन करते हुए पहले देव को किया। परमेश्वर परमात्मा ऐसे होते हैं। पश्चात् वाणी को नमस्कार किया। वाणी दो नय के आश्रित जिसका कथन होता है और वीतराग के मुखकमल से निकली हुई होती है। कल्पित बनायी हुई वह वाणी वीतराग की नहीं, ऐसा कहते हैं। परमात्मा के मुख में से निकली हुई वाणी, उनकी परम्परा से उसकी रचना हुई, उसे जिनवाणी कहने में आता है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। बाद में जिन (जिनेन्द्रदेव) के नाम से शास्त्र लिखे, वह जिनवाणी नहीं है। समझ में आया? भारी कठिन काम।

जैन सम्प्रदाय में दो भंग पड़ गये। दरार पड़ गयी, दरार। दरार पड़ गयी ऐसी। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही हुई वाणी, जिसे दिगम्बर के सन्तों ने सुरक्षित रखी है। समझ में आया? जिसमें दो नय का कथन यथार्थ चला आता है, वह वीतरागमार्ग में ही है। समझ में आया?

उसे **मैं वन्दना करता हूँ।** वाणी को वन्दन करता हूँ। व्यवहार डाला। इन परमात्मा को वन्दन करता हूँ, यह भी व्यवहार है। ऐसी भक्ति का विकल्प होता है। जानते हैं कि पुण्य बन्धन का कारण है, पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान को वन्दन भी पुण्यबन्ध का कारण है; संवर-निर्जरा नहीं, धर्म नहीं। आत्मा के आनन्द, ज्ञानस्वरूप में एकाग्रता, वह उसे नमन और वन्दन और भक्ति -आत्मा की भक्ति को यहाँ संवर और धर्म कहने में आता है। यह निश्चय और वह भगवान की भक्ति का विकल्प, वह व्यवहार। वाणी को नमस्कार करना, वह भी विकल्प का व्यवहार है। कहो, समझ में आया? गजब!

व्यवहार है परन्तु व्यवहार से धर्म नहीं होता, उसके आश्रय से धर्म नहीं होता।

....पर्याय, आत्मा की एक समय की अवस्था वह व्यवहार है। त्रिकाल वस्तु द्रव्य, वह निश्चय है। मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है। आत्मा के पूर्ण स्वरूप शुद्ध के अन्तर्मुख श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट हो, वह भी व्यवहार है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और भक्ति का विकल्प, वह तो असद्भूतव्यवहार है। ऐई! आहा..हा..! होता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करके बतलाया है। वाणी कैसी होती है, उसकी परीक्षा करनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। अकेला व्यवहार का कथन हो, वह जैन का कथन वीतराग का नहीं है। अकेला निश्चय का कथन हो और व्यवहार नहीं, वह जिन (जिनदेव) का कथन नहीं। समझ में आया?

उसे मैं वन्दन करता हूँ, लो! ऐसे शास्त्र को मैं वन्दन करता हूँ। देव को वन्दन किया और शास्त्र को पहिचानकर किया, हों! णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं किया करे, परन्तु अरिहन्त कैसे होते हैं, उनकी खबर नहीं। जिसे आत्मा की खबर नहीं, उसे उनकी खबर नहीं। आत्मा की खबर हो, शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प आनन्द हूँ, ऐसा भान हो, उसे वीतराग की वाणी और वीतराग की पहिचान होती है, उसे व्यवहार कहने में आता है।

तीसरा श्लोक। देखो! इन दो नय के आश्रय से सर्वस्व कहने की पद्धति है, इसमें बड़ी गड़बड़ है। भगवान व्यवहार भी कहते हैं। परन्तु व्यवहार कहते हैं अर्थात् क्या? व्यवहार का विषय है। वस्तु नहीं है, ऐसा नहीं है, परन्तु वह व्यवहार समकित आदि कहना, वह कहीं वास्तविक तत्त्व नहीं है। अवास्तविक को कहने का नाम व्यवहार कहने में आता है। आहाहा!

अरे! जगत के प्राणी को सत्य मिलता नहीं और सत्य के लिये दौड़े, मृगजल... ओहो...! जन्म-मरणरहित होने का मार्ग, भगवान का निर्विकल्प मार्ग कोई अलौकिक है। उसे निश्चय कहने में आता है। वीतराग की वाणी में वह भी कथन होता है और जब तक पूर्ण सर्वज्ञ वीतराग आत्मा न हो, तब तक उसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और श्रद्धा का भी राग आता है। ऐसा व्यवहार का कथन भी भगवान के शास्त्र में है। समझ में आया? भगवान को वन्दन करना, उस व्यवहारश्रद्धा को सच्ची श्रद्धा मान ले तो व्यवहार और निश्चय में विपरीत हो गया। व्यवहार को व्यवहार जाने और निश्चय को निश्चय जाने तो दो नय की पद्धति रही। समझ में आया? देव-शास्त्र और गुरु। अब गुरु को वन्दन करते हैं।

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि पंच महाव्रतधारी थे, जिनके मुख में से आगम निकलता है, ऐसा आगे लिखा है। जिनके मुख में से आगम झरता है। ऐसे पद्मप्रभमलधारिदेव, देव / परमात्मा को पहिचानकर वन्दन किया, वाणी ऐसी होती है, उसे पहिचानकर वन्दन किया; अब, गुरु हमारे कौन थे उनका....

सिद्धान्तोद्धश्रीधवं सिद्धसेनं तर्काब्जार्कं भट्टपूर्वाकलंकम्।
शब्दाब्धीन्दुं पूज्यपादं च वन्दे तद्विद्याढ्यं वीरनन्दिं व्रतीन्द्रम्।।३।।

अपने गुरु सबमें प्रवीण थे, ऐसा कहते हैं। **उत्तम सिद्धान्तरूपी श्री के पति सिद्धसेन मुनीन्द्र की,...** वन्दन करता हूँ। ये दिगम्बर मुनि में कोई सिद्धसेन मुनि हुए हैं, उन्हें यह वन्दन है। श्वेताम्बर में वे सिद्धसेन मुनि हुए, उनकी यहाँ बात नहीं है। सिद्धसेन दिवाकर, सन्मति तर्क के रचनेवाले। उन्हें अब कोई इसमें डालता है। अरे भगवान! क्या करते हैं जीव? सन्मति तर्क आता है न एक? सिद्धसेन दिवाकर का। श्वेताम्बर में हुए हैं, वे नहीं। यह तो दिगम्बर में (कोई) महामुनि सिद्धसेन नामक हो गये हैं।

उत्तम सिद्धान्तरूपी श्री के पति.... जिनमें उत्तम सिद्धान्तरूपी लक्ष्मी के वे पति थे, **सिद्धसेन मुनीन्द्र को वन्दन करता हूँ।** वे मुनीन्द्र अर्थात् आचार्य कोई थे। **तर्ककमल के सूर्य भट्ट अकलंक मुनीन्द्र की,...** अकलंकदेव। **तर्ककमल के सूर्य=तर्करूपी कमल को प्रफुल्लित करने में सूर्य समान।** अकलंकदेव है न? तत्त्वार्थ राजवार्तिक बनाया है। ओहो..हो..! तर्करूपी कमल को विकसित करने के लिये सूर्य के समान थे। दिगम्बर मुनि, सन्त ऐसे पके! आकाश के स्तम्भ, धर्मधुरन्धर। ओहो..हो..! अरे, परन्तु परीक्षा नहीं होती, क्या हो? समझ में आया? जिन्हें कसौटी पर चढ़ाकर परीक्षा करे। जंग निकला हुआ है और जंग है या नहीं, इसकी खबर नहीं, ऐसा का ऐसा मान ले, वह मानना सच्चा नहीं है। यह तो परीक्षा करके मानना चाहिए। अकलंकदेव कैसे थे? तर्ककमल के सूर्य भट्ट अकलंकदेव।

शब्दसिन्धु के चन्द्र पूज्यपाद मुनीन्द्र की... शब्दरूपी समुद्र को उछालने में चन्द्र समान। पूज्यपादस्वामी। यह सर्वार्थसिद्धि टीका रचनेवाले। सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थसूत्र) की टीका, गजब टीका। तत्त्वार्थसूत्र की। गजब महा समुद्र, ज्ञान का समुद्र! उन्हें कहते हैं कि मैं वन्दन करता हूँ। परन्तु ऐसे हमारे गुरु तो तीनों में समान थे, ऐसा कहते हैं। **और**

तद्विद्या से... है न? **तद्विद्या से समृद्ध वीरनन्दि मुनीन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ।** तीनों में प्रवीण थे। सिद्धान्तरूपी श्री के पति थे, तर्ककमल के सूर्य थे और शब्दसिन्धु के चन्द्र थे—ऐसे मुनि हो गये, देखो न! पद्मप्रभमलधारिदेव अपने गुरु की इतनी प्रशंसा करके वन्दन करते हैं। समझ में आया? भावलिंगी सन्त थे। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले मुनि वीतरागी नग्न दिगम्बर वनवासी, ऐसे हमारे गुरु - ऐसा कहते हैं। तद्विद्या से सिद्धान्तादि तीनों में समृद्ध **वीरनन्दि मुनीन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ।** देव-शास्त्र-गुरु तीन। तीन को नमस्कार किया। पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करते हुए, टीका करनेवाले ने स्वयं किया है। चौथा श्लोक।

अपवर्गाय भव्यानां शुद्धये स्वात्मनः पुनः।
वक्ष्ये नियमसारस्य वृत्तिं तात्पर्य्यसञ्ज्ञिकाम्।।४।।

इन तीन को वन्दन किया। चौथा, अब यह किसके लिये है? **भव्यों के मोक्ष के लिये...** यह टीका करता हूँ, कहते हैं। योग्य प्राणी की मुक्ति के लिये। **तथा निज आत्मा की...**

मुमुक्षु : इस काल में मुक्ति कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष ही है इस काल में। नहीं कहाँ? द्रव्यशुद्धि, ज्ञान, दर्शन, चारित्र हुए, वह मोक्ष ही है, सुन न! एकाध भव बीच में हो, उसकी कोई गिनती नहीं है। गिने कौन?

भव्यों के मोक्ष के लिये तथा निज आत्मा की शुद्धि के हेतु.... उसमें आता है न? यह टीका करते हुए मेरी शुद्धि होओ, वह शैली ली है। (समयसार का) तीसरा कलश है।

निज आत्मा की शुद्धि के हेतु नियमसार की 'तात्पर्यवृत्ति' नामक टीका मैं कहूँगा। लो! मेरे आत्मा की शुद्धि के लिये, भव्यजीव के मोक्ष के लिये इस टीका का विस्तार भगवान ने किया हुआ है। कुन्दकुन्दाचार्य का कहूँगा। ऐसा कहकर मांगलिक किया है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-५ से ७

(आर्या)

गुणधरगणधररचितं श्रुतधरसन्तानतस्तु सुव्यक्तम् ।
परमागमार्थ-सार्थं वक्तु-ममुं के वयं मन्दाः ।।५।।

अपि च ह्न

(अनुष्टुप्)

अस्माकं मानसान्युच्चैः प्रेरितानि पुनः पुनः ।
परमागम-सारस्य रुच्या मान्सलयाऽधुना ।।६।।

(अनुष्टुप्)

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवार्थकाः ।
प्रोक्ताः सूत्रकृता पूर्वं प्रत्याख्यानादिसत्क्रियाः ।।७।।

अलमलमतिविस्तरेण । स्वस्ति साक्षादस्मै विवरणाय ।

(वीरछन्द)

गुणभूषण गणधर से विरचित श्रुतधर परम्परा से व्यक्त ।
परमागम के अर्थकथन में मन्दबुद्धि हम तो असमर्थ ।।५ ।।

पुनश्च -

श्लोकार्थ :—गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन ? ।।५ ।।

(दोहा)

परमागम के सार की, पुष्ट रुचि का वेग ।
प्रेरित होता आज मन, पुनः पुनः अतिवेग ।।६ ।।

तथापि -

श्लोकार्थ :—**इस समय हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से पुनः-पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है। (उस रुचि से प्रेरित होने के कारण 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की यह टीका रची जा रही है।)॥६॥**

(वीरछन्द)

सूत्रकार ने प्रथम कहे छह द्रव्य और पञ्चास्तिकाय।
सात तत्त्व अरु नव पदार्थ सत्क्रियारूपमय प्रत्याख्यान॥७॥

श्लोकार्थ :—**सूत्रकार ने पहले पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्त्व और नव पदार्थ तथा प्रत्याख्यानादि सत्क्रिया का कथन किया है। (अर्थात्, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस शास्त्र में प्रथम पाँच अस्तिकाय आदि और पश्चात् प्रत्याख्यानादि सत्क्रिया का कथन किया है।)॥७॥**

प्रवचन-२, श्लोक-१५ से ७, गाथा-१ रविवार, फाल्गुन शुक्ल ३ दिनांक २८-०२-१९७१

जीव अधिकार, इसका मंगलाचरण। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि थे, दिगम्बर सन्त वनवासी; (वे) इसकी टीका करते हुए मंगलाचरण करते हैं। अपने चौथा श्लोक चला है। फिर से लेते हैं।

अपवर्गाय भव्यानां शुद्धये स्वात्मनः पुनः।
वक्ष्ये नियमसारस्य वृत्तिं तात्पर्य्यसञ्ज्ञिकाम्॥४॥

यह टीका **भव्यों के मोक्ष के लिए...** देखो! यहाँ कहते हैं, चार गति मिले या (संयोग मिले) ऐसा नहीं। जिससे आत्मा की पूर्ण पवित्रदशा प्राप्त हो, उसके लिये यहाँ टीका की है।

पहले आना चाहिए न, पहले। व्याख्यान से पहले आना चाहिए, तो सामने बैठा जाए, नहीं तो नहीं बैठना। बाद में आवे तो गड़बड़ होती है। यह टीका भव्यों के मोक्ष के लिये है।

मुमुक्षु : अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् आत्मा की पूर्ण पवित्रता प्रगट हो, उसके लिये है। स्वर्ग

मिले या चक्रवर्ती पद मिले, उसके लिये यह टीका नहीं है, ऐसा कहते हैं। चार गति मिले, उसके लिये यह टीका नहीं है। गति का अभाव होकर पंचम गति-मोक्ष मिले, यह ऐसी बाते हैं।

भव्यों के मोक्ष के लिए तथा निज आत्मा की शुद्धि के हेतु... स्वयं विकल्प है, इसलिए ऐसा कहा (कि) भव्यों के मोक्ष के लिये। बाकी यह टीका करते हुए मेरा लक्ष्य आत्मा के ऊपर है; इसलिए मेरी आत्मा की शुद्धि में इस टीका के समय मेरी शुद्धि में वृद्धि होओ, इसके लिये यह टीका करता हूँ। यह टीका है तो विकल्प है, परन्तु विकल्प के काल में मेरा घोलन अन्तर्मुख अखण्ड आनन्दमूर्ति प्रभु के ऊपर झुका है; उसकी शुद्धि वृद्धि होओ। इसके लिये यह टीका करता हूँ।

नियमसार की 'तात्पर्यवृत्ति' नामक टीका... वैसे तो प्रवचनसार की जयसेनाचार्य की टीका का नाम भी 'तात्पर्यवृत्ति' है। 'तात्पर्यवृत्ति' अर्थात् टीका का तात्पर्य क्या है, यह कहने में आयेगा। **टीका मैं कहूँगा।** भाषा मैं कहूँगा - ऐसा है न?

मुमुक्षु : उत्तरप्रदेश से आया हूँ। थोड़ा हिन्दी में....

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने लोग आये हैं?

मुमुक्षु : छह लोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : छह लोग। अच्छा। कल मेरठवाले थे। बाद में चले गये। हिन्दी है? हिन्दी। अपना हिन्दी है? लाओ।

यह नियमसार नाम का शास्त्र है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर मुनि संवत् ४९ में हुए। उन्होंने बनाया है। इसकी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि थे तो इसकी टीका करते हैं। इसका मंगलाचरण कल से शुरु किया। कहते हैं, यह टीका मोक्ष के लिये बनाता हूँ। आत्मा की शुद्धि किस प्रकार प्रगट हो? चार गति का नाश हो और अपना नित स्वरूप जो शुद्धस्वभाव है, उस शुद्धता की पूर्ण प्राप्ति के लिये यह टीका बनाता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और **निज आत्मा की शुद्धि के हेतु...** मेरी आत्मा की शुद्धि, इस टीका बनाने के काल में मेरा शुद्धस्वरूप, आनन्दस्वरूप का घोलन चलता ही है। मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित हूँ; शरीर, कर्म से भी मैं रहित हूँ - ऐसी

मेरी दृष्टि अन्तर में चलती है; उसकी विशेष शुद्धि होओ। टीका के काल में विशेष शुद्धि हो, ऐसी टीकाकार की प्रार्थना / भावना है। अब सुनो, पाँचवाँ श्लोक।

गुणधरगणधररचितं श्रुतधरसन्तानतस्तु सुव्यक्तम्।
परमागमार्थ-सार्थं वक्तु-ममुं के वयं मन्दाः।।५।।

अहो! मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, आत्म-आनन्द में मस्त हैं, आत्मा के आनन्द में मस्त हैं, उन्हें मुनि कहते हैं। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त हैं, ऐसे टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं, इस शास्त्र की टीका करता हूँ। मैं मन्दबुद्धि क्या टीका करूँ? - ऐसा कहते हैं।

श्लोकार्थ :- गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित... गणधरों ने टीका की है। देखो! प्रमाण देते हैं। पण्डितजी! कितने ही कहते हैं कि यह टीका पद्मप्रभमलधारिदेव ने बनायी है, इसलिए बराबर नहीं है - ऐसा पण्डित लोग कहते हैं। कोई-कोई पण्डित ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं, नहीं; मैं टीका बनाता हूँ, वह गणधरदेवों ने रची है, वह टीका मैं करता हूँ। भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ के गधधर / प्रधान, धर्म के दीवान, ऐसे गणधरों ने टीका बनायी थी, भाव कहे, वह टीका मैं कहूँगा। समझ में आया?

श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये... बाद में भी श्रुत के धारक सन्तों-दिगम्बर मुनियों, भावलिंगी सन्तों ने इस शास्त्र की टीका व्यक्त की है। परम्परा से भले प्रकार व्यक्त की है। परम्परा से चली आती है। सर्वज्ञ भगवान से, गणधरों से रचित यह टीका परम्परा से चली आती है। गुरु ने शिष्य को कही; शिष्य ने शिष्य को कही— ऐसी ठेठ दिगम्बर परम्परा, सर्वज्ञ परम्परा से चली आती है। यह आधार देते हैं। समझ में आया? बीच में श्वेताम्बर निकले, उन्होंने तो अपनी कल्पना से नया निकाला है। वह परमात्मा की परम्परा का मार्ग नहीं है। समझ में आया? यह (दिगम्बर) तो परम्परा सर्वज्ञदेव, गणधरों ने... देखो! आधार देते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! गणधरों ने रची और श्रुतधर... भले गणधर की जैसी शक्ति थी, वैसी दूसरों को नहीं थी, परन्तु श्रुत के धारक थे। भावश्रुत के धारक थे, ऐसी **परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये...** परम्परा से भलीभाँति व्यक्त किये गये **परमागम के अर्थसमूह...** देखो! यह नियमसार को परमागम नाम दिया। परम+आगम। समझ में आया? परम्परा से आये हुए, ऐसे परमागम का अर्थ....

अपने मन्दिर बनता है न ? उसका नाम भी परमागम है। परमागम मन्दिर है। यह नया बनता है न ? **परमागम के अर्थसमूह... 'सार्थ' 'अर्थसार्थ'** यह न ? समूह। आहा..! देखो! कितना निर्मान है! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि दिगम्बर सन्त हैं, जंगल में रहते थे और नियमसार की टीका करते हुए कहते हैं कि मैं क्या हूँ ? मैं तो क्या हूँ ? गणधरों से, श्रुतधारों से इसकी टीका चली आती है। परम्परा-भगवान की परम्परा से चली आती है।

(कहते हैं) **कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन ?** आहा..हा..! कहो, समझ में आया ? ऐसी टीका-अलौकिक टीका है। दिगम्बर सन्तों की कथनी अलौकिक कथन है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की परम्परा की धारा चली आती है। समझ में आया ? ऐसी टीका है तो सूक्ष्म। अब कहेंगे, छठवाँ श्लोक।

अस्माकं मानसान्युच्चैः प्रेरितानि पुनः पुनः।
परमागम-सारस्य रुच्या मान्सलयाऽधुना ।।६।।

कहते हैं कि यह टीका हुई किस प्रकार ? कि हमारे मन में बारम्बार ऐसी प्रेरणा होती थी कि मैं टीका बनाऊँ, मैं टीका बनाऊँ, ऐसी बारम्बार (प्रेरणा होती थी)। मगनभाई! यह विकल्प ही ऐसा आता था। आहा..हा..! सहज ऐसा विकल्प आता था कि मैं टीका बनाऊँ, टीका बनाऊँ। टीका की वाणी का कर्ता आत्मा है नहीं। टीका की वाणी का कर्ता आत्मा नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है। आहा..हा..! परन्तु मुझे बारम्बार ऐसा विकल्प आता था, ओहो..! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के नियमसार की टीका बने, टीका बने - ऐसी मुझे बारम्बार प्रेरणा होती थी।

इस समय हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से.... देखो! आहा..! पुष्ट रुचि। परमागम, परमात्मा ने जैसा कहा, वैसा सन्तों ने परम्परा कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसा कहते हैं, वैसी उसकी टीका करने की मुझे रुचि हुई है। यह पुष्टि (का अर्थ)। वापस परमागम का सार। परमागम, ऐसा नहीं, परन्तु परमागम का सार। देखो, परमागम है, उसका भी सार। नियमसार है न ? आहा..हा..! **पुष्ट रुचि से पुनः-पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है।** अन्दर प्रेरणा होती है कि शीघ्र बनाऊँ, टीका बने, टीका बने। ऐसा विकल्प है न ? मगनभाई! इस विकल्प के बिना कहीं (टीका) नहीं बनती। बारम्बार ऐसा विकल्प आता है कि ऐसा करूँ, ऐसा करूँ। विकल्प है पुण्यबन्ध का कारण, परन्तु हमारे स्वरूप सन्मुखता का जो घोलन है, उससे मेरी शुद्धि बढ़ जाओ, ऐसी मेरी भावना है। आहा..हा..!

पुनः-पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है। अत्यन्त प्रेरित हो रहा है। इसके बिना विकल्प टूटता नहीं। ऐसे बनाऊँ, ऐसे बनाऊँ - ऐसा विकल्प बारम्बार आया करता है। **(उस रुचि से प्रेरित होने के कारण 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की यह टीका रची जा रही है।)** लो! इस कारण से यह टीका बनायी है। देखो, भगवान की परम्परा से गणधरों ने रची हुई टीका का अर्थ मैं कहता हूँ। मेरी कल्पना का या मेरे घर का अर्थ नहीं है, ऐसा कहते हैं।

सातवाँ श्लोक।

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवार्थकाः।
प्रोक्ताः सूत्रकृता पूर्वं प्रत्याख्यानादिसत्क्रियाः।।७।।

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, **सूत्रकार ने पहले पाँच अस्तिकाय,...** कहे। काल के अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। काल को मिलाकर छह द्रव्य कहे। सात तत्त्व कहे और नौ पदार्थ (कहे)। **तथा प्रत्याख्यानादि सत्क्रिया का कथन किया है।** ऐसा कहते हैं, देखो! इसमें तो सत्प्रत्याख्यान-सच्चा प्रत्याख्यान क्या है? सच्ची भक्ति क्या है? ऐसे कथन कुन्दकुन्दाचार्य ने कहे हैं। सच्चा प्रतिक्रमण क्या है? सच्ची आलोचना क्या है? सत्क्रिया, ऐसा शब्द पड़ा है न? सत्क्रिया का कथन किया है। अपने आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में लीनता की क्रिया का नाम सत्क्रिया है। बाकी व्यवहार के जो विकल्प उठते हैं, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान के विकल्प, वह सत्क्रिया नहीं है। वह विकल्प तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं।

जिसमें सत्क्रिया-प्रत्याख्यान आदि शब्द है न? आलोचना, प्रत्याख्यान, भक्ति, प्रतिक्रमण, सामायिक, योग, नियम। यह सब, आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, ऐसे आत्मा की अन्तर एकाग्रता से आनन्द और शुद्धि की वृद्धि हो, उसका नाम सत्क्रिया कहा जाता है। देह की क्रिया जड़ है, वह तो मिट्टी है। यह बोला जाता है, वह जड़ मिट्टी है। आत्मा बोलता नहीं। वह जड़ की क्रिया है और अन्दर भक्ति का, कथन का विकल्प उठता है, वह तो राग है। वह सत्क्रिया नहीं। आहा..हा..! भगवान की भक्ति, दया, दान, व्रत, पूजा, सुनना, सुनाना - ऐसा जो विकल्प, राग उठता है, वह सत्क्रिया नहीं। समझ में आया? ऐई! यह जात्रा-वात्रा का विकल्प उठे, वह सत्क्रिया नहीं, ऐसा कहते हैं।

सत्क्रिया तो उसे कहते हैं कि भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु है, पुण्य-पाप के भाव—शुभ-अशुभराग से रहित है, ऐसी आत्मवस्तु में लीनता की एकाग्रता होना, उसका नाम परमात्मा और सन्त सत्क्रिया कहते हैं। समझ में आया? लोग बाहर में इतने उलझ गये हैं। यहाँ तो कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। मैं इसका स्पष्टीकरण करूँगा। पण्डितजी! **सत्क्रिया का कथन किया है।** ऐसा कहते हैं, देखा? कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में, प्रवचनसार में (कितना कहा है)!

मुमुक्षु : जैनधर्म में क्रिया.....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया, परन्तु कौन सी क्रिया? क्रिया के तीन प्रकार। अभी कहा न? यह शरीर, वाणी की क्रिया होती है, वह तो जड़ की है। हिलना, चलना, बोलना, वह तो जड़ की क्रिया है। अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम / विकल्प उत्पन्न होता है, वह राग की क्रिया है।

मुमुक्षु : धर्म नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

धर्म तो वीतराग परमात्मा की परम्परा से आया हुआ, चैतन्यस्वरूप भगवान आनन्द का धाम प्रभु आत्मा है, उसमें एकाग्रता होना, सत्स्वरूप शुद्ध में एकाग्रता होना, उसका नाम कुन्दकुन्दाचार्यदेव सत्क्रिया कहते हैं। कोई कहते है कि यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने कही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसमें सत्क्रिया कही है। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना (आदि)। आहा..हा..!

आत्मा ज्ञान और आनन्द, शान्त अविकारी स्वभावस्वरूप के सन्मुख होकर उसमें लीनता करना, उस लीनता की क्रिया को यहाँ सत्क्रिया कहते हैं। अपूर्व कठिन बात है, भाई! समझ में आया? ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। पण्डितजी! ऐसी बात है। गड़बड़-गड़बड़ करते हैं। ऐसा करो और वैसा करो। हो, शुभभाव होता है। भक्ति का, व्रत का विकल्प होता है, परन्तु वह है पुण्यबंध का कारण; वह धर्म स्वरूप नहीं है।

मुमुक्षु : थोड़ा-सा भी धर्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा-सा भी धर्म नहीं।

मुमुक्षु : अशुभ से तो बचता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी वह वस्तु धर्म नहीं है परन्तु उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है, कब ? कि अपने निश्चय आनन्दस्वरूप की लीनता की सत्क्रिया उत्पन्न हो तो वह विकल्प आया, उसे व्यवहारधर्म कहते हैं। ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..! देखो न! कहते हैं, परम्परा, हमारे सन्तों ने परम्परा से ऐसी बात की है। यह टीका मैं कहूँगा, वह मेरी नहीं, यह तो परम्परा से चली आयी है और कुन्दकुन्दाचार्य ने इसमें सत्क्रिया कही है। कहो, पोपटभाई! समझ में आया इसमें ? अन्दर ऐसी सूक्ष्म क्रिया है। तुम मानो कि बाहर से पैसा खर्च कर दिया और दान किया, इसलिए धर्म होता है, (ऐसा नहीं है)। धूल में भी धर्म नहीं है। उसमें भी वापिस पुष्टि तो दूसरी की है। गृहीत मिथ्यात्व का पोषण किया है। समझ में आया ? यह न समझ में आवे, जरा सूक्ष्म पड़े इसे। वीतराग का दिगम्बर सम्प्रदाय का मार्ग अनादि से चला आता है। इससे विरुद्ध जो मार्ग है, उसकी पुष्टि करना, वह गृहीत / नये मिथ्यात्व का पोषण करनेवाली क्रिया है।

मुमुक्षु : नयी लकड़ी डाली (विपरीतता पुष्ट की) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी विशेष लकड़ी (विपरीत मान्यता) (डाली)। ऐई! सूक्ष्म बात है भाई! स्वरूपचन्दभाई! यह ऐसी बात है। स्वरूपचन्दभाई का जन्म तो श्वेताम्बर में हो गया। खबर है ? अब (दिगम्बर) हो गये। बापू! मार्ग यह है, हों! यह पक्ष का मार्ग नहीं। यह तो वस्तु के स्वरूप का मार्ग है। वस्तु का ही ऐसा मार्ग है। समझ में आया ? बहुत कठिन मार्ग पड़े। आहा..हा..!

कहते हैं **प्रत्याख्यानादि...** है न शब्द अन्दर में ? देखो! शुद्धभाव, प्रत्याख्यान आदि है न ? स्तुति में है न अन्दर ? देखो! भक्ति, निश्चय परम-आवश्यक, आलोचना, प्रायश्चित्त, समाधि, निश्चय प्रत्याख्यान, परमार्थ प्रतिक्रमण यह सब अन्दर एक-एक अधिकार है। भक्ति भी इसे कहते हैं कि आत्मा आनन्दस्वरूप में एकाग्र होना वह भक्ति है। सच्ची भक्ति तो यह है कि जो सत्क्रिया और मुक्ति का कारण है। बीच में भगवान की भक्ति का विकल्प आता है, परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया ?

इस प्रकार निश्चयस्वरूप आत्मा अपने निजानन्द में लीन होकर जो शान्ति और अनाकुलता प्रगट करता है, उसका नाम सत्क्रिया कहने में आता है। उस भूमिका में फिर

शुभभाव होता है तो उस शुभभाव को व्यवहारधर्म का आरोप कहने में आता है। व्यवहार शब्द से (आशय है) पुण्य। है पुण्य, परन्तु इस निश्चयधर्म की भूमिका के साथ में आया है तो उसे व्यवहारधर्म का आरोप दिया जाता है। समझ में आया? भारी कठिन। जगत के साथ अनमेल होकर खड़े रहे, तब (होवे ऐसा है)। (जगत के साथ) मेल खाये, ऐसा नहीं है।

कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने सत्क्रिया का कथन किया है। लो! **(प्रथम पाँच अस्तिकाय आदि और पश्चात् प्रत्याख्यानादि सत्क्रिया का कथन किया है।)** सात (श्लोकों द्वारा) मंगलाचरण कहा।

अब कुन्दकुन्दाचार्य... टीकाकार (कहते हैं) **अति विस्तार से बस होओ.... बस होओ। 'अलम' 'अलम' अलमलमतिविस्तरेण। स्वस्ति साक्षादस्मै विवरणाय। साक्षात् यह विवरण जयवन्त वर्तो।** आहा..हा..! कहते हैं कि यह टीका है, वह कायम रहो। ऐसा कहा न? यह विवरण कहा न? जयवन्त वर्तो। यह परम टीका सत्य परमात्मस्वरूप को बतानेवाली, अपने धर्म की शान्ति की क्रिया बतानेवाली ऐसी टीका जयवन्त वर्तो। पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि स्वयं कहते हैं।

अब (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित) गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है — ऊपर है न **अथ सूत्रावतारः —** इसमें यह शब्द पड़ा है, लो! सूत्र का अवतार होता है। सूत्र जन्मता है अर्थात् सूत्र की उत्पत्ति होती है, सूत्र की उत्पत्ति होती है। कुन्दकुन्दाचार्य सूत्र की उत्पत्ति कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में महामुनि दिगम्बर सन्त हुए हैं। पौन्नूर हिल में रहते थे। मद्रास से अस्सी मील दूर वन्देवास नाम का एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ से पाँच मील दूर पौन्नूर हिल नामक टेकरी है। वहाँ चरण हैं, कुन्दकुन्दाचार्य के चरण हैं। हम दो बार जाकर आये हैं। वहाँ आनन्द में रहते थे। वहाँ से भगवान के पास गये थे। सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकरदेव महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। तीर्थंकररूप से अरिहन्त पद में विराजमान हैं। वहाँ गये थे, आठ दिन रहकर यहाँ आकर यह बनाया है। वहाँ आठ दिन रहे थे। बाद में आकर यह शास्त्र बनाया। सूत्र का जन्म होता है, ऐसा कहते हैं। सूत्र का अवतार-अवतरण होता है। अब कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा।

गाथा-१

अथ सूत्रावतारः ह्न

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं ।।१।।

नत्वा जिनं वीरं अनन्तवरज्ञानदर्शनस्वभावम्।
वक्ष्यामि नियमसारं केवलिश्रुतकेवलिभणितम् ।।१।।

अथात्र जिनं नत्वेत्यनेन शास्त्रस्यादावसाधारणं मङ्गलमभिहितम्।

नत्वेत्यादि ह्न अनेकजन्माटवीप्रापणहेतून् समस्तमोहरागद्वेषादीन् जयतीति जिनः। वीरो विक्रान्तः, वीरयते शूरयते विक्रामति कर्मारातीन् विजयत इति वीरः ह्न श्रीवर्धमानसन्मतिनाथ-महतिमहावीराभिधानैः सनाथः परमेश्वरो महादेवाधिदेवः पश्चिमतीर्थनाथः त्रिभुवनसचराचर-द्रव्यगुणपर्यायैकसमयपरिच्छित्तिसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानदर्शनाभ्यां युक्तो यस्तं प्रणम्य वक्ष्यामि कथयामीत्यर्थः। कं ? नियमसारम्।

नियमशब्दस्तावत् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेषु वर्तते, नियमसार इत्यनेन शुद्धरत्नत्रय-स्वरूपमुक्तम्।

किम्विशिष्टम् ? केवलिश्रुतकेवलिभणितम्। केवलिनः सकलप्रत्यक्षज्ञानधराः, श्रुत-केवलिनः सकलद्रव्यश्रुतधरास्तैः केवलिभिः श्रुतकेवलिभिश्च भणितं सकलभव्यनिकुरम्ब-हितकरं नियमसाराभिधानं परमागमं वक्ष्यामीति विशिष्टेष्टदेवतास्तवनानन्तरं सूत्रकृता पूर्वसूरिणा श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवगुरुणा प्रतिज्ञातम्। इति सर्वपदानां तात्पर्य्यमुक्तम्।

अब (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित) गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है —

नमकर अनन्तोत्कृष्ट दर्शन-ज्ञानमय जिन वीर को।
कहुँ नियमसार सु केवली, श्रुतकेवली परिकथित को॥१॥

अन्वयार्थ :—[अनन्तवरज्ञानदर्शनस्वभावं] अनन्त और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन

जिनका स्वभाव है - ऐसे (केवलज्ञानी और केवलदर्शनी) [जिन वीरं] जिन वीर को [नत्वा] नमन करके [केवलिश्रुतकेवलिभणितं] केवली तथा श्रुतकेवलियों का कहा हुआ [नियमसारं] नियमसार [वक्ष्यामि] मैं कहूँगा।

टीका :—यहाँ 'जिनं नत्वा' इस गाथा से शास्त्र के आदि में असाधारण मंगल कहा है।

'नत्वा' इत्यादि पदों का तात्पर्य कहा जाता है —

अनेक जन्मरूप अटवी को प्राप्त कराने के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेषादिक को जो जीत लेता है, वह 'जिन' है। 'वीर', अर्थात् विक्रान्त (पराक्रमी); वीरता प्रगट करे, शौर्य प्रगट करे, विक्रम (पराक्रम) दर्शाए, कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, वह 'वीर' है। ऐसे वीर को जो कि वर्द्धमान, श्री सन्मतिनाथ, श्री अतिवीर तथा श्री महावीर — इन नामों से युक्त हैं; जो परमेश्वर हैं; महादेवाधिदेव हैं; अन्तिम तीर्थनाथ हैं; जो तीन भुवन के, सचराचर, द्रव्य-गुण-पर्याय से कहे जानेवाले समय को (समस्त द्रव्यों को) जानने-देखने में समर्थ, ऐसे सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-दर्शन से संयुक्त हैं, उन्हें नमन करके कहता हूँ। क्या कहता हूँ ? 'नियमसार' कहता हूँ। 'नियम' शब्द प्रथम तो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र के लिए है। 'नियमसार' ('नियम का सार') ऐसा कहकर शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप कहा है। कैसा है वह ? केवलियों तथा श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ है। 'केवली', वे सकल प्रत्यक्षज्ञान के धारण करनेवाले और 'श्रुतकेवली', वे सकल द्रव्यश्रुत के धारण करनेवाले; ऐसे केवलियों तथा श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ, सकल भव्यसमूह को हितकर, 'नियमसार' नाम का परमागम मैं कहता हूँ। इस प्रकार विशिष्ट इष्टदेवता का स्तवन करके, फिर सूत्रकार पूर्वाचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवगुरु ने प्रतिज्ञा की।

इस प्रकार सर्व पदों का तात्पर्य कहा गया।

गाथा-१ पर प्रवचन

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं।।१।।

समयसार में

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचल-मणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड-मिणमो सुदकेवली-भणिदं॥१॥

—ऐसा था। इसमें तो स्पष्ट केवली और श्रुतकेवली दो नाम लिये हैं। टीका में ऐसा किया है। टीका में स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार स्पष्ट किया है। यह नियमसार केवलज्ञानी ने कहा है। देखो कुन्दकुन्दाचार्य सीधा कहते हैं। भगवान के बाद ६०० वर्ष में दिगम्बर मुनि हुए। उनसे सौ वर्ष पहले श्वेताम्बर पन्थ दिगम्बर में से निकल गया था। पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य हुए। कहते हैं कि यह समयसार केवली का कहा हुआ कहूँगा, ऐसा कहते हैं, लो! केवली का कहा हुआ कहूँगा - तो क्या केवली के पास से सुना है? हाँ, साक्षात् भगवान के पास गये थे। महाविदेह में सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ गये थे। केवली और श्रुतकेवली। चौदह पूर्वधर जो श्रुतकेवली महाविदेह में थे, उनके पास जो सुना है, वह मैं कहूँगा, ऐसा कहते हैं। नीचे हिन्दी है न?

नमकर अनन्तोत्कृष्ट दर्शन-ज्ञानमय जिन वीर को।
कहुँ नियमसार सु केवली, श्रुतकेवली परिकथित को॥१॥

पहले इसका अन्वयार्थ लेते हैं। '**अनन्तवरज्ञानदर्शनस्वभावम्' अनन्त और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन जिनका स्वभाव है....** भगवान का। केवलज्ञानी वीर परमात्मा की व्याख्या करते हैं। वीर भगवान महावीर परमात्मा कैसे हैं? **अनन्त और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन जिनका स्वभाव है....** ऐसी जिनकी दशा प्रगट हो गयी है। तीन काल-तीन लोक एक समय में भगवान जानते हैं और देखते हैं, ऐसा भगवान महावीर का शासन है तो महावीर को नमन पहले करते हैं। अभी भगवान का शासन चलता है न?

कहते हैं, अनन्त और उत्कृष्ट **अनन्त और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन जिनका स्वभाव है - ऐसे (केवलज्ञानी और केवलदर्शनी)... 'जिनं वीरं' जिन वीर को....** जिन्होंने चार गति और राग-द्वेष-मोह को जीता है, ऐसे जिन वीर को। **नमन करके...** लो, उन्हें नमन करता हूँ, उन्हें मैं नमन करता हूँ। वीर-जिन्होंने आत्मा में से अज्ञान और राग-द्वेष निकाल दिये हैं और परमात्मपद की प्राप्ति की है, उन्हें मैं नमन करता हूँ।

'**केवलिश्रुतकेवलिभणितम्' केवली तथा श्रुतकेवलियों का कहा हुआ...** है।

यह नियमसार कोई अज्ञानी का या कोई कल्पना से बनाया है, ऐसा नहीं है। सर्वज्ञपरमात्मा अरिहन्तदेव केवलज्ञानी और उनके पास रहनेवाले श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ यह नियमसार है। समझ में आया? **नियमसार मैं कहूँगा।** नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। यह अर्थ में आयेगा। सार अर्थात् पुण्य और पाप के विकार से, व्यवहाररत्नत्रय से रहित। नियम अर्थात् अपना शुद्ध चैतन्य भगवान की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशारूपी नियम; और सार अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि के विकल्प से रहित, उसका नाम नियमसार कहा जाता है। व्यवहारश्रद्धा से रहित, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! तब वे कहते हैं कि व्यवहार से प्राप्त होता है, व्यवहार से प्राप्त होता है। व्यवहार हो, आता अवश्य है परन्तु उससे मुक्ति होती है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? टीका करेंगे।

टीका :— **यहाँ...** मैं कहूँगा, ऐसा है न? '**वक्ष्यामि**' मैं कहूँगा। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, कहनेवाला तो मैं हूँ न! मैंने भले केवली और श्रुतकेवली से सुना, परन्तु वर्तमान में तो मैं कहता हूँ। समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा और श्रुतकेवलियों, चौदह पूर्वधरों का कहा हुआ है, परन्तु वर्तमान में तो मैं कहता हूँ। **यहाँ 'जिनं नत्वा' इस गाथा से शास्त्र के आदि में असाधारण मंगल कहा है।** महामांगलिक। ओहो! असाधारण मांगलिक, ऐसी वस्तु अन्यत्र है नहीं। ऐसा मंगल-पवित्रता की प्राप्ति, ऐसा मांगलिक यहाँ पहले कहा है। मंग अर्थात् पवित्रता, ल अर्थात् लाती-प्राप्ति। अपने आनन्द की, शुद्धि की प्राप्ति का नाम मंगल कहने में आता है। आहा..हा..!

'नत्वा' इत्यादि पदों का तात्पर्य कहा जाता है— देखो! तात्पर्यवृत्ति है न? इसलिए तात्पर्य (कहा)। **अनेक जन्मरूप अटवी को प्राप्त कराने के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेषादिक को जो जीत लेता है,...** विकारी भाव को कहा। ऐ! पण्डितजी! कर्म शब्द नहीं लिया। देखो! टीका देखो! अनेक जन्म चौरासी के अवतार—निगोद, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय आदि अवतार होने का कारण, चौरासी के अवतार / जन्म-मरण होने का हेतु समस्त मोह, राग-द्वेष आदि भाव हैं। यहाँ कर्म को हेतु नहीं कहा। समझ में आया? वीर के अर्थ में अर्थ करेंगे। कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। वीर के अर्थ में वहाँ आगे कर्मशत्रु डालेंगे।

यहाँ तो भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन आनन्दस्वरूप से विपरीत मान्यता-मिथ्यात्व—

शरीर मैं हूँ, राग मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ, पुण्य से मुझे धर्म होता है—ऐसी विपरीत मान्यता और राग-द्वेष, अनुकूल-प्रतिकूलता में राग और द्वेष, ऐसे जो मोह और राग-द्वेष को जिसने जीत लिया है। **जीत लेता है, वह 'जिन' है।** उसे जिन कहते हैं। जिन किसी पक्ष का शब्द नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं। जिन तो गुणवाचक शब्द है। आहा..हा..! जिसने आत्मा में से मिथ्यात्व और राग-द्वेष को जीत लिया है और सम्यग्दर्शन तथा वीतरागता प्रगट की है, उसे जिन कहने में आता है। आहा..हा..! समझ में आया?

अनेक जन्मरूप अटवी... ऐसा शब्द लिया है न? टीका '**अनेकजन्माटवी**' संस्कृत में ऐसा शब्द है। अनन्त शब्द नहीं लिया। अनेक जन्मरूपी अटवी-वन-जंगल। आहा..हा..! चौरासी के अवतार, जिसमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, निगोद, आलू, काई के अनन्त अवतार किये। ऐसे जन्म-मरण का हेतु मोह, राग-द्वेष है। मोह अर्थात् मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष अर्थात् अस्थिरता का भाव, उन्हें जीत लिया। जिसने अपने स्वभाव का आश्रय करके उन्हें जीत लिया। भाषा देखो! मोह, राग-द्वेष को जीता। जिन की व्याख्या करनी है न? उसका यह अर्थ है कि स्वभाव परमात्मा अपना निजस्वरूप, शुद्ध बुद्ध ज्ञानघन में लीन होकर मोह और राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं हुई, उसका नाम मोह और राग-द्वेष जीता, ऐसा कहने में आता है। कहो, समझ में आया? ऐसे जिन हैं। लो, मांगलिक में पहले जिन शब्द आया है। आहा..!

मोह और राग-द्वेष को जीत लिया। उसका अर्थ यह हुआ कि राग-द्वेष से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा तो नहीं। समझ में आया? शुभराग है, उसे भी जीत लिया, ऐसा कहा है न? शुभराग है, उससे मुझे लाभ होता है, ऐसा तो रहा नहीं। उसे तो जीत लिया। शुभराग से रहित मेरी चीज़ शुद्ध सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप है, उसकी दृष्टि करके अनुभव में भान करके अन्तर में लीन होकर मोह और राग-द्वेष को जीत लिया। शुभराग को जीत लिया। समझ में आया? शुभराग से मुझे लाभ होगा, ऐसा तो रहा नहीं। उसे तो जीत लिया। जिसे जीता, उससे आत्मा में जीतने की मदद होगी? क्या कहते हैं, समझ में आया? शुभ रागादि को जीतना है, नाश करना है। जिसका नाश करते हैं, उससे आत्मा की शान्ति की उत्पत्ति होती है? उसके कारण से (होती है)?

समस्त मोह-राग-द्वेषादिक को... द्वेष आदि अर्थात् विषय-वासना, रति-अरति। **जो जीत लेता है,...** ऐसा है। **वह 'जिन' है।** आहा..!

अब वीर की व्याख्या। '**वीर**',... जिन वीर। '**वीर**', **अर्थात् विक्रान्त (पराक्रमी)**;... परमात्मा तीर्थंकरदेव, वीर परमात्मा। **वीरता प्रगट करे,...** प्रगट करे। वीर, विक्रान्त, पराक्रमी एक अर्थ। वीरता प्रगट करे। आत्मा की, अपने स्वभाव की-अनन्त बल शक्ति जो प्रगट करे। पामरता का नाश करके अपनी वीरता प्रगट करे, ऐसा कहते हैं। **शौर्य प्रगट करे,...** प्रगट करे। ये सब शब्दार्थ हैं। शौर्य, शौर्य। **विक्रम (पराक्रम) दर्शाये,...** अपना अन्दर का पराक्रम दर्शावे। वीर तो उसे कहते हैं कि अपने स्वरूप की, आनन्द की रचना करने में वीर्य प्रगट करे। राग की रचना करने में वीर्य प्रगट नहीं करे। (राग की रचना करे), वह वीर नहीं है। समझ में आया?

शौर्य प्रगट करे,... प्रगट करे। शौर्य अर्थात् वीरता, हों! शरीर की शौर्यता की यहाँ बात नहीं है। **विक्रम (पराक्रम) दर्शाये,...** अपने शुद्धस्वरूप की ओर का आश्रय करके अपना पराक्रम प्रगट करे कि मेरा पराक्रम अनन्त वीर्य है, उसमें पामरता नहीं रह सकती, इसका नाम वीर परमात्मा कहने में आता है। आहा..! ऐसी पहचान करके मैं नमन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। ऐसा का ऐसा भगवान णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं किया, ऐसा नहीं। ऐसे वीर, जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से वीरता प्रगट की। शत्रु के साथ में लड़ने में वीरता दिखाते हैं न? वीरता। लोग ऐसे झट मारते हैं। वैसे परमात्मा आदि आत्मा अपनी अन्तर की वीरता प्रगट दिखाते हैं, उन्हें वीर कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? महावीर भगवान को नमन करते हैं। उनका शासन चलता है न! परमात्मा महावीर तो मोक्ष पधारे, परन्तु शासन उनका है न?

वह 'वीर' है। उसे वीर कहने में आता है। जिसने पुण्य-पाप के राग को जीतने में निज वीर्य प्रगट किया, पराक्रम प्रगट किया, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! आहा..हा..! शुभ-अशुभराग को जीतने में जिसने, आत्मा ने वीरता प्रगट की, पराक्रम किया, शौर्य प्रगट किया। आहा..हा..! स्वभाव की शौर्यता पामरता का नाश करने में प्रगट की, उसे हम वीर कहते हैं। समझ में आया? उस वीर के मार्गानुसारी भी ऐसे होने चाहिए, ऐसा कहते हैं। देखो, कैसी बात की है! टीका कितनी सरस बनायी है!

विजय प्राप्त करे,... ऐसा लिया न? देखो! **कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे,...** जड़कर्म निमित्त हैं, परन्तु भावकर्म पर विजय प्राप्त की, अपनी ध्वजा (फहरायी) कि मैं

शुद्ध आनन्दघन हूँ। मैंने मेरी वीरता से स्वराज्य प्राप्त किया है। मेरा आनन्द आदि स्वराज्य, हों! यह अभी लोग कहते हैं, उस धूल का राज नहीं। अभी दोनों व्यक्ति देखो न, स्वराज्य के लिये परस्पर हैरान-हैरान हो जाते हैं। यह तो स्वराज्य—अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त शान्ति-वीतरागता, ऐसा मेरा स्वराज्य मेरी वीरता से मुझे प्रगट हुआ है। कहो, समझ में आया? कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त की है।

आनन्दघनजी में आता है न? 'वीर पणुं ते मांगूँ...' पहला शब्द क्या आता है? 'वीर जिनेश्वर चरणें लागुं वीर पणुं ते मांगूँ रे, वीर पणुं ते आतम ठाणे, जाणुं तुमथी वाणे रे....' भगवान! आपकी वाणी में मैंने सुना कि यह वीरपना तो अन्दर आत्मा में है। अपने असंख्य प्रदेश में अनन्त वीर्य पड़ा है। 'वीर पणुं ते आतम ठाणे, जाणुं तुमथी वाणे रे... ध्यान विज्ञान बिना ने...' ऐसा कुछ शब्द है। 'निजपद पहिचाने रे....' निजपद पहिचाने। अपने आनन्द के ध्यान को शुद्धता से अपने निजपद की पहिचान करे। ऐसे वीर को वीर कहा जाता है। 'ध्यान बिना ने शक्ति प्रमाणे' ऐसा है। शक्ति प्रमाणे। 'निज ध्रुवपद पहिचाने' ऐसा है। आनन्दघनजी में आता है।

वीर के मार्गानुसारी वीर होते हैं, ऐसा कहते हैं। पामर-कायर नहीं होते। समझ में आया? अपने स्वभाव के साधन से जिन्होंने विकार और कर्म को जीत लिया है, उसका नाथ वीर और पण्डित कहा जाता है। आहा..! शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। देखो! वे इनकार करते हैं, भाई! अरिहन्त नहीं कहलाते। इसमें तो यह आया। कर्मशत्रुओं पर विजय। कितनी जगह भूल निकालेंगे। कर्म को शत्रु कहने में तो हिंसा है। (ऐसा वे कहते हैं।) अरे! वह तो नाममात्र कहने में क्या? शब्द में हिंसा कहाँ आयी? अभी आया है न? णमो अरिहंताणं नहीं कहना। णमो अरहंताणं कहना। ऐसी चर्चा समाचारपत्रों में चली है। क्योंकि णमो अरिहंताणं में अरि—दुश्मन आता है। नाम मात्र दुश्मन है। अन्दर हिंसा की उत्पत्ति होती है, इसलिए नहीं। पण्डितजी! किसी का आया है न? फिरोजाबाद। माणिकचन्द नाम का कोई पण्डित है।

यहाँ तो यह कहा। कर्मरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। इसका अर्थ स्वभाव की शान्ति में मग्न हुए और विकार की उत्पत्ति नहीं हुई तो शत्रुओं का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। कर्म को शत्रु कहा तो क्या उसमें द्वेष है? समझ में आया? उन्हें नमन करके

कहता हूँ। अहो! ऐसे परमात्मा को मैं नमन करके, वन्दन करके, यह तात्पर्यवृत्ति टीका कहूँगा। यह तो शुरुआत है न? कल से तो शुरु किया।

क्या कहता हूँ नियमसार कहता हूँ। देखो! मैं नियमसार कहूँगा। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है, वैसे मैं टीका करूँगा। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं नियमसार कहूँगा। नियमसार का **'नियम' शब्द प्रथम तो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र के लिए है।** यह नियम है। आहा..हा..! यह व्रत और तप के नियम के विकल्प हैं, वे नियम नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शब्द के अर्थ बदल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो? यहाँ तो आत्मा में शुद्ध स्वरूप पवित्र का सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसकी लीनता को यहाँ नियम कहा जाता है। वह नियम मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा..! समझ में आया? **'नियम' शब्द प्रथम तो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र के लिए है।** व्यवहार विकल्प के लिये नियम नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह नियम लिया, यह व्रत लिया, वह तो सब व्यवहार विकल्प है; वह वास्तविक नियम नहीं। आहा..हा..! अब नियम का अर्थ टीका में आयेगा। नियमसार - नियम का सार। **ऐसा कहकर शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप कहा है।** देखो! व्यवहार नहीं। आहा..हा..! पण्डितजी! ऐसी बात है।

कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं नियमसार कहूँगा - तो नियम का अर्थ क्या? अपना शुद्ध पवित्र भगवान, पूर्ण भगवान पूर्ण ब्रह्म आनन्द के अन्तर्मुख होकर प्रतीति, अन्तर्मुख होकर स्वसंवेदन ज्ञान और अन्तर्मुख में लीनता (होना), उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को नियम कहा जाता है। समझ में आया? और सार कहने पर शुद्ध रत्नत्रय का स्वरूप कहा। सम्यग्दर्शन शुद्धस्वभाव का अनुभव और उसमें प्रतीति तथा उसमें लीनता, वह शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप कहा। शुद्धरत्नत्रय को यहाँ मोक्षमार्ग कहा। व्यवहाररत्नत्रय को मोक्षमार्ग नहीं कहा गया। बहुत से पण्डित शोर मचाते हैं न? व्यवहाररत्नत्रय भी मोक्षमार्ग है, व्यवहाररत्नत्रय पहले और फिर निश्चयरत्नत्रय... पण्डितजी! गप्प मारते हैं। आहा..हा..! देखो! क्या कहते हैं?

ऐसा कहकर.... नियमसार शब्द में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा, नियम अर्थात् अपना चैतन्य भगवान पुण्य-पाप से रहित, व्यवहाररत्नत्रय के राग से रहित, अपने

शुद्धस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता होना, ऐसे तीन को नियम कहा जाता है; और सार कहने पर वह शुद्ध रत्नत्रय है। बीच में व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह वास्तविक नियमसार नहीं है। है इसमें? पण्डितजी! संस्कृत में भी है। **शुद्धरत्नत्रय-स्वरूपमुक्तम्**। संस्कृत में है। आहा..! अशुद्धरत्नत्रय दूसरी कोई चीज़ है या नहीं? है, परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं। शुद्ध शब्द प्रयोग किया तो दूसरी चीज़ अशुद्ध है न? व्यवहाररत्नत्रय अशुद्धरत्नत्रय है, विकल्प है, राग है। आहा..हा..! गजब!

नियमसार - नियम कहने से शुद्ध रत्नत्रय; सार कहने से शुद्ध रत्नत्रय, ऐसा। नियम कहने से रत्नत्रय और सार कहने से शुद्ध रत्नत्रय, ऐसा। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य पहले से कहते हैं कि यह नियमसार है। अन्तर में मोक्ष का निर्विकारी सम्यग्दर्शन, निर्विकारी ज्ञान और विकाररहित आनन्द की लीनता, इसका नाम शुद्ध रत्नत्रय, यही मोक्ष का मार्ग है; दूसरा कोई मार्ग नहीं है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३, श्लोक-८, गाथा १-२, सोमवार, फाल्गुन शुक्ल ४ दिनांक ०१-०३-१९७१

नियमसार, अर्थात् मोक्ष का मार्ग। मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का मार्ग। मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द, उसकी प्राप्ति का मार्ग, उसे नियमसार कहते हैं। अपने यहाँ तक आया है। **'नियमसार' ('नियम का सार') ऐसा कहकर शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप कहा है।** यहाँ तक आया है। यह क्या कहा? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य नियमसार कहते हैं। अर्थात् क्या? कि शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप, उसे नियमसार कहा जाता है।

शुद्धरत्नत्रय अर्थात् क्या? यह ऊपर आ गया है। आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप -आनन्दस्वरूप है, उसकी अन्तर में स्वसन्मुख शुद्धता के सन्मुख एकाग्रता होने का नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। समझ में आया? शुद्धरत्नत्रय। शुद्ध ऐसा जो आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धसमान पवित्र धाम ऐसे शुद्ध की श्रद्धा, शुद्ध का ज्ञान और शुद्ध की रमणता को यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं। शुद्ध कहने से अशुद्धता का निषेध किया है। व्यवहाररत्नत्रय जो कहा जाता है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और व्यवहार

पंचमहाव्रत के विकल्प, चारित्र व्यवहार, वह मार्ग नहीं है, वह तो राग है बीच में। आत्मा वीतराग परम आनन्दस्वरूप है, उसकी स्वसन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, उसे ही मोक्ष का मार्ग तीर्थंकर परमेश्वर के मुख में वह आया है। समझ में आया?

कैसा है वह ? शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप कहा वह। किसने कहा? **केवलियों तथा श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ है।** देखो! है? ऐसे तो दूसरे भी ऐसा कहते हैं कि भगवान ने कहा है, ऐसा कहता हूँ। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञान पूर्ण जिन्हें प्रगट हुआ। शक्ति और स्वभाव तो आत्मा का केवलज्ञान ही है। वह अन्तर-सन्मुख ध्यान द्वारा शुक्लध्यान द्वारा जिन्हें वह केवलज्ञान एक समय में तीन काल, तीन लोक को जानने की अपनी शक्ति थी, उसे प्रगट की। ऐसे केवलियों ने यह नियमसार कहा है। समझ में आया?

उसमें ऐसा आता है, नहीं? '**सुदकेवलीभणिदं**' यहाँ '**केवलिश्रुतकेवलिभणितम्**' स्पष्ट कर दिया है। समयसार में '**सुदकेवलीभणिदं**' (कहा)। श्रुत और केवली दो भिन्न करके टीका में अर्थ किया। टीकाकार ऐसा कहते हैं, नहीं तो '**सुदकेवलीभणिदं**' ऐसा है। समयसार। नियमसार में तो '**केवलिश्रुतकेवलिभणितम्**' (कह दिया।) केवली के दो विशेषण-एक केवली और एक श्रुतकेवली। दोनों ने यह कहा हुआ है। आहा..! समझ में आया?

भगवान के समवसरण में प्रभु विराजते थे। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। कहते हैं कि केवली श्रुतकेवलियों ने कहा, वह मैं कहता हूँ। वह शुद्धरत्नत्रय केवलियों ने और श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ है। यह तो शब्दार्थ हुआ।

अब '**केवली', वे सकल प्रत्यक्षज्ञान के धारण करनेवाले...** केवलज्ञान, वह सकल प्रत्यक्ष है। तीन काल, तीन लोक सब जिन्हें ज्ञान की दशा में प्रत्यक्ष हो गये हैं। ऐसे **सकल प्रत्यक्षज्ञान के धारण करनेवाले और 'श्रुतकेवली', वे सकल द्रव्यश्रुत के धारण करनेवाले;...** देखो! यहाँ चौथे-पाँचवें के निश्चय श्रुतकेवली नहीं लिये। मगनभाई! द्रव्यश्रुत जो पूर्ण द्रव्यश्रुत है, बारह अंग, उसके धारक श्रुतकेवली। श्रुतज्ञान में पूरे, भगवान के समवसरण में विराजते थे उन्होंने कहा हुआ, भगवान ने कहा हुआ, यह दोनों ने कहा हुआ है। समझ में आया? सकल द्रव्यश्रुत के धारक, जितने शास्त्र सब बारह अंग कहलाते हैं, वह सब जिन्हें अन्तर (में) था उन्होंने यह नियमसार कहा हुआ है।

ऐसे केवलियों तथा श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ, सकल भव्यसमूह को हितकर,... अब यह कैसा है नियमसार? भव्य योग्य प्राणी को हितकर है। जिसे आत्मा का मोक्ष करना है और योग्यता है, ऐसे जीव को यह नियमसार हितकर है। आहा..! समझ में आया? '**नियमसार' नाम का परमागम मैं कहता हूँ**।' नियमसार' नाम का परमागम मैं कहता हूँ। ऐसा कहा। आगम तो कहते हैं परन्तु यह तो परमागम। मैं कहता हूँ, पद्मप्रभमलधारिदेव इसका अर्थ करते हैं। स्वयं कहते हैं न, मैं नियमसार कहता हूँ। '**केवलिश्रुतकेवलिभणितम्**'। वह कहूँगा। '**वक्ष्यामि**'।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं कहूँगा। कहनेवाला तो मैं हूँ। उसकी टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। दोनों दिगम्बर मुनि-सन्त वनवासी (थे)। सन्तों की जैनधर्म की पद्धति ही अनादि नग्न और वनवासी थे। पश्चात् यह दुष्काल पड़ा, उसमें से यह सब अर्धफालक (हुए)। सफेद टुकड़ा (वस्त्र) लेकर साधु होकर निकले, फिर उसमें से ये श्वेताम्बर पन्थ निकला। वीतराग के मार्ग से-परम्परा से विरुद्ध होकर निकला। उसके बाद पन्द्रह सौ, अभी से पाँच सौ वर्ष पहले यह स्थानकवासी निकले। ये मूर्ति को उत्थापित कर निकले। बाकी दूसरी मान्यता रखी। फिर यह और तेरापंथी निकले। अणुव्रत आन्दोलन करनेवाले। ये तो अभी (निकले)। यह सब एक के बाद एक सर्वज्ञ वीतराग पन्थ में से विपरीत रूप से निकले हैं। ऐसा है। आहा..हा..! बहुत कठिन काम। स्वरूपचन्दभाई! ऐसा है यह।

इस प्रकार विशिष्ट इष्टदेवता का स्तवन करके,... खास अपने प्रिय वीर भगवान, अभी जिनका वीरशासन चलता है, ऐसे इष्टदेवता के स्तवन के बाद। इसमें उनकी स्तुति की। इसमें कहा न? नमकर। **सूत्रकार पूर्वाचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवगुरु ने प्रतिज्ञा की**। टीकाकार, कुन्दकुन्दाचार्य को (के लिये) ऐसा कहते हैं कि पूर्वाचार्यश्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवगुरु ने प्रतिज्ञा की, ऐसा कहा। देव और गुरु। टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव पंच महाव्रतधारी भावलिंगी मुनि हैं। वनवासी-जंगल में रहनेवाले, वे कहते हैं कि पूर्वाचार्य ऐसे कुन्दकुन्दाचार्यदेवगुरु, देव-गुरु। उन्होंने प्रतिज्ञा की। कुन्दकुन्दाचार्य के प्रति कितना (बहुमान है)! पंच महाव्रतधारी मुनि भावलिंगी दिगम्बर सन्त हैं, वे भी

कुन्दकुन्दाचार्य को 'कुन्दकुन्दाचार्यदेवगुरु' ऐसा कहते हैं। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की है। समझ में आया? आहा..हा..!

इस प्रकार सर्व पदों का तात्पर्य कहा गया। लो! एक-एक शब्द का अर्थ पृथक् करके कहा गया है।

श्लोक-८

अब, पहली गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं :-

(मालिनी)

जयति जगति वीरः शुद्धभावास्तमारः,
त्रिभुवनजनपूज्यः पूर्णबोधैकराज्यः।
नतदिविजसमाजः प्रास्तजन्मद्रुबीजः,
समवसृतिनिवासः केवलश्रीनिवासः ।।८।।

(वीरछन्द)

शुद्धभाव के द्वारा जिनने काम शत्रु का किया विनाश।
त्रिभुवन जन द्वारा जो पूजित, पूर्ण ज्ञान है जिनका राज्य॥
सुरगण जिनको करें नमन जो जन्मवृक्ष का बीज नशें।
केवल-श्रीपति समवसरण के वासी प्रभु जयवन्त रहें॥८॥

श्लोकार्थ :— शुद्धभाव द्वारा मार* का (काम का) जिन्होंने नाश किया है, तीन भुवन के जनों को जो पूज्य हैं, पूर्ण ज्ञान जिनका एक राज्य है, देवों का समाज जिन्हें नमन करता है, जन्मवृक्ष का बीज जिन्होंने नष्ट किया है, समवसरण में जिनका निवास है और केवलश्री (केवलज्ञानदर्शनरूपी लक्ष्मी) जिनमें वास करती है, वे वीर जगत में जयवन्त वर्तते हैं॥८॥

*मार=१. कामदेव, २. हिंसा, ३. मरण

श्लोक-८ पर प्रवचन

अब, पहली गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमल-धारिदेव श्लोक कहते हैं :- लो! अब मुनि स्वयं श्लोक कहते हैं। टीका स्वयं ने की है, उसका सार कहते हैं। आठवाँ श्लोक है, देखो! सात तो मंगलाचरण में आ गये हैं।

जयति जगति वीरः शुद्धभावास्तमारः,
त्रिभुवनजनपूज्यः पूर्णबोधैकराज्यः।
नतदिविजसमाजः प्रास्तजन्मद्रुबीजः,
समवसृतिनिवासः केवलश्रीनिवासः ।।८।।

इस ओर अर्थ है। भगवान वीरपरमात्मा कैसे थे? पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त-मुनि वे स्वयं वर्णन करते हैं। **शुद्धभाव द्वारा मार का (काम का) जिन्होंने नाश किया है,...** देखो! पहले से शुरु किया है। ये पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव तो अशुद्धभाव हैं। इनसे काम का, अज्ञान का, राग का नाश नहीं होता। आहा..हा..! काम-भोग कथा आता है न? राग स्वयं ही काम है। आहा..हा..! शुद्धभाव आत्मा पवित्र आनन्दस्वरूप की सन्मुखता का जो शुद्धभाव, ऐसे भाव द्वारा जिन्होंने काम का, मार का, मार अर्थात् काम, उसका नाश किया है। अतीन्द्रिय आनन्द का जिन्हें अनुभव है। समझ में आया?

कामवासना जगत को दुःखदायक है, ऐसा पहले बताते हैं। जगत को प्रिय लगता है। ऐसे शरीर, लक्ष्मी, बाह्य चीज़ें, वे सब विषय-वासना काम है। समझ में आया? अपने पदार्थ के अतिरिक्त दूसरा कोई भी पदार्थ जिसे उल्लसित वीर्य में उल्लास दे, वह सब काम है। उस काम का जिसने नाश किया है। आहा..हा..! दुनिया जिसे प्रीति के प्रेम से, जिसे भोग को आदरती है। इन्द्राणी और सुन्दर शरीर और खाने-पीने के सब मैसूरपाक, जामुन, दहीथरा और.... क्या कहलाता है वह? साटा और... यह बगल में बैठा हो और स्त्री हो, खाने का हो। वे कहते थे न? राजा को पाँच थी न? मास्टर कहते थे। हीराचन्द मास्टर नहीं? मास्टर नहीं कहते थे? एक ओर वेश्या नाचती हो, एक ओर बाग में बैठा हो, एक ओर खाता हो, एक ओर वाजिन्त्र बजते हों। ऐसा कुछ है। पाँचों इन्द्रिय के (विषय) एकसाथ (भोगे)। अरे! भगवान! तेरे बाग को छोड़कर इस राग के बाग में आया, यह

महाविषय की वासना है। पाँचों इन्द्रिय के विषय में प्रेम, यह सब वासना, कामवासना है। उसे जिसने शुद्धभाव द्वारा नाश किया है। देखो! दया, दान और व्रत के शुभभाव द्वारा नाश किया है, ऐसा नहीं है। क्योंकि वह स्वयं राग है। आहा..हा..! समझ में आया?

अरे! जिसकी मिठास आत्मा में आनन्द की है, उस मिठास को न जानकर राग की मिठास में पड़े हैं, वे काम-वासना के वश हो गये हैं, वे पामर हैं। आहा..हा..! प्रभु ने पामरता का प्रभुता द्वारा जिसने नाश किया है। समझ में आया? शुद्धभाव द्वारा पुण्य-पाप के भाव हैं, शुभ-अशुभ, दया-दान आदि, काम-क्रोध हैं, वे तो अशुद्धभाव हैं और अशुद्धभाव हैं, वह स्वयं ही काम है और दुःख है। ऐसी काम-भोग की कथा को अनन्त बार सुनी और की है। उसके नाश की कथा सुनी नहीं, ऐसा वहाँ (समयसार गाथा ४ में) कहा है। आहा..हा..!

सुदपरिचिदाणुभूदासव्वस्सवि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥४॥

परन्तु राग का वासना का शुभ और अशुभ विकल्प का है, उससे भिन्न भगवान एकत्व है और राग से भिन्न है। ऐसे स्वभाव की बात प्रीतिपूर्वक सुनी नहीं, परिचय किया नहीं, अनुभव किया नहीं। समझ में आया? इस बात की बात वहाँ से शुरु की, देखो! शुद्धभाव द्वारा जिसने... और यह पद्धति है, ऐसा जगत को कहते हैं जरा। राग और द्वेष वासना का नाश, आत्मा के शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव (हुआ), उस शुद्धभाव द्वारा नाश होता है। समझ में आया? एक बात गुण की की। अब बाहर पुण्य की करते हैं।

तीन भुवन के जनों को जो पूज्य हैं,... यह बाहर की बात है, वह अन्तर की थी। तीन भुवन के जनों / लोगों को भगवान पूज्य है। तीन भुवन में सभी जीव एकेन्द्रिय आदि हैं। सब परन्तु महापुरुष हैं, लोग, उन्हें पूजते हैं और वे इन्हें पूजते हैं। भगवान को वे पूजते हैं। ऐसा कहकर तीन लोक के भुवन के पूज्य को पूजनेयोग्य है, ऐसा कहने में आता है। दूसरे कितने ही न मानें, इसलिए कहीं उनका पूज्यपना चला जाता है? ऐसा कहते हैं। तीन भुवन के लोक को पूज्य पूज्यपना है। आहा..! इतनी तो पुण्य की प्रकृति। वीर भगवान तीर्थंकरदेव शासन में केवलज्ञानरूप से विचरते थे। समवसरण में, हों! यह समवसरण में

विचरते की बात है। अभी तो मोक्ष पधारे, परन्तु भगवान नीचे विराजते थे, उस समय की बात याद करते हैं।

तीन भुवन के जनों को जो पूज्य हैं,... ऐसा कहकर तीन लोक भी सिद्ध किये और अनादि से काम-वासना थी, वह भी सिद्ध की न? हाँ, काम-वासना थी। अत्यन्त पवित्र दशा में अनादि से है, ऐसा है नहीं। अपना घर भूलकर परघर में भ्रमने की लगनी अनादि से थी। उसे जिसने आत्मा के अनुभव से, शुद्धभाव के मोक्षमार्ग से जिसका नाश किया।

पूर्ण ज्ञान जिनका एक राज्य है,... लो! साम्राज्य है, भगवान के पास साम्राज्य है। पूर्ण ज्ञान जिनका एक राज्य है। पूर्ण केवल। जिनके ज्ञान की दशा जलहल ज्योति पूर्ण जिन्हें प्रगट हो गयी है। वह उनका राज्य है, वह उनका राज्य है। यह धूल का राज्य वह उनका नहीं। अब दूसरा। यह गुण का वर्णन किया। अब बाहर का।

देवों का समाज जिन्हें नमन करता है,... पहले तीन भुवन को पूज्य है, ऐसा कहा। यह देवों का, देवों का समाज करोड़ों, अरबों के झुण्ड जिन्हें नमता है, ऐसे वीर भगवान जयवन्त वर्तो, ऐसा कहेंगे। देवों का समाज जिन्हें 'देवाधि नमनपंति' आता है न?... **जन्मवृक्ष का बीज जिन्होंने नष्ट किया है,...** गाथा का सार लिया न? जिन... जिन, जिन है न, वीतराग! जिन्होंने जन्मवृक्ष का बीज—चौरासी के अवतार में भटकने के बीज का जिन्होंने नाश किया है। जिन्होंने मोक्ष के बीज बो कर मोक्ष प्रगट किया है। केवलज्ञान वह मोक्ष, भावमोक्ष। **समवसरण में जिनका निवास है...** देखो! वापस बाहर से बात की। अन्दर की बाद में लेंगे। समवसरण धर्मसभा इन्द्रों ने रची होती है, उसमें जिन का-भगवान महावीर का निवास है। समझ में आया? किसी की वाडी में उतरे और फिर शिला पर बैठे, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आता है न? श्वेताम्बर में ऐसा आता है। चम्पानगरी और अमुक वन में और अमुक नीचे पत्थर की शिला थी, वहाँ विराजते थे।

बारह प्रकार की बड़ी सभा। वह तो अलौकिक रचना! उसमें जिनका निवास है। यह व्यवहार कहा। अरिहन्त पद में थे, तब की बात का वर्णन करते हैं।

केवल, जिनमें केवललक्ष्मी वर्तती है। **और केवलश्री (केवलज्ञानदर्शनरूपी लक्ष्मी) जिनमें वास करती है,...** यह लक्ष्मी उन्हें है, उनके पास। आहा..हा..! कहो, यह

लक्ष्मीपति कहलाते हैं न ? ये सब धूल के, वे तो जड़पति हैं। नवनीतभाई ! लक्ष्मीपति कहते हैं न ? धनपति, लक्ष्मीपति, नरपति, उद्योगपति और बड़े उद्योगपति अभी यह महिमा करे। उनके हाथ से बाहुबल से उद्योग बढ़ाकर उद्योगपति हुए। बड़ी पूँछ लगावे। पैसा लेना हो न... भाई ! ऐसा अभी बाहर में चलता है या नहीं ? आहा..हा.. !

और केवलश्री (केवलज्ञानदर्शनरूपी लक्ष्मी) जिनमें वास करती है,... जिनमें अन्तर में तो स्वयं ज्ञान और दर्शन में बसते हैं अथवा ज्ञान-दर्शन उनमें बसते हैं। वे समवसरण में बसते नहीं - ऐसा कहते हैं। यह व्यवहार कहा। आहा..हा.. ! व्यवहार भी बतलाया और निश्चय भी बतलाया। **वे वीर जगत में जयवन्त वर्तते हैं।** वर्तते हैं, है न पाठ ? ऐसा है न ? पहला शब्द है न ? '**जयति जगति वीरः**' इस जगत में वीर जयवन्त वर्तो। ऐसे परमात्मा ! ओहो.. ! जिन्हें अरिहन्त परमेश्वर कहते हैं, उनकी ही पहिचान नहीं और णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं रटा करे, बोला करे। ऐसे अरिहन्त और देव हों, उन्हें मैं देवरूप से स्वीकार करके वन्दन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। परमात्मा ऐसे होते हैं। तीर्थंकरदेव वीर प्रभु ऐसे होते हैं।

दूसरी गाथा। यह तो वन्दन और स्तुति की। अब नियमसार कहने की प्रतिज्ञा की थी, वह कहते हैं।

गाथा-२

मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्खउवाओ तस्स फलं होइ णिव्वाणं।।२।।

मार्गो मार्गफलमिति च द्विविधं जिनशासने समाख्यातम्।
मार्गो मोक्षोपायः तस्य फलं भवति निर्वाणम्।।२।।

मोक्षमार्गतत्फलस्वरूपनिरूपणोपन्यासोऽयम्। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' इति वचनात्, मार्गस्तावच्छुद्धरत्नत्रयं, मार्गफलमपुनर्भवपुरन्ध्रिकास्थूल-भालस्थललीला-लंकारतिलकता।

द्विविधं किलैवं परमवीतरागसर्वज्ञशासने चतुर्थज्ञानधारिभिः पूर्वसूरिभिः समाख्यातम्।

परमनिरपेक्षतया निजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानपरिज्ञानानुष्ठानशुद्धरत्नत्रयात्मकमार्गो मोक्षोपायः, तस्य शुद्धरत्नत्रयस्य फलं स्वात्मोपलब्धिरिति।

है मार्ग का अरु मार्ग-फल का कथन जिन-शासन विषें।
है मार्ग मोक्षउपाय अरु निर्वाण उसका फल कहें॥२॥

अन्वयार्थ :—[मार्गः मार्गफलम्] मार्ग और मार्गफल [इति च द्विविधं] ऐसे दो प्रकार का [जिनशासने] जिनशासन में [समाख्यातम्] कथन किया गया है; [मार्गः मोक्षोपायः] मार्ग, मोक्षोपाय है और [तस्य फलं] उसका फल [निर्वाणं भवति] निर्वाण है।

टीका :— यह, मोक्षमार्ग और उसके फल के स्वरूपनिरूपण की सूचना (उन दोनों के स्वरूप के निरूपण की प्रस्तावना) है।

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, मोक्षमार्ग है)' — ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, मार्ग तो शुद्धरत्नत्रय है और मार्गफल,

मुक्तिरूपी रमणी के विशाल भालप्रदेश में शोभा-अलंकाररूप तिलकपना है (अर्थात्, मार्गफल, मुक्तिरूपी रमणी को वरण करना है)। इस प्रकार वास्तव में (मार्ग और मार्गफल, ऐसा) दो प्रकार का, चतुर्थ ज्ञानधारी (मन:पर्ययज्ञान के धारण करनेवाले) पूर्वाचार्यों ने परमवीतराग सर्वज्ञ के शासन में कथन किया है। निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान -ज्ञान-अनुष्ठानरूप शुद्धरत्नत्रयात्मक * मार्ग, परम निरपेक्ष होने से मोक्ष का उपाय है और उस शुद्धरत्नत्रय का फल, स्वात्मोपलब्धि (निज शुद्ध-आत्मा की प्राप्ति) है।

गाथा-२ पर प्रवचन

मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्खउवाओ तस्स फलं होइ णिव्वाणं।।२।।

नीचे हरिगीत

है मार्ग का अरु मार्ग-फल का कथन जिन-शासन विषें।
है मार्ग मोक्षउपाय अरु निर्वाण उसका फल कहें॥२॥

अन्वयार्थ - 'मार्ग: मार्गफलं' मार्ग और मार्गफल — ऐसे दो प्रकार का जिनशासन में कथन किया गया है;... वीतराग शासन में यह कथन है। ऐसा कथन अन्यत्र तीन काल में सर्वज्ञ के अतिरिक्त नहीं हो सकता। तीर्थंकरदेव वीतराग परमात्मा जिनेश्वर परमेश्वर के शासन में यह मार्ग कहा है। मार्ग और मार्ग का फल (कहा है)। लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो पक्ष है, जैनधर्म यह पक्ष है। भाई! पक्ष नहीं, वस्तु का स्वरूप ही यह है। जिनवर शासन, वही धर्म का स्वरूप है। समझ में आया? **जिनशासन में कथन किया गया है;...** इसके अतिरिक्त अन्यत्र ऐसा मार्ग और मार्ग का उपाय, मार्ग उपाय और उसका फल ऐसा वर्णन, जिनेन्द्रदेव के मुख में से आया है, ऐसा वर्णन अन्यत्र है नहीं। समझ में आया?

* शुद्धरत्नत्रय, अर्थात् निज परमात्मतत्त्व की सम्यक्श्रद्धा, उसका सम्यक्ज्ञान और उसका सम्यक्-आचरण, पर की तथा भेदों की लेश भी अपेक्षा रहित होने से वह शुद्धरत्नत्रय, मोक्ष का उपाय है। उस शुद्धरत्नत्रय का फल, शुद्ध आत्मा की पूर्ण प्राप्ति, अर्थात् मोक्ष है।

मार्ग, मोक्षोपाय है... मार्ग कहो, उपाय कहो, कारण कहो। **और उसका फल, निर्वाण है।** मार्ग का फल निर्वाण है। देखो! कितनी स्पष्टता हुई है। मार्ग तो एक ही है, ऐसा सिद्ध करते हैं। मार्ग दो हैं, ऐसा है नहीं। देखो! नीचे कहेंगे।

यह, मोक्षमार्ग और उसके फल के स्वरूपनिरूपण की सूचना.... यह मोक्षमार्ग और उसके फल के स्वरूप का निरूपण, कथन की सूचना **(उन दोनों के स्वरूप के निरूपण की प्रस्तावना) है।** शुरुआत-प्रस्तावना-की है यह। अब देखो! निरूपण शब्द तो आया यहाँ। निरूपण सर्वत्र आता है न? निरूपण, निरूपण। व्यवहार निरूपण, निश्चय निरूपण - आता है न सर्वत्र? टोडरमलजी ने लिया है न!

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' देखो! यह उमास्वामी का सूत्र। कुन्दकुन्दाचार्य के शिष्य उमास्वामी हुए, जिन्होंने गागर में सागर भर दिया। सम्पूर्ण शासन का संक्षिप्त में सूत्र 'तत्त्वार्थसूत्र' बनाया। और पहला सूत्र यह है। **(सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, मोक्षमार्ग है)'...** अभी देखो यह कोई कहते हैं कि यह मोक्षमार्ग जो वहाँ कहा है, वह व्यवहार है, ऐसा कोई कहता है। यह तो नाम करके उसे यहाँ निश्चय मोक्षमार्ग कहा है। वह व्यवहार मोक्षमार्ग है (ऐसा कहते हैं कि) तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार मोक्षमार्ग है। **ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से,...** यह पद्मप्रभमलधारिदेव, उमास्वामी का शास्त्र है, उसका यह वचन है, ऐसा कहना चाहते हैं।

मार्ग तो शुद्धरत्नत्रय है... लो! यह आया, इसका अर्थ ही यह है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शुद्धरत्नत्रय की व्याख्या है, अशुद्ध की है ही नहीं। आहा..हा..! मोक्षमार्ग है तो वहाँ व्यवहार का मार्ग, वह तो बन्धमार्ग है। ए... पण्डितजी! ....करेंगे तुम्हारे पण्डित में तो बहुत। ....वे उदयपुरवाले क्या कहलाते हैं? चाँदमलजी। उदयपुर में चाँदमलजी थे न? यह उनसे पूछा कि यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान (क्या है)? तो कहे यह तो व्यवहार है, व्यवहारमोक्षमार्ग है। पन्नालालजी ने तत्त्वार्थसूत्र का अर्थ किया है न, वे पन्नालाल इनके हैं वे। उन्होंने लिखा है कि व्यवहारमोक्षमार्ग है। यहाँ पुस्तक है। यह तुम्हारे पण्डित में यह चलता है। पुस्तक है न अपने यहाँ? मोक्षमार्गप्रकाशक (मोक्ष शास्त्र) उनका बनाया हुआ। लाओ न, उसमें लिखा है। ये पन्नालाल सागरवाले हैं न! यह तो व्यवहारमोक्षमार्ग की बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि **मार्ग तो शुद्धरत्नत्रय है...** ये तीन जो शब्द कहे हैं, वे शुद्धरत्नत्रय के कहे हैं, ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ किया। अरे रे! मूलवस्तु...

मुमुक्षु : ऐसे अर्थ किये हैं, इसीलिए हमें स्वीकार नहीं हैं, ऐसा कितने ही कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अर्थ किये... सच्चे महामुनि हैं, पंच महाव्रतधारी हैं। तेरी दृष्टि प्रमाण कहे वे सच्चे और तेरी दृष्टि से विरुद्ध कहे वे झूठे। इस टीका को रतनचन्दजी नहीं मानते। ये रतनचन्दजी मुख्तार नहीं? आहा..हा..! अरे! भगवान! क्या करता है तू? कहाँ जाना है भाई तुझे? यहाँ तो कहते हैं कि जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग है, वह तो शुद्धरत्नत्रय की व्याख्या मैंने कही, ऐसा कहते हैं। देखो! यह कहते हैं। 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' यह व्यवहार सम्यग्दर्शन का लक्षण है, वहाँ चिह्न किया है। पन्नालाल ऐसे के ऐसे लिखा करते हैं और लोग बिचारे भ्रम में पड़ते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो? चाहे जैसा करे। यह क्या कहते हैं?

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'—तत्त्वार्थसूत्र का (सूत्र है)। यह सम्यग्दर्शन, वह शुद्धरत्नत्रय शुद्ध है। मार्ग तो शुद्धरत्नत्रय एक ही बात ली है, दो बार नहीं लिया। भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर में सन्मुख की विकल्परहित निर्विकल्प वीतरागी प्रतीति / श्रद्धा, उसे शुद्धरत्नत्रय में उसका एक अवयव कहते हैं। सम्यग्दर्शन, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

मार्ग तो शुद्धरत्नत्रय है.... ऐसा स्पष्ट जोरदार कहते हैं न! आहा..! बापू! मोक्ष का मार्ग तो शुद्धरत्नत्रय है। उसके सामने अशुद्धरत्नत्रय व्यवहार है, वह मार्ग नहीं है - ऐसा आया। अर्थ करने में भी विवाद। उसमें आता है न? 'जाति अन्ध का दोष नहीं आकरो।' जन्म का जाति अन्ध हो, वह तो कुछ देखता नहीं। भूराभाई गये? गये होंगे। 'जाति अन्ध का दोष नहीं आकरो, जो जाने नहीं अर्थ, मिथ्यादृष्टि देखी आकरो करे अर्थ के रे अनर्थ।' लड़के को कहा ऐ लड़के! दीपक सुलगा, तुमने कहा था न सुलगा (इसलिए) डाला अग्नि में। सुलगाने को कहा था न। सुलगाने का अर्थ क्या? हमारे यहाँ एक लड़की वहाँ थी वह बोलती थी। छोटी सात वर्ष की थी, पोपटभाई के लड़के की लड़की। सात वर्ष की थी। ऐसे श्लोक बहुत बोलती थी। बेचारी को सात वर्ष की उम्र में क्षय (टी.बी.) हो

गया, मर गयी। 'समझाया समझे नहीं करे कायनो कार्यी, फासन सलगायो कह्युं, नाख्यू भड़का माही।' सुलटा अर्थ वकील को पूछो। रामजीभाई जैसों को, लो! शब्दार्थ करो। पण्डितजी को पूछो, ये संस्कृत के पण्डित हैं। ये ठीक हैं। फासन सलगाये कह्युं, ऐसा कहा है, लो! परन्तु सुलगाने का अर्थ उसमें बत्ती कर, दीपक कर। ऐसा लिया, सुलगाना अर्थात् जला डालना? ऐसे के ऐसे अर्थ समझे। समझ में आया? वह लड़की बोलती थी। बहुत वर्ष (पहले की बात है) संवत् १९८० के वर्ष की बात है। ४७ वर्ष हुए। वह बेचारी मर गयी। आहा..हा..! नटुभाई की लड़की थी। छोटी उम्र थी। उसके दादा ने ऐसे पच्चीस-पचास श्लोक सिखाये थे। बेचारी वह बोलती। क्षय (टी.बी.) होकर मर गयी। आहा..हा..!

अभी शास्त्र के वास्तविक अर्थ करने में विपरीतता। पण्डितजी! यह क्या कहते हैं? मोक्षमार्ग तो शुद्धरत्नत्रय एक ही है। व्यवहारमोक्षमार्ग, वह मार्ग नहीं; वह तो उपचार से निमित्त का कथन है। भाई ने लिखा है न? टोडरमलजी ने (लिखा है), मोक्षमार्ग दो नहीं, (मोक्षमार्ग का) निरूपण दो प्रकार से है, कथन दो प्रकार से है। निश्चय और व्यवहार कथन का प्रकार है, वस्तु दो नहीं। तुम्हारे अब यह कहते हैं या नहीं, मोक्षमार्ग दो माने तो भ्रम है, यह कहते हैं। समझ में आया? वह कहते हैं मोक्षमार्ग दो न माने वह भ्रम है। अब इसका क्या समझना? आहा..हा..! टोडरमलजी कहते हैं कि मोक्षमार्ग दो माने तो भ्रम है, क्योंकि यहाँ एक ही कहा है। वहाँ रतनचन्दजी कहते हैं दो नहीं माने, वे भ्रम में पड़े हैं। अब इसका क्या करना? लुटेरे।

बाड़ बेल को खाये। हमारे... दामोदर सेठ, वे बेचारे कहते थे। साधु था न? ....स्थानकवासी साधु थे। उनकी श्रद्धा वेदान्त की थी। इस लीमड़ी संघाड़ा के। बहुभाग लीमड़ी संघाड़ा के थे। हमने सबको देखा था। पालेज आये थे। पालेज हमारे बीच में सही न! मुम्बई से देश में आवे, तब हमारे यहाँ पालेज में आवे। सब आये थे, तब देखा था। उनकी श्रद्धा वेदान्त की हो गयी, जैन की रही नहीं। स्थानकवासी में थे। फिर यह हमारे सेठ थे, दामोदर सेठ थे, उनकी श्रद्धा मिथ्या परन्तु उनकी वेदान्त की नहीं, जैन सही। इसलिए सुधरे हुए लगते, गृहस्थ व्यक्ति इसलिए सुधरे हुए लगते। उनके साथ बात करते हुए वेदान्त की बात कह दी उन ने। वह मानो कि यह मेरी बात स्वीकार करेंगे। बेचारे बोले, अरे! महाराज! बाड़ बेल को खाये, हमें कहाँ जाना? ऐसा बोले थे। हमारा वेश पहनकर इस वेदान्त को माने, हमें कहाँ जाना? इसी प्रकार यहाँ वीतरागमार्ग का सहारा छोड़कर

अपनी कल्पना के मार्ग से मार्ग कहे, उसे कहाँ जाना ? जैतपुर में कहा था।

(यहाँ) कहते हैं, मार्ग तो शुद्धरत्नत्रय एक ही है, ऐसा हुआ या नहीं ? **और मार्गफल, मुक्तिरूपी रमणी...** अपने पूर्ण आनन्द की परिणमन दशा, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द, अनन्त-अनन्त आनन्द, ऐसी मुक्तिरूपी परिणति / रमणी, उसका **विशाल भालप्रदेश...** कपाल विशाल है। **शोभा-अलंकाररूप तिलकपना है...** लो ! उसमें तिलक होता है न ! इसी प्रकार मुक्तिरूपी लक्ष्मी तिलकरूप है। आहा..हा.. ! **(अर्थात्, मार्गफल, मुक्तिरूपी रमणी को वरण करना है)**। ऐसा जो मार्ग, भगवान आत्मा परिपूर्ण शुद्ध है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करे, वह एक ही मार्ग है और उसके फलरूप ऐसी मुक्ति है। व्यवहाररूप का फल मुक्ति और व्यवहारमोक्षमार्ग, यह दो है नहीं। पण्डितजी ! इसमें कहा या नहीं ऐसा ? टोडरमलजी ने क्या भाषा कही है ? शास्त्र में आया, दो मोक्षमार्ग नहीं। सब ऐसे के ऐसे। यह बात दामोदर सेठ कहते थे। क्या टोडरमलजी केवली हो गये ? सबको खटकता था। (संवत्) १९८३ के वर्ष में बहुत चर्चा चलती थी। १९८३, हों ! कितने वर्ष हुए ? ४४ हुए। बहुत चर्चा चलती थी। यह टोडरमलजी ऐसा कहते हैं। (तो वह सेठ कहे), वह केवली हो गया ?... परन्तु वस्तु का स्वरूप जो परम्परा से है, वह कहते हैं। ऐसा न हो तो दूसरे प्रकार से हो ही नहीं सकता न ! बड़ी चर्चा चले, यह तो चर्चाएँ तो हमारे शुरु से (संवत्) १९७१ से चलती है, ५६ वर्ष हुए। आहा..हा.. !

कहते हैं, मार्ग का फल, आहा..हा.. ! मार्ग का छोर पूर्ण आवे, वह मुक्ति। मुक्तिरूपी लक्ष्मी वरता है। तिलकपना है न ? ऐसे तिलकपना करे अर्थात् वरण किया। मुक्तिरूपी रमणी को वरता है। **इस प्रकार वास्तव में (मार्ग और मार्गफल, ऐसा) दो प्रकार का,...**

मुमुक्षु : निश्चय व्यवहार नहीं लिया, यह दो प्रकार ऐसा लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दो प्रकार है न, यही है न दो प्रकार, ऐसा कहते हैं। उपाय और फल दो है। उपाय दो प्रकार के हैं, यह कहाँ से आया ? आहा.. ! क्या हो ? जगत को पण्डित जब लूटे, तब उसे कहाँ जाना ?

यह दो प्रकार का प्ररूपण वीतरागमार्ग में **चतुर्थ ज्ञानधारी...** चार ज्ञान के धारक गणधर **(मनःपर्ययज्ञान के धारण करनेवाले) पूर्वाचार्यों ने परमवीतराग सर्वज्ञ के शासन में कथन किया है।** चार ज्ञान के धारकों ने-पूर्वाचार्यों ने, अनन्त आचार्यों ने परम

वीतराग सर्वज्ञ के शासन में, वापस ऐसा (लिखा है)। परमवीतराग सर्वज्ञ के शासन में यह कथन किया है। मार्ग और मार्गफल दो प्रकार है। मार्ग शुद्धरत्नत्रय, यह कथन पूर्वोचार्यों ने परमवीतराग सर्वज्ञ शासन में यह कथन किया है, कहते हैं। व्यवहार, वह मोक्षमार्ग का कथन आचार्य का कहा नहीं। कथन है, वह निमित्त का ज्ञान कराने को (कहा है)। गजब बात, भाई! आहा..!

पूर्वाचार्य कितने? जितने आचार्य हुए वे। परमवीतराग सर्वज्ञ के शासन में परमेश्वर वीतरागदेव जिनेन्द्रदेव के शासन में कथन किया है। यह सब गणधरों ने ऐसा कथन किया है, कहो, समझ में आया? भगवान की वाणी तो अमुक समय निकलती है न, रचना तो गणधर करते हैं। इसलिए सूत्र में ऐसे आचार्यों ने ऐसा कहा है, ऐसा कहा है। गणधरों ने इस प्रकार कहा है, क्योंकि सूत्र की रचना तो वे आचार्य करते हैं। आहा..हा..!

परमवीतराग सर्वज्ञ के शासन में कथन किया है। अनन्त आचार्यों और गणधरों ने शास्त्र में ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। निश्चय आत्मा के स्वभाव का भान, अनुभव, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है, वही मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा..! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है, ऐसा कहते हैं। छूटने का मार्ग नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! यह वीतराग कहे। मुख के सामने निवाला किसे... बापू! ऐसा नहीं, हों! तेरा स्वभाव प्रभु! मेरे जितना ही परिपूर्ण है। उसका अन्तरज्ञान करके, उसका ज्ञान करके और तुझसे तेरी श्रद्धा तू कर। उसे हम सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? वीतरागमार्ग लोगों को सुनने को मिला नहीं। विपरीत मार्ग में जाये और माने कि हम (धर्म करते हैं)। जिन्दगी जाती है, चली जाती है।

अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं। **पूर्वाचार्यों ने परमवीतराग सर्वज्ञ के शासन में...** सबको डाला, देखो! अनन्त गणधरों ने और परमवीतराग सर्वज्ञ का शासन, उसमें यह बात है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह मोक्ष का मार्ग, ऐसा अनन्त सर्वज्ञों ने और गणधरों ने नहीं कहा। है इसमें? आहा..हा..! अब यह क्या मार्ग है? जो चार ज्ञान के धनी ने वीतरागशासन में कहा है, वह क्या?

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान... भाषा तो देखो! अरिहन्त परमात्मा की श्रद्धा भी नहीं। शशीभाई! आहा..हा..! निजपरमात्मतत्त्व, अपना परमस्वरूप शुद्ध ध्रुव

अचिन्त्य, अचल अविनाशी, ऐसा भगवान आत्मा, ऐसा परमतत्त्व स्वभाव का सम्यक्श्रद्धान, उसकी सच्ची श्रद्धा, वह शुद्ध रत्नत्रय में से एक सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? '....'! देखो! क्या है, देखो। आहा..हा..! भगवान तू परिपूर्ण प्रभु है, हों! देखो न, परमात्मा लिया न? निज परमात्मा स्वयं परमस्वरूप। ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता (आदि) अनन्त शक्तियों का परमस्वरूप स्वयं आत्मा। ऐसा निज आत्मा, निज परमात्मा की सम्यक् श्रद्धा, उसे सम्यग्दर्शन और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया?

निज परमात्मतत्त्व का ज्ञान, उसके साथ लेना। निज परमात्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धान, उसके साथ निज परमात्मतत्त्व का सम्यग्ज्ञान - ऐसा लेना। निज आत्मा का ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। आहा..हा..! गजब काम है। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र को जाना-पहिचाना, वह ज्ञान नहीं, कहते हैं। वह तो परलक्ष्यी है, वह तो बन्ध का कारण है। भारी गजब बात! वीतराग का मार्ग! आहा..हा..! निज परमात्मतत्त्व का सम्यग्ज्ञान। अपना निज स्वरूप भगवान, पूर्ण ब्रह्मानन्द निज प्रभु आत्मा का ज्ञान, उस ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? वह ज्ञान मोक्ष का मार्ग है। अपने आत्मा का स्वरूप, उसका ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग है। शास्त्र का ज्ञान, परलक्ष्यी सब पठन, वह कहीं ज्ञान नहीं, वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं। आहा..हा..! कहो, समझ में आया?

निज परम आत्मा, परमस्वरूप भगवान ऐसा ज्ञायकभाव त्रिकाल, ऐसा अनन्त गुण का एकरूप स्वभाव, उसकी अन्तर में रुचि-दृष्टि का परिणमन (होवे), उसे श्रद्धा कहते हैं, उसकी रुचिसहित का अन्तर का ज्ञान (होवे), उसे ज्ञान कहते हैं और निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् अनुष्ठान उसके साथ लेना। निज परमात्मा, आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु आत्मा का अनुष्ठान-सम्यक् अनुष्ठान, वापस प्रत्येक को। सम्यक् अनुष्ठान अन्तर में आचरण में आनन्द में स्थिर होना, उसका नाम चारित्र है। यह वस्त्र बदले और नग्न हो गये, वह चारित्र नहीं; पंच महाव्रत के विकल्प हों, वह भी चारित्र नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? यह है न, लीलाधरभाई! इसमें लिखा है या नहीं? ऐ... राजूभाई! आहा..हा..!

भाई! तेरे घर की चीज़ तो यह है, इसे पहले समझ में तो लेना पड़ेगा। इसके बिना जरा भी आगे नहीं चलेगा। आहा..हा..! श्रद्धा में ऐसे ले कि मुझसे ही मेरी श्रद्धा (होगी) और मुझसे ही मेरा ज्ञान (होगा), ऐसी श्रद्धा नहीं करे तो स्वसम्मुख नहीं झुक सकेगा।

क्योंकि वस्तु का स्वभाव वह माने वैसा विपरीत नहीं है। समझ में आया?

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान, निज परमात्मतत्त्व का सम्यग्ज्ञान, निज परमात्मतत्त्व का सम्यक् अनुष्ठान। लो! यह अनुष्ठान, अनुष्ठान आचरण कहते हैं, वह कुछ नहीं। आहा..हा..! तीक्ष्ण धार जैसा लगे यह तो। आहा..हा..! कैसे पहुँचा जाये? स्वरूपचन्दभाई! है तो इसका स्वरूप, परन्तु इसे ऐसा हो गया है कि... ऐसे **निज परमात्मतत्त्व के...** परन्तु क्या स्पष्टीकरण किया है! टीका इतनी स्पष्ट की है कि व्यवहारवालों को यह रुचती नहीं है।

मुमुक्षु : इसीलिए तो नहीं मानते।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं मानते। अभी तो कहेंगे, देखो न!

शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग, परम निरपेक्ष होने से... आहा..हा..! व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। व्यवहार शुभोपयोग है, राग है, विभाव है। उससे शुद्ध उपयोग और आत्मस्वभाव होवे, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहा..हा..! कषाय की मन्दता करो, भक्ति करो, दया, दान, व्रत, पूजा (करो), उससे व्यवहार से बाद में निश्चय समझ में आयेगा। कहते हैं कि यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग—ये तीन शुद्ध कहे न? तीनों ही। शुद्धरत्नत्रयस्वरूप मार्ग परम निरपेक्ष होने से। अकेला निरपेक्ष नहीं। उसे व्यवहार के विकल्प की अपेक्षा नहीं है। जिसे देव-गुरु की, शास्त्र की श्रद्धा हो तो समकित हो, ऐसी अपेक्षा नहीं है। सुना नहीं होगा कभी ऐसा। पूरे दिन टोकरी बजाया करे और सामने श्रीमद् का फोटो रखे। जय भगवान! अपना कल्याण हो जायेगा।

मुमुक्षु : परन्तु गुरु ही कल्याण कर देते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किया। गुरु स्वयं है। गुरु कहाँ... ? कहो, समझ में आया इसमें? ऐसा मार्ग है। प्रकाशदासजी! भगवान दे देंगे, गुरु दे देंगे। वहाँ कहाँ उनके पास तू था कि वे दें। तू तो तेरे पास है।

शुद्धरत्नत्रयमार्ग परम निरपेक्ष, ऐसा कहकर व्यवहार की अपेक्षा उसे नहीं है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहा..हा..! विकल्प की अपेक्षा, राग की अपेक्षा, निमित्त की अपेक्षा

(नहीं है)। व्यवहार कहो या निमित्त कहो। शुद्धस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की दशा में राग की, निमित्त की अपेक्षारहित वह तत्त्व है। आहा..हा..! परन्तु जहाँ कहीं-कहीं व्यवहार को कारण और साधन और ऐसा कहे न... ऐ... भीखाभाई! वे तो व्यवहार के कथन हैं। उस भूमिका में ऐसा होता है, उसका निमित्त का ज्ञान कराने के लिये (कहा है)। होता है, परन्तु उससे होता है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! गजब बातें, भाई! समझ में आया?

अकेला निरपेक्ष (शब्द) प्रयोग नहीं किया, परम निरपेक्ष (कहा है)। कथनी भी पद्मप्रभमलधारिदेव की! जंगलवासी वीतरागी सिंह थे। आहा..हा..! राग पर तो हिरण को जैसे सिंह फाड़े, वैसे फाड़कर तोड़कर वीतरागता प्रगट की है। मार-फाड़ वीतरागता अन्दर जलहलती है। इस वीतरागभाव की श्रद्धा, ज्ञान में हमें देव-गुरु की, शास्त्र की श्रद्धा के विकल्प की भी आवश्यकता नहीं है। नवनीतभाई! निरपेक्ष। आहा..हा..! श्रद्धा में तो ले, पहले ज्ञान में तो ले। आहा..हा..! ऐसा निरालम्बी-पर के अवलम्बनरहित भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण धाम है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता में पर की कुछ जरा भी, जरा भी अपेक्षा नहीं है - ऐसा निरपेक्ष रत्नत्रय मार्ग, वह मोक्ष का उपाय है। वीतराग के वचन कठोर, कायर को प्रतिकूल, श्रीमद् में आता है न?

वचनामृत वीतराग के, परम शान्तरस मूल,
औषध जो भवरोग के, पर कायर को प्रतिकूल।

नपुंसक जैसे, वीर्यहीन। अरे! ऐसा मार्ग होगा? ऐसा मार्ग होगा? अरे! सुन न! वीर का मार्ग तो ऐसा होता है। अफरगामी का मार्ग ऐसा होता है। जिस मार्ग में चढ़े, वहाँ से वापस नहीं फिरते, ऐसा मार्ग होता है। पर की अपेक्षा रखे बिना का मार्ग होता है। आहा..हा..! समझ में आया?

परम निरपेक्ष होने से मोक्ष का उपाय है... पर की अपेक्षारहित है, इसलिए शुद्धरत्नत्रय मोक्ष का उपाय है। आहा..हा..! **और उस शुद्धरत्नत्रय का फल,...** पहला मार्ग कहा। **स्वात्मोपलब्धि (निज शुद्ध-आत्मा की प्राप्ति) है।** बस, आत्मा की प्राप्ति का अर्थ (यह कि) आत्मा जैसा है, ऐसी पूर्ण दशा में प्राप्ति, उसका नाम रत्नत्रय का फल है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

निश्चय से अपने परम आत्मा की श्रद्धा, वह वास्तविक श्रद्धा और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह वास्तविक श्रद्धा नहीं, इसका नाम कथंचित्। कहो, समझ में आया? वीतरागमार्ग, बापू! सूक्ष्म है, भाई! इसमें अनन्त काल में इस बात को दृष्टि में लिया नहीं। आहा..! निज परमात्मा-ऐसा आचार्य ने शब्द प्रयोग किया है न? पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि थे, पंच महाव्रतधारी दिगम्बर आत्मध्यानी अन्तर में उतरे हुए। वे कहते हैं कि निज परमात्मतत्त्व की श्रद्धा। स्वयं अखण्ड आनन्दमूर्ति पूर्ण स्वरूप है। परम आत्म अर्थात् परम ध्रुवस्वरूप पारिणामिकभाव, ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, त्रिकालभाव। आहा..हा..! उसके सन्मुख होकर, उसकी अन्तर सम्यक् दृष्टि करना, उसे व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षा नहीं है। ऐसा वह सम्यग्दर्शन भाव है। समझ में आया?

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्ज्ञान... देखो! यह आचार्य! टीका तो कितनी सरस है परन्तु लोगों को निश्चय सत्य क्या है, उसकी खबर नहीं होती, बाहर में भटका भटक करके मानो कल्याण हो जायेगा। आहा..हा..! भगवान आत्मा सर्वज्ञदेव, तीर्थंकरदेव और पूर्व आचार्य अनन्त इसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऊपर आया है न? पूर्वाचार्यों ने परम वीतराग सर्वज्ञ के शासन में यह कथन किया है। भगवान आत्मा... देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो नहीं, क्योंकि विकल्प है। राग का भाग व्यवहाररत्नत्रय तीन का शामिल आवे, वह विकल्प है, वह नहीं। एक समय की पर्याय का अंश जो विकास है, उसकी श्रद्धा भी नहीं, क्योंकि पर्याय के अंश की बुद्धि-श्रद्धा, वह तो मिथ्याश्रद्धा है, यह तत्त्व तो उसमें आया नहीं। समझ में आया? गजब!

निज परमतत्त्व का श्रद्धान और उसका ज्ञान। अपना निजस्वभाव ध्रुव, ज्ञान और आनन्द है, उसका ज्ञान। उस ज्ञान में उसे शास्त्रज्ञान की अपेक्षा की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। ए.. देवानुप्रिया! यह ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इसमें से दूसरा कुछ सरल हो, सके ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग इसका यह हो। मुँह से खाया जाये, इसका सरल, ऐसा कुछ

है ? आँख में डाला जाये या कान में डाला जाये ऐसा (कुछ है) ? ऐसा प्रश्न है इसका। आहा..हा.. ! मार्ग तो भगवान अनादि तीर्थंकर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने यह कहा है। इससे विरुद्ध कहे, वह वीतराग के मार्ग की श्रद्धा नहीं है। ऐसी बात है। जगत को सत्य सुनने को नहीं मिलता, वह कब श्रद्धा करे और कब पहिचाने और कब अनुभव करे ? भगवान ! तेरा स्वरूप तो पूर्ण है न ! निज परमात्म शब्द प्रयोग किया है। अरिहन्त तीर्थंकरदेव को परद्रव्य है, परद्रव्य की श्रद्धा, धारणा शीघ्रता से तजो – ऐसा श्रीमद् में आता है। ३१ पृष्ठ पर (आता है)। भाई ने पढ़ा है या नहीं ? सन्त की वाणी, अमृतवाणी सन्त की, उसमें आता है। परद्रव्य की श्रद्धा शीघ्रता से तजो, ऐसा आता है। भगवान कहते हैं कि मेरी श्रद्धा शीघ्रता से छोड़; तेरी श्रद्धा कर – ऐसा कहते हैं। लो ! ऐ.. स्वरूपचन्दभाई ! पुस्तक मिली है या नहीं ? नहीं इसमें ? यह मिली है या नहीं ? नहीं मिली। इसमें है, ३१ पृष्ठ पर है। देखो !

'परद्रव्य की धारकता शीघ्रता से तजो।' तीर्थंकरदेव अरिहन्त ऐसे होते हैं और उनकी ऐसी श्रद्धा होती है, यह धारकता शीघ्रता से तजो, क्योंकि यह तो विकल्प है – राग है। आहा..हा.. ! मार्ग तो मार्ग प्रभु का ! 'परद्रव्य की रमणता शीघ्रता से तजो।' पर अरिहन्त तीर्थंकरदेव का भी विकल्प और उनकी श्रद्धा, वह राग है। उनकी रमणता छोड़। आहा..हा.. ! 'परद्रव्य की ग्राहकता शीघ्रता से तजो।' भगवान निज द्रव्य त्रिकाली ज्ञायक अविनाशी स्वभावभाव का भण्डार, ऐसा परमात्मा अपना है। आहा..हा.. ! उसका ज्ञान, वह ज्ञान है और उस ज्ञान को शास्त्रज्ञान और तीर्थंकरदेव ने कही हुई वाणी का ज्ञान, उसकी भी जिसे अपेक्षा नहीं है। नवरंगभाई ! आहा..हा.. ! है ? देखो !

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान.... निज परमात्मतत्त्व का सम्यक्ज्ञान, वह सम्यक् सबको लागू करना। निज परमात्मतत्त्व का सम्यक् अनुष्ठान। चारित्र किसे कहना ? कि भगवान आनन्द अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु का जो दर्शन और ज्ञान हुआ, उसमें अन्दर लीनता, अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता (होना), उसे जैनदर्शन में चारित्र और अनुष्ठान कहा जाता है। आहा..हा.. !

यह पद्मप्रभमलधारिदेव पंच महाव्रतधारी मुनि जंगल में बसनेवाले दिगम्बर मुनि थे। यह कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा हुआ, परमात्मा का कहा हुआ, कुन्दकुन्दाचार्य के कहे हुए की यह टीका करते हैं। भाई ! तेरे मार्ग की रीति तूने सुनी नहीं, भाई ! विपरीत मार्ग में जाकर

हम मार्ग में हैं, ऐसा माना है। आहा..हा..! निज परमात्मतत्त्व का अनुष्ठान। जेठाभाई! यह अनुष्ठान कहा है। यह अनुष्ठान है। पंच महाव्रत में विकल्प-फिकल्प, वह अनुष्ठान (नहीं), वह तो राग है, जहर है। आहा..हा..! वीतराग का मार्ग सुनना कठिन पड़ता है। समझ में आया?

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान -ज्ञान-अनुष्ठानरूप शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग,... शुद्धरत्नत्रय—वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी लीनता, यह शुद्धरत्नत्रय है। इसे शुद्ध मोक्ष का मार्ग कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय बीच में विकल्प (आवे), वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है, ऐसी भगवान पुकार करते हैं। जैनशासन में यह प्रकार है। समझ में आया? वह **शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग, परम निरपेक्ष होने से...** अब इसका नीचे अपने अर्थ है न? वह शून्य, इसका नोट (पादटिप्पण) नीचे है, देखो! **शुद्धरत्नत्रय, अर्थात् निज परमात्मतत्त्व की सम्यक्श्रद्धा, उसका सम्यक्ज्ञान...** उसका ज्ञान—भगवान आत्मा का ज्ञान—आहा..हा..! **और उसका सम्यक्-आचरण,...** भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम है, उस आनन्द का आचरण, अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द में आचरण-रमना, **वह पर की तथा भेदों की लेश भी अपेक्षारहित होने से....** निमित्त की भी जिसमें अपेक्षा नहीं, भेदों की भी जिसमें अपेक्षा नहीं, गुण-गुणी के भेद और पर्यायवान तथा पर्याय के भेद की भी अपेक्षा जहाँ नहीं। आहा..हा..!

कहते हैं कि **पर की तथा भेदों की लेश भी अपेक्षा...** नहीं। किंचित् अपेक्षा नहीं। क्योंकि परमनिरपेक्ष कहा है न? आहा..हा..! कहाँ गया इसमें स्याद्वाद? ऐसे भी होता है और ऐसे भी होता है। ऐसे ही होता है, दूसरे प्रकार से नहीं होता, इसका नाम स्याद्वाद है। ऐ.. देवानुप्रिया! हाँ, करता है, क्या करे परन्तु वहाँ? आहा..हा..! अभी नहीं कहे, फिर कहेंगे, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

वह शुद्धरत्नत्रय, मोक्ष का उपाय है। बाकी दया, दान, व्रत के भाव, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव, शास्त्र का ज्ञान, वह सब अशुद्धरत्नत्रय—शुभविकल्प, राग है। आहा..हा..! जगत को सुनना कठिन पड़े। समझ में आया? पोपटभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! लोग तो ऐसा ही कहें, हों! यह सोनगढ़वालों ने ऐसा किया। परन्तु यह भगवान क्या कहते हैं, वह सुन न! सोनगढ़वालों का सोनगढ़ के पास रहा। ऐ.. पण्डितजी! नहीं समझना,

भगवान क्या कहते हैं नहीं सुनना, नहीं समझना। अपना माना हुआ कक्का घोंटना। यह वीतरागमार्ग में नहीं चलता। यह तो सर्वज्ञ जिनका शासन चलता है, परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा का शासन है। समझ में आया?

उस शुद्धरत्नत्रय का फल,.... अब क्या कहते हैं? जो मोक्ष होता है, वह उस शुद्धरत्नत्रय के कारण होता है। व्यवहाररत्नत्रय के कारण नहीं। लो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ८०वीं गाथा में क्या कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? कहाँ कहा? क्या कहा? अरिहन्त ने क्या कहा? अरिहन्त को जानकर अपने को जाने, वह मोहक्षय का (उपाय है)? और कहाँ गप्प मारे! नवनीतभाई कहते हैं, ठीक प्रश्न (निकालते हैं)।

मुमुक्षु : हाँक रखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँकते नहीं, भाई दूसरा कहते हैं। प्रचलित प्रवाह को तोड़ना, ऐसा इनका प्रश्न है, ऐसा भाई कहते थे। कहते हैं, क्या कहा? बाद में क्या कहा? 'जो जानता अरहन्त को,' इसका अर्थ क्या? यह तो पहले आ गया कि इसमें देव-गुरु, अरिहन्त परमात्मा का केवलज्ञान जगत में है, ऐसा जिसने विकल्प से निर्णय किया है, वह निर्णय छोड़कर स्वद्रव्य के आश्रय से निर्णय करे, तब सम्यक्त्व होता है। उसमें-टीका में है। समझ में आया? यह तो अधिक स्पष्ट करने को करते हैं। यह तो प्रश्न नारद है। खोटा है, ऐसा इसे नहीं, परन्तु जरा अधिक कुछ कुछ है, ऐसा कुछ बताना हो न कि मुझे ऐसा... आहा..हा..!

कहते हैं, भगवान आत्मा निज शुद्ध आनन्द का धाम अतीन्द्रिय रसकन्द के सन्मुख की अन्तर्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह एक ही मार्ग है और एक ही मार्ग से मोक्ष का कार्य होता है। दो मोक्षमार्ग है और दो मोक्षमार्ग का फल मोक्ष है, (ऐसा नहीं है)। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में आता है। भाई! निश्चय और व्यवहाररत्नत्रय दोनों से मोक्ष होता है। वह तो व्यवहार का, प्रमाण का ज्ञान कराया है। क्या हो? जगत लुटाया है। अनन्त काल में ऐसा मनुष्य देह मिला जैन में-वाड़ा में जन्म (हुआ), तथापि जैन परमेश्वर का क्या कहना है, इसकी खबर नहीं और इस खबर के बिना यह व्रत, तप और साधुओं को लेकर

बैठे, वे सब ईकाईरहित शून्य हैं। चार गति में भटकने के वे सब आचरण हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : किसी को दूध-पाक नहीं पचता हो तो फिर....

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटी चाहिए या कंकड़? अनाज चाहिए या कंकड़? वे तो कंकड़ हैं। कहो, समझ में आया या नहीं? अनाज चाहिए न? अनाज चाहिए न, अर्थात् श्रद्धा तो पक्की चाहिए न? चारित्र अन्दर निर्बल हो, ऐसा। अभी चौथे गुणस्थान में चारित्र न हो। आत्मा का ज्ञान हो, आत्मा का दर्शन हो, चारित्र न हो। पूरा मोक्षमार्ग ही वह है। आत्मा के इस सम्यग्दर्शनरहित के व्रत और तप, वे सब विपरीत मार्ग में हैं। मिथ्यात्व के मार्ग में हैं, अज्ञान के मार्ग में, संसार के मार्ग में हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

कहते हैं, **उस शुद्धरत्नत्रय का फल, शुद्ध आत्मा की पूर्ण प्राप्ति,....** शुद्ध आत्मा की (पूर्ण प्राप्ति)। है न? शुद्ध आत्म उपलब्धि। स्व आत्म-उपलब्धि है न? अर्थात् पूर्ण प्राप्ति, ऐसा। आत्मा पूर्ण दशा को प्राप्त हो, इसका नाम मोक्ष। परन्तु इस मोक्ष का कारण यह शुद्धरत्नत्रय है। कहो, समझ में आया? लो! यह गाथा पूरी हुई। परमनिरपेक्ष में बहुत वजन है। जिसे स्व का आश्रय लेकर दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसे पर के आश्रय की निमित्त की, विकल्प की बिल्कुल अपेक्षा नहीं है। निश्चय से उनकी अपेक्षा नहीं है, व्यवहार से हो, वह तो जाननेयोग्य है। समझ में आया? आहा..हा..!

अब, दूसरी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं— स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका की है। मुनि थे, दिगम्बर जंगलवासी थे। तीर्थंकर की परम्परा के पथानुगामी सच्चे मुनि थे। सच्चे मुनि थे। मात्र द्रव्यलिंग नग्नपना और पंच महाव्रत के विकल्प, वह तो द्रव्यलिंगी कहलाता है और जिसके पंच महाव्रत के विकल्प में भी ठिकाना नहीं, वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं कहलाता। समझ में आया? ये (टीकाकार मुनि) भावलिंगी सन्त थे, वे यह श्लोक बनाते हैं।

श्लोक-९

अब, दूसरी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(पृथ्वी)

क्वचिद् व्रजति कामिनीरतिसमुत्थसौख्यं जनः।
क्वचिद् द्रविणरक्षणे मतिमिमां च चक्रे पुनः।।
क्वचिज्जिनवरस्य मार्गमुपलभ्य यः पण्डितो।
निजात्मनि रतो भवेद् व्रजति मुक्तिमेतां हि सः।।९।।

(वीरछन्द)

कभी कामिनी के रति-सुख की प्राप्ति हेतु नर करें गमन।
और कभी धन की रक्षा में प्रेरित होता उनका मन॥
जो पण्डित जिनमार्ग प्राप्त कर, निज आतम में रति करें।
वास्तव में वे ही पण्डितगण, मुक्ति-वधू का वरण करें॥९॥

श्लोकार्थ :- मनुष्य, कभी कामिनी के प्रति रति से उत्पन्न होनेवाले सुख की ओर गति करता है और फिर कभी धनरक्षा की बुद्धि करता है। जो पण्डित, कभी जिनवर के मार्ग को प्राप्त करके निज आत्मा में रत हो जाते हैं, वे वास्तव में इस मुक्ति को प्राप्त होते हैं॥९॥

श्लोक-९ पर प्रवचन

क्वचिद् व्रजति कामिनीरतिसमुत्थसौख्यं जनः।
क्वचिद् द्रविणरक्षणे मतिमिमां च चक्रे पुनः।।
क्वचिज्जिनवरस्य मार्गमुपलभ्य यः पण्डितो।
निजात्मनि रतो भवेद् व्रजति मुक्तिमेतां हि सः।।९।।

श्लोकार्थ :- मनुष्य, कभी कामिनी के प्रति रति से उत्पन्न होनेवाले सुख की ओर गति करता है... अनादि का विषय-वासना में मिठास को सुख मानकर अनादि से

मिथ्यादृष्टि जीव उसमें गति करता है। ओहो..हो..! आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द होने पर भी, उस आनन्द का अनादर करके मिथ्यादृष्टि इस कामिनी के प्रति-स्त्री के प्रति, रति-क्रीड़ा में उत्पन्न होते सुख-कल्पना, राग, जहर, दुःख... उस सुख को व्यवहार से लोग कहते हैं, इसलिए कहा है। उसकी ओर गति करते हैं। अरे रे! जो चैतन्य को लूटता है। यहाँ तो धर्म, अर्थ, काम तीन है न? उनमें से काम और अर्थ दो की व्याख्या लेना और दूसरे में मोक्ष का साधन लेना है।

मनुष्य, कभी कामिनी के प्रति रति से उत्पन्न होनेवाले सुख की ओर गति करता है... परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं कि स्त्री का विषय छोड़ा, इसलिए इसे धर्म हो गया, ऐसा नहीं है। शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करे, (पूरी) जिन्दगी बालब्रह्मचारी (रहे), तथापि इसकी दृष्टि अभी पर के ऊपर है। शरीर में ब्रह्मचर्य पालना, देह से ब्रह्मचर्य पालना, यह अभी शुभविकल्प और राग है, धर्म नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

इस रति को भी, इस राग के भाव को छोड़कर आत्मा के आनन्द का अन्तरब्रह्मानन्द, ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का ब्रह्मचर्य - अन्दर रमे, उसे ब्रह्मचर्य कहने में आता है। समझ में आया? स्त्री छोड़ी और ब्रह्मचर्य पालते हैं, इसलिए हम धर्मी हैं... भगवान इनकार करते हैं। आहा..हा..! क्योंकि अन्दर में जो राग उठता है, कि इसे सेवन नहीं करूँ, भोगूँ नहीं—ऐसा विकल्प, उस विकल्प को भी अपना मानता है और उसके साथ व्यभिचार-एकत्व करता है, वह अब्रह्मचारी है। आहा..हा..! समझ में आया? इसलिए कोई कहे कि कामिनी के प्रति का सुख छोड़ते हैं तो अब तो हमारे धर्म होगा न? परन्तु वास्तव में तो जो रागभाव है, उसके साथ एकत्वबुद्धि है, वही व्यभिचार और अब्रह्मचर्य है। आहा..! भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप को पर में कहीं सुखबुद्धि से कल्पना से मानना, वह सब मिथ्यात्वभाव है।

और फिर कभी धनरक्षा की बुद्धि करता है। यह अर्थ लिया, अर्थ। पहला काम लिया था। लक्ष्मी की रक्षा की बुद्धि करता है। **चक्रे** शब्द है न? भाई! इसका अर्थ 'करता है।' चक्रे अर्थात् करता है। अनेकान्त चक्र में से कहाँ से निकाला? ....

मुमुक्षु : किसमें से निकाला?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ 'क्रे' है न? करता है... चक्र बनता होगा? परन्तु च कहाँ से

आया ? मुझे तो शंका पड़ी। चक्रे में च शब्द है न ? चक्रे बनता होगा, परन्तु 'च' कहाँ से आया ? संस्कृत के प्रोफेसर हैं। **चक्रे** है न। करता है।

कभी लक्ष्मी की रक्षा करता है। इसका रूप लिया न ! मनुष्य का रूप। आहा..हा.. ! कभी कामिनी के प्रति प्रेम से भूल गया है, कभी लक्ष्मी के प्रेम में, रक्षा में रह गया, परन्तु आत्मा की रक्षा करने में कभी आया नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. !

जो पण्डित, कभी जिनवर के मार्ग को प्राप्त करके... आहा..हा.. ! पण्डित तो उसे कहते हैं, धर्मी और ज्ञानी तो उसे कहते हैं। सब बाहर के चाहे जितने शास्त्र और संस्कृत पढ़े हुए हों, परन्तु पण्डित तो **कभी जिनवर के मार्ग को प्राप्त करके...** वीतराग परमेश्वर ने जो अन्तर का मार्ग निजानन्द निज परमात्मस्वरूप का भान करके श्रद्धा करना, ऐसा जो जिनवर का मार्ग पाकर। अब देखो ! क्या पाकर ? **निज आत्मा में रत हो जाते हैं,...** देखो ! यह जिनवर का मार्ग।

वीतराग तीर्थंकरदेव परमेश्वर केवली अनन्त परमात्मा हो गये, वर्तमान महाविदेह में सीमन्धर भगवान विराजते हैं, लाखों केवली विराजते हैं। अनन्त हुए, अनन्त होंगे। संख्यात वर्तमान मनुष्यदेह में वर्तते हैं। उन सब भगवन्तों ने मार्ग कहा। कौन सा ? निज आत्मा में रत हो। परद्रव्य—देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार को मानना, वह तो राग है, कहते हैं। भीखाभाई ! भारी कठिन काम, भाई ! स्त्री के सन्मुख लक्ष्य जाये तो अशुभराग होगा; देव की ओर लक्ष्य जाये तो शुभ होगा। हैं तो दोनों राग। अपने सेठ की ओर लक्ष्य जाये तो पापभाव होगा; गुरु की ओर लक्ष्य जाये तो पुण्यभाव होगा, राग होगा। हैं तो दोनों राग।

यहाँ तो भगवान का मार्ग यह कहा है, निजस्वरूप आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' निजानन्द भगवान... धीरज की बातें हैं, भाई ! यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा शरीर, वाणी की क्रिया से तो भिन्न; पापभाव से हिंसा, झूठ, चोरी से भिन्न; दया, दान, व्रत, भक्ति भगवान की श्रद्धा आदि राग से भी भिन्न है। आहा..हा.. ! '**वचनामृत वीतराग के परम शांतरस मूल, औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल...**' सुनते हुए (ऐसा लगे)। अर..र.. ! ऐसा मार्ग ? ऐसा वीतरागमार्ग होगा ? ऐसा ? कायर का तो कलेजा काँप उठे, ऐसा मार्ग है। पण्डितजी ! मार्ग तो ऐसा है भगवान, हों ! भले दुनिया न माने और दुनिया इसका विरोध करे, परन्तु मार्ग तो

मार्ग है। मार्ग में कोई दो मत होंगे नहीं। तीन काल में सत्यमार्ग के दो पन्थ नहीं होंगे। आहा..हा..! पण्डित इसे कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदज्ञान करे, वह पण्डित है। व्यवहाररत्नत्रय से भिन्न पड़कर अपने स्वरूप का अनुभव करे, वह पण्डित है। नहीं तो पण्डिय.. पण्डिय.. पण्डिय.. आया है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में। हे पाण्डे.. पाण्डे.. पाण्डे.. छिलके कूटता है, छिलके कूटे हैं। आहा..हा..! बापू! तुझे कण कूटना आया नहीं, भाई! दुनिया चाहे जो कहे परन्तु वस्तु का मार्ग दुनिया से कोई अलग है। जिनवर के मार्ग में तीर्थंकरदेव जैनशासन में (कहते हैं कि) निज आत्मा में रत होना, वह धर्म है। आहा..हा.! है अन्दर? निज.. निज.. शब्द प्रयोग किया है। इसलिए कोई और पर भगवान न समझ ले। वे कहे भगवान की भक्ति की धुन लगाओ, भगवान की भक्ति की धुन.. धुन.. लगावे, वह तो राग है। भक्ति में बराबर एकाकार हो जाना, उसमें निर्जरा होती है। धूल भी नहीं होती, सुन न! पुण्यबन्ध होता है और उसमें कर्ताबुद्धि एकाकार होवे तो मिथ्यात्व होता है। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री वीतराग। समझ में आया?

जिनवर के मार्ग को प्राप्त करके... अर्थात् जिनवर का मार्ग, वह अनादि का है कि **निज आत्मा में रत हो जाते हैं,...** इतना भगवान अन्दर अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, वह ज्ञान का सागर आत्मा है। अपना स्वरूप जो शुद्ध चिदानन्दध्रुव है, उस निज आत्मा में रत हो, उस सन्मुख एकाग्र हो, उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहते हैं। जिनवर के मार्ग में उसे मार्ग कहा है। समझ में आया? **वे वास्तव में इस मुक्ति को प्राप्त होते हैं।** लो! क्या कहा यह? दोनों कह दिया कि निज आत्मा में रत होते हैं, वही मोक्षमार्ग और वही मुक्ति को पाते हैं। समझ में आया? शरीर, वाणी, मन भिन्न, देव-गुरु-शास्त्र भिन्न, स्त्री-परिवार भिन्न, सम्मेदशिखर और शत्रुंजय भिन्न। उन पर लक्ष्य जायेगा तो इसे शुभभाव होगा, धर्म नहीं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। इसलिए **निज आत्मा में रत हो जाते हैं,...** देखो! मुनिराज कहते हैं। सन्त आत्मज्ञानी धर्मात्मा भावलिंगी पद्मप्रभमलधारिदेव (कहते हैं)। भगवान आत्मा, जिसमें पुण्य-पाप के विकल्प की भी गन्ध नहीं, जिसमें एक समय की प्रवर्तित व्यक्त पर्याय का प्रवेश नहीं। मगनभाई! आहा..हा..!

स्वरूप में परद्रव्य का तो प्रवेश नहीं; दया, दान के विकल्प, भक्ति आदि का भी प्रवेश नहीं, परन्तु वर्तमान ज्ञान का अंश पर्यायरूप से प्रगट जो अंश है, वह भी ध्रुव नित्य भगवान स्वभाव में उसका प्रवेश नहीं। ऐसे निज आत्मस्वरूप जो त्रिकाली जीवद्रव्य है, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा लीन होना, उसे यहाँ धर्म और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहा..हा..! फिर यह कहते हैं, यह तो निश्चय है, निश्चय... परन्तु व्यवहार? निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार अर्थात् खोटा। व्यवहार तो दोष है, अपवाद है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : जिसने प्रथम भूमिका में अपना पैर रखा है, उसे.....

पूज्य गुरुदेवश्री : रखा है उसे अर्थात् क्या? ऐसी ज्ञान की समझ होती है, वह अन्दर निमित्तरूप से होती है इतना, परन्तु उसे छोड़कर स्थिर हो, तब उसमें कुछ है नहीं, ऐसा इसका अर्थ है। सीढ़ी पर पैर रखा है, वह छोड़ना या रखना? यह तो जानकर अधिक पूछता है, हों! हमें आता है, ऐसा तो कहना होवे न, खबर तो पड़े न लोगों को। यहाँ तो पन्द्रह वर्ष रहे। यह तो अब सुविधा और शरीर के लिये बाहर घूमते हैं। रोटी-बोटी की सुविधा यहाँ ठीक न हो, वहाँ ठीक हो। घर का मकान है और किराये का पैसा अच्छा आता है, खाये तो भी कम पड़े, ऐसा नहीं, इतने पैसे आते हैं। बस, फिर वहाँ भटके। भाई तो कल कहते थे, नवनीतभाई कहते थे, तुम्हें कहते थे। आहा..हा..! मार्ग तो प्रभु ऐसा है, भाई! कोई व्यक्तिगत की यह बात नहीं है। ओहो..हो..!

वे वास्तव में इस मुक्ति को प्राप्त होते हैं। ऐसा शब्द है न? जो निज भगवान आत्मा में श्रद्धा, ज्ञान और लीनता / रमणता निर्विकल्प करता है, वही जीव मुक्ति को पाता है। वह वास्तव में इस मुक्ति को पाता है, आहा..! दूसरा कोई नहीं पाता। कल्पना माने, माने कि यह हमारे मोक्ष होगा। यह व्रत पाले और तप करें और अपवास करें, धर्म / मुक्ति होगी, परन्तु आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो। अनन्त बार पंच महाव्रत पालन किये, नग्नपना लिया, ब्रह्मचर्य पालन किया, यम-नियम पालन किये, वह तो पुण्य था, राग की क्रिया (थी), वह कहीं धर्म की क्रिया नहीं थी। आहा..हा..! भारी कठिन बात। निज परमात्मा में रत हो, वह वास्तव में इस मुक्ति को प्राप्त करता है।

निजात्मनि रतो भवेद् व्रजति मुक्तिमेतां हि सः। कहो, जेठाभाई! ये दो गाथायें हुईं। अब भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तीसरी गाथा (कहते हैं।)

गाथा-३

णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं।
विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं।।३।।

नियमेन च यत्कार्यं स नियमो ज्ञानदर्शनचारित्रम्।
विपरीतपरिहारार्थं भणितं खलु सारमिति वचनम्।।३।।

अत्र नियमशब्दस्य सारत्वप्रतिपादनद्वारेण स्वभावरत्नत्रयस्वरूपमुक्तम्।

यः सहजपरमपारिणामिकभावस्थितः स्वभावानन्तचतुष्टयात्मकः शुद्धज्ञानचेतनापरिणामः स नियमः। नियमेन च निश्चयेन यत्कार्यं प्रयोजनस्वरूपं ज्ञानदर्शनचारित्रम्।

ज्ञानं तावत् तेषु त्रिषु परद्रव्यनिरवलम्बत्वेन निःशेषतोऽन्तर्मुखयोगशक्तेः सकाशात् निजपरम-तत्त्वपरिज्ञानमुपादेयं भवति।

दर्शनमपि भगवत्परमात्मसुखाभिलाषिणो जीवस्य शुद्धान्तस्तत्त्वविलासजन्मभूमिस्थान-निजशुद्धजीवास्तिकायसमुपजनितपरमश्रद्धानमेव भवति।

चारित्रमपि निश्चयज्ञानदर्शनात्मककारणपरमात्मनि अविचलस्थितिरेव।

अस्य तु नियमशब्दस्य निर्वाणकारणस्य विपरीतपरिहारार्थत्वेन सारमिति भणितं भवति।

जो नियम से कर्तव्य दर्शन-ज्ञान-व्रत यह नियम है।
यह सार पद विपरीत के परिहार हित परिकथित है॥३॥

अन्वयार्थ :—[सः नियमः] नियम, अर्थात् [नियमेन च] नियम से (निश्चित) [यत् कार्यं] जो करनेयोग्य हो वह, अर्थात् [ज्ञानदर्शनचारित्रम्] ज्ञान-दर्शन-चारित्र। [विपरीतपरिहारार्थं] विपरीत के परिहार हेतु से (ज्ञान-दर्शन-चारित्र से विरुद्धभावों का त्याग करने के लिए) [खलु] वास्तव में [सारम् इति वचनम्] 'सार' ऐसा वचन [भणितम्] कहा है।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में), 'नियम' शब्द को 'सार' शब्द क्यों लगाया है, उसके प्रतिपादन द्वारा स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहा है।

जो सहज परम-पारिणामिकभाव[१] से स्थित स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक शुद्धज्ञानचेतना -परिणाम[२], सो नियम[३] (कारणनियम) है। नियम (कार्यनियम), अर्थात् निश्चय से (निश्चित) जो करनेयोग्य-प्रयोजनस्वरूप हो वह, अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र। इन तीनों में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है — (१) परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना नि:शेषरूप से अन्तर्मुख योगशक्ति में उपादेय (उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके ग्रहण करनेयोग्य) — ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान (जानना) सो ज्ञान है। (२) भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी जीव को शुद्ध अन्त:तत्व के विलास[४] का जन्मभूमिस्थान जो निज शुद्ध जीवास्तिकाय, उससे उत्पन्न होनेवाला जो परम श्रद्धान, वही दर्शन है। (३) निश्चयज्ञानदर्शनात्मक कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति (निश्चलरूप से लीन रहना) ही चारित्र है। यह ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम निर्वाण का कारण[५] है। उस 'नियम' शब्द को विपरीत[६] के परिहार हेतु 'सार' शब्द जोड़ा गया है।

---

१. इस परम-पारिणामिकभाव में 'पारिणामिक' शब्द होने पर भी वह, उत्पादव्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है तथा पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है; यह परम-पारिणामिकभाव तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है और द्रव्यार्थिकनय का विषय है। (विशेष के लिए हिन्दी समयसार, गाथा ३२०, श्री जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका और बृहद्-द्रव्यसंग्रह, गाथा १३ की टीका देखो।)

२. इस शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम में 'परिणाम' शब्द होने पर भी वह, उत्पाद-व्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है और पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है; यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है और द्रव्यार्थिकनय का विषय है।

३. यह नियम, सो कारणनियम है क्योंकि वह सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूप कार्यनियम का कारण है। (कारणनियम के आश्रय से कार्यनियम प्रगट होता है।)

४. विलास=क्रीड़ा, आनन्द, मौज।

५. कारण जैसा ही कार्य होता है, इसलिए स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास ही वास्तव में अनन्त काल तक स्वरूप में स्थिर रह जाने का उपाय है।

६. विपरीत=विरुद्ध। (व्यवहारत्नत्रयरूप विकल्पों को-पराश्रितभावों को छोड़कर, मात्र निर्विकल्प ज्ञानदर्शनचारित्र का ही-शुद्धरत्नत्रय का ही-स्वीकार करने हेतु 'नियम' के साथ 'सार' शब्द जोड़ा है।

७. अनुत्तम=जिससे उत्तम कोई दूसरा नहीं है - ऐसा सर्वोत्तम, सर्व श्रेष्ठ।

गाथा-३ पर प्रवचन

अब, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव (की) तीसरी गाथा—

णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं।
विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं।।३।।

नीचे हरिगीत—

जो नियम से कर्तव्य दर्शन-ज्ञान-व्रत यह नियम है।
यह सार पद विपरीत के परिहार हित परिकथित है॥३॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के शब्द। नीचे उनका हरिगीत था, अपने पण्डितजी का बनाया हुआ, शब्दार्थ - शब्द प्रमाण (अर्थ किया है।) अब तीसरी गाथा का अन्वयार्थ लेते हैं। **नियम, अर्थात् नियम से (निश्चित) जो करनेयोग्य हो वह,...** नियम अर्थात् निश्चय से करनेयोग्य हो वह। **अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र।** लो! यह नियम है। आत्मा के स्वरूप का-शुद्ध आनन्द का-अनुभव, उसकी प्रतीति और उसकी लीनता, यह नियम है और यह निश्चय से करनेयोग्य है। यह करने का आया, ऐई! देवानुप्रिया! कल कहता था न? यह करना आया (नहीं)। यह करना आया, देखो!

णियमेण य जं कज्जं नियम से करनेयोग्य हो तो भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु का अन्तर में ज्ञान, अन्तर्दृष्टि और अन्तरलीनता, वह निश्चय से करनेयोग्य है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह करनेयोग्य नहीं। आ जाता है, उसे जाननेयोग्य है। समझ में आया? आहा..हा..! गजब काम। ज्ञान, दर्शन और चारित्र, वह नियम है। देखो! नियम उसे कहते हैं कि जो नियम से करनेयोग्य हो, उसे नियम कहते हैं; और वह नियम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निज आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं।

विपरीत के परिहार हेतु से (ज्ञान-दर्शन-चारित्र से विरुद्धभावों का त्याग करने के लिए).... व्यवहार के त्याग (के लिये)। व्यवहाररत्नत्रय विकल्प है, दुःखरूप है, बन्धरूप है। उसके **(त्याग करने के लिए) वास्तव में 'सार' ऐसा वचन कहा है।**

नियमसार। इस शास्त्र का नाम नियमसार है। कुन्दकुन्दाचार्यकृत। नियम अर्थात् निश्चय से करनेयोग्य, ऐसा आत्मा का परमानन्द स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव, वह निश्चय से निर्विकल्प दशा करनेयोग्य है, लो! करनेयोग्य तो यह आया। क्या करना? यह करना।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह करने से सुखी; विपरीत करने से दु:खी। कहो, समझ में आया? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य के सीधे वचन सादा, सरल (वचन हैं)। पंच महाव्रतधारी, जंगल में बसनेवाले, आत्मध्यानी भावलिंगी सन्त कहते हैं कि नियम से जीव को करनेयोग्य हो तो वह नियम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। तथा उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में व्यवहार के परिहार के लिये नियम के साथ सार कहा गया है। आहा..हा..! समझ में आया? नियमसार शब्द है न?

मुमुक्षु : समयसार में.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है। समयसार अर्थात् द्रव्य, भावकर्म, नोकर्मरहित। समय अर्थात् आत्मा। कैसा? जिसमें जड़कर्म, नोकर्म शरीर और पुण्य-पाप के भावकर्म, इनसे रहित, उसका नाम समयसार है। यह मोक्षमार्ग (कहा)। नियमसार, यह तो पर्याय की बात है, वह द्रव्य की बात थी। समझ में आया?

नियमसार, मोक्षमार्ग वह पर्याय है। क्या? मोक्षमार्ग पर्याय है, शुद्धपर्याय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा की शुद्ध पर्याय-अवस्था है। द्रव्य त्रिकाली शुद्ध है, वस्तु त्रिकाली शुद्ध ध्रुव है भगवान। उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प शुद्ध पर्याय है, वह पर्याय मोक्ष का कारण है। मोक्ष भी पर्याय है। सार ऐसा, विपरीतता के त्याग के लिये कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि जोड़ा हुआ शब्द है। आहा..हा..! कितनी बात की! बहुत सरस।

टीका :— यहाँ (इस गाथा में), 'नियम' शब्द को 'सार' शब्द क्यों लगाया है, उसके प्रतिपादन द्वारा स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहा है। देखो! उसमें निश्चय कहा था, निरपेक्ष। स्वभावरत्नत्रय, ऐसा कहकर दो भाग पाड़ते हैं। आत्मा अखण्ड आनन्द, ध्रुव शुद्ध है। उसके स्वभाव में से प्रगट हुई श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति / चारित्र, उस निर्विकल्प वीतरागीदशा को यहाँ स्वभावरत्नत्रय कहा गया है। जो आत्मा की वीतरागी पर्याय है। स्वभावरत्नत्रय का अर्थ हुआ कि जो बाह्य का व्यवहाररत्नत्रय है, वह विभावरत्नत्रय

है। क्या पण्डितजी! आहा..हा..! गजब काम, भाई! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, विभाव श्रद्धा है। शास्त्र का ज्ञान, विभावज्ञान है और पंच महाव्रत का पालन, वह विभाव / रागभाव है। विभावभाव है; वह स्वभावभाव नहीं। देखो! यह कहते हैं न? देखो!

'नियम' शब्द को 'सार' शब्द क्यों लगाया है, उसके प्रतिपादन द्वारा स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहा है। व्यवहाररत्नत्रय के अभाव द्वारा शुद्ध रत्नत्रय स्वभाव का स्वरूप यहाँ कहा है। इसका अभाव करने को। गजब बात, भाई! व्यवहार के ग्रन्थों में ऐसी बातें आवें न कि लोग वह सुनकर उलझ जाते हैं। व्यवहावर के ग्रन्थ में आवे कि ऐसा करना, ऐसा करना ऐसा आवे, लो! व्यवहारनय अन्यथा कथन करता है। जैसा वस्तु का स्वरूप है, उससे विपरीत (कथन) करता है। समझ में आया?

जो सहज परम-पारिणामिकभाव से स्थित स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम, सो नियम (कारणनियम) है। जरा सूक्ष्म बात है। परमपारिणामिक भाव से, यह त्रिकाल। परमपारिणामिक सहज त्रिकालभाव। एक समय की वर्तमान पर्याय के अतिरिक्त का स्वाभाविक परमपारिणामिक अर्थात् जिसे कर्म के निमित्त की सद्भाव की अपेक्षा या अभाव की अपेक्षा रहित वह चीज़ है, ऐसा परमपारिणामिक भाव से स्थित अन्तरस्वरूप का, **स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक...** अन्तरस्वरूप ध्रुव भगवान आत्मा में अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, यह अन्दर ध्रुव में स्थित है। अरे! यह क्या? परमस्वभावभाव में ये चार बोल स्थित-ध्रुव हैं। समझ में आया?

वह **शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम,...** ऐसा जो त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम, वह नियम है। त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना, त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना - ध्रुव, उसे यहाँ नियम—कारणरूप नियम कहा गया है। मोक्ष का मार्ग तो कार्य नियम है न, यह? उसका कारण यह त्रिकाली वस्तु है, ऐसा सिद्ध करना है। आहा..हा..! अर्थ है न नीचे।

इस परम-पारिणामिकभाव में 'पारिणामिक' शब्द होने पर भी वह, उत्पादव्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है.... मोक्ष का मार्ग है और सिद्धपद है, वह तो उत्पन्न होता है और संसारपर्याय का नाश होता है। अथवा निश्चयमोक्षमार्ग जो रत्नत्रय निश्चय है, वीतरागीदशा है, उस पर्याय का भी नाश होता है और मोक्ष की पर्याय

उत्पन्न होती है। वे उत्पाद-व्यय इस पारिणामिकभाव में नहीं हैं। ये उत्पाद-व्यय जो पर्याय / अवस्था / दशा है, वह तो एक समय की दशा में उत्पाद-व्यय है, त्रिकाली ध्रुव में उत्पाद-व्यय है नहीं। आहा.हा.. ! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् - आता है न ? पूरा द्रव्य— प्रमाण के विषय का द्रव्य। यहाँ तो निश्चयनय के विषय का द्रव्य। जो उत्पाद-व्यय का अंश है, वह तो व्यवहार है; त्रिकाली ध्रुव, वह निश्चय है। अभी तो समझना कठिन। आहा..हा.. ! बाहर की बातों में ऐसा रचपच गया है कि उसमें अन्तर की सत्य बातें सुनने का भी अवसर नहीं रहा। यह मार्ग नहीं, ऐसा (कहते हैं)। यह तो निश्चय एकान्त है, ऐसा करके निकाल दिया। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

आचार्य कहते हैं, पद्मप्रभमलधारिदेव टीका / अर्थ करते हैं। नियम है न ? मोक्ष का मार्ग, उसमें से निश्चय नियम निकाला। मोक्ष का मार्ग नियम कहा न ? निर्विकल्प वीतरागीदशा, वह मोक्ष का मार्ग है। वह तो पर्याय है। तब यहाँ द्रव्य को नियमरूप से कारण निकाला (कहा)। समझ में आया ? शब्द तो शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम शब्द पड़ा है, शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम। किन्तु वह परिणाम उत्पाद-व्ययवाला नहीं। राग की उत्पत्ति हो और नाश हो, वह अलग वस्तु है। सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति हो और वह सम्यग्ज्ञान विशेष उत्पन्न हो और पहले का नाश हो, वह अलग वस्तु है। यह उत्पादव्ययरहित त्रिकाली ध्रुव, उसे भी शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम कहा गया है। गजब बात है, भाई ! समझ में आया ? यह क्या होगा ऐसा मार्ग ?

पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करते हैं, देखो न ! वह नियम है। **उत्पादव्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है तथा पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है;...** यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम, वह वर्तमान पर्यायनय का विषय नहीं है, वह त्रिकाली ध्रुव द्रव्यार्थिकनय का विषय है। यह क्या विषय है, यह तो आश्चर्यकारी लगे। प्रचलित विषय नहीं न, अभी यह धर्म का विषय नहीं चलता। बाहर की क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति जो अधर्म और राग, उसे धर्म मानकर लोग प्रवृत्ति कर रहे हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : देशनालब्धि कही न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : देशनालब्धि कही, इसलिए क्या ? इसलिए ऐसा कि समझने में गुरु का निमित्त चाहिए न, ऐसा कहते हैं, परन्तु उससे पहले यहाँ सुन लिया है न पन्द्रह

वर्ष ? देखा ! यह क्या कहा ?.... क्या कहलाता है ? झरिया, झरिया में देशनालब्धि मिलती होगी, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो सुनी हुई बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसमें पन्द्रह वर्ष पहले सुना नहीं ? ऐसी खबर नहीं ? यह नहीं कहते ?

यहाँ तो अभी एक नियम को सिद्ध करना है, उस पुस्तक का नाम नियमसार है। ध्यान रखना ! अब नियम अर्थात् निश्चय से करनेयोग्य आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति। श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र अर्थात् अन्दर वस्तु के स्वरूप में रमना, श्रद्धा, ज्ञान (करना), वह नियम; और सार अर्थात् व्यवहार के अभाव के लिये (सार) शब्द कहा है। अब इस नियम को सिद्ध करने को, यह तो पर्याय का नियम कहा। अब, यह पर्याय का नियम कहाँ से प्रगट होता है ? त्रिकाली द्रव्य नियम है, उसमें से प्रगट होता है। समझ में आया ? पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका ऐसी है। साधारण लोग इनकार करते हैं, ऐसी टीका तो... आहा..हा..!

मुमुक्षु : जो सीधा था, वह गड़बड़वाला कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्लिष्ट किया, लोग ऐसा कहते हैं। भाई ! तुम्हें खबर नहीं, क्योंकि जहाँ मूल पाठ में ही निज परमात्मा की श्रद्धा, ऐसा जो आता है, इसलिए कहते हैं कि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सच्चा निश्चय, वह नियम है और वह करनेयोग्य कहा। अब यह तो पर्याय का नियम कहा परन्तु नियम का कोई कारण त्रिकाली चीज़ है या नहीं ? तो कहते हैं, त्रिकाली अन्दर में शुद्धज्ञानचेतनापरिणामरूपी भाव जो त्रिकाली ध्रुव है, उसमें उत्पाद-व्ययपरिणाम नहीं है। यह मोक्ष के मार्ग के परिणाम प्रगट हुए, वे भी उसमें नहीं हैं। स्वरूपचन्दभाई !

मुमुक्षु : मूल में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल में कहाँ है, वह तो ध्रुव है। उसे निश्चयनियम कहा जाता है। परमनियम अर्थात् त्रिकाली नियम। समझ में आया ?

यह परम-पारिणामिकभाव तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है... देखो ! जो मोक्ष

का मार्ग प्रगट होता है, वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी श्रद्धा अर्थात् विकल्परहित आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा, आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान, आत्मा का चारित्र, वह पर्यायनय का विषय है और यह जो शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम कहे, वे द्रव्यार्थिकनय का विषय है। वह उत्पादव्ययनिरपेक्ष एकरूप त्रिकाल है। पर्याय है, वीतरागी पर्याय, वह निश्चय से करनेयोग्य कही परन्तु वह तो पर्याय है, वस्तु है वह तो है ही, उसे करनेयोग्य या करने-फरने का कुछ है नहीं। समझ में आया?

और द्रव्यार्थिकनय का विषय है। देखो! कौन? यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम। कौन? जो परम स्वभाविक में स्थित, ऐसा स्वभाव अनन्त चतुष्टयात्मक शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम। गजब! यह तो वस्तु त्रिकाली ध्रुव की दृष्टि करने का वह विषय है। यहाँ तो व्यवहार मोक्षमार्ग, वह तो मोक्षमार्ग है नहीं क्योंकि विकल्प और राग है। परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग एक समय की पर्याय है, वह वर्तमान पर्याय व्यवहारनय का विषय है, भाई! लो! ओहो..हो..! वह व्यवहार जो व्यवहाररत्नत्रय, वह व्यवहारनय का विषय तो यहाँ है ही नहीं, उसकी बात ही नहीं। मात्र भगवान आत्मा निजपरमात्मस्वरूप जो त्रिकाल है, उसकी अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागीदशा हो, वह भी पर्यायनय का विषय है, व्यवहारनय का विषय है। देखो! यह व्यवहारनय। ए... चन्दुभाई! निश्चयमोक्षमार्ग है, वह व्यवहारनय का विषय है। सद्भूतव्यवहार है न! आहा..हा..! अब वह कहीं तेरे विकल्प का व्यवहार तो कहीं रह गया। देह की क्रिया, वह तो जड़ की क्रिया, वह तो आत्मा में कहाँ थी! समझ में आया?

यहाँ पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि सन्त दिगम्बर, जंगलवासी आत्मज्ञानी-ध्यानी, मोक्षमार्ग में थे। वे कहते हैं कि भाई! यह कुन्दकुन्दाचार्य ने नियमसार कहा अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि नियम अर्थात् क्या? निश्चय से आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय करनेयोग्य है, उसे नियम कहते हैं और सार अर्थात् उसमें विकल्प का अभाव, व्यवहार का अभाव सूचित करने के लिये सार शब्द कहा है।

अब उस नियमसार के भाव में से इन्होंने निकाला कि वह नियमसार तो पर्यायनय का विषय नियम है, उसमें उत्पाद-व्ययवाली दशा हुई वह तो। ध्रुव त्रिकाली वस्तु है वह? ओहो..हो..! मोक्षमार्ग व्यवहारनय का विषय-पर्यायार्थिकनय का विषय कहा न? यह ध्रुव

पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है। आहा..हा..! पहले तो अभी कान में पड़ने पर अटपटा जैसा लगे। आहा..हा..! जैन की सच्ची कथनी ही घिस गयी और मार्ग रह गया ऊपर का थोथा (छिलका)। आहा..हा..! ऊपर है यह। उसमें लिखा है न थोथा। रवजीभाई ने लिखा है। यह कान में सत्य सुने, वह कान, बाकी कोड़ा। यह सिर सच्चा समझे और हाँ करे, वह सिर बाकी थोथा, सिर नहीं तो थोथा। ऐसा उसमें आत्मधर्म में कुछ आया है। कहीं पढ़ा है।

(विशेष के लिए हिन्दी समयसार, गाथा ३२०, श्री जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका देखो।) ३२० गाथा न? अपने व्याख्यान हो गये हैं। बहुत सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की टीका अलौकिक बात है। जिसके त्रिकाली परम स्वभाव में पर्याय की गन्ध नहीं, पर्याय जिसमें स्पर्शती नहीं। आहा..हा..! गजब वस्तु, भाई! मोक्ष का मार्ग वह व्यवहार है, सच्चा मोक्षमार्ग, (वह भी व्यवहार है), हों! वह विकल्प (शुभभाव) वह तो नहीं, जिसमें तो है ही नहीं, उसकी बात की। यह तो सच्चा मोक्षमार्ग-आत्मा के आनन्द का अनुभव और उसका ज्ञान और श्रद्धा, वह भी पर्याय है; इसलिए व्यवहारनय का विषय है, परन्तु यह जो शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम है, त्रिकाली वह निश्चयनय का विषय है। इसकी विशेष व्याख्या आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५, गाथा-३, बुधवार, फाल्गुन शुक्ल ६, दिनांक ०३-०३-१९७१

नियमसार जीव अधिकार, तीसरी गाथा। निमयसार की व्याख्या करते हैं। नियमसार अर्थात् क्या?

टीका : — यहाँ (इस गाथा में), 'नियम' शब्द को 'सार' शब्द क्यों लगाया है,... नियमसार है न? नियमसार—तो नियम को सार शब्द क्यों लगाया है, **उसके प्रतिपादन द्वारा...** सार (शब्द) नियम को क्यों लगाया, उसके कथन द्वारा **स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहा है।** स्वभावरत्नत्रय अर्थात् क्या? त्रिकाल द्रव्यस्वभाव वह?

मुमुक्षु : आपने कल समझाया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह कहते थे, ये सब समझे नहीं थे। इसे अन्दर...

मुमुक्षु : यह पर्याय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर्याय की बात है। समझ में आया या नहीं? कहाँ गये? प्रकाशदास! यह सब सुनना, समझने जैसा है। अध्धर का अध्धर शब्द पड़े, ऐसा नहीं चलता।

यह स्वभाव... नियमसार, यह तो पर्याय की व्याख्या है। नियमसार, वह मोक्ष का मार्ग पर्यायरूप, उसे सार क्यों लगाना पड़ा, उसका यह कथन है। स्वभावरत्नत्रय अर्थात् त्रिकाली स्वभाव नहीं। उसमें तो रत्नत्रय कहाँ था? वहाँ तो अनन्त चतुष्टय पड़ा है। पर्याय में-अवस्था में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प दशा वीतरागी पर्याय हो, उसे यहाँ स्वभावरत्नत्रय कहा जाता है।

अब, इस नियमसार को कहने से पहले इस नियम का कारण कौन है? समझ में आया? नियमसार अर्थात् नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। आत्मा सुख-चैतन्यवस्तु... इसका स्पष्टीकरण अन्दर करेंगे। परद्रव्य का आश्रय छोड़कर, स्वद्रव्य के अन्तर्मुख से जो सम्यग्दर्शन की प्रतीति होना, वह दर्शन। आत्मा के आश्रय से अन्दर ज्ञान होना, वह ज्ञान और उसमें लीनता होना वह चारित्र है। यह वर्तमान मोक्षमार्ग की (दशा) हुई। उसे सार क्यों लागू किया, उसके लिये कथन है। उस व्यवहार का इसमें परिहार है। अब यह जो नियम है, मोक्ष के मार्गरूप नियम अर्थात् पर्याय, अर्थात् अवस्था, उसका कारण कौन है? बहुत सूक्ष्म व्याख्या है। समझ में आया? यह तो कार्यनियमसार कहा, परन्तु उसका कारण नियम कौन? उसे नियमसार नहीं परन्तु कारणनियम कौन? पण्डितजी! आहा..हा..! अब कारणनियम की व्याख्या करते हैं। मगनभाई!

जो... य शब्द पड़ा है न? **'य' जो...** वह ऐसा कहेंगे। जो यह कारणनियमसार है। समझ में आया? **जो सहज परम-पारिणामिकभाव से स्थित...** आत्मा का अनादि-अनन्त परमस्वभावभाव, सहज ध्रुवस्वभावभाव, एक समय की वर्तमान मोक्षमार्ग की पर्यायरहित... समझ में आया? जो स्वभाविकपरमपारिणामिक (भाव) त्रिकाली स्वभावभाव, ध्रुवभाव, चैतन्यभाव, ज्ञायकभाव में परमपारिणामिकभाव से। वह पारिणामिकभाव होने पर भी... यह स्पष्टीकरण कल हो गया है नीचे। वह पारिणामिक पर्याय नहीं, परिणाम नहीं।

मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हो या सिद्ध की पर्याय प्रगट हो, वह पर्याय यह पारिणामिकभाव वह नहीं। समझ में आया? वीतराग का मार्ग इतना सरस और सूक्ष्म है, सरस और सूक्ष्म है। आनन्द के रसवाला और सूक्ष्म है। जगत में बाहर से कल्पित किया है, वह मार्ग नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, जो स्वभाविक ध्रुव नित्य आत्मा का स्वभाव, जो स्वभाविक परमपारिणामिक (भाव) अर्थात् जिसे पर की कोई अभाव या सद्भाव की अपेक्षा नहीं है। कर्म के निमित्त का सद्भाव या अभाव की अपेक्षा नहीं है, ऐसा त्रिकाली ध्रुवस्वभाव। उसमें **स्थित...** ऐसे त्रिकाली वस्तु के स्वभाव में रहे हुए, रहे हुए **स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक...** यह ध्रुवस्वभाव है। पहले स्वभावरत्नत्रय कहा था, वह पर्याय थी। समझे? ऐसे बाहर से ऐसे के ऐसे (हाँ कहे) ऐसा यहाँ नहीं चलता। समझ में आया या नहीं?

यहाँ कहते हैं कि **स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक...** अर्थात्? आत्मा के मूल स्वभाव, नित्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव में। स्वभाव अनन्त ज्ञान अर्थात् जिसके ध्रुवस्वभाव में ज्ञानभाव है, वह ज्ञानभाव अनन्त है, अनन्त है, स्वभाव की शक्ति का सामर्थ्य अनन्त है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल—ऐसा जो स्वाभाविक पारिणामिकभाव में रहे हुए ऐसे जो भाव वह **शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम,...** इन चारों के समूह को वापस एकरूप गिन दिया। समझ में आया? मगनभाई! आहा..हा..! वस्तु नित्यध्रुव परमस्वभावभाव में रहे हुए ये चार ध्रुवभाव—अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल का एकरूप शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम। यह परिणाम भी पर्याय नहीं है। नीचे दो अर्थ किये हैं, देखो, पारिणामिकभाव की व्याख्या कल आ गयी।

अब **(२) इस शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम में 'परिणाम' शब्द होने पर भी वह, उत्पाद-व्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है....** है? हरिभाई! यह बहुत सूक्ष्म है। आहा..हा..! कहते हैं, भगवान आत्मा पूर्ण, पूर्णस्वरूप ध्रुव नित्यभावस्वभाव, उस नित्यभावस्वभाव में रहे हुए अनन्त बेहद जिसका ज्ञानस्वभाव, आनन्द बेहद स्वभाव, अनन्त वीर्य और अनन्त दर्शन, ऐसे स्वरूपमय शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम शुद्धज्ञानमयचेतना, ऐसा जो भाव, उस त्रिकाली भाव को यहाँ शुद्धानचेतनापरिणाम कहा जाता है। समझ में आया? कहो, पण्डितजी!

जो... ऐसा शब्द था न ? स्वाभाविक, स्वाभाविक वस्तु। क्षयोपशम, उपशम, क्षायिक है, वह तो पर्याय है। कर्म के अभावस्वभावरूप पर्याय है। वह यह नहीं; यह तो त्रिकाली स्वभावभाव है। आत्मा का त्रिकाली ध्रुवभाव, उसमें रहे हुए बेहद स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द का एकरूप गिनकर शुद्धज्ञान, उसे ज्ञान की प्रधानता देकर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य है, तथापि उसका एकरूप गिनकर उसे शुद्धज्ञानचेतना -परिणाम कहा गया है। कहो, समझ में आया ? वह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम जो है, वह ऐसा, वह नियम है। उसका नाम त्रिकाली नियम है, यह नियमसार जो कहते हैं, वह तो पर्याय है परन्तु उस पर्याय का कारण त्रिकाल कौन है, उसका यह वर्णन है। समझ में आया ?

जो स्वाभाविक परम स्वभावभाव में स्थित, स्वाभाविक अनन्त चतुष्टयस्वरूप स्वाभाविक शुद्धज्ञानचेतनापरिणामभाव वह नियम-कारणनियम है। नीचे (फुटनोट में) तीन (का अंक) किया है। **यह नियम, सो कारणनियम है...** कारणनियम अर्थात् जो मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सच्चा / सत्यमार्ग-पर्याय का कारण यह नियम है। समझ में आया ? उसका कारण व्यवहाररत्नत्रय नहीं है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है, भाई ! गजब काम, भाई ! समझ में आया ?

सर्वज्ञ परमेश्वर भगवान तीर्थंकरदेव ने जो यह आत्मा ध्रुवस्वरूप, ध्रुवस्वरूप है, जिसकी वर्तमानदशा का परिणमन, एक समय की दशा, उससे रहित चीज़ जो ध्रुव है, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, ऐसा कहा है। उसमें की यह जो उत्पाद-व्यय की पर्याय जो मोक्षमार्ग की है, उसका कारण कौन ? ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। कहो, चन्दुभाई ! कल नवरंगभाई कहते थे। चन्दुभाई क्यों ऐसे में नहीं आते ? स्वरूपचन्दभाई ! देखो ! यह तुम्हारे घर की बातें हैं। आहा..हा.. ! अरे ! वीतरागमार्ग क्या है, यह इसने सुना न हो, इसके ख्याल में आया न हो, समझा न हो और इसे धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं हो सकता)। क्या हो ? अनादि से जगत लुटता है। धर्म के नाम पर भी लुटता है।

मुमुक्षु : प्रसन्न होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसन्न होता है और उसमें खुश होता है, लुटता है। ले गये तो हल्का हो गया। वस्त्र और गहने भार ले गये न, (इसलिए) हल्का हो गया। आहा..हा.. ! अरे भगवान ! यह तेरे सम्यग्दर्शन की रीति अलग है, भाई ! समझ में आया ?

यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तो निर्विकारी, वीतरागी निर्दोष आनन्ददायक पर्याय है, परन्तु उस पर्याय का कारण जो यह नियम शब्द पड़ा है न? अर्थात् कि यह नियमसार जो मोक्षमार्ग है, उसका कारण कौन? क्योंकि नियमसार में तो ऐसा शब्द आया कि सार है, वह व्यवहारनय का अभाव बताता है। समझे? तब अब यह नियम का व्यवहार कारण नहीं, तब उस मोक्षमार्ग के नियम का कारण कौन? नवरंगभाई! उसका कारण त्रिकाली भगवान आत्मा का स्वभाव, शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम। चेतना अर्थात् ज्ञान में एकाग्र, ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव, हों! जो वह यह नियम है। मोक्षमार्ग की दशा के कारणरूप से इसे नियम कहा जाता है। समझ में आया? आहा..हा..! नीचे कहा है न? यह परिणाम **पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है; यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है...** क्या कहा? त्रिकाली सदृशरूप है। अभी समझना कठिन (पड़े) वह क्या कहते हैं?

वस्तु जो है आत्मा नित्य ध्रुव, वह सदृश जिसका एकरूप है। उपजना, विनशना, ऐसी उत्पाद-व्यय की पर्याय का जिसमें अभाव है। समझ में आया? आहा..हा..! वह **द्रव्यार्थिकनय का विषय है**। शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम द्रव्यनय का विषय है, पूरे द्रव्य को बतावे वह विषय है। उसमें परिणाम का भेद बतावे, वह है नहीं। समझ में आया? आहा..हा..!

जिसे धर्म करना हो, सम्यग्दर्शन पहले में पहले (करना हो) तो उसे क्या करना? उसे किसको कारण बनाना, इसकी बात चलती है। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र कारण होंगे? व्यवहाररत्नत्रय, दया, दान, विकल्प आदि कारण होंगे? उस पर्याय का पर्याय कारण? यह निश्चय से, यह और दूसरी बात, परन्तु उस पर्याय का दूसरा कारण है?

मुमुक्षु : आश्रय किसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय किसका? किसके कारण से वहाँ से आयी यह अवस्था? समझ में आया? त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, परमस्वभावभाव में रहे हुए अनन्त चतुष्टय के एकरूप शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम - ऐसा जो ध्रुवभाव, वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का वह कारण है। समझ में आया? बड़ा विवाद करते हैं न? छहढाला में आता है न? व्यवहार हेतु है, नियम का-निश्चय का कारण है। यह तो एक निमित्तरूप से क्या था, उसका ज्ञान कराने के लिये कहा जाता है। व्यवहार के कथन वे सब अन्यथा कथन हैं।

वास्तविक कारण तो भगवान आत्मा धर्म की सम्यग्दर्शनदशा, पहली दशा का नियम त्रिकाली वस्तु वह कारण है। नियम से वह नियम कारण है अथवा उस नियम का नियम से यह नियम कारण है। समझ में आया?

सो नियम (कारणनियम) है। लो! पाठ में ये शब्द नहीं हैं। पाठ में तो मोक्ष के मार्ग की पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान की निर्विकारी (पर्याय), स्वभाव के आश्रय से हुई, उसकी व्याख्या है। परन्तु उसकी व्याख्या में से निकाला है। अमृतचन्द्राचार्य की ऐसी शैली है, वैसी इन आचार्य (मुनिराज) पद्मप्रभमलधारिदेव ने (की है)। कार्यनियम की बात है तो उसमें से कारणनियम निकाला है। समझ में आया? आहा..! यह नियम, वह कारणनियम है।

तीन अर्थ की व्याख्या चली है। परमपारिणामिकभाव, वह उत्पाद-व्यय नहीं; ध्रुव है। पारिणामिकभाव शब्द होने पर भी। दूसरा परिणाम शब्द होने पर भी, वह पारिणामिकभाव होने पर भी उसे उत्पाद-व्यय-पर्याय लागू नहीं पड़ती। अब यहाँ परिणाम शब्द लागू पड़े, उसमें भी नयी अवस्था उत्पन्न हो और (पुरानी) जाये, इसकी अपेक्षा लागू नहीं पड़ती। तीसरा, वह नियम है। नियम अर्थात् त्रिकाली कारणनियम है। समझ में आया? प्रकाशदासजी! यह ऐसा का ऐसा हाँकते जाते हैं घण्टे में, ऐसा नहीं है यह।

मुमुक्षु : गुरु समझावे, कितना समझाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। यहाँ कहते हैं कि समझाने में गुरु नहीं, गुरु की ओर का विकल्प नहीं और विकल्प के साथ जाननेवाले की पर्याय (हुई) वह भी नहीं, ऐसा कहते हैं। मगनभाई! आहा..हा..! गुरुदेव तो पर रहे, वे नहीं; उनकी श्रद्धा का विकल्प राग है, वह नहीं, परन्तु त्रिकाली को जाननेवाले ज्ञान का जो अंश है, वह भी नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसा मार्ग इसने वीतराग में-वाड़ा में जन्मने पर भी अरे! इसे हाथ नहीं लगता, अभी सुनने को नहीं मिलता, वह समझे कब? श्रद्धा-समकित कब करे? बाहर ही बाहर में भटकाभटक (करता है)। समझ में आया?

कहते हैं कि नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। इसे कारण में तो त्रिकाली द्रव्य कारण है। उसके कारण में व्रत, तप, पूजा, भक्ति और राग की मन्दता की क्रिया, वे उसके कारण में नहीं हैं, भाई! स्वरूपचन्दभाई! है न इसमें? अब इस कारणनियम की व्याख्या हुई।

गाथा में इसकी नहीं थी। अब गाथा में है, उसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया? गाथा में विशेष मोक्षमार्ग की व्याख्या थी, उसमें से सामान्य द्रव्य निकाला। त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा, वह मोक्ष के मार्ग की विकाररहित पर्याय की कारण-दशा वह त्रिकाल वस्तु है, त्रिकाल वस्तु वह कारण है। आहा..हा..!

ऐसा स्पष्ट एक और एक दो जैसा स्पष्ट, कहीं सन्देह को स्थान नहीं होता, यह व्याख्या सन्तों के बिना, दिगम्बर सन्तों के बिना कहीं यह बात नहीं है। पण्डितजी! परन्तु पढ़ते भी नहीं आता, वापस पढ़ते नहीं, ऐसे के ऐसे हाँकते रहते हैं। बापू! यह तो अध्यात्म की बातें हैं, भाई! अनन्त काल में इसने तो साधुपना व्रत, नियम और तपस्या अनन्त बार की है, वह कहीं धर्म नहीं। वह तो विकल्प की क्रिया, राग की, पुण्य की, विकार की है। उस विकार की क्रिया के कारण से आत्मा को कुछ लाभ होता है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! परन्तु निर्विकारी आत्मा की जो मोक्षमार्ग की पर्याय है, उसे प्रगट होने की भूमि / स्थान तो त्रिकाल द्रव्य है। पाताल कुएँ में वह सब है। आहा..हा..! समझ में आया?

अब कार्यनियम (की व्याख्या)। पहली नियम—कारणनियम-त्रिकाल ध्रुव की व्याख्या हुई। नीचे (फुटनोट-३) है न? **यह नियम, सो कारणनियम है क्योंकि वह सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूप...** इसमें ज्ञानशब्द पहले आया है। इसने शैली पहली आती है न! भाई! ज्ञान-दर्शन-चारित्र। पहला ज्ञान आता है। पहला अर्थ यह करे न? पाठ में है वैसा करे। समझ में आया? **सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूप कार्यनियम का...** कार्यनियम अर्थात् वर्तमान दशा, मोक्षमार्ग की वीतरागदशा, ऐसा जो **कार्यनियम का कारण है।** वह त्रिकाली द्रव्यस्वरूप, ध्रुवस्वरूप वह मोक्ष के आनन्ददायक धर्म की पर्याय का कारण है। **(कारणनियम के आश्रय से कार्यनियम प्रगट होता है।)** कोष्ठक में डाला है।

त्रिकाली भगवान ध्रुव में दृष्टि देने से, उसका आश्रय लेने से त्रिकाली सहज परमस्वभावभाव में ज्ञान की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय को पकड़ाने से उसे सम्यग्दर्शनज्ञान की दशा प्रगट होती है। ऐसी बात थी तुम्हारे यहाँ? लो! इसने वहाँ श्वेताम्बर की सभी क्रियायें बहुत की। अभी गर्म पानी रखता है। गर्म पानी और यह उपधान और क्या सब...? हैरान होने का मार्ग है। आंबेल की ओलियो। एक अलोना व्रत और एक अपवास, एक अपवास और दो आंवेल। एक अपवास और तीन आंवेल, एक अपवास और सौ आंवेल।

अरे! परन्तु भाई! अभी मूल-वर पकड़े बिना तेरी बारात कहाँ जायेगी? तत्त्व की दृष्टि क्या है? वस्तु का मूल धर्म का क्या है? उस मूल का मूल क्या है? चारित्र धर्म है, उसका मूल सम्यग्दर्शन। बराबर है? है न सामने? दंसणमूलोधम्मो।

धर्म अर्थात् चारित्र; वीतरागभाव वह चारित्र है। उसका मूल सम्यग्दर्शन है। उसका मूल कारणनियम है। आहा..हा..! पूर्णानन्द का नाथ तेरा भगवान पूर्ण एक समय में पड़ा है, प्रभु! जिसे बदलने की-उत्पाद-व्यय की अपेक्षा ही नहीं। आहा..हा..! ३२० में तो ऐसा कहे, मोक्षमार्ग जिसमें नहीं। भले उसे मोक्षमार्ग का कारण कहा, परन्तु मोक्षमार्ग उसमें नहीं। उसमें तो इनकार किया है, कारण का इनकार किया है। ३२० गाथा में। समझ में आया? ३२० गाथा सुनी है? अभी कहाँ सुने, भटकने गये थे। ३२० गाथा नयी आयी।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन का कारण कारणनियम।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारणनियम ध्रुव। क्या कहना है? यह सुनकर कहते हैं। पहले कहाँ सुना था वहाँ? कहाँ सुना था। ३२० गाथा कहाँ सुनी थी, ऐसा कहता हूँ। आहा..हा..!

अब, कार्यनियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग-पर्याय-दशा, सम्यग्दर्शन आनन्ददायक पर्याय, सम्यग्ज्ञान आनन्ददायक पर्याय, चारित्र आनन्ददायक पर्याय। ऐसी जो मोक्षमार्ग की पर्याय, वह कार्यनियम है। अर्थात्? उसका कार्य मोक्ष, उसकी यहाँ बात नहीं है अभी। यह तो स्वयं कार्यनियम इसकी मोक्षमार्ग की पर्याय, जो मोक्ष का कारण और जिसका कार्य मोक्ष, उसका कारण जो मोक्षमार्ग, उसे यहाँ कार्यनियम कहा है। समझ में आया? इसमें कितने शब्द याद रखना।

एक ओर कहे कि निश्चय मोक्ष का मार्ग, कारण; मोक्ष, कार्य। दूसरा अब मोक्षमार्ग पर्याय है, वह कार्य, उसका कारण त्रिकाल द्रव्य। समझ में आया? कार्यपरमात्मा तो तेरहवें (गुणस्थान में) आवे। कार्यनियम तो चौथे से शुरु हो। त्रिकाली वस्तु जो कारणनियम है, उसके आश्रय से प्रगट होनेवाली मोक्ष के मार्ग की पर्याय को यहाँ कार्यनियमरूप से कहा गया है। उसका वापस कार्य, उस कार्यनियम का कार्य जो मोक्ष, वह और दूसरी बात है। आहा..हा..!

(कार्यनियम), अर्थात् निश्चय से (निश्चित) जो करनेयोग्य... देखो! उस नियम में करनेयोग्य कुछ नहीं था, वह तो है, उसे करना क्या? क्या कहा? त्रिकाली

ध्रुवस्वभाव परमपारिणामिकभाव शुद्धज्ञानचेतनापरिणामभाव है.. है.. है.. है.. है.. उसे करना क्या ? अब उसके आश्रय से जो करने की दशा है, वह करनेयोग्य है। उसमें विकल्प करनेयोग्य है या पर में करनेयोग्य है, यह बात नहीं आयी इसमें ?

(निश्चित) जो करनेयोग्य... पाठ है न ? मूल पाठ **णियमेण य जं कज्जं** जो जीव को नियम से करनेयोग्य है, वह। **प्रयोजनस्वरूप हो वह,... (निश्चित) जो करनेयोग्य-प्रयोजनस्वरूप हो वह, अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र। इन तीनों में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है...** समझ में आया ? भगवान आत्मा... देखो ! कारणनियमरूप त्रिकाली, उसमें से कार्यनियम मोक्ष का मार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग को यहाँ कार्यनियमरूप से कहकर, वह कार्यनियम करनेयोग्य है, कहते हैं। करनेयोग्य है, इसलिए कार्य कहा न उसे ? वस्तु त्रिकाली है, उसमें करनेयोग्य क्या होगा ? वह तो है। पर्याय में करनेयोग्य तो यह करनेयोग्य है, कहते हैं। निश्चय से करनेयोग्य हो तो निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह पर्याय करनेयोग्य प्रयोजनभूत निश्चय से करना हो तो वह करनेयोग्य है। समझ में आया ? लो ! इसमें कुछ करने का आया या नहीं ? इसमें मुझे करना क्या, सूझ नहीं पड़ती। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं यह.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तत्त्वार्थश्रद्धान कहो या यह कहो, दोनों एक ही हैं। समझ में आया ? तत्त्वार्थ अर्थात् नव इकट्ठे ऐसा नहीं। एक तत्त्व का अन्दर भान होने पर आठों ही तत्त्वों का उसमें अभाव है, ऐसा भान हो जाता है, इसका नाम तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन है। (यह) ऐसा कहते हैं, नौ जानना पड़ेंगे ? यहाँ तो नौ को जानने की बात भी इसमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो यह जाना, इसलिए वे ज्ञात हो जायेंगे - ऐसा कहते हैं। क्या (कहा) ? एक को जाना तो दूसरे रागादि इसमें नहीं है, ऐसा ज्ञात हो जायेगा - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? गजब व्याख्या, भाई ! दो लाईन, तीन लाईन में कितना समाहित कर दिया, देखो न ! स्वरूपचन्दभाई ! आवे तब आवे। इसमें तो इस शब्द का तो बराबर भाव आता है। ए.. वजुभाई !

इसमें पहले कहा था कि जो त्रिकाल नियम है, उसे सार लागू नहीं पड़ता। क्योंकि स्वयं ही वस्तुस्वरूप है। इसलिए करना है, उसमें सार लागू पड़ता है कि राग करना नहीं और राग का अभाव है उसमें। समझ में आया ? गजब बातें, भाई ! ये सेठ बेचारे क्या धर्म

तो समझें नहीं, फिर यह व्रत करो, और अपवास करो, यात्रा करो और भक्ति करो, पूजा करो और सोलभथ्था। क्या कहलाता है ? षोड़श कारणभावना। यह तो सब विकल्पों में चला गया बेचारा। वास्तविक तत्त्व की श्रद्धा के भान बिना ये सब भटकने के रास्ते हैं। आहा..हा.. ! उसे मोक्ष के मार्गरूप में माने, छूटने के (मार्ग) माने। अरे ! मार्ग तो मार्ग है। उसकी पद्धति की खबर नहीं होती और उस पद्धति के बिना साधने जाये तो कुछ का कुछ साधे और माने कुछ।

भगवान आत्मा परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव फरमाते हैं, भाई ! तेरा त्रिकाली ध्रुवस्वभाव है, उसे कारण कहते हैं क्योंकि कारण में से मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट होती है। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प में से वह मोक्षमार्ग कहीं नहीं आता। आहा..हा.. ! कितनी बात है ! इसके बदले (कहे) व्यवहार पहला और फिर निश्चय हो। वह तो सब व्यवहार की कथन की शैली दूसरी है पूरी। यह तो छठवें गुणस्थान की दशा में विकल्प आदि होते हैं, उनका अभाव करके सातवाँ (गुणस्थान) पाता है, यह बताने के लिये वहाँ बात की है। अभाव करके। बाकी वस्तु ही कारण है। वीतरागदशा की श्रद्धा आत्मा की, वीतरागस्वरूप आत्मा के आश्रय से होनेवाला वीतरागी सम्यग्दर्शन, उसे राग का भाव कारण हो, ऐसा नहीं होता, भाई ! यह तो कल आ गया, शुद्धरत्नत्रय परमनिरपेक्ष है। समझ में आया ?

जो (कार्यनियम), निश्चय से करनेयोग्य... णियमेण य जं कज्जं तब हमें क्या करना ? यह निश्चय से करनेयोग्य हो तो निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वे करनेयोग्य हैं। व्यवहारसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विकल्प वह करनेयोग्य नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? (व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प) आवे, (वह) अलग बात है और करनेयोग्य है, वह अलग बात है। समझ में आया ? निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भूमिका में देव-गुरु-शास्त्र का व्यवहार आवे, परन्तु करनेयोग्य, वह अलग वस्तु है और आ जावे, उसे जाननेयोग्य है, वह अलग वस्तु है। गजब मार्ग अन्दर, भाई ! आहा..हा.. !

जहाँ कहीं विकल्प पहुँचे नहीं, वाणी पहुँचे नहीं, देव-गुरु की वाणी की ध्वनि वहाँ स्पर्शे नहीं। आहा..हा.. ! और वाणी के लक्ष्य से हुआ विकल्प, वह जहाँ अन्दर जा सके नहीं, उसके कारण से सम्यग्दर्शन हो, ऐसी चीज़ है नहीं। वस्तु ऐसी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! पण्डितजी ! नियमसार पहले देखा था या नहीं ? नियमसार कभी देखा

था ? आहा..हा.. ! गजब बात है ! केवली का पिटारा खोला है पूरा ! भगवान ! तुझमें क्या कमी है कि तुझे पर की शरण (लेना पड़े) ? रागादि तो पर है, उनकी शरण तुझे लेना पड़े ? शरण तो आत्मा त्रिकाली है, उसकी शरण ले। उसकी शरण में फिर तुझे दर्शन-ज्ञान-चारित्र होंगे। आहा..हा.. ! उस सम्यग्दर्शन की शरण से भी सम्यक्चारित्र नहीं होगा। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन, उसका शरण ध्रुव; सम्यग्ज्ञान का शरण ध्रुव; सम्यक्चारित्र का शरण ध्रुव। सम्यग्दर्शन, चारित्र का कारण नहीं होता। जो व्यवहार कारण कहा है, वह अलग बात है। बन्ध अधिकार। वह तो वहाँ चारित्र, सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होता, इतना सिद्ध-बताने को (कहा है)। वापस सब ख्याल है, वहाँ कारण कहा है ? बन्ध अधिकार में कहा है न ? परन्तु वास्तव में तो चारित्र-स्वरूप के आनन्द की रमणता, उस कार्य का कारण तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म ऐसा।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन हुआ हो, उसे मोक्ष होता ही है, हाथ पकड़कर ले जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सम्यग्दर्शन में यह आया या नहीं ? कि स्वरूप की स्थिरता करेगा तब होगा - ऐसा आया या नहीं श्रद्धा में ?

मुमुक्षु : यह तो आता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो हाथ पकड़कर ले जाये, कहाँ आया वापस यह ? आहा..हा.. !

मुमुक्षु : उसमें उतावल करने की क्या आवश्यकता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उतावल की व्याख्या क्या ?

मुमुक्षु : उतावल नहीं परन्तु धीरज रखने की तो आवश्यकता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन में कारणरूप त्रिकाली द्रव्य हुआ। अब उसकी श्रद्धा में क्या आया ? (यही) कि इसके कारण से मुझे दर्शन हुआ। अब ज्ञान भी इसके कारण से होगा, चारित्र भी इसके कारण से होगा - ऐसा श्रद्धा में आया है। श्रद्धा में आया है, फिर आधीरज और चिन्ता का कहाँ प्रश्न है। वह आत्मा की शरण लेगा ही। उग्ररूप से पहले लिया है तो चारित्र के लिये उग्ररूप से लेगा ही। देवानुप्रिया ! अन्तर की श्रद्धा में ही यह आया है कि इस द्रव्य के आश्रय से ही मुझे चारित्र होगा। थोड़ा (चारित्र) तो साथ में हुआ। सम्यग्दर्शन में आत्मा का आश्रय होकर प्रतीति-अनुभव हुआ, ज्ञान और स्वरूपस्थिरता तो हुई, चारित्र का अंश तो साथ में आया ही है, परन्तु दर्शन में प्रतीति होने पर (ऐसा होता है

कि) इसका अनुष्ठान करूँगा। नहीं आता भाई! (समयसार गाथा) १७-१८? १७-१८ गाथा, समयसार। आता है, १७-१८ में यह आता है कि यह मैं, यह श्रद्धा ऐसी आती है कि देखो! है न? इसका अनुसरण करने से मुझे चारित्र होगा, मोक्षमार्ग होगा, मोक्ष होगा, ऐसा। समझ में आया?

यहाँ देखो! मोक्षार्थी पुरुष को प्रथम तो आत्मा को जानना चाहिए। जानना अर्थात् अनुभव करना, वह जानना, हों! फिर उसका श्रद्धान करना और श्रद्धान करना अर्थात् कि यही आत्मा है, इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा। वहाँ अब फिर उसका आचरण करना। समझ में आया? १७-१८ में पहले ज्ञान करना, दर्शन (फिर होता है), विवाद उठा है न मुम्बई में? पहले जाने बिना श्रद्धा किसकी करेगा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बात बाहर आने पर तो बहुत सब सूक्ष्म चर्चा चलती है, बात चलती है, किसी में भूल भी पड़ जाये साधारण।

कहते हैं, **करनेयोग्य-प्रयोजनस्वरूप हो वह,...** उसे निश्चय से करनेयोग्य कहा, वह **ज्ञान-दर्शन-चारित्र**। लो! कहो, यहाँ पहले ज्ञान लिया। वहाँ १७-१८ में पहले ज्ञान लिया। ज्ञान, दर्शन और चारित्र—आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन और आत्मा का चारित्र, उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहा है। समझ में आया? यहाँ तो अभी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानना... आहा..हा..! समझ में आया? देवी-देवलों को मानना, पद्मावती और भैरवनाथ और अमुकनाथ... आहा..हा..! बहुत मिथ्यात्वभाव कहीं रह गया है। क्षेत्रपाल और यह पाल... अरे भगवान! असंख्यप्रदेशी क्षेत्रपाल तो भगवान तू है। आहा..हा..! यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे देव-देवला की बातें भी नहीं, परन्तु साक्षात् सर्वज्ञदेव को-तीर्थंकर को माने तो भी वह विकल्प है और वह विकल्प सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है। बराबर है? अरे! इसे खबर नहीं होती, अभी खबर बिना यह पुरुषार्थ कहाँ करे और कहाँ जाये?

अरे रे! जगत लुटाया है, हों! सच्ची बात बाहर आने पर लोगों को ऐसी लगे अन्दर से कि अरे रे! बापू! यह तुम्हारी बातें सब खबर नहीं हमको? शास्त्र क्या कहते हैं यहाँ? ऐसे व्यवहार के क्रियाकाण्ड तो अनन्त बार किये। मिथ्यात्वभाव तो साथ में रहा, क्योंकि राग की क्रिया से लाभ होता है, (ऐसा) मिथ्यात्व के साथ पुण्य बँधा (और) स्वर्ग आदि मिले, भेष पलटा परन्तु भाव नहीं पलटा। आहा..हा..!

मुमुक्षु : चार गति के दरवाजे खुल गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी योग्यता से खुल गये।

मुमुक्षु : यहाँ तो मोक्ष का दरवाजा खोलने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है —तावत् तेषु त्रिषु संस्कृत है न? **तेषु त्रिषु** उसमें दूसरा आता है, इन तीन का कहेंगे। वह अलग। चौथी गाथा में (आता है) **चारित्राणां त्रयाणां प्रत्येकप्ररूपणा भवति।** अब वहाँ अलग बात है, यहाँ अलग बात है। वहाँ प्रत्येक की प्ररूपणा अलग करूँगा, यह भेद की-व्यवहाररत्नत्रय की बात है और यहाँ तीन में से एक-एक की बात निश्चय की है। शब्द एक के एक हैं। पण्डितजी! उसमें कहा न? **त्रयाणां प्रत्येकप्ररूपणा भवति।** चौथी में-व्यवहार में। यहाँ ऐसा नहीं है, यहाँ तो **तेषु त्रिषु** इसमें से तीन वस्तु जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र—मोक्ष का मार्ग, उसे हम कहेंगे। समझ में आया?

अब पहली सम्यग्दर्शन की व्याख्या... सम्यग्ज्ञान की। इसमें ज्ञान है न, पहला। उसमें भी देखो? शब्द कैसे हैं? **(१) परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना...** परद्रव्य की ग्राहकता, रमकता शीघ्रता से छोड़। आया है या नहीं? ऐई! देवानुप्रिया! कहाँ लिखा है? दूसरा कहा वह दूसरा था। यह कहाँ सुनता है? इसे जो धुन हो... दूसरा कहा था देवानुप्रिया! श्रीमद् में ऐसा आता है कि परद्रव्य की ग्राहकता शीघ्र से तजो। कहाँ आता है, तुम्हें खबर नहीं, व्यर्थ का आता है। सत्रहवें वर्ष में, नयी पुस्तक में आता है। पुरानी पुस्तक में नहीं आता। पुस्तक बाहर रखी है।

परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना... सीधा पहला धमाका। कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र और उनकी श्रद्धा का विकल्प, वह सब परद्रव्य है। कितना स्पष्ट किया है, देखो न! पद्मप्रभमलधारिदेव, पंच महाव्रतधारी महाभावलिंगी सन्त। उनकी टीका भी अभी कितनों को खटकती है। मिथ्या सिद्ध करना चाहते हैं। धीरे-धीरे कुन्दकुन्दाचार्य को मिथ्या सिद्ध करेंगे। भाई! ऐसा तो कहते थे न? फूलचन्दजी कहते थे। बापू! मार्ग तो यह है, भाई!

मुमुक्षु : इस बात का स्वीकार न करे, वे मूल गाथा का स्वीकार नहीं करते।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है। मूल गाथा का ही यह विशेष है। सामान्य का विशेष है; विशेष न माने तो सामान्य तो नहीं मानता, ऐसा ही है। क्या हो? अरे रे!

कहते हैं, सम्यग्दर्शन किसे कहना? धर्म का पहला अवयव, मोक्ष का मार्ग-अवयव। **परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना....** लो, यहाँ तो मूर्ति को अवलम्बनकर सम्यक्त्व होता है और अमुक के कारण सम्यक्त्व होता है और... आते हैं न दूसरे बोल? वेदनीय (वेदना) से होता है। नहीं आता? वह तो यहाँ हुआ तब निमित्त कौन (था)? वहाँ से लक्ष्य छूटा था, उसकी व्याख्या की है। वेदना से होता है, देवदर्शन से, देवऋद्धि से होता है, लो! आता है या नहीं? सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थसूत्र की टीका) में कहीं? वे तो निमित्त के कथन हैं। यहाँ तो इनकार करते हैं। देखो! परद्रव्य के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन नहीं होता; स्वद्रव्य के अवलम्बन से हुआ, तब लक्ष्य किससे छूटा था, उस चीज़ का ज्ञान कराया वहाँ। भारी काम। अरे..! अर्थ करने में विवाद।

मुमुक्षु : णमो अरिहंताणं में भी आता है। अरिहन्त अर्थात् अरि-शत्रुओं का जिन्होंने नाश किया है। नास्ति का कथन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आया? नास्ति का कथन है तो क्या है? उसमें से अस्ति ले लेना। स्वभाव का आश्रय करे, तब राग की उत्पत्ति नहीं होती, उसे 'राग का नाश किया'—ऐसा कहा जाता है। उसमें से ऐसा ले लेना। कार्यहिंसा की बात है, परन्तु कारण निकाला है या नहीं? बस, अन्दर से अस्ति निकाली है।

(१) परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना निःशेषरूप से अन्तर्मुख योगशक्ति में उपादेय.... स्वयं अब आत्मा लिया। समस्तरूप से अन्तर्मुख उपयोग शक्ति में से। आहा..हा..! **(उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके...)** ऐसा। ज्ञान की दशा को अन्तर्मुख, अत्यन्त अन्तर्मुख करके। वस्तु के स्वभावसन्मुख करके। **(अन्तर्मुख करके ग्रहण करनेयोग्य) — ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान (जानना) सो ज्ञान है।** देखो! निज ज्ञान ग्रहण करनेयोग्य कहा। पर्याय को; यहाँ तो भाषा ऐसी है। समझ में आया? **'निजपरमतत्त्वपरिज्ञानम् उपादेयं भवति।'**

प्रगट करनेयोग्य है; इसलिए उसे उपादेय कहने में आया, वरना तो निश्चय में उपादेय तो ध्रुव है, परन्तु ध्रुव के आश्रय से निःशेषरूप से-समस्तरूप से अन्तर में पूरा उपयोग ही अन्तर में झुका लेना, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! बिल्कुल पर्याय को छूना नहीं, विकल्प को छूना नहीं। आहा..हा..! उस पर्याय को अन्तर्मुख सम्पूर्णरूप से, सम्पूर्णरूप

से एकदम द्रव्यस्वभाव में झुकाये, उसे समकित होता है। आहा..हा..! समझ में आया? अभी सम्यक् कैसे हो—उसकी खबर नहीं होती। सम्यक् न हो और उसे हो गया चारित्र, व्रत और तप... अरे! जिन्दगी जायेगी, भाई! ऐसा अवसर फिर से मिलना कठिन है। बाकी दुनिया की दरकार छोड़कर सत्य क्या है, उसे समझ ले। दुनिया कैसे माने, उसके साथ चलेगा तो मेल नहीं खायेगा। तुलना करना नहीं - ऐसा आया था। रमेश में भी आता है - दूसरे के साथ मार्ग की तुलना करना नहीं। मिढवणी समझ में आया? तुलना। भगवान वीतराग का-परमेश्वर का मार्ग, इस वीतराग के मार्ग के साथ में दूसरे के साथ तुलना करना नहीं।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य द्रव्य ध्रुव भगवान को समस्त प्रकार से अन्तर उपयोग करके पकड़। आहा..हा..! समझ में आया? **परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना निःशेषरूप...** अर्थात् समस्त प्रकार से - ऐसा कहते हैं। पूर्ण रीति से उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर में झुकाकर **योगशक्ति में उपादेय ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान...** ऐसा वापस है। ऐई! ज्ञान की पर्याय को उपादेय कहा। भाषा अलग है। ऐसा जो निज परमात्मतत्त्व का ज्ञान, ऐसा लिया है। प्रगट हुए को यहाँ ग्रहण करना और उपादेय - ऐसा लिया है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है।

भगवान आत्मा वस्तुस्वरूप से प्रभु सच्चिदानन्द आनन्द सिद्धस्वरूप है आत्मा। उसमें वर्तमान दशा को समस्त प्रकार से पर से छोड़कर, समस्त प्रकार से अन्तर्मुख करके। आहा..हा..! पोपटभाई! ऐसी व्याख्या है। **परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना निःशेषरूप...** कुछ भी बाकी रखे बिना, ऐसा कहते हैं। पूरे उपयोग को **अन्तर्मुख योगशक्ति में उपादेय...** समझ में आया? अन्दर जुड़ान होकर जो दशा प्रगट हुई, उसे यहाँ निज परमात्मतत्त्व का जानना, उसे ज्ञान कहा जाता है। देखो! ज्ञान। शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? शास्त्र को पढ़ा हो और बातें करता हो कि इसका ऐसा और इसका ऐसा है, वह ज्ञान नहीं। ऐई! शान्तिभाई! शब्द नहीं, वह ज्ञान ही नहीं। आहा...!

अन्तर स्वभाव में वर्तमान अपने ज्ञान की दशा को समस्त प्रकार से अन्तर्मुख झुकाने पर, बहिर्मुख परद्रव्य का आलम्बन-लक्ष्य छोड़कर, ऐसा कहते हैं। छठवीं गाथा में ऐसा आया न, परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर ध्रुवस्वरूप की उपासना करने से, उपासना करने से शुद्ध ऐसा '**अभिलप्यते**' आहा..हा..! मर्म खोला है, हों! मर्म। अनुभव में आवे,

परन्तु उसकी भाषा की शैली की कथन पद्धति, उसे उस रीति से रचने की पद्धति अलौकिक! समझ में आया?

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान किसे कहना? यहाँ सम्यग्ज्ञान की पहली व्याख्या है। **परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना...** शास्त्र का ज्ञान हो, वह भी वास्तव में तो परद्रव्य है। शास्त्र का ज्ञान जो धारकर हुआ है, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! ऐई! आहा..हा..! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु परद्रव्य में परद्रव्य का ज्ञान न... उसमें कहाँ आयी है यह? यह तो व्याख्या चलती है और तुम वह छन्द पकड़कर बात करते हो। परन्तु यहाँ तो परद्रव्य अर्थात् यह शास्त्र का ज्ञान, उसे परद्रव्य कहा, ऐसी व्याख्या यहाँ कहाँ है? यहाँ तो परद्रव्य को छोड़ना, इतना कहा है। परद्रव्य में विहार नहीं। परन्तु परद्रव्य की विहार की व्याख्या (क्या)?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कुछ का कुछ पूर्व में धारा है न, वह पकड़कर बातें करे। विशेष कहेंगे... समय हो गया, हों! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६, गाथा-३, बुधवार, फाल्गुन शुक्ल ९, दिनांक ०५-०३-१९७१

नियमसार, 'जीव अधिकार' तीसरी गाथा। ज्ञान किसे कहना? दर्शन किसे कहना? और चारित्र किसे कहना? जो मोक्ष का मार्ग है, उसकी व्याख्या है। दर्शन-ज्ञान और चारित्र। यहाँ **ज्ञानदर्शनचारित्र** ऐसा लिया है। ज्ञान की मुख्यता ली है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र, यह मोक्ष का मार्ग है। उसका फल मोक्ष है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र कहना किसे?

(१) परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना... परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, चाहे तो शास्त्र-अकेले पृष्ठ हो, या अन्दर विकल्प हो, वह सब परद्रव्य है। उसका अवलम्बन छोड़कर, उसका लक्ष्य छोड़कर **निःशेषरूप से अन्तर्मुख योगशक्ति में उपादेय ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान सो ज्ञान है।** यह शब्द हुए। अब

निःशेषरूप से... की व्याख्या कोष्ठक में सम्पूर्णरूप से आयी है। देखो! कोष्ठक है न? कोष्ठक। निःशेषरूप से अर्थात् सम्पूर्णरूप से। योगशक्ति में से (अर्थात्) उपयोग को यहाँ गिना है। योगशक्ति में से - इसे उपयोग गिना है। चन्दुभाई! बात अधिक स्पष्ट आयी है।

मुमुक्षु : कोष्ठक में उपयोग पहला शब्द है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह योगशक्ति का अर्थ कया है और अन्तर्मुख, यह बाद में अर्थ किया है। **(उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके ग्रहण करनेयोग्य)...** यह शब्दार्थ है। अर्थात् कि सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख उपयोग को जोड़ने से जो दशा प्रगट हो, वह उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेयोग्य है। ऐसे भाव को ज्ञान कहा जाता है। फिर से, हों! एकदम झट छोड़ नहीं दिया जाता। अस्ति-नास्ति की है। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर, स्वद्रव्य में अपने उपयोग को अन्तर्मुख करना, सम्पूर्ण रूप से अन्तर्मुख करना, ऐसा।

ऐसा जो निज परमतत्त्व... देखो! यह आया। निजपरमतत्त्व जो त्रिकाल ध्रुव, ज्ञायकभाव, उसको जानना, वह ज्ञान है। समझ में आया? फिर से, मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्ज्ञान, किसे कहना? गुरु ने कहा, शास्त्र ने कहा, ज्ञानी की वाणी वीतराग की दिव्यध्वनि सुनी और ज्ञान हुआ, वह ज्ञान? नहीं; वह ज्ञान नहीं। वह ज्ञान स्वयं से हुआ है। दिव्यध्वनि, शास्त्र और गुरु की वाणी तो निमित्त है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो दूसरा कहना है अभी। वह निमित्त है, तथापि यहाँ जो ज्ञान होता है कि यह ऐसा कहते हैं... यह ऐसा कहते हैं, वह ज्ञान स्वयं से होता है परन्तु वह ज्ञान, ज्ञान नहीं, क्योंकि जिसमें अभी परद्रव्य का निमित्तपना था। समझ में आया? ऐसी जो ज्ञान की पर्याय अन्तर में क्षयोपशमरूप हो, वह नहीं। वह ज्ञान नहीं। आहा..हा..! ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो योग-जो आत्मा का जुड़ानभाव उपयोग। त्रिकाल वस्तु जो ध्रुव परमतत्त्व। यहाँ है न? **निज परमतत्त्व...** अपना परमतत्त्व। सर्वज्ञ ओर देव-गुरु का नहीं। समझ में आया? प्रभु!

निज परमतत्त्व का... योगशक्ति को अन्तर्मुख सम्पूर्णरूप से करने से, ग्रहण करनेयोग्य। **ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान (जानना), सो ज्ञान है।** चर्चा हुई है तो बराबर अन्दर स्पष्ट होना चाहिए न! वजुभाई!... गये हैं। कल इन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि

कोष्ठक में लिखा है, वह बराबर है। क्योंकि यदि इसमें ऐसा लें कि योगशक्ति अर्थात् त्रिकाल, तो वह तो गुणभेद पड़ा। गुणी और गुणभेद, यह व्याख्या दूसरे दो में नहीं है। इसलिए इसमें ऐसा कहे, वह इसमें बराबर समुचित नहीं है। नवरंगभाई! समझ में आया? आहा..हा..!

विकल्प को अथवा शास्त्र को सुनकर देव-गुरु को सुनकर उन्होंने कहा, ऐसा जो ज्ञान, वह भी वास्तव में परद्रव्य है। उसके अवलम्बन बिना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो जिसे सम्यग्ज्ञान कहें - मोक्ष का मार्ग, वह ज्ञान तो अलौकिक वस्तु है। **निज परमतत्त्व...** अपना जो परमतत्त्व। यह तो भाई! रात्रि को था न, उसमें से विचार आया था कि निर्ग्रन्थ तो अनन्त ज्ञान की उपासना करते हैं, एक ग्रन्थ की नहीं। इसका अर्थ? अनन्त बेहद ज्ञानस्वभाव निज परमतत्त्व की उपासना निर्ग्रन्थ करते हैं।

मुमुक्षु : वह अनन्त ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अनन्त ज्ञान। आहा..हा..!

मुमुक्षु : बहुत ग्रन्थों की करे वह नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। भाई! ऐसा नहीं। भाई! तू विरोध में पड़ेगा। आहा..हा..! एक समय की पर्याय का भी नहीं। वस्तु है न? वस्तु, जिसका स्वभाव तो अनन्त है। स्वभाव है, उसकी हद क्या होगी? ऐसा बेहद जो अनन्त ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी उपासना, वह सन्तों का कार्य है। समझ में आया? अनादि सर्वज्ञ परमात्मा, सर्वज्ञस्वभाव को पहले विकास किया। सर्वज्ञ हुए।

निज परमतत्त्व... निज परमतत्त्व अर्थात् परमस्वभाव जो त्रिकाल ज्ञायकभाव है। समझ में आया? अपना परमस्वभाव। परमतत्त्व शब्द है न? अपना परमभाव, स्वभावभाव, नित्यभाव, एकरूप भाव, ध्रुवभाव, ज्ञायकभाव, उसे उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके जो दशा प्रगट हो, वह ग्रहण करनेयोग्य है और उसे ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? अभी तो बात पकड़ना (कठिन पड़ती है)। पोपटभाई! शान्तिभाई!

यह मोक्ष के मार्ग का कारणरूप ज्ञान, वह किसे कहना? यह व्याख्या चलती है। परसन्मुख का लक्ष्य छोड़कर, उस परद्रव्य में सब आ गया। देव-गुरु-शास्त्र, विकल्प और परद्रव्य के लक्ष्य से हुआ ज्ञान। भले अपना उपादान (से हुआ), उसका भी अवलम्बन छोड़कर समझ में आया। **सम्पूर्णरूप से...** सम्पूर्णरूप से उपयोग को अन्तर्मुख करने से।

अर्थात् ? कि जो वर्तमान उपयोग है, उसका कोई अंश बाह्य रह जाये और कोई अन्तर में (रहे), ऐसा नहीं है। समझ में आया ? यह बात अलग। यह तो अभी मोक्षमार्ग की शुरुआत की है।

नियमसार। नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग; सार अर्थात् व्यवहाररहित। व्यवहार के विकल्परहित। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत के विकल्प हैं, उस व्यवहाररहित। सहित नहीं। उसे नियमसार कहते हैं। इस नियम में तीन प्रकार—ज्ञान, दर्शन और चारित्र। उनमें ज्ञान पहला मोक्ष का मार्ग। वह ज्ञान, परद्रव्य का बिल्कुल अवलम्बन छोड़कर... भाई! पहले सुना था। उसके अवलम्बन से कुछ लाभ होगा या नहीं ? ऐई! नवरंगभाई! ऐई! भीखाभाई! भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : यह पकड़ने जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे पकड़ने से ?

मुमुक्षु : ज्ञानस्वभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा..! कहते हैं कि जहाँ सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा स्थित है, निज परमतत्त्व है न ? परमस्वभाव, ज्ञायक त्रिकाल भाव में वर्तमान ज्ञान के उपयोग को परद्रव्य के किसी भी अवलम्बन से छोड़कर, भगवान ऐसा कहते थे और भगवान की वाणी ऐसा कहती थी, ऐसा जो जाना हुआ, वह भी छोड़कर। नवनीतभाई!

मुमुक्षु : भावेन्द्रियों को छोड़कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावेन्द्रिय का ज्ञान था वह तो। आहा..हा..! ऐसी वस्तुस्थिति है। लोगों को खबर नहीं होती और दूसरे को साथ में मिलाते हैं। कहो, चेतनजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...सम्पूर्णरूप से उपयोग को यहाँ झुकाना। जरा भी बाहर में है, उसे छोड़कर (यहाँ झुकाना)। आहा..हा..! गजब टीका की है न! ये तो मुनि हैं, हों! यह स्वयं टीका करनेवाले आचार्य नहीं हैं। श्लोक आचार्य के हैं और टीका मुनि की है। परन्तु मुनि, वे मुनि हैं न! आहा..हा..! पंच परमेष्ठी में शामिल हैं, शामिल हैं और वह भी पहले कहा है न ? भाई! यह टीका हमने कहाँ की है ? हम मन्दबुद्धि क्या करें ? गणधरों से बनायी

हुई यह टीका चली आ रही है। आहा..हा..! पहले आया है न? शुरुआत में। पाँचवाँ श्लोक है न? **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन?** आहा..हा..! यह अर्थ तो गणधरों से चला आ रहा है। परम्परा से श्रुत के धारकों ने यह अर्थ किया था। वह अर्थ इसमें होता है। आहा..हा..! समझ में आया? पाँचवाँ श्लोक है। ऐई! देवानुप्रिया! वहाँ फिर भटके बहुत वर्ष, दूर हो गये। कितने वर्ष हो गये? १२। कितने हुए? १३ वर्ष हुए। आहा..हा..! भगवान! यह वस्तु, वह भी वस्तु देखो न! भगवान स्वयं आत्मा निज परमात्मा कहा न? वह प्रत्येक शब्द में अलग-अलग प्रयोग करते हैं। यहाँ निजपरमात्मतत्त्व; दूसरे में निज शुद्ध जीवास्तिकाय; तीसरे में कारणपरमात्मा। प्रत्येक में द्रव्य प्रयोग करेंगे, गुणभेद नहीं। वजुभाई! समझ में आया? शब्दों को स्पर्श कर विचार करे और सुने, समझे तो बराबर ठीक पड़े।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो इसे ठीक पड़े कि आहा..हा..! अध्धर से ऐसा का ऐसा पढ़े और ऐसा का ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : तो ही महिमा आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो महिमा आवे। इसे ख्याल आवे कि ओहो..! इस परमागम के यह भाव! यह तो परमागम है। टीका वह परमागम है। अन्दर आगे कह गये हैं न? हमारे मुख में से परमागम झरता है। आता है न? आहा..हा..!

मुमुक्षु : मकरन्द झरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जैसे फूल का रस झरता है न? भँवरा उस फूल का लेता है न.... क्या कहलाता है? पराग। भँवरा फूल में से पराग चूसता है न? इसी प्रकार यह परमागम का पराग है यह सब। रस है, रस। समझ में आया? थोड़ा भी सत्य और परम दृढ़ होना चाहिए। लम्बी-लम्बी बड़ी बातें करे, उसका अर्थ कुछ है? कहते हैं... यह तो जरा कोष्ठक के शब्दों को भी सबेरे मिलाया, हों! चन्दुभाई ने प्रश्न किया था, उसमें से यह सब लम्बा चला। तो ही चिकना होता है न अधिक, स्पष्टता होती है न। आहा..हा..!

परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना... परद्रव्य शब्द से देव-शास्त्र-गुरु, उनकी

ओर का विकल्प, उनकी ओर का हुआ अपना ज्ञान, वह सब परद्रव्य है। उसका लक्ष्य छोड़कर, उसका आश्रय छोड़कर, उस पर जो दृष्टि पड़ी है, उसे वहाँ से उठाकर **निःशेषरूप...** अर्थात् सम्पूर्णरूप से **अन्तर्मुख योग...** अर्थात् उपयोग में से **उपादेय...** उस उपयोग में से निकली हुई जो दशा, वह आदरणीय है। **ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान...** आहा..हा..! **ऐसा जो निज परमतत्त्व...** परमज्ञायकभाव भगवानस्वरूप का ज्ञान। वह भी ज्ञान शब्द प्रयोग नहीं किया। परिज्ञान (कहा है)। यह कोष्ठक में संक्षिप्त जानना किया है। **सो ज्ञान है।** उस ज्ञान को मोक्ष के मार्ग का कारण कहा जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ तो ये सब भगवान की टोकरी बजावे और वांचे-फाचे तो यह ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। प्रेमचन्दभाई! गजब बात! अभी लोगों के कान में नहीं पड़ी हो, वे बेचारे कहें, परावलम्बी बात में पड़े हैं और मानते हैं कि हम कुछ करते हैं। आहा..हा..! स्वावलम्बीरहित ज्ञान को भगवान ज्ञान नहीं कहते। समझ में आया? यह तो जिसे...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब परिज्ञान... सब परिज्ञान।

मुमुक्षु : ज्ञान में क्या अन्तर पड़ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ अन्तर नहीं पड़ता। स्व को पकड़ता है, इतना बस। ज्ञान कम हो, अधिक न हो, उसका कुछ नहीं। स्थिरता बढ़ती है।

मुमुक्षु : ज्ञान में कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। किसी को विशेष ज्ञान भले हो परन्तु ज्ञान की वह विशेषता नहीं है। स्व को पकड़ने की जो लब्धि है, वह है, बस! हो गया।

मुमुक्षु : स्थिरता में अन्तर, ज्ञान में अन्तर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ अन्तर नहीं। वह तो विशेष भावश्रुतज्ञान हो, उसके समकित को विशेष दृढ़ता कही है न? अवगाढ़ समकित कहा है न? दस सम्यक्त्व में। ज्ञान के भेद में दो लिये हैं। एक श्रुतज्ञान की तीव्रता हो अन्दर की, वह समकित और केवलज्ञानी, ऐसे दो लिये हैं, दो अपेक्षा से। लो यह ज्ञान, मोक्ष के मार्ग का ज्ञान। कितना पढ़े तो यह ज्ञान हो? ऐ प्रकाशदासजी!

मुमुक्षु : प्रभु जो समझाते हैं, वैसा ज्ञान हमारे पकड़ में आवे तो बात.... बाकी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो परद्रव्य के अवलम्बन बिना कहा है।

मुमुक्षु : यह बात तो ऐसी ही है परन्तु यह तो व्यवहार से.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो व्यवहार के अवलम्बन का निषेध है। यह तो वीतरागी ज्ञान है। वह ज्ञान है, परन्तु वीतरागी ज्ञान है। जिसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं। यह पहले आ गया है। परमनिरपेक्ष मोक्षमार्ग। आहा..हा..! शुद्धरत्नत्रय। नियमसार में भी गजब बातें की हैं! तीन शास्त्र तो बाह्य में प्रसिद्ध थे—समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय। नियमसार गुप्त था, वह बाहर आया। श्रीमद् को यह मिला नहीं। नियमसार और पंचाध्यायी, दो नहीं मिले। टोडरमलजी को नियमसार मिला है, भाई! हमने टीकासहित पढ़ा है-ऐसा लिखा है। नियमसार टीका की बातें आती हैं।

कहते हैं, इस ज्ञान को मोक्ष के मार्गरूप से.... अर्थात्? बन्धन को छूटने का यह ज्ञान, वह ज्ञान है। दूसरे ज्ञान तो बन्धन के कारण हैं। समझ में आया?

अब सम्यग्दर्शन। दर्शन-सम्यग्दर्शन, परम श्रद्धा किसे कहना? **भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी...** इसका जो कलश लेंगे, उसमें तो रत्नत्रय का आश्रय करके, ऐसा भी कहेंगे। कलश में (कहेंगे)। वह तो प्रगट करना है न, इस अपेक्षा से (बात है)। बाकी उसका आश्रय नहीं है, परन्तु आश्रय का अर्थ ही उसका आश्रय करने जाये तो उसका द्रव्य पर आश्रय जाये। निर्मल पर्याय उसे पकड़े, वहाँ किस प्रकार पकड़ सके? द्रव्य पर जाये तब निर्मल पर्याय प्रगट हो। समझ में आया? नीचे अर्थ है। इस टीका का कलश है। समझ में आया? इस टीका का ही कलश है, तथापि रत्नत्रय का आश्रय करके, ऐसा वहाँ कहते हैं। इसका अर्थ कि निर्मल पर्याय प्रगट करके मुक्तिरूपी स्त्री को वरते हैं।

भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी जीव को... आहा..हा..! यह भगवान आत्मा अपना, इसका जो अन्तर आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान आत्मा, ऐसे परम **सुखाभिलाषी जीव को...** ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द भगवान परमात्मा का सुख, उसके अभिलाषी जीव को। नहीं सुख कहीं स्त्री में, नहीं पैसे में, नहीं स्वर्ग में, नहीं इज्जत में, नहीं मकान में, नहीं उसके विकल्प में अथवा नहीं उसकी एक समय की बाहर की विकसित पर्याय में। ऐसा भगवान परमात्मा स्वयं है। उसके अतीन्द्रिय आनन्द का अभिलाषी। जिसे दुनिया की किसी भी अनुकूलता की सुविधा में उल्लसित वीर्य नहीं होता। कहीं जिसे

बाह्यपदार्थ के प्रति कोई सूक्ष्म दौड़ में भी ठीक है, ऐसा नहीं लगता। वह परमात्मा-भगवान आत्मा के अतीन्द्रिय सुख का अभिलाषी होता है। समझ में आया?

भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी जीव को शुद्ध अन्तःतत्व के विलास का जन्मभूमिस्थान.... भाषा तो कैसी की है! देखो! शुद्ध अन्तःतत्त्व, भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान आत्मा। आहा..हा..! शुद्ध अन्तःतत्त्व, शुद्ध अन्तःस्वभाव, उसके **विलास का जन्मभूमिस्थान....** उसके आनन्द का, मौज का, क्रीड़ा का, उत्पत्ति का भूमिस्थान **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** उसमें निज परमतत्त्व कहा था। इसमें **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** निज शुद्ध जीव भी नहीं लिया। क्योंकि यहाँ तो सर्वज्ञ ने कहा हुआ जीव, वह अस्ति है, असंख्य प्रदेशी है। समझ में आया? आहा..हा..!

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ जो आत्मा, तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ, वह शुद्धजीव असंख्य प्रदेशी अस्तिकाय है। है परन्तु असंख्यप्रदेशी है। पण्डितजी! आहा..हा..! देखो न यह टीका! अब इस टीका को अभी कितने ही लोग मान्य नहीं रखते। ऐसी अपनी पण्डिताई के अभिमान (चढ़ गये हैं)। आहा..हा..! भगवान! क्या करें? तेरी दृष्टि को मेल न खाये, इसलिए खोटा है, ऐसा कैसे कहा जाये? बहुत कठिन लगे। ऐसा कि क्लिष्ट टीका की है... परन्तु क्लिष्ट की है या रस बहाया है ऊँचा? स्पष्ट कर दिया है। स्पष्ट। क्या हो? जगत में अनेक... अनेक अभिप्राय-शल्य जगत में है। उसमें यहाँ यह अन्तर में आना, ऐसा जो अभिप्राय होना, वह महापुरुषार्थ है। प्रभु! समझ में आया? बाहर के वे देखने जावे तो कुछ पार आवे, ऐसा नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि, **शुद्ध अन्तःतत्व...** फिर देखा! अन्तर का शुद्ध अन्तःस्वभावभाव, उसके आनन्द की उत्पत्ति भूमिस्थान, ऐसा **जो निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...**

मुमुक्षु : अन्तःतत्त्व कहा, उसे जीवास्तिकाय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे जीवास्तिकाय (कहा)। शुद्ध अन्तःतत्त्व का, मौज का स्थान। आहा..हा..! भगवान का अन्तःतत्त्व, उस क्षेत्र में से तो आनन्द उपजे, ऐसा वह क्षेत्र है, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प तो दुःख हैं। दुःख उत्पन्न होने का यह स्थान नहीं है। आहा..हा..! आनन्द की उत्पत्ति का भूमिस्थान, अतीन्द्रिय आनन्द की उत्पत्ति का क्षेत्र-स्थान। समझ में आया? **जो निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** भगवान अपना आत्मा,

निज शुद्धजीव अस्ति। जीव है और काय। असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का धामरूप एक द्रव्य। देखो! यहाँ द्रव्य लिया है। वहाँ परमात्मतत्त्व लिया था। यहाँ भी शुद्ध अन्त:तत्त्व और शुद्ध जीवास्तिकाय। ऐसा कहकर द्रव्य में से उत्पन्न होता है, ऐसा लिया है। गुण में से या भेद से उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। **उससे उत्पन्न होनेवाला...** शुद्ध जीवास्तिकाय, जो निज अन्त:तत्त्व, जो निज अतीन्द्रिय आनन्द की मौज का, उत्पत्ति का भूमिस्थान, ऐसा जो शुद्ध जीवास्तिकाय वस्तु, **उससे उत्पन्न होनेवाला जो परम श्रद्धान,...** भाषा देखो! **परम श्रद्धान, वही दर्शन है।** यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान शब्द है न, भाई? श्रद्धान शब्द है। यहाँ शब्द **परम श्रद्धान, वही दर्शन है।** उसे सम्यक्त्व कहते हैं। आहा..हा..! कहो, समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, नौ तत्त्व की श्रद्धा करना, वह सम्यक्त्व नहीं है। समझ में आया? 'कारण गणि प्रत्यक्ष'-श्रीमद् में आता है, वह तो व्यवहार कहा है, परमार्थ नहीं। 'स्वच्छन्द मत आग्रह तजि, वर्ते सद्गुरु लक्ष, समकित तेने भाखियो कारण गणि प्रत्यक्ष।' खड़े रहने के लिये बात की है। वह सम्यक्त्व नहीं है। ऐई! आहा..हा..! यहाँ तो इसकी श्रद्धा है, उसका ज्ञान करना। उनका भी आश्रय छोड़कर।

निज शुद्ध जीवास्तिकाय,... भगवान आत्मा अस्ति, सत्तारूप अस्तित्ववाला पदार्थ और असंख्यप्रदेशी काय है वह तो। असंख्यप्रदेशी उसकी काय है। असंख्य प्रदेश उसका शरीर है। समझ में आया? जो श्रीमद् में आता है 'शुद्धबुद्ध चैतन्यघन।' उस चैतन्यघन को प्रदेश में डाला है। असंख्यप्रदेश का पिण्ड, उसे चैतन्यघन कहा है। समझ में आया? और स्थान कहा है न? स्थान कहा, इसलिए फिर क्षेत्र शामिल डाला। अस्तिकाय। आहा..हा..!

निज... निज शब्द जहाँ-तहाँ प्रयोग किया है। कोई दूसरे परमात्मा नहीं ले लेवे। दूसरे का-सर्वज्ञ का, अरिहन्त का, सिद्ध का आत्मा - ऐसा कोई न ले लेवे। आहा..हा..! कितनी धीरज चाहिए इसमें? ऐई! देवानुप्रिया। कल समुद्र का दृष्टान्त दिया था न? प्रकाशदासजी! पानी-पानी। भरपूर समुद्र। सली डुबोकर वह समुद्र खाली करना। धीरज चाहिए।

मुमुक्षु : धीरज जितनी गम्भीरता चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : गम्भीर और धीरज चाहिए। एकदम उतावल से ऐसा हो जाये... ऐसा हो जाये... ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा **नज शुद्ध जीवास्तिकाय, उससे उत्पन्न होनेवाला....** देखो! यह सम्यग्दर्शन पर्याय है। शुद्ध जीवास्तिकाय उत्पन्न नहीं होता। वह तो है। समझ में आया? **उससे उत्पन्न होनेवाला...** जीवास्तिकाय से उत्पन्न होनेवाला, ऐसा। निमित्त से नहीं, विकल्प से नहीं, पर्याय से नहीं। आहा..हा..! दिगम्बर सन्तों की वाणी। दिगम्बर सन्त परमात्मा! अनादि सनातन पन्थ है। वह कोई कल्पित या ऐसा है और वैसा, इसके साथ में दूसरे के साथ इसकी तुलना (करने) जाये तो मेल खाये, ऐसा नहीं है। दूसरों के साथ तुलना... आया था या नहीं? किसमें आया था? रमेश में। वह सब व्याख्यान में आया था 'मारग जुदा जगत थी सन्त ना रे लोल जगत साथे मिढवणी नव थाय। सन्त पंथ जगपंथ थी जुदा जाण जो रे लोल। संत पंथ जगपंथ थी जुदा जाण जो रे लोल। जगत साथे मिढवणी न थाय। जगत साथ मिढवाणी नव थाय।' किसी के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सत्य को असत्य के साथ किस प्रकार मेल हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : संत पंथ जगपंथ थी जुदा जाण जो रे लोल। आज पत्र पाया है? नहीं आया। याद नहीं... 'सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या रे लोल। सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या।' अरे! भगवान आत्मा में चैतन्य समुद्र भरा है। वहाँ मृग प्यासे घूमते हैं। 'दौड़े हांफी झांझवां जलने रे काज।' यह विकल्प और पर की पर्याय में खोजने जाये, मुझे उसमें से समकित होगा। 'दौड़े हांफी झांझवां जलने रे काज।' अरे रे! 'सांचा वारि ऐने ना मले रे लोल। अरे रे सच्चा पानी रे उसे नहीं मिले रे।' अच्छा पानी नहीं मिले। मृगतृष्णा का पानी। खारी जमीन को सूर्य की किरण का स्पर्श होने पर पानी जैसा दिखाव लगता है। (वहाँ) पानी नहीं, बापू! तेरी तृषा नहीं मिटेगी। समझ में आया? आहा..हा..! व्याख्यान में से, वह शीघ्र कवि है। हमारे प्रेमचन्दभाई का पौत्र है। आहा..हा..! रचा है सब व्याख्यान में से। आहा..हा..! ऐसी बात कहाँ है? किसके पास है कि दूसरे के साथ तुलना करे? आहा..हा..!

अणुव्रत और महाव्रत तथा उनका प्रचार, वह धर्म। अरे! भगवान! तूने क्या किया? भाई! इस परिणाम में, बापू! गहरे जल में-भव में जाना पड़ेगा, भाई! इस भव का अन्त वहाँ नहीं है। आहा..हा..! भव के अन्त का किनारा तो अन्दर जीवास्तिकाय तत्त्व है। समझ में

आया ? यह दुनिया माने और दुनिया प्रसन्न हो और दुनिया अभिनन्दन दे, उसमें कुछ भला हो, ऐसा नहीं है। यह कोई गिरवी रखा जाये, ऐसा नहीं है कि मुझे बहुत मानते थे और बहुत महिमा करते थे, इसलिए कुछ तो हमारे में होगा या नहीं ? आहा..हा.. ! भगवान ! तुझमें तो सब ही है, कुछ क्या ? परन्तु कहाँ ? अपने जीवास्तिकाय पदार्थ में सब है। आहा..हा.. !

उससे उत्पन्न होनेवाला जो परम श्रद्धान, वही दर्शन है। वापस उसी में रखकर। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : परम अवगाढ़ सम्यक्त्व कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह सब परम है, अवगाढ़ ही है सम्यक्त्व। परम शब्द में आया है न ! सबको परम शब्द प्रयोग किया जाता है। कहो, समझ में आया ? वह परम क्या ? वह परम होकर परमात्मा हो जानेवाला है उसमें से। गिरने की बात नहीं है, वापिस फिरने की बात नहीं है। अफरगामी चले जिस पंथ में गये, उस पंथ को उसने पूरा किया। नवरंगभाई ! कायर का तो कलेजा काँप उठै, ऐसी बातें हैं। आहा..हा.. ! वीर की बातें भीतर तीर-भाले के समान उतर जाती हैं। आहा..हा.. !

भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप से भरपूर भगवान की दृष्टि होने पर। वह उपजता अर्थात् पर्यायरूप से नया होता है। वह तत्त्वार्थश्रद्धान, वह परमश्रद्धान समकित है। समझ में आया ? वह भी भगवान ने कहा हुआ जीवास्तिकाय। दूसरे जीव... जीव करे और आत्मा.. आत्मा करके बात करे, उसके साथ कुछ मेल खाये, ऐसा नहीं है - ऐसी बात है। पृथक् पड़कर, पर से पृथक् पड़े, तब अन्दर जाये ऐसा है। दो बोल हुए।

तीसरा बोल। चारित्र किसे कहना ? **निश्चयज्ञानदर्शनात्मक...** भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शन। जानने-देखने के स्वभावसहित। सामान्य दर्शन, विशेष ज्ञान—ऐसी शक्तिवाला तत्त्व। निज निश्चय। जानना और दर्शनस्वरूप वह तो है। ऐसा कारणपरमात्मा है। उस परमात्मा का स्वभाव पहले वर्णन किया। वह तो निश्चय ज्ञानदर्शनस्वरूप, वह कारणपरमात्मा है। पहले में निज परमतत्त्व कहा था; दूसरे में अन्तःतत्त्व और शुद्ध जीवास्तिकाय कहा। यहाँ कारणपरमात्मा लिया। भाई ! वस्तु एक की एक है। भगवान कारणपरमात्मा ! कारणपरमात्मा किसे कहते हैं ? समझ में आया ? कारण निश्चय जो ज्ञान और दर्शन, जानने और देखने के स्वभावस्वरूप, ऐसा कारणपरमात्मा ध्रुव, नित्य, सामान्य, एकरूप

ज्ञायकभाव, वह कारणपरमात्मा है। जिसके कारण से मोक्ष का कार्य प्रगट हो, उसे यहाँ कारणपरमात्मा कहा जाता है। समझ में आया?

(३) निश्चयज्ञानदर्शनात्मक कारणपरमात्मा में... अन्तर शुद्धचैतन्यघन भगवान आनन्द का अतीन्द्रिय धामस्वरूप, ऐसा **कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति...** चलित न हो, ऐसी स्थिति। **(निश्चलरूप से लीन रहना) ही चारित्र है।** वही चारित्र है। व्यवहार के परिणाम और विकल्प, वह चारित्र नहीं है। आहा..हा..! वे तो पंच महाव्रत अर्थात् अध्यात्म हो गया, त्याग हो गया जिसे। अध्यात्म का दूसरा... हमारा अध्यात्म आता है। अरे भगवान! क्या हो? जगत के प्राणी को योग्यता न हो तो उपदेश भी नहीं मिलता। यह तो परमात्मा के पंथ में पड़ने का मार्ग है। यह कहीं कायर का काम नहीं है। आहा..हा..! अरे! हमारे साथ कोई हाँ पाड़नेवाला नहीं मिलता। अकेला जा न! उसमें नहीं आता। अकेला जा न तू एक... कहीं पुस्तक में आता है।

मुमुक्षु : जन्म-मरण में तुझे किसी का साथ नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुझे कोई साथ नहीं हो तो अकेला जा न! आनन्दघनजी भी कहते हैं। तुझे कोई न साथ। 'दीठो दिठाय करि मार्ग पंथ, तेनूं कोई... अभिनन्दन जिनदर्शन तरसिये,....' कोई शाबासी करके थपकी दे कि वाह! तेरा मार्ग, ऐसा कोई मिलता नहीं, कहते हैं। मुझे क्या करना? 'धिठाय करि...' मेरे मार्ग में मैं हूँ, दुनिया चाहे जा माने। प्रेमचन्दभाई! आनन्दघनजी में आता है। 'दर्शन दर्शन दोह्यलो' आहा..हा..!

कहते हैं, अविचल स्थिति। आहा..हा..! ध्रुव भगवान आत्मा में चलित नहीं हो, ऐसी रमणता-स्थिति को यहाँ चारित्र कहते हैं। ऐई! प्रकाशदासजी! लो, यह चारित्र। आहा..हा..! यह तो कहे पंच महाव्रत पालो, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहपना। यह भी वापस उसका माना हुआ। आहा..हा..! हम चारित्री हुए हैं और हमारे चारित्र, वह धर्म है। यह हमारा अध्यात्मधर्म है, वापस ऐसा कहे। ये शब्द वह तुलसी प्रयोग करता है। यह अध्यात्ममार्ग है, ऐसा कहे। अरे! अध्यात्म किसे कहना? भाई! बाह्य त्याग नहीं और प्रवृत्ति हो न।

मुमुक्षु : विश्व कल्याण....

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्व कल्याण। आत्मा का नहीं न?

कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति... अन्दर भगवान आनन्द का धाम प्रभु अतीन्द्रिय रस की कातली आत्मा, उसमें निश्चलपने की लीनता को भगवान चारित्र कहते हैं। यह चारित्र मोक्ष का कारण है। देह की क्रिया नहीं, पंच महाव्रत के विकल्प, वे कहीं चारित्र नहीं और वे मोक्ष का कारण है नहीं।

मुमुक्षु : 'चारित्तं खलु धम्मो' वह चारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : .....ऐसा यह है। धारकर क्या है? 'दंसण मूलो धम्मो'। चारित्र है। धर्म वह चारित्र है। चारित्र का मूल दर्शन है।

मुमुक्षु : कौन सा चारित्र, यह हमारे विचारना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या विचारे? वह चारित्र यह। तुम्हारे विचारने का क्या है?

मुमुक्षु : पंच महाव्रत....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे चारित्र किसने कहा? उसके लिये तो बात चलती है। तिखल... है। नारद है न। समझता है कि पंच महाव्रत चारित्र नहीं। परन्तु हमारे समझने का कुछ? हमारे समझने का अर्थात् क्या? यही चारित्र है। पंच महाव्रत के विकल्प भी मुनि को होते अवश्य हैं, वह चारित्र नहीं है। निश्चयचारित्र ऐसा हो, वहाँ पूर्णदशा न हो और पंच महाव्रत के विकल्प आवें, परन्तु वे तो बन्ध का कारण है; चारित्र नहीं। कहो, समझ में आया? तीनों सम्प्रदाय में इसकी तो बड़ी गड़बड़ी है। आहा..हा..! महाव्रतधारी हैं, भाई! महाव्रतधारी हैं। किसके महाव्रतधारी? कहाँ थे? महाव्रतधारी किसे कहना, यह अभी खबर नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? लो, यह तीन की व्याख्या हुई—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की (व्याख्या हुई)।

ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम... लो, नियमसार है न यह? **ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम...** देखो! तीन का एक कह दिया। वह **निर्वाण का कारण है।** वह मोक्ष का कारण है। नीचे है न, २ (नम्बर)। **कारण जैसा ही कार्य होता है,...** है न नोट। **इसलिए स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास ही....** स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास, अतीन्द्रिय आनन्द भगवान में रमने का अभ्यास **वास्तव में अनन्त काल तक स्वरूप में स्थिर रह जाने का उपाय है।** अन्तर आनन्द में स्थिर होना। फिर वह अनन्त काल स्थिर हो जायेगा। अनन्त काल स्थिर होने का यह उपाय है। समझ में आया?

उस 'नियम' शब्द को... अब सार की व्याख्या करते हैं। यह नियम की व्याख्या की। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र यह नियम है। अब इसे नियम 'सार' शब्द क्यों कहा? **विपरीत के परिहार हेतु 'सार' शब्द जोड़ा गया है।** नीचे तीन (अंक) **विपरीत=विरुद्ध। (व्यवहारत्नत्रयरूप विकल्पों को-पराश्रितभावों को छोड़कर,...)** क्योंकि वे विपरीत हैं। इसके बदले कितने ही विपरीत का अर्थ मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र करते हैं परन्तु बहुत जगह अन्दर आगे आया है कि निश्चय से व्यवहार विपरीत है। समझ में आया? अन्दर में बहुत जगह (आया है)। एक हिम्मतभाई ने स्पष्ट बात रखी है।

(व्यवहारत्नत्रयरूप विकल्पों को-पराश्रित...) है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह राग है, शास्त्र का ज्ञान, वह राग / विकल्प है और पंच महाव्रत के विकल्प वे भी राग हैं। ऐसे जो व्यवहाररत्नत्रयस्वरूप भेद, **(पराश्रितभावों को छोड़कर,...)** वह नहीं, व्यवहार नहीं। व्यवहार, मोक्षमार्ग है नहीं। **(मात्र निर्विकल्प ज्ञानदर्शनचारित्र का ही-शुद्धरत्नत्रय का ही-स्वीकार करने हेतु....)** लो, ठीक। मात्र निर्विकल्प—रागरहित, विकल्परहित—वस्तु के स्वरूप की वीतरागी निर्विकल्पदशा, ऐसा जो निर्विकल्पज्ञान, निर्विकल्पदर्शन और निर्विकल्पचारित्र का ही। अर्थात् कि **(शुद्धरत्नत्रय का ही...)** ऐसा। निर्विकल्प ज्ञान-दर्शन-चारित्र कहो या शुद्धरत्नत्रय कहो। **(स्वीकार करने हेतु....)** यही मोक्ष का मार्ग है। **('नियम' के साथ 'सार' शब्द जोड़ा है।)** पाठ में है न, **विपरीतपरिहारार्थं भणितं खलु सारमिति वचनम्।** समझ में आया? इसमें भी बड़ा विवाद। विपरीत के बहुत अर्थ आयेंगे। निश्चय अर्थ से व्यवहार विपरीत है। निश्चयरत्नत्रय से व्यवहार रत्नत्रय विपरीत है। आवश्यक, क्रिया ऐसे बहुत बोल हैं। इसमें लिखे हैं। १७६, १४९, १७५ बहुत थे। यह तो मैंने ४३, ८२, ८६, ९७। यहाँ तो अपने एक का काम है न। सब बहुत बोल लिखे हैं।

निश्चय और व्यवहार विरुद्ध हैं। नहीं तो दो भेद कैसे पड़े? इसका फल भी विरुद्ध है। निश्चयरत्नत्रय का फल मोक्ष है और व्यवहार का फल बन्ध है। निश्चयरत्नत्रय निर्विकल्पदशा है और व्यवहार, वह राग है। राग, बन्धन का कारण है। निर्विकल्पदशा, मोक्ष का कारण है। आहा..हा..! इसलिए व्यवहार को रद्द करने के लिये **'सार' शब्द जोड़ा गया है।**

इसका कलश कहेंगे, लो। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१०

अब, तीसरी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहा जाता है —

(आर्या)

इति विपरीतविमुक्तं रत्नत्रयमनुत्तमं प्रपद्याहम्।
अपुनर्भव-भामिन्यां समुद्भव-मनङ्गशं यामि।।१०।।

(वीरछन्द)

इस प्रकार विपरीत रहित सर्वोत्तम रत्नत्रय पाऊँ।
मुक्ति कामिनी से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख मैं नित भाऊँ॥१०॥

***श्लोकार्थ :*—इस प्रकार, मैं विपरीतरहित (विकल्परहित) अनुत्तम[१] रत्नत्रय का आश्रय करके, मुक्तिरूपी रमणी से उत्पन्न अनङ्ग (अशरीरी; अतीन्द्रिय; आत्मिक) सुख को प्राप्त करता हूँ॥१०॥**

प्रवचन-७, श्लोक-१०-११, गाथा-४, शनिवार, फाल्गुन शुक्ल १०, दिनांक ०६-०३-१९७१

जीव अधिकार का दसवाँ कलश है।

इति विपरीतविमुक्तं रत्नत्रयमनुत्तमं प्रपद्याहम्।
अपुनर्भव-भामिन्यां समुद्भव-मनङ्गशं यामि।।१०।।

यह टीका हो गयी है। इसका वापिस संक्षिप्त में कलश बनाया है। **इस प्रकार, मैं...** स्वयं मुनि अपनी बात करके वस्तु की स्थिति सिद्ध करते हैं। **विपरीतरहित...** अर्थात्? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प है और पंच महाव्रत का यह जो विकल्प है या शास्त्र के पढ़ने का, जानने का जो विकल्प है, वह सब व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। उससे रहित। **विपरीतरहित...** अर्थात् व्यवहार के रागरहित जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? ऊपर आ गया है।

१. अनुत्तम=जिससे उत्तम कोई दूसरा नहीं है - ऐसा सर्वोत्तम, सर्व श्रेष्ठ।

(विकल्परहित) अनुत्तम रत्नत्रय का आश्रय करके,... जिससे उत्तम कोई दूसरा नहीं है - ऐसा सर्वोत्तम, सर्व श्रेष्ठ। अर्थात् ? आत्मा पूर्ण अखण्ड आनन्दस्वरूप है, उसकी स्व के द्रव्य आश्रय की, स्वसन्मुख होकर निर्विकल्प-विकल्प के भेदरहित, निर्विकल्प श्रद्धा, वीतरागी पर्याय प्रगट करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? वस्तु वीतरागमूर्ति आत्मा है। निर्विकल्प रस चैतन्यघन आत्मा है, उसके अन्तर सन्मुख होकर व्यवहार के विकल्प से रहित ऐसा अनुत्तम सम्यग्दर्शन.. अनुत्तम अर्थात् ? उत्तम में उत्तम, उत्कृष्ट, ऐसा। उससे दूसरा कोई ऊँचा नहीं। आत्मा का ध्रुव चैतन्यस्वभाव अभेद आनन्द की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, ये तीनों निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

इससे **विपरीतरहित...** ऐसा कहा है। इसके अर्थ में कितने ही कहते हैं कि विपरीत-मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र विपरीत है, उनसे रहित यह - कितने ही ऐसा अर्थ कहते हैं। यहाँ ऐसा अर्थ नहीं है। समझ में आया ? नीचे अर्थ किया है। **विपरीत=विरुद्ध...** है न ? पहले आ गया है न ? वही यहाँ है।**(व्यवहारत्नत्रयरूप विकल्पों को-पराश्रितभावों को छोड़कर, मात्र निर्विकल्प ज्ञानदर्शनचारित्र का ही-शुद्धरत्नत्रय का ही-स्वीकार करने हेतु 'नियम' के साथ 'सार' शब्द जोड़ा है।)** यह कल आ गया है। भगवान आत्मा अभेद चैतन्यध्रुव, उसका सम्यग्दर्शन अर्थात् निर्विकल्प आत्मा के आनन्द के अनुभव में इसकी प्रतीति और उस आत्मा का स्वसंवेदन-स्व-अपना ज्ञान का, सं-प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन, वह ज्ञान और स्वरूप में लीनता, अरागी चारित्र परिणति, वह चारित्र। इनसे उत्तम कोई चीज़ नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय है, वह उत्तम नहीं है। सूक्ष्म बात है।

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के विकल्प इत्यादि वह सब दोष भाव है। उस दोष भाव से रहित वस्तु के स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और अनुभव रमणता, यह एक ही उत्तम है; इससे दूसरा कोई उत्तम नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रुव में से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी जो दशा (होती है), वही जीव को करनेयोग्य अथवा वह आश्रय करनेयोग्य है। समझ में आया ? आहा..हा.. !

उसे करके **मुक्तिरूपी रमणी से उत्पन्न अनङ्ग सुख को प्राप्त करता हूँ।** मैं तो, ऐसा

कहते हैं। उस मुक्तिरूपी, पूर्ण आनन्द की दशारूपी मुक्ति से उद्भवित **(अनंग; अशरीरी; अतीन्द्रिय;...)** सुख। आत्मा का अतीन्द्रिय सुख जो आत्मा में है, उसे मैं ऐसे रत्नत्रय द्वारा पर्याय में अतीन्द्रिय सुख को मैं प्राप्त करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सब शब्द अटपटे जैसे लगते हैं! अनजाने लोगों को तो यह मार्ग की विधि क्या होगी? मार्ग तो यह है। कभी इसने परिचय में लिया नहीं, सुना नहीं। इसलिए अनुभव में तो आया नहीं। इसलिए इसे लगता है कि यह क्या है? ऐसा कैसा धर्म? पर के त्याग-ग्रहण का विकल्प भी जिसमें नहीं। ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसका अन्तर शरण लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्पदशा (प्रगट होती है), वही कर्तव्य है और वही **आश्रय करके, मुक्तिरूपी रमणी से उत्पन्न अनङ्ग (अशरीरी;...)** शरीररहित दशा—अतीन्द्रिय आनन्द की दशा, उससे प्राप्त होती है। है न? **मनङ्गशं यामि।** ऐसा है न? **समुद्भव-मनङ्गशं** संस्कृत है। **सम** सुख। **(अतीन्द्रिय; आत्मिक) सुख को प्राप्त करता हूँ।** क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है। आहा..हा..! समझ में आया? भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन का भाव, सम्यग्ज्ञान का भाव, सम्यक्चारित्र का भाव, वह अतीन्द्रिय आनन्द के सुखरूप भाव है और उसके द्वारा मैं पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द के सुख को प्राप्त करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो आनन्द को प्राप्त करता हूँ, ऐसा ले लिया है। मुक्ति के सुख को मैं प्राप्त करता हूँ। मार्ग तो मार्ग ऐसा है, भाई! कहते हैं कि जिस मोक्षमार्ग को व्यवहार स्पर्श ही नहीं करता और निश्चयमोक्षमार्ग इस व्यवहार को स्पर्श ही नहीं करता। प्रेमचन्दभाई! ऐसा मार्ग है। आहा..हा..!

ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की दशा। व्यवहाररत्नत्रय तो दुःखरूप भाव है, विकल्प है। आहा..हा..! वह तो शुभभाव है, वह तो कषाय है। बालचन्दजी! शुभभाव। भगवान की भक्ति, भगवान की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, भगवान णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं (करे), वह सब विकल्प, राग, कषाय है क्योंकि परद्रव्य है न? परद्रव्य पर जहाँ लक्ष्य जाता है तो उसे विकल्प आये बिना नहीं रहता। आहा..हा..! समझ में आया?

उसके **मुक्तिरूपी रमणी से उत्पन्न...** उत्पन्न होनेवाले **(अतीन्द्रिय; आत्मिक) सुख को प्राप्त करता हूँ।** मोक्षमार्ग तो यह है। इसके अतिरिक्त सब व्यवहार के कथन

जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं है। वीतराग स्वयं ऐसा कहते हैं कि हमें मानने से और हमारे सामने देखने से तुझे राग होगा। सुमेरुमलजी! ऐसे विकल्प का आश्रय किये बिना विकल्प को छोड़ देना। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सहज सुख है। उसमें से होनेवाली श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह भी अतीन्द्रिय आनन्द के सुखरूप दशा है। अतीन्द्रिय आनन्द का वह मोक्षमार्ग, वह स्वाद है। उससे अतीन्द्रिय पूर्णानन्द की प्राप्ति होती है। बराबर है। आहा..हा..! यह तीन गाथायें हुईं।

गाथा-४

णियमं मोक्खउवाओ तस्स फलं हवदि परमणिव्वाणं।
एदेसिं तिण्हं पि य पत्तेय-परूवणा होई।।४।।

नियमो मोक्षोपायस्तस्य फलं भवति परमनिर्वाणम्।
एतेषां त्रयाणा-मपि च प्रत्येक-प्ररूपणा भवति।।४।।

रत्नत्रयस्य भेदकरणलक्षणकथनमिदम्। मोक्षः साक्षादखिलकर्मप्रध्वञ्सनेनासादितमहा-नन्दलाभः। पूर्वोक्तनिरुपचाररत्नत्रयपरिणतिस्तस्य महानन्दस्योपायः। अपि चैषां ज्ञानदर्शन-चारित्राणां त्रयाणां प्रत्येकप्ररूपणा भवति। कथं, इदं ज्ञानमिदं दर्शनमिदं चारित्रमित्यनेन विकल्पेन। दर्शनज्ञानचारित्राणां लक्षणं वक्ष्यमाणसूत्रेषु ज्ञातव्यं भवति।

है नियम मोक्ष-उपाय, उसका फल परम निर्वाण है।
इन तीन का ही भेद पूर्वक, भिन्न-भिन्न विधान है।।४।।

अन्वयार्थ :—[नियमः] (रत्नत्रयरूप) नियम, [मोक्षोपायः] मोक्ष का उपाय है; [तस्य फलं] उसका फल, [परमनिर्वाणं भवति] परम निर्वाण है। [अपि च] पुनश्च (भेदकथन द्वारा अभेद समझाने के हेतु), [एतेषां त्रयाणां] इन तीनों का [प्रत्येकप्ररूपणा] भेद करके भिन्न-भिन्न निरूपण [भवति] होता है।

टीका :—रत्नत्रय के भेद करने के सम्बन्ध में और उनके लक्षणों के सम्बन्ध में यह कथन है।

समस्त कर्मों के नाश द्वारा साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला महा-आनन्द का लाभ, सो मोक्ष है। उस महा-आनन्द का उपाय, पूर्वोक्त निरुपचार रत्नत्रयरूप परिणति है। पुनश्च (निरुपचार रत्नत्रयरूप अभेदपरिणति में अन्तर्भूत रहे हुए), इन तीन का

— ज्ञान-दर्शन और चारित्र का, भिन्न-भिन्न निरूपण होता है। किस प्रकार ? यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह चारित्र है, इस प्रकार भेद करके। (इस शास्त्र में) जो गाथासूत्र आगे कहे जायेंगे, उनमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र के लक्षण ज्ञात होंगे।

गाथा-४ पर प्रवचन

चौथी (गाथा)

णियमं मोक्खउवाओ तस्स फलं हवदि परमणिव्वाणं।

लो **परमणिव्वाणं** किसी ने पूछा नहीं था कि यह परम क्या कहा ? परम। परम श्रद्धान। परम श्रद्धान। यह तो निर्मल सम्यग्दर्शन, वह परम श्रद्धान है। यहाँ मोक्ष, वह परम निर्वाण।

णियमं मोक्खउवाओ तस्स फलं हवदि परमणिव्वाणं।
एदेसिं तिण्हं पि य पत्तेय-परूवणा होई।।४।।

नीचे हरिगीत-

है नियम मोक्ष-उपाय, उसका फल परम निर्वाण है।
इन तीन का ही भेद पूर्वक, भिन्न-भिन्न विधान है॥४॥

अन्वयार्थ : — (रत्नत्रयरूप) नियम, मोक्ष का उपाय है;... निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह रत्नत्रय मोक्ष का उपाय है। **उसका फल, परम निर्वाण है।** उसका फल मुक्ति है। **पुनश्च...** यह क्यों दिया ? इसका जरा अर्थ किया है। पण्डित ने स्पष्टीकरण किया है। **(भेदकथन द्वारा अभेद समझाने के हेतु),...** ऐसा स्पष्टीकरण किया है। नहीं तो तीन का कथन करूँगा, शब्द तो ऐसे हैं। **इन तीनों का भेद करके भिन्न-भिन्न निरूपण होता है।** ऐसा है न ? परन्तु उसका अर्थ-स्पष्टीकरण किया कि भेद से अभेद समझाने के लिये भेद का कथन करूँगा। समझ में आया ? समयसार ८वीं गाथा की शैली ली है। भेदकथन द्वारा... व्यवहार समकित यह विकल्प है, भेद है। इसके द्वारा यह अभेद चीज़ है, उसे समझने के लिये भेद से कथन करूँगा, ऐसा कहते हैं।

(भेदकथन द्वारा अभेद समझाने के हेतु)... समझाना है तो अखण्ड, अभेद की दृष्टि—ज्ञान और रमणता, परन्तु भेद से-विकल्प से उसे समझाते हैं कि जो यह आत्मा, इसकी श्रद्धा, इसका ज्ञान और रमणता वह मोक्षमार्ग है—ऐसा भेद से समझाते हैं। भेद आदरणीय नहीं है। समझ में आया ? समझानेवाले को भी आदरणीय नहीं और समझनेवाले को भी आदरणीय नहीं, परन्तु भेद द्वारा उसे समझाते हैं कि इस आत्मा का ज्ञान, इस आत्मा का दर्शन और निर्विकल्प चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ?

पहले वहाँ तो इनकार किया था कि व्यवहार के परिहार के लिये सार शब्द लगाया है। विपरीत के परिहार के लिये। यहाँ कहते हैं कि विपरीतता भेद पाड़कर किसलिये कहूँगा ? अभेद को समझाने के लिये भेद को कहूँगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? व्यवहारसम्यक्त्व और व्यवहारज्ञान और व्यवहारचारित्र, ये सब भेद निश्चय को समझाने के लिये यह निमित्त का कथन है। व्यवहार, व्यवहार को समझाने के लिये नहीं है, ऐसा कहते हैं। (समयसार) ८वीं गाथा में भी ऐसा आता है न ? व्यवहार—दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त, यह व्यवहार, निश्चय को समझाता है। परमार्थ वस्तु अभेद को समझाता है। व्यवहार, व्यवहार को समझाता है, ऐसा नहीं है। भेद पाड़कर कथन अभेद को समझाता है। अभेद का ज्ञान होने पर भेद क्या है, ऐसा इसे ज्ञान में आ जाता है। भेद का ज्ञान करने के लिये नया प्रयास नहीं है। भेद द्वारा अभेद का भान होने पर, अभेद के ज्ञान में, भेद-विकल्प क्या है ? उसका ज्ञान, वह इसमें नहीं है, ऐसा नास्तिरूप से ज्ञान आ जाता है। आहा..हा.. ! **इन तीनों का भेद करके भिन्न-भिन्न...** ऐसा है न ? **प्रत्येक...** प्रत्येक का अर्थ भेद पाड़कर। प्रत्येक अर्थात् भिन्न-भिन्न करके। भिन्न निरूपण करूँगा।

***टीका :*—रत्नत्रय के भेद करने के सम्बन्ध में...** आहा..हा.. ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को व्यवहार से समझाने के लिये **और उनके लक्षणों के सम्बन्ध में यह कथन है।** व्यवहार का लक्षण, हों ! व्यवहार के भेद करने के लिये और उनके लक्षण के सम्बन्ध में। उनका अर्थात् व्यवहार का लक्षण क्या है ? इसके लिये यह गाथा है।

समस्त कर्मों के नाश द्वारा साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला महा-आनन्द का लाभ, सो मोक्ष है। मोक्ष की व्याख्या। मोक्ष अर्थात् क्या ? वैसे तो मोक्ष अर्थात् छूटना हुआ। **समस्त कर्मों के नाश द्वारा...** मोक्ष तो छूटने के अर्थ में है। सर्व कर्म के नाश से।

वापस अस्ति ली। **साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला महा-आनन्द का लाभ,...** अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा है, उसकी अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय में पूर्ण प्राप्ति में इस आनन्द का लाभ, महाअतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण लाभ। **साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला...** आहा..हा..! समझ में आया? **महा-आनन्द का लाभ, सो मोक्ष है।** ऐसा अस्ति से सिद्ध किया है। पहली व्याख्या की। मोक्ष शब्द है। समझ में आया? **णियमं मोक्खउवाओ** ऐसा है न? अर्थात् मोक्ष की व्याख्या की। समस्त कर्म के नाश से / छूटना। छूटना- सर्वकर्म से छूटा परन्तु छूटा तब हुआ क्या?

साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला महा-आनन्द का लाभ,... अर्थात्? शक्ति में, स्वभाव में तो महाआनन्द था। भगवान आत्मा महा अतीन्द्रिय आनन्दरूप ही है, परन्तु साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला-पर्याय में आनन्द प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! ऐसा धर्म! **साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला...** प्रगट दशा में प्राप्त होनेवाला **महा-आनन्द का लाभ,...** लो! यह लाभ सवाया। ये बनिया लिखते हैं न? पोपटभाई! लाख सवाया डालते हैं न तुम्हारे? बहियों में और सबमें। दरवाजे में लिखते हैं न? दरवाजे में लिखते हैं। धूल में भी वहाँ लाभ नहीं है। धूल का लाभ वह तो इसे कहाँ आता है? ममता का लाभ है यहाँ। यह तो पूर्ण वीतराग समता के आनन्द का लाभ। समझ में आया? भाषा तो देखो! टीका भी कैसी हुई है!

णियमं मोक्खउवाओ ऐसा कहना है न? **नियम है वह मोक्ष का उपाय है...** तब मोक्ष अर्थात् क्या? ऐसा। नियम (वह) मोक्ष का उपाय है और **उसका फल परम निर्वाण...** मोक्ष अर्थात् क्या? ऐसा। समस्त कर्मों का अभाव होकर, नाश होकर, महा आनन्द का साक्षात् प्राप्त होना (पूर्णानन्द)। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप तो भगवान आत्मा है ही। उसे पर्याय में प्रत्यक्ष-साक्षात् प्रगट (प्राप्त होनेवाला)। यह साक्षात् भगवान को भेंटा, ऐसा नहीं कहते? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु तो अनादि से है। उसे वर्तमान दशा में साक्षात् आनन्द का लाभ। साक्षात् प्राप्त होनेवाला महा आनन्द का लाभ, उसका नाम अस्तिरूप से मुक्ति कहा जाता है। समझ में आया?

श्रीमद् में ऐसा कहा, 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता।' वहाँ यह अस्ति से लिया है। मोक्ष शब्द में छूटना आता है। इसलिए इसमें जरा पहले लिया कि कर्म से, अपूर्ण दशा से छूटने

पर, पूर्णदशा की प्राप्ति, साक्षात् अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ (होना), उसे मोक्ष कहा जाता है। यह संसार का लाभ, वह दु:ख कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। दु:ख, चाहे तो राग चाहे जिस प्रकार का हो, परन्तु उस राग का लाभ, वह दु:ख का लाभ है। आहा..हा..! आकुलता है। यह तो साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला अर्थात् नया प्राप्त होनेवाला, ऐसा कहते हैं न? स्वभाव में तो है, परन्तु पर्याय में प्राप्त होनेवाला। प्राप्त होनेवाला-ऐसा शब्द रखा है न? **महा-नन्दलाभ:...** अरे! इसके घर की बातें भी बड़ी ही आती हैं। समझ में आया?

उस महा-आनन्द का उपाय,... पहली मोक्ष की व्याख्या की। अब **णियमं मोक्खउवाओ** ऐसा शब्द है न? नियम अर्थात् मोक्ष का उपाय। मोक्ष अर्थात् साक्षात् महाआनन्द का प्राप्त होनेवाला लाभ, वह मोक्ष। अब उसका उपाय अर्थात्? **पूर्वोक्त निरुपचार रत्नत्रयरूप परिणति है।** पूर्व कथित निरुपचार-जिसमें उपचार नहीं, वास्तविकता है। समझ में आया? निर-उपचार। उपचार नहीं, निरुपचार। वास्तविक भगवान आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्र वह निरुपचार रत्नत्रय है। जिसमें उपचार नहीं परन्तु वास्तविकता है, यथार्थता है। आहा..हा..! समझ में आया? व्यवहार विकल्प जो मोक्षमार्ग कहा जाता है, वह उपचारिक है, अवास्तविक है, अयथार्थ है। वीतराग का मार्ग, वीतराग-सर्वज्ञ का कहा हुआ अनन्त काल में इसने बराबर सुना नहीं। ऐसे की ऐसी मजदूरी की है। समझ में आया? धर्म के नाम पर मजदूरी (की है)।

पूर्वोक्त निरपेक्ष शुद्ध रत्नत्रय कहा था न? **निरुपचार रत्नत्रयरूप परिणति...** देखा! परिणति अर्थात् पर्याय हुई। निश्चयमोक्षमार्ग आत्मा की निर्दोष, निर्विकारी दशा है। वह गुण नहीं। गुण और द्रव्य तो त्रिकाल अविनाशी होते हैं और मोक्ष का मार्ग तथा मोक्ष वह तो पर्याय है। आहा..हा..! और यह क्या? मोक्ष भी एक परिणति है, पर्याय है; गुण नहीं। ऐसे इस मोक्ष के मार्ग की पर्याय-परिणति, वह अवस्था है, परिणति है। **रत्नत्रयरूप परिणति है...** बहुत से कहते हैं, निश्चय सम्यग्दर्शन तो गुण है, उसे तुम पर्याय कैसे कहते हो? सिद्ध में सम्यग्दर्शन आदि आठ गुण प्रगट हुए, ऐसा कहा है। वह गुण अर्थात् पर्याय। गुण प्रगट होते होंगे? गुण तो त्रिकाल है। समझ में आया? अवगुण-अज्ञान था, उसका नाश होकर गुण प्रगट हुए, ऐसा कहने में आता है। बाकी तो प्रगट हुई है पर्याय। आहा..हा..! अवस्था प्रगट होती है न? या गुण प्रगट होते हैं? गुण तो त्रिकाल हैं। जैसे द्रव्य अनादि-अनन्त अविनाशी है, वैसे अनादि-अनन्त उसके गुण हैं। पर्याय तो नयी

प्रगट होती है। सिद्ध की पर्याय भी सादि-अनन्त है। काल से सरीखी रहे तो। एक-एक समय की अवस्था भिन्न-भिन्न गिनने में आती है। शामिल गिनने में आवे तो सादि-अनन्त, परन्तु वह कोई अनादि-अनन्त नहीं है। अनादि-अनन्त तो आत्मा और अनादि-अनन्त उसके ज्ञान-दर्शन आदि गुण हैं। उसका आश्रय लेकर प्रगट होनेवाली पर्याय, वह परिणति है। कहो, समझ में आया?

तथा **इन तीन का—ज्ञान... पुनश्च (निरुपचार रत्नत्रयरूप अभेदपरिणति में...)** क्या कहते हैं? जो आत्मा का त्रिकाली स्वभाव उसके अवलम्बन से -आश्रय से शक्ति में से प्रगट होनेवाली सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसी जो अभेदपरिणति। **(निरुपचार...)** उपचार नहीं, आरोप नहीं; यथार्थ अवस्था। उसमें **(अन्तर्भूत रहे हुए)...** उसमें अन्तर्भूत रहे हुए। यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीन हैं।

इन तीन का—ज्ञान-दर्शन और चारित्र का, भिन्न-भिन्न निरूपण होता है। अर्थात् भेद से कथन करूँगा। है तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन निर्मल (अवस्था), उन तीन में से तीन को बताने के लिये व्यवहार से उनका कथन करेंगे। समझ में आया? उसमें ऐसा आया। तीन आया था न पहले? अपने कहा था। नौवाँ पृष्ठ। बस वह। उन तीन में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है। वह अलग और वह अलग। है न यह? इन तीन में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है। वहाँ तीन में से प्रत्येक का स्वरूप वह निश्चय है। समझ में आया? उस समय कहा था। यह तो तीन जो आत्मा एकरूप भगवान, उसका अन्तर सम्यक् अनुभव होकर दर्शन, प्रतीति, ज्ञान और रमणता (हुए), उन तीन में से एक-एक को कहूँगा परन्तु वे तीनों निश्चय हैं। एक-एक कहूँगा, वह निश्चय है। उन तीन में से भेद पाड़कर कहूँगा, वह व्यवहार है।

इन तीन का—ज्ञान-दर्शन और चारित्र का, भिन्न-भिन्न निरूपण होता है। अर्थात् भेद से उनका कथन करूँगा कि यह निश्चय सम्यग्दर्शन इसे कहा जाता है। विकल्प से (कहूँगा)। सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इसे कहा जाता है, यह विकल्प से। आत्मा दर्शन-ज्ञान और चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। समझ में आया? आयेगा, कलश में आयेगा। देखो! कि शुद्ध रत्नत्रयात्मक आत्मा है। ऐसा भेद से उसे समझाते हैं कि यह आत्मा शुद्ध रत्नत्रयमय है, ऐसे भेद से समझाना। उसे यहाँ व्यवहार कहने में आता है। भेद,

वह निश्चय को समझाने के लिये कथन है। समझ में आया ? अर्थात् ये जो तीन हैं, वे भेद हैं। पहले तीन थे, वह तो निश्चय के तीन भेद थे। उनका भिन्न-भिन्न निरूपण किया है। अर्थात् ? कि निश्चय ज्ञान यह है, ऐसा विकल्प से-भेद से समझाऊँगा। निश्चयदर्शन यह है, यह भेद से समझाऊँगा। निश्चयचारित्र यह है, यह भेद से समझाऊँगा। ऐसा है।

इन तीन का—ज्ञान-दर्शन और चारित्र का, भिन्न-भिन्न निरूपण होता है। किस प्रकार ? यह ज्ञान है,.... ऐसा। देखो! भेद से कहकर यह अन्तरअनुभव में होनेवाला ज्ञान, वह ज्ञान है, ऐसा भेद से कहने में आता है। ऐसा। **यह दर्शन है, यह चारित्र है, इस प्रकार भेद करके। (इस शास्त्र में) जो गाथासूत्र आगे कहे जायेंगे, उनमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र के लक्षण ज्ञात होंगे।** भेद का कथन इसमें और लक्षण बाद में बतायेंगे, ऐसा कहते हैं। पहला कहा था न ? कि भेद करने के सम्बन्ध में और उनके लक्षण के सम्बन्ध में। टीका का पहला शब्द था। यह तो अध्यात्म बात है; इसलिए समझने के लिये बहुत (धीरज चाहिए)। आज सेठ नहीं आया। समझ में आया ?

यह आत्मा परमेश्वर सर्वज्ञदेव तीर्थंकरदेव परमात्मा ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा, अविनाशी है और उसमें ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि गुण (हैं, वे) अविनाशी हैं। ऐसे अविनाशी तत्त्व के अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन हो, उसे निश्चय सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार से कहूँगा, परन्तु वह व्यवहार मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहा..हा..! व्यवहार, निश्चय को समझाने के लिये आता है। समझ में आया ? गजब, भाई! ऐसा है। भीखाभाई!

मुमुक्षु : निश्चय को समझाने के लिये आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद वहाँ आता है। देखो! इसे ज्ञान कहते हैं, इसे दर्शन कहते हैं, इसे चारित्र कहते हैं परन्तु व्यवहार स्वयं वस्तु है, धर्म का कारण है-ऐसा नहीं है। आहा..हा..! भारी कठिन।

भेद करके। इसलिए भाई ने-पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया न उसमें ? भेद कथन द्वारा अभेद समझाने के लिये, तीन के भेद कहे जायेंगे। आहा..हा..! गजब! इसमें **जो गाथासूत्र आगे कहे जायेंगे, उनमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र के लक्षण ज्ञात होंगे।** आगे पाँच (गाथा) में आयेंगे। दर्शन-ज्ञान-चारित्र का लक्षण क्या ?

श्लोक-११

अब, चौथी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहा जाता है —

(मन्दाक्रान्ता)

मोक्षोपायो भवति यमिनां शुद्धरत्नत्रयात्मा।
ह्यात्मा ज्ञानं न पुनरपरं दृष्टिरन्याऽपि नैव।।
शीलं तावन्न भवति परं मोक्षुभिः प्रोक्तमेतद्।
बुद्ध्वा जन्तुर्न पुनरुदरं याति मातुः स भव्यः।।११।।

(वीरछन्द)

शुद्ध रत्नत्रयमय आतम ही, मोक्षमार्ग है मुनिवर को।
ज्ञान न इससे कोई अन्य है, दर्शन भी नहिं अन्य अहो।।
और शील भी अन्य नहीं है, यही कहें अर्हन्त प्रभो।
इसे जानकर पुनः न जननी, उदर बसे वह भव्य अहो॥११॥

श्लोकार्थ :—मुनियों को मोक्ष का उपाय, शुद्धरत्नत्रयात्मक (शुद्धरत्नत्रय-परिणतिरूप परिणमित) आत्मा है। ज्ञान, इससे कोई अन्य नहीं है; दर्शन भी इससे कोई अन्य नहीं है और शील (चारित्र) भी अन्य नहीं है। यह, मोक्ष प्राप्त करनेवालों ने (अरिहन्त भगवन्तों ने) कहा है। इसे जानकर जो जीव पुनः माता के उदर में नहीं आता, वह भव्य है॥११॥

श्लोक-११ पर प्रवचन

अब, चौथी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहा जाता है —

मोक्षोपायो भवति यमिनां शुद्धरत्नत्रयात्मा।
ह्यात्मा ज्ञानं न पुनरपरं दृष्टिरन्याऽपि नैव।।
शीलं तावन्न भवति परं मोक्षुभिः प्रोक्तमेतद्।
बुद्ध्वा जन्तुर्न पुनरुदरं याति मातुः स भव्यः।।११।।

पद्मप्रभमलधारिदेव वनवासी दिगम्बर सन्त थे। सन्त तो वन में रहते थे। कुन्दकुन्द महाराज ने यह नियमसार बनाया, इसे दो हजार वर्ष हुए। पश्चात् ये पद्मप्रभमलधारिदेव लगभग ९०० वर्ष पहले दिगम्बर सन्त वनवासी (मुनि हुए), उन्होंने यह टीका बनायी। इनका बनाया हुआ यह कलश है।

मुनियों को मोक्ष का उपाय, शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा है। देखो! वापिस उन तीन को अभेद कर दिया। कहते हैं मुनियों को, सच्चे सन्तों को **मोक्ष का उपाय, शुद्धरत्नत्रय...** अर्थात् व्यवहार समकित-ज्ञान-चारित्ररहित, निर्विकल्प परिणति का भाव। आहा..हा..! समझ में आया? सच्चे मुनि होते हैं, उन्हें अन्तर में भगवान पूर्णानन्द प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की परिणति अवस्था से परिणमित आत्मा वह मोक्ष का कारण है, ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! मोक्ष की पर्याय से लिया था न? यहाँ तो आत्मा अभेद से लिया है। आहा..हा..!

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प जो व्यवहार है, शास्त्र का ज्ञान / विकल्प, वह तो राग है; वह मोक्षमार्ग नहीं है तथा पंच महाव्रत के विकल्प, वह राग है; मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो मुनियों का उसे कहा जाता है कि जिन्हें अन्तर स्वरूप में पूर्णानन्द का प्रभु आत्मा वस्तु प्राप्त है। उसकी अन्तर में उसका ज्ञान होकर, प्रतीति होना और उसका ज्ञान में वेदन होना और उसमें रमणता होना। इन तीन से परिणत आत्मा, वह मुक्ति का कारण है। ऐसा क्यों लिया? कि व्यवहार का विकल्प, वह आत्मा नहीं है, वह अनात्मा है। समझ में आया? अनात्मा, मोक्ष का कारण नहीं हो सकता। समझ में आया? मार्ग गजब, भाई! ऐसा। व्यवहार की तो यहाँ कुछ गिनते ही नहीं है... भाई!

कहते हैं कि मुनियों, सच्चे सन्त जो हैं, उन्हें तो अन्तर में आनन्द की दशा का भान होकर प्रतीति हुई है, अन्तर निर्विकल्प ज्ञान हुआ है और निर्विकल्प चारित्र होता है। उन तीन से परिणमित आत्मा, वह मोक्ष का उपाय है। ऐसा कहना है न यहाँ? उन तीन को उपाय कहकर मोक्ष के उपाय को आत्मा कहा। देखो! **मुनियों को मोक्ष का उपाय, शुद्धरत्नत्रयात्मक (शुद्धरत्नत्रय-परिणतिरूप परिणमित) आत्मा है।** आहा..हा..! कहो, समझ में आया? अपना स्वभाव ही आनन्द और शान्त है, वीतराग है। वह आत्मा परिणम गया है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? भाषा ही कैसी इस प्रकार की? अनजाने लोगों को अटपटा जैसा लगता है। इसकी अपेक्षा कोई व्रत पालना, अपवास करना, भक्ति

करना, यात्रा करना,... लो! ऐसा शीघ्र समझ में आये। कहते हैं यह तो शुभराग पुण्य है; यह धर्म नहीं। सुन न! समझ में आया? इसका अभाव होकर आत्मा में आत्मा का अनुभव-दृष्टि-ज्ञानरूप परिणमे, ऐसे आत्मा को मोक्ष का उपाय कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

पहले मोक्ष की व्याख्या की थी न? मोक्ष का उपाय तो यह कहा था। महा आनन्द का उपाय निरुपचार परिणति कही थी। लो, यहाँ वापस कहा, इन तीन से परिणमित आत्मा। अलग-अलग है। शरीर, वाणी, मन तो जड़ कहीं रह गये। कर्म-वर्म कहीं रह गये और दया, दान और व्रत भक्ति के परिणाम कहीं रह गये। वह तो राग, विकार, विभाव है। आहा..हा..! अब यहाँ तो आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु स्वयं है। उसका जो सम्यग्दर्शन, उस ओर की सन्मुख की निर्विकल्प वीतरागीदशा, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र, यह स्वयं मोक्ष का उपाय न कहकर, तीन रूप से परिणमित आत्मा मोक्ष का उपाय है। भाई! आहा..हा..! देखो न!

मुमुक्षु : द्रव्यसंग्रह में भी ऐसा कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहा है, खबर है न? इन तीन का अभेद गिनना, कहा है न? खबर है। पहले शुरुआत में। तीन का अभेदपना, वह मोक्ष का उपाय है। आत्मा वह स्वयं अभेदरूप से परिणम गया, वह आत्मा मोक्ष का उपाय है। कहो, समझ में आया? यह परिणत है, उसका आत्मा। व्यवहार के विकल्प से आत्मा (परिणत)। नहीं। वह तो अनात्मा है। बहुत कठिन काम है। वीतराग का दर्शन, इसे प्राप्त करना अलौकिक बात है। अन्दर से, हों! बाहर वाड़ा से नहीं। आहा..हा..!

ज्ञान, इससे कोई अन्य नहीं है;... अर्थात् आत्मा वस्तु भगवान शुद्ध चैतन्य, पुण्य-पाप के रागरहित—ऐसे आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान आत्मा से कोई अलग नहीं है। यह **ज्ञान, इससे कोई अन्य नहीं है;...** आत्मा ज्ञानरूप परिणमा, वह ज्ञान। वह ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? देखो! यहाँ ज्ञान से पहले लिया, पाठ में से लिया है न? पहले ज्ञान, फिर दर्शन, फिर चारित्र, ऐसा लिया है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने पाठ में लिया है। यह तो धीरे से समझने की अन्तर की बात है, भाई! यह कहीं पुस्तकें पढ़ जाये, वाँच ले, वार्ता कर जाये, (ऐसी बात नहीं है)। वाद-विवाद करे कि इसमें ऐसा है, बापू! वह बात यहाँ नहीं है।

भगवान आत्मा अपने स्वभाव से भरपूर प्रभु में अन्तर्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र (हुए), वह मोक्ष का उपाय कहा था। कहते हैं कि तीन रूप परिणमित आत्मा, मोक्ष का उपाय है क्योंकि आत्मा से कहीं दर्शन-ज्ञान भिन्न नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि मोक्ष का उपाय ज्ञान-दर्शन-चारित्र और उन ज्ञान-दर्शन-चारित्र से परिणत आत्मा है। अर्थात् आत्मा से ज्ञान-दर्शन-चारित्र कहीं भिन्न नहीं है। व्यवहार ज्ञान, वह तो आत्मा से भिन्न चीज़ है। पंच महाव्रत के परिणाम, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प वह तो आत्मा से भिन्न चीज़ है। समझ में आया? सूक्ष्म बात जँचती है न, सुमेरुमलजी! बात तो यह है। यही बात है। किसी को ऐसा लगे कि परन्तु ऐसा एक निश्चय-निश्चय? सच्चा.. सच्चा.. सच्चा.. कोई खोटा नहीं, ऐ नवरंगभाई! यह तो सच्ची बात है।

कहते हैं कि सच्चे सन्त वनवासी होते हैं। (उन्हें) बाह्य में तो नग्नदशा होती है। अन्तर में उन्हें ऐसी दशा हो (अर्थात्) स्वभाव के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हुए हों) तो वह आत्मा ही मोक्ष का उपाय है। बाहर की क्रिया, शरीर की क्रिया और विकल्प, वे कहीं मोक्ष का उपाय नहीं हैं क्योंकि आत्मा उस रूप से नहीं होता। आत्मा उनरूप नहीं होता, वह मोक्ष का कारण नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निरंजनभाई! मार्ग बहुत अलग। वीतराग का मार्ग लोगों को मिलता नहीं, हों! सुनने को मिलता नहीं, इसलिए कहीं के कहीं अटककर जिन्दगी चली जाती है। आहा..हा..!

कहते हैं, आत्मा स्वयं ही मोक्ष का उपाय है। आहा..हा..! क्योंकि वह ज्ञान जो सम्यग्ज्ञान-स्वसंवेदनज्ञान—आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान कहीं आत्मा से पृथक् नहीं है। समझ में आया? **दर्शन भी इससे कोई अन्य नहीं है...** लो! यह और 'ही' आया वापस। कहो, समझ में आया? सम्यग्दर्शन भी आत्मा के निर्विकल्प श्रद्धा की परिणति, वह आत्मा है। आत्मा से कहीं सम्यग्दर्शन भिन्न चीज़ नहीं है। आहा..हा..! **और शील (चारित्र) भी अन्य नहीं है।** चारित्र भी दूसरा नहीं है। देह की क्रिया या पंच महाव्रत का विकल्प, वह चारित्र नहीं है। चारित्र तो आत्मा है। स्वरूप की, आनन्द की लीनतारूप परिणमित आत्मा, वह चारित्र है, उससे कोई चारित्र भिन्न चीज़ नहीं है।

यह, मोक्ष प्राप्त करनेवालों ने (अरिहन्त भगवन्तों ने) कहा है। ऐसा किसने

कहा ? **मोक्ष प्राप्त करनेवालों ने (अरिहन्त भगवन्तों ने)...** इसमें अरिहन्त आया। टोडरमलजी में पहले अरहन्ता लिया है, हों ! शुरुआत में पाँच णमोकार लिया है न ? णमो अरहंताणं लिया है। णमो अरिहंताणं नहीं लिया। अर्थ में वापस अरिहंताणं किया है। टोडरमलजी ने शुरुआत में पहले नवकार लिया है न, वहाँ। णमो अरहंताणं, ऐसा लिया है। अर्थ में णमो अरिहंताणं किया है। पाठ ऐसा लिया। पाठ णमो अरिहंताणं नहीं लिया।

यह, मोक्ष प्राप्त करनेवालों ने (अरिहन्त भगवन्तों ने) कहा है। किसी के घर की बात नहीं है। परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने कहा है। **इसे जानकर जो जीव पुनः माता के उदर में नहीं आता, वह भव्य है।** आहा..हा.. ! मोक्ष की बात है न ? मोक्ष हुआ, उसे फिर से अवतार नहीं होता। आहा..हा.. ! ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमकर आत्मा मोक्ष को प्राप्त करता है, वह फिर से माता के उदर में नहीं आता, उसे फिर से अवतार नहीं होता। उसे यहाँ भव्य जीव को, मोक्ष के मार्गरूप परिणमित को मोक्ष का उपाय कहा गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा-५

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।
ववगय असेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो।।५।।

आप्तागमतत्त्वानां श्रद्धानाद्भवति सम्यक्त्वम्।
व्यपगताशेषदोषः सकलगुणात्मा भवेदाप्तः।।५।।

व्यवहारसम्यक्त्वस्वरूपाख्यानमेतत्। आप्तः शंकारहितः। शंका हि सकलमोहराग-द्वेषादयः। आगमः तन्मुखारविन्दविनिर्गतसमस्तवस्तुविस्तारसमर्थनदक्षः चतुरवचनसन्दर्भः। तत्त्वानि च बहिस्तत्त्वान्तस्तत्त्वपरमात्मतत्त्वभेदभिन्नानि अथवा जीवाजीवास्रवसम्वरनिर्जरा-बन्धमोक्षाणां भेदात्सप्तधा भवन्ति।

तेषां सम्यक्श्रद्धानं व्यवहारसम्यक्त्वमिति।

रे ! आप्त-आगम-तत्त्व का श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
निःशेषदोषविहीन जो गुणसकलमय सो आप्त है॥५॥

अन्वयार्थ :—[आप्तागमतत्त्वानां] आप्त, आगम और तत्त्वों की [श्रद्धानात्] श्रद्धा से [सम्यक्त्वम्] सम्यक्त्व [भवति] होता है; [व्यपगताशेषदोषः] जिसके अशेष (समस्त) दोष दूर हुए हैं—ऐसा जो [सकलगुणात्मा] सकल गुणमय पुरुष, [आप्तः भवेत्] वह आप्त है।

टीका :—यह व्यवहारसम्यक्त्व के स्वरूप का कथन है।

आप्त, अर्थात् शंकारहित। शंका, अर्थात् सकल मोहरागद्वेषादिक (दोष)। आगम, अर्थात् आप्त के मुखारविन्द से निकली हुई, समस्त वस्तुविस्तार का स्थापन करने में समर्थ—ऐसी चतुर वचनरचना। तत्त्व, बहिःतत्त्व और अन्तःतत्त्वरूप परमात्मतत्त्व—ऐसे (दो) भेदोंवाले हैं अथवा जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष—ऐसे भेदों के कारण सात प्रकार के हैं। उनका (आप्त का, आगम का और तत्त्व का) सम्यक्श्रद्धान, सो व्यवहारसम्यक्त्व है।

प्रवचन-८, श्लोक-१२, गाथा-५-६, रविवार, फाल्गुन शुक्ल ११, दिनांक ०७-०३-१९७१

नियमसार जीव अधिकार गाथा ५। **यह व्यवहारसम्यक्त्व के स्वरूप का कथन है।**

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।
ववगय असेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो।।५।।

रे ! आप्त-आगम-तत्त्व का श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
नि:शेषदोषविहीन जो गुणसकलमय सो आप्त है।।५।।

यह व्यवहार समकित, निश्चय समकित को बताता है। ऐसा आया न पहले ? भेद कथन द्वारा ऐसा जो व्यवहार समकित हो, वह अन्दर निश्चय अनुभव का समकित हो, ऐसा वह बताता है। चन्दुभाई ! व्यवहार हो और निश्चय न हो, ऐसा यहाँ नहीं है।

मुमुक्षु : निश्चयरहित व्यवहार होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह यहाँ बात ही नहीं है। भेद, उसे—अभेद को बताता है। ऐसे समकित को। जिसे ऐसी व्यवहारश्रद्धा हो, उसे अन्तर निश्चय सम्यक् आत्मा का अनुभव समकित होता है, ऐसा बतानेवाला यह व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान आदि हैं। पहले ये कथन आ गया है। भेद कथन द्वारा अभेद समझाना है, भाई ! पण्डितजी ने बहुत सरस किया है। अपिचन्द है न शब्दार्थ में ? उसका थोड़ा अन्वयार्थ करते हैं, पाँच मिनिट।

आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है;... शब्द तो यह है, परन्तु यह व्यवहार है, ऐसा है। कितनों को यह जँचता नहीं कि, नहीं, यह व्यवहार कैसे लिखा इसमें ? ऐसा कि यहाँ तो सम्यक्त्व कहा है, ऐसा कितने ही कहते हैं। **जिसके अशेष (समस्त) दोष दूर हुए हैं...** अब आप्त की व्याख्या। परमेश्वर / आप्त हित के लिये प्रतीति करनेयोग्य परमात्मा ऐसे होते हैं। **जिसके अशेष (समस्त) दोष दूर हुए हैं...** सभी दोष अभावरूप हो गये हैं। **ऐसा जो सकल गुणमय पुरुष,...** और पूर्ण गुणमय पुरुष को यहाँ **आप्त...** कहते हैं। यह आप्त की व्याख्या है। पाठ में तो इतना ही है। फिर टीका में यह सब करेंगे। आगम की भी व्याख्या, तत्त्व की भी व्याख्या करेंगे।

आप्त, अर्थात् शंकारहित। पहली यह बात ली है। जिसे शंका नहीं। **शंका,**

अर्थात् सकल मोहरागद्वेषादिक (दोष)। यह शंका की व्याख्या है। दर्शन, चारित्र, जितने दोष मिथ्यात्वसहित हैं, उन सब दोषों सहित, उसे शंका कहते हैं। उस शंकारहित को आप्त कहते हैं। समझ में आया ? हो गयी नियमसार पुस्तकें ? नहीं होगी ? बाहर अधिक नहीं निकाले होंगे। तपसी ! नियमसार कैसे कम पड़े ? अधिक रखना चाहिए न ? प्रभावना करनेवाले को ५०, ६०, ७० रखना चाहिए। क्या जवाब दिया ? रामजीभाई कहते हैं। ये समझते नहीं। गुजराती तो, हिन्दी हो न हिन्दी। बहुत हिन्दी हो। अब रविवार था, इसलिए अधिक हो। फिर मँगा लो न बाद में क्या। कहो, समझ में आया ? रविवार के दिन अधिक लोग होते हैं न, यह तो शब्द अन्दर हों तो उन्हें ख्याल आवे।

आप्त अर्थात् परमेश्वर सर्वज्ञदेव। वह किसे कहते हैं ? जो शंकारहित हों उन्हें। पाठ में ऐसा है न ? **ववगय असेसदोसो** इसे संक्षेप में कह दिया कि शंका अर्थात् मोह, मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि दोष। हुआ ? **सयलगुणप्पा** है न चौथा पद ? उसमें ऐसा कहा कि शंकारहित। इतने में समाहित कर दिया। भाई ! समझ में आया ? आप्त अर्थात् परमेश्वर वीतरागदेव सर्वज्ञदेव। यहाँ सकल गुणमय अस्ति और दोषरहित, यह नास्ति है। उसे शंकारहित में दोनों को समाहित कर दिया। शंका, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि दोष। हुआ ? उससे रहित वह गुण, वह आप्त। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आप्त की व्याख्या इतनी संक्षिप्त की है। परमेश्वर उन्हें कहते हैं कि जिन्हें मोह नहीं। जिन्हें राग, द्वेष, शोक, वासना, विषय-विकल्प, रति-अरति, किसी भी दोष का अभाव है अर्थात् उनमें ये अभाववाले गुण जो हैं, उन गुणों का उन्हें सद्भाव है। ऐसी इतनी संक्षिप्त व्याख्या ले ली।

अब आगम किसे कहते हैं ? आगम की व्याख्या। पाठ में समुच्चय शब्द है। परन्तु यहाँ अब उसकी व्याख्या करते हैं। **आप्त के मुखारविन्द से निकली हुई,...** सर्वज्ञ परमेश्वर। शब्द तो मुखारविन्द है। मुखरूपी कमल से निकली हुई। लोग इस प्रकार समझते हैं न ? वरना तो तीर्थंकर सर्वज्ञ को वाणी तो सम्पूर्ण शरीर में से ओम ध्वनि (उठती है)। होंठ हिलते नहीं, कण्ठ चलता नहीं। सम्पूर्ण शरीर में से ध्वनि उठती है, ओम—ऐसी आवाज उठती है। समझ में आया ? परन्तु प्रचलित भाषा लोग ऐसा समझते हैं, इसलिए इन्होंने मुखारविन्द शब्द लिया है। मुखरूपी कमल में से निकली हुई। समझ में आया ?

भगवान सर्वज्ञ के-परमेश्वर के मुख से निकली हुई, **समस्त वस्तुविस्तार का**

स्थापन करने में समर्थ... जितने तीन काल, तीन लोक के द्रव्य, गुण और पर्याय हैं, उन्हें स्थापित करने में-सिद्ध करने में-साबित करने में जो वाणी समर्थ है। **ऐसी चतुर वचनरचना।** ऐसी चतुर वचनरचना को आगम कहा जाता है। समझ में आया? यह अज्ञानियों ने कल्पना से शास्त्र रचे हों, वह आगम नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐई, प्रकाशदासजी! क्या हुआ? वह आगम सत्य है? उससे यहाँ इनकार करते हैं।

आप्त सर्वज्ञ परमेश्वर के मुख से निकली हुई वाणी, वह भी चतुरवचन और सर्व वस्तु की स्थापना करने में समर्थ, उस वाणी को आगम कहा जाता है। कहो, समझ में आया? उस आगम की श्रद्धा, यहाँ तो ऐसा कहना है न? उस आप्त की श्रद्धा और आगम की श्रद्धा, वह व्यवहार सम्यक्त्व है। वह विकल्प है, परन्तु वह व्यवहार सम्यक्त्व बताता है अन्दर में ऐसी आत्मा की श्रद्धा और आत्मा का ज्ञान। समझ में आया? अहं आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति अभेद की प्रतीति अनुभव में (हुई) और उसका स्वसंवेदन ज्ञान (हुआ), वह निश्चय दर्शन-ज्ञान है। उसे यह व्यवहार दर्शन और श्रद्धा बताते हैं कि यह वस्तु इसके पास है। समझ में आया? प्रश्न ऐसा न हो कि व्यवहार श्रद्धा हो, वहाँ निश्चय न हो। यह यहाँ प्रश्न ही नहीं है।

मुमुक्षु : तब तो व्यवहाराभास होगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहाराभास नहीं परन्तु उसे वह व्यवहार ही नहीं है। व्यवहार तो जिसे आत्मा एकरूप अखण्ड अभेद अनुभव में आकर प्रतीति हुई है, उसे ऐसा व्यवहार समकित कहने में आता है। सुमेरुमलजी! भाई! देखो! देव ऐसे होते हैं। समझ में आया? इसका स्पष्टीकरण करेंगे। १८ दोषरहित।

ऐसी चतुर वचनरचना। देखो! भाई ने मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है न कि ऐसी अकेली साधारण कथायें हैं, गणधर जैसी जिनकी वचन-शास्त्ररचना नहीं, उन्हें तुम सूत्र कहते हो। आता है न? भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। बहुत लिखा है। एक-एक (बात का गजब स्पष्टीकरण है)। ओहो...हो..! साधारण वार्ता जैसी तीर्थंकर की वाणी, गणधर की वाणी ऐसी होगी? आहा..हा..! वह तो सर्व वस्तु को सिद्ध करनेवाली और चतुर वचन की रचना है, उसे आगम कहा जाता है। ऐसे आगम की श्रद्धा, वह भी अभी विकल्प-व्यवहार समकित है, वह भी जिसे यह अन्दर निश्चय समकित बतावे, उसे ऐसा व्यवहार समकित होता है। आहा..हा..! समझ में आया?

अब तत्त्वों की श्रद्धा। व्यवहार समकित की बात चलती है। **तत्त्व, बहिःतत्त्व...** अर्थात्? दो भाग किये। एक अन्तःतत्त्वरूप परमात्मा स्वयं स्वरूप और बहिःतत्त्व में सात (तत्त्व) संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि बहिःतत्त्व। ऐसी दोनों की श्रद्धा, वह भी व्यवहार है। पण्डितजी! अन्तःतत्त्वरूप परमात्मस्वरूप अपना त्रिकाल और बहिःतत्त्व—आस्रव, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा, मोक्ष, ऐसे दो तत्त्वों की श्रद्धा, भेदवाली श्रद्धा है; इसलिए उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। समझ में आया? वह व्यवहार समकित अन्दर में ऐसा बताता है कि इसे अभेद चैतन्यमूर्ति की सम्यक् अभेद श्रद्धा है। समझ में आया? इसे ऐसे भेदवाले की श्रद्धा का विकल्प अभेद को बताने के लिये है। समझ में आया?

बहिःतत्त्व और अन्तःतत्त्वरूप परमात्मतत्त्व... ऐसे दो भेद किये। एक परमात्मस्वरूप अन्तःतत्त्वरूप वस्तु शाश्वत और बहिर; अर्थात् दो भाग पड़ गये न, इसलिए इसे व्यवहार कहा। अकेला अन्तःतत्त्व परमात्मस्वरूप का अनुभव और सम्यग्दर्शन, वह तो निश्चय है। समझ में आया? परन्तु वह परमात्म और साथ में यह बहिःतत्त्व, इन दो की श्रद्धा को व्यवहार समकित कहते हैं। वजुभाई! भारी सूक्ष्म! है न? शब्द है न, देखो! **ऐसे भेदोंवाले हैं...** ऐसा है न? ये दो भेद पड़े न? भगवान आत्मा स्वयं परिपूर्ण अभेद और उसके साथ उन सात आदि का भेद, दो होकर यहाँ व्यवहार कहने में आया है। अकेला जो अभेद तत्त्व है, उसका अनुभव और श्रद्धा, वह तो निश्चय है। समझ में आया?

अथवा... दो भेदवाला कहकर **अथवा जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष—ऐसे भेदों के कारण सात प्रकार के हैं।** यह भी व्यवहार समकित। **जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष—ऐसे...** पर्यायों के भेद, उनकी श्रद्धा, वह भी व्यवहार समकित है। विकल्प है। वह विकल्प, निर्विकल्प अभेद चैतन्य समकित है, उसे बतानेवाला है। समझ में आया? गजब सूक्ष्म। **सात प्रकार के हैं।** उनकी श्रद्धा **उनका...** अर्थात् तीन को मिलाया। **(आप्त का, आगम का और तत्त्व का)...** ये दो प्रकार के तत्त्व। परमात्मतत्त्व, बहिरतत्त्व और सात तत्त्व। उनका सम्यक्श्रद्धान, उनका भलीभाँति श्रद्धान, वह व्यवहार समकित है। उसे तो अभी विकल्पवाला व्यवहार समकित कहा जाता है। उसे अन्तर में, अनुभव में सम्यग्दर्शन है, एकरूप भगवान अभेद चैतन्य में मोक्ष, संवर आदि पर्यायों का अभाव है, ऐसे अन्तःतत्त्व की, अन्तःतत्त्वरूप परमात्मतत्त्व की श्रद्धा, वह निश्चय है। उसके साथ यह व्यवहार समकित ऐसा होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार समकित हेयरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार हेयरूप है। यह प्रश्न ही कहाँ है? परन्तु यह तो ऐसा बताता है, इतना बताने के लिये निमित्त की बात की है। वह आदरणीय नहीं, अनुसरण करनेयोग्य नहीं। (समयसार) ८वीं गाथा में आ गया है। भेद से समझाया जाता है, तथापि भेद अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। ८वीं गाथा में आता है या नहीं? यह तो अपने कहाँ दृष्टान्त बारम्बार देना? यह तो है वह है। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : इनका प्रश्न ऐसा है कि इसमें हेय लिखा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय नहीं लिखा, इसका अर्थ क्या? व्यवहार अर्थात् हेय। व्यवहार अर्थात् अभूतार्थ। अभूतार्थ अर्थात् हेय। आश्रय करनेयोग्य नहीं, जाननेयोग्य है। इसमें जरा गड़बड़ करते हैं न कितने ही, कि इसमें व्यवहार किसलिए लिखा? पद्मप्रभमलधारिदेव ने भूल की है। व्यवहार समकित... क्योंकि रत्नकरण्डश्रावकाचार में आता है, देव-गुरु-शास्त्र... ऐसे यह भी सच्चा समकित है।

मुमुक्षु : यहाँ निश्चय से बात की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार की बात की है। वह तो अन्दर का भाव। देव-गुरु-शास्त्र का जो भाव कहना है, उस भाव की श्रद्धा। अरे रे! क्या हो? बात स्वयं को अनुसरे। अनुसरे (ऐसे) अर्थ शास्त्र के करे, परन्तु शास्त्र के अनुसार अपनी श्रद्धा करे, ऐसा नहीं, लो! यह श्रद्धा। परमात्मा की श्रद्धा, परद्रव्य अनुसारी है; इसलिए व्यवहार। आगम की श्रद्धा परद्रव्यानुसारी है; इसलिए व्यवहार है। अन्तःतत्त्व और बहिःतत्त्व ऐसे दो भेद, वे भी परद्रव्यानुसारी हुए। ऐसे नवतत्त्व की, सात की श्रद्धा, वह भी परद्रव्यानुसारी हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : परद्रव्यानुसारी, इसलिए बन्ध का कारण होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ क्या हुआ फिर? स्वद्रव्य अनुसार अर्थात् मोक्ष का कारण। परद्रव्य अनुसार... होता है। इतना बताया है। निश्चय को बताने के लिये। व्यवहार समकित आदि जहर है। गजब बात है। जहर अमृत को बतावे। यह सामने दूसरी चीज़ है। अभेद चीज़, ऐसा बतलाने में निमित्त है। आहा..हा..! क्या हो? समझ में आया?

(आप्त का, आगम का और तत्त्व का) सम्यक्श्रद्धान,... देखो! सम्यक् शब्द

प्रयोग किया है न ? व्यवहार सम्यक्, व्यवहार सम्यक्, व्यवहाररूप से सच्चा है। इससे विरुद्ध नहीं हो, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....यह तो अपनी पामरता... स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में तिनके का अर्थ ऐसा कि अपनी पर्याय बहुत हीन है। अनुभव है, सम्यग्दर्शन है परन्तु केवलज्ञानी... यह बात। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, अनन्तानुबन्धी की व्याख्या में है। स्वामी कार्तिक, आगे गाथा आयी है। सम्यग्दृष्टि जीव स्वरूप को तो परमात्मारूप से स्वीकार करता है। पर्याय में पामरता जानता है, क्योंकि कहाँ केवलज्ञान और कहाँ समकित ? इन दो की अपेक्षा से वहाँ बात है। समझ में आया ?

श्लोक-१२

अब, पाँचवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहा जाता है —

(आर्या)

भवभयभेदिनि भगवति भवतः किम्भक्तिरत्र न समस्ति।
तर्हि भवाम्बुधि-मध्य-ग्राह-मुखान्तर्गतो भवसि ।।१२।।

(वीरछन्द)

भवभय नाशक भगवन्तों के प्रति क्या तुझको भक्ति नहीं ?
तो जानो तुम भवसमुद्र-थित मगरमच्छ के मुख में हो ही ॥१२॥

श्लोकार्थ :- भव के भय का भेदन करनेवाले इन भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है ? तो तू भवसमुद्र के मध्य में रहनेवाले मगर के मुख में है॥१२॥

श्लोक-१२ पर प्रवचन

भवभयभेदिनि भगवति भवतः किम्भक्तिरत्र न समस्ति।
तर्हि भवाम्बुधि-मध्य-ग्राह-मुखान्तर्गतो भवसि ।।१२।।

अरे! **भव के भय का भेदन करनेवाले इन भगवान...** देखो! निश्चय से भगवान अपना ही है, उसका भान है, उसमें उसे ऐसे भगवान होते हैं, ऐसा कहते हैं। भक्ति होती है। व्यवहार श्रद्धा कहो या भक्ति कहो। आत्मा का निश्चय अनुभव समकित कहो या निश्चय भक्ति कहो। समझ में आया? देखो न! भक्ति शब्द प्रयोग किया है न? भक्ति शब्द प्रयोग किया है अर्थात् कि भक्ति व्यवहार समकित है न? तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ, आगम आदि की श्रद्धा, वह व्यवहार समकित विकल्प है। वह व्यवहार भक्ति है। निश्चय से आत्मा के स्वरूप में अनुभव की प्रतीति की भक्ति, वह निश्चयभक्ति है। सुजानमलजी! बहुत गजब बातें, भाई! आहा..हा..!

इसकी प्रभुता में पहुँचाना इसे।... आहा..हा..! इसे अन्दर पहुँचाने में, कहते हैं कि व्यवहार विकल्प से इसे ज्ञान होता है। ओहो..! यह वस्तु अन्तर अखण्ड परिपूर्ण है। उसकी श्रद्धा का समकित निश्चय, व्यवहार उसे बताता है। बस, समझ में आया? बताता है, इसलिए व्यवहार लाभदायक है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यही सब विवाद उठता है न? शास्त्र में व्यवहार की बातें बहुत आती है। भेद पाड़े बिना समझाने का कोई उपाय है नहीं। परमात्मा अभेद को किस प्रकार समझा सके? समयसार की ९-१०वीं गाथा।

भव के भय का भेदन करनेवाले... सब भ... भ.. हैं। **भव के भय...** चौरासी के अवतार। आहा..हा...! उसका जो भय, उसे भेदनेवाले, ऐसे इन भगवान, **उनके प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है?** उनके प्रति तुझे प्रेम नहीं? **तो तू भवसमुद्र के मध्य में...** भवसमुद्र के मध्य में.. आहा..हा..! महास्वयंभूरमण समुद्र हो, उसमें मध्य में मछली पड़ी हो, मछली को तो बाधा नहीं आती, कहते हैं, लो न। मनुष्य पड़ा हो या पशु पड़ा हो, उसे निकलना कहाँ? इसी प्रकार चौरासी के अवतार, कहीं किनारा नहीं मिले, कहीं अन्त नहीं मिले, ऐसे अनन्त भवजलरूपी समुद्र में से निकलने को... भगवान के प्रति प्रेम और भक्ति तुझे नहीं तो **भवसमुद्र के मध्य में रहनेवाले मगर के मुख में है।** वापस ऐसा। वापस अकेला भिन्न भी नहीं। आहा..हा..! मध्य में रहा हुआ मगरमच्छ, उसके मुख में। मिथ्यात्वरूपी महा मगरमच्छ है न! भगवान की जिसे भक्ति नहीं, उसे आत्मा की भक्ति नहीं।

आत्मा अखण्ड परिपूर्ण प्रभु की जिसे श्रद्धा है, उसे ऐसे परमात्मा की श्रद्धा होती है, ऐसा कहा है और यदि उनकी श्रद्धा नहीं तो तुझे आत्मा की भी श्रद्धा नहीं। भव जल

के समुद्र के मध्य में रहे हुए मगर के मुख में है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? मगरमच्छ। वह अजगर है। वह महिला, उस भव में। इस भव में विशल्या, (पहले के) भव में चक्रवर्ती की पुत्री थी। नाम भूल गये। चक्रवर्ती की पुत्री थी न, फिर उसे कोई विद्याधर ले गया। जंगल में डाल दी। जंगल में कोई नहीं होता। उसमें मगरमच्छ... मगरमच्छ क्या, अजगर। अजगर। उसमें उसका चक्रवर्ती पिता खोजते-खोजते आया। अजगर को मारने के लिये बाण उठाया, फाड़ डालूँ। कन्या कहती है, पिताजी ! मैंने तो (आहार नहीं लेने की प्रतिज्ञा ली है) बाहर निकली तो भी निभनेवाली नहीं हूँ। अजगर को मत मारो। समझ में आया ? पिताजी ! मेरे आहार का त्याग है। इसे मत मारो। आधी अजगर निगल गया था और आधी बाहर थी। देह छूट गयी। निगल गया, लो ! विशल्या। आता है न ? जब लक्ष्मण को बाण लगा था, रावण की विद्या से मूर्च्छा आ गयी, मूर्च्छा।.....रामचन्द्रजी उलझन में आ गये। पुरुषोत्तम पुरुष, धर्मात्मा मोक्षगामी, यह अन्तिम देह थी, परमात्मा होनेवाले। वे भी एक बार अभी राग था न। ऐसे लक्ष्मण को देखकर... अरे ! यह प्रातःकाल तक इसका क्या होगा ? किसी ने कहा कि सबेरा होने से पहले नहीं जगे तो समाप्त... आहा..हा.. ! किसी ने कहा कि विशल्या (नामक) एक महिला है, उसका स्नान का पानी छिड़को। ऐसी सती महिला है, पुण्यवन्त है। कहाँ है ? तो कहे भरत के राज में। कहो, भरत को। उसके पिता को-पुत्री को भेजे। वह जहाँ आती है, वहाँ.... यह होता है या नहीं निमित्त से ? यहाँ होनेवाला था, उसमें यह निमित्त कहने में आती है। आहा..हा.. !

रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी, बड़ी सेना, करोड़ों लोग, कोई घायल हुए, जहाँ वह कहते हैं वहाँ, क्या कहलाता है ? तम्बू। बड़ा तम्बू था। महान बड़े पुरुष हैं। देव के द्वारा पूजनीय पुरुष। जहाँ अन्दर आकर पानी छिड़के वहाँ जागृत हो जाते हैं। आहा..हा.. ! देखो ! यह जगत की विचित्रता। ऐसा दृष्टान्त दिया है न कहीं ?

अध्यात्म पंचसंग्रह है न ? वहाँ दिया है। विशल्या ने जहाँ ऐसा किया, ... (इसी प्रकार) आत्मा को सम्यग्दर्शन और ज्ञान का पानी छिड़का तो अन्दर से जागृत हो गया। आहा..हा.. ! अरे ! मैं तो आत्मा परमात्मा। समझ में आया ? परिणति के ऊपर बात की है। अपनी निर्मल परिणति होती है न ? जहाँ जागते हैं। अहो ! सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द का धाम, वह मैं हूँ। मुझमें शरीर, वाणी नहीं, कर्म और राग भी नहीं। अल्पज्ञता भी नहीं।

ऐसा सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को अपनी निर्मल परिणति द्वारा जगाते हैं। वह जगा, वह अपना स्वराज्य लेने के लिये। लक्ष्मण बाहर का राज्य लेने के लिये जागे। समझ में आया? भाषा देखो न कैसी है?

भवाम्बुधिमध्यग्राहमुखान्तर्गतो मगरमच्छ के मुख में है। महामिथ्यात्वरूपी मगरमच्छ। आहा..हा..! उसे मिथ्यात्वभाव में भवसमुद्र में डूबनेवाले हैं। समझ में आया? यह पाँचवीं गाथा हुई। अब अठारह दोष का वर्णन। पीछे (गाथा ५ में) दोष कहे न? सकल दोषरहित, ऐसा कहा था न? अब दोष क्या? यह (कहते हैं)।

गाथा-६

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।
सेदं खेदो मदो रइ विम्हिय णिद्दा जणुव्वेगो।।६।।

क्षुधा तृष्णा भयं रोषो रागो मोहश्चिन्ता जरा रुजा मृत्युः।
स्वेदः खेदो मदो रतिः विस्मय-निद्रे जन्मोद्वेगौ।।६।।

अष्टादशदोषस्वरूपाख्यानमेतत्। असातावेदनीयतीव्रमन्दक्लेशकरी क्षुधा। असाता-वेदनीयतीव्रतीव्रतरमन्दमन्दतरपीडया समुपजाता तृषा। इहलोकपरलोकात्राणागुप्तिमरणवेदना-कस्मिकभेदात् सप्तधा भवति भयम्। क्रोधनस्य पुन्सस्तीव्रपरिणामो रोषः। रागः प्रशस्तो-ऽप्रशस्तश्च, दानशीलोपवासगुरुजनवैयावृत्त्यादिसमुद्भवः प्रशस्तरागः, स्त्रीराजचौरभक्त-विकथालापाकर्णनकौतूहलपरिणामो ह्यप्रशस्तरागः। चातुर्वर्ण्यश्रमणसङ्घवात्सल्यगतो मोहः प्रशस्त इतरोऽप्रशस्त एव। चिन्तनं धर्मशुक्लरूपं प्रशस्तमितरदप्रशस्तमेव। तिर्यङ्मानवानां वयःकृतदेहविकार एव जरा। वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यसञ्जातकलेवरविपीडैव रुजा। सादि-सनिधनमूर्तेन्द्रियविजातीयनरनारकादिविभावव्यञ्जनपर्यायविनाश एव मृत्युरित्युक्तः। अशुभ-कर्मविपाकजनितशरीरायाससमुपजातपूतिगन्धसम्बन्धवासनावासितर्वार्बिन्दुसन्दोहः स्वेदः। अनिष्टलाभः खेदः। सहजचतुरकवित्वनिखिलजनताकर्णामृतस्यन्दिसहजशरीरकुलबलैश्वर्यै-रात्माहंकारजननो मदः। मनोज्ञेषु वस्तुषु परमा प्रीतिरेव रतिः। परमसमरसीभावभावना-परित्यक्तानां क्वचिदपूर्वदर्शनाद्विस्मयः। केवलेन शुभकर्मणा, केवलेनाशुभकर्मणा, मायया, शुभाशुभमिश्रेण देवनारकतिर्यङ्मनुष्यपर्यायेषूत्पत्तिर्जन्म। दर्शनावरणीयकर्मोदयेन प्रत्यस्त-मितज्ञानज्योतिरेव निद्रा। इष्टवियोगेषु विक्लवभाव एवोद्वेगः। एभिर्महादोषैर्व्यावृत्तास्त्रयो लोकाः। एतैर्विनिर्मुक्तो वीतरागसर्वज्ञ इति।

तथा चोक्तं ह्न

सो धम्मो जत्थ दया सो वि तवो विसयणिग्गहो जत्थ।
दस-अट्ठ-दोस-रहिओ सो देवो णत्थि सन्देहो।।

तथा चोक्तं श्रीविद्यानन्दस्वामिभिः ह्न

(मालिनी)

अभिमत-फल-सिद्धे-रभ्युपायः सुबोधः,
स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः,
न हि कृत-मुपकारं साधवो विस्मरन्ति।।

तथाहि ह्न

है दोष अष्टादश कहे रति मोह, चिन्ता, मद, जरा।
भय, दोष, राग, रु जन्म, निद्रा, रोग, खेद, क्षुधा, तृषा ॥६॥

अन्वयार्थ :—[क्षुधा] क्षुधा, [तृष्णा] तृषा, [भयं] भय, [रोषः] रोष (क्रोध), [रागः] राग, [मोहः] मोह, [चिन्ता] चिन्ता, [जरा] जरा, [रुजा] रोग, [मृत्युः] मृत्यु, [स्वेदः] स्वेद (पसीना), [खेदः] खेद, [मदः] मद, [रितः] रति, [विस्मयनिद्रे] विस्मय, निद्रा, [जन्मोद्वेगौ] जन्म और उद्वेग [-अरति] (यह अठारह दोष हैं)।

टीका :—यह अठारह दोषों के स्वरूप का कथन है।

(१) असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र अथवा मन्द क्लेश की करनेवाली वह क्षुधा है (अर्थात्, विशिष्ट-खास प्रकार के असातावेदनीयकर्म के निमित्त से होनेवाली जो विशिष्ट शरीर अवस्था, उस पर झुकाव करने से, मोहनीयकर्म के निमित्त से होनेवाला, खाने की इच्छारूप दुःख, वह क्षुधा है)। (२) असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र, तीव्रतर (अधिक तीव्र), मन्द अथवा मन्दतर पीड़ा से उत्पन्न होनेवाली, वह तृषा है (अर्थात्, विशिष्ट असाता -वेदनीयकर्म के निमित्त से होनेवाली, जो विशिष्ट शरीर-अवस्था, उस पर झुकाव करने से मोहनीयकर्म के निमित्त से होनेवाला, जो पीने की इच्छारूप दुःख, वह तृषा है)। (३) इस लोक का भय, परलोक का भय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, तथा अकस्मातभय — इस प्रकार भय सात प्रकार के हैं। (४) क्रोधी पुरुष का तीव्र परिणाम, वह रोष है। (५) राग, प्रशस्त और अप्रशस्त होता है। दान, शील, उपवास तथा गुरुजनों की वैयावृत्त्य आदि में उत्पन्न होनेवाला, वह प्रशस्तराग है और स्त्रीसम्बन्धी, राजासम्बन्धी, चोरसम्बन्धी तथा भोजनसम्बन्धी विकथा कहने तथा सुनने के कौतूहलपरिणाम, वह अप्रशस्त-राग है।

(६) चार प्रकार* के श्रमणसंघ के प्रति वात्सल्यसम्बन्धी मोह, वह प्रशस्त है और उससे अतिरिक्त मोह, अप्रशस्त ही है। (७) धर्मरूप तथा शुक्लरूप चिन्तन (चिन्ता; विचार) प्रशस्त है और उसके अतिरिक्त (आर्तरूप तथा रौद्ररूप चिन्तन) अप्रशस्त ही है।(८) तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों को वयकृत देहविकार (आयु के कारण होनेवाली शरीर की जीर्णदशा), वही जरा है।(९) वात, पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न होनेवाली कलेवर (शरीर) सम्बन्धी पीड़ा, वही रोग है।(१०) सादि-सनिधन, मूर्त इन्द्रियोंवाली विजातीय नर-नारकादि विभावव्यंजनपर्याय का जो विनाश, उसी को मृत्यु कहा गया है। (११) अशुभकर्म के विपाक से जनित, शारीरिक श्रम से उत्पन्न होनेवाला जो दुर्गन्ध के सम्बन्ध के कारण, बुरी गन्धवाले जलबिन्दुओं का समूह, वह स्वेद है। (१२) अनिष्ट की प्राप्ति (अर्थात्, कोई वस्तु अनिष्ट लगना), वह खेद है।(१३) सर्व जनता के (जनसमाज के) कानों में अमृत उंडेलनेवाले सहज चतुर कवित्व के कारण, सहज (सुन्दर) शरीर के कारण, सहज (उत्तम) कुल के कारण, सहज बल के कारण तथा सहज ऐश्वर्य के कारण, आत्मा में जो अहंकार की उत्पत्ति, वह मद है। (१४) मनोज्ञ (मनोहर सुन्दर) वस्तुओं में परम प्रीति, सो रति है। (१५) परम समरसीभाव की भावनारहित जीवों को (परम समताभाव के अनुभवरहित जीवों को) कभी पूर्व काल में न देखा हुआ देखने के कारण होनेवाला भाव, वह विस्मय है।(१६) केवल शुभकर्म से देवपर्याय में जो उत्पत्ति, केवल अशुभकर्म से नारकपर्याय में जो उत्पत्ति, माया से तिर्यंचपर्याय में जो उत्पत्ति, और शुभाशुभ मिश्रकर्म से मनुष्यपर्याय में जो उत्पत्ति, सो जन्म है।(१७) दर्शनावरणीयकर्म के उदय से जिसमें ज्ञानज्योति अस्त हो जाती है, वही निद्रा है। (१८) इष्ट के वियोग में विक्लवभाव (घबराहट) ही उद्वेग है—इन (अठारह) महादोषों से तीन लोक व्याप्त है। वीतरागसर्वज्ञ इन दोषों से विमुक्त हैं।

(वीतरागसर्वज्ञ को द्रव्य-भाव घातिकर्मों का अभाव होने से, उन्हें भय, रोष, राग, मोह, शुभाशुभ चिन्ता, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा तथा उद्वेग कहाँ से होंगे ?)

और उनको समुद्र जितने सातावेदनीय कर्मोदय के मध्य, बिन्दु जितना

---

* श्रमण के चार प्रकार इस प्रकार हैं – १. ऋषि, २. मुनि, ३. यति, और ४. अनगार। ऋद्धिवाले श्रमण, वे ऋषि हैं; अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान अथवा केवलज्ञानवाले श्रमण, वे मुनि हैं; उपशमक अथवा क्षपकश्रेणी में आरूढ़ श्रमण, वे यति हैं और सामान्य साधु, वे अनगार हैं – ऐसे चार प्रकार का श्रमणसंघ है।

असातावेदनीय कर्मोदय वर्तता है, वह मोहनीयकर्म के बिल्कुल अभाव में, लेशमात्र भी क्षुधा या तृषा का निमित्त कहाँ से होगा ? नहीं होगा, क्योंकि चाहे जितना असातावेदनीयकर्म हो, तथापि मोहनीयकर्म के अभाव में दुःख की वृत्ति नहीं हो सकती, तो फिर यहाँ तो जहाँ अनन्तगुने सातावेदनीयकर्म के मध्य, अल्पमात्र (अविद्यमान जैसा) असातावेदनीयकर्म वर्तता है, वहाँ क्षुधा-तृषा की वृत्ति कहाँ से होगी ? क्षुधा-तृषा के सद्भाव में अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि कहाँ से सम्भव होंगे ? इस प्रकार वीतरागसर्वज्ञ को क्षुधा (तथा तृषा) न होने से उन्हें कवलाहार भी नहीं होता। कवलाहार के बिना भी उनके (अन्य मनुष्यों को असम्भावित ऐसे), सुगन्धित, सुरसयुक्त, सप्त धातुरहित, परमौदारिकशरीररूप नोकर्माहार के योग्य, सूक्ष्म पुद्गल प्रतिक्षण आते हैं और इसलिए शरीरस्थिति रहती है।

और पवित्रता तथा पुण्य का ऐसा सम्बन्ध होता है, अर्थात् घातिकर्मों के अभाव को और शेष रहे अघातिकर्मों का ऐसा सहज सम्बन्ध होता है कि वीतरागसर्वज्ञ को उन शेष रहे अघातिकर्मों के फलरूप परमौदारिकशरीर में जरा, रोग तथा स्वेद नहीं होते।

और केवली भगवान को भवान्तर में उत्पत्ति के निमित्तभूत शुभाशुभभाव न होने से, उन्हें जन्म नहीं होता और जिस देहवियोग के पश्चात् भवान्तरप्राप्तिरूप जन्म नहीं होता, उस देहवियोग को मरण नहीं कहा जाता।

(इस प्रकार वीतरागसर्वज्ञ अठारह दोषरहित हैं।)

इसी प्रकार (अन्य शास्त्र में गाथा द्वारा) कहा है कि —

'वह धर्म है, जहाँ दया है; वह तप है, जहाँ विषयों का निग्रह है; वह देव है, जो अठारह दोषरहित है, इस सम्बन्ध में संशय नहीं है।'

और श्री विद्यानन्दिस्वामी ने (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

इष्ट प्राप्ति होती सुबोध से, बोध शास्त्र से होता है।
और सुशास्त्रों का उद्भव भी, आप्त पुरुष से होता है॥
अतः ज्ञानियों द्वारा पूज्य सदा, होते हैं आप्त प्रभो।
किया हुआ उपकार कभी भी, नहीं भूलते सज्जन जो॥

श्लोकार्थ :—इष्टफल की सिद्धि का उपाय, सुबोध है (अर्थात्, मुक्ति की

प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है); सुबोध, सुशास्त्र से होता है; सुशास्त्र की उत्पत्ति, आप्त से होती है; इसलिए उनके प्रसाद के कारण आप्तपुरुष, बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं (अर्थात्, मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं) क्योंकि किये हुए उपकार को साधुपुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं।

गाथा-६ पर प्रवचन

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।
सेदं खेदो मदो रइ विम्हिय णिद्दा जणुव्वेगो।।६।।

है दोष अष्टादश कहे रति मोह, चिन्ता, मद, जरा।
भय, दोष, राग, रु जन्म, निद्रा, रोग, खेद, क्षुधा, तृषा।।६।।

यह अठारह दोष के स्वरूप का कथन है। देखो! वीतराग के मार्ग में परमेश्वर अरिहन्त कैसे होते हैं? अठारह दोषरहित होते हैं, उसकी व्याख्या। कोई भी इसमें से एक दोष सहित हो, वे अरिहन्त नहीं है।

यह, अठारह दोषों के स्वरूप का कथन है। टीका शुरु करते हैं। **असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र अथवा मन्द क्लेश की करनेवाली...** क्षुधा... क्षुधा... **असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र अथवा मन्द क्लेश की करनेवाली, वह क्षुधा है।** यह व्याख्या है। **(अर्थात्, विशिष्ट-खास प्रकार के असातावेदनीयकर्म के निमित्त से होनेवाली जो विशिष्ट शरीर अवस्था,...)** शरीर की दशा अन्दर होती है न? क्षुधा, यह शरीर की दशा है अन्दर। **(उस पर झुकाव करने से, मोहनीयकर्म के निमित्त से होनेवाला, खाने की इच्छारूप दुःख, वह क्षुधा है)**। क्षुधा... समझ में आया? भगवान को भूख लगे, आहार लावे, रोग हो, दवा लावे—यह भगवान को नहीं होता। लो! यह पहली भूल। क्या? मोहनभाई! भगवान को रोग हुआ, आहार लाये, दवा लाये... मिथ्या चित्रण है। वे शास्त्र भी सच्चे नहीं हैं और उनके कहे हुए भगवान भी सच्चे नहीं हैं - ऐसी बात है। पण्डितजी! भारी बात कठिन पड़े।

उन्हें असातावेदनीय का उदय है न? ऐसा कहते हैं।...ऐसा कहते हैं। इसलिए यह

व्याख्या की है। उनकी क्षुधा और उसमें खाने की इच्छा हो तो क्षुधा कही जाती है। उन्हें इच्छा-विच्छा है नहीं। आहा..हा..! परमेश्वर जहाँ अनन्त आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का पूरा अनुभव प्रगट हुआ, उन्हें ऐसी वेदना का उदय हो सकता ही नहीं। उन्हें आहार लाना और आहार करना, यह बात नहीं हो सकती। समझ में आया? क्षुधा की व्याख्या की। श्रीमद् ने पीछे क्षुधा की व्याख्या ली है। अठारह दोष। उनकी पुस्तक में हैं। रत्नकरण्ड -श्रावकाचार में ये दोष लिये हैं। तब वे लोग ऐसा कहते हैं कि यह तो अनुवाद किया है।

मुमुक्षु : सही लगा, इसलिए लिया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : है। भगवान तो ऐसे होते हैं। भगवान को और आहार हो तथा पानी हो... समझ में आया? चिमनभाई! क्या कहा यह? आहार नहीं होता? शास्त्र में लिखा है। गप्प मारी है। वहाँ तो सब प्रतिक्रमण और सामायिक करते थे।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हजार वर्ष में, ३३ हजार वर्ष... पण्डितजी! और भगवान को प्रतिदिन आहार? यह बात ही विपरीत है। समझ में आया? ....में लिखते हैं... ३३ हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। अमृत की डकार कण्ठ में से (आती है)—ऐसे तो देव होते हैं। ये बाह्य के देव। देवाधिदेव तीर्थंकर को और आहार, क्षुधा तथा राग- बिल्कुल तत्त्व से विरुद्ध है। व्यवहार श्रद्धा से भी भ्रष्ट है। उसे व्यवहार श्रद्धा भी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्या हो? सम्प्रदाय बाँधकर बैठे, और उससे विपरीत करे अर्थात् कि किस खाते में खतवने जाये?

मुमुक्षु : तो ऐसा लिखने का हेतु क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह सम्प्रदाय चलाना। जगत को अच्छा लगे। स्त्री को मोक्ष हो... सबको इकट्ठा करना।

मुमुक्षु : पन्द्रह भेद से सिद्ध होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्द्रह भेद सिद्ध होते हैं। बिल्कुल नहीं होते। एक आत्मा अपरिग्रही स्वरूप जहाँ अन्दर पूर्ण प्रगट हुआ, उसे आहार कैसा, क्षुधा कैसी, तृषा कैसी? कहो, समझ में आया? दूसरे के भगवान तो आहार करे, पानी ले, क्या कहलाता है वह?

जीवनमुरारी। आता है न ? बिल्कुल सब... वह परमेश्वर ही नहीं। परमेश्वर को आहार नहीं होता और उन्हें आहार और आमन्त्रण दे, ऐसा नहीं होता। वह तो साधारण बात है, कहते हैं। समझ में आया ? और ऐसी क्षुधा-तृषा लगे, ऐसा असाता का रस रह गया तो इसका अर्थ यह है कि उनकी पवित्रता की परिणति से उसका रस मन्द नहीं पड़ा। मन्द नहीं पड़ा। ...आहा..हा..! ऐई! देवानुप्रिया! प्रकाशदासजी! समझ में आया ? पहला दोष यह, क्षुधा नहीं होती।

असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र, तीव्रतर (अधिक तीव्र), मन्द अथवा मन्दतर... ऐसे चार भेद किये। उसमें तीव्र और मन्द दो लिये थे। तृषा के भेद हैं न बहुत। कैसी तृषा होती है ? एक श्वेताम्बर साधु था। भावनगर से निकला हुआ। तुम्हारे... नहीं वृक्ष, नहीं बबूल, उसमें बेचारे को प्यास लगी। मर गया। छह कोस, बारह मील हम चले हैं, कुछ नहीं, वृक्ष नहीं, बबूल नहीं। ऐसा समुद्र। ऐसी धांधली आगे। अकेला, वृक्ष बबूल कुछ नहीं होता। अकेला खार। उसमें बेचारे को प्यास लगी होगी...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....परन्तु रास्ते में पानी कहाँ मिले ? रास्ते में खाली हो, रास्ते में भरे नहीं। रास्ता खाली। ...पानी नहीं। समझ में आया ?

असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र,... तृषा। **तीव्रतर (अधिक तीव्र),...** गला चिपक जाये। **मन्द अथवा मन्दतर...** वापिस ऐसा लिया। थोड़ी भी नहीं और मन्दतर अकेली पीड़ा से अर्थात् थोड़ी। **(विशिष्ट असाता-वेदनीयकर्म के निमित्त से होनेवाली, जो विशिष्ट शरीर -अवस्था,...)** वह शरीर की दशा है। ...वह सब जड़ की दशा है। ऐसा असाता का उदय तीर्थंकर को नहीं हो सकता और वह **(शरीर-अवस्था, उस पर झुकाव करने से मोहनीयकर्म के निमित्त से होनेवाला, जो पीने की इच्छारूप दुःख, वह तृषा है)**। आहा..हा..!

जहाँ पूर्ण अतीन्द्रिय अमृत का समुद्र उछला है। जहाँ सम्यग्दर्शन में भी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, तब केवली परमात्मा को तो अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र उछल गया है। बालचन्दजी! क्या है ? तुम्हारे सम्प्रदाय में यह है। पूर्व की बात है न, पूर्व में यह था न, पिताजी को यह था या नहीं ? आहा..हा..! भगवान को तृषा नहीं होती। पानी ले आओ, और पानी पीवे, ऐसी इच्छा नहीं होती। ऐसी शरीर की अवस्था भी उन्हें नहीं होती।

शरीर की अवस्था ऐसी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। भाई! शरीर की अवस्था भी ऐसी नहीं होती। इच्छा तो नहीं होती परन्तु शरीर की अवस्था ऐसी नहीं होती।

मुमुक्षु : परम औदारिक...

पूज्य गुरुदेवश्री : परम औदारिक शरीर है। दूसरे केवली हों तो परम औदारिक बाद में होता है। यह तो पहले परम औदारिक शरीर लेकर आते हैं। भगवान तो जन्में तब से परम औदारिक। ओहो..हो..! केवली को क्षुधा, तृषा कैसी? जन्मे तब से उन्हें क्षुधा-तृषा होती है परन्तु निहार नहीं होता। गृहस्थाश्रम में भी भगवान को आहार होता है, पानी होता है परन्तु निहार नहीं होता। आत्मा की पवित्रता लेकर आये हैं न! आहा..हा..! अरे! जगत लुटाया है न धर्म के नाम से। क्या हो?

मुमुक्षु : बनिया...

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया... है। झट सीधा मिले। सीधा मिले, सस्ता। लुट गया। सब्जी का दृष्टान्त नहीं दिया था? भिण्डी और लौकी। सुना था न? बनिये का दृष्टान्त नहीं? अध मण सब्जी बेचने के लिये ले आया होगा। अब बिक गयी, उसमें दस सेर बाकी रही। शाम का समय, परन्तु कुछ-कुछ टुवां क्या कहलाता है? लौकी, भिण्डी। घिसोड़ा अच्छा-अच्छा बीनकर ले जाये न वे, थोड़ा-थोड़ा रहे। फिर कोई बनिया जरा लोभी आया होगा। देख भाई! आठ आने सेर अभी तक बेचा है। यह दस सेर है, चार आने सेर देते हैं, थोड़ा टुवो है। टुवो समझते हो? दाग.. दाग.. थोड़ा सड़ा हुआ। पाँच रुपये के (बदले) ढाई रुपये लाओ। गजब यह तो! घर जाता है, वहाँ पूरे में सड़ा हुआ, एक भी अच्छा नहीं निकला। सस्ता लेने गया वहाँ... (बहुत महँगा पड़ गया)। बालचन्दजी! इसी प्रकार यह सस्ता लेने जाता है, वहाँ सब सड़े हुए हैं। पुण्य से धर्म होता है और ऐसे देव-गुरु होते हैं, इन्हें मानो तो तुम्हारा कल्याण होगा। यह सब सस्ता लेने जाते हैं, परन्तु महँगा पड़ेगा। कुछ हाथ नहीं आयेगा। ए.. कहो, समझ में आया?

यह पीने की इच्छारूप दुःख ही नहीं होता। **(३) इस लोक का भय, परलोक का भय,...** यह भगवान को नहीं होता। **अरक्षाभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, तथा अकस्मातभय — इस प्रकार भय सात प्रकार के हैं।** इनसे रहित होते हैं। निर्भय भगवान, आत्मदशा प्रगट हुई है। आहा..हा..! भले शरीर हो। अनन्त-अनन्त आनन्द की

निर्भयता, शान्ति की, स्वच्छता की प्रभुता प्रगट हुई है। उन्हें भय नहीं होता। कहाँ जन्मूँगा? कहाँ अवतार लूँगा? ऐसा उन्हें भय नहीं होता।

(४) क्रोधी पुरुष का तीव्र परिणाम, वह रोष है। वह भगवान को नहीं होता। क्रोधी पुरुष के तीव्र परिणाम। लाल आँख हो जाये न? भगवान का नाम धरावे और लाल आँख हो जाये, ऐसे भगवान नहीं होते। रोष नहीं होता।

(५) राग, प्रशस्त और अप्रशस्त... दो हैं। राग के दो प्रकार। एक शुभ और एक अशुभ। **दान, शील, उपवास तथा गुरुजनों की वैयावृत्त्य आदि में उत्पन्न होनेवाला, वह प्रशस्तराग है...** शुभराग है। वह राग भगवान को नहीं होता। देखो! यह **दान, शील, उपवास तथा गुरुजनों की वैयावृत्त्य...** में उत्पन्न होनेवाला पुण्यभाव है वह तो। पुण्यभाव राग-राग। समझ में आया? दान का भाव, वह पुण्य है; धर्म नहीं। शील, शरीर का शील ब्रह्मचर्य पालना, शुभराग है। उपवास करना... शुभराग है और गुरुजनों की धर्मात्माओं की वैयावृत्त्य से उत्पन्न होनेवाला प्रशस्तराग, वह भगवान को नहीं होता। दान, शील, उपवास भगवान को नहीं होते, ऐसा कहते हैं।

स्त्रीसम्बन्धी, राजासम्बन्धी, चोरसम्बन्धी तथा भोजनसम्बन्धी विकथा कहने तथा सुनने के कौतूहलपरिणाम, वह अप्रशस्तराग है। बुरा राग है, खोटा राग है। **स्त्रीसम्बन्धी,...** राग अशुभ। **राजासम्बन्धी,...** राग अशुभ। **चोरसम्बन्धी...** राग अशुभ। **भोजनसम्बन्धी...** राग अशुभ। यह **सुनने के कौतूहलपरिणाम, वह अप्रशस्तराग है।** किन्तु वह (पूर्व कथित) प्रशस्तराग है, वह दान, शील, उपवास से उत्पन्न होनेवाला राग है, तथापि वह राग दु:खरूप है। प्रशस्तराग भी दु:खरूप है।

मुमुक्षु : आकुलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता है। समझ में आया? इत्यादि में, ऐसा कहा है न? **गुरुजनों की वैयावृत्त्य आदि में उत्पन्न होनेवाला,...** भगवान की भक्ति, मूर्ति की पूजा में से उत्पन्न होनेवाला शुभराग, वह राग भी दु:खदायक है, क्लेश है। वह भगवान को नहीं होता।

यहाँ कहते हैं। **स्त्रीसम्बन्धी, राजासम्बन्धी, चोरसम्बन्धी तथा भोजनसम्बन्धी विकथा...** वह पाप है। **सुनने के कौतूहलपरिणाम,...** कैसे हैं? कैसी स्त्री? किस गाँव

की ? किस देश की ? कैसी रूपवान ? यह सब सुनने का विकल्प, वह बुरा पाप राग है। इसी प्रकार आहार, कहाँ का आहार ? किसने बनाया ? कैसे बनाया ? अमुक, विस्मयता करते हैं न ? कौतुहलता पाप राग है, वह भगवान को नहीं होता।

चार प्रकार के श्रमणसंघ के प्रति वात्सल्यसम्बन्धी मोह, वह प्रशस्त है... यहाँ मोह शब्द से (आशय) राग है। मोह अर्थात् पर में सावधानी, इतना (आशय है)। **चार प्रकार के श्रमणसंघ के प्रति वात्सल्यसम्बन्धी मोह,...** जो शुभ है। इसके अतिरिक्त का मोह वह अशुभ है। श्रमण चार प्रकार के हैं। देखो, **१. ऋषि, २. मुनि, ३. यति, और ४. अनगार**। नीचे **ऋद्धिवाले श्रमण, वे ऋषि हैं;...** ऐसे ऋद्धिवाले ऋषि के प्रति प्रेम, वह मोह शुभ है। शुभराग है। है मोह। आहा..हा..! **अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान अथवा केवलज्ञानवाले श्रमण,...** उनके प्रति प्रेम वह मोह है। समझ में आया ? शुभराग मोह है। यहाँ मिथ्यात्व की बात नहीं है।

उपशमक अथवा क्षपकश्रेणी में आरूढ़ श्रमण, वे यति हैं... उनके प्रति प्रेम भी राग है। **सामान्य साधु, वे अनगार हैं...** उनके प्रति प्रेम, वह भी राग है। समझ में आया ? **उससे अतिरिक्त मोह, अप्रशस्त ही है।** **(७) धर्मरूप तथा शुक्लरूप चिन्तन...** धर्मध्यान का चिन्तन, शुक्लध्यान का अन्तर विचार, वह प्रशस्त है। **उसके अतिरिक्त (आर्तरूप तथा रौद्ररूप चिन्तन) अप्रशस्त ही है।** वे भगवान को नहीं होते। प्रशस्त भी नहीं और अप्रशस्त भी नहीं।....किसका ध्यान करते हैं ? ध्यान कहा है न ? शुक्लध्यान केवली को। वे आनन्द का अनुभव करें, वह ध्यान है। आहा..हा..! अतीन्द्रिय अमृत सागर उछल गया है न! ज्वार आया है, ज्वार। पर्याय में समुद्र उल्लसित होकर ज्वार आया है। तुम्हारे में बाढ़ कहते हैं न ? बालचन्दजी! बाढ़ कहते हैं। हमारे यहाँ भरती कहते हैं। भरती.. भरती..। भगवान को तो अनन्त आनन्द की बाढ़ आयी है। सुधा जल, अमृत जल, जिनकी पर्याय में उछाला मारता है, उन्हें ऐसा राग आदि नहीं होता।

(८) तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों को वयकृत देहविकार वही जरा है। भगवान को जरा नहीं होती। करोड़ पूर्व की आयुष्य हो तो भी जरा नहीं होती। शरीर ऐसा का ऐसा लगता है। **तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों को वय...** यह वय-वय। है न ? उस वयकृत। उम्र.. उम्र। वह देह का विकार है। वय के कारण होनेवाली शरीर की जीर्णदशा। वह जीर्णदशा

भगवान को नहीं होती। क्षुधा लगी, तृष्णा लगी और शरीर जीर्ण हो गया और आहार लेने के बाद पुष्ट हो गया, ऐसा पाठ (श्वेताम्बर के) भगवती के १५ वें शतक में है। सभी बातों में बहुत फेरफार। जरा नहीं, लो!

(९) वात, पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न होनेवाली कलेवर (शरीर) सम्बन्धी पीड़ा, वही... भगवान को रोग नहीं। दवा लेने गये, भगवान को गोशाल ने मारा, उसने तेजोलेश्या समवसरण में... समवसरण में ऐसे आ ही नहीं सकते, सुन न! मारे किसका? भगवान को छह महीने तक लोहीखण्ड दस्त। लोहीखण्ड दस्त समझते हो? छह महीने तक लोहीखण्ड दस्त भगवान को रही, तेजोलेश्या मारी, लेश्या। सब बातें कल्पित हैं। भगवान को यह होता नहीं। अरे! व्यवहार भगवान कौन है, उन्हें पहिचाना नहीं। निश्चय परमात्मा को तो पहिचानता ही नहीं। समझ में आया? और यह व्यवहार भगवान की श्रद्धा, वह तो निश्चय को बताती है। सच्चे भगवान की श्रद्धा। अपनी श्रद्धा, वह तो कोई वस्तु है ही नहीं। देखो न! प्रत्येक की टीका करके स्पष्टीकरण किया है।

रोग... समझ में आया? भगवान को रोग हुआ, वहाँ अनगार को कहा, जाओ अमुक के घर से ले आओ। उसके घर के लिये पकवान बनाये हैं, वह ले आओ। घोड़े के लिये बनाया है वह। मेरे लिये बनाया है, वह लाना नहीं। ऐसा आता है न? घोड़े के लिये बनाया है, वह ले आना। ये सब बातें कल्पित रचना है। आहा..हा..! भारी कठिन बात, भाई! सम्प्रदाय की बात में से छूटना, जिसमें जन्म हुआ हो, उसके संस्कार पड़े हों, गलते.. गलते... गलते खाते-खाते निकले हैं। कितनी देर लगी, देखो न! खबर है या नहीं? ऐसे दोष अरिहन्त परमात्मा को नहीं होते। ऐसे अरिहन्त की श्रद्धा करना, वह शुभराग है और वह राग ऐसा बताता है कि अन्दर में इसे निर्मल समकित है, ऐसा बताता है। इसलिए यह व्यवहार की बात की है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-९, गाथा-६, श्लोक-१३, सोमवार, फाल्गुन शुक्ल १२, दिनांक ०८-०३-१९७१

नियमसार, जीव अधिकार, उसमें परमात्मा सशरीरी अरिहन्त कैसे होते हैं ? उनकी श्रद्धा वह व्यवहार समकित है। व्यवहार समकित में श्रद्धावान परमात्मा कैसे होते हैं ? उसकी व्याख्या है। परमात्मा के शरीर को रोग नहीं होता। शरीर होता है, त्रिकाल ज्ञान होता है, अनन्त आनन्द होता है, शरीर होने पर भी उन्हें रोग नहीं होता।

मुमुक्षु : यहाँ केवलज्ञान है ऐसा माने, यहाँ रोग है ऐसा माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; बिल्कुल एकदम तत्त्व का विरोध है। ऐसी सब असाता रह जाये तो उनकी पवित्रता नहीं थी और उन्हें जीव की दशा भी नहीं थी, उसका भान नहीं उसे। सम्प्रदाय में तो बड़ा विरोध है न ? भगवान को रोग था, दवा लाये, सब किया। सब कल्पित बाते हैं।

पूर्ण आत्मदशा जहाँ पूर्ण आनन्द प्रगट हो, उसके शरीर को असाता का इतना उदय, इतना नहीं होता कि जिसमें रोग आवे। असाता की प्रकृति होती है परन्तु वह तो बड़े समुद्र में जैसे चुटकी भर राख डाले, ऐसे असाता के रजकण होते हैं। परम पवित्र आत्मा जहाँ पूर्ण हुआ, उनका शरीर परमौदारिक (होता है)। उन्हें रोग नहीं हो सकता। रोग मानते हैं, उन्हें परमात्मा की खबर नहीं।

मुमुक्षु : उसे अघातिकर्मों का ज्ञान बराबर नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अघाति का नहीं, निर्मलपर्याय का भी नहीं। पूर्ण निर्मल हो तो कर्म का रस कितना घट जाये, (इसकी खबर नहीं)। उसे एक का भी (ज्ञान) नहीं। अजीव का नहीं, जीव का नहीं, संवर-निर्जरा का नहीं और मोक्ष का नहीं। वास्तव में एक भी तत्त्व नहीं। ऐई ! जिन्हें आत्मा के ध्यान द्वारा अघातिकर्म का रस बहुत मन्द पड़ गया है, असाता का उदय तो अत्यन्त मन्द पड़ गया है। अनन्त-अनन्त साता रखते हैं। ऐसी पवित्रता के परिणाम को भी पहिचाना नहीं कि ऐसे परिणाम हों, वहाँ असाता हो नहीं सकती। ऐसी बात जरा सूक्ष्म है। वास्तव में तो नवतत्त्व में भूल है। समझ में आया ?

यह दसवाँ बोल आया है। परमात्मा शरीरी होने पर भी, उन्हें शरीर में रोग नहीं होता।

(१०) सादि-सनिधन, मूर्त इन्द्रियोंवाली विजातीय नर-नारकादि विभावव्यंजनपर्याय का जो विनाश, उसी को मृत्यु कहा गया है। भगवान को मृत्यु नहीं है। मृत्यु उसे कहते हैं कि भवान्तर होकर दूसरा जन्म हो तो मृत्यु कहते हैं और दूसरा जन्म है नहीं। ऐसी आत्मा का पूर्ण परमात्मदशा यहाँ केवलज्ञान में होती है, ऐसा कहते हैं। शरीर में। अभी लोगों को परमात्मा कौन ? उनकी श्रद्धा क्या ? स्वभाव से ऐसा ही परमात्मा मैं हूँ, ऐसे दृष्टिवन्त को ऐसे परमात्मा की व्यवहारश्रद्धा होती है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? रवजीभाई ! पूर्व में सब सुना है न ? रोग होता है, अमुक होता है, ऐसा सब। ऐ.. मलूपचन्दभाई ! तुम्हारे गाँव में तो बहुत सुना था।

(११) अशुभकर्म के विपाक से जनित, शारीरिक श्रम से उत्पन्न होनेवाला जो दुर्गन्ध के सम्बन्ध के कारण, बुरी गन्धवाले जलबिन्दुओं का समूह, वह स्वेद है। भगवान को स्वेद-पसीना नहीं होता। महा अनन्त बल के धनी आत्मा और शरीर में भी अनन्त बल है। समझ में आया ? ऐसा परमात्मा का वास्तविक स्वरूप ही भी क्या है ? अरिहन्त किसे कहना ? ऐसे अरिहन्त ऐसा बोले—णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... और कहे उन्हें रोग होता है, और वे आहार लेते हैं, उन्हें तृषा लगती है। और वे पहले समय में परमाणु ग्रहण करते हैं और दूसरे समय में छोड़ते हैं। ऐई ! उसने परमात्मा को पहिचाना ही नहीं है। इसलिए व्यवहार श्रद्धा सच्ची नहीं है। उसकी निश्चय श्रद्धा भी सच्ची नहीं होती। समझ में आया ? उन्हें स्वेद नहीं होता।

(१२) अनिष्ट की प्राप्ति (अर्थात्, कोई वस्तु अनिष्ट लगना), वह खेद है। अनिष्ट लगना। खेद-बेद भगवान को कुछ नहीं है। अनिष्ट कोई है नहीं। पूर्ण निष्ट आत्मा, पूर्णानन्द दशा प्रगट हुई। (अनिष्ट) कुछ है नहीं। इष्ट की प्राप्ति हो गयी, अनिष्ट का नाश हो गया। उन्हें खेद नहीं होता।

(१३) सर्व जनता के (जनसमाज के) कानों में अमृत उंडेलनेवाले सहज चतुर कवित्व के कारण,... अब कहते हैं कि ऐसा अभिमान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। ऐसा मधुर, मीठा कवित्व हो कि सर्व जीव को **कानों में अमृत उंडेलनेवाले सहज चतुर कवित्व...** उसके कारण अभिमान कि आहा..हा.. ! मेरा कैसा कण्ठ है, ऐसा भगवान को नहीं होता। वे तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा हैं। ध्वनि तो ऐसी अलौकिक निकलती है कि लोगों के कर्ण में अमृत उडेलते हों। कर्ण में मानो अमृत उडेलते हों, ऐसी भगवान

तीर्थंकरदेव की वाणी होती है परन्तु वह तो जड़ की दशा है। आत्मा को और उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। सम्यग्दृष्टि भी उस कण्ठ का अभिमान नहीं करता तो सर्वज्ञ परमात्मा को तो होता नहीं।

सहज (सुन्दर) शरीर के कारण,... शरीर की सुन्दरता, कोमलता हो, उसका अभिमान हो जाता है। हमारा शरीर दूसरों से अच्छा है। धूल भी नहीं (अच्छा), वह तो मिट्टी है। उसमें अच्छा किसे कहना? परमात्मा का शरीर तो सुन्दर ऐसे परमौदारिक। इन्द्र हजार नेत्रों से देखे तो तृप्ति न हो, तथापि शरीर की सुन्दरता का उसे अभिमान नहीं है। आत्मा आनन्दमूर्ति का जहाँ पूर्ण अनुभव हुआ, नीचे भी आनन्द का जहाँ सम्यक् में अनुभव होने पर शरीर की सुन्दरता का अभिमान ज्ञानी को नहीं होता। शरीर की सुन्दरता का अभिमान हो, तब तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वह तो मिट्टी, जड़-धूल है। उसकी सुन्दरता में तो राग है। उसका अभिमान नहीं हो सकता। कितने ही ऐसे होते है न कि शरीर में ऐसी सुन्दरता के कारण मानो सेठिया की तरह चले, शरीर ऐसे-ऐसे... एक था। सेठ जैसी चाल करता, इसलिए सेठ का नाम पड़ गया। कहो, समझ में आया?

सहज (उत्तम) कुल के कारण,... अच्छे उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ हो, उसका अभिमान (करे)। किसका कुल? आत्मा को कुल कैसा? आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा का कुल क्या? ऐसे तो कहा है, हों! 'ए अम कुलवत रीत'

मुमुक्षु : वह और अलग प्रकार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्दघनजी में आता है न?

मुमुक्षु : वह शुद्धता की अपेक्षा से....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो शुद्धता की अपेक्षा से। हे नाथ! इस पवित्रता के पन्थ में पूरे पड़े, इस पन्थ में चलनेवाले आपके कुल की टेकवाले हम हैं। वह तो वीतरागता के पन्थ में चलने की कुल की टेक की बात है। यह तो कुल में जन्म हुआ, इसका अभिमान (करे) कि हम ऐसे ऊँचे कुल में जन्मे हुए। कहो, सेठी! इसका अभिमान नहीं होता, कहते हैं।

सहज बल के कारण,... शरीर में बल इतना अधिक होता है, सहज प्राकृतिक, हों! उसका भी उन्हें अभिमान नहीं होता। **सहज ऐश्वर्य के कारण,...** ईश्वरता-महत्ता। जिन्हें

इन्द्र नमते हैं, तथापि ईश्वरता का उन्हें अभिमान नहीं है। और **आत्मा में जो अहंकार की उत्पत्ति, वह मद है।** वह मद नहीं होता। आहा..हा..! अतीन्द्रिय भगवान आनन्दस्वरूप आत्मा का जहाँ भान हो तो भी यहाँ तो कहते हैं कि आठ मद नहीं होते। जहाँ धर्म की दशा प्रगटी, वहाँ मैं आत्मा आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ, शान्ति हूँ—ऐसा जिसे धर्म की दशा का भान हो, उसे भी आठ मद नहीं होते। जातिमद, कुलमद, बल, रूपमद, वह तो जड़ का अभिमान, मिथ्यात्व का सूचक है। समझ में आया? शरीर के अवयवों की सुन्दरता का अभिमान, वह जड़ का अभिमान है, वह तो मूढ़ जीव है। आहा..हा..! बाहर में लगता हो, बड़ा, मानो मानधाता जैसे दिखायी दे। अन्दर में उसके जड़ का अभिमान मूढ़ में है, बड़ा मूढ़ जैसा है। बड़ा बैल जैसा है, ऐसा कहते हैं। बड़ा सांड होता है न? शरीर मजबूत और बड़ा। उसे कुछ भान नहीं हो तो सिर मारे और ऐसा तूफान करे... देखो न! लड़के भी तूफान करते हैं। लो! वापस दो आये हैं। ....अन्दर कुछ बाँटना है न? कषाय... कषाय... कषाय... कहते हैं, ऐसा मद उसे नहीं होता।

(१४) मनोज्ञ (मनोहर सुन्दर) वस्तुओं में परम प्रीति... ऐसी चीज़ देखकर मन की प्रसन्नता हो और रति हो, वह रति भगवान को नहीं होती। **(१५) परम समरसीभाव की भावना-रहित जीवों को...** आत्मा आनन्द और वीतरागस्वरूप है, ऐसी **(परम समताभाव के अनुभवरहित जीवों को) कभी पूर्व काल में न देखा हुआ देखने के कारण होनेवाला भाव, वह विस्मय है।** विस्मय... विस्मय। विस्मय लगे। किसका विस्मय, बापू! आहा..हा..! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का भान हो तो किसी को देखकर विस्मय नहीं होता। अत: भगवान को तो विस्मय नहीं होता।

(१६) केवल शुभकर्म से देवपर्याय में जो उत्पत्ति,... भगवान को तो कोई जन्म है नहीं। देवपर्याय में भी उत्पत्ति नहीं है। भगवान मरकर देव में जायें, ऐसा है? वे तो अरिहन्त परमात्मा पूर्ण हो गये। देह छूटकर सिद्ध हो जानेवाले हैं। **अशुभकर्म से नारकपर्याय में जो उत्पत्ति,...** महापुण्य किया हो तो देव में उपजे, तो भगवान को तो वह है नहीं। जन्म ही नहीं है। पाप किये हों—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, माँस, शराब (खाने-पीनेवाले) मरकर नरक में जाते हैं। ऐसे भाव भगवान को तो होते नहीं; इसलिए उन्हें जन्म नहीं होता।

माया से तिर्यंचपर्याय में... कपटी जीव इस ढोर में उपजते हैं। आड़ा शरीर होता है न, आड़ा? माया, कपट और कुटिलता से बहुत वक्रता की हो, वे सब मरकर ढोर में

जानेवाले हैं। भगवान को ऐसा जन्म नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ बड़ा चतुर करोड़पति बनिया गिना जाता हो। मरकर ढोर में जाये।

मुमुक्षु : मायाचार करता हो तो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; माया, कपट, कुटिल, दम्भ, वक्रता, अडोडाई, अन्तर में उसके फलरूप से उसे पशु का जन्म अनन्त बार होता है। भगवान को कुछ है नहीं।

शुभाशुभ मिश्रकर्म से... मनुष्य होता है। कुछ शुभ हो और कुछ अशुभ हो तो मनुष्य होता है। वह भगवान को है नहीं; इसलिए भगवान को जन्म नहीं है। कहो, समझ में आया? कितने ही लोग कहते हैं न कि भगवान ऐसे होते हैं, परन्तु जब बहुत पाप बढ़े तो अवतार लेते हैं। ऐसा नहीं है। भगवान को यह अवतार नहीं होता।

मुमुक्षु : भक्तों का दु:ख मिटाने के लिये अवतार लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:ख किसका मिटावे? आहा..हा..! भक्तों का दु:ख होता ही नहीं। यह सब बातें कल्पना हैं। परमात्मदशा जहाँ हुई, उसे फिर उत्पत्ति में जन्म है ही नहीं। उसे अवतार नहीं हो सकता। पश्चात् बहुत काल में मोक्ष में से भी वापस आते हैं, ऐसा कहते हैं न? ऐसा नहीं है।

(१७) दर्शनावरणीयकर्म के उदय से जिसमें ज्ञानज्योति अस्त हो जाती है, वही निद्रा है। निद्रा में भान नहीं रहता। ऐसी निद्रा भगवान को नहीं होती।

मुमुक्षु : निद्रा से तो शान्ति होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी शान्ति नहीं होती। ज्योति अस्त हो जाती है, वहाँ ज्ञान ढँक जाता है।

(१८) इष्ट के वियोग में विक्लवभाव (घबराहट) ही उद्वेग है—इन (अठारह) महादोषों से तीन लोक व्याप्त है। वीतराग सर्वज्ञ इन दोषों से विमुक्त हैं। लो! ये अठारह दोष नहीं होते। श्वेताम्बर में अठारह दोष दूसरे कहते हैं। ये अठारह दोष दूसरे हैं। दोनों बड़ा अन्तर है। समझ में आया? यह तो सनातन सत्य वीतरागमार्ग अनादि से चला आता है, उसकी रीति और उसके परमात्मा ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह कहे न, भाई! महावीर तो दोनों के एक हैं न! ऐसा कहते हैं। एक-एक बात में बहुत अन्तर है। वीतराग का, परमात्मा का, अरिहन्त का स्वरूप सन्तों ने कहा और जो अनादि है, उससे

दूसरे सम्प्रदाय में अन्तर है। समझ में आया? श्वेताम्बर में और स्थानकवासी में दोनों में विपरीत है। देव के स्वरूप की बात ही विपरीत है। ऐई! चिमनभाई! आहा..हा..!

अब कोष्ठक में लिखा है। **(वीतराग सर्वज्ञ को द्रव्य-भाव घातिकर्मों का अभाव होने से,...)** द्रव्य अर्थात् जड़कर्म, और भाव अर्थात् विकार आदि। **(उन्हें भय, रोष, राग, मोह, शुभाशुभ चिन्ता,...)** यह शुभाशुभ चिन्ता। **(खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा तथा उद्वेग...)** ग्यारह बोल हुए। ये ग्यारह बोल हैं। अठारह में से ग्यारह बोल। पहले इतना आया, घातिकर्म का द्रव्य-भाव का अभाव होने से ये नहीं होते, ऐसा सिद्धान्त सिद्ध किया।

और उनको समुद्र जितने सातावेदनीय कर्मोदय के मध्य,... भगवान को तो समुद्र जैसा सातावेदनीय का उदय है। **बिन्दु जितना असातावेदनीय कर्मोदय वर्तता है, वह मोहनीयकर्म के बिल्कुल अभाव में, लेशमात्र भी क्षुधा या तृषा का निमित्त कहाँ से होगा?** भगवान को क्षुधा-तृषा नहीं होते। **नहीं होगा, क्योंकि चाहे जितना असातावेदनीयकर्म हो, तथापि मोहनीयकर्म के अभाव में दुःख की वृत्ति नहीं हो सकती, तो फिर यहाँ तो जहाँ अनन्तगुने सातावेदनीयकर्म के मध्य, अल्पमात्र (अविद्यमान जैसा) असातावेदनीयकर्म वर्तता है, वहाँ क्षुधा-तृषा की वृत्ति कहाँ से होगी?** इन दो बोल को सिद्ध किया। पहले ग्यारह को (सिद्ध किया था)। ग्यारह क्यों नहीं, ऐसा सिद्ध किया था। ये दो क्यों नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

क्षुधा-तृषा के सद्भाव में अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि कहाँ से सम्भव होंगे? क्षुधा-तृषा हो तो अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य कहाँ से होंगे। **इस प्रकार वीतरागसर्वज्ञ को क्षुधा (तथा तृषा) न होने से उन्हें कवलाहार भी नहीं होता।** वे ग्रास लें और आहार करें, ऐसा नहीं होता। दवा लें और औषधि खायें, ऐसा नहीं होता। **कवलाहार के बिना भी उनके (अन्य मनुष्यों को असम्भावित ऐसे),...** साधारण को असम्भवित। **सुगन्धित, सुरसयुक्त, सप्त धातुरहित, परमौदारिकशरीररूप नोकर्माहार के योग्य, सूक्ष्म पुद्गल प्रतिक्षण आते हैं...** पुण्य के कारण उनके शरीर में इतने सब अच्छे रजकण आते हैं। **इसलिए शरीरस्थिति रहती है।** तेरह बोल हुए।

और पवित्रता तथा पुण्य का ऐसा सम्बन्ध होता है, अर्थात् घातिकर्मों के अभाव को और शेष रहे अघातिकर्मों का ऐसा सहज सम्बन्ध होता है कि वीतरागसर्वज्ञ

को उन शेष रहे अघातिकर्मों के फलरूप परमौदारिकशरीर में जरा, रोग तथा स्वेद नहीं होते। ऐसा। इन तीन को सिद्ध किया। पहले ग्यारह को, पश्चात् दो को, पश्चात् तीन को सिद्ध किया कि क्यों नहीं, ऐसा। भगवान को शरीर होने पर भी जरा नहीं होती, रोग नहीं होता और पसीना नहीं होता। **और केवली भगवान को भवान्तर में उत्पत्ति के निमित्तभूत शुभाशुभभाव न होने से, उन्हें जन्म नहीं होता और जिस देहवियोग के पश्चात् भवान्तरप्राप्तिरूप जन्म नहीं होता, उस देहवियोग को मरण नहीं कहा जाता।** ग्यारह। ग्यारह और दो; तेरह और दो; पन्द्रह और दो; सत्रह। अठारह हुए न? जरा, रोग, और पसीना, तीन आये, देखो न! ग्यारह और दो तेरह; और तीन, सोलह; और दो, अठारह। जन्म और मरण, पण्डितजी ने अठारह की सिद्धि की।

(इस प्रकार वीतरागसर्वज्ञ अठारह दोषरहित हैं।) इसी प्रकार (अन्य शास्त्र में गाथा द्वारा) कहा है कि — देखो

सो धम्मो जत्थ दया सो वि तवो विसयणिग्गहो जत्थ।
दस-अट्ठ-दोस-रहिओ सो देवो णत्थि सन्देहो।।

कहो जेठाभाई! '**वह धर्म है, जहाँ दया है;...** रागरहित अहिंसा स्वभाव प्रगटे, उसे यहाँ दया कहते हैं। धर्म, वह अहिंसा है। अहिंसा, वह राग की अनुत्पत्ति है। आत्मा में वीतरागपने की उत्पत्ति और राग की अनुत्पत्ति को यहाँ अहिंसा और दया धर्म कहा जाता है। समझ में आया? **वह तप है, जहाँ विषयों का निग्रह है;...** मुनिपना उसे कहते हैं कि जो पाँचों इन्द्रिय के विषय का निग्रह होकर, अनीन्द्रिय आनन्द का उग्र वेदन है, उसे मुनिपना और तप कहा जाता है। समझ में आया? जिसमें पाँच इन्द्रिय के विषयों का निग्रह नहीं होता, अनीन्द्रिय दशा प्रगट नहीं होती, उसे तप नहीं कहते। उसे लंघन कहते हैं। समझ में आया? यह वर्षीतप करते हैं न।

मुमुक्षु : उसमें भी अमुक अंश विषय का निग्रह तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं होता। अनीन्द्रिय की दृष्टि बिना इन्द्रिय का निग्रह हो कहाँ से? अनीन्द्रिय भगवान आत्मा है, उसकी जहाँ दृष्टि का भान नहीं। इन्द्रिय का निग्रह तो उसे कहते हैं (कि) जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, और इन्द्रिय के विषय, इन तीनों का आश्रय छोड़कर अतीन्द्रिय का आश्रय ले, तब इन्द्रिय को जीतना कहा जाता है। समयसार की ३१वीं गाथा। '**जो इंदिये जिणित्ता**'

मुमुक्षु : सब अर्थ अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब अर्थ अलग है। कितने अर्थ बदलोगे ? एक व्यक्ति ऐसा कहता था। क्या करें ? भाई ! तुझे खबर नहीं।

भगवान आत्मा... मुनिपना और तप तो उसे कहते हैं कि जिसमें खण्ड इन्द्रिय / भाव-इन्द्रिय, जड़-इन्द्रिय और उनके विषय अर्थात् वाणी आदि, इन सबका लक्ष्य छोड़कर, अतीन्द्रिय ऐसे भगवान आत्मा का आश्रय करके रहे, उसे यहाँ इन्द्रिय का जीतनेवाला कहा जाता है। आहा..हा.. ! गजब ! समझ में आया ? **वह देव है, जो अठारह दोषरहित है,...** तीन बोल रखे हैं न ? देव तो उन्हें कहते हैं, जिनमें अठारह दोष नहीं होते। **इस सम्बन्ध में संशय नहीं है।'** लो !

और श्री विद्यानन्दिस्वामी ने (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

अभिमत-फल-सिद्धे-रभ्युपायः सुबोधः,
स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः,
न हि कृत-मुपकारं साधवो विस्मरन्ति।।

सर्वज्ञ परमेश्वर, परमात्मा अठारह दोषरहित, ऐसे अरिहन्त को बतलाया। अब कहते हैं कि उन अरिहन्त की कृपा का फल मुक्ति है। ऐ.. चन्दुभाई ! वापिस कृपा हो गयी !

मुमुक्षु : वीतरागता में से कृपा कहाँ से आयी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कृपा का अर्थ यह कि परमात्मा पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ के ज्ञान में इस आत्मा का ज्ञान भासित हुआ कि इस क्षण में इसे यह हुआ। यह भगवान की करुणा-कृपा है। 'करुणा हम पावत है तुमकी, बात रही सुगुरुगम की।' भगवान की करुणा अर्थात् ? सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक समय में तीन काल देखे, उनमें जिस समय धर्मी को आत्मज्ञान, दर्शन और अनुभव होता है, वह समय उनके ज्ञान में ऐसा वर्तता था कि इसे इस समय में हुआ, यह उनकी करुणा है। समझ में आया ?

इष्टफल की सिद्धि का उपाय, सुबोध है... क्या कहते हैं ? सम्यग्ज्ञान से बात प्रारम्भ की है। सम्यग्ज्ञान से आत्मा को सुबोध होता है। **इष्टफल की सिद्धि का उपाय, सुबोध है (अर्थात्, मुक्ति की प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है);...** यहाँ से शुरु किया है।

समझ में आया? इष्टफल अर्थात् मुक्ति, उस मुक्ति की प्राप्ति का उपाय सुबोध है। **(अर्थात्, मुक्ति की प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है);...** पूर्णानन्द की ऐसी मुक्ति, उसका उपाय तो सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती। कहो, समझ में आया?

सुबोध, सुशास्त्र से होता है;... कहो, एक ओर कहना शास्त्र से ज्ञान नहीं। क्या अपेक्षा है? भगवान की वाणी सम्यग्ज्ञान होनेवाले को वह वीतराग की वाणी ही निमित्त होती है, यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? जिसे आत्मज्ञान वस्तु हो, भगवान की वाणी में ऐसा आया था कि तेरा स्वरूप सच्चिदानन्द पूर्ण है। उस पर ध्यान लगा, तो तुझे ज्ञान होगा ही। वह ज्ञान हुआ, तब वीतराग की वाणी से हुआ—ऐसा व्यवहार से कहने में आता है।

मुमुक्षु : वाणी तो पुद्गल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल अर्थात् निमित्त हुई न? निमित्त। सम्यग्ज्ञान, ऐसा कहा उन्होंने, उस ओर का लक्ष्यवाला ज्ञान हुआ। पश्चात् उसे छोड़कर स्व का हुआ, तब उसे निमित्त कहने में आया। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक ओर कहना (कि) होता नहीं, एक ओर कहना, होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से, यह समझना चाहिए न! आहा..हा..!

सर्वज्ञपद-एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जिसे तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो, ऐसी ज्ञान की दशा का अस्तित्व, जिसने, अन्तर में वाणी आयी और स्वीकार किया, उसे अन्दर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हो, उसमें वह जिनवाणी निमित्त कही जाती है, इसलिए वाणी से हुआ ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया? आहा..हा..! अज्ञानियों की वाणी निमित्त नहीं होती, ऐसा सिद्ध करना है। व्यवहार से तो ऐसा ही लिया जाता है न!

(मुक्ति की प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है);.... ऐसा कहते हैं यहाँ, देखो! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन लेते सम्यग्ज्ञान से शुरु किया है। **(मुक्ति की प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है);....** यहाँ से शुरु किया है। सम्यग्ज्ञान **सुबोध, सुशास्त्र से होता है;...** शब्द प्रयोग किया है, देखो! सुबोध को 'सु' है और शास्त्र को 'सु' है। सुबोध उसे कहते हैं कि जो आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण स्वरूप, जिसके अन्तर्ज्ञान में आवे, ऐसे ज्ञान को सुबोध कहा जाता है। कहो, समझ में आया? और वह **सुबोध, सुशास्त्र से होता है;...**

सुशास्त्र। कुशास्त्र नहीं। भगवान की वाणी के शास्त्र। आहा..हा..! इसे परखना पड़ेगा या नहीं? कि यह वीतराग के शास्त्र ज्ञानी के हैं और ये कल्पित हैं, ऐसा अन्तर किये बिना सुशास्त्र की परीक्षा इसे कहाँ से होगी? समझ में आया?

सुबोध, सुशास्त्र से होता है; सुशास्त्र की उत्पत्ति, आप्त से होती है;... इस सुशास्त्र की उत्पत्ति त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की ध्वनि से होती है। सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण पद को प्राप्त (हुए हैं)। शरीर बाकी है, अभी वाणी बाकी है। यह ध्वनि उठती है, वह शास्त्र है। उस सुशास्त्र से बोध होता है और बोध, वह मुक्ति का उपाय है और वह सुशास्त्र, वीतराग की वाणी से उत्पन्न होते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी के अतिरिक्त सुशास्त्र उत्पन्न नहीं हो सकते। जिसने तीन काल-तीन लोक देखे और जाने नहीं, उसकी वाणी में सुशास्त्रपना कहाँ से आयेगा? धर्म का मूल सर्वज्ञ है, आता है न? समझ में आया? जिसने यह तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसी अपनी शक्ति आत्मा की थी, ऐसी जिसने प्रगट की है, उससे सुशास्त्र की उत्पत्ति होती है। कहो, निमित्त से कथन है न? शास्त्र की उत्पत्ति तो वाणी है, वाणी तो वाणी से होती है, परन्तु उसमें निमित्तपना सर्वज्ञपने का था न? समझ में आया?

मुमुक्षु : आज तो मुश्किल से लाईन में नम्बर आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई नम्बर नहीं आता किसी का। यहाँ तो जिसका है, उसका है।

आहा..हा..! आत्मा की पूर्णानन्ददशा, ऐसी जो मुक्ति है, उसका कारण सम्यग्ज्ञान; सुबोध का कारण सुशास्त्र; सुशास्त्र की उत्पत्ति सर्वज्ञ के मुखारविन्द से आवे वह। आहा..हा..! कहो, समझ में आया इसमें? दूसरे, सर्वज्ञ से आये हुए शास्त्र नहीं तो वे शास्त्र नहीं। वीतराग के मुख में से निकले, वे शास्त्र कहलाते हैं, वे सुशास्त्र हैं। ऐई! चेतनजी! क्या कहना है? यह तो सब विवाद उठेगा। दोनों सम्प्रदाय के भगवान एक हैं। ए... हरिभाई! इनकार करते हैं। भगवान एक हैं नहीं। सच्चे भगवान तो जिन्हें एक समय में त्रिकाल ज्ञान (प्रगट हुआ है)। शरीर में रोग नहीं, क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, ऐसे जो परमात्मा हैं, उनके मुख में से निकले हुए शास्त्र, उन्हें सुशास्त्र कहा जाता है। उनके अतिरिक्त के कल्पित शास्त्रों को कुशास्त्र कहते हैं। कुशास्त्र से बोध नहीं होता और बोध के बिना मुक्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! इसे परीक्षा करनी पड़ेगी या नहीं? कहाँ गये तुम्हारे चिमनभाई नहीं आये? बुखार आता है? कहो, समझ में आया? अरेरे! भूले, मूल में भूले।

भगवान में भूले, इसे सब भूल पड़ी है। समझ में आया? कहो, देवजीभाई! कहाँ किसान? कहो, ओहो..हो..!

सुशास्त्र की उत्पत्ति, आप्त से होती है;... पूर्णानन्द और सर्वज्ञपद प्राप्त है, उनके मुख से वाणी निकले, उसे सुशास्त्र कहते हैं। उसके अतिरिक्त स्वयं अपनी कल्पना से करके बनाये हों, उन्हें शास्त्र नहीं कहा जाता। गजब बात, भाई! यह तो काम कठिन। लोगों के साथ रहना और अलग-थलग रहना! जेठाभाई! जेठाभाई पहले यहाँ सुनने आये थे तो भी भड़कते थे। अमरेली नहीं? कलोज की धर्मशाला में अमेरली। यह देखो! हमारे बड़े-बड़े दृष्टान्त दे कि चक्रवर्ती समकिती होता है, उसे ऐसा होता है। छह खण्ड का राज हो तो भी समकित हो। राज-वाज का स्वामी है नहीं। समकिती को यह नहीं होता। अज्ञानी राग का स्वामी मानता है। वह त्यागी हो तो भी राग का स्वामी माने तो वह मिथ्यात्व है और त्यागी नहीं तथा राग का स्वामी नहीं मानता और आत्मा का अनुभव हो, वह समकिती है। यह तो बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। पहले अमरेली ऐसा हुआ था। (संवत्) २००६ के वर्ष। बहुत वर्ष हो गये, हों! २१ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : उससे पहले राजकोट में ही आते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले इतना सुना, तब ये भड़कते थे।

मुमुक्षु : तब खबर पड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब खबर पड़ी। किसी ने कहा.... कहो, समझ में आया? है बात ऐसी, हों! गुलाबचन्दभाई! यह वहाँ कहाँ सुनने मिले ऐसा है? वहाँ कलकत्ता में है यह?

मुमुक्षु : कलकत्ता में दुनिया.....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ अपने वीरचन्दभाई और ये पढ़ते हैं। दूसरे कोई पढ़ते हैं?

मुमुक्षु : वजुभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वजुभाई खारा। ऐसा मार्ग है, बापू! इसे परीक्षा करनी पड़ेगी और बराबर पहिचान करनी पड़ेगी। जिसे मानना है, उनकी परीक्षा किये बिना माने? परमात्मा अरिहन्त कैसे होते हैं?

मुमुक्षु : आत्मा को मानने के बाद निमित्त का क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इस आत्मा को माने कब ? यहाँ तो ऐसा कहते हैं। यह वाणी मिले और वाणी का ज्ञान हो, तब आत्मा का ज्ञान हो, इस प्रकार यहाँ बात है। समझ में आया ? सुशास्त्र की उत्पत्ति भगवान से और सुशास्त्र की उत्पत्ति से सुबोध (होता है) सुशास्त्र उससे कहते हैं कि देखो, यह आत्मा। भले परलक्ष्यी ज्ञान है, परन्तु ऐसा आता है, वह यहाँ तो सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : परलक्ष्यी ज्ञान की कीमत क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कीमत नहीं है, वह तो होता है, इतनी बात है। होता है, इतनी बात है, बस!

मुमुक्षु : बिना कीमत की वस्तु हो, उसका काम क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। सीधे सुने नहीं और सम्यग्दर्शन हो जाये, ऐसा कभी नहीं हो सकता। ऐई! अनुभव हो गया, फिर चाहे जो, उसे निमित्त से बात करो। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अनुभव के पहले के लिये बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनुभव के लिये तो कहते हैं कि अनुभव किसे होता है ? सम्यग्ज्ञान किसे होता है ? सुशास्त्र से होता है। यहाँ निमित्तपने की बात है न ? उपादान स्वयं का है, उसे सुशास्त्र निमित्त होते हैं। कुशास्त्र निमित्त नहीं होते। सुशास्त्र की उत्पत्ति परमात्मा से होती है, सशरीरी भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर... आहा..हा..! ओमध्वनि खिरती है।

मुमुक्षु : स्वयं बोध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं बोध ही है परन्तु यह स्वयं पहले तो दूसरे के निकट समझा, पश्चात् स्वयं बोध होता है। एक बार ज्ञानी की वाणी कान में न पड़ी हो और अपने आप समझ जाये, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी वस्तु की मर्यादा है, तथापि उससे नहीं समझता, यह निश्चय है। अरे! गजब बातें, भाई! ऐई! अटपटी बातें हैं।

मुमुक्षु : एक ओर से कहे निमित्त अकिंचित्कर है और यहाँ कहते हैं, यही निमित्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होता है, इसका ज्ञान कराया है, इसका ज्ञान कराया है। स्व-परप्रकाशक है। स्व-परप्रकाशक में भगवान की वाणी ही निमित्त होती है, ऐसे ये सर्वज्ञ परमेश्वर, इन्हें रोग है, क्षुधा है, तृषा है, अल्पज्ञ हैं, यह वाणी शास्त्र नहीं है।

मुमुक्षु : ये तो सब बाह्य बातें हैं, उनका क्या काम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य बात, परन्तु परीक्षा निश्चय किये बिना बाह्य का निर्णय किये बिना अन्दर में किस जा सकेगा? इसके ख्याल में यह बात आये बिना (अन्दर किस प्रकार जा सकेगा)? इस ख्याल को बाद में छोड़ना है न? परन्तु ख्याल में पहली बात क्या है, वह तो आना चाहिए। भले संक्षेप में (आवे), कोई लम्बी बात नहीं। देव-परमात्मा पूर्ण होते हैं। समझ में आया?

(संवत्) १९७२ के वर्ष में जब विवाद उठा था, तब पहले यह आया था न हमारे? भगवान ने देखा वैसा होगा। (मैं कहा), भगवान ने देखा, भगवान जिसे बैठे (जँचे, स्वीकृत हुए) उसके भव भगवान ने देखे ही नहीं। यह वाणी कैसी आयी? यह क्या आया? १९७२ के वर्ष, हों! पचपन वर्ष हुए। यह भगवान को दिखे बिना एक भव घटेगा नहीं। किसकी वाणी है यह? किसकी है यह? कौन बोलता है यह? हमारे गुरु थे, बेचारे नरम व्यक्ति थे। उन्होंने कहा कानजी कहता है, वह बात सत्य है। नहीं तो उनकी तो ४४ वर्ष की दीक्षा। मूलचन्दजी थे तीखे, उनके सामने यह सब कहा। सरवा (गाँव) सरवा का जसदण दरबार का निवास था। वहाँ था, लो! (संवत्) १९७२ का फाल्गुन का महीना। यह भी फाल्गुन (चलता है)। आज क्या है? बारस। वह भी तेरस थी, लो! वीतराग की यह वाणी नहीं, सन्तों की वाणी ऐसी होती नहीं, कहा।

आगम की वाणी ऐसी होती है कि उसे अन्दर एकदम तोड़ डाले—राग नहीं, तू नहीं, अन्दर देख। समझ में आया? कर नहीं सकेगा, ऐसी वाणी होगी उनकी? कर सकेगा, ऐसी उनकी वाणी होती है। गजसुकुमार देखो! भगवान के निकट सुना, अभी मार्ग में तो सोनी की कन्या बहुत रूपवान थी, बहुत सुन्दर थी। अब वह भेजते हैं और यहाँ वह जाते हैं भगवान के पास। सुनकर प्याला फट गया अन्दर।

प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो मैं मुनिपना लेना चाहता हूँ... जैसे सुख उपजे, वैसे करो, प्रतिबन्ध नहीं है। ऐसी भाषा आती है। वाणी तो कहाँ है। माता के निकट आज्ञा लेता है।

माता! आज्ञा दो, माँ! मुझे कहीं बात रुचती नहीं। मुझे कहीं सुहाता नहीं। राजकुमार, श्रीकृष्ण के भाई, वासुदेव के भाई। अर्धखण्ड, छह खण्ड में तीन खण्ड है न? महा सुन्दर और पाल-पोसकर बड़ा मान... मान... मान... हाथी के जैसा तालुआ होता है न! गजसुकुमाल ऐसा तो जिनका एकदम सुन्दर कोमल शरीर। आज मैं प्रभु की वाणी में सुनकर आया हूँ। मुझे आज्ञा दे, हों! अब मैं मुक्तिमार्ग में जाऊँगा। मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता। मेरा आनन्द, मेरा आनन्द। कहा, भगवान के पास क्या सुना होगा उस समय? यह (दृष्टान्त) दिया था। तुमने क्या सुना है? ऐसे नहीं चलता, हमारे यहाँ ऐसा नहीं चलता। तब तो यह बात कहाँ थी? फाट... फाट... प्याला! आज्ञा लेकर आये और भगवान के पास भी माँगी ऐसी याचना... आपकी आज्ञा हो तो मैं द्वारिका के श्मशान में जाऊँ। राजकुमार सुन्दर शरीर, मक्खन जैसा शरीर। अभी तो ऐसे विवाह की तैयारी की हुई, प्रभु! दीक्षित होकर कहते हैं... प्रभु! आपकी आज्ञा होवे तो महाकाल श्मशान में अकेला जाऊँ। आहा..हा..! प्याला, पावर, प्रस्फुटित हो गया, देखो तो सही! ऐसी वाणी होती है कहा? ऐसी वाणी (होवे) रोते हुए जैसी? अपने को बात जँचती नहीं। हमें यह सम्प्रदाय नहीं चाहिए, वाड़ा नहीं चाहिए, शास्त्र की यह वाणी नहीं चाहिए, यह गुरु नहीं चाहिए। ऐई! वजुभाई! आहा..हा..! (संवत्) १९७२ के फाल्गुन की बात है।

यहाँ देखो न! आचार्य (कहते हैं) आहा..हा..! अरे! सुशास्त्र की उत्पत्ति गुरु-तीर्थंकर से होती है, सर्वज्ञ से होती है। **उनके प्रसाद के कारण आप्तपुरुष, बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं...** भाषा देखो! उनके प्रसाद द्वारा। आहा..हा..! अरे! जिसे सर्वज्ञ पद जँचा! और सर्वज्ञ पद जिसे मिला, उसे जन्म-मरण नहीं होते। वह आगे बढ़कर एकावतारी आदि होकर मुक्ति प्राप्त करेगा। समझ में आया? आहा..हा..! जिसे सर्वज्ञ परमेश्वर की भेंट हुई, उनकी वाणी की भेंट हुई, उनके प्रसाद के कारण... देखो! किसका प्रसाद? भगवान के प्रसाद के कारण।

कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा न, भाई! हमारे गुरु ने हम पर अनुकम्पा करके, अनुग्रह करके, हमें प्रसादी दी। ५वीं गाथा (समयसार)। शुद्धात्म प्रभु! तू पवित्र आनन्दघन प्रभु है। वह आत्मा कहते हैं। इतना हमको उपदेश दिया, हम अपने में समा गये, और ऐसा निजपद है, उसे हम याद करते हैं। आहा..हा..! दूसरा सब भूल गये। कहो, समझ में आया? यह तो अजर प्याले की अगम की बातें हैं, भाई! यह धर्म कहीं लाल फेंटा जैसी

बात नहीं है। वीरों की बातें हैं। जिस मार्ग में वीर चढ़े, वे मार्ग से वापिस नहीं फिरेंगे, उन्हें वीर कहते हैं। ऐसा भगवान का मार्ग है।

यह तो कहते हैं कि **प्रसाद के कारण आप्तपुरुष, बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं....** उसकी व्याख्या यह की। **(मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से...)** आहा..हा..! कोष्ठक में अर्थ किया, सीधा अर्थ न समझे न, (इसलिए)। **उनके प्रसाद के कारण...** ऐसा है न? **आप्तपुरुष, बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं...** इसकी व्याख्या क्या? यह मूल भाषा तो अटपटी है। **उनके प्रसाद के कारण...** इसलिए अर्थ करना पड़ा। **(मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से...)** आहा..हा..! **(सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं)...** ऐसा अर्थ हुआ। किसका अर्थ हुआ यह? **उनके प्रसाद के कारण...** भगवान के प्रसाद के कारण। वे भगवान, पुरुष / बुधजनों से पूजने योग्य हैं, ऐसा। शब्द तो यह है न? देखो! तीसरा पद है न? **स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः** इस तीसरे पद की व्याख्या है। **पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः** भगवान की कृपा से। उनकी वाणी मिली और भान हुआ, वह भगवान की कृपा हम मानते हैं, कहते हैं। कहो, भीखाभाई!

भगवन्त प्रसन्न हुए। ब्राह्मण नहीं आते? लक्ष्मी प्रसन्न। आटा माँगने आवें, तब बोले न! यहाँ भगवान प्रसन्न। जिनके निमित्त से अपना भगवान जागृत हुआ, वह भगवान की प्रसादी हमें मिली, ऐसा यहाँ कहते हैं। वह भगवान की कृपा का फल हमें मिला है। समझ में आया? बहुत अनन्त जन्म-मरण के झंझट गये और पूर्ण मुक्ति प्राप्त हो, यह तो परमात्मा की कृपा का फल है। देवजीभाई! देखो भाषा! विनयवन्त के वाक्य ऐसे होते हैं। आहा..हा..! श्रीमद् में आया है न 'वह तो प्रभु ने ही दिया।' भाई! ऐसा आता है न? 'वर्तूं चरणाधीन।' हे प्रभु! आपने हमें आत्मा दिया। अर्थात् आत्मा दिया जाता होगा किसी का? उन्होंने बतलाया कि यह आत्मा। तू जो राग और पुण्य को मान रहा है, वह आत्मा नहीं। ऐसा बताया, (तो) उन्होंने दिया, ऐसा कहा जाता है। व्यवहार से ही ऐसी है।

(मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं)... धर्मात्मा द्वारा सर्वज्ञदेव पूजनीय है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! जिसे आत्मा का भान हुआ, उसके द्वारा भगवान पूज्य है। अज्ञानियों को पूज्य नहीं है। आहा..हा..! समन्तभद्राचार्य कहते हैं और भगवान की स्तुति में आया है—हे प्रभु! अभव्य आपको नहीं नमता क्योंकि जो राग को अपना स्वरूप माननेवाला है, वह वीतराग को कैसे नमेगा? बाह्य से नमता है,

वह नमा ही नहीं है। जो रागरहित भगवान आत्मा का स्वभाव, उसे अन्तर में नमा नहीं, परिणमन नहीं, श्रद्धा का भान नहीं, वह प्रभु! आपको कैसे नमेगा? क्योंकि उसकी दृष्टि तो राग पर और विकल्प पर है। वह राग को नमा हुआ है। समझ में आया? आहा..हा..! गजब बात, भाई!

(सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं)... यह अन्तिम तीसरी लाईन का अर्थ किया। अटपटा था, इसलिए अर्थ करना पड़ा। **क्योंकि किये हुए उपकार को साधुपुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं।** समझ में आया? अपने अनुभवने में, समझने में जो निमित्त पड़ा, उसका उपकार ज्ञानी नहीं भूलते। समझ में आया? देखो! यह विद्यानन्दस्वामी का श्लोक है। विद्यानन्दस्वामी ब्राह्मण थे। मुनि हुए थे। **किये हुए उपकार को साधुपुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं।** जिसका उपकार हुआ, उसे नहीं भूलते। और कहे उपकार किसी से होता नहीं। यह तो निश्चय से है परन्तु व्यवहार में जिसका निमित्त, उससे ज्ञात हुआ, उसका उपकार ज्ञानी नहीं भूलते। आहा..हा..! अपना भाव नहीं भूलते तो उपकारी का उपकार नहीं भूलते।

श्लोक-१३

और (छठवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा सर्वज्ञ भगवान श्री नेमिनाथ की स्तुति करते हैं) :—

(मालिनी)

शतमखशतपूज्यः प्राज्यसद्बोधराज्यः,
स्मरति-रसुरनाथः प्रास्त-दुष्टाघयूथः।
पदनत-वनमाली भव्य-पद्मान्शुमाली,
दिशतु शमनिशं नो नेमिरानन्दभूमिः।।१३।।

(वीरछन्द)

शत इन्द्रों से वन्दनीय जो सम्यग्ज्ञान स्वराज्य विशाल।
लौकान्तिक देवों के स्वामी, अघ समूह का किया विनाश॥

श्रीकृष्ण भी जिन्हें नमें, जो भव्य-कमल को सूर्य समान।
आनन्दभू हे नेमिजिनेश्वर ! शाश्वत-सुख तुम करो प्रदान ॥१३॥

***श्लोकार्थ :*—जो सौ इन्द्रों से पूज्य हैं, जिनका सद्बोधरूपी (सम्यग्ज्ञानरूपी) राज्य विशाल है, कामविजयी (लौकान्तिक) देवों के जो नाथ हैं, दुष्ट पापों के समूह का जिन्होंने नाश किया है, श्रीकृष्ण जिनके चरणों में नमे हैं, भव्यकमल के जो सूर्य हैं (अर्थात्, भव्योंरूपी कमलों को विकसित करने में जो सूर्य समान हैं); वे आनन्दभूमि नेमिनाथ (आनन्द के स्थानरूप नेमिनाथ भगवान), हमें शाश्वत सुख प्रदान करें ॥१३॥**

श्लोक-१३ पर प्रवचन

---

१३ वाँ। **और (छठवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा सर्वज्ञ भगवान श्री नेमिनाथ की स्तुति करते हैं) :—**

शतमखशतपूज्यः प्राज्यसद्बोधराज्यः,
स्मरति-रसुरनाथः प्रास्त-दुष्टाघयूथः।
पदनत-वनमाली भव्य-पद्मान्शुमाली,
दिशतु शमनिशं नो नेमिरानन्दभूमिः।।१३।।

नेमिनाथ भगवान की स्तुति करते हैं। मुनि स्वयं ब्रह्मचारी हैं न ? पद्मप्रभमलधारिदेव, ब्रह्मचारी तीर्थंकर को स्मरण करके नमन करते हैं। समझ में आया ? **जो सौ इन्द्रों से पूज्य हैं,...** सौ इन्द्रों से पूज्य हैं। **शतमखशतपूज्यः सौ इन्द्रों**। देखो ! सौ इन्द्र इसमें ही आते हैं। दूसरे में-श्वेताम्बर में चौसठ आते हैं। सौ इन्द्र पूर्ण, ऐसों से नेमिनाथ भगवान पूज्य हैं। **जिनका सद्बोधरूपी (सम्यग्ज्ञानरूपी) राज्य विशाल है,...** जिनका ज्ञान... पहले पर से पूज्य लिया। पश्चात् स्व का लिया। **जिनका (सम्यग्ज्ञानरूपी) राज्य विशाल है,...** तीन काल-तीन लोक जान जाये, ऐसा विशाल जिनका राज्य अन्तर में है। सम्यग्ज्ञान, वह जिनका राज्य है। तीन काल, तीन लोक को जिन्होंने जान लिया, ऐसा जो सम्यग्ज्ञान, केवलज्ञान जिनका राज्य है।

कामविजयी देवों के जो नाथ हैं,... ब्रह्मचारी हैं न, इसलिए ये अर्थ किये।

लौकान्तिक देव हैं न ? वे ब्रह्मचारी होते हैं। उन्हें इन्द्राणी, देवी नहीं होती, उनका आठ सागर का आयुष्य है, पाँचवें देवलोक में, आठ सागरोपम। आठ ही है। ऐसे लौकान्तिक देव कामविजयी हैं। वे देव काम के विजेता हैं। उन्हें देवी-स्त्री और भोग नहीं होते। आहा..हा.. ! देव, तथापि... आहा..हा.. ! वे सब एकावतारी हैं। पाँचवें देव के लौकान्तिक देव एकावतारी हैं। एक अन्तिम मनुष्य देह करके मुक्ति में जानेवाले हैं। ऐसे कामविजयी देवों के जो नेमिनाथ भगवान नाथ हैं।

दुष्ट पापों के समूह का जिन्होंने नाश किया है,... नेमिनाथ भगवान। **श्रीकृष्ण जिनके चरणों में नमे हैं,...** पदनत वनमाली, वनमाली कृष्ण। **जिनके चरणों में नमे हैं,...** कृष्ण और वासुदेव, बलदेव, नेमिनाथ भगवान **भव्यकमल के जो सूर्य हैं (अर्थात्, भव्योंरूपी कमलों को विकसित करने में जो सूर्य समान हैं);...** नेमिनाथ। निमित्त लेना है न, वह ऊपर कहा था तद्नुसार। **(भव्योंरूपी कमलों को विकसित करने में जो सूर्य समान हैं); वे आनन्दभूमि नेमिनाथ (आनन्द के स्थानरूप नेमिनाथ भगवान), हमें शाश्वत सुख प्रदान करें।** लो, निमित्त से बात लेनी है। उनसे हुआ इसलिए निमित्त है न ? **हमें शाश्वत सुख प्रदान करें।** ऐसा कहकर मांगलिक किया है और स्तुति की है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा-७

णिस्सेसदोसरहिओ केवलणाणाइपरमविभवजुदो।
सो परमप्पा उच्चइ तव्विवरीओ ण परमप्पा।।७।।

निःशेषदोषरहितः केवलज्ञानादिपरमविभवयुतः।
स परमात्मोच्यते तद्विपरीतो न परमात्मा।।७।।

तीर्थकरपरमदेवस्वरूपाख्यानमेतत्। आत्मगुणघातकानि घातिकर्माणि ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहनीयकर्माणि, तेषां निरवशेषेण प्रध्वन्सान्निश्शेषदोषरहितः अथवा पूर्वसूत्रोपात्ताष्टादशमहादोषनिर्मूलनान्निःशेषदोषनिर्मुक्त इत्युक्तः। सकलविमलकेवलबोधकेवलदृष्टिपरमवीतरागात्मकानन्दाद्यनेकविभवसमृद्धः। यस्त्वेवम्विधः त्रिकालनिरावरणनित्यानन्दैकस्वरूपनिजकारणपरमात्मभावनोत्पन्नकार्यपरमात्मा स एव भगवान् अर्हन् परमेश्वरः। अस्य भगवतः परमेश्वरस्य विपरीतगुणात्मकाः सर्वे देवाभिमानदग्धा अपि सन्सारिण इत्यर्थः।

तथा चोक्तं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैः ह्न

तेजो दिट्ठी णाणं इड्ढी सोक्खं तहेव ईसरियं।
तिहुवणपहाणदइयं माहप्पं जस्स सो अरिहो।।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(शार्दूलविक्रीडित)

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये,
धामोद्दाम-महस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतं,
वन्द्यास्तेऽष्ट-सहस्र-लक्षण-धरास्तीर्थेश्वराः सूरयः।।

तथाहि ह्न

सब दोष रहित अनन्त ज्ञान-दृगादि परम विभवमयी।
परमात्मा है वह किन्तु तद्विपरीत परमात्मा नहीं॥७॥

अन्वयार्थ :—[निःशेषदोषरहितः] (ऐसे) निःशेष दोष से जो रहित है और [केवलज्ञानादिपरमविभवयुतः] केवलज्ञानादि परम वैभव से जो संयुक्त हैं, [सः] वह [परमात्मा उच्यते] परमात्मा कहलाता है; [तद्विपरीतः] उससे विपरीत [परमात्मा न] वह परमात्मा नहीं है।

टीका :—यह तीर्थंकर परमदेव के स्वरूप का कथन है।

आत्मा के गुणों का घात करनेवाले घातिकर्म-ज्ञानावरणीकर्म, दर्शनावरणीकर्म, अन्तरायकर्म तथा मोहनीयकर्म हैं, उनका निरवशेषरूप से प्रध्वंस कर देने के कारण (कुछ भी शेष रखे बिना, नाश कर देने से) जो 'निःशेषदोषरहित' हैं अथवा पूर्व सूत्र में (छठवीं गाथा में) कहे हुए अठारह महादोषों को निर्मूल कर दिया है; इसलिए जिन्हें 'निःशेषदोषरहित' कहा गया है और जो 'सकल -विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान -केवलदर्शन, परमवीतरागात्मक आनन्द इत्यादि अनेक वैभव से समृद्ध' हैं — ऐसे जो परमात्मा, अर्थात् त्रिकाल निरावरण, नित्यानन्द[१]-एक स्वरूप निज-कारणपरमात्मा की भावना से उत्पन्न कार्यपरमात्मा, वहीं भगवान अर्हत्परमेश्वर हैं। इन भगवान परमेश्वर के गुणों से विपरीत गुणोंवाले समस्त (देवाभास), भले देवत्व के अभिमान से दग्ध हों, तथापि संसारी हैं — ऐसा (इस गाथा का) अर्थ है।

इसी प्रकार (भगवान) श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने (प्रवचनसार[२] की गाथा में) कहा है कि —

तेज (भामण्डल), दर्शन (केवलदर्शन), ज्ञान (केवलज्ञान), ऋद्धि (समवसरणादि विभूति), सौख्य (अनन्त अतीन्द्रियसुख), (इन्द्रादिक भी दासरूप

---

१. नित्यानन्द-एक स्वरूप=नित्य आनन्द ही जिसका एक स्वरूप है, ऐसा। (कारणपरमात्मा, त्रिकाल आवरणरहित है और नित्य आनन्द ही उसका एक स्वरूप है। प्रत्येक आत्मा, शक्ति-अपेक्षा से निरावरण एवं आनन्दमय ही है; इसलिए प्रत्येक आत्मा, कारणपरमात्मा है। जो कारणपरमात्मा को भाता है-उसी का आश्रय करता है, वह व्यक्ति-अपेक्षा से निरावरण और आनन्दमय होता है, अर्थात् कार्यपरमात्मा होता है। शक्ति में से व्यक्ति होती है; इसलिए शक्ति, कारण है और व्यक्ति, कार्य है। ऐसा होने से शक्तिरूप परमात्मा को कारणपरमात्मा कहा जाता है और व्यक्त परमात्मा को कार्यपरमात्मा कहा जाता है।)।

२. देखो, श्री परमश्रुतप्रभावकमंडल द्वारा प्रकाशित 'प्रवचनसार' पृष्ठ-८८

से वर्ते, ऐसा) ऐश्वर्य और (तीन लोक के अधिपतियों के वल्लभ होनेरूप) त्रिभुवनप्रधान वल्लभपना — ऐसा जिनका माहात्म्य है, वे अर्हन्त हैं।'

और इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (आत्मख्याति के २४वें श्लोक में-कलश में) कहा है कि —

(वीरछन्द)

कान्ति मात्र से ही जो, दशों दिशाओं को निर्मल करते।
तेजस्वी रवि-तेज ढँके अरु निज छवि से जन-मन हरते॥
दिव्यध्वनि से कानों में जो, अमृत-सुख बरसाते हैं।
वन्दनीय वे अष्ट-सहस लक्षणयुत सूरि जिनेश्वर हैं॥

श्लोकार्थ :- जो कान्ति से दशों दिशाओं को धोते हैं, निर्मल करते हैं; जो तेज द्वारा अत्यन्त तेजस्वी सूर्यादिक के तेज को ढँक देते हैं; जो रूप से जनों के मन हर लेते हैं; जो दिव्यध्वनि द्वारा (भव्यों के) कानों में मानों कि साक्षात् अमृत बरसाते हों — ऐसा सुख उत्पन्न करते हैं, और जो एक हजार तथा आठ लक्षणों को धारण करते हैं; वे तीर्थंकरसूरि वंद्य हैं।''

प्रवचन-१०, गाथा-७, मंगलवार, फाल्गुन शुक्ल १३, दिनांक ०९-०३-१९७१

नियमसार जीव अधिकार, ७वीं गाथा।

णिस्सेसदोसरहिओ केवलणाणाइपरमविभवजुदो।
सो परमप्पा उच्चइ तव्विवरीओ ण परमप्पा।।७।।

सब दोष रहित अनन्त ज्ञान-दृगादि परम विभवमयी।
परमात्मा है वह किन्तु तद्विपरीत परमात्मा नहीं॥७॥

परमात्मा शरीरसहित तीर्थंकर की व्याख्या है। शरीरसहित परमात्मा कैसे होते हैं ? **यह तीर्थंकर परमदेव के स्वरूप का कथन है। आत्मा के गुणों का घात करनेवाले...** लो, भाषा तो ऐसी है। भाषा का अर्थ करे, समझे तो... यह तो निमित्त से कथन है। **आत्मा के गुणों का घात करनेवाले...** अर्थात् स्वयं आत्मा का भावघातिकर्म से घात करे, तब

निमित्त घातिकर्म हों, उन्हें यहाँ घात करनेवाले कहा जाता है। यह शास्त्र में लिखा है, वह कहते हैं, लो!

मुमुक्षु : किस नय का कथन है, यह समझना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नय-वय कैसा? भगवान का कहा हुआ है या नहीं? ऐई!

मुमुक्षु : भगवान दो नय द्वारा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम कल कहते थे न? भगवान का कहा हुआ है या नहीं, बस!

मुमुक्षु : आया न, इसमें शुरुआत में कि भगवान का कथन दो नय द्वारा सर्व सत्यवादी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो नय बराबर है। यह एक नय है न परन्तु...

आत्मा के गुणों का घात करनेवाले... भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, ऐसा इसका स्वभाव है। इसकी पर्याय में स्वयं अपने स्वभावभाव में से हटकर हीनदशारूप जीव स्वयं के कारण से ज्ञान-दर्शन-वीर्य और मोह में परिणमता है, तब ये घातिकर्म निमित्त कहे जाते हैं। आत्मा के ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य—ऐसी जो आत्मा की पूर्ण शक्ति, उसकी वर्तमान दशा में, स्वयं ही आत्मा हीनदशारूप परिणमता है। ज्ञान, दर्शन और वीर्य और विपरीतरूप मोहरूप परिणमता है, उसमें निमित्तपना घातिकर्म का होता है; इसलिए घातिकर्म ने गुण का घात किया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? दो प्रकार कहेंगे। पूर्व के अठारह दोषरहित और इन दोषरहित, दो। **आत्मा के गुणों का...** ऐसा शब्द आया न?

मुमुक्षु : ऐसे तो गुणों को कहाँ घातता है? पर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण तो त्रिकाल है। गुण की वर्तमानदशा में भावघातिरूप स्वयं परिणमता है। यह विवाद तुम्हारे, ऐई! जेठाभाई! कर्म के कारण भटकता है, कर्म के कारण घात करे, बड़ा प्रश्न (संवत्) २००६ के वर्ष में रामविजय का पालीताणा में था। कर्म के कारण भटके, कर्म के कारण घात होता है। जाओ, तीर्थंकर भगवान, ऐसा कहते हैं, तुम मानते नहीं।

यहाँ यही कहते हैं। **आत्मा के गुणों का घात करनेवाले....** अर्थात् आत्मा की

वर्तमान दशा की हीनदशा में निमित्त होनेवाले घातिकर्म। **ज्ञानावरणीकर्म, दर्शनावरणीकर्म, अन्तरायकर्म तथा मोहनीयकर्म हैं,..** ये चार हैं। **उनका निरवशेषरूप से प्रध्वंस कर देने के कारण...** पहले निर्दोष की व्याख्या ऐसे करते हैं, फिर दूसरी लेंगे। **उनका निरवशेषरूप... (कुछ भी शेष रखे बिना) से प्रध्वंस कर देने के कारण...** प्र—विशेष, ध्वंस किया होने से **(कुछ भी शेष रखे बिना, नाश कर देने से) जो 'निःशेषदोषरहित' हैं...** निःशेषदोषरहित। पहला पद, गाथा का पहला पद—**णिस्सेसदोसरहिओ** नास्ति से बात की।

अथवा पूर्व सूत्र में (छठवीं गाथा में) कहे हुए अठारह महादोषों को निर्मूल कर दिया है;... देखा! दोष को निर्मूल किया। उन घातिकर्मों का नाश किया, ऐसा पहले कहा। अब दोषों का नाश किया, ऐसा (कहा) वापिस। समझ में आया? **अठारह महादोषों को निर्मूल कर दिया है; इसलिए जिन्हें 'निःशेषदोषरहित' कहा गया है...** सर्वथा दोषरहित है।

मुमुक्षु : कर्म से आये वे अपने भाव से।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पर्याय है। अठारह दोष उनकी दशा में थे, वे आत्मा ने अभाव किये। पश्चात् कारण है, वह सब देंगे।

और जो 'सकल-विमल'.... उनका (दोषों का) नाश किया और प्रगट क्या हुआ? **(सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-केवलदर्शन,...** केवलज्ञान प्रगट हुआ। देखो! यह अरिहन्त की व्याख्या। णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं करते हैं। यहाँ तीर्थंकर देव की मुख्य व्याख्या है। कहते हैं **'सकल-विमल' (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-केवलदर्शन,...** टीका में केवल दृष्टि शब्द है, तथापि अर्थ तो केवलदर्शन का ही यहाँ हो सकता है। संस्कृत में यह है केवल बोध, केवलदृष्टि। जिन्हें **'सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान -केवलदर्शन,...** प्रगट हुआ है, उन्हें परमात्मा कहते हैं।

परमवीतरागात्मक आनन्द... आहा..हा..! लो, परम वीतरागस्वरूप आनन्द जिन्हें प्रगट हुआ है। यह जगत के सुख की कल्पनायें, ये सब दोषरूप, दुःखरूप जहर है। यह तो परमवीतरागस्वरूप आत्मा... परमवीतरागस्वरूप आत्मा से प्रगट हुआ आनन्द। वीतरागी आनन्द जिन्हें प्रगट हुआ है। आहा..हा..! **इत्यादि...** पश्चात् उन्हें योग्य जितने गुण प्रगट हुए हैं, वे सब। **अनेक वैभव से समृद्ध हैं...** यह वैभव, लो! परमात्मा का यह वैभव है, अज्ञानी का यह सब शरीर और बाहर का वैभव, बाग और बगीचा, अज्ञानी ने धूल में वैभव माना है।

धर्मी-परमात्मा का अनन्त-अनन्त बेहद केवलज्ञान, केलवदृष्टि अर्थात् दर्शन और केवल अकेले वीतरागस्वरूप आनन्द, अतीन्द्रिय वीतरागस्वरूप आनन्द, अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव से आनन्द और अनन्त वीर्य। **इत्यादि अनेक वैभव से समृद्ध हैं...** पाठ में है न? **परमविभवजुदो** यह परमात्मा को वैभव होता है। समझ में आया? शरीर परम औदारिक और रोगरहित, इस बात को यहाँ गिना नहीं है। वह तो बाह्य में गया। ऐसा जिन्हें वैभव प्रगट हुआ है, ऐसे परमात्मा को जो पहिचाने, माने और अपने स्वभाव पर दृष्टि जाये, क्योंकि परमात्मा स्वभाव में से हुए हैं। अभी आयेगा। **अनेक वैभव से समृद्ध हैं—ऐसे जो परमात्मा,...** वर्तमान में परमेश्वरदशा, शरीर में रहे हुए होने पर भी, शरीरसहित दिखने पर भी, अन्तर में ऐसी ऋद्धि, वीतरागस्वरूपी आनन्द। केवलज्ञान, दर्शन और वीर्यादि प्रगट हुए।

अर्थात् त्रिकाल निरावरण... अब ऐसे परमात्मा कैसे हुए? इसकी साथ ही व्याख्या करते हैं। तीर्थंकरदेव परमात्मा ऐसी दशा को कैसे प्राप्त हुए? त्रिकाल निरावरण भगवान आत्मा का स्वरूप, ध्रुव-ध्रुव कारणपरमात्मा, त्रिकाल ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, सदृश एकरूप त्रिकाली भाव, वह त्रिकाल निरावरण है। उसे आवरण था और आवरण टले, ऐसा उसमें नहीं है। आहा..हा..!

अर्थात् त्रिकाल निरावरण, नित्यानन्द-एकस्वरूप... नित्य जिसका आनन्द, ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा का है। **नित्यानन्द-एकस्वरूप...** एकस्वरूप आनन्द। कम-ज्यादा या भेदवाला आनन्द नहीं। ऐसा प्रत्येक आत्मा का त्रिकाली नित्यानन्द एकस्वरूप स्वभाव है। नीचे स्पष्टीकरण है, देखो। **नित्यानन्द-एक स्वरूप=नित्य आनन्द ही जिसका एक स्वरूप है, ऐसा। (कारणपरमात्मा, त्रिकाल आवरणरहित है...)** कौन कारणपरमात्मा? इस आत्मा को उपजानेवाला कारणपरमात्मा। उन्हें? कार्यपरमात्मा को उपजानेवाला आत्मा। क्या कहा? नहीं समझे? कार्यपरमात्मा जो पर्याय में हुआ, उसे उपजानेवाला कारणपरमात्मा अपना त्रिकाल (स्वभाव)। द्रव्य कारण है, कार्य पर्याय है।

(नित्य आनन्द ही जिसका एक स्वरूप है।) भगवान आत्मा का ध्रुवस्वभाव, नित्यस्वभाव, नित्य आनन्द उसका एक रूपस्वरूप है! देखो! आनन्द से यहाँ शुरु किया, देखा! आहा..हा..! **(प्रत्येक आत्मा, शक्ति-अपेक्षा से निरावरण...)** नीचे नोट में है।

प्रत्येक आत्मा अन्तर शक्ति, आत्मा सत् का सत्व, तत् का तत्त्व—ऐसा जो शक्तिरूपभाव, वह त्रिकाल निरावरण है। (**एवं आनन्दमय ही है;...**) शक्ति को आवरण नहीं; स्वभाव को, गुण को, ध्रुव को आवरण नहीं और नित्य आनन्दस्वरूप है। (**इसलिए प्रत्येक आत्मा, कारणपरमात्मा है।**) इसलिए प्रत्येक आत्मा शक्ति अपेक्षा से, ध्रुव अपेक्षा से निरावरण और आनन्द होने से कारणपरमात्मा है। आहा..हा..! समझ में आया? आत्मा, उसकी उत्पाद-व्यय की जो पर्याय है, उसे छोड़कर, त्रिकाली ध्रुव नित्य अनादि अनन्त अविनाशी वस्तु, वह अपनी शक्ति अपेक्षा से निरावरण और नित्य आनन्द एकरूप है। आहा..हा..!

(**इसलिए प्रत्येक आत्मा, कारणपरमात्मा है।**) प्रत्येक आत्मा, अभव्य का आत्मा भी कारणपरमात्मा है। आहा..हा..! पण्डितजी! 'सर्व जीव है सिद्धसम।' अन्तर शक्ति में तो सभी आत्मायें सिद्धसमान हैं। आहा..हा..! पूर्णानन्दस्वरूप जिसका और एकरूप जिसकी शक्ति, ऐसा आत्मा ध्रुव, वह प्रत्येक आत्मा उस ध्रुव की अपेक्षा से तो कारणपरमात्मा है। समझ में आया? इसे उपजानेवाला दूसरा कोई नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अभव्य के लिये भी लागू होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कारणपरमात्मा है न, प्रगट नहीं कर सकता। है तो सभी आत्मा ऐसे ही हैं। शक्ति तो सबकी एक सरीखी है। यहाँ कहा न? सभी आत्मा, ऐसा कहा, देखो न! (**प्रत्येक आत्मा, कारणपरमात्मा है।**) ऐसा है न? (**जो कारणपरमात्मा को भाता है-उसी का आश्रय करता है,...**) देखो, अन्दर में यह है, निज कारणपरमात्मा की भावना से उत्पन्न। देखो! यह विवाद है न भावना का। अभी आया नहीं था? कि तुम विपरीत अर्थ करते हो। भावना का अर्थ तो चिन्तवन और ऐसा होता है।

मुमुक्षु : भावना भवनाशिनी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भावना अर्थात् स्वरूप की एकाग्रता। भावना अर्थात् यह विकल्प करना, चिन्तवन करना, ऐसा नहीं। देखो! मूल पाठ में है न? **निज-कारणपरमात्मा की भावना से उत्पन्न...** आत्मा कार्यपरमात्मा है। अरिहन्त तीर्थंकरदेव ने परमेश्वरपना कैसे प्रगट किया? उन्हें परमात्मपना कार्यरूप से कैसे प्रगट किया? आत्मा त्रिकाली वीतरागी आनन्द का कन्द ध्रुव, शक्तिरूप से कारणपरमात्मा है, उसकी एकाग्रता; भावना अर्थात् एकाग्रता, भाव की भावना-भाव जो त्रिकाली है, उसकी भावना अर्थात् निर्मल पर्याय, उसके द्वारा उन्हें परमात्मपना प्रगट होता है।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ की विधि बताओ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ की यह विधि है।

भावना से उत्पन्न किया है। संकल्प-विकल्प से उत्पन्न होता है ? कितने ही भावना का यह अर्थ करते हैं। अभी विरोध का आया था। ब्रह्मनिष्ठ हूँ और तुम दूसरे साधारण लोगों को ऐसा समझाते हो। रतलाम का किसी पर पत्र था। आहा..हा..! भाई! ....प्रवचनसार में आता है न श्रावक का! सामायिक के काल में भी जिसे शुद्धोपयोग की भावना होती है, तब उस शुद्धोपयोग की भावना का अर्थ ऐसा कि चिन्तवन (करे) ऐसा शुद्ध है, ऐसा। ऐसा नहीं है। सामायिक सम्यग्दृष्टि की सच्ची होती है, उसे अन्दर शुद्धोपयोग होता है। उसे भावना कहते हैं।

मुमुक्षु : निजस्वरूप भाव का उपयोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : निजस्वरूप उपयोग। समझ में आया ? सच्ची सामायिक उसे कहते हैं कि जिसे पहला आत्मा, कारणपरमात्मा त्रिकाल हूँ—ऐसा जिसे प्रथम अनुभव हो और पश्चात् स्वरूप में स्थिर होने पर उसे सामायिक में शुद्धोपयोग हो। उसे यहाँ शुद्ध -उपयोगरूपी भावना कहा जाता है। चिन्तवना... चिन्तवना नहीं, ऐसा विकल्प नहीं। समझ में आया ? पोपटभाई! यह सामायिक।

मुमुक्षु : चिन्तवना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्तवना विकल्प में जाती है। वह नहीं, तथापि इसे चिन्तवना शब्द कहा जाता है, परन्तु यह चिन्तवना स्वरूप में एकाग्रतारूपी भावना को यहाँ चिन्तवना कही है। कहो, जेठाभाई! ऐसी सामायिक कभी की थी ? खबर नहीं।

यहाँ तो भावना शब्द में, शुद्धता अन्दर निर्मलता। कारणपरमात्मा स्वयं ध्रुव है, नित्य है, नित्यानन्द वीतराग आनन्दस्वरूप है। उसे अन्तर में ध्येय बनाकर, उसे ध्येय बनाकर, ज्ञान की वर्तमान दशा में उसे ज्ञेय बनाकर एकाग्र होने का नाम यहाँ भावना कहा जाता है। उस भावना से आत्मा कार्यपरमात्मपना पाता है। गजब काम कठिन! आहा..हा..! समझ में आया ? देखो! यहाँ अपने यहाँ है न ?

(कारणपरमात्मा को भाता है...) अर्थात् यहाँ भावना से उत्पन्न होता है, ऐसा

आया न? वस्तु शुद्ध चैतन्यध्रुव, अनन्त आनन्द का वीतरागी स्वभाव का पिण्ड प्रभु, एकरूप आनन्द जिसकी ध्रुवता, नित्यता, एकता जिसकी त्रिकाल है। उसकी भावना, उसके सन्मुख की एकाग्रता, उस कारणपरमात्मा की भावना से आत्मा तीर्थंकर कार्यपरमात्मा को अर्थात् केवलज्ञान आदि को प्राप्त हुए हैं। आहा..हा..! कहो, समझ में आया? देखो!

(कारणपरमात्मा को भाता है-उसी का आश्रय करता है,...) देखो! इसका स्पष्टीकरण किया। उस भावना का अर्थ यह है। आहा..हा..! अनादि से पुण्य और पाप के विकल्प का आश्रय किया है अथवा एक समय की अंशदशा का अवलम्बन और आश्रय किया है, वह मिथ्यादृष्टिपना है। उसने आश्रय और त्रिकाली ज्ञायक की एकाग्रता की भावना (करनी चाहिए)। उससे इसे-आत्मा को केवलज्ञान और परमात्मदशा प्राप्त होती है। देखो! इसका कारण भी यह बताया। आहा..हा..! बहुत संक्षिप्त और बहुत उत्कृष्ट। बीच में व्यवहाररत्नत्रय से कार्यपरमात्मा होते हैं, उसका यहाँ निषेध आया। यहाँ अस्ति से बात की है। पण्डितजी! व्यवहाररत्नत्रय—सम्यग्दर्शनव्यवहार.... व्यवहार कारण और निश्चय कार्य... देखो, कल ही आया था। अरे! भगवान! आहा..हा..! तू ऐसा नहीं है कि जो राग का आश्रय ले और आगे जा सके, ऐसा तू नहीं है। तेरा आश्रय लेकर आगे जा सके, ऐसा तू है। समझ में आया? बात अभी सुनने में आयी नहीं हो, वह समझे कब? कब सम्यक्त्व पावे? और कब चारित्र पावे? आहा..हा..!

कहते हैं कि वह आश्रय करता है, किसका? यह नित्यानन्द प्रभु, वस्तु अस्ति सत्ता शक्तिरूप से महाप्रभु आत्मा है, उसका जो आश्रय करे, उसकी भावना करे, वह व्यक्ति अपेक्षा से निरावरण, वह प्रगट अपेक्षा से निरावरण होता है और आनन्दमय होता है। अर्थात् क्या कहा? शक्ति त्रिकाल निरावरण और आनन्दमय है। भगवान आत्मा का त्रिकाली स्वभाव-शक्ति आनन्दमय और निरावरण है। ऐसी शक्ति की एकाग्रता से व्यक्ति में निरावरण और अतीन्द्रिय आनन्द को पाता है। आहा..हा..! समझ में आया? क्या कहा? भगवान आत्मा, अन्तर का इसका स्वभाव, नित्यस्वरूप दल, वीतराग आनन्दमय निरावरण, ऐसा उसका त्रिकाली ध्रुवस्वरूप है, वह कारणपरमात्मा है। उस कारणपरमात्मा की भावना से अर्थात् ऐसा जो भाव है, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता से। शक्तिरूप से निरावरण और नित्य आनन्द, वीतराग आनन्द है, वह उसकी भावना से व्यक्तरूप से निरावरण और परमानन्दरूपमय हो जाता है।

मुमुक्षु : स्वयं ही परमात्मा बन जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं बन जाता है। है स्वयं, कारणरूप से तो है ही। आहा..हा..! कहो, देवजीभाई! ऐसा परमात्मा है। जहाँ है, वहाँ से मिलेगा। यह कारणपरमात्मा बाहर में है? आहा..हा..!

(वह व्यक्ति-अपेक्षा से निरावरण और आनन्दमय होता है,...) देखा? **(अर्थात् कार्यपरमात्मा होता है। शक्ति में से व्यक्ति होती है;...)** अर्थात् जो शक्तिरूप तत्त्व था, उसमें से प्रगट होता है। कारण तो त्रिकाली भगवानस्वरूप ही आत्मा है। वह शक्तिरूप है। उसकी एकाग्रता से व्यक्तिरूप आत्मा, परमात्मा को निरावरण होता है। **इसलिए शक्ति, कारण है और व्यक्ति, कार्य है।** यह आत्मा की त्रिकाली ध्रुव शक्ति, वह कारण है और वर्तमान परमात्मा अरिहन्त हों, वह कार्य है। आहा..हा..! अरिहन्त ऐसे हुए, ऐसी विधि बतायी। दूसरे प्रकार से अरिहन्त नहीं हुए हैं और जिसे परमात्मा होना हो, उसकी विधि भी यही है, दूसरी विधि नहीं है। आहा..हा..! तब यह सब क्या? यह मन्दिर, अष्टाह्निका की पूजा, धमाल, बड़े मन्दिर (बनाना)... भाई! यह तो उस काल में उसके कारण से बने होते हैं। तब स्वरूप में स्थिरता नहीं हो और दृष्टि होने पर भी उसका लक्ष्य शुभभाव आता है; इसलिए पर के प्रति जाता है, इतना शुभभाव पुण्य-बन्ध का कारण है। वह बन्ध से छूटने का कारण नहीं है। समझ में आया? आहा..हा..! देव-गुरु और शास्त्र की भक्ति और श्रद्धा भी बन्धन से छूटने का कारण नहीं है। आहा..हा..!

चैतन्य आनन्द सरोवर, त्रिकाल वीतराग आनन्द का कन्द प्रभु, वह शक्तिरूप निरावरण और आनन्द है। वही शक्ति की बारम्बार सम्हाल और एकाग्रता होने पर, व्यक्तरूप से निरावरण और वीतरागी आनन्द प्रगट होता है। उसे कार्य आत्मा, कार्यपरमात्मा कहा जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? **ऐसा होने से शक्तिरूप परमात्मा को कारणपरमात्मा कहा जाता है...** भगवान आत्मा शक्तिरूप तत्त्व है, उसे कारणपरमात्मा कहते हैं और व्यक्त परमात्मा को कार्यपरमात्मा कहा जाता है। पण्डितजी ने सरस स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया? उसे त्रिकाली स्वरूप का अन्तर में माहात्म्य नहीं आता और एक समय की अवस्था तथा राग का माहात्म्य नहीं टलता; इसलिए वह परिभ्रमण करता है। बहुत ही संक्षिप्त में यह बात है। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो प्रगट दशा की, वही शक्तिरूप तो अन्दर थी। ऐसा आत्मा। सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा, प्रगट किया हुआ आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर, तीर्थंकरदेव, देवाधिदेव। दूसरे कल्पना से आत्मा की बातें करे, आत्मा ऐसा, ऐसा है, वैसा है, सर्वव्यापक है, मनुष्य प्रमाण है - ऐसा नहीं। है तो शरीरप्रमाण, शरीर से भिन्न, असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का धाम—ऐसा जो ध्रुवस्वरूप भगवान, उसे यहाँ कारणपरमात्मा कहा है। जो कि प्रत्येक आत्मा ऐसा है ही। आहा..हा..! उसकी **भावना से उत्पन्न...** क्योंकि कार्यपरमात्मा, वह उत्पन्न शब्द है। कारणपरमात्मा, वह उत्पन्न नहीं था। कारणपरमात्मा तो त्रिकाल ध्रुव है ही। समझ में आया?

आहा..हा..! यह दुर्गन्ध, गन्ध, कोमल शरीर, गन्ध की मूर्ति; भगवान आनन्दघन की मूर्ति है, ऐसा यहाँ तो वीतरागस्वरूप त्रिकाल आनन्द उसमें है, वह शक्तिरूप से वीतरागस्वरूप आनन्द है। वह प्रत्येक आत्मा में है। आहा..हा..! कहीं बाहर से लाया जाये, ऐसा है नहीं। अन्दर भगवान पूर्णस्वरूप है, उस पर एकाग्र होने से, उसे कारणरूप से ग्रहण करके, जो दशा में स्वभाव-सन्मुख एकाग्र हो, उससे कार्यपरमात्मा, अरिहन्तपद, सिद्धपद आदि उससे प्राप्त होता है। कैसी बात की! व्यवहार से होता है, यह तो इसमें से निकाल दिया।

मुमुक्षु : दूसरे शास्त्र में...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे शास्त्र में अर्थात् यह तो कथन होता है, व्यवहार होता है, कैसा होता है, वह बताने के लिये (बात है); बाकी उससे कुछ होता नहीं है।

मुमुक्षु : शीघ्र मोतिया उतर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : शीघ्र मोतिया उतर जाये, ऐसी बात है। रात्रि में कहा था न, तीन घण्टे बैठा रहे। पहले चौबीस घण्टे ही नहीं बैठाते थे। जल्दी मोतिया उतर जाये, ऐसी कला आयी है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है। आहा..हा..!

तेरी दृष्टि राग और एक समय की पर्याय पर है। इसे कारणपरमात्मा पर दृष्टि डाल।

छूटा, छूटा। उसे कारणपरमात्मा के साधन अन्दर से, कारणपरमात्मा की एकाग्रता से प्रगट हुए। आहा..हा..! कहो, समझ में आया? फिर पठन कम हो, अधिक हो, वह उसके घर रहा। भीखाभाई! मतलब तो यह है। आहा..हा..! 'ढींग धणीं माथे कियो...' ध्रुव को ढींग धणी अन्दर में धारण किया। वह अन्दर ढींग धणीं धारण किया। 'कौण गंजे नर खेत।' उसे अब कौन व्यवधान कर सकता है? जहाँ परमात्मा स्वयं त्रिकाली भगवान का शरण लिया, कहते हैं कि उसका जहाँ आश्रय लिया, उसकी भावना की, (उसे कौन बाधक होगा)? इस भावना के अर्थ के लिये अधिक (स्पष्टीकरण) होता है, हों! वे भावना-बावना में कल्पना और चिन्तवना करते हैं। ऐसा कहते हैं कि सामायिक में समकिती को और श्रावक को शुद्धभाव की भावना होती है, शुद्धभाव नहीं होता, ऐसा (वे) सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : आतमभावना भावता.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भावना, भावना वह श्रीमद् में है, यह दूसरे (कहते हैं)। 'आतमभावना भावतां जीव लह्ये केवलज्ञान' यह वापस उनके भक्त ऐसा कहते हैं, भगवान की भक्ति करते-करते अपने को निर्जरा होती है। विपरीत बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अब सार कह दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सार कहा न 'आतमभावना भावतां जीव लह्ये केवलज्ञान' ऐसा शब्द है। फिर ऐसे रटा करे - 'आतमभावना भावतां जीव लह्ये केवलज्ञान'... क्या हो? आतमभावना क्या? भावना क्या?

मुमुक्षु : भाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह आत्मा अर्थात् यह कारणपरमात्मा, वह। इसकी भावना अर्थात् अन्दर में एकाग्रता, शुद्धता की एकाग्रता। उससे केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है। कहो, प्रेमचन्दभाई! आतमभावना भावतां (-ऐसा अन्दर में रटा करे)। 'आतमभावना भावतां जीव लह्ये केवलज्ञान' तोता बोले वैसे (रटा करे)। आहा..हा..! पोपटभाई! पोपट (तोता) बोले ऐसे। तब सामायिक के पहाड़े बोले होंगे न? आहा..हा..! बहुत सरस बात ली है।

उत्पन्न कार्यपरमात्मा,... कारणपरमात्मा उत्पन्न नहीं होता, व्यय नहीं होता। वह तो ध्रुवरूप त्रिकाल है और कार्यपरमात्मा उत्पन्न होता है, क्योंकि वह पर्याय है। समझ में

आया ? एक व्यक्ति फिर कहता है लो, यह हमारी सामायिक नहीं ? सामायिक। सामायिक किये बिना धर्म होता होगा ? भाई ! सामायिक किसे कहना, तुझे खबर बिना का। आहा..हा.. ! सामायिक थी कब ? अभी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा होती है। समझ में आया ? उसे समकित कैसा ? वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह मिथ्यादृष्टि सामायिक लेकर बैठे, वह सामायिक कैसी ? मिथ्या सामायिक और विषम सामायिक है। वह तो पापरूपी सामायिक है। ऐई ! हरिभाई ! हरिभाई ठण्डे व्यक्ति हैं। लो, यह सामायिक कहलाती है। इसे पहले समझ में तो आना चाहिए न ? जहाँ समझ ही सच्ची नहीं, उसका फिर प्रयोग किस ओर करना इसे ? बाहर से लगाकर मर गया अनन्त काल से। यह सामायिक की और प्रतिक्रमण किये और प्रौषध किये। बिना इकाई के शून्य हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : किसी को ऐसा कहे कि यह तो पाप है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप ही है। सेठी ने भी पहले यह सब ढोंग किये थे न !

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञपने को प्राप्त हुए। वीतरागपना प्राप्त हुए, वे किस प्रकार प्राप्त हुए ? उसकी विधि क्या ? तो उसकी विधि ऐसी सब आत्माओं की विधि एक है। भगवान तीर्थंकरदेव अनन्त तीर्थंकर हुए, वर्तमान में विराजते हैं। महाविदेह में सीमन्धर भगवान आदि विराजते हैं। लाखों केवली हैं, अनन्त सिद्ध हो गये हैं। सब कैसे हुए ? किस विधि से हुए ? किस प्रकार से हुए ? ऐई ! जादवजीभाई !

भगवान आत्मा चैतन्यध्रुव, नित्य अविनाशी, नित्यानन्द वीतरागस्वरूपी भगवान आत्मा स्वयं है। शक्तिरूप से, सत्वरूप से, ध्रुवरूप से, भावरूप से, ज्ञायक के स्वभावरूप से यह आत्मा त्रिकाली ध्रुव ज्ञायक शक्तिरूप से है। निरावरण और वीतरागी आनन्द का कन्द प्रभु यह आत्मा है। ऐसे ध्रुवस्वभाव की दृष्टि करके, उसके ध्रुवस्वभाव में लीनता करके... यह भावना। इस भावना से (कार्यपरमात्मा हुए)। यह भावना, वह उत्पन्न है, ध्रुव में भावना, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह उत्पन्न है परन्तु उस भावना से कार्यपरमात्मा अरिहन्त सर्वज्ञदेव, अनन्त इस भावना से हुए हैं। समझ में आया ? आहा..हा.. ! कान से सुना न हो, ऐसा होगा ? रमणीकभाई ! कमाने में... कमाने में... समय जावे, इसकी अपेक्षा निवृत्त हो तो सुनने का विपरीत मिले। सच्चा क्या है, वह सुनने को मिले नहीं, अब उसका कब निस्तारा हो। समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान! प्रभु! एक बार दूसरा भूल जा। जिसे याद करके मेरा माना है, उन्हें भूल जा और जिसे याद नहीं किया और मेरा नहीं माना, उसे याद कर। आहा..हा..! भगवान! यह शरीर, वाणी, मन तो मिट्टी-धूल है। यह तो माँस का पिण्ड है। सड़ा हुआ-सड़ा हुआ गधे की चमड़ी जैसा हो, वैसा सब इसमें है, बापू! आहा..हा..! यह तो अजीव तत्त्व है। इसमें पुण्य-पाप के विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति के आते हैं, वह भी विकार और राग और दोष है। उसे जाननेवाली वर्तमान ज्ञान की अवस्था भी क्षणिक और एक क्षण की दशा की पर्याय है, उतना भी तू नहीं। राग-द्वेष में नहीं, राग को जाननेवाली एक समय की व्यक्त अवस्था-इतने में भी तू नहीं, तू जो है त्रिकाल... आहा..हा..! नित्यानन्द, सहजानन्द की मूर्ति, परमात्मा सर्वज्ञदेव ने देखी उतनी, वैसी। आहा..हा..! अब क्या कहाँ जाना? समझ में आया?

मुमुक्षु : घोंट-घोंटकर पिलाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौंसठ पहरी तो घुँटती है यह।

यहाँ तो कहते हैं। यहाँ तो क्या आया है? देखो न! **निज-कारणपरमात्मा की भावना से...** ऐसा शब्द है न? भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हो, वे उनके भगवान। अनन्त सिद्ध हुए, उनका ध्यान करे तो वह विकल्प है। यह अपनी एक समय की पर्याय का ध्यान करने जाये तो वह राग है। यहाँ तो **निज-कारणपरमात्मा की भावना....** इतने में सब भरा है। पूरा वीतराग का मार्ग, परमेश्वर का-केवलियों का (मार्ग इसमें है)। 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं', बोलते हैं न? सबेरे पहाड़े बोल जाते हैं। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं... पहाड़े बोलते हैं, एक भी अर्थ की खबर नहीं होती। हरिभाई! आहा..हा..!

कहते हैं, **निज-कारणपरमात्मा...** कैसा है? कि एक तो मानो त्रिकाल निरावरण भगवान आत्मा का स्वरूप है। अन्तर स्वरूप ध्रुव नित्य भाव, वह त्रिकाल निरावरण है। एक बात। नित्यानन्द, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द नित्य-शाश्वत् पड़ा है। कैसे जँचे? जिसके अन्तर आत्मा के, अन्तर ध्रुवस्वरूप में सब आत्मा को, नित्यानन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द स्वयं है। उसे यहाँ ध्रुव आत्मा कहा जाता है। उसे यहाँ कारणपरमात्मा कहा जाता है। वह कौन सा? कि निज कारणपरमात्मा। वापिस भाषा निज - अपना कारणपरमात्मा।

मुमुक्षु : अपना ही काम आवे न, दूसरे का क्या काम आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान का भगवान के पास रहा। आहा..हा.. ! णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं करके मुक्ति हो। तीन काल में नहीं होती, कहते हैं। यह तो विकल्प-राग है।

मुमुक्षु : इसलिए निज कारण कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए निज कारणपरमात्मा कहा है। समझ में आया ?

निज-कारणपरमात्मा की... वे बहियाँ फिरावे वहाँ, गुलाबचन्दभाई ! ऐसा उसमें नहीं मिलता। वहाँ उसमें है कुछ ? नहीं। सब भाई इकट्ठे होते हों, तब भी ऐसा नहीं होता। तीन तो गये, अब तीन रहे। ये बातें ही अलग प्रकार की हैं। सम्प्रदाय में यह बात नहीं है। समझ में आया ? यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का अनादि मार्ग जो है, वहाँ कहते हैं कि यह निज कारणपरमात्मा जो अनन्त आनन्द के जल से भरपूर भगवान अनादि-अनन्त आत्मा है, ऐसे निज कारण (परमात्मा की भावना)। एक तो निज शब्द प्रयोग किया। दो शब्द, एक तो त्रिकाल निरावरण, नित्य आनन्द दो; एकस्वरूप। यह त्रिकाल एकस्वरूप है और निज कारणपरमात्मा। अभेद बतलाना है न ? निज कारणपरमात्मा भगवान ध्रुवस्वरूप की भावना से। ऐसा चिदानन्द भगवान आत्मा ध्रुव, नित्य की एकाग्रता से निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह भावना है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आत्मा की वीतरागी दशा, वह परमात्मा की भावना है। समझ में आया ? उससे उत्पन्न केवलज्ञान-केवलदर्शन अनन्त आनन्द परमात्मा अरिहन्त प्राप्त हुए, वह तो उत्पन्न पर्याय हुई है। वह कोई पर्याय में पूरा आत्मा नहीं था। पूरा तो ध्रुव है। यह तो नयी दशा प्रगट हुई। सिद्धपना भी आत्मा में कार्यपरमात्म दशा नयी प्रगट होती है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : एकरूप क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक स्वरूप अभेद। नित्यानन्द एकरूप स्वरूप है। उसमें भेद नहीं है। गुण-गुणी का भेद नहीं है, पर्याय के अंश का भेद नहीं है। अरे ! आहा..हा.. ! ऐसा निजनिधान भगवान आत्मा है। कहो, समझ में आया ? अरे ! उसकी शरण में जा, तेरा दुःख नहीं रहेगा - ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! देखो न, ऐसे दुःखी-दुःखी है, ऐसे दया आ जाये। दर्शनविजय को ? बेचारा।

मुमुक्षु : डोली में थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : डोली में थे। दो साधु सामने, पीछे मददनीश। कुछ भान नहीं। चिल्लाहट मचाते थे। क्या बोलते हैं, इसकी कुछ खबर नहीं। मैं खड़ा रहा, इसलिए मेरी अंगुली पकड़ी। कुछ भान नहीं, कुछ खबर नहीं। आहा..हा..! देखो न दशा! भगवान भूलकर कहाँ भ्रमता है ? सामने बैठकर जा रहे थे बेचारे। मेरे सामने हाथ किया। खड़ा रहा। कौन हो ? दर्शनविजय, त्रिकूट में का दर्शनविजय। ठीक। यह तो अपने यहाँ (संवत्) १९९९ में आये थे न, यहाँ बैठे थे। १९९९ में चर्चा हुई थी, कितने वर्ष हुए ? २९ वर्ष हो गये। वे कहे कि यह गुरु की वाणी है। देव की वाणी दूसरी हमारी। तुम्हारा नाम क्या ? दर्शनविजय। अच्छा। भव्य-अभव्य का निर्णय किया है ? तुम भव्य हो या अभव्य ? कहे, यह निर्णय नहीं होता। तब तुम्हें भव्य-अभव्य का निर्णय नहीं और तुम वीतराग की वाणी की परीक्षा करने निकले! कसौटी की उस समय। कुछ बड़ा भी नहीं एकदम काला बड़ा, चिल्लाहट मचावे। क्या बोलता हूँ इसकी खबर नहीं। आहा..हा..! कुछ खबर नहीं। बहुत बोल सके नहीं। यह मिथ्यात्व का खेल ऐसा है। खबर नहीं, नहीं ? खबर जैसा कुछ लगा नहीं।

कहते हैं, तीर्थंकरदेव के केवलज्ञानी के सिद्धान्त में यह अन्तर है। भाई! तुझे केवलज्ञानरूपी परमात्मदशा प्रगट करनी हो तो उसके लिये कारण तो तू अन्दर पड़ा, वह है। दूसरा कोई निमित्तकारण और मजबूत संहनन और हड्डियाँ तथा यह मनुष्य देह हो तो हो, व्यवहार समकित-फमकित हो तो हो, यह बात यहाँ है नहीं।

मुमुक्षु : मनुष्यपना भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य-फनुष्य बिना का मोक्ष होता है।

मुमुक्षु : यह बात समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जड़ है, इसमें क्या है ? जड़ के अस्तित्व में तो आत्मा है नहीं। आत्मा के अस्तित्व में जड़ है नहीं। जड़ तो जड़ होकर रहा है। शरीर तो जड़ हुआ और रहा है। यह आत्मा का होकर रहा है ? यह तो मिट्टी है। समझ में आया ? अन्दर पुण्य और पाप, दया, दान के भाव, वह विकार होकर रहे हैं। वे आत्मा के होकर नहीं रहे। समझ में आया ? इसकी पर्याय में भी वास्तव में आत्मा के होकर नहीं रहे। इसने माना है। यह

आत्मा तो एक समय की पर्याय होकर रहा नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। भाई! आहा..हा..! भगवान आत्मा पर होकर तो रहा नहीं, पुण्य-पाप के भाव होकर रहा नहीं, एक समय की अवस्था होकर रहा नहीं। वह तो त्रिकाल निरावरण भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी प्रभु, नित्यानन्द निरावरण वीतराग आनन्दमय एक स्वरूप कारणपरमात्मा है। इस प्रकार रहा है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : जाति अपेक्षा से ध्रुव बदलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव क्या बदले? ध्रुव तो ध्रुव है। ध्रुव तो एकरूप त्रिकाल है। इसीलिए तो एक शब्द दिया।

मुमुक्षु : जाति अपेक्षा से बदलता नहीं, किसी दूसरी अपेक्षा से बदलता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : रामजीभाई ने ठीक कहा। तीन काल में किसी प्रकार बदलता नहीं। एकरूप नित्यानन्द भगवान। निश्चय से मोक्षमार्ग की क्रिया का भी जिसमें अभाव है। राग-द्वेष का तो अभाव है, पुण्य-पाप का पहले कहा। पर्याय का अभाव है, ऐसा कहा, उसमें यह आ गया। मोक्ष का मार्ग जो यह भावना है, उससे कारणपरमात्मा रहित है। पर्यायरहित कहा था। समझ में आया? क्योंकि वह तो नित्यानन्द कहा न? नित्यानन्द एक स्वरूप भगवान आत्मा। अरे भाई! उसकी तुझे खबर नहीं। तेरी चीज़ में कितना क्या पड़ा है ध्रुव में, (उसकी तुझे खबर नहीं)। बाहर खोजने जाये, यहाँ से मिलेगा, यहाँ से मिलेगा, शत्रुंजय से मिलेगा और सम्मेदशिखर से मिलेगा।

मुमुक्षु : वहाँ सबसे नहीं मिलेगा परन्तु गुरु के पास से तो मिलेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु के पास कहाँ था, वह तो मिले? यहाँ तो कहते हैं, पर्याय में नहीं आया, उसमें मिले कहाँ से? ऐई! यह मार्ग अलग। वीतराग के मार्ग का दुनिया के साथ मेल खाये, ऐसा नहीं है। तुलना नहीं करना। नहीं कहा भाई ने? रमेशभाई ने, 'कमल' यह उपमा है। भगवान के मार्ग के साथ किसी मार्ग की तुलना नहीं करना। भाई! यह तुलना से मेल खाये ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : अनित्य से नित्य की प्राप्ति तो होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होती है। अनित्य से नित्य की प्राप्ति होती है, इसका अर्थ,

नित्य का ख्याल आता है। अनित्य में नित्य नहीं आता परन्तु जो पर्याय अनित्य है, वह भी द्रव्य में नहीं है। आहा..हा..! गजब काम भाई यह तो! ऐसा मार्ग वीतराग का होगा? अपने जैन में तो ऐसा होता है, कन्दमूल खाना नहीं, रात्रिभोजन करना नहीं, सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, अपवास (करना) क्या कहलाता है? छह परबी पालना। उसमें तो यह एक भी बात आयी नहीं।

मुमुक्षु : यह तो सब राग है, ऐसा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! भगवान तुझे खबर नहीं, भाई! यह तो सब विकल्प के खेल हैं। यह आत्मा नहीं और आत्मा का आचरण नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आत्मा का आचरण....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आदि हैं, वे इस आत्मा का आचरण नहीं। भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु की एकाग्रता वीतरागपर्यायरूपी भाव में, ऐसा जो निश्चयमोक्षमार्ग है, उससे कार्यपरमात्मा... कारणपरमात्मा की भावना से होता है। मोक्षमार्ग की भावना से होता है, ऐसा भी यहाँ तो नहीं कहा। कारणपरमात्मा... आहा..हा..! तू त्रिकाल है, अनादि-अनन्त है, ध्रुव है, नित्य है, प्रभु! तेरा एकरूप है अन्दर। विकल्प की आड़ में तुझे उसकी रुचि में दिखता नहीं। दया, दान के विकल्प राग हैं, उनकी रुचि में भगवान दिखता नहीं।

मुमुक्षु : .....ध्रुवता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुवता कहाँ है? ध्रुव तो भिन्न है। अनन्त बार क्रियाकाण्डी जैन साधु हुआ, परन्तु वस्तु का भान इसने एक क्षण नहीं किया। पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य, ऐसे अनन्त बार पालन किये, वह तो सब क्रियायें राग है। वह आत्मा नहीं और आत्मा का आचरण नहीं। आत्मा ध्रुव और उसका आचरण, (वह) उसकी भावना। समझ में आया?

उत्पन्न कार्यपरमात्मा, वहीं भगवान अर्हत्परमेश्वर हैं। देखो! **वहीं भगवान अर्हत्परमेश्वर हैं।** अभी तो णमो अरिहंताणं की व्याख्या की खबर नहीं होती। अन्धानुकरण करता जाता है। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... समझ में आया? **वहीं भगवान अर्हत्परमेश्वर हैं।** ऐसे भगवान को-अरिहन्त को परमेश्वर कहा जाता है। बाकी लोग मानें कुछ का कुछ, वह कोई भगवान-वगवान की उन्हें खबर नहीं।

इन भगवान परमेश्वर के गुणों से विपरीत... इस प्रकार कारणपरमात्मा का आश्रय लेकर जो कार्यदशा अरिहन्त परमात्मा, केवलदर्शन-केवलज्ञान, आनन्द और वीर्य प्रगट हुआ, ऐसी अनन्त दशायें प्रगट हुईं। उनसे विरुद्ध **विपरीत गुणोंवाले समस्त...** देव नहीं, अरिहन्त नहीं। **(देवाभास), भले देवत्व के अभिमान से दग्ध हों,...** हम देव हैं, ऐसे अज्ञान से जल गये हों, परन्तु वे देव नहीं हैं। आहा..हा..! जिनकी दिव्य शक्तियाँ समस्त प्रगट हो गयी है, ऐसे जो देव हैं, उनसे दूसरे ऐसा माने कि हम भी देव हैं, कहते हैं कि अभिमान से जल गये हैं बेचारे। आहा..हा..! **दग्ध हों, तथापि संसारी हैं...** भले अभिमान देव का हो। ऐसे परमेश्वर का जिन्हें भान नहीं और ऐसा परमेश्वरपना जिन्हें प्रगट नहीं हुआ और ऐसा मानते हैं कि हम देव हैं और हम परमेश्वर हैं, वे सब अभिमान से दग्ध हुए संसारी हैं। **ऐसा (इस गाथा का) अर्थ है।** लो, इस गाथा का यह अर्थ है। आहा..हा..!

परमेश्वर अर्थात् क्या? और परमेश्वरता प्रगट कैसे हुई? महाप्रभु ध्रुवस्वरूपवान की अन्तर एकाग्रता के अनुभव से प्रगट हुई, ऐसा। ध्रुव को सिद्ध किया, वीतरागपर्याय को सिद्ध किया और उसके कार्यरूप जो परमात्मा अनन्त केवलज्ञान आदि सत्ता का अस्तित्व प्रगट हुआ, उसे (सिद्ध किया)। ऐसे को देव कहा जाता है।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-११, श्लोक-१४, गाथा-८, बुधवार, फाल्गुन शुक्ल १४, दिनांक १०-०३-१९७१

कलश है, सातवीं गाथा का कलश। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। प्रवचनसार की गाथा में। जयसेनाचार्य की टीका में है।

तेजो दिट्ठी णाणं इड्ढी सोक्खं तहेव ईसरियं।
तिहुवणपहाणदइयं माहप्पं जस्स सो अरिहो।।

अरिहन्त कैसे हैं - इसकी व्याख्या है। परमात्मा की व्याख्या चलती है न? परमात्मा किसे कहना? सर्वदोषरहित और सकल गुणसहित; उन सब दोषों का वर्णन आया। चार घातिकर्मों का नारा अथवा अठारह दोष रहित हैं, ऐसों को परमात्मा कहते हैं। समझ में आया? **तेज (भामण्डल),...** अरिहन्त भगवान को भामण्डल है। शरीर के

आस-पास प्रकाश होता है। वह था न यहाँ? अरिहन्त परमात्मा तीर्थंकरदेव के शरीर में प्रकाश-भा अर्थात् प्रकाश होता है। साधारण प्राणी, अरिहन्त को-भगवान को परमात्मा सिद्ध करते हैं - ऐसा नहीं। जिनके शरीर में भी प्रकाश - आभा पड़ता होता है। **भा।**

और **दर्शन (केवलदर्शन),... 'दिट्ठी'** है न? **'दिट्ठी'** यह गुण है। जिन्हें केवलदर्शन है। भगवान को केवलदर्शन होता है। एक समय में सामान्य तीन काल-तीन लोक को देखे। जाने नहीं, देखे-ऐसी दृष्टि। **'दिट्ठी'** कल आया था। दृष्टि के अर्थ में केवलदर्शन आया था न? भगवान को केवलज्ञान होता है। एकसमय में तीन काल, तीन लोक पूर्ण जाने, ऐसा केवलज्ञान होता है और **(समवसरणादि...),** की ऋद्धि होती है। समवसरण बारह प्रकार की सभा आदि की ऋद्धि भगवान को होती है। उसे भगवान को व्यवहार से उनकी ऋद्धि है, उन्हें भगवान कहा जाता है। **(अनन्त अतीन्द्रियसुख),...** होता है। अरिहन्त परमात्मा, तीर्थंकरदेव सशरीरी होने पर भी अनन्त आनन्द होता है। **(इन्द्रादिक भी दासरूप से वर्ते, ऐसा) ऐश्वर्य...** है। है न **'ईसरियं'?** इन्द्र भी जिनके दास वर्तें—ऐसा तो ईश्वरपना है। ऐसे भगवान को रोग, क्षुधा, और तृषा हो तो उनमें ईश्वरपना नहीं गिना जाएगा। ईश्वर, इन्द्र के भी ईश्वर हैं वे। समझ में आया? भगवान के शरीर में रोग आवे, उन्हें क्षुधा लगे, तृषा लगे, यह नहीं हो सकता। परमात्मा अरिहन्त को अन्तर (में) अमृत का अनुभव होता है। उस अनुभव के समक्ष इन्द्र भी जिनकी ऐश्वर्यता स्वीकार करते हैं।

(तीन लोक के अधिपतियों के वल्लभ होनेरूप) त्रिभुवनप्रधान वल्लभपना... तीन लोक के इन्द्र आदि से भी वे वल्लभ हैं। **त्रिभुवनप्रधान वल्लभपना...** है। तीन लोक के अधिपतियों के वल्लभ हैं। समझ में आया? देखो! ऐसे परमात्मा की व्याख्या (करते हैं)। णमो अरिहंताणं - ऐसा कहे, परन्तु अरिहन्त का स्वरूप क्या? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और बाह्य में भामण्डल आदि समवसरण की ऋद्धि। यहाँ तीर्थंकर की बात करनी है न! यह सब होता है। पुण्य भी अलौकिक होता है और गुण भी अलौकिक होते हैं। **ऐसा जिनका माहात्म्य है, वे अर्हन्त हैं।** उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। लो! अर्हंत शब्द है इसमें। **'अरिहो'** पूज्य हैं, इन्द्रों को भी वे पूज्य हैं।

और इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (आत्मख्याति के

२४वें श्लोक में-कलश में) कहा है... यह अपने समयसार में आया था।

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये,
धामोद्दाम-महस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतं,
वन्द्यास्तेऽष्ट-सहस्र-लक्षण-धरास्तीर्थेश्वराः सूरयः ।।

भगवान तीर्थंकरदेव के शरीरादि **कान्ति से दशों दिशाओं को धोते हैं, निर्मल करते हैं;...** ऐसा तो शरीर होता है। उन भगवान को रोग हों, और दवा लावे और खाये, (यह तो कहाँ से होगा) ?

मुमुक्षु : यह तो शरीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर है तो क्या हुआ ? यह शरीर अलग प्रकार का है। भगवान को परमौदारिक शरीर होता है। उन्हें रोग, क्षुधा और तृषा नहीं होते और क्षुधा, तृषा मानते हैं, वे अरिहन्त को नहीं पहिचानते। (उन्हें) अरिहन्त का ज्ञान ही नहीं है। नहीं पहिचानते ?

मुमुक्षु : नहीं, नहीं। इनके जैसा मान लिया। रोग होता है (ऐसा मान लिया)।

कान्ति से दशों दिशाओं को धोते हैं, निर्मल करते हैं; जो तेज द्वारा अत्यन्त तेजस्वी सूर्यादिक के तेज को ढँक देते हैं;... चन्द्र और सूर्य का तेज भी जिसमें ढँक जाता है, ऐसा भगवान के शरीर का तेज होता है। उन्हें ऐसे रोग, क्षुधा आदि हो ही नहीं सकते। विरोध करे, उसके लिये यह स्पष्ट होता है। समझ में आया ? श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तो उन्हें रोग सिद्ध करते हैं, क्षुधा सिद्ध करते हैं, तृषा सिद्ध करते हैं, ऐसा है नहीं। एकदम विरुद्ध है।

जो रूप से जनों के मन हर लेते हैं;... शरीर की सुन्दरता की तो इतनी कोमलता होती है कि जगत के प्राणियों के मन अन्दर स्थिर हो जाते हैं। आहा..हा..! अन्तर स्वरूप की तो क्या बात करना ? शरीर की सुन्दरता की भी कोमलता। इन्द्रों की अपेक्षा भी अनन्तगुनी जिनकी कोमलता होती है, ऐसे उनके पुण्य होते हैं। **जो दिव्यध्वनि द्वारा (भव्यों के) कानों में मानों कि साक्षात् अमृत बरसाते हों...** कोष्ठक में **(भव्यों)** डाला है। **जो दिव्यध्वनि द्वारा (भव्यों के) कानों में...** इसमें ऊपर से भव्यों शब्द डाला है। बाद में भवि शब्द आयेगा। इसमें भव्य नहीं आता। बाद में कलश में आयेगा न आगे ?

'निखिलभविनामेतत्कर्णामृतं' १५वें कलश में (आयेगा)। वहाँ भवि नहीं लेना। वहाँ भव के धारक ऐसे जीव लेना। यहाँ भवि शब्द है, १५वाँ कलश है। **जो सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है;...** यह अपने सुधारा है। **सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है;...** बाद के कलश में। क्योंकि वहाँ भवि शब्द है न? भव्य नहीं। भवि अर्थात् भव का धारक। ऐसे सर्व जीवों को भगवान की वाणी अमृत है। यहाँ तो साधारण होवे तो... यह शब्द में नहीं, परन्तु भाई ने - पण्डित जयचन्दजी ने डाला है। अपने तो कोष्ठक में डाला है। उन्होंने तो सीधे बाहर डाला। बाहर शब्द डाला है। जो दिव्यध्वनि द्वारा-भगवन तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि, ॐ-ऐसी आवाज उठने पर, समवसरण में **(भव्यों के) कानों में मानों कि साक्षात् अमृत बरसाते हों—** अमृत बरसाते हों **ऐसा सुख उत्पन्न करते हैं,...** सुख, यह बाहर का, हों! अतीन्द्रिय आनन्द के सुख की बात नहीं है।

मुमुक्षु : मन्द कषाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द कषाय उसे लगे। आहा..हा..! नहीं तो भगवान की वाणी सुनकर अतीन्द्रिय आनन्द प्रगटे तो हो गया... भगवान की वाणी सुननेवाले सभी मोक्ष ही जायें... परन्तु यहाँ तो उन्हें पुण्य का सुख। उसे ऐसा लगे कि मानो... आहा..हा..! वाणी तो मानो पिया ही करें, सुना ही करें - ऐसा लगे। ऐसी कषाय की मन्दता का सुख उत्पन्न करे।

और जो एक हजार तथा आठ लक्षणों को धारण करते हैं;... भगवान तीर्थंकर के शरीर में ध्वजा आदि एक हजार आठ लक्षण होते हैं। **वे तीर्थंकरसूरि वंद्य हैं।** लो! वे तीर्थंकरसूरि, आचार्य आदि वंद्य हैं।

श्लोक-१४

और (सातवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा श्री नेमिनाथ की स्तुति करते हैं) —

(मालिनी)

जगदिद-मजगच्च ज्ञान-नीरेरुहान्त-
र्भ्रमरवदवभाति प्रस्फुटं यस्य नित्यम्।
तमपि किल यजेहं नेमि-तीर्थङ्करेशं,
जलनिधिमपि दोर्भ्यामुत्तराम्यूर्ध्ववीचिम् ।।१४।।

(वीरछन्द)

जैसे कमल पुष्प के भीतर, अलिगण सहज समाते हैं।
वैसे जिनके ज्ञान-कमल में, लोकालोक समाते हैं॥
उन नेमीश्वर तीर्थंकर की, सचमुच पूजा करता हूँ।
उच्च तरंगोंयुत भवदधि को, निज भुजबल से तरता हूँ॥१४॥

श्लोकार्थ :—जिस प्रकार कमल के भीतर भ्रमर समा जाता है; उसी प्रकार जिनके ज्ञानकमल में यह जगत तथा अजगत (लोक तथा अलोक) सदा स्पष्टरूप से समा जाते हैं, ज्ञात होते हैं, उन नेमिनाथ तीर्थंकर भगवान को मैं सचमुच पूजता हूँ कि जिससे ऊँची तरंगोंवाले समुद्र को भी (दुस्तर संसार को भी) दो भुजाओं से पार कर लूँ॥१४॥

श्लोक-१४ पर प्रवचन

और (सातवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा श्री नेमिनाथ की स्तुति करते हैं)— पद्मप्रभमलधारिदेव स्वयं नेमिनाथदेव को स्मरण करके स्तुति करते हैं।

१४वाँ कलश है।

जगदिद–मजगच्च ज्ञान–नीरेरुहान्त–
भ्रमरवदवभाति प्रस्फुटं यस्य नित्यम्।
तमपि किल यजेहं नेमि–तीर्थङ्करेशं,
जलनिधिमपि दोर्भ्यामुत्तराम्यूर्ध्ववीचिम्।।१४।।

जिस प्रकार कमल के भीतर भ्रमर समा जाता है;... है या नहीं अपने? **जिस प्रकार कमल के भीतर भ्रमर समा जाता है;...** भ्रमर। कितनी जगह बाकी रहे? कमल में भ्रमर। इसी तरह **ज्ञानकमल में यह जगत तथा अजगत (लोक तथा अलोक) सदा स्पष्टरूप से समा जाते हैं,...** आहा..हा..! भगवान तीर्थंकर के ज्ञान में एक समय में लोकालोक स्पष्टरूप से, जैसे कमल में भ्रमर समा जाये, वैसे लोकालोक समा जाते हैं। कमल इतना और भ्रमर छोटा। (इसी तरह) ज्ञान बड़ा और लोकालोक छोटा। जिसका स्वभाव है, उसका प्रश्न क्या? जिसका स्वभाव शक्तिरूप है, उसकी तो बात क्या करना? परन्तु एक समय की दशा प्रगटरूप है, उसकी क्या बात करनी!! कहते हैं। कमल में जैसे भ्रमर समा जाता है, वैसे भगवान आत्मा की पूर्ण ज्ञानदशा में लोकालोक समा जाते हैं। इससे अनन्तगुना हो तो भी जानने की ताकत है। आहा..हा..! देखो! यह आत्मा की ऋद्धि!!

सदा स्पष्टरूप से समा जाते हैं,... प्रत्यक्ष है–ऐसा कहना है। **'स्फुटं'** है न? **'भ्रमरवदवभाति प्रस्फुटं'** प्रत्यक्ष है। जैसे ज्ञान में लोकालोक ज्ञान की एक समय की दशा में, कमल में जैसे भ्रमर बसे, वैसे ज्ञान में लोकालोक बस गया है, कहते हैं। आहा..हा..! समा गया है। देखा! यह इतनी आत्मा की पर्याय की ताकत है। ऐसे परमात्मा हैं और ऐसे परमात्मा को वास्तविक आत्मारूप से जो जाने, उसे अन्तर में अनुभव और सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं। आत्मारूप से; बाह्य की ऋद्धि (नहीं)। समझ में आया? ओहो..हो..! ऐसी शक्ति! जिनकी एक समय की दशा में लोकालोक तो मानो कमल में भ्रमर गया हो। ओहो..हो..! ऐसी जिनकी ज्ञान की दशा, ऐसी अनन्त ज्ञान की दशा का समुद्र ज्ञानगुण है। उस गुण का धारक भगवान आत्मा है। उस आत्मा की ऐसी प्रतीति होने पर, उसे आत्मसन्मुख की दृष्टि होने पर अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

उन नेमिनाथ तीर्थंकर भगवान को मैं सचमुच पूजता हूँ... उन नेमिनाथ तीर्थंकर भगवान को (मैं पूजता हूँ)। ब्रह्मचारी है न? स्वयं ब्रह्मचारी मुनि हैं, इसलिए ब्रह्मचारी

भगवान को याद करके नमन करते हैं। मैं वास्तव में पूजता हूँ – ऐसा कहते हैं। वास्तविक व्यवहार में पूज्यता ऐसी है और निश्चय की पूज्यता आत्मा की ऐसी है, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! आहा..हा..! यह व्यवहार है, परन्तु व्यवहार दिखलाता है उस निश्चय को, ऐसा कहा न? यह व्यवहार दिखलाता है उस निश्चय को, कि जो अखण्ड परिपूर्ण भगवान आत्मा, जिसके ज्ञान के तेज का माप क्या? जिसके अमाप स्वभाव का अन्तर में आश्रय लेकर प्रतीति हो, उस प्रतीति में ऐसे परमात्मा की प्रतीति व्यवहार से आये बिना नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो सब समझ की बात है, भाई! समझ, यह इसकी क्रिया है।

जिससे ऊँची तरंगोंवाले समुद्र को भी... ओहो..हो..! समुद्र की उछालें मारती ऊँची तरंगें हों, उन्हें भी **(दुस्तर संसार को भी) दो भुजाओं से पार कर लूँ।** आहा..हा..! ज्ञान और चारित्र। सम्यग्दर्शन और चारित्र। ज्ञान में समकित आ गया। दो भुजाओं द्वारा संसार का पार हो जाना है। कहो, जेठाभाई! **ऊँची तरंगोंवाले समुद्र...** महा दुस्तर संसार समुद्र ऐसा। भगवान को हमने पहिचाना और उन भगवान की प्रतीति में मेरे स्वरूप की प्रतीति निश्चय से अन्दर आ गयी है, ऐसा कहते हैं। यह व्यवहार तो निश्चय को बतानेवाला है। भेद कथन निश्चय को (बतानेवाला है)। आहा..हा..! जिसे ऐसे परमात्मा की वास्तविक व्यवहार श्रद्धा हो, उसे आत्मा की निश्चय श्रद्धा हो ही। समझ में आया? अखण्ड आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप भगवान की अन्तर में अनुभव में प्रतीति होना, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है। आहा..हा..! समझ में आया? भाई को हिन्दी दिया है? हिन्दी है न? हिन्दी आया है न? अच्छा। यहाँ गुजराती चलता है, उसमें हिन्दी है।

देखो! पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि थे। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज तो २००० वर्ष पहले हुए। उनकी टीका करनेवाले भी इतने उछल गये हैं। ओहो..! ऐसे नेमिनाथ भगवान, जिन्हें पूर्ण ज्ञान, उसमें लोकालोक तो मानो अन्दर भँवरा समा गया हो, इतना लगे। ओहो..हो..! कितना विकास बताते हैं! कमल तो बड़ा इतना होता है, उसमें भँवरा तो एक जगह बैठा हो। वैसे भगवान आत्मा, जिसकी वर्तमान अवस्था, ज्ञान की शक्ति का विकास इतना होता है। ऐसी ही शक्ति जीव की होती है। जिसमें लोकालोक तो भ्रमर की तरह होता है। आहा..हा..! ऐसे ज्ञान की, ऐसे ज्ञान की एक

समय की सत्ता का स्वीकार करनेवाला, ऐसी अनन्त पर्याय की सत्ता आत्मा में है, उसका स्वीकार करे, तब इस पर्याय का स्वीकार व्यवहार से किया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहा..हा..! जिस-तिस भगवान का नाम मानते हैं न? हम परमेश्वर हैं, हम भगवान हैं। बापू! परमेश्वर का पेट बड़ा है। समझ में आया?

मैं तो **दो भुजाओं से पार कर लूँ।** ऐसा कहा, देखो! संसार-समुद्र का थाह ले लेनेवाला हूँ। आहा..हा..! ऐसा कहते हैं। क्यों? ऐसे परमात्मा की ऐसी ज्ञान की एक समय की दशा की मुझे व्यवहार में प्रतीति है, निश्चय में मेरे आत्मा के स्वरूप की मुझे प्रतीति है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....एक समय की पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय है और उसकी प्रतीति-पर की प्रतीति तो व्यवहार है, परन्तु व्यवहार बताता है किसे? निश्चय को। कि ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का पिण्ड भगवान आत्मा, एक गुण ऐसे अनन्त गुण, उनका एकरूप भगवान आत्मा, उसकी अन्दर अनुभव में प्रतीति हो, उसे सच्चा समकित और श्रद्धा कहा जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? ८वीं गाथा।

गाथा-८

तस्स मुहुग्गद-वयणं पुव्वावर-दोस-विरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था।।८।।

तस्य मुखोद्गत-वचनं पूर्वापर-दोष-विरहितं शुद्धम्।
आगममिति परिकथितं तेन तु कथिता भवन्ति तत्त्वार्थाः।।८।।

परमागमस्वरूपाख्यानमेतत्। तस्य खलु परमेश्वरस्य वदनघनजविनिर्गतचतुरवचनरचना-प्रपञ्चः पूर्वापरदोषविरहितः, तस्य भगवतो रागाभावात् पापसूत्रवद्धिन्सादिपापक्रिया-भावाच्छुद्धः परमागम इति परिकथितः। तेन परमागमामृतेन भव्यैः श्रवणाञ्जलिपुटपेयेन मुक्तिसुन्दरीमुखदर्पणेन सन्सरणवारिनिधिमहावर्तनिमग्नसमस्तभव्यजनतादत्तहस्तावलम्बनेन सहजवैराग्यप्रासादशिखर - शिखामणिना अक्षुण्णमोक्षप्रासादप्रथमसोपानेन स्मरभोगसमुद्भूता-प्रशस्तरागाङ्गारैः पच्यमानसमस्तदीनजनतामहत्क्लेशनिर्नाशनसमर्थसजलजलदेन कथिताः खलु सप्त तत्त्वानि नव पदार्थाश्चेति।

तथा चोक्तं श्रीसमन्तभद्रस्वामिभिः ह्न

(आर्या)

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञान-मागमिनः।।

परमात्म-वाणी शुद्ध पूर्वापर रहित निर्दोष है।
आगम वही, देती वही तत्त्वार्थ का उपदेश है॥८॥

अन्वयार्थ :—[तस्य मुखोद्गतवचनं] उनके मुख से निकली हुई वाणी, जो कि [पूर्वापरदोषविरहितं शुद्धम्] पूर्वापर दोषरहित (आगे -पीछे विरोधरहित) और शुद्ध है, उसे [आगमम् इति परिकथितं] आगम कहा है [तेन तु] और उसे [तत्त्वार्थाः] तत्त्वार्थ [कथिताः भवन्ति] कहते हैं।

टीका :—यह, परमागम के स्वरूप का कथन है।

उन (पूर्वोक्त) परमेश्वर के मुखकमल से निकली हुई चतुर वचनरचना का विस्तार, जोकि 'पूर्वापर दोषरहित' है और उन भगवान को राग का अभाव होने से पापसूत्र की भाँति, हिंसादि पापक्रियाशून्य होने से 'शुद्ध' है — वह परमागम कहा गया है। उस परमागम ने कि जो (परमागम) भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है; जो मुक्तिसुन्दरी के मुख का दर्पण है (अर्थात्, जो परमागम, मुक्ति का स्वरूप दरशाता है), जो संसारसमुद्र के महाभंवर में निमग्न समस्त भव्यजनों को हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) देता है; जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि* है; जो कभी न देखे हुए (अनजाने; अननुभूत; जिस पर स्वयं पहले कभी नहीं गया है, ऐसे) मोक्ष -महल की प्रथम सीढ़ी है और जो कामभोग से उत्पन्न होनेवाले अप्रशस्त रागरूप अंगारों द्वारा सिकते हुए समस्त दीनजनों के महाक्लेश का नाश करने में समर्थ सजल मेघ (पानी से भरा हुआ बादल) है, उसने वास्तव में सात तत्त्व तथा नव पदार्थ कहे हैं।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (रत्नकरण्डश्रावकाचार में ४२ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

न्यूनाधिकता बिना, विपर्यय रहित यथार्थ वस्तु का ज्ञान।
निःसन्देह उसे कहते हैं आगमज्ञाता सम्यग्ज्ञान॥

श्लोकार्थ :- जो न्यूनता बिना, अधिकता बिना, विपरीतता बिना, यथातथ वस्तुस्वरूप को निःसन्देहरूप से जानता है, उसे आगमियों[१], ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) कहते हैं।

गाथा-८ पर प्रवचन

ऐसे जो भगवान परमात्मा। ऐसे कौन से ?

तस्स मुहुग्गद-वयणं पुव्वावर-दोस-विरहियं सुद्धं।

---

* शिखामणि=शिखर के ऊपर का रत्न, चूड़ामणि, कलंगी का रत्न।
(परमागम, सहज वैराग्यरूपी महल के शिखामणि समान है क्योंकि परमागम का तात्पर्य, सहज वैराग्य की उत्कृष्टता है।)

१. आगमियों=आगमवन्तों; आगम के ज्ञाताओं।

उनके मुख से निकली हुई वाणी,... आहा..हा..! तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा।

तस्स मुहुग्गद-वयणं पुव्वावर-दोस-विरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था।।८।।

देखो! तत्त्वार्थ कहो, द्रव्य कहो, सब एकार्थ है यहाँ?

परमात्म-वाणी शुद्ध पूर्वापर रहित निर्दोष है।
आगम वही, देती वही तत्त्वार्थ का उपदेश है॥७॥

अन्वयार्थ :— उनके मुख से निकली हुई वाणी,... ऐसे परमात्मा की जो व्याख्या की, उनके मुख से निकली हुई वाणी, **जो कि पूर्वापर दोषरहित (आगे -पीछे विरोधरहित)...** होती है। अज्ञानी की वाणी में आगे-पीछे विरोध होता है। आहा..हा..! कहो समझ में आया? पहले और बाद में कहीं अन्दर दुमेल नहीं होता। विरोधरहित वीतराग परमात्मा की वाणी को यहाँ आगम कहा जाता है। उस आगम में कहे हुए द्रव्यों अथवा तत्त्वार्थों की श्रद्धा, ऐसा कहते हैं। भगवान ने कहे हुए आगम में तत्त्व। समझ में आया? श्वेताम्बर में वे हैं नहीं। वहाँ तो वीतराग की वाणी ही नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर की परम्परा की वाणी वहाँ है ही नहीं। वे तो नये कल्पित शास्त्र बनाये हैं। समझ में आया? श्वेताम्बर और उसमें से निकले स्थानकवासी, उनमें से निकले तेरापंथी, तीनों कल्पित शास्त्रों में माननेवाले हैं... ऐ... पोपटभाई! उनके पास भगवान की वाणी नहीं है। भारी कठिन काम! वे कहते हैं, इसलिए यह स्थापित किया है। भगवान की वाणी, त्रिलोकनाथ के मुख में से (निकली हुई), पूर्वापर विरोधरहित वाणी को **आगम कहा है...** उसे आगम कहते हैं। विरोधरहित शुद्ध है। पूर्वापर विरोध हो, वह शुद्ध वाणी नहीं हो सकती। समझ में आया? यह तो ऐसी बात है भाई! **उसे तत्त्वार्थ कहते हैं।** उसे वाणी ने जो तत्त्वार्थ कहे। तत्त्वार्थ कहो या द्रव्य कहो, दोनों शब्द यहाँ एक ही है। कोई ऐसा कहते हैं न कि भाई! द्रव्य भी अलग और तत्त्वार्थ अलग। ऐसा नहीं है। यहाँ तो तत्त्वार्थ को द्रव्य कहा है और द्रव्य को तत्त्वार्थ कहा है।

टीका :— यह, परमागम के स्वरूप का कथन है। परम आगम। भगवान के मुख से निकली हुई वाणी का यह कथन है। **(पूर्वोक्त) परमेश्वर के मुखकमल से निकली हुई...** मुख-कमल में से निकली हुई, वह तो लौकिक की अपेक्षा से कथन किया

है। वाणी मुख से निकले न, ऐसा। बाकी तो सम्पूर्ण देह से निकलती है। भगवान को सम्पूर्ण देह से ॐध्वनि आती है। समझ में आया?

परमेश्वर के मुखकमल से निकली हुई चतुर वचनरचना का... कैसी वचनरचना? चतुर वचनरचना। **विस्तार - चतुर वचनरचना का विस्तार, जोकि 'पूर्वापर दोषरहित' है...** पहले कुछ कहा और बाद में कुछ कहा, ऐसा उसमें नहीं होता। **और उन भगवान को राग का अभाव होने से...** परमात्मा वीतरागस्वरूप, पूर्ण सर्वज्ञपरमात्मा होने से राग का उन्हें अभाव है। **पापसूत्र की भाँति, हिंसादि पापक्रियाशून्य होने से...** उसमें पाप से और पुण्य से धर्म होता है, यह बात उसमें नहीं होती। **पापसूत्र की भाँति, हिंसादि पापक्रियाशून्य होने से 'शुद्ध' है...** भगवान की वाणी शुद्ध है। आहा..हा..! वह वाणी परम्परा दिगम्बर में रही है। अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया? वाड़ावालों को भारी कठिन लगे कि हमारा वाड़ा (सम्प्रदाय) खोटा? लाख बार खोटा। खोटा क्या? समझ में आया? वीतराग परमेश्वर की वाणी परम्परा हो तो वह दिगम्बर सन्तों में है, अन्यत्र कहीं नहीं है। मलूपचन्दभाई! समझ में आया या नहीं? ऐई! रायचन्दभाई के। देखो यह ऐसा कहते हैं। सबेरे आया था। रायचन्दभाई का पुत्र आया था। वहाँ भी रखे और यहाँ भी रखे। दूध-दही में रखे। दूध-दही समझे?

यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं कि परमात्मा के मुख से जो वाणी निकली, वह दिगम्बर सन्तों ने ही रखी है। वह वाणी अन्यत्र नहीं है। श्वेताम्बर में—मूल मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर में भी नहीं है। उनमें से निकले हुए स्थानकवासी में भी नहीं है। उनमें से निकले हुए तेरापंथी तुलसी में भी यह वाणी नहीं है। समझ में आया?

'पूर्वापर दोषरहित' है और उन भगवान को राग का अभाव होने से पापसूत्र की भाँति, हिंसादि पापक्रियाशून्य होने से 'शुद्ध' है — वह परमागम कहा गया है। देखो, उसे परमागम कहते हैं। आगे-पीछे एक ओर भगवान को रोग सिद्ध करे; और एक ओर उनको साता की उग्रता सिद्ध करे। एक ओर इन्द्रों में रोग नहीं होता और इन्द्रों के पूज्य गुरु को, तीर्थंकर को रोग हो, तो यह तो पूर्वापर विरुद्ध है। समझ में आया? पण्डितजी! गजब बात भाई!

मुमुक्षु : मनगढ़ंत जोड़ दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना सम्प्रदाय चलाने के लिये जोड़ दिया। सभी शास्त्र कल्पना है। ३२-४५ शास्त्र हैं, वे सब कल्पना के शास्त्र हैं। भगवान की वाणी नहीं और भगवान की परम्परा भी उनमें नहीं। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसमें आत्मा की हिंसा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हिंसा है। राग से धर्म मनवाया है, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से धर्म मनवाया है, केवली का रूप विरुद्ध बताया है, साधु का स्वरूप विरुद्ध बताया है। वस्त्र-पात्र रखे, उसे साधु मनवाते हैं—वह सब तत्त्व से विरुद्ध है। समझ में आया? ऐई... भीखाभाई! ऐसा है। वीतराग की वाणी पूर्वापर विरुद्ध नहीं होती, ऐसा कहते हैं। एक ओर केवली सिद्ध करना और फिर केवली छद्मस्थ का विनय करे, (ऐसा सिद्ध करना), यह पूर्वापर विरोध है, यह परमागम नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परमागम में तो पूर्वापर विरोधरहित हो। वीतराग के मुख से निकला हुआ धोध-प्रवाह चलता हो, गणधरों ने रचा और कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य जंगलवासी दिगम्बर सन्तों ने रचकर वीतराग की वाणी खड़ी रखी है। कहो, कान्तिभाई! गजब भाई!

वह परमागम कहा गया है। देखो! **उस परमागम ने कि जो (परमागम) भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;...** ऐसी वीतराग की वाणी, वह श्रोताओं को-आत्मार्थियों को सुनने जैसी है, ऐसा कहते हैं। भाई! तुम्हें यह वाणी सुनने जैसी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐई! फूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : यही वाणी सच्ची है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वाणी सुनने योग्य है। कर्ण अमृत। बाकी सब जहर है, ऐसा कहते हैं। ऐ... पोपटभाई! कठिन बात है, बापू! वाड़ा बाँधकर बैठे... आहा..हा..! परम परमात्मा त्रिलोकनाथ अरिहन्तदेव की वाणी का धोध गणधर से लेकर कुन्दकुन्दाचार्य तक चला आया। कुन्दकुन्दाचार्य ने रचना की। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय,....

मुमुक्षु : अष्टपाहुड़।

पूज्य गुरुदेवश्री : अष्टपाहुड़। ऐसी (रचना), लो! कहो समझ में आया? उस परमागम में (परमागम मन्दिर में) उत्कीर्ण होंगे। आहा..हा..! वजुभाई सब मेहनत तो

करते हैं परन्तु अब बाहर का क्या ? क्या करे ? वजुभाई को इसमें दबाव पड़ गया है। एक और अक्षर का चलता नहीं। चार लाख अक्षर लिखाना। यह और कल कोई लाये थे, वह थोड़ा कुछ ठीक लगता है। यदि समरूप हो जाये तो।

मुमुक्षु : हो जाये तो बहुत-बहुत.... हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल लाये थे मुझे बताने को। पन्द्रह हजार का होगा, परन्तु उसमें कुछ नहीं। उससे यदि सरीखे अक्षर आ जायें...

मुमुक्षु : अपने को डाई बनानी पड़े। अपने अक्षर और अंग्रेजी में इसमें अन्तर होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर होता है। परमागम यह बनता है। मकान-मकान (मन्दिर) यह परमागम, यह वीतराग की वाणी। जो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने परम्परा से कही है, वह वाणी और उसकी टीका। अमृतचन्द्राचार्य की टीका। पद्मप्रभमलधारिदेव की यह टीका। यह सब टीका वहाँ उत्कीर्ण होनी है। समझ में आया ? वजुभाई है न! वज्र का लेख जैसा सब वहाँ करेंगे। इनके सिर पर है न, अपन तो सुनते हैं।

मुमुक्षु : मुझे बहुत रुचता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं ऐसा कुछ नहीं। सिर पर इनके है न ? इनके सिर पर यह सब है। दूसरा कौन करता है ?

मुमुक्षु : इतना सोचा नहीं था कुछ.... तो एकदम सरल हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वीतराग की वाणी, परम्परा की, परमेश्वर की। दिगम्बर सन्तों की कही हुई वह तो केवलज्ञानी के टंकोत्कीर्ण शब्द हैं। कहीं एक अक्षर में विरोध नहीं। उस वाणी को वाणी कहने में आता है, बापू! आहा..हा..! जो वाणी श्रोताओं को, देखा!

भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;... यहाँ तो समुच्चय शब्द है न ? यहाँ भव्य डाला जा सकता है। उसमें भव्य का अर्थ दूसरा है। वहाँ भवि शब्द है। भवि अर्थात् भव को तिरनेवाला। भव को तिरनेवाले जीव, ऐसा।

भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;... लो, **'भव्यैः**

श्रवणाञ्जलिपुटपेयेन' है न? संस्कृत में **'भव्यैः'** शब्द पड़ा है। **'भव्यैः'** शब्द है। **'भव्यैः'** यह अलग और वह भवि अलग। यह **'भव्यैः'** है। पण्डितजी! संस्कृत टीका में है। **'भव्यैः'** चौथी लाईन। यह भवि वहाँ लिया जाता है। **'भव्यैः'** शब्द है न? **'भव्यैः श्रवणाञ्जलिपुटपेयेन मुक्तिसुन्दरीमुखदर्पणेन'** यहाँ तो अपने भव्यरूपी जीवों को। भव्य जीव यहाँ लेना है, यहाँ यह लेना है। **कर्णरूपी अञ्जलिपुट से...** कर्णरूपी अंजुली। लोग पीते हैं न ऐसे? यह पानी दूसरा ऊपर से डाले, ऊपर से पड़ता हो, ठण्डा, ऐसा... आहा..हा..!

देखो! **भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;...** ऐसा यहाँ भाई ने लिखा है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में (लिखा है कि) कैसे सूत्र-शास्त्र पढ़ना? सुनने-पढ़ने-लिखने, कहना, लिखाना, यह सब उसमें आ जाता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत शब्द डाले हैं। ऐसे शास्त्र पढ़ना। ऐसे अज्ञानी के कहे हुए शास्त्र, वे नहीं पढ़ना, नहीं सुनना, विचार नहीं करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है न! लो, यह ही शब्द निकला। किसी समय तो ऐसा आता है, कहाँ होगा? वहाँ सामने आया। कैसे शास्त्र पढ़ने, सुनने योग्य है?

जो आगम मोक्षमार्ग का प्रकाश करे, वही आगम वाँचने-सुनने योग्य है। देखो, है? ऐसे करते हुए यहाँ वाँचना, सुनना, तद्नुसार जोड़ना, सीखना, सिखाना, विचारना, लिखाना आदि कार्य भी उपलक्षण से जान लेना। समझ में आया? वीतराग की वाणी, दिगम्बर सन्तों ने कही हुई, वह वीतराग की वाणी है। बाकी वाणी अन्यत्र है नहीं। समझ में आया? उसे सुनना, उसे पढ़ना इत्यादि आया न?

मुमुक्षु : सुनने का, पढ़ने का विकल्प न उठे तो क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तो अन्दर में स्थिर हो जाये। आनन्द में स्थिर हो जाये। आनन्द के अनुभव में स्थिर हो तो उसे कुछ नहीं है। यह तो जिसे पढ़ना, सुनना है, उसे वह नहीं सुनना, यह सुनना - ऐसा यहाँ कहना है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह .....आनन्द के अनुभव में रह जाये तो हो गया। उसे कुछ अटक नहीं है। यह तो है न? बारह अंग का ज्ञान पढ़ना, यह उसे कुछ अटक नहीं है। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ भान होकर अनुभव में आ गया और वह तो उसमें

निमित्त वाणी वीतराग की ही थी। समझ में आया? यह न हो सके, तब पढ़ना और विचारना हो तो यह पढ़ना और विचारना, ऐसा कहते हैं। पढ़ना, सुनना, जोड़ना, सीखना और सिखाना।

मुमुक्षु : यह विचारना?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह विचारना। देखो! विचारना, लिखाना, यह लिखाना। परमागम, यह लिखाना।

मुमुक्षु : यह उत्कीर्ण कराना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह उत्कीर्ण कराना। यह वजुभाई के लिये बात है। देखो! यह उत्कीर्ण कराना। वे शास्त्र उत्कीर्ण नहीं करना।

मुमुक्षु : उत्कीर्ण कराऊँगा उसमें आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ जाता है न, उसमें क्या। यहाँ है न? पालीताणा, श्वेताम्बर के नीचे परम आगम नीचे उत्कीर्ण हैं। अपने यहाँ दिगम्बर उत्कीर्ण कराये। दोनों सामने यहाँ हैं, चौदह मील दूर।

मुमुक्षु : चौदह मील दूर हो न, गुणस्थान भी चौदह।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखा, इस प्रकार साक्षात् या परम्परा द्वारा एक वीतरागभाव को पोषण करे, ऐसे शास्त्र अभ्यास करनेयोग्य है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कितनी बात ली है! ओहो..हो..!

कहते हैं, **भव्यों को कर्णरूपी अञ्जलिपुट से पीनेयोग्य अमृत है;...** खोबा, अपनी गुजराती भाषा है। तुम्हारी हिन्दी में क्या कहते हैं? अंजुलि करके पीना। भगवान की वाणी। **जो मुक्तिसुन्दरी के मुख का दर्पण है...** आहा..हा..! **(अर्थात्, जो परमागम, मुक्ति का स्वरूप दरशाता है),...** देखो! भाषा तो देखो! परमागम वीतरागता की पूर्ण दशा क्या है, उसे बताता है। उसका कारण भी वीतरागता है, वह बतलाता है। समझ में आया? परमागम उसे कहते हैं। कि जो पूर्ण वीतरागता को—पूर्ण सर्वज्ञ पद को बतावे। उसका कारण वीतरागता हो, वह भी बतावे। उसे परमागम कहते हैं। बाकी बीच में विपरीतता डाले कि यह अमुक, यह दया, दान, व्रत, भक्ति से कल्याण होगा, मुक्ति होगी, वे सब वचन वीतरागता के नहीं हैं। वे अज्ञानी के कहे हुए वचन हैं। उनमें भी विवाद उठाते हैं।

उसमें कहा है न? यह कहा है, वह तो निमित्त का कथन है, सुन न! समझ में आया?

मुक्तिसुन्दरी के मुख का दर्पण है... मोक्षरूपी सुन्दरी का मुख ऐसे दिखायी दे, ऐसा परमागम है। आहा..हा..! यह तो पर्याय का सिद्धपना जो है, पर्याय का सिद्धपना प्रगट करने के लिये आगम है और सिद्धपना कैसे प्रगट हो, वह आगम में कहा है। चार गति मिले और यह नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

जो मुक्तिसुन्दरी के मुख का दर्पण है, जो संसारसमुद्र के महाभंवर में निमग्न समस्त भव्यजनों को हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) देता है;... निमित्त। आहा..हा..! संसाररूपी चौरासी के समुद्र में, महाभंवर में, महाभंवर, भंवर, भंवर में **निमग्न समस्त भव्यजनों को...** समस्त भव्यजनों को **हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) देता है;...** लो, हस्तावलम्ब कहा है न, निमित्त। ११वीं गाथा में। व्यवहार, वह हस्तावलम्ब। यह निमित्त से कहा है। वापस वहाँ इसका फल संसार कहा है। यहाँ तो निमित्त भी बताना है न? **हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) देता है;...** ओहो..हो..! जिसमें से वीतरागता खड़ी हो और पूर्ण वीतरागता जिसमें मिले, ऐसी वाणी को यहाँ परमागम कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त होवे तो ऐसा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। होवे तो ऐसा ही होता है; दूसरा निमित्त नहीं होता।

जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि है;... आहा..हा..! **शिखामणि=शिखर के ऊपर का रत्न, चूड़ामणि, कलंगी का रत्न। (परमागम, सहज वैराग्यरूपी महल के शिखामणि समान है क्योंकि परमागम का तात्पर्य, सहज वैराग्य की उत्कृष्टता है।)** भाषा देखो! आगम में स्वरूप का अस्तिपना बतलाकर, पर की, सबकी उपेक्षा करावे, उसका नाम सहज वैराग्य का शिखामणि कहा जाता है। निमित्त की, राग की, अल्पज्ञता की सबकी उपेक्षा करके स्वभाव की अपेक्षा करावे, उसे परमागम कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? भाषा कैसी, देखो न!

जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि है;... स्वाभाविक पर से उदास। आहा..हा..! पर से उदास कराकर स्वसन्मुख के अस्तित्व में जोड़ देता है, ऐसी वाणी को यहाँ परमागम कहा जाता है। समझ में आया? **(वैराग्यरूपी महल के शिखामणि**

समान है...) (सहज वैराग्यरूपी महल के शिखामणि समान है...) परमागम है। **(क्योंकि परमागम का तात्पर्य, सहज वैराग्य की उत्कृष्टता है।)** ऐसी नास्ति से बात ली है और अस्ति तो पूर्ण है, परन्तु यहाँ से हटाया है और इसमें जोड़ दिया है। पर से बिल्कुल उपेक्षा करायी है। निमित्त में निमित्त से, राग से और अल्पज्ञता से (उपेक्षा करायी है)। आहा..हा..! समझ में आया?

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि है;... यह **चूड़ामणि, कलगी का रत्न।** कलगी का रत्न। **जो कभी न देखे हुए (अनजाने; अननुभूत; जिस पर स्वयं पहले कभी नहीं गया है, ऐसे) मोक्ष-महल की प्रथम सीढ़ी है...** मोक्ष के महल का, छूटने के महल का... आहा..हा..! कहते हैं, आगम उसे कहते हैं कि जो अन्दर स्वभावसन्मुख में ढालकर पर से विमुख करे, यह उसका पहला सोपान है। समझ में आया? उसमें (श्वेताम्बर में तो) कहे—व्यवहारी, वह समकिती, लो ऐसा कहा। व्यवहार तो राग है। **मोक्ष-महल की प्रथम सीढ़ी है...** आहा..हा..! इस परमागम में यही ध्वनि दी है, ऐसा कहते हैं। स्वभाव-सन्मुख ढालते-झुकाते और पर से उदासीन करके अन्तर में स्थिर होने की बात की है, वह मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। समझ में आया?

और जो कामभोग से उत्पन्न होनेवाले अप्रशस्त रागरूप अंगारों द्वारा सिकते हुए समस्त दीनजनों के महाक्लेश का नाश करने में समर्थ सजल मेघ है,... आहा..हा..! **कामभोग से उत्पन्न होनेवाले अप्रशस्त राग...** मैला राग, अशुभराग, अंगारा, उस अग्नि में सिकता है। आता हे न काम-भोग। **'सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा'** यह सब शैली टीका में ली है। **कामभोग से उत्पन्न होनेवाले अप्रशस्त राग...** बुरा राग, पाप राग से अंगारों द्वारा सिकते हुए। आहा..हा..! शीतलस्वरूप भगवान आत्मा में कामभोग का राग तो अंगारे जैसा सिकता है, कहते हैं। ऐसे **समस्त दीनजनों के...** दीन प्राणी, जिनकी वासना विषय में जाकर सुख मानती है। सुलगते हुए अंगारों से वे सुलग गये हैं। आहा..हा..! भट्टा-भट्टा बड़ा होता है। ऐसे दीनजन, जिन्हें राग में-अप्रशस्त राग में जिन्होंने प्रेम और सुख मनाया है, वे दीन प्राणी हैं। आत्मा में आनन्द है, इसकी उन्हें खबर नहीं है। दीन-भिखारी हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अप्रशस्त को भट्टी कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भट्टी है न, भट्टी है न? यह तो यहाँ अप्रशस्त की बात है न, इसलिए। यहाँ तो जो बात चलती है, उसे लेना है न। वास्तव में तो काम अर्थात् पर की ओर की इच्छा और उसका भोगना, यह दोनों कामभोग कहलाते हैं। लो, वास्तव में तो कर्ता और भोक्ता। किसी भी विकल्प का कर्ता और भोक्ता (होना), उसका नाम कामभोग है। चौथी गाथा में यह अर्थ है। समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति ज्ञायकस्वभाव में से निकलकर जिसे राग होता है और उस राग का अनुभव करता है, वह सब कामभोग की वार्ता और कथा है। समझ में आया?

महाक्लेश का नाश करने में... अग्नि का है न? देखो न! **नाश करने में समर्थ सजल मेघ है...** अकेला बादल नहीं। बरसता मेघ है। **सजल मेघ...** कहा न? प्रपात पड़े, ऐसे बादल हैं। आहा..हा..! जब यह बात हो, उसे रूप तो देना ही पड़ता है या नहीं? पानी से भरा बादल है। अज्ञानियों के क्लेश को, महाक्लेश को नाश करने के लिये भगवान की वाणी, दिव्यध्वनि और परमागम सजल मेघ है। जल से भरा हुआ बादल है। अकेला बादल हो और (वर्षा) करे नहीं, वह नहीं। यह तो जल से भरा हुआ बादल बरसे ही। आहा..हा..! देखो न! कैसे टीका की है! उसे मान्य नहीं। (इसे भी कुछ लोग अमान्य कहते हैं)। ऐसे भगवान की वाणी परमागम **उसने वास्तव में सात तत्त्व तथा नव पदार्थ कहे हैं।** देखो, तत्त्वार्थ कहे, ऐसा कहा था न? सात तत्त्व कहो, नौ पदार्थ कहो, द्रव्य कहो, बाद में द्रव्य आयेगा। ९वीं गाथा में छह द्रव्य आयेंगे। '**तच्चत्था इदि भणिदा**' सब पुद्गल काय, धर्म सबको तत्त्वार्थ कहा है। आहा..हा..! ऐसे भगवान के परमागम, उसने सात तत्त्व और नौ पदार्थ कहे हैं।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (रत्नकरण्डश्रावकाचार में ४२ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञान-मागमिनः।।

वेदाय, यह शब्द जरा ऐसा किया है। वेद और य के बीच लाईन की है। भिन्न किया है। **जो न्यूनता बिना,...** आगम के ज्ञान में न्यूनता नहीं होती, कम हो, वह आगम ज्ञान नहीं है, आगम नहीं है। **जो न्यूनता बिना, अधिकता बिना,...** अतिरेक नहीं होता। जैसा हो

वैसा भगवान ने कहा हो, उसे आगम कहते हैं। उसका नाम आगम का ज्ञान। अमस्तु नहीं आता अपने दस बोल में? कम माने तो मिथ्यात्व, अधिक माने तो मिथ्यात्व, विपरीत माने तो मिथ्यात्व, कम-ज्यादा और विपरीत मिथ्यात्व आता है न? दस प्रकार के मिथ्यात्व। ऐसे न्यूनता नहीं, जैसा स्वरूप है, उस प्रकार वीतराग वाणी कहती है। उससे अधिकता नहीं, विशेषपना बतावे, वह भी वाणी नहीं।

विपरीतता बिना,... विपरीतता नहीं। **यथातथ वस्तुस्वरूप को निःसन्देहरूप से जानता है,...** जैसा है वैसा **वस्तुस्वरूप को निःसन्देहरूप से जानता है, उसे...** उसे-ऐसा लेना वहाँ। वह निकाल डालना। **आगमियों, ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) कहते हैं।** उसे आगमियों, आगमियों। **उसे आगमियों, ज्ञान कहते हैं।** जिस ज्ञान में हीनता नहीं, अधिकता नहीं, विपरीतता नहीं। वीतराग की वाणी में वह (कम, अधिक या विपरीत) नहीं होता। ऐसा जिसे ज्ञान, उस ज्ञान को आगमियों—शास्त्र के ज्ञाताओं, उसे ज्ञान कहते हैं। दूसरे को ज्ञान नहीं कहते। कहो, समझ में आया? समन्तभद्राचार्य (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) में उन्होंने कहा है कि कम, अधिक और विपरीतरहित जो यथार्थ ज्ञान, उसे आगमियों, ज्ञान कहते हैं। कुछ भी कम-अधिक फेरफार, उसे आगमियों ज्ञान नहीं कहते। यह आगम का ज्ञान बताया, लो। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१२, श्लोक-१५, गाथा-९, गुरुवार, फाल्गुन शुक्ल १५, दिनांक ११-०३-१९७१

यह मोक्ष के कारण का कारण है। समझ में आया? श्वेताम्बरों ने जो शास्त्र रचे हैं, वह वीतराग की वाणी नहीं है, वह तो सब अपनी कल्पना से रचे हुए हैं। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। वह तो निर्वाण के कारण का कारण है। अपना शुद्धस्वरूप, आनन्द की प्राप्ति होना वह, मुक्ति और उसका कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसका कारण द्रव्यस्वभाव। अपना चिदानन्दस्वरूप, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और चारित्र; उसका कारण द्रव्यस्वभाव। और उस कारण से उत्पन्न हुआ मोक्षमार्ग, वह मोक्ष का कारण; और मोक्षमार्ग का कारण / निमित्तकारण वीतराग की वाणी। स्पष्ट है, बिल्कुल स्पष्ट हो गया। आता है न? भाई! समझ में आया? बात तो ऐसी है।

यह नियमसार है। नियम अर्थात् मोक्ष के मार्ग का सार। सार का अर्थ ? व्यवहाररत्नत्रय जो विकल्प है, उससे रहित आत्मा का मोक्षमार्ग है। व्यवहार है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है – ऐसा बताते हैं। समझ में आया ? बीच में दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प आता है परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्ष का मार्ग तो भगवान आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा देखा, कहा, वैसा आत्मा का अन्तर अनुभव करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करना, वह मोक्ष का मार्ग एक ही है। और उस मोक्षमार्ग में निमित्तकारणरूप से वीतराग की वाणी है; अज्ञानी की वाणी या अल्पज्ञानी की वाणी निमित्त नहीं होती। सम्यग्दृष्टि कहता है, वह तो सम्यग्दर्शन वीतराग की वाणी कहता है। समझ में आया ? अपने घर की बात नहीं है।

श्लोक-१५

और (आठवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक द्वारा जिनवाणी को-जिनागम को वन्दन करते हैं) —

(हरिणी)

ललितललितं शुद्धं निर्वाणकारणकारणं,
निखिलभविनामेतत्कर्णामृतं जिनसद्वचः।
भवपरिभवारण्यज्वालित्विषां प्रशमे जलं,
प्रतिदिनमहं वन्दे वन्द्यं सदा जिनयोगिभिः ।।१५।।

(वीरछन्द)

जो अत्यंत मनोहर शुद्ध तथा शिवपथ के कारण हैं।
भव्यों के कर्णों को अमृत दावानल को जल सम हैं॥
जैन योगियों द्वारा वन्द्य सदा ऐसे जिनराज वचन।
मन-वच-तन से नित प्रति करता मैं उन वचनों को वन्दन ॥१५॥

श्लोकार्थ :- जो (जिनवचन), ललित में ललित[१] हैं; जो शुद्ध हैं; जो निर्वाण के कारण का कारण है; जो सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है; जो भवभवरूपी अरण्य

१. ललित में ललित=अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न करें, ऐसे अतिशय मनोहर।

के उग्र दावानल को शान्त करने में जल है और जो जैन योगियों द्वारा सदा वंद्य हैं — ऐसे इन जिनभगवान के सद्वचनों को (सम्यक् जिनागम को) मैं प्रतिदिन वन्दन करता हूँ॥१५॥

श्लोक-१५ पर प्रवचन

जो सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है;... वहाँ सुधारा नहीं। वहाँ सुधारना चाहिए। **सर्व जीवों के कर्णों को अमृत है;...** कल बताया था न? भवि... भवि। **सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है;...** ऐसा लेना। वीतराग की वाणी वीतरागता उत्पन्न करानेवाली है। और वह वीतराग की वाणी **सर्व जीवों के कर्णों को अमृत है;...** कान का अमृत। वह वीतराग की वाणी है। सर्व भव्यों की जगह यहाँ सर्व जीव लेना। कल बताया था।

जो भवभवरूपी अरण्य के उग्र दावानल को शान्त करने में जल है... वीतराग वाणी, पूर्णानन्द और वीतराग की शान्ति उत्पन्न करने में निमित्त, ऐसी वाणी **भवभवरूपी अरण्य...** जंगल, चौरासी के अवतार के जंगल, उनमें उग्र दावानल, मिथ्यात्व और राग-द्वेष से सुलग रहा है। पूरा संसार सुलग रहा है। उसे शान्त करने में वीतराग की वाणी-जल निमित्त है। समझ में आया? वह वीतराग की वाणी जो कि दिगम्बर सन्तों ने कही वह। पण्डितजी! समझ में आया? उस वाणी पर यहाँ जोर देते हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरों ने अपनी कल्पना से शास्त्र बनाये हैं, वे शास्त्र मोक्ष का निमित्त भी नहीं है। मोक्ष के कारण में वे निमित्त भी नहीं हैं। समझ में आया?

जो जैन योगियों द्वारा सदा वंद्य हैं... देखो! सन्त, वीतरागी मुनि, कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आदि। ऐसे जैन योगियों को वह वाणी वन्द्य है। समझ में आया? क्यों (वन्द्य) कहा? कि जिसने राग से भिन्न अपने आत्मा का भान किया है, ऐसे योगी, ऐसी वह वीतराग की वाणी, वीतराग को बतानेवाली है तो उन्हें वन्द्य है। राग को अपना माननेवाले, राग से धर्म मनवानेवाले शास्त्र, वे शास्त्र ही नहीं हैं, तो वे वीतरागी मुनियों को वन्द्य नहीं हैं। वन्द्य तो वीतराग की वाणी है, वह वन्द्य है। जैसे भगवान की प्रतिमा व्यवहार से वन्द्य है। शुभभाव है न? इसी प्रकार भगवान की वाणी भी व्यवहार से वन्द्य है। समझ

में आया ? **जैन योगियों द्वारा...** ऐसी भाषा ली है। क्यों ? जिन्हें वीतरागभाव में, वीतराग वाणी में तो वीतरागता बतानी है; अत: जिन्हें अपने स्वभाव की वीतरागता की रुचि, दृष्टि हुई—ऐसे जैन योगियों को वीतराग वाणी वन्द्य है। समझ में आया ? राग और विकल्प से धर्म माननेवाले, वे जैन नहीं, वे जैन योगी नहीं, इसलिए जिनवाणी उन्हें वन्द्य नहीं—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ३२ शास्त्र कहे वे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे ३२ शास्त्र भगवान की वाणी नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है। यह वाणी सन्त—अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य से चली आयी है, वह जिनवाणी है। ३२-४५ तो नये कल्पित बनाये हैं, वह भगवान की वाणी नहीं है।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर ?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर। यह वहाँ पालीताणा है न ? नीचे आगम मन्दिर है न ? शास्त्र की रचना की है। वह नहीं।

यह वीतराग वाणी **जैन योगियों द्वारा सदा वंद्य हैं...** इसका अर्थ क्या ? कि वीतराग की वाणी में वीतरागता बतलानी है। पंचास्तिकाय में कहा न ? चार अनुयोग का सार वीतरागता है। इसका अर्थ क्या ? (यही) कि निमित्त, राग और अल्पज्ञता की उपेक्षा कराकर, त्रिकाली ज्ञायकभाव में अपेक्षा करावे, वह जिनवाणी है। समझ में आया ? जिनवाणी, वीतराग देव परमात्मा और उनकी वाणी और दिगम्बर सन्तों ने कही हुई वाणी, वह सर्व वीतराग की वाणी है। समझ में आया ? वह वाणी वीतरागता को बतलानेवाली है, अत: जिन्हें वीतरागता की रुचि है, अपना आत्मा राग से भिन्न, पुण्य से भिन्न है, ऐसे आत्मा की रुचि—दृष्टि हुई है, ऐसा धर्मात्मा जिन योगियों की यह वाणी वीतरागता बतलानेवाली (होने से) उन्हें वन्द्य है। समझ में आया ?

इन जिनभगवान के सद्वचनों को... देखो, भाषा। **इन जिनभगवान के सद्वचनों को (सम्यक्...)** वचन हैं। जिनागम वीतराग की वाणी। यह समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, सर्व वीतराग की वाणी है। अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही, वह वाणी है। इतना सूक्ष्म है। अभी झगड़े उठे। आहा..हा..! **इन जिनभगवान के सद्वचनों को (सम्यक्)....**

मुमुक्षु : नाम बड़े-बड़े भगवती और.....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भगवती और दशवैकालिक (शास्त्र) सब कल्पित हैं। वीतराग की वाणी नहीं हैं। उनमें पूर्वापर विरोध बहुत है। यह तो उसमें भी बहुत विचारे तो उसमें भी शंका पड़ती है, परन्तु निकलना कैसे? जाना कहाँ?

मुमुक्षु : सम्प्रदाय का व्यामोह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यामोह बहुत है। सम्प्रदाय में पड़े हों तो निकल नहीं सकते।

भगवान की वाणी किसे कहते हैं? ओहो..हो...! देखो! **जिनभगवान के सद्वचनों...** पाठ है न? **जिनसद्वचः जिनसद्वचः** वीतराग की सत्य वाणी है। जिसमें आत्मा का सत्स्वभाव उत्पन्न हो, वीतरागस्वभाव उत्पन्न हो, रागभाव का नाश हो, उस वाणी को सद्वचन जिनागम कहते हैं। जो वाणी राग की पोषक है, वह जिनवाणी नहीं है। वीतरागभाव की पोषक हो, उसे जिनवाणी कहा जाता है। समझ में आया?

जिनभगवान के सद्वचनों को (सम्यक् जिनागम को) मैं प्रतिदिन वन्दन करता हूँ। आचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि कहते हैं। दिगम्बर मुनि ९०० वर्ष पहले हुए, उन्होंने यह टीका बनायी। मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में हुए। उनके मूल शब्द हैं और उनकी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव ने बनायी है। वे कहते हैं कि मैं तो ऐसी जिनवाणी को वन्दन-नमस्कार करता हूँ। दूसरों को मैं वन्दन-नमस्कार नहीं करता। ऐसा कहते हैं, लो! यह ९ वाँ श्लोक, मूल श्लोक, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (का श्लोक / गाथा) है।

गाथा-९

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता।।९।।

जीवाः पुद्गलकाया धर्माधर्मौ च काल आकाशम्।
तत्त्वार्था इति भणिताः नानागुणपर्यायैः संयुक्ताः।।९।।

अत्र षण्णां द्रव्याणां पृथक्पृथक् नामधेयमुक्तम्। स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमनो-वाक्कायायुरुच्छ्वासनिःश्वासाभिधानैर्दशभिः प्राणैः जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः। सङ्ग्रहनयोऽयमुक्तः। निश्चयेन भावप्राणधारणाज्जीवः। व्यवहारेण द्रव्यप्राणधारणाज्जीवः। शुद्धसद्भूतव्यवहारेण केवलज्ञानादिशुद्धगुणानामाधारभूतत्वात्कार्यशुद्धजीवः। अशुद्धसद्भूत-व्यवहारेण मतिज्ञानादिविभावगुणानामाधारभूतत्वादशुद्धजीवः। शुद्धनिश्चयेन सहजज्ञानादिपरम-स्वभावगुणानामाधारभूतत्वात्कारणशुद्धजीवः। अयं चेतनः। अस्य चेतनगुणाः। अयममूर्तः। अस्यामूर्तगुणाः। अयं शुद्धः। अस्य शुद्धगुणाः। अयमशुद्धः। अस्याशुद्धगुणाः। पर्यायश्च। तथा गलनपूरणस्वभावसनाथः पुद्गलः। श्वेतादिवर्णाधारो मूर्तः। अस्य हि मूर्तगुणाः। अयमचेतनः। अस्याचेतनगुणाः। स्वभावविभावगतिक्रिया-परिणतानां जीवपुद्गलानां स्वभावविभावगतिहेतुः धर्मः। स्वभावविभावस्थितिक्रिया-परिणतानां तेषां स्थितिहेतुरधर्मः। पञ्चानामवकाशदान-लक्षणमाकाशम्। पञ्चानां वर्तनाहेतुः कालः। चतुर्णाममूर्तानां शुद्धगुणाः, पर्यायाश्चैतेषां तथाविधाश्च।

षट्द्रव्य पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, कालाकाश हैं।
ये विविध गुण-पर्याय से संयुक्त षट् तत्त्वार्थ हैं॥९॥

अन्वयार्थ :—[जीवाः] जीव, [पुद्गलकायाः] पुद्गलकाय, [धर्माधर्मौ] धर्म, अधर्म, [कालः] काल [च] और [आकाशम्] आकाश—[तत्त्वार्थाः इति भणिताः] ये तत्त्वार्थ कहे हैं, जो कि [नानागुणपर्यायैः संयुक्ताः] विविध गुण-पर्यायों से संयुक्त हैं।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में) छह द्रव्यों के पृथक्-पृथक् नाम कहे गये हैं।

स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वचन, काय, आयु, और श्वासोच्छ्वास नामक दस प्राणों से (संसारदशा में) जो जीता है, जियेगा और पूर्व काल में जीता था, वह 'जीव' है — यह संग्रहनय कहा। निश्चय से भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। व्यवहार से द्रव्यप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध* जीव' है। अशुद्ध-सद्भूत -व्यवहार से मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण 'अशुद्धजीव' है। शुद्ध निश्चय से सहजज्ञानादि परमस्वभाव गुणों का आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है। यह (जीव) चेतन है; इसके चेतन गुण हैं। यह अमूर्त है; इसके अमूर्त गुण हैं। यह शुद्ध है; इसके शुद्ध गुण हैं। यह अशुद्ध है; इसके अशुद्ध गुण हैं। पर्याय भी इसी प्रकार हैं।

और जो गलन-पूरण स्वभावसहित है (अर्थात्, पृथक् होने और एकत्रित होने के स्वभाववाला है), वह पुद्गल है। यह (पुद्गल) श्वेतादि वर्णों के आधारभूत मूर्त है; इसके मूर्त गुण हैं। यह अचेतन है; इसके अचेतन गुण हैं।

स्वभावगतिक्रियारूप[१] और विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को स्वभावगति का और विभावगति का निमित्त, सो धर्म है।

---

* प्रत्येक जीव, शक्ति-अपेक्षा से शुद्ध है, अर्थात् सहजज्ञानादिकसहित है; इसलिए प्रत्येक जीव, 'कारणशुद्ध जीव' है। जो कारणशुद्ध जीव को भाता है-उसी का आश्रय करता है, वह व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध (केवलज्ञानादि सहित) होता है, अर्थात् 'कार्यशुद्ध जीव' होता है। शक्ति में से व्यक्ति होती है; इसलिए शक्ति, कारण है और व्यक्ति, कार्य है। ऐसा होने से शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को कारणशुद्ध जीव कहा जाता है और व्यक्त शुद्धतावाले जीव को कार्यशुद्ध जीव कहा जाता है। (कारणशुद्ध, अर्थात् कारण-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् शक्ति -अपेक्षा से शुद्ध। कार्यशुद्ध, अर्थात् कार्य-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध।)

१. चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जीव, ऊर्ध्वगमनस्वभाव से लोकान्त में जाता है, वह जीव की स्वभावगतिक्रिया है और संसारावस्था में कर्म के निमित्त से गमन करता है, वह जीव की विभावगतिक्रिया है। एक पृथक् परमाणु, गति करता है, वह पुद्गल की स्वभावगतिक्रिया है और पुद्गलस्कन्ध गमन करता है, वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) विभागतिक्रिया है। इस स्वाभाविक तथा वैभाविकगतिक्रिया में धर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।

स्वभावस्थितिक्रियारूप[१] और विभावस्थितिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को स्थिति का (स्वभावस्थिति का तथा विभावस्थिति का) निमित्त, सो अधर्म है।

(शेष) पाँच द्रव्यों को अवकाशदान (अवकाश देना) जिसका लक्षण है, वह आकाश है।

(शेष) पाँच द्रव्यों को वर्तना का निमित्त, वह काल है।

(जीव के अतिरिक्त) चार अमूर्तद्रव्यों के शुद्ध गुण हैं; उनकी पर्यायें भी वैसी (शुद्ध ही) हैं।

गाथा-९ पर प्रवचन

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता।।९।।

नीचे इसका हरिगीत है।

षट्द्रव्य पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, कालाकाश हैं।
ये विविध गुण-पर्याय से संयुक्त षट् तत्त्वार्थ हैं॥९॥

यहाँ द्रव्य को भी तत्त्वार्थ कहा गया है। षट्द्रव्य कहो या षट् तत्त्वार्थ कहो, दोनों नाम भेद है वह, परन्तु वस्तुभेद नहीं है।

***अन्वयार्थ :*—जीव,...** भगवान की वाणी में जीव आये, जीव। अनन्त जीव। **पुद्गलकाय,...** पुद्गलास्ति। यह परमाणु, यह जड़, मिट्टी अनन्त पुद्गल। **धर्म, अधर्म,...** ये दो पदार्थ हैं। **काल...** भगवान की वाणी में आया। देखो! कालद्रव्य आया है, काल, पदार्थ / तत्त्वार्थ आया है। समझ में आया? श्वेताम्बर में काल को नहीं मानते। काल को औपचारिक मानते हैं। वास्तविक तत्त्व नहीं मानते। इसलिए कहा कि कालद्रव्य भगवान

१. सिद्धदशा में जीव स्थिर रहता है, वह जीव की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है और संसारदशा में स्थिर रहता है, वह जीव की वैभाविकस्थितिक्रिया है। अकेला परमाणु, स्थिर रहता है, वह पुद्गल की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है और स्कन्ध स्थिर रहता है, वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) वैभाविकस्थितिक्रिया है। इस जीव-पुद्गल की स्वाभाविक तथा वैभाविक स्थितिक्रिया में अधर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।

ने कहा हुआ है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने छह द्रव्यों में, असंख्य (काल) द्रव्य है, उनमें काल को भी पदार्थ कहा गया है। **और आकाश—ये तत्त्वार्थ कहे हैं,...** ये तत्त्वार्थ अर्थात् छह द्रव्य कहे हैं।

छह द्रव्य कैसे हैं ? **विविध गुण-पर्यायों से संयुक्त हैं।** प्रत्येक आत्मा और परमाणु अपने-अपने अनेक प्रकार के गुण और अपनी पर्याय से सहित हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों ले लिये। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु द्रव्य जो है, वह अपने गुण-शक्ति और पर्याय से सहित है। अपने गुण और पर्याय सहित है। पर के गुण और पर्याय से रहित है। समझ में आया ?

यहाँ (इस गाथा में) छह द्रव्यों के पृथक्-पृथक् नाम कहे गये हैं। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वचन, काय, आयु, और श्वासोच्छ्वास... ये दस प्राण हैं न ? दस प्राण। इन **नामक दस प्राणों से (संसारदशा में) जो जीता है,....** संसारदशा में दस प्राण से जीता है। **जियेगा और पूर्व काल में जीता था, वह 'जीव' है...** सूक्ष्मता से बात बाद में लेंगे, पहले स्थूल लेते हैं। **यह संग्रहनय कहा।** संग्रहनय अर्थात् सभी जीव एक साथ में रहे।

जो जीव **दस प्राणों से (संसारदशा में) जो जीता है, जियेगा और पूर्व काल में जीता था, वह 'जीव' है—यह संग्रहनय कहा। निश्चय से भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है।** देखो ! अब आया। वास्तव में तो यह आत्मा उसे कहते हैं कि अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द के प्राण को धारण करे, उसका नाम जीव है। सूक्ष्म बात है। शरीर आदि नहीं, इन्द्रिय आदि दस प्राण से जीवे वह जीव नहीं। भगवान ने अपना आत्मा जीवद्रव्य में ऐसा कहा कि **भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है।** भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने जीव क्यों कहा ? अपने ज्ञान-दर्शन, आनन्द, सत्ता से जीता है, इसलिए जीव है। कहो, पोपटभाई ! ऐसे जीव को इसे मानना चाहिए। अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द से आत्मा टिकता है / जीता है। राग से, पुण्य से नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

व्यवहार से द्रव्यप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। ये दस प्राण जड़ हैं, वह व्यवहार है। **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से...** अब देखो ! **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** यह बात सूक्ष्म

की है। भगवान कार्यशुद्ध उसे कहते हैं, कि जो आत्मा में अपनी पर्याय में अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य जो प्रगट हुआ, ऐसी पर्याय शुद्ध है परन्तु सद्भूत अपने में है, परन्तु व्यवहार, एक समय की पर्याय है, इसलिए व्यवहार है। सूक्ष्म है। **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों...** गुण शब्द से यहाँ पर्याय है। **केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** भारी सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा अन्तर में जो शुद्ध आनन्दघन है, ज्ञायकभाव है, वह तो कारण जीव है और उसमें से केवलज्ञान और केवलदर्शन आदि परमात्म पद प्रगट हो, उसे कार्य जीव कहा जाता है। (श्वेताम्बर के) ३२-४५ (सूत्र में) कारण जीव-कार्य जीव की ऐसी बात नहीं है। कभी सुना है? पण्डितजी!

मुमुक्षु : ऐसा सुनानेवाला ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान परमेश्वर जिनवाणी में जो छह द्रव्य कहे, उनमें यह जीवद्रव्य उसे कहा, जीव... जीव... उस जीव के दो प्रकार कहे। एक तो भावप्राण से जीवे, वह जीव और व्यवहार से द्रव्यप्राण से जीवे, वह व्यवहार, यह पहले निकाल दिया। अब दूसरी चीज़। यह आत्मा अपना शुद्ध ध्रुवस्वरूप जो ज्ञायकभाव है, त्रिकाल ज्ञायकभाव है, उसे भगवान, कारणजीव कहते हैं। कि जिस कारणजीव में से केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द ऐसी कार्यदशा, कारण में से प्रगट होती है। आहा..हा..! समझ में आया? भारी-सूक्ष्म, भाई! वीतराग का तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। साधारण प्राणी के साथ, साधारण के साथ इसका मिलान नहीं हो सकता। जीव के दो प्रकार—एक भावप्राण, द्रव्यप्राण लिये। एक अब कारणजीव और कार्यजीव ऐसा लिया। कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं? यह शान्ति से समझने की चीज़ है। जन्म-मरण मिटाने की बात है।

कहते हैं कि परमेश्वर सर्वज्ञदेव ने ऐसा कहा कि जिस आत्मा में से केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य प्रगट होता है, उस जीव को यहाँ कार्यजीव कहा जाता है। जिसने कार्य किया। पोपटभाई! लो, यह कार्य किया। आहा..हा..! कोई हिन्दी लोग आये हैं तो स्वाध्याय में... तुम्हारा आधा घण्टा चला गया। कहो, समझ में आया?

कहते हैं **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार...** क्या कहते हैं? आत्मा अनन्त आनन्द, ज्ञानस्वरूप

जो त्रिकाल है, उसे यहाँ कारणजीव कहा है। क्योंकि कारणजीव में से कार्य-आत्मा उत्पन्न होता है। आहा..हा..! यह वाणी यहाँ दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दिगम्बर सन्त.... आप सन्त के अतिरिक्त कहीं नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी महासन्त, धर्म के स्तम्भ, धर्म के स्तम्भ जंगल में रहनेवाले नग्न मुनि थे और अपने आनन्दस्वरूप में झूलनेवाले थे। मात्र नग्न नहीं। ऐसा नग्नपना तो अनन्त बार ले लिया है।

अपनी चीज़ अन्तर आनन्द और अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, जो कारण चतुष्टय जो कारणजीव में पड़े हैं। कारणजीव अर्थात् ध्रुव जीव। जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, वीर्य पड़े हैं, उन अनन्त चतुष्टयात्मक आदि अनन्त गुणों का पिण्ड आत्मा है। उस आत्मा को परमेश्वर कारणजीव कहते हैं और उस कारणजीव में से अन्तर्मुख होकर जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द परमात्मदशा प्रगट होती है, उस परमात्मदशा को कार्यजीव कहते हैं। यह वाणी अन्यत्र कहीं है ही नहीं। समझ में आया? अपने दोपहर में वह चलता है। यह तो नियमसार है। कारणपरमात्मा का चलता है न? इसमें ही कारणपरमात्मा और यह कार्यजीव और कारणजीव, उसमें कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा, इस प्रकार बात की है। आहा..हा..! यहाँ जीव लेना है न? जीव है न? इसलिए व्याख्या ली है। आहा..हा..!

यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वर्तमान में ध्रुव, ध्रुव जो वस्तु, एक समय की पर्याय से भिन्न है। राग से तो भिन्न, संयोग से तो भिन्न, एक समय की पर्याय / अवस्था से भी भिन्न, जो रसकन्द-ज्ञायक रसकन्द, सच्चिदानन्दस्वरूप सचेतस्वभाव, ज्ञायकभाव, ऐसा त्रिकाल ज्ञायकभाव, उसे यहाँ भगवान कारणजीव कहते हैं कि जिसके आश्रय से अपना कार्यपरमात्मा प्रगट होता है, उसे कारणजीव कहते हैं। भारी सूक्ष्म! कहो, समझ में आया?

शुद्ध सद्भूत... क्योंकि केवलज्ञान-केवलदर्शन-अनन्त आनन्द जो अरिहन्त भगवान

को प्रगट हुए, तो वह पर्याय शुद्ध है और अपनी है, इसलिए सद्भूत है, परन्तु त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से एक अंश है, इसलिए व्यवहार है। आहा..हा..! समझ में आया? भगवान आत्मा, देह मन्दिर में विराजमान चैतन्य प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा नित्यानन्द प्रभु आत्मा है। जिसमें नित्य अतीन्द्रिय आनन्द भरा हुआ है। आहा..हा..! ऐसा नित्यानन्द प्रभु यह आत्मा, उसे यहाँ कारणजीव कहा गया है। उस कारण का कार्य। यह कारणजीव है, वह तो निश्चय है। कारणजीव जो है, वह निश्चय है, एकरूप है, त्रिकाल है और उस कारणजीव के आश्रय से प्रगट हुई मोक्षदशा, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि अनन्त गुण की व्यक्तता प्रगट हुई, उसे कार्यपरमात्मा अथवा कार्यजीव कहते हैं। कहो, समझ में आया? ऐसे जीव को जानना, ऐसा कहते हैं। ऐसे पाँच भेद हैं और जीव के ऐसे भेद हैं, ऐसा नहीं। कारणजीव और कार्यजीव ऐसे हैं, ऐसा यथार्थ ज्ञान करो। आहा..हा..! समझ में आया?

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से... यह भी अभी व्यवहार है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अरिहन्त को उत्पन्न हुए, वह भी व्यवहार है। क्योंकि एक समय की पर्याय है। इसमें दया, दान के विकल्प को तो निकाल दिया, वह तो है ही नहीं। आहा..हा..! वह तो असद्भूत है। आहा..हा..! सूक्ष्म भाव है, भाई! जैनतत्त्व समझना और पहिचानना, वह अपूर्व पुरुषार्थ है। कोई साधारण रीति से मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! कहते हैं, अच्छी बात आ गयी है, लो!

मुमुक्षु : माँग की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : माँग की है हिन्दी। हिन्दी की माँग की थी। नहीं तो आज तो स्वाध्याय चलती थी, हों!

देखो! भगवान उसे जीव कहते हैं, ऐसा समझो, ऐसा कहते हैं। जीव के दो प्रकार। दूसरे... दूसरे.. दूसरे.. पाँच द्रव्य उनके घर में रहे। जो यह भगवान आत्मा अन्दर है। यह तो देह (तो) मिट्टी-धूल है, यह तो पुद्गल है, यह कहीं जीव नहीं है और कर्म अन्दर कार्माण, तेजसशरीर है, वह भी जीव नहीं है, वह तो अजीव है और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, वह तो राग है, आस्रव है; वह आत्मा नहीं। समझ में आया? पुण्य-पाप के भाव होते हैं न? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह शुभभावरूपी राग पुण्य है और हिंसा,

झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, पाप आस्रव है। ये दोनों आस्रव, आत्मा नहीं है। यहाँ तो आत्मा कारण और कार्य में यह बात ली ही नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण... आहा..हा..! **होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** कार्यपर्याय का आधार है न? आहा..हा..! **केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** देखो! नीचे नोट। प्रत्येक जीव, प्रत्येक आत्मा देह में विराजमान आत्मा है। वह **प्रत्येक जीव, शक्ति-अपेक्षा से शुद्ध है, अर्थात् सहजज्ञानादिकसहित है;...** क्या कहते हैं? देह में विराजमान प्रत्येक यह आत्मा चैतन्य प्रभु है, वह शक्ति अपेक्षा से सत् ज्ञानादिसहित है। कौन? त्रिकाली। ये केवलज्ञानादि, वे नहीं। आहा..हा..! आत्मा सहजज्ञान, दर्शन, आनन्द—ऐसे स्वभाव की शक्तिसहित अनादि है। **इसलिए प्रत्येक जीव, 'कारणशुद्ध जीव' है।** इस कारण से प्रत्येक जीव को कारणशुद्ध, कारणशुद्ध जीव कहा जाता है। आहा..हा..! दस प्राण से जीता है, वह तो जड़ मिट्टी है। उसमें क्या आया? वह तो जड़ है। और अशुद्धभावप्राण, अशुद्धभावप्राण—योग्यता, वह भी जीव नहीं। आहा..हा..!

यहाँ तो भगवान आत्मा शक्तिरूप अनादि से ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि सत्व, सत्, वस्तु का सत्व-उस सत्वसहित अनादि से है। इस कारण से उसे कारणजीव कहा जाता है। कहो, समझ में आया? **जो कारणशुद्ध जीव को भाता है...** - नीचे नोट में। जो कारणशुद्ध जीव की भावना करता है। आहा..हा..! अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन, स्वच्छता, प्रभुता - ऐसी अनन्त शक्तिरूप जो आत्मा, उसे कारणजीव कहा जाता है। उस कारणजीव की भावना भाता है, उसमें एकाग्र होता है। देखो! **उसी का आश्रय करता है,...** आहा..हा..! सब बात गुम हो गयी। बाहर की अपेक्षा से यह मूल बात रह गयी। यह व्रत पालना, पूजा करना, भक्ति करना, यात्रा करना वह धर्म, ऐसा मान लिया गया।

मुमुक्षु : उसमें ही उलझ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझ गये।

मुमुक्षु : मूल बात.....

पूज्य गुरुदेवश्री : रह गयी।

मुमुक्षु : स्वयं कौन है, इसका भान नहीं।

आहा..हा..! कहते हैं कि जिसे आत्मा का कार्य-मोक्ष का कार्य करना है, मोक्ष अर्थात् अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, दर्शन, व्यक्त / प्रगट हों, ऐसा कार्य करना है तो उस कार्य का कारण कौन? त्रिकाली ज्ञायकभाव आत्मा जो है, शक्तिरूप से अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि कारणजीव है, वह कार्य का कारण है। समझ में आया?

कारणशुद्ध जीव को भाता है, अर्थात् **उसी का आश्रय करता है,...** चैतन्यबिम्ब प्रभु, पूर्ण ज्ञान-दर्शन-आनन्द से अन्दर आत्मा भरपूर है। ऐसे कारणजीव का जो आश्रय करता है, भक्ति करता है अर्थात् कारणजीव को भाता है, **वह व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध होता है,...** वह प्रगट अपेक्षा से केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्णानन्द (स्वरूप) उस अरिहन्तपद को प्राप्त करता है। आहा..हा..! जितने अरिहन्त हुए, वे प्रत्येक आत्मा प्रत्येक अपना कारणजीव, त्रिकाल ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यध्रुव का आश्रय लेकर जो भावना प्रगट हुई, उससे केवलज्ञान हुआ, उस कार्य का कारण, वह कारण आत्मा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : विधि बता दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : विधि यह है। समझ में आया?

उसी का आश्रय करता है,... किसका? जो कायम अनादि-अनन्त ध्रुव, आत्मा की शक्ति, ज्ञान, दर्शन आनन्द आदि ध्रुव है, ऐसे कारण का जो अन्तर में आश्रय करता है, ऐसे आत्मा का आश्रय अथवा भावना करता है, अन्तर में एकाग्र होता है, वह **व्यक्ति-अपेक्षा से...** शक्ति में अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द है, उसका आश्रय करने से प्रगट पर्याय में परमात्मा होता है। आहा..हा..! बात सुनी... कहो, भीखाभाई! इसमें देव-गुरु-शास्त्र तो कहीं रह गये, नहीं? यह मार्ग है। भगवान तो कहते हैं कि हमारा लक्ष्य भी छोड़ दे और तेरा परिपूर्ण स्वरूप अन्दर पड़ा है, उसका आश्रय कर।

मुमुक्षु : तब मुक्ति होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब मुक्ति होगी। ऐसी बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : नहीं परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उस त्रिकाल आत्मा की, एक समय की पर्याय का नहीं।

निमित्त का तो नहीं, परन्तु दया, दान, विकल्प का भी आश्रय नहीं परन्तु उसको जाननेवाली वर्तमान प्रगट पर्याय है, उसका भी आश्रय नहीं। एक समय की पर्याय का आश्रय क्या करे ? उसमें से क्या नयी पर्याय उत्पन्न होती है ? आहा..हा.. ! गजब बात, भाई ! इसलिए यह महँगा पड़ता है न !

मुमुक्षु : महँगा कहाँ है ? समझे तो सस्ता पड़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सस्ता लगता है। महँगा है सब।

मुमुक्षु : .....सुननेवाले भाग्यशाली हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ! बात तो ऐसी है। यह शरीर तो मिट्टी-जड़-धूल है। यह तो पुद्गल है। यह आत्मा है ? आत्मा नहीं। यह तो मिट्टी है। मिट्टी का बंगला बना है, यह तो जड़ का है। यह आत्मा नहीं। इससे आत्मा को कुछ लाभ नहीं और अन्दर में कर्म हैं, तैजसशरीर है, दोनों शरीर हैं, वे तो जड़ हैं। वे भी आत्मा नहीं और पुण्य-पाप के भाव होते हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, ये दोनों भाव तो आस्रव हैं।

मुमुक्षु : इन्हें तो जीव में लिया ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्हें तो यहाँ जीव कहा ही नहीं। ये जीव ही नहीं। ये नहीं कारणजीव, नहीं कार्यजीव। ये जीव ही नहीं। आहा..हा.. ! सेठी ! गजब काम, भाई ! आहा..हा.. ! कहते हैं कि जिसकी शक्ति भगवान आत्मा की, अन्तर में अनन्त ज्ञान-दर्शन जो भरे हैं, उनका आश्रय करने से, उनका अवलम्बन करने से, उनके सन्मुख होकर एकाग्र होने से व्यक्त अर्थात् प्रगटरूप से केवलज्ञान आदि परमात्मदशा प्रगट होती है, उसे कार्यजीव कहा जाता है। आहा..हा.. ! जीव में भी कारणजीव और कार्यजीव। वीतरागी सन्तों का आनन्द का मंथन है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं मिला ? ऐसी बात है। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे, उनके आगम में यह कहा है। ऐसा कहना है न ? भाई ! उस आगम में यह तत्त्वार्थ कहे हैं। ऐसा कहना है न इसमें ? ऐसे भगवान की वाणी के जो आगम हैं, उन आगम में ऐसे तत्त्वार्थ कहे हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

क्या हो ? पात्रता न हो और सुनने को मिले नहीं और मिलने के बाद भी निर्णय करने का ठिकाना नहीं, अरे !

अर्थात् 'कार्यशुद्ध जीव' होता है। इस ओर नोट है न। कारणजीव में से कार्यशुद्ध जीव होता है। भाई ! यह बात बहुत गम्भीर है। गाथा ऐसी आ गयी है। यहाँ तो गाथा में पहले **जीवा** शब्द पड़ा है, तो **जीवा** - जीव की व्याख्या चलती है। भगवान की वाणी में जीव आया, वह जीव कैसा है ? उसकी व्याख्या चलती है। आहा..हा.. ! भगवान की वाणी में-आगम में ऐसा आया। देखो ! यह आगम, परमागम, जिसमें कारणजीव त्रिकाली भगवान आत्मा ध्रुव को आगम में कारणजीव कहा है। यह तो पहले से कहते आते हैं कि यह टीका करनेवाले हम कौन ? भाई ! गणधर आदि से टीका चली आती है। हम मन्दबुद्धि वह करनेवाले कौन ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह कार्य (जीव) होता है।

शक्ति में से व्यक्ति होती है;... जैसे पीपर होती है न, पीपर ? छोटी पीपर होती है न ? समझते हो या नहीं ? छोटी पीपर। छोटी पीपर होती है न ? उसे चौंसठ पहर घोंटते हैं न ? तो चौंसठ पहरी शक्ति अन्दर है तो प्रगट होती है। कंकर घिसने से उत्पन्न होती है ? कंकर में नहीं है ? वह पीपर में है। पीपर का छोटा दाना होता है न ? कद छोटा है। चरपरी अल्प है, परन्तु उसके अन्दर में सोलह आने, चौंसठ पैसे, रुपया-रुपया, अखण्ड चरपराहट स्कन्ध की पर्याय में है, तब कहा था न ? स्कन्ध की पर्याय में चरपराहट है। परमाणु में तो रस पूर्ण है, परन्तु उसकी चरपराहट नजदीक आ गयी है। यह बात कहते हैं। नजदीक आ गयी। समझ में आया ? यह घोंटते हैं तो उसमें से चौंसठ पहरी शक्ति में से व्यक्तता प्रगट होती है। चौंसठ पहरी होती है न ? चौंसठ पहर घोंटते हैं न ? तो चौंसठ पहरी चरपराहट (प्रगट होती है)। तीखाशा क्या ? चरपराहट। तुम्हारे चपरपराहट कहते हैं न ? वह चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है, वह शक्ति। प्रगट होती है, वह व्यक्ति। इसी प्रकार भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान-दर्शन पड़े हैं, वह शक्ति और उसका आश्रय लेकर अन्दर पर्याय में अनन्त केवलज्ञान आदि प्रगट हो, वह व्यक्ति। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : शुद्धता का घोंटन...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर से एकाग्रता होती है। शुद्धता में एकाग्रता होने से पूर्ण शुद्धता प्रगट होती है। भाता है, ऐसा आ गया न ? जीव को भाता है, ऐसा नहीं आया ?

कारणशुद्ध जीव को भाता है-उसी का आश्रय करता है,... यह पहले इसमें आ गया है। वाह रे वाह! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह मुक्ति का उपाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से यही मुक्ति का उपाय है। यह तो सिद्ध हो गया है। आहा..हा..!

अपना आत्मा अन्दर जो है, केवलज्ञान, केवलदर्शन परमात्मा को प्रगट हुए, वह कहाँ से हुआ? कहीं बाहर से चीज़ आती है? पीपर में से चौंसठ पहरी चरपराहट जो बाहर आयी, वह बाहर से आयी है? अन्दर में है। अन्दर में है, उसे शक्ति कहते हैं। प्रगट हो, उसे व्यक्त कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा में अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द शक्तिरूप पड़े हैं, उसे कारणजीव कहते हैं। अरे! कारणजीव, अब यह कभी सुना नहीं होगा। उस कारणजीव की एकाग्रता करने पर, एकाग्रता होने से, करते... करते... करते... कार्यजीव केवलज्ञान और अरिहन्त पद प्राप्त होता है। इन दया, दान और व्रत की क्रिया से नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अभी बाहर में तो यही सब चलता है। यह व्रत पालना, अपवास करना, ऐसा करना और वैसा करना, उससे धर्म होगा। धूल में भी धर्म नहीं है। सुन तो सही! अच्छा पुण्य भी उसमें नहीं है। जेठाभाई! अभी तक यह सब कहाँ था?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विपरीत बात थी।

शक्ति में से व्यक्ति होती है; इसलिए शक्ति, कारण है और व्यक्ति, कार्य है। देखो! छोटी पीपर के अन्दर चरपराहट, वह कारण है और प्रगट होती है, वह कार्य है। इसी प्रकार आत्मा में शक्तिरूप अनन्त ज्ञान-दर्शन पड़े हैं, वह कारण है; उनका पर्याय में-अवस्था में प्रगट होना वह कार्य है। शक्ति में हो, उसमें से आता है। न हो उसमें से कहाँ से आवे? जो शक्ति और सत्व है, ज्ञान-आनन्द, वह उसका रस है। रस अर्थात् स्वभाव है, वह शक्ति है। उस शक्ति में से परमात्मपद व्यक्तरूप कार्यजीव होता है। यह व्यवहाररत्नत्रय से नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! व्यवहाररत्नत्रय तो विकल्प है, राग है। राग में से कहाँ वीतरागता आती है? वीतरागता तो अन्दर आत्मा में पड़ी है। आहा..हा..! वीतरागता से भरपूर आत्मा, वह शक्तिरूप वीतरागता है, उसे कारणजीव

कहते हैं और उसकी एकाग्रता होकर पूर्ण केवलज्ञान आदि प्रगट हों, उन्हें व्यक्तरूप कार्यजीव कहते हैं। समझ में आया? कारणजीव, कार्यजीव जयपुर में कभी सुना था।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये हमारे सेठी हैं, ये मीठालाल हैं।

मुमुक्षु : सेठी की बोलने की पद्धति की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी पद्धति अस्ति से है। सुना नहीं, ऐसा नहीं कहे। अब सुनता हूँ। अब सुनता हूँ न! पहले नहीं सुना, ऐसा नहीं कहे।

आहा..हा..! **ऐसा होने से....** देखो! नीचे नोट। **शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को...** शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को **कारणशुद्ध जीव कहा जाता है...** अभी तो समझना कठिन पड़े। आहा..हा..! **ऐसा होने से....** ऐसा होने से का अर्थ? शक्ति, कारण और व्यक्ति, कार्य। **ऐसा होने से शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को कारणशुद्ध जीव कहा जाता है और व्यक्त शुद्धतावाले जीव को कार्यशुद्ध जीव कहा जाता है।** कार्यशुद्ध शब्द लिया न? कार्य जीव के बदले कार्यशुद्ध। वह कारणशुद्ध, यह कार्यशुद्ध। समझ में आया? भारी सूक्ष्म ऐसा। गर्म पानी पीना, उसमें कहीं ऐसा नहीं आया?

मुमुक्षु : दिगम्बर में था, तथापि कोई समझानेवाला नहीं था, हम इतना समझे थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्त की वाणी। यहाँ तो जिन की वाणी यही चलती है न? जिनवाणी कैसी है? आहा..हा..! जिनवाणी ने कैसे तत्त्वार्थ कहे? जिनवाणी कैसा जीवद्रव्य कहा? यह बात चलती है। आहा..हा..! परमागम भगवान की वाणी में जीव तो भावप्राण से जीता है, ऐसा कहा है और द्रव्यप्राण से असद्भूत व्यवहारनय से जीता है, ऐसा संसार कहा। संसार, वह निमित्त और अशुद्धभावप्राण से जीता है, वह अशुद्धनिश्चयनय से जीव कहा। अरे! और त्रिकाल कारण तथा कार्य में अशुद्धता कुछ नहीं। त्रिकाल भगवान आत्मा कारणशुद्ध जीव है, उसका आश्रय करने से कार्यशुद्ध जीव प्रगट होता है। आहा..हा..!

यहाँ तो ऐसा कहा कि कारणशुद्ध जीव जो है त्रिकाली शक्ति, आनन्द आदि, उसमें से कार्यशुद्ध होता है। वह मोक्षमार्ग से कार्यशुद्ध होता है और मोक्षमार्ग जीव से होता है, ऐसी बात न करके सीधी बात ऐसी की है। क्या कहा? भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन-

आनन्द अनन्त ऐसी शक्तिरूप जो आत्मा है, वह कारणशुद्ध जीव है। वह कारणशुद्ध, भगवान के आगम में, तत्त्वार्थों में यह तत्त्व कहा। समझ में आया? और उस कारणशुद्ध जीव में से कार्यशुद्ध जीव होता है। उस मोक्षमार्ग में से कार्यशुद्ध जीव होता है, ऐसा न कहकर सीधे कारण से कार्य / मोक्ष होता है, (ऐसा कहा)। समझ में आया? क्या कहा?

मोक्षमार्ग... जो ध्रुव त्रिकाली शक्तिरूप ज्ञायकभाव है, वह कारणशुद्ध जीव और उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं, वह मोक्षमार्ग है, परन्तु उस मोक्षमार्ग का कार्य केवलज्ञान आदि है, ऐसा नहीं कहा। क्योंकि मोक्षमार्ग की पर्याय का तो व्यय होता है और मोक्ष की पर्याय जो प्रगट होती है, वह कारणशुद्ध जीव में से प्रगट होती है। मोक्षमार्ग की पर्याय नाश होती है, उसमें से कार्य नहीं आता। अरे! भारी सूक्ष्म, भाई!

फिर से। कहते हैं... यहाँ तो कारणशुद्ध जीव, वह शक्तिरूप; कार्यशुद्ध जीव, वह व्यक्तिरूप। उस कारणशुद्ध जीव से कार्यशुद्ध जीव होता है, ऐसी सीधी बात कही है। ऐसा नहीं कहा कि कारणशुद्ध जीव में से मोक्षमार्ग पहले प्रगट होता है और फिर मोक्षमार्ग से कार्यशुद्ध जीव-कार्य शुद्धि होती है। मोक्षमार्ग भी कारणशुद्ध जीव का आश्रय करने से उत्पन्न होता है और कार्यशुद्ध जीव भी जीव के आश्रय से उत्पन्न होता है, ऐसी सीधी बात है। भाई! आहा..हा..!

मुमुक्षु : उपाय यह एक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाय एक है। यह दूसरी बात की है। यहाँ तो कार्यशुद्ध जीव जो कहा, वह मोक्षमार्ग की पर्याय कारण और मोक्ष कार्य, ऐसा न कहकर.... क्योंकि मोक्षमार्ग की पर्याय जो है, उसका अभाव होता है, तब मोक्ष होता है; अत: अभाव में से भाव कहाँ से आये? ऐसे थोड़े-थोड़े शब्द में बहुत गम्भीरता है। समझ में आया? आहा..हा..!

(कारणशुद्ध, अर्थात् कारण-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् शक्ति -अपेक्षा से शुद्ध। कार्यशुद्ध, अर्थात् कार्य-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध।) स्पष्टीकरण बहुत सरस किया है। समझ में आया? समझाणूं कांई? यह तो हमारी गुजराती भाषा है। समझ में आया? (ऐसा हिन्दी में कहते हैं)। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ ने कहा, वह आगम और उस आगम में ऐसी बात है। दूसरे आगम में

ऐसी बात नहीं हो सकती। समझ में आया? पण्डितजी! आहा..हा..! कार्यशुद्ध की यह व्याख्या की है। समझ में आया? पश्चात्

अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण 'अशुद्धजीव' है। इसकी वह पर्याय आधार होने से ऐसा लिया, भाई! उसमें कार्य में आधार लिया न? शुद्ध गुणों का आधार होने से, आधार होने के कारण कार्यशुद्ध जीव है। **आधार होने के कारण 'कार्यशुद्धजीव' है।** पर्याय है न आधार। द्रव्य तो आधार त्रिकाल है। वह तो अनन्त गुण का-शक्ति का आधार है। त्रिकाली शक्ति का आधार द्रव्य है। समझ में आया? परन्तु यह तो पर्याय जो प्रगट हुई, उसका आधार यह है। आहा..हा..!

यहाँ लिया, देखो न, शुद्ध गुणों का आधार होने से, सद्भूतव्यवहारनय से उसे कार्यशुद्ध जीव कहा और त्रिकाल कारण भगवान, वह तो अनन्त गुण का आधार द्रव्य है, वह तो त्रिकाल है। उसे कारणजीव कहते हैं। उस कारणजीव को बराबर समझना और उसका आश्रय करके कार्य प्रगट करना, यह उसका तात्पर्य और सार है। समझ में आया?

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१३, गाथा-९, शनिवार, फाल्गुन कृष्ण २, दिनांक १३-०३-१९७१

यह नियमसार, मोक्ष के मार्ग का अधिकार है। जीव अधिकार चलता है। ९ वीं गाथा। क्या कहते हैं भगवान सर्वज्ञ परमात्मा? पहली बात आ गयी। अपने केवलज्ञान आदि ऋद्धि से सहित हैं। परमात्मा सर्वज्ञदेव केवलज्ञान, अनन्त आनन्द आदि वैभव से समृद्ध हैं। उनके मुख से निकली हुई वाणी को आगम कहा जाता है। आगम उसे कहते हैं। उस आगम में छह तत्त्व अथवा छह द्रव्य की व्याख्या है। यहाँ तत्त्वार्थ कहो या द्रव्य कहो, यह बात यहाँ चली है। उसमें जीव की व्याख्या चलती है।

भगवान ने जीव किसे कहा? सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा, वाणी-दिव्यध्वनि द्वारा जीव का स्वरूप कैसा कहा? नय से, थोड़ा सूक्ष्म विषय है। पहले यह आया कि **दस प्राणों से (संसारदशा में) जो जीता है, जियेगा और पूर्व काल में जीता था, वह 'जीव' है...** शुरुआत की ९वीं गाथा। संग्रहनय से अथवा संग्रह अर्थात् समुच्चय प्रत्येक जीव

गिनने में आया है। तो जो जीव अनादि से दस प्राण—पाँच इन्द्रिय, श्वास, आयु, मन-वचन और काया, यह निमित्त से, व्यवहार से **जीता है, जियेगा और पूर्व काल में जीता था,...** उसे व्यवहार से, संग्रहनय से जीव कहा गया है। जानने की बात इतनी है।

निश्चय से भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। कारण जीव है। क्या कहते हैं? वास्तव में तो यह आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता — ऐसे त्रिकाली भावप्राण धारण करने से, भगवान ने आगम में उसे जीव कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें तो कुछ स्पष्टीकरण दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्टीकरण यह है कि जो आत्मा है, आत्मा। यहाँ जीव शब्द लिया है। जीव की व्याख्या है न, इसलिए (जीव शब्द लिया है)। वह जीव। छहढाला में जीव की व्याख्या थी, परन्तु वह दूसरे प्रकार से (थी) कि अन्तरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा—ऐसे जीव के तीन प्रकार हैं। छहढाला में ऐसा लिया था। जीव के तीन प्रकार - ऐसा लिया था। बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा - यह जीव के तीन प्रकार। यहाँ जीव के दूसरी रीति से प्रकार लेते हैं।

मुमुक्षु : जीव तो वह का वह न, या दूसरा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव तो वह का वही है। जीव दूसरा है? तत्त्वार्थसूत्र में जीव की दूसरी व्याख्या (कही है)। जीव उसे कहते हैं, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना, शुद्धभावचेतना धारण करे, वह जीव। वहाँ ऐसा लिया है; यहाँ ऐसा लिया है।

मुमुक्षु : द्रव्यसंग्रह में भी ऐसा लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, द्रव्यसंग्रह में भी यह है। समझ में आया? यह तो उमास्वामी का तत्त्वार्थसूत्र मूल सूत्र है न? उसकी टीका में ऐसा लिया है।

यह समझने की चीज़ है। मोक्षमार्ग है न? तो मोक्षमार्ग निश्चय से किसके आश्रय से प्रगट होता है? यह सिद्ध करने के लिये यहाँ जीव की व्याख्या नय से स्पष्ट की है। तो कहते हैं कि अनादि काल से ये जड़ प्राण हैं, पाँच इन्द्रियाँ आदि से जीवे, वह तो अशुद्धरूप से जीता है। यह तो व्यवहार संग्रहनय से सभी जीवों की व्याख्या साधारण रीति से की है। सब संसारी जीव। परन्तु भाव (प्राण)? यह आत्मा है, इसमें ज्ञान है, आनन्द है, दर्शन है

और वीर्य है और सत्ता है। ऐसे भावशक्तिरूपी प्राण को धारण करनेवाले को जीव कहते हैं। वह यथार्थरूप से जीव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग को धारण करनेवाला जीव नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग-बाग को धारण करनेवाला जीव नहीं। वह तो अशुद्ध से बात करे, तब बात करे। जीव का वास्तविक चैतन्यतत्त्व, सम्यग्दर्शन का विषय। देखो! यह जीव, आत्मा - वह तो जानन-देखन, आनन्द और सत्ता—ऐसे भावशक्तिरूप प्राण से जीता है, उसे जीव कहा जाता है। अर्थात् जिसके आत्मा में ज्ञान-दर्शन-आनन्द-सत्ता है, ऐसी दृष्टि करके, भावप्राण को धारण करनेवाला जीव है—ऐसी दृष्टि हो, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। सेठी!

आत्मा में, भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा कि वस्तु आत्मा और उसकी शक्ति / गुण—अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख-वह ध्रुवभाव, ध्रुव शक्ति है। उस ध्रुव को धारण करनेवाले जीव को जीव कहते हैं। ऐसा जीव माननेवाला जीव, उसकी दृष्टि, पुण्य-पाप, निमित्त से हटकर, अल्पज्ञ पर्याय से भी दृष्टि हटकर अपने अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, सुख आदि धारक जीव है; उस पर दृष्टि पड़ने से, वह जीव भावप्राण से जीता है, ऐसा अनुभव में - प्रतीति में आता है। भारी सूक्ष्म! दिगम्बर सन्तों की व्याख्या ही अलौकिक बात है। अनादि तीर्थंकर सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने कही, वह वाणी है। देखो! जीव के ये भेद हैं। तुमने कभी सुने हैं? पद्मचन्दजी! है? नहीं? ३२ सूत्र, ४५ (सूत्र) में कुछ है नहीं।

यह तो भगवान की सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी है। इस वाणी को आगम कहते हैं। इस आगम में छह द्रव्य और छह तत्त्व कहे गये हैं। यहाँ द्रव्य और तत्त्व को एक कहा गया है। उनमें जीवतत्त्व या जीवद्रव्य, वास्तविक जीवद्रव्य, तत्त्व। भावप्राण से जीवे, वह जीव। उसका अर्थ क्या? जिसकी दृष्टि अपने त्रिकाली गुण के धारक आत्मा पर पड़ती है, तो भावप्राण से जीता है—ऐसे उसकी प्रतीति और अनुभव में आया। भाई! ऐसे जीता है - ऐसा नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अन्तर में परिणमन होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर। समझ में आया? आत्मा... जीव कहो या आत्मा कहो।

अभी यहाँ जीव शब्द है। यह तो छहढाला में जीव की व्याख्या करते हुए बहिरात्मा, अन्तरात्मा भेद किये हैं। समझे न ? परन्तु वह जीव की व्याख्या करते हुए अन्तरात्मा और ऐसे भेद किये परन्तु यहाँ जीव कहो या आत्मा कहो। जीव जड़ प्राण से जीता है, यह तो साधारण बात है, यह तो अनादि से है, परन्तु अन्तर में वस्तु भगवान आत्मा त्रिकाली अविनाशी है और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अविनाशी शक्ति है, तो उस शक्ति से टिकता है, जीता है, उसे यहाँ जीव कहा जाता है परन्तु जीव ऐसे टिकता है, ऐसा अनुभव किसे होता है ? धारणा से लक्ष्य में लेने से नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा..हा..!

भगवान आत्मा अन्तर में ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त बेहद शक्ति, प्राण (धारण कर रखे हैं)। उस प्राण को धारण करनेवाला—प्राणी—आत्मा। ऐसा प्राणी जो आत्मा, ऐसे प्राण को धारण करनेवाला है, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि हो, तब दृष्टि में और ज्ञान में भास होता है कि यह जीव तो तीन काल से अपने निजगुण से ही टिका हुआ है। समझ में आया ? कहो, जेठाभाई ! यह बात वहाँ थी ? तुमने कितने वर्ष व्यतीत किये ?

मुमुक्षु : ज्ञान, दर्शन, चारित्र वह जीव, बस।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और अलग। यह तो प्राणवान है न ? भावप्राण, भावप्राणवान आत्मा; द्रव्यप्राणवान नहीं, अशुद्ध भी नहीं। आहा..हा..! वस्तु-आत्मा अन्दर जो अपरिमित ज्ञान, आनन्द, दर्शन आदि का धारक है, तो इन अनन्त ज्ञान आदि धारण करनेवाला-प्राण को धारण करनेवाला प्राणी, अन्तर में दृष्टि में आवे, तब वह जीता है, ऐसा इसे भान होता है। समझ में आया ? मेरा भगवान तो अनन्त आनन्द आदि भावप्राण से (टिकनेवाला) वह प्राणी है। किसी द्रव्यप्राण से प्राणी नहीं राग-द्वेष है, वह प्राणी आत्मा नहीं। समझ में आया ? मणिकान्त गये ?

मुमुक्षु : नहीं, नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों दिखायी नहीं दिये ? रात्रि को याद किया था। कुछ आया था। प्रदेश, पर्याय के प्रदेश, पर्याय के प्रदेश में आया था।

मुमुक्षु : चिद्विलास।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिद्विलास में। पर्याय के प्रदेश वह पर्याय। उस पर्याय का कारण पर्याय के प्रदेश। द्रव्य-गुण के प्रदेश नहीं। बहुत सूक्ष्म। ऐसा सूक्ष्म जीव। समझ

में आया ? दिगम्बर सन्त और दिगम्बर मार्ग में ही यह मार्ग है। अन्यत्र यह मार्ग नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर की परम्परा से चला आया मार्ग है। समझ में आया ?

ऐसा अन्तर आत्मा... कहते हैं कि वह आत्मा भावप्राण से जीता है, ऐसा निर्णय किसे होता है ? वह तो जीता है, है इतना हुआ। परन्तु उस ज्ञान आनन्द को धारण करनेवाला, अनन्त बेहद आनन्द को धारण करनेवाला आत्मा, वह प्राण से जीता है, टिकता है, रहता है। उसका निभाव अपने प्राण से है; पर से निभाव नहीं है। जब सम्यग्दर्शन में अन्तर्मुख होकर जीव ऐसा है, ऐसी अन्तर्मुखदृष्टि / मान्यता हुई तो उस सम्यग्दर्शन में ज्ञान साथ में है। ज्ञान जानता है कि मेरा आत्मा इन अनन्त गुणों से टिक रहा है। उसे किसी राग की या पार की आवश्यकता नहीं है। ऐसा दृष्टि में अनुभव हो तो भगवान उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया ? भाई ! यह तो हिन्दी चलती है। तुम्हारी (भाषा) मराठी है। यह हिन्दी चलती है। पुस्तक तो हिन्दी दी है न ? समझ में आया ? मार्ग सूक्ष्म है, भगवान ! आहा..हा.. ! यहाँ तो वे कहते हैं कि भाई ! देव-देवला को मानो, ऐसा बेचारे को कहा होगा। वहाँ जाकर पद्मावती को गाली दी होगी कि तुम्हारे बाप सब मिथ्यात्वी हैं। अरे ! भगवान ! क्या हुआ जैन में ?

त्रिलोकनाथ चैतन्यदेव, अपना परमेश्वर; वीतराग तो परदेव-व्यवहारदेव है। दूसरे देव, क्षेत्रपाल, पद्मावती धूलधाणी उन्हें माननेवाला तो मिथ्यादृष्टि है। ऐई ! पण्डितजी ! कौन जाने ऐसा हो गया है। यहाँ तो देवाधिदेव आत्मा, देवाधिदेव तीर्थंकर अपनी अपेक्षा से तो परदेव है। उन्हें मानना, वह भी विकल्प और राग है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा वस्तुरूप से अनादि-अनन्त है। उसका टिकना, उसका अनादि-अनन्त, ज्ञान-दर्शनभाव, ध्रुव प्राण से वह जीता है। ऐसा दृष्टि में लेना और अपने ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञेय बनाकर, वह भावप्राण से टिकता है, ऐसा अनुभव में आना, उसका नाम उसने जीव माना, उसे जीव की श्रद्धा हुई, यह जीव का अनुभव हुआ, जीव ऐसा है—ऐसी प्रतीति हुई तो सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा.. ! श्रद्धा की ऐसी बात है, भगवान ! भाई ? समझ में आया ? जीव के ५६३ भेद रट डाले। शुकनचन्दजी ! उसमें है न ५६३ भेद ? यह तो जड़ मिट्टी है वह तो अशुद्ध भावप्राण से जीता है, वह भी यथार्थ जीव नहीं है। आहा..हा.. ! पाँच इन्द्रिय खण्ड-खण्ड से जीता है, मन, वचन, काया, वीर्य, वीर्य, हों ! अन्दर। उससे जीता है, वह भी वास्तविक जीव नहीं है। आहा..हा.. !

वास्तविक भावप्राण से जीता है। अनन्त-अनन्त आनन्द आदि शक्ति से शक्तिवान रहा है। ऐसी शक्ति से शक्तिवान रहा है, ऐसा पर्याय में भान हो तब भावप्राण से आत्मा जीता है, ऐसा इसे अनुभव में भरोसा, प्रतीति होती है। बात पूरी गुम हो गयी है। सब बाहर की (बातें रही गयी हैं), यह दया पालो, यह करो, वह करो। परन्तु वस्तु क्या चीज़ है, उसका पता लिये बिना आत्मा की जहाँ प्रतीति नहीं, तो कहाँ स्थिर होना, इसकी तो खबर नहीं। समझ में आया? भावप्राण स्थिर है और उस स्थिर से भगवान त्रिकाल स्थिर रहता है, ऐसी सम्यक्पर्याय में अनुभव होकर भावप्राण से जीता है, ऐसी प्रतीति साक्षात् अपनी पर्याय में आती है, तब वह प्राण से जीता है, ऐसी उसकी इसे स्वीकृति है। समझ में आया?

अब जीव किसे कहना? यहाँ भाव यथार्थ जीव (किसे कहना)? जीव, जीव तो सब कहते हैं। पूरी दुनिया कहती है। नास्तिक को यह जीव है, अजीव है, परन्तु ये सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के ज्ञान में, अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु जो आये, उनमें वह आत्मा भावप्राण से जीता है, ऐसा ज्ञान में आया। आहा..हा..! उनके ज्ञान में आया, वैसा अपने ज्ञान में जब आवे, तब इसके सच्चे भावप्राण से जीता है, ऐसा अनुभव हुआ। समझ में आया?

निश्चय से भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। व्यवहार से द्रव्यप्राण धारण करने के कारण... निमित्त में दस प्राण हैं, उनका ज्ञान (कराया)। आत्मा भावप्राण से जीता है, आत्मा में ऐसा अनुभव हुआ, उसे दस प्राण निमित्तरूप है, उनका ज्ञान होता है। बस। तब उसका ज्ञान होता है। समझ में आया? यह तो शान्ति का मार्ग है, भाई! आहा..हा..! अभी तो जीव किसे मानना, इसकी बात है। पद्मप्रभमलधारिदेव लगभग ९०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि थे। उनकी यह टीका है। नियमसार, कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक (गाथायें) हैं, उनकी यह टीका है। दिगम्बर मुनि, जिनके मुख में से आगम झरता है, ऐसा अन्दर लिखते हैं। आहा..हा..! वह वाणी जो कहती है, वही आगम है। यह टीका ही आगम है, जाओ! समझ में आया? कहा न, दो-तीन बार कहा।

आत्मा जीव है, उसे जीव की प्रतीति कब होती है? कि जीव में आनन्द, ज्ञान-दर्शन आदि प्राण से वह आत्मा टिक रहा है। उसे किसी की आवश्यकता नहीं है। आत्मा के ऐसे भावप्राण से आत्मा जीता है, वैसी पर्याय में उस ओर की दृष्टि हो, उसे ज्ञेय बनाकर ज्ञान हो, तब सम्यक्ज्ञान में प्रतीति हुई, भास हुआ कि यह भावप्राण से त्रिकाल जीनेवाला

मैं जीव हूँ। आहा..हा..! समझ में आया? अरे! जीव किसे कहते हैं? ऐसे ज्ञानी को, भावप्राण से जीता है, ऐसा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में अनुभव आया, तो उसे निमित्तरूप से द्रव्यप्राण हैं, उनका ज्ञान होता है, बस। अज्ञानी को तो दस प्राण से जीता है, ऐसा ज्ञान भी नहीं है। समझ में आया? ओहो..हो..!

सन्तों ने तो मार्ग सरल कर दिया है। ऐसी सादी भाषा में... ओहो..हो..! गजब बात है। दिगम्बर मुनि भावलिंगी सन्त थे। मात्र नग्न, वस्त्र छोड़े वह कहीं साधु-वाधु है ही नहीं। समझ में आया? यह तो अरिहन्त भगवान को मानना, वह भी कहते हैं कि शुभभाव है और परद्रव्य में हमारी बुद्धि जाती है, वह व्यभिचार है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! भाई! सन्त, दिगम्बर मुनि ऐसा कहते हैं कि हमारी बुद्धि परद्रव्य में जाये तो वह बुद्धि व्यभिचारी है। आहा..हा..! पद्मनन्दि में आया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी है। पद्मनन्दिपंचविंशति में है। पद्मनन्दि आचार्य दिगम्बर सन्त, आत्मध्यानी, ज्ञानी, अन्तर अनुभव (सहित) चारित्रदशा (थी)। वे कहते हैं कि अरे! शास्त्र में भी बुद्धि जाये, वह बुद्धि व्यभिचारी है। गजब बात है। ऐई! आहा..हा..! पद्मनन्दी (पंचविंशति) नहीं? उसमें है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। मोक्षमार्गप्रकाशक में आधार दिया है। किसमें? सातवें (अधिकार) में न? यहाँ है, बीच में कहीं है, पीछे होगा। पद्मनन्दी में ऐसा कहा, ऐसा करके प्रश्न किया है। फिर कहा भाई! तेरी बात तो सत्य है। यदि अन्यत्र बुद्धि जाये, उसकी अपेक्षा वहाँ जाये... ऐसा कहते हैं। ज्ञानगोष्ठी। बड़ा समुद्र हो उसमें से... पद्मनन्दीपंचविंशति, प्रश्न उसने (शिष्य ने) पूछा था। यह व्यवहाराभास में होगा, हों! ऐसा कहा है न? क्या कहते हैं? समझ में आया?

आत्मा जो है यह आत्मा। अन्तर में आत्मा की शक्ति में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि पड़े हैं। वह अनन्त ज्ञान-दर्शन आनन्द के प्राण को धारण करनेवाला वह आत्मा है। अशुद्ध भावप्राण वे जड़ के हैं, यह नहीं, वह तो असद्भूत। लो आया, देखो! पद्मनन्दीपंचविंशति में ऐसा कहा, देखो! इसमें सामनेवाले का प्रश्न था कि बुद्धि आत्मस्वरूप में से निकलकर बाहर शास्त्र में विचरण करे, वह तो व्यभिचारिणी है। शास्त्र भी पर है न, वीतरागदेव भी पर है, तो उस ओर बुद्धि जाये तो राग होता है, व्यभिचार होता है। पद्मनन्दीपंचविंशति का अधिकार है।

मुमुक्षु : .....बहुत झगड़ा हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़ा हो तो क्या करे ? ऐसी बात है। मार्ग तो ऐसा है। यह तो शुरुआत में है। उस प्रमत्त-अप्रमत्त के बाद तुरन्त। थोड़ा-बहुत अभ्यास करना, ऐसा जहाँ आया न, उसमें चला कि अभ्यास करना, वह तो शास्त्र में बुद्धि लगाना, उसे व्यभिचार कहा है। भाई ! बात है तो ऐसी, परन्तु अशुभराग में जाये, उसकी अपेक्षा शास्त्र का अभ्यास करना, वह शुभभाव है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह तो तर्क में आया। २०७ वें पृष्ठ पर है। पहले शुरुआत प्रमत्त-अप्रमत्त के बाद तुरन्त। समझ में आया ?

शास्त्र को मानना, सच्चे अरिहन्त देव को मानना, वह भी विकल्प है, राग है, परद्रव्य है। यह तो कहे देव-गुरु को मानना, वह समकित है। ऐई ! शुकनचन्दजी ! सुना है या नहीं ? सब मिथ्या है। वह व्यवहार समकित विकल्प है। किसे ? जिसे अपने चैतन्य भावप्राण को धारण करनेवाला भगवान पूर्णानन्दस्वरूप मैं हूँ, ऐसा अनुभव हुआ, सम्यक्निश्चय हुआ, उसे व्यवहार समकित, सच्चे देव ऐसे होते हैं, ऐसी मान्यता के भाव को व्यवहार समकित कहते हैं। वह विकल्प है, राग है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : दूसरों के लिये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को व्यवहार कैसा ? समझ में आया ? मार्ग कुछ दूसरा है, भाई ! अनादिकाल से चौरासी में चार गति में भटकता है, उसका नाश करने का उपाय अलौकिक है। वह कहीं साधारण उपाय नहीं है। अनन्त बार अनन्त बार दूसरा किया परन्तु यह कभी नहीं किया।

भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप है। अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द का सागर, समुद्र स्वभाव है। ऐसे स्वभाव से मैं स्वभाववान जीता हूँ। आहा..हा.. ! इसे मैं जीव मानता हूँ। ऐसी मान्यता अन्तर्मुख होकर हो, उसे द्रव्य-भावप्राण से जीनेवाला मैं-ऐसी प्रतीति हुई। पश्चात् अभी दस प्राण बाकी हैं, उनका ज्ञान करता है कि थोड़ा बाकी है। बस, वे छूट जायेंगे। ऐसी बात है। गजब। अब दूसरी बात। व्यवहार यहाँ तक तो परसों के दिन आया था।

अब, **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से...** देखो ! आहा..हा.. ! भगवान आत्मा अनन्त केवलज्ञान आदि का तो पिण्ड है परन्तु जब वह अपने शुद्धस्वभाव के आश्रय से, जब केवलज्ञान, केवलदर्शन, परमात्मपद पर्याय में प्राप्त होता है, वह क्या है - यह बात बताते

हैं। केवलज्ञान आदि शुद्ध सद्भूतव्यवहार अर्थात् ? केवलज्ञान होना, अनन्त आनन्द होना, अरिहन्त पद होना, वह पर्याय है, वह कार्य है। वह कार्य शुद्ध है और सद्भूत अर्थात् अस्ति रखता है। व्यवहार अर्थात् त्रिकाल की अपेक्षा से वह अंश है। अरे रे! इसमें कितना याद रखना।

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से... यह व्याख्या चलती है। **केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का...** गुणों अर्थात् पर्याय। भगवान अरिहन्त परमात्मा को अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द जो प्रगट हुए, उन्हें यहाँ गुण कहा गया है। वे हैं तो पर्याय। उन **केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण...** कौन आधार ? **'कार्यशुद्ध जीव'...** यह समुच्चय सामान्य जो कार्य हुआ, उस गुण की पर्याय का वह आधार है। क्या कहा ? ऐई.. चेतनजी! देखो आधार आया। पर्याय का आधार पर्याय। आहा..हा..!

भगवान आत्मा अन्तर में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द की शक्ति से तो भरपूर है, परन्तु उसका आश्रय करके, अवलम्बन लेकर, सन्मुख होकर, स्वभावसन्मुख होकर शक्ति में से व्यक्तता / प्रगट दशा हुई, अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द आदि (प्रगट हुए), उन्हें यहाँ शुद्ध कहा गया है क्योंकि पर्याय निर्मल है। सद्भूत कहा गया है, क्योंकि वे आत्मा में हैं और व्यवहार कहा गया है, वह त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से केवलज्ञान आदि अंश है। अंश है तो व्यवहार कहा गया है। आहा..हा..!

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है। यह केवलज्ञान आदि परमात्मा को प्रगट हुआ, उन्हें कार्यशुद्ध जीव कहते हैं। कार्यशुद्ध जीव। केवलज्ञान आदि, वह पर्याय है। पर्याय, वह कार्य हुआ, तो कार्यशुद्ध जीव कहने में आया है। आहा..हा..! इसकी प्रतीति किसे होती है कि यह कार्यशुद्ध जीव है। वह कहते हैं, देखो! बाद में कहेंगे। जो कारण जीव आत्मा त्रिकाली ध्रुव द्रव्य है। एक समय की उत्पाद-व्यय की पर्यायरहित चीज़, त्रिकाली ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उस नित्यस्वरूप आत्मा के अंश को यहाँ कारणजीव कहते हैं। उस कारणजीव का आश्रय लेकर, अन्तर्मुख का अवलम्बन लेकर जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसे ऐसी प्रतीति होती है कि इस कारण में से पूर्ण कार्यपरमात्मा हुए हैं। ऐसे कार्यपरमात्मा हुए, उसकी प्रतीति उसे होती है। आहा..हा..! गजब बात।

अब यह सम्यग्दर्शन क्या ? उसका निर्णय करना, प्रतीति करना, विचार करना, मनन करने का तो ठिकाना नहीं। ले लो व्रत और तप करो और स्थिर रह सकता नहीं, इसलिए व्रत आदरो। तुझे किसके व्रत ? अज्ञानी को व्रत कैसे ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह आत्मा... वह तो मिट्टी-धूल है, जड़ है और अन्दर में पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह तो राग है। राग को जाननेवाली पर्याय, वह एक अंश है परन्तु यहाँ तो पूर्ण अंश जिन्हें प्रगट हुआ है; केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द प्रगट हुए, उस पर्याय को कार्यजीव कहते हैं। वह अनन्त केवलज्ञान आदि पर्याय का आधार, वह कार्यजीव पर्याय है। पर्याय का आधार पर्याय है। यहाँ तो भेद का आधार अभेद है, ऐसा बताना है। समझ में आया ? पण्डितजी ! कभी पढ़ा था या नहीं यह ? आहा..हा.. ! अमृत भरा है अमृत।

कहते हैं कि वह '**कार्यशुद्ध जीव**' है। यह अपने परसों आ गया है। नीचे आ गया न ? ***प्रत्येक जीव, शक्ति-अपेक्षा से शुद्ध है,...*** नीचे नोट है। प्रत्येक जीव शक्ति, स्वभाव, सत्व, गुण, भाव इस अपेक्षा से शुद्ध ही है। ***सहजज्ञानादिकसहित है;...*** भगवान आत्मा स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक आनन्द आदिसहित अनादि से है। ***इसलिए प्रत्येक जीव, 'कारणशुद्ध जीव' है।*** प्रत्येक जीव को कारणशुद्ध जीव कहा जाता है। क्यों ? कि आत्मा अनादि से अपने अनन्त ज्ञान-दर्शन शुद्धशक्ति को धारण करनेवाला है, इस कारण से उसे कारणजीव कहने में आता है। अरे रे ! यह धर्म देशना कैसी ऐसी ? वे कहें छह काय के जीव पालना,... जीवया-बहोरविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडम्... आहा..हा.. ! ऐकेंद्रिया, द्वेन्द्रिया, त्रिइन्द्रिया, चौइन्द्रिय,... कहाँ है ? तू सुन तो सही। यह जीवत्व ऐसे ज्ञान-दर्शन का धारक भगवान, उसे नहीं मानना और राग तथा पुण्य को अपना मानना, वह जीवया, बहोरविया है। अपने जीव का उसकी श्रद्धा में नाश किया है। यह उसका मिच्छामि दुक्कडम् कब होता है ? अपना आत्मा कारणशुद्ध जीव त्रिकाल है, उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ तो पहले नाश होता था तो उसे जिलाया कि ओहो.. ! मैं तो ऐसा जीव हूँ। सेठी ! देखो !

यहाँ कहते हैं, देखो ! कारणजीव, ***जो कारणशुद्ध जीव को भाता है...*** द्रव्यस्वभाव अनन्त आनन्दमय प्रभु आत्मा है, उसकी जो भावना करता है। अन्तर्मुख में, अन्तर स्वभाव में सन्मुख होकर, अन्तर एकाग्र होता है, उसका ही आश्रय करता है। भगवान

आत्मा... प्रगट अपेक्षा से शुद्ध केवलज्ञानादिसहित होता है, उसे केवलज्ञान प्रगट होता है। त्रिकाली भगवान आत्मा का आश्रय करे, उसे केवलज्ञान होता है। शक्तिरूप से है और व्यक्तरूप से प्रगट होता है। आहा..हा..! वह ***'कार्यशुद्ध जीव' होता है।*** उसका नाम कार्यशुद्ध जीव है।

शक्ति में से व्यक्ति होती है;... यह कहा था। छोटी पीपर होती है न? उसमें चौंसठ पहरी चरपराहट पड़ी है। छोटी पीपर में चरपराहट है। हमारे काठियावाड़ में तीखाश कहते हैं। चौंसठ पहरी तीखाश। तीखा रस। हिन्दी में चरपराहट, तो चौसठ पहरी चरपराहट पड़ी है तो प्रगट होती है। पड़ी है, वह शक्ति; उसमें से प्रगट होती है, वह व्यक्ति। इसी प्रकार भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान-दर्शन शक्तिरूप है, वह कारणशक्ति जीव और उसका आश्रय करके केवलज्ञान आदि हुआ, वह कार्यशुद्ध जीव है। कहो, समझ में आया?

ऐसा होने से शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को... शक्तिरूप शुद्धतावाले अनादि जीव को ***कारणशुद्ध जीव कहा जाता है...*** पण्डितजी ने बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया है। ***और व्यक्त शुद्धतावाले जीव को...*** देखो! प्रगट शुद्धतावाले जीव को, केवलज्ञान आदि हुआ उसे ***कार्यशुद्ध जीव कहा जाता है। (कारणशुद्ध, अर्थात् कारण-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् शक्ति -अपेक्षा से शुद्ध। कार्यशुद्ध, अर्थात् कार्य-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध।)*** अरे! ऐसा गजब भाई यह! घर में हो नहीं। धर्म का सुनने जाये, उसमें यह बात आवे नहीं। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया करो। मिच्छामि दुक्कडम्... जाओ। जीवया-बहरोविया... परन्तु काया क्या? ठाणेणं क्या? आत्मा क्या? आत्मा में स्थिरता, उसके सन्मुख होना, ये दोनों चीज़ क्या है? और वह चीज़ कहाँ से प्रगट होती है? धर्मध्यान निर्मल दशा का कारण कौन? इसकी खबर नहीं और हमें धर्म हो गया। कहाँ से हुआ? पोपटभाई! यही किया है? आहा..हा..! हम भी वहाँ पालेज में ऐसा करते थे, हों! दुकान से निवृत्त होकर पर्यूषण में प्रतिक्रमण करते, सब इकट्ठे होते, मैं प्रतिक्रमण कराता। सब इकट्ठे होते। खबर नहीं होती कुछ।

मुमुक्षु : प्रौषध करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रौषध करते-उपवास करते। आठ दिन में चार उपवास। संसार में, गृहस्थाश्रम में दुकान पर चार अपवास करते और शाम को सब इकट्ठे हों, तब प्रतिक्रमण

करते। फिर प्रीतिभोज करते। स्थानकवासी के बारह-तेरह घर थे तो सब एक-एक बार सबको जीमावे, संघ किया कहलावे। पालेज में बारह-तेरह घर थे।

मुमुक्षु : स्वामी वात्सल्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वामी वात्सल्य। हो गया धर्म, लो! धूल में भी धर्म नहीं। आहा..हा..!

कहते हैं कि शक्ति-अपेक्षा से जो शुद्ध आत्मा त्रिकाल है, उसे कारणशुद्ध जीव कहने में आता है और उसका आश्रय लेकर ध्यान करके, शक्ति में से व्यक्तता प्रगट हुई, वह व्यक्त शुद्धतावाले जीव को कार्यशुद्ध जीव कहने में आता है। आहा..हा..! उसकी प्रतीति कब होती है? कि कारणजीव भगवान शक्ति आनन्दकन्द है, उसका अवलम्बन लेने से सम्यग्दर्शन होता है, तब कारणजीव की प्रतीति और उसका पूर्ण कार्य केवलज्ञान ऐसा है, उसकी प्रतीति उसे होती है। पण्डितजी! गजब बात, भाई! फिर कहे न, इन सोनगढ़वालों ने नया पंथ निकाला है। नया पंथ या यहाँ जो है वह है। नया पंथ निकाला है? किसी के साथ मेल नहीं। वैसे तो अनादि से यही है।

मुमुक्षु : उसे खबर नहीं हो, इसलिए नया लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं है बेचारों को। नया लगता है। आहा..हा..!

अब यहाँ तक अपने आये, कार्यशुद्ध जीव है। **अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण 'अशुद्धजीव' है।** अशुद्धजीव पर्याय में। वह पर्याय अशुद्धजीव जो है, उसका अशुद्ध। अशुद्ध है न? मतिज्ञान आदि अशुद्ध है। केवलज्ञान नहीं, अपूर्ण है और जिसमें अभी कर्म के निमित्त की अपेक्षा रही है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान-सम्यग्ज्ञान, वह भी अशुद्ध है। सम्यग्ज्ञान है परन्तु चार विभाव है। अपूर्ण है न? आहा..हा..! समझ में आया? अशुद्ध है। क्या कहते हैं? देखो!

सम्यग्ज्ञान में मति-श्रुतज्ञान द्रव्य के आश्रय से हुआ। सम्यग्ज्ञान, शास्त्र से भी नहीं हुआ। अपना मति-श्रुतज्ञान अपने त्रिकाली ज्ञायकभाव के आश्रय से हुआ परन्तु वह अल्पज्ञान है। इस अपेक्षा से, कर्म की अपेक्षा का निमित्त क्षयोपशम है तो उसे अशुद्ध कहते हैं। मति को, श्रुत को, अवधि को, मन:पर्यय को। वह मतिज्ञान आदि अशुद्ध सद्भूत।

परन्तु है अपनी पर्याय में अस्ति। चार ज्ञान भी है तो सद्भूत और व्यवहार अंश है तो व्यवहार (कहा)। चार ज्ञान भी अंश है तो व्यवहार। केवलज्ञान भी अंश है तो व्यवहार। फिर यह चार ज्ञान तो अंश है। आहा..हा..! यह तो अभी दया, दान के विकल्प को व्यवहार (कहे) और वह व्यवहार निश्चय का कारण... भारी गप्प मारते हैं। जेठाभाई!

मुमुक्षु : विपरीत रास्ते।

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीत रास्ते। क्या करे? बात ही ख्याल में आयी नहीं। उसे बेचारे को कुछ दु:खी तो होना नहीं है परन्तु इस वस्तु का मार्ग ही ख्याल में नहीं है। ख्याल में नहीं है। किसी को दु:खी होकर भटकने का भाव तो कहीं होगा? परन्तु भान नहीं है, इसलिए दु:खी होकर भटकता है। दु:खी होकर भटकता है। आहा..हा..!

अभी एक टीका देखी। वह षट्पाहुड़ की है न? उसकी दूसरी गाथा में, 'शासनदेव को न पूज्य, न मानना' वह सब मिथ्यात्वी है, ऐसा टीका में लिखा है। (भट्टारक) श्रुतसागर। शासनदेव को न माने, वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : श्रुतसागर ने स्वयं लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं लिखा है। वह स्वयं ठिकाने बिना का। क्या हो? ऐसी टीका करनेवाले। माने कौन?

यहाँ तो सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा परद्रव्य हैं। उनकी मान्यता भी विकल्प है, परन्तु जब तक पूर्ण वीतरागता आत्मा को न हो, तब अपने द्रव्य के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, तब ऐसे विकल्प आये बिना नहीं रहते परन्तु हैं वे पुण्यबन्ध का कारण। भगवान की श्रद्धा भी पुण्यबन्ध कारण है, अबन्ध का कारण नहीं। आहा..हा..!

भगवान आत्मा... कल दोपहर को आया था न? कि यह आत्मा, जो आस्रव और बन्धभाव है। आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प। बन्ध अर्थात् वहाँ उतना अटका है न? तो वह आस्रव और बन्धभाव से भगवान आत्मा रहित है। क्योंकि आस्रव और बन्धतत्त्व दो भिन्न तत्त्व हैं और आत्मा भिन्न तत्त्व है तथा अजीव कर्म का उदय भी अजीवतत्त्व भिन्न है, तो अजीवतत्त्व कर्म का उदय, वह भिन्न तत्त्व है और पुण्य-पाप के विकल्प होना और अटकना, वह भावबन्ध और आस्रव भिन्न तत्त्व है और उनसे रहित ज्ञायकतत्त्व भिन्न तत्त्व है। ऐसे ज्ञायकतत्त्व का जब भान हुआ तो वह ज्ञायकतत्त्व तो

आस्रव-बन्ध से रहित है। समझ में आया ? आस्रव-बन्ध से रहित है अर्थात् अबन्धस्वरूप है। ऐसे अबन्धस्वरूप की दृष्टि हो, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा.. ! तब बन्ध और आस्रव का उसे ज्ञान होता है कि थोड़ा राग है। परमसत्य परमेश्वर.. आहा..हा.. !

यह कहा न ? कि यहाँ तो यह कहते हैं कि अजीव, आस्रव, बन्ध और जीव। बस, पहले चार लो। क्योंकि संवर, निर्जरा और मोक्ष तो निर्मल पर्याय है। अब यहाँ चार बोल लिये कि कर्म आदि अजीव हैं। समाप्त। तो अजीव, अजीव में रहा, बस और अपने पुण्य-पाप का विकल्प हुआ तो वह आस्रव है। नया आया, अन्दर है नहीं और आस्रव में थोड़ी देर रुका, उस समय इतना रुका न ? उसका नाम भावबन्ध है, तो द्रव्यबन्ध कर्म का, भावबन्ध यह और आस्रव, इतन तीनों से ज्ञायकतत्त्व तो रहित है। ऐसे आत्मा की प्रतीति हो, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा.. ! तब...

दूसरा कहना था कि भावबन्ध और द्रव्यबन्ध। भावबन्ध मलिन पर्याय; द्रव्यबन्ध जड़ की पर्याय, उनसे रहित आत्मा है। सहित हो, तब तो सब एक हो जाये। आहा..हा.. ! समझ में आया ? उनसे रहित है, तो जहाँ रहित है, ऐसा भान हुआ तो उसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा अबन्धस्वरूप है। उसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा बन्धसहित नहीं है, वह तो मुक्त है। आहा..हा.. ! भीखाभाई ! ऐई ! देवानुप्रिया ! आहा..हा.. ! ऐसा मार्ग है, लो ! लॉजिक से बैठे ऐसा है। आहा..हा.. ! इसमें पक्ष और वाद-विवाद को स्थान कहाँ है ? आहा..हा.. !

भगवान ! नवतत्त्व हैं या नहीं ? तो नवतत्त्व में तू ज्ञायकतत्त्व आठ में मिल गया है ? मिल गया हो तो नवतत्त्व रहे कहाँ से ? संवर, निर्जरा, मोक्ष एक ओर रखो और पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध और अजीव, वह तत्त्व है। उनसे यह ज्ञायकतत्त्व तो भिन्न है। भिन्न है, इसका अर्थ कि आत्मा अबन्ध तत्त्व है। अनास्रवी तत्त्व है, उसमें आस्रव है नहीं। वह तो अबन्ध तत्त्व और अनास्रवी तत्त्व है। आहा..हा.. ! ऐसी दृष्टि हो तो संवर, निर्जरा होती है और ऐसी पूर्ण निर्मलता हो तो मोक्ष होता है, यह नवतत्त्व की व्याख्या। आहा..हा.. ! कान्तिभाई ! आहा..हा.. !

मुमुक्षु : जल्दी-जल्दी मोक्ष जाना है न तो जल्दी-जल्दी फरमावे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहा। नवतत्त्व है या नहीं ? तो पहले संवर, निर्जरा, मोक्ष तो अनादि से है नहीं। अब है तो दूसरे चार तत्त्व रहे। अब अजीव, वह तो कर्म है। अजीव है, वह अपने में आता नहीं। उस अजीवरूप आत्मा है नहीं, एक बात। पुण्य-पाप के

विकल्प उठते हैं, वे तो आस्रव हैं। आस्रव, आत्मा में आता नहीं। आस्रवरूप आत्मा होता नहीं क्योंकि वह तो ज्ञायकतत्त्व है। भावबन्ध (अर्थात्) अटकना, थोड़ा रुकना, यह रुकना, वह भावबन्ध है। उस भावबन्ध से तो रहित आत्मा है। रुकना वह स्वभाव में है नहीं।

आस्रव, भावबन्ध और द्रव्यबन्ध। द्रव्यबन्ध अजीव। भावबन्ध जीव की विकारी पर्याय में अटकना; आस्रव जीव की पर्याय नहीं थी और उत्पन्न हुई, उससे तो भगवान रहित है, वरना ज्ञायकतत्त्व सिद्ध कैसे होगा? आहा..हा..! रहित है तो उसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा अनास्रवी और अबन्धस्वरूपी है। ऐसे अनास्रवी और अबन्धस्वरूप की दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह तो **जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं** आया न? **जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं** आहा..हा..! आचार्यों की कथनी, दिगम्बर सन्तों की कथनी अलौकिक शैली.. अलौकिक शैली!! ओहो..हो..! केवलज्ञान के पथानुगामी। केवलज्ञान होने का मार्ग कर रखा है। इस मार्ग से जा, तुझे केवलज्ञान होगा। कहाँ? कि भगवान पूर्णानन्द प्रभु है वहाँ।

अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण 'अशुद्धजीव' है। यह क्या कहते हैं? कि जिसे कारणशुद्ध जीव त्रिकाली द्रव्य है, उसका भान हुआ, तो उसे कार्य ऐसा हुआ, उसका भान हुआ और अशुद्धता बाकी है, उसका भी श्रुतज्ञान होता है। समझ में आया? **शुद्ध निश्चय से सहजज्ञानादि परमस्वभाव गुणों का आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** अब जीव आया। त्रिकाली भगवान आत्मा ध्रुव। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। उत्पाद-व्यय निकालकर अकेला ध्रुव। ध्रुव कैसा है? वह तो शुद्धनिश्चय हुआ। त्रिकाली कायम रहनेवाला है, इसलिए शुद्ध, पवित्र है; इसलिए शुद्ध और त्रिकाली ऐसा का ऐसा रहता है, इसलिए निश्चय। सहज ज्ञानादि अनन्त स्वभाव। ज्ञान-दर्शन-आनन्द। परमस्वभाव के गुण त्रिकाली। अपने **परमस्वभाव गुणों का आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** उस द्रव्य को कारणशुद्ध जीव कहा जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी धर्म देशना कैसी? हरितकाय नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन का त्याग करना, ऐसा त्याग करना, वह तो एक घण्टे में इसमें कहीं आया नहीं! ऐसे तो सब आया। राग भी तेरा नहीं। तेरी दृष्टि में राग छोड़ दे, ऐसा कहना है। पर का ग्रहण-त्याग तो तुझमें है नहीं, वह तो अजीवतत्त्व भिन्न है। उसे छोड़ना-ग्रहण

करना, वह तो तुझमें है नहीं और उसे छोड़ना, ग्रहण करना ऐसा विकल्प आवे, वह भी तेरा नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पहले से ही छूटा हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूटा ही है। आहा..हा..! समझ में आया? गजब, भाई! ऐसा मार्ग, यह इसमें है या नहीं? इसमें है, उसका अर्थ होता है। उसमें गन्ध है तो सुगन्ध आती है। आहा..हा..! परमागम। निहालभाई कहते हैं न कि परमागम में ध्यान रखकर पढ़े तो पद-पद में अमृत की बूँद झरती है। एक ओर ऐसा कहते हैं कि भाई! व्यभिचार है और एक ओर (अमृत कहते हैं)। भाई! किस अपेक्षा से है, वह समझना चाहिए न।

मुमुक्षु : स्वरूप में न रह सके, तब उस प्रकार का व्यवहार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : और उस आत्मा पर उसका लक्ष्य रखकर सब होता है। इसलिए उसमें तो एकाग्रता बढ़ती है, ऐसा कहते हैं। धर्मी को चाहे तो वाँचन, श्रवण, मनन हो परन्तु अन्तरसन्मुख की दृष्टि है, वहाँ एकाग्रता शक्ति बढ़ती है। आहा..हा..! लो, इतनी बात हुई। कारणशुद्ध जीव त्रिकाली द्रव्य है, उसका आश्रय लेता है, अवलम्बन लेता है और ध्यान करता है तो कार्यशुद्ध जीव होता है। उसका दूसरा कोई उपाय है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१४, गाथा-९, रविवार, फाल्गुन कृष्ण ३, दिनांक १४-०३-१९७१

यह नियमसार जीव अधिकार चलता है। नौवीं गाथा। जीव क्या है, उसकी बात चलती है। यहाँ आया है। **शुद्ध निश्चय से सहजज्ञानादि परमस्वभाव गुणों का आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** २२वाँ पृष्ठ है, अन्तिम लाईन। अन्तिम लाईन है न? जरा सूक्ष्म विषय है। सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा तीर्थंकरदेव जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे, उसमें यह छह द्रव्य का ज्ञान भगवान को हुआ। जगत में छह द्रव्य हैं। जाति से छह द्रव्य हैं। संख्या से अनन्त हैं। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश—ऐसे छह द्रव्य भगवान तीर्थंकर परमेश्वर ने देखे हैं। उनमें जीवतत्त्व कैसा है, यह बात चलती है।

यह आत्मा जो है, आत्मा कहो या जीव कहो। कारणजीव उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति-वीतरागता, ऐसे स्वभाव का आधार, ऐसे त्रिकाली गुणों का आधार जो जीवतत्त्व है, उसे यहाँ कारणजीव कहा जाता है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी, मोक्षमार्ग है न? तो सम्यग्दर्शन की पहली उत्पत्ति होनी चाहिए। वह सम्यग्दर्शन किससे होता है? त्रिकाली ज्ञायक चैतन्य कारणजीव, ध्रुवस्वभाव, नित्य स्वभाव के सन्मुख होकर अन्तर में एकाग्रता करके, अनुभव होकर प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना कोई भी क्रिया हो, वह सब निरर्थक है। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, ये सब पुण्यभाव, शुभभाव हैं; वे धर्म नहीं हैं।

मुमुक्षु : पुण्यभाव है, वहाँ तक तो ठीक परन्तु धर्म नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म नहीं, इसका अर्थ क्या? पुण्यभाव है तो धर्म नहीं। पण्डितजी! इसमें क्या? यह तो अस्ति-नास्ति से बात हुई। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक देखे, उन भगवान की वाणी आयी, उस वाणी को आगम कहते हैं। उस आगम में जीव का ऐसा स्वरूप वर्णन किया है।

भगवान आत्मा शरीर, कर्म, इस क्रिया से तो भिन्न है और अन्दर पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, उनसे भी यह भगवान आत्मा तो भिन्न है। इतना तो नहीं परन्तु उसकी एक समय की पर्याय-अवस्था है, उससे भी भिन्न चैतन्य कारणजीव है। समझ में आया? एक समय की अवस्था वह तो व्यवहार आत्मा है, पण्डितजी! व्यवहार आत्मा कहाँ से आया? एक समय की अवस्था, वह व्यवहार आत्मा, अभूतार्थ आत्मा है; सत्यार्थ नहीं। आहा..हा..! त्रिकाल ज्ञायक चैतन्यमूर्ति भगवान, जिसमें शुद्ध निश्चय से-स्वभाव शुद्ध है और निश्चय सत्य त्रिकाल है। सहजज्ञान, स्वाभाविक अन्तर ज्ञान, ध्रुवज्ञान, स्वाभाविकआनन्द, स्वाभाविकदर्शन, स्वाभाविकवीर्य आदि **परमस्वभाव गुणों का आधार...** ऐसे परमगुण, शक्तियाँ कहो या गुण कहो। ऐसी ध्रुवशक्तियों का **आधार होने के कारण... आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** कहो, सेठी! कारणशुद्ध जीव क्या कहा? जीव में कारणशुद्ध जीव और कार्यशुद्ध जीव। आहा..हा..!

भगवान आत्मा, एक ही यह आत्मा, एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में अनन्त ज्ञान, बेहद शक्तियाँ जो अनन्त गुण हैं, वे आधेय हैं और आत्मा आधार है। वह आधार-आधेय का भेद छोड़कर त्रिकाली कारणस्वभाव जो आत्मा है, उसे कारणजीव कहा जाता है। उस कारणजीव के आश्रय से, अवलम्बन से सम्यग्दर्शन आदि धर्म की पर्याय होती है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! अभी तो यह बाहर से ऐसा करो और वैसा करो, पण्डितजी! आहा..हा..!

मुमुक्षु : सब गोल-गोल बात हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : गोल-गोल बात क्या हुई? अभी स्पष्ट नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। ऐसे तो स्पष्ट बात आयी कि जिसे अपने धर्म की दशा प्रगट करनी हो, धर्म एक दशा है, अवस्था है, धर्म कोई त्रिकाली गुण नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... यहाँ मोक्षमार्ग अधिकार है न? तो सम्यग्दर्शन अन्तर में वीतरागी पर्याय श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र, ये तीनों वीतरागी पर्याय हैं, वह मोक्ष का मार्ग है। वह वीतरागी पर्याय उत्पन्न कहाँ से होती है? कि व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति करने से वह पर्याय उत्पन्न होती है?

मुमुक्षु : क्यों नहीं होती?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होती। वह तो राग है। सम्यग्दर्शन पर्याय उत्पन्न करने की सामर्थ्य राग में नहीं है। शुकनचन्दजी! भारी सूक्ष्म आया।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह अहिंसा। इसका नाम अहिंसा। अपना स्वभाव त्रिकाली शुद्धकारण जीव है, उसका आश्रय लेकर वीतरागी पर्याय प्रगट हो, उसे अहिंसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : दया, दान को हिंसा कहने में आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दया, दान के विकल्प तो राग हैं।

मुमुक्षु : उन्हें हिंसा कहने में आता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग कहो या हिंसा कहो, एक ही बात है। मार्ग तो वीतराग का मार्ग है यह। कोई कल्पना से कहे कि ऐसे सुधार करो, ऐसे करो, वैसे करो, वह मार्ग

वीतराग का नहीं है। भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि में जो आगम आये, उन आगम में छह द्रव्य कहे। उन आगम में जीव को त्रिकाली शक्तिवन्त जीव को कारणजीव कहा है। समझ में आया? कारणजीव क्यों कहा? (इसलिए) कि उसके आश्रय से अन्तर्दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों, अन्तरवस्तु जो त्रिकाली आत्मा है, उसके आश्रय से मोक्षमार्ग की उत्पत्ति होती है। आहा..!

मुमुक्षु : अहिंसा की बात तो हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयम वह। अहिंसा का अर्थ क्या? रागरहित अपनी दशा प्रगट करना, वह अहिंसा है। संयम का अर्थ यह है। विकल्प का त्याग करके निर्विकल्प आनन्द की उग्र दशा प्रगट होने का नाम संयम है।

मुमुक्षु : तप?

पूज्य गुरुदेवश्री : तप अर्थात् इच्छा का नाश करके अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र शोभा होना, उसका नाम तप है।

मुमुक्षु : आपकी सब व्याख्या अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की व्याख्या ही अलग है। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की व्याख्या है। यह किसी के घर की व्याख्या नहीं है। समझ में आया? तपन्ति इति तपः। जिस प्रकार स्वर्ण को गेरु लगाते हैं न? गेरु कहते हैं न? लाल गेरु होती है न? वह गेरु लगावे तो सोने की शोभा होती है। ओपिक-शोभिक। इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त आनन्द ज्ञान-दर्शन का पिण्ड प्रभु आत्मा है। उसके आश्रय से वीतराग की निर्मल निर्दोष अमृत दशा उत्पन्न होना, इसका नाम परमेश्वर सच्चा तप कहते हैं। यह धम्मो मंगलं... आहा..हा..! ऐसा इसका अर्थ है। भाई! दिगम्बर में ऐसा आता है। यह तो श्वेताम्बर के दशवैकालिक की गाथा है परन्तु दिगम्बर में यह गाथा है। किसी के घर की नहीं। दिगम्बर में यह है। सनातन गाथा अनादि की है।

मुमुक्षु : दिगम्बर में से श्वेताम्बर में जोड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर में से श्वेताम्बर ने ले ली है।

मुमुक्षु : चोरी का माल।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। सनातन जैनदर्शन दिगम्बर सनातनदर्शन था। समझ में आया? दुष्काल पड़ा, उसमें से श्वेताम्बर पन्थ निकला है। वह सनातन पन्थ नहीं है। अर्वाचीन है, प्राचीन नहीं। पण्डितजी! बात तो ऐसी है। अर्वाचीन, प्राचीन तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, ऐसे अन्तर के धर्म मंगलं... धर्म वह उत्कृष्ट मांगलिक है। उसकी व्याख्या? हिंसा...

भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान का आधार कारणजीव है। शुद्ध, शुद्धध्रुव। उसमें एकाग्र होकर वीतरागी निर्दोष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति की उत्पत्ति हो, उसका नाम अहिंसा है। राग की उत्पत्ति हो, उसका नाम हिंसा है। बहुत सूक्ष्म बात है। लोगों को वीतराग का मूल पन्थ, सर्वज्ञ का मूल मार्ग हाथ में आना बहुत मुश्किल है। समझ में आया? सनातन अनादिमार्ग वीतराग का है। अन्तर में से सनातन भगवान आत्मा, कारणशुद्ध जीव यहाँ कहा न? कारणशुद्ध जीव ध्रुव, नित्यानन्द प्रभु, 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' यह बनारसीदास में आता है। बनारसीदास, यह समयसार नाटक दोपहर को चलता है न?

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ॥
ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग, वेगि मिटै भववास बसेरौ॥

यह बनारसीदास के समयसार नाटक की कड़ी है। समयसार की, हों! सब समयसार में से लिया है। **चेतनरूप**—मैं तो चैतन्य ज्ञान का रूप-स्वरूप हूँ। **चेतनरूप अनूप**—मेरे अन्तर आनन्द ज्ञानस्वरूप को कोई उपमा नहीं है। इसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। **चेतनरूप अनूप अमूरति,** इसमें कोई रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है—ऐसा मैं आत्मा, **सिद्धसमान सदा पद मेरौ।** जैसे सिद्ध भगवान—णमो सिद्धाणं—सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही मेरा स्वरूप है। समझ में आया? सिद्ध भगवान में पुण्य-पाप, विकल्प राग आदि नहीं हैं। समझ में आया? ऐसा मैं सिद्धसमान ज्ञायकभाव, शुद्ध, सत्, शाश्वत् आनन्द आदि गुणों के आधाररूप आत्मा हूँ। उसका आश्रय लेकर; संयोगी चीज़ राग और अल्पज्ञ पर्याय की उपेक्षा करके, त्रिकाली कारणजीव की अपेक्षा आश्रय में लेकर, अन्तर में जो निर्दोष वीतरागी दशा उत्पन्न होती है, उसे अहिंसा, संयम, तप, इन तीनों को कहते हैं। पर

की दया का भाव, वह तो विकल्प / राग है। इन्द्रियों का दमन करना, वह भी एक विकल्प है। समझ में आया? छह काय की दया पालने का भाव, वह भी एक विकल्प है, राग है। आहा..हा..! समझ में आया?

परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं, ऊपर आया है। भगवान की मुख्य वाणी में ऐसा आया है, प्रभु! तेरी चीज़ तो अन्दर में कारणशुद्ध जीव त्रिकाली ध्रुव पड़ी है। आत्मा का त्रिकाली स्वभाव, वीतराग निर्दोष आनन्दकन्द है। ध्रुव, ध्रुव को ध्येय बनाकर वर्तमान दशा में जो ध्रुव में से वीतरागी दशा प्रगट हो, जिसमें राग के अंश का साथ नहीं, मदद नहीं - ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपने स्वभाव के आश्रय से प्रगट हों, उसे अहिंसा कहते हैं, उसे संयम कहते हैं, उसे तप कहते हैं। व्याख्या ऐसी है, भाई! कठिन है। जगत को क्या कहें? अपूर्व बात अनन्त काल में इसने सुनी नहीं। कहते हैं, कारणशुद्ध जीव है, उसमें से कार्यशुद्ध जीव प्रगट होता है।

मुमुक्षु : ....तो कठिन कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है ही नहीं। कभी सुना ही नहीं, इसलिए कठिन है। जयपुर में क्या सुना था?

मुमुक्षु : नहीं बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं बोले। सुनते नहीं, ऐसा कहेंगे।

मुमुक्षु : सुना हो तो भी बोले नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : तो यह बात कठिन कैसे है? अनन्त काल से दुर्लभ सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी इसे खबर नहीं है। बारह भावना में आता है या नहीं? बोधिदुर्लभ भावना। बोधिदुर्लभ भावना, तो बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को बोधि कहते हैं। वह बोधि अनन्त काल में कभी भी एक सेकेण्ड भी उत्पन्न नहीं की। जैन साधु दिगम्बर अट्ठाईस मूलगुण पालन कर नग्न होकर अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, वह धर्म नहीं है। समझ में आया? पुण्यक्रिया से वह स्वर्ग में गया। 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछे पटक्यो' शुकनचन्दजी! ऐसा आता है।

दुकान पर थे तब मैने पढ़ा था। (संवत्) १९७० के वर्ष पहले दुकान पर (पढ़ा

था)। वह पुस्तक यहाँ है, चार सज्झायमाला है। श्वेताम्बर की चार सज्झायमाला है। एक-एक सज्झायमाला में दो सौ-तीन सौ-चार सौ सज्झाय है, ऐसे चार भाग हैं। यहाँ है। एक भाग नहीं आया। मैंने तो दुकान पर चारों भाग देखे थे। पालेज में हमारे पिताजी की घर की दुकान थी। मैंने तो चारों भाग देखे थे। उसमें उस समय यह आया था। खबर है। 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछे पटक्यो' जेठाभाई! द्रव्य संयम अर्थात्? आत्मा क्या चीज़ है, उसकी अनुभवदृष्टि सम्यग्दर्शन बिना ऐसी पंच महाव्रत आदि की क्रिया अनन्त बार हुई, वह द्रव्यसंयम है, भावसंयम नहीं। जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : संयम के भी दो भाग।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, संयम के भी दो भाग। द्रव्यसंयम, भावसंयम। समकित के दो भाग, व्यवहार समकित, निश्चय समकित। चारित्र के दो भाग, द्रव्यचारित्र, भावचारित्र; व्यवहारचारित्र, निश्चयचारित्र। प्रत्येक के दो-दो भाग हैं। तप में व्यवहार तप और निश्चय तप। प्रत्येक में द्रव्य और भाव। व्यवहार-निश्चय... व्यवहार-निश्चय है। भगवान का मार्ग गम्भीर है, प्रभु! ऐसे मिल जाता होता तो अनन्त काल में क्यों नहीं मिला? आहा..हा..! महाव्रत का आचरण भी अनन्त बार किया। सुना है न, देखो! छहढाला में आता है।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।'

इसका अर्थ भाई यह करते हैं, वह अभव्य मिथ्यादृष्टि थे, ऐसा अर्थ करते हैं। यह तो गजब करते हैं न! अभी ही जैनगजट में आया है। वह तो अभव्य मिथ्यादृष्टि की बात है। अरे! भव्य मिथ्यादृष्टि अनन्त बार (नौवें ग्रैवेयक गया है।) सुन तो सही। नौवें ग्रैवेयक इकतीस सागर की स्थिति में अनन्त बार भव्य-अभव्य उत्पन्न हुए हैं। नौवें ग्रैवेयक।

ग्रीवा (गर्दन) के स्थान में चौदह राजू लोक खड़े पुरुष के आकार में हैं। उसकी ग्रीवा के स्थान में नौ पासड़ा है। नौवें ग्रैवेयक की अन्तिम ग्रैवेयक में इकतीस सागरोपम की स्थिति है, वहाँ भी अनन्त बार भव्य जीव भी अनन्त बार गया। अभव्य तो बहुत कम हैं। समझ में आया? अनन्त-अनन्त सागरोपम ऐसे पुद्गलपरावर्तन किये हैं। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। साधु, दिगम्बर मुनि (होकर) पंच महाव्रत (पालन किये परन्तु) अन्तर आत्मा क्या? अनुभव क्या? सम्यग्दर्शन (क्या)? (इसकी खबर बिना) वह राग से धर्म

मानता था। क्रियाकाण्ड, वह धर्म है, उससे मुझे धर्म होगा। मिथ्यादृष्टि होकर, पुण्य के कारण स्वर्ग में गया। फिर वापस गिरा। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि। उल्टे उसमें धर्म माना। पुण्य की क्रिया है, वह तो राग की (क्रिया है)।

मुमुक्षु : शास्त्रों का अर्थ उलटा....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे नहीं तो क्या करे? अन्तर की दृष्टि बिना उस बात का अर्थ वह (समझ नहीं सकता)।

मुमुक्षु : उसके मस्तिष्क में श्वेताम्बर शास्त्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह श्वेताम्बर का कहता है। श्वेताम्बर परन्तु उसके वास्तविक अर्थ को नहीं समझते।

मुमुक्षु : अहिंसा, संयम और तप का अर्थ आपने बतलाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है उसमें। परन्तु उसमें नहीं, लेखन में नहीं, खबर है। उसका ऐसा अर्थ नहीं करते। हमारे गुरु थे वे भी ऐसा अर्थ करते थे - पर की दया पालना, वह अहिंसा। इन्द्रियों को रोकना, वह संयम। उपवास करना, वह तप। हमारे गुरु थे हीराजी महाराज, बहुत शान्त थे, कषाय बहुत मन्द थी, दृष्टि / तत्त्व की खबर नहीं थी, बहुत ही मन्द कषाय थी, उनके लिये चौका बनाकर आहार-पानी बनाया हो तो प्राण जाये तो भी न ले। चौका तो कहाँ से परन्तु खबर पड़े कि हमारे लिये गर्म पानी किया है। साधु के लिये जग में गर्म (पानी रखा हो तो) ले नहीं। पानी गर्म किया हो वह न ले। (क्योंकि) हमारे लिये किया है। एक बूँद में असंख्य जीव हैं। पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं। प्राणी हिंसा। ऐई! धीरुभाई! तुम्हारे गाँव को नापानियो किया था। वहाँ पानी बनाते नहीं नागनेशवाले। वे फिर मुनि आये थे कि यह नापानिया गाँव है। हीराजी महाराज जहाँ जायें, वहाँ उनके लिये पानी बनाया हो (गर्म किया हो) तो लें नहीं। ऐसी क्रिया थी परन्तु वह मिथ्यादृष्टि। दृष्टि ही मिथ्यात्व थी। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, धम्मो मंगलं की व्याख्या ही यह है।....जिसे आत्मा आनन्द और

ज्ञानस्वरूप में धर्मबुद्धि है, उसे तो देव भी नमन करते हैं। मनुष्य की तो बात क्या? ऐसा कहते हैं... धर्म क्या चीज़ है? धर्म तो अलौकिक आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति-वीतरागदशा उत्पन्न हो, वीतरागीस्वभाव के कारण में से (वीतरागी दशा उत्पन्न हो, वह धर्म है)। भगवान आत्मा वीतरागीस्वरूपी त्रिकाल है। उस कारण जीव का आश्रय करने से वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हों), वही संयम, तप और अहिंसा है। समझ में आया?

'**कारणशुद्ध जीव**'... लो, कितना कारणशुद्ध जीव में पड़ा है! ओहो..हो..! अब कहते हैं कि **यह (जीव) चेतन है;...** आत्मा चेतन है, तो **इसके चेतन गुण हैं।** ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वे चेतन गुण हैं। चेतन के चेतन गुण हैं। **यह अमूर्त है;...** भगवान आत्मा अमूर्त है। दूसरे (द्रव्य) भी अमूर्त हैं। **यह अमूर्त है; इसके अमूर्त गुण हैं।** आत्मा अरूपी है, अमूर्त है, तो ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वे भी अमूर्त हैं। गुणी अमूर्त है तो गुण भी अमूर्त है। आहा..हा..! **यह शुद्ध है;...** उसके गुण शुद्ध हैं। जो आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु है तो उसके गुण भी शुद्ध हैं।

यह अशुद्ध है; इसके अशुद्ध गुण हैं। जिसकी दृष्टि में आत्मा का भान नहीं हुआ और पुण्य-पाप के विकल्प में धर्म मानता है, वह जीव अशुद्ध है। उसके गुण भी अशुद्ध हैं। यहाँ गुण शब्द से (आशय है) पर्याय। आहा..हा..! समझ में आया? उसके अशुद्ध गुण हैं। **पर्याय भी इसी प्रकार हैं।** क्या कहते हैं? भगवान के आगम में ऐसा आया कि भगवान आत्मा वस्तुरूप से शुद्ध है, उसके गुण भी शुद्ध हैं और उसके आश्रय से निर्मल वीतरागी पर्याय हो, वह भी शुद्ध है। समझ में आया?

सामायिक किसे कहते हैं, उसकी खबर नहीं कि इस सामायिक की बैठक में बैठ जाये और दो घड़ी णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं (करे), लो! अरे भाई! सामायिक तो, एक सेकेण्ड की सामायिक जन्म-मरण का नाश कर डाले, उसका नाम सामायिक है। पहले सम्यग्दर्शन की सामायिक बिना सम्यग्ज्ञान की सामायिक नहीं होती और स्वरूप की स्थिरता की सामायिक नहीं होती। आहा..हा..! यह कहते हैं, देखो!

शुद्धपर्याय। भगवान आत्मा शुद्ध गुण है, द्रव्य शुद्ध है, त्रिकाली द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है तो उसकी पर्याय भी शुद्ध है। निर्मल दशा, निर्दोष दशा, वह पवित्र शुद्ध है। समझ

में आया ? सामायिक इत्यादि भाव है, वे आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुए हों, वह सामायिक और वह पर्याय शुद्ध है। समझ में आया ? यह जीव की व्याख्या हुई।

मुमुक्षु : द्रव्य को शुद्ध कहा और गुण को अशुद्ध कहा, वह किस प्रकार से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय कही। गुण तो अशुद्ध कहाँ है ? पर्याय की अपेक्षा से अशुद्ध कहा जाता है।

ऐसे जीव का ज्ञान भगवान ने कहा, ऐसा इसे जानना चाहिए। परमेश्वर ने कहा वैसा कारणजीव, गुण और निर्मल पर्याय, जो उसके आश्रय से उत्पन्न हो, उन तीन को शुद्ध कहते हैं - ऐसा जानना चाहिए। परन्तु वह पर्याय कारणजीव से उत्पन्न होती है। समझ में आया ? आहा..हा..! अपूर्व मार्ग है, भगवान! साधारण मार्ग हो तो नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया है। ओहो..हो..! चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध नहीं किया, ऐसी क्रिया अनन्त बार की है। वह कोई धर्म नहीं है। वह तो पुण्य का, क्षमा का विकल्प है; धर्म तो भगवान शुद्ध चैतन्य कारणपरमात्मा तो अपना स्वभाव पूर्ण ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, उसके अवलम्बन से जो निर्मलता प्रगट हो, उसे भगवान धर्म और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। यह बाहर में पूरी प्रथा ही अभी गुम हो गयी है। समझ में आया ? उसने लिखा, कल कहा न ? अमरचन्द नाहटा है न कोई ? नग्नपने का आग्रह किया तो हमारे आगम माने नहीं, ऐसा लिखा है। वह सब झूठ है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण जिसे प्रगट आनन्द हुआ हो, ऐसे मुनि को नग्नदशा सहज हो जाती है। समझ में आया ? यह तो अनादि वीतराग का मार्ग है। वस्त्र रखे और अन्दर में मुनिपना हो जाये, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई! पक्षपात की बात लिखो तो वह नहीं चलता। भाई ने उसमें लिखा है, देखो!

भगवान! ३२-४५ आगम में तो इतनी विरुद्धता है कि उनके वाँचनकार ने भी उसमें से विरुद्धता निकाली है। समझ में आया ? भगवान के मार्ग में तो अनादि से (यह चलता है)। अन्तर आत्मा के आनन्द का अनुभव करके जो चारित्र का प्रगट प्रचुर स्वसंवेदन हुआ, उसे वस्त्र और पात्र रखने की वृत्ति नहीं होती। समझ में आया ? जिस आगम में वस्त्र-पात्र रखकर साधु मनवाते हैं, वह आगम ही नहीं है। वह भगवान के आगम नहीं हैं। यहाँ तो यह बात है।

मुमुक्षु : परिग्रह रखे वह साधु नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो परिग्रह है - वस्त्र-पात्र तो परिग्रह है। वस्त्र का एक टुकड़ा रखे और मुनि माने, मुनि मनावे, वह निगोद में जायेगा - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने अष्टपाहुड़ में लिखा है। आहा..हा..! मार्ग तो अनादि से ऐसा है। किसी का कल्पित नहीं है, परन्तु वह मात्र बाहर की चीज़ नहीं है; अन्तर में अनुभव होना चाहिए। अन्दर के आनन्द की दशा बिना बाहर की नग्नदशा को निमित्त भी नहीं कहा जाता। अन्तर के आनन्द की दशा प्रगट होकर जहाँ अन्दर में से वीतरागता का पूर आया, उसे वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प ही नहीं होता, ऐसी पक्की श्रद्धा करो। समझ में आया? इसका नाम अन्दर मुनिपना-भावलिंग प्रगट हुआ हो, उसका द्रव्यलिंग नग्न ही होता है। वस्त्र-पात्र रखे और मुनि माने, वह जैनमार्ग में नहीं है, वह वीतरागमार्ग में नहीं है। पण्डितजी! किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं करना। आत्मा है। कोई व्यक्ति हो, माने विपरीत, परन्तु उसका द्वेष नहीं करना। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....परीषह सहन करता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सहन करना ही नहीं, वह तो ज्ञाता-दृष्टा हो गया है। परीषह आता है, उसे जानता है। आनन्द में रहकर जानता है। ऐसी चीज़ है, भाई! साधुपद तो कोई अलौकिक चीज़ है। जिसे गणधर नमस्कार करे, वह साधुपद लोगों को ख्याल में ही नहीं आया, बापू! आहा..हा..! यहाँ तो पहले यथार्थ सम्यग्दर्शन करो। सम्यग्दर्शन के बिना साधुपना या कोई व्रत, नियम नहीं होते। समझ में आया? आहा..हा..! यह जीव की बात की।

अब पुद्गल की (बात करते हैं)। भगवान ने पुद्गल देखे हैं। यह जड़-पुद्गल है। यह शरीर, वाणी यह सब, पैसा-लक्ष्मी, मकान पुद्गल है, जड़ है, अजीव है। यह शरीर अजीव होकर रहा है या जीव होकर रहा है? यह तो मिट्टी है। वाणी निकलती है, वह भी अजीव है। आत्मा में से नहीं निकलती। वाणी आत्मा में से नहीं निकलती। आत्मा में वाणी कहाँ है? वाणी तो पुद्गल है। आहा..हा..! मैं बोलता हूँ, मैं ऐसा करता हूँ, वह पुद्गल का स्वामी होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। अजीव को जीव माने, ऐसी भाषा बोले। आता है या नहीं? अजीव को जीव माने। पच्चीस (प्रकार के) मिथ्यात्व। कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व; साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व; मार्ग को कुमार्ग माने तो मिथ्यात्व;

कुमार्ग को मार्ग माने तो मिथ्यात्व, ऐसा बोले। (कुमार्ग को) मोक्षमार्ग माने तो मिथ्यात्व, यह बोले।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है तो वही मानता है। आहा..हा..! श्वेताम्बर के पंचम श्रमणसूत्र में तो ऐसा आता है। पंचम श्रमणसूत्र है। अपने दिगम्बर में भी आता है। परन्तु वह... प्रतिक्रमण का सूत्र है। यहाँ तो सब पुस्तकें हैं न? हजारों। श्वेताम्बर-दिगम्बर की पुस्तकें हैं। दिगम्बर में भी प्रतिक्रमण सामायिक है, परन्तु बाहर में बहुत प्रचलित नहीं है। उसमें पाँचवें श्रमणसूत्र में तो ऐसा आया है, विचतं परिणामी शाम सबेरे बोले। पाँचवाँ श्रमणसूत्र है। मिथ्यात्व को त्याग करता हूँ, समकित को (ग्रहण करता हूँ) परन्तु मिथ्यात्व और समकित क्या है, उसकी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : भगवान को मानना वह समकित।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को मानना, नवतत्त्व को मानना, वह समकित। अरे! चल.. चल.. ऐसी मान्यता तो अभव्य भी करता है। यह मान्यता नहीं। अभव्य का बाप है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं कि जिसकी श्रद्धा यथार्थ नहीं है—भगवान को आहार मानता है, भगवान को कवलाहार मानता है, वह अभव्य है, ऐसा कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य नग्न दिगम्बर मुनि जंगलवासी थे। संवत् ४९ में भगवान के पास गये थे, वर्तमान में सीमन्धर परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजमान हैं। वहाँ गये थे और वहाँ से आकर ये सब शास्त्र बनाये हैं। ऐसी बात इनमें लिखी है। समझ में आया? पुद्गल भाषा, आत्मा की नहीं। शरीर, आत्मा का नहीं। शरीर की गति होती है, वह जड़ की गति है, आत्मा की गति नहीं।

मुमुक्षु : यह तो मर जाये तब न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यहाँ जीवते जीव में यह कहाँ है? भाषा तो जड़ है।

मुमुक्षु : अभी यह शरीर....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी यह मृतक कलेवर है। मुर्दा-मुर्दा है। अजीव होकर रहा है या जीव होकर? अजीव तो मुर्दा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : व्यवहार से जीव है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से भी जीव कहाँ? धूल में है। कहो, भीखाभाई! आहा..हा..! जड़-पुद्गल और आत्मा भिन्न क्या है, इसकी खबर नहीं। जहाँ-तहाँ अभिमान (किया) ऐसे पुद्गल, ऐसे पदार्थ। अभी अमरचन्दजी आये थे। कवि है न? उनका लेख ऐसा आया है कि पुद्गल के बिना आत्मा विचार नहीं कर सकता। पुद्गल के आधार बिना संसारी काम नहीं कर सकता। आहा..हा..! वह कुछ कहता न कि हमारे हरजीवनभाई थे न, उसने कहा।

मुमुक्षु : अपनी-अपनी गाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी-अपनी गाते हैं। यह समढियावाले हरजीवनभाई ने (संवत्) २००२ के वर्ष में प्रश्न किया था। महाराज! पैसे के बिना हमारे चले? पैसे के बिना तो अनादि से चल रहा है। यदि पैसा तुम्हारे में घुस जाये तो तुम जड़ हो जाओ। पैसे का तुझमें अभाव है और तेरे भाव में तेरा भाव है।

मुमुक्षु : किसके बिना नहीं चलाया?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार मिथ्यात्व के बिना नहीं चलाया।

मुमुक्षु : अनादि काल से....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि। यह (संवत्) २०१० में वर्ष में कहा था। बोटाद में म्युनिसिपलिटी में व्याख्यान था। ऐ.. शिवलालभाई! खबर है या नहीं? तब इसके पिता ने कहा था। देव-शास्त्र-गुरु शुद्ध। शुद्ध वे पर? तब यह पूछा था। खबर नहीं होती। फिर बाद में कुछ नरम पड़ गया था। यह वस्तु ऐसी है। अबोल वस्तु... अमोल वस्तु। ओहो..हो..! भगवान आत्मा शरीर और वाणी और पैसे बिना ही इसमें निभाया है, क्योंकि इसमें है नहीं। अपने में अपना है और पर का अपने में है नहीं, तो पर के बिना ही निभाया है।

मुमुक्षु : मर्यादित मनुष्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब इसके बिना परद्रव्य की नास्ति है। उसमें ऐसा कहा था। उसके बिना निभाया है। क्या है? आहा..हा..! उसने ऐसा लिखा है, लो, एक अमर भारती आती है न? मासिक पत्रिका आती है। उसमें ऐसा आया है। तत्त्व से बहुत ही

विरुद्ध (लिखा है) और मानता है कि हम बहुत जानते हैं। एक जगह बोले हैं, हों! अलीगढ़ में या कहीं बोले हैं कि दिगम्बर... क्या कहा था? भाई ने कहा नहीं था? वे पण्डितजी आये थे न।

मुमुक्षु : सुहालालजी,

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सुहालालजी पण्डित। उसने कहा था, भाई! श्वेताम्बर वह, फिर दिगम्बर वह मूल मार्ग है। मूल नहीं परन्तु उग्र मार्ग है - ऐसा कुछ था, ऐसी कुछ भाषा थी। दिगम्बर का सर्वोत्कृष्टपना कहा था। वे लोग सामने बैठे हों। यहाँ पुद्गल के खेल बिना। यहाँ परमात्मा तो कहते हैं कि मन, वाणी और देह तो पुद्गल है। उसके बिना ही आत्मा यहाँ है। आत्मा मन का, वाणी का, देह का कुछ नहीं कर सकता। गजब कठिन बात।

मुमुक्षु : परन्तु साहिब पैसे के बिना सब्जी नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में... सब्जी तो पैसे के बिना आती है। जगत से उलटा है, भाई! परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें सौ-सौ इन्द्र पूजते थे, उनकी वाणी में ऐसा आया है। माने, न माने स्वतन्त्र प्राणी है। अनन्त काल से उल्टा तो माना है। (वे) कहते हैं कि पुद्गल के आधार बिना आत्मा सांसारिक कुछ नहीं कर सकता। भगवान कहते हैं कि पुद्गल के आधार बिना ही आत्मा सब कर सकता है। आहा..हा..! समझ में आया?

पुद्गल कैसा है? **गलन-पूरण स्वभावसहित है...** देखो! **(अर्थात्, पृथक् होने और एकत्रित होने के स्वभाववाला है),...** रजकण इकट्ठे हों, भिन्न पड़े, उनका स्वभाव है। वाणी आती है और छूट जाती है, यह पुद्गल का स्वभाव है। आत्मा का स्वभाव नहीं। आत्मा तो जानने-देखनेवाला है। आत्मा बोल नहीं सकता, आत्मा (कुछ) कर नहीं सकता। आहा..हा..! पूरण अर्थात् पृथक् है न? गलन। गलन अर्थात् पृथक् पड़ना, पूरण अर्थात् इकट्ठा होना। यह पुद्गल है। पुद्गल का स्वभाव जड़ का है। लड्डू बनना, रोटी बनना, पानी गर्म होना, साग-भाजी बनना, वह सब पुद्गल का स्वभाव है। पुद्गल से बनता है। कोई आत्मा उसे करता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : कहीं अग्नि बिना साग चढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : अग्नि बिना साग स्वयं से चढ़ती है। साग समझे न ? तरकारी, उसे अग्नि स्पर्श भी नहीं करती। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी स्पर्श नहीं करता। अभाव है। सब्जी भी अपनी पर्याय से चढ़ती है। पुद्गल है न ? पुद्गल कहा न ?

मुमुक्षु : गलन, गलन स्वभावी।

पूज्य गुरुदेवश्री : गलता है, उसमें क्या है ? वह तो उसका स्वभाव है। क्या अग्नि कर सकती है ? उसका आत्मा कर सकता है ? मिथ्याश्रद्धा है। मैं जड़ का कुछ काम कर सकूँ, यह मान्यता मूढ़ मिथ्यादृष्टि जीव की है, वह जैन नहीं है। उसे वीतराग जैन की श्रद्धा नहीं है। बात तो ऐसी है।

यह (पुद्गल) श्वेतादि वर्णों के आधारभूत मूर्त है;... देखो ! यह तो श्वेतादि तो पर्याय है, परन्तु यहाँ लोगों को समझाने के लिये गुण लिया है। पुद्गल में श्वेत / सफेद, नीली अवस्था होती है। उसके **आधारभूत मूर्त है;...** पुद्गल तो मूर्त है, जड़ है। यह वाणी पैसा, दाल, भात, सब्जी, मकान, जवाहरात, इज्जत सब पुद्गल है, जड़ है। आहा..हा.. ! **श्वेतादि वर्णों के आधारभूत मूर्त है; इसके मूर्त गुण हैं।** मूर्त गुण हैं। पर्याय ली है न ? यह परमाणु के गुण हैं। **यह अचेतन है;...** उसके अचेतन गुण हैं। वह तो अचेतन है तो उसके गुण भी अचेतन हैं, पर्याय भी अचेतन है। चेतन की पर्याय चेतन में और अचेतन की पर्याय अचेतन में। कहो, यह पुद्गल की व्याख्या की।

मुमुक्षु : सोनगढ़ का मार्ग ही अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग अलग है। जड़ और चैतन्य दोनों भिन्न हैं। जीव और अजीव दोनों भिन्न हैं। अत: पुद्गल की क्रिया पुद्गल से होती है, आत्मा की क्रिया आत्मा से होती है। आत्मा पुद्गल की क्रिया करे – ऐसा मानता है, वह जड़ का अभिमानी है। मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : आप बोलते तो हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बोलता है ? भाषा बोलती है। आत्मा भाषा में आ गया ? भाषा तो जड़ है। पण्डितजी ! आहा..हा.. ! वह (आत्मा) तो अरूपी है। उसमें तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है ही नहीं।

मुमुक्षु : भाषा को क्या खबर पड़े कि ये पण्डितजी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ खबर है ? यह तो ज्ञान को खबर है। भाषा तो ऐसी निकलती है। स्व-पर जानने की शक्ति आत्मा में है। स्व-पर कथा करने की शक्ति जड़ में है। स्व-पर जानने की शक्ति आत्मा में है और स्व-पर कथा करने की शक्ति जड़ में है।

मुमुक्षु : जीव में नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव में नहीं। आहा..हा..! अभी सुधारने के नाम पर सुधरा हुआ ऐसा हुआ और ऐसे बड़े-बड़े भाषण करे और लोगों का रंजन हो। लोग इकट्ठे हों, हों सब बात मिथ्यात्व की। ओहो..हो..! मिथ्यात्व दृढ़ हो और माने कि हम धर्म कथा करते हैं। पर का कुछ कर सके, ऐसी कथा करता है, वह तो दंसणभेद की कथा है। समकित का नाश करनेवाली कथा है। समझ में आया ? सेवा करो, पर की सेवा करो। कौन करे ? सुन तो सही। पर की सेवा की व्याख्या क्या ? पर आत्मा और जड़ उसकी पर्याय तो उससे होती है। पर का तू क्या कर सकता है ?

मुमुक्षु : तो क्या करना ? हाथ जोड़कर बैठे रहना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ कहाँ इसके बाप के हैं ? हाथ तो जड़ का है। हाथ का हलन-चलन तो जड़ से होता है, आत्मा से नहीं। कहो, समझ में आया ? यहाँ तो पूरण गलन स्वभाव सब परमाणु / पुद्गल का है। गर्म पानी है, ठण्डा पानी गर्म होता है, वह तो उसकी पर्याय का स्वभाव है। वह ठण्डे का गर्म आत्मा कर सकता है, ऐसा है नहीं। आत्मा खा सकता है ? दाँत का दबाव देकर रोटी का टुकड़ा कर सकता है आत्मा ? टुकड़ा तो गलन हुआ, पुद्गल का गलन हुआ।

मुमुक्षु : पेट में दाँत होते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब अंग्रेजी की भाषाएँ सब। यहाँ बराबर करना (ऐसा कहते हैं)। परन्तु करे कौन ? वह तो जड़ की क्रिया है। उसका पूरण-गलन स्वभाव है। रोटी बनी, वह तो पूरण हुआ, टुकड़ा हुआ, वह तो गलन हुआ। किसका हुआ ? क्या आत्मा कर सकता है ?

मुमुक्षु : इस दुनिया में रहा जाये ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दुनिया में से निकलने की बात है। क्या कहते हैं ? पूरण

-गलन कहा न ? कर्म भी आता है और जाता है, वह भी उसके कारण से। आत्मा, कर्म का कुछ नहीं कर सकता - ऐसा कहते हैं। शरीर में भी ऐसे रोटी खाना, पथ्य रखना, पथ्य से यह शरीर ठीक रखना, यह बिल्कुल मिथ्या है। वह तो पुद्गल की / जड़ की क्रिया है। आहा..हा.. ! जड़ की क्रिया मुझसे होती है, ऐसा मानना, वह तो जड़ को अपना मानना है। भारी सूक्ष्म बात, भाई ! इस दुनिया में यह सब किस प्रकार चलेगा ? ऐसा वे कहते हैं। बड़ी-बड़ी बातें करे और ऐसे गप्प मारे। भगवान को भी वस्त्र था। दीक्षा ली न ? एक वस्त्र रखा था, आधा वस्त्र फिर उनके मित्र का था, वह दे दिया। ऐसी जैन की दया ! अरे ! चल.. चल.. । भगवान को वस्त्र होता ही नहीं। इन्द्र वस्त्र देता ही नहीं, ये सब कल्पित बातें की हैं। भगवान दीक्षा लेते हैं तो इन्द्र एक वस्त्र देता है तो कन्धे पर रखते हैं। (ऐसा श्वेताम्बर में मानते हैं)।

मुमुक्षु : .....की सम्मति हो गयी न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबकी बात। सब कल्पित। भगवान तो नग्न मुनि एकदम दिगम्बर। उन्हें तो मोरपीच्छी और कमण्डल भी नहीं होते। कल्पातीत पुरुष हैं।

मुमुक्षु : मुनि बनने के बाद वस्त्र देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देते हैं, ऐसा आता है, श्वेताम्बर में ऐसा आता है। इस कारण से देते हैं। बारह माह, सवा वर्ष रहे, फिर छूट जाता है। मूल पाठ ऐसा है और कल्पसूत्र में ऐसा है कि आधा वस्त्र उनके मामा के मित्र थे, उन्हें दे दिया, आठ टुकड़ा रखा। यह अमरचन्दजी ने लिखा है कि जैन की कितनी दया-गम्भीरता है ! ऐसा ! अर..र ! लोगों को मारकर... वस्तु का ऐसा स्वभाव भी नहीं है। मुनि वस्त्र रखते नहीं और मुनि को कोई देता नहीं। आहा..हा.. ! जाना-आना यह पुद्गल का स्वभाव है। अपना स्वभाव नहीं।

अब धर्मास्ति की बात चलती है। धर्मास्ति एक पदार्थ है। भगवान ने केवलज्ञानी ने चौदह राजुलोक में एक धर्मास्ति नाम का (पदार्थ देखा है)। **स्वभावगतिक्रियारूप और विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव...** भाषा देखो ! आत्मा के स्वभावरूप से ऊर्ध्वगति हो या विभावरूप से चार गति में जाने की गति हो, परन्तु जीव स्वयं परिणमित होवे तो **जीव-पुद्गलों को स्वभावगति का और विभावगति का निमित्त, सो धर्म है।** लो, परिणित जीव और पुद्गल दोनों। कहो, समझ में आया ?

धर्मास्तिकाय दूसरे को गति नहीं कराता परन्तु जीव और पुद्गल स्वाभाविकगति

हो या विभाविकगति हो तो धर्मास्तिकाय को निमित्त कहने में आता है, वह धर्मास्ति पदार्थ है। सर्वज्ञ परमेश्वर में ही यह बात है। इसके अतिरिक्त किसी धर्म में, किसी मत में धर्मास्ति-अधर्मास्ति दो द्रव्य हैं ही नहीं और दो द्रव्य न हों तो लोक-अलोक का भाग होता ही नहीं। लोक और अलोक के दो भाग पड़े हैं, वे धर्मास्ति-अधर्मास्ति के कारण से हैं। समझ में आया? ऐसे भगवान ने धर्मास्तिकाय नाम का एक तत्त्व कहा। नीचे स्पष्टीकरण है। देखो एकड़ा है न?

चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जीव, ऊर्ध्वगमनस्वभाव से... चौदहवाँ गुणस्थान। केवलज्ञान का तेरहवाँ गुणस्थान और मुक्ति होने की तैयारी हो, वह चौदहवें में होती है। ***ऊर्ध्वगमनस्वभाव से लोकान्त में जाता है, वह जीव की स्वभावगतिक्रिया है...*** तो उसमें धर्मास्ति निमित्त है। बस। गति परिणत करे तो। ***और संसारावस्था में कर्म के निमित्त से गमन करता है, वह जीव की विभावगतिक्रिया है।*** एक गति में से दूसरी गति में जाता है, वह स्वयं के कारण से जाता है। कर्म ले जाता है, ऐसा नहीं है-ऐसा कहते हैं। कर्म तो जड़-पुद्गल परद्रव्य है। एक गति में से दूसरी गति में जाना, वह जीव की विभाविकक्रिया है, धर्मास्तिकाय उसमें निमित्त है। आहा..हा..! समझ में आया? कैसा लिखा है, देखो! परिणत लिखा है न? **विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को...** ऐसा नहीं कि कर्म ले जाते हैं - दूसरी गति में कर्म ले जाते हैं, उसमें धर्मास्तिकाय निमित्त है-ऐसा है? आत्मा ही अपनी योग्यता से एक गति में से दूसरी गति में जाता है, तब धर्मास्तिकाय को निमित्त कहते हैं। समझ में आया? कोई कहता है कि भाई! श्रेणिक राजा नरक में गये, वे तो समकिती थे, क्षायिक समकिती थे तो कर्म के कारण से नरकगति में गये।

मुमुक्षु : वहाँ जाने की किसी की इच्छा होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल झूठ बात है। अपनी योग्यता से गति में गये हैं। इसमें यह कहते हैं, देखो, **विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव...** है। विभावपरिणतरूप जीव वह स्वयं के कारण परिणमा है। कर्म के कारण से जाता है, ऐसा नहीं है। कर्म तो दूसरी चीज़ है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : तो श्रेणिक राजा का उल्टा पुरुषार्थ पहले किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान गति का विभाव परिणमन है।

मुमुक्षु : वह नरक में गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपनी पर्याय से गये हैं, पूर्व की नहीं। सूक्ष्म बात है पण्डितजी! यह कहा न? देखो न? जीव परिणत **विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव...** तो जीव गति में विभावरूप परिणत होता है, वह स्वयं से है। पूर्व में बहुत पाप किये थे, इसलिए गति में (जाता है) ऐसा नहीं है। वर्तमान में विभावगति की योग्यता से गति करता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....परन्तु नहीं। वह तो कर्म की बात हुई। वर्तमान। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : जैन में कर्म का बड़ा....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! सोगनचन्दजी कहते थे न कि कर्म से कुछ नहीं होता। यह सोनगढ़ के सन्त की ऐसी वाणी है। कर्म से आत्मा में कुछ नहीं होता। आत्मा में तो स्वयं से विकार होता है। कर्म तो जड़ है।

मुमुक्षु : जीव स्वयं अपने से किस प्रकार गति में जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं अपने से गति में जाता है। वह पर्याय का धर्म है, ऐसी बात है। पर्याय उसकी है या जड़ की है? सर्वार्थसिद्धि की गति पर्याय अपने विभाव से परिणत करता है। एक समय की पर्याय वह स्वयं के कारण से पर्याय है।

मुमुक्षु : उस समय की वैसी ही योग्यता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है। बात ऐसी है।

मुमुक्षु : शास्त्र में तो ऐसा आता है कि कोई गति में ले जाता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : ले जाता है वह तो निमित्त का कथन है। आनुपूर्वी.. आनुपूर्वी।

मुमुक्षु : परन्तु शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा, वह किस अपेक्षा से लिखा है? स्वयं के कारण गति करता है, वहाँ आनुपूर्वी गति नामकर्म का निमित्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया? यह उपादान-निमित्त की गड़बड़ी। जड़ और चेतन।

मुमुक्षु : मोहनीय कर्म इत्यादि बिल्कुल कुछ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। कर्म पुद्गल है, वह तो जड़ है। जड़ में क्या

आत्मा आया ? जड़ का आत्मा कुछ कर सकता है ? जड़ आत्मा का कुछ कर सकता है ? आत्मा अरूपी है।

मुमुक्षु : जैन पर कर्म का जोर बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। बिल्कुल जोर नहीं। यह बात मिथ्या है। यह तो हमारे (संवत्) १९७१ के वर्ष से चलता है। १९७१, ५६ वर्ष हुए। कर्म से आत्मा में कुछ होता है, यह बिल्कुल नहीं। संवत् १९७१। ७० और १। विकारी पर्याय स्वयं से होती है तो दूसरी चीज़ को निमित्त कहो। दूसरी वस्तु से अपने में हो तो जीव का कोई जड़ स्वामी है कि बलजोरी से विकार करावे ? ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आपकी बात तो आश्चर्य उत्पन्न करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है। क्या करे ? है न ? निमित्त से गमन करता है, ऐसा अर्थ है। देखो!

एक पृथक् परमाणु, गति करता है, वह पुद्गल की स्वभावगतिक्रिया है और पुद्गलस्कन्ध गमन करता है, वह पुद्गल की विभागतिक्रिया है। परन्तु प्रत्येक परमाणु विभावरूप से परिणमित हुए हैं, ऐसा बाद में स्पष्टीकरण लिया है। देखो, यह लकड़ी चलती है तो इसके विभाव परिणाम से चलती है। उसमें एक परमाणु भी अपने विभाव परिणाम से गति करता है और एक परमाणु में भी विभावरूप परिणमन है। पूरे स्कन्ध में, ऐसा नहीं, देखो! है ? ***(स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) विभागतिक्रिया है।*** ऐसे चलता है। अंगुली ऐसे चलती है। प्रत्येक परमाणु में विभावगति की क्रिया परिणमन है तो गति होती है। परमाणु में एक विभावगति परिणमन हुआ। एक परमाणु में। भिन्न परमाणु हो तो स्वभावगति है, परन्तु स्कन्ध में है तो स्कन्ध में भिन्न है परन्तु विभावरूप परिणमन है तो एक परमाणु ऐसे गति करता है। हाथ ऐसे गति करते हैं। ऐसा पुद्गल का, अजीव का स्वभाव है।

इस स्वाभाविक तथा वैभाविकगतिक्रिया में धर्मद्रव्य निमित्तमात्र है। धर्मद्रव्य तो निमित्तमात्र है। कोई इसे कराता है, ऐसा नहीं है। ऐसा ही जीव और पुद्गल का विभावरूप परिणमन का स्वभाव पर्याय का है, ऐसा बराबर जानना चाहिए, यह बात यहाँ कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१५, श्लोक-१६, गाथा-९, १०, सोमवार, फाल्गुन कृष्ण ४, दिनांक १५-०३-१९७१

गुजराती चलता है। यह नियमसार, जीव अधिकार, ९वीं गाथा। इसमें धर्मास्तिकाय का वर्णन आ गया। जीव का, पुद्गल का, धर्मास्तिकाय का (वर्णन) आ गया और अधर्मास्तिकाय का (वर्णन) अब चलता है।

स्वभावस्थितिक्रियारूप और विभावस्थितिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को स्थिति का (स्वभावस्थिति का तथा विभावस्थिति का) निमित्त, सो अधर्म है। परमाणु हो या जीव हो; अपनी स्वभावस्थिति करे, जैसे जीव सिद्ध में ऊर्ध्वगति करे तो भी वह स्वभावगति कहलाती है, उसे धर्मास्ति निमित्त है और स्थिर हो, उसे अधर्म का निमित्त है।

इसी तरह परमाणु स्वभावरूप से अकेली गति करें तो वह स्वभावगति। परमाणु एक स्थान में, स्थिर हो, वह तो स्वभावस्थिति क्रिया है और पुद्गल स्कन्ध जो ऐसे गति करे तो वह प्रत्येक परमाणु विभावगति की परिणति से क्रिया करे। एक-एक परमाणु स्वतन्त्र है। विभावरूप से परिणमता एक-एक परमाणु गति करे, उसमें धर्मास्ति निमित्त और विभावरूप से परिणमन करके परमाणु वहाँ स्थिर हो, या स्कन्ध, उस स्कन्ध में के परमाणु की बात है न? उसे अधर्मास्ति का निमित्त है। देखो! समय-समय का परमाणु, स्कन्ध में होने पर भी और वह उसका विभावरूप परिणमन है; वह पर के कारण नहीं है, उसकी अपनी योग्यता के कारण विभावरूप परिणमन है। इसी तरह जीव का भी गति आदि में संसारदशा में विभावरूप गति का परिणमन स्वतन्त्र है। विभाविक होने पर भी, उसे पर के कारण वह विभाव परिणमन है - ऐसा नहीं है। ऐसी स्वतन्त्र स्थिति है।

निमित्त, सो अधर्म है। नीचे स्पष्टीकरण किया है। ***सिद्धदशा में जीव स्थिर रहता है, वह जीव की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है और संसारदशा में स्थिर रहता है, वह जीव***

की वैभाविकस्थितिक्रिया है। आत्मा एक जगह रहे तो वह उसकी वैभाविकक्रिया है। *अकेला परमाणु, स्थिर रहता है, वह पुद्गल की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है और स्कन्ध स्थिर रहता है, वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) वैभाविकस्थिति -क्रिया है।* स्वयं के कारण स्थिर रहा, स्वयं के कारण से वैभाविक होने पर भी स्वयं के कारण स्थिर (हो), उसमें अधर्मास्ति का निमित्त है। *इस जीव-पुद्गल की स्वाभाविक तथा वैभाविक स्थितिक्रिया में अधर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।* अब आकाश और काल दो रहे।

(शेष) पाँच द्रव्यों को अवकाशदान (अवकाश देना)... रहने का स्थान, **जिसका लक्षण है, वह आकाश है।** यह भी भगवान ने छह द्रव्यों में आकाशद्रव्य स्वतन्त्र है, ऐसा देखा है। **(शेष) पाँच द्रव्यों को वर्तना का निमित्त, वह काल है।** काल के अतिरिक्त पाँच द्रव्य हैं, उनके परिणमन में निमित्तकारण काल है। **(जीव के अतिरिक्त) चार अमूर्तद्रव्यों के शुद्ध गुण हैं;...** जीव के अतिरिक्त चार अमूर्त; पुद्गल के अतिरिक्त; धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल के शुद्ध गुण हैं। **उनकी पर्यायें भी वैसी (शुद्ध ही) हैं।** चार द्रव्यों के कभी अशुद्धता होती नहीं। परमाणु और जीव के अतिरिक्त चार द्रव्य हैं, उनमें अशुद्धता कभी (होती) नहीं।

श्लोक-१६

[अब, नवमी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक द्वारा छह द्रव्य की श्रद्धा के फल का वर्णन करते हैं :—]

(मालिनी)

इति जिनपतिमार्गाम्भोधि-मध्यस्थरत्नं,
द्युतिपटलजटालं तद्धि षड्द्रव्यजातम्।
हृदि सुनिशित-बुद्धिर्भूषणार्थं विधत्ते,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।१६।।

(वीरछन्द)

जो जिनपति के मार्ग उदधि के मध्य सदा स्थिर रहता।
वह षट्द्रव्य समूह रत्न है महातेज किरणों वाला॥
तीक्ष्ण बुद्धियुत जो नर उसको भूषणार्थ उर धरते हैं।
परमश्रीरूपी रमणी को वे नर निश्चित वरते हैं॥१६॥

श्लोकार्थ :- इस प्रकार उस षट्द्रव्यसमूहरूपी रत्न को, जोकि (रत्न) तेज के अम्बार के कारण किरणोंवाला है और जो जिनपति के मार्गरूपी समुद्र के मध्य में स्थित है; उसे जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष, हृदय में भूषणार्थ (शोभा के लिए) धारण करता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है (अर्थात्, जो पुरुष अन्तरंग में छह द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा करता है, वह मुक्तिलक्ष्मी का वरण करता है)॥१६॥

श्लोक-१६ पर प्रवचन

टीका पूर्ण करते हुए मुनिराज श्लोक द्वारा कहते हैं—

इति जिनपतिमार्गाम्भोधि-मध्यस्थरत्नं,
द्युतिपटलजटालं तद्धि षड्द्रव्यजातम्।
हृदि सुनिशित-बुद्धिर्भूषणार्थं विधत्ते,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः॥१६॥

इस प्रकार उस षट्द्रव्यसमूहरूपी रत्न... छह द्रव्यों की व्याख्या की। **षट्द्रव्यसमूहरूपी रत्न को, जोकि (रत्न) तेज के अम्बार के कारण किरणोंवाला है...** अर्थात् कि प्रत्येक द्रव्य अपनी शक्ति से निभा हुआ है। **तेज के अम्बार के कारण किरणोंवाला है...** अपनी शक्ति के भाव से ही वह स्वयं परिणम रहा है। षट्द्रव्य भगवान के शास्त्र में है। वे अन्यत्र कहीं नहीं होते। समझ में आया? और षट्द्रव्य की पर्याय स्वाभाविक या विभाविक, उनमें चार के अतिरिक्त, जीव-पुद्गल की दोनों (की) स्वतन्त्र उस-उस समय की है।

जो जिनपति के मार्गरूपी समुद्र के मध्य में... वीतराग के मार्ग में छह द्रव्य हैं - ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त वे कहीं नहीं होते। धर्मास्ति और अधर्मास्ति अन्यत्र नहीं है। धर्मास्ति-अधर्मास्ति न हों तो लोक-अलोक के दो भाग ही नहीं हो सकते। लोक और अलोक के दो भाग है, इससे दोनों द्रव्य अनादि-अनन्त स्थिर हैं, चौदह ब्रह्माण्ड में स्थिर हैं। इस जिनमति के मार्ग, वीतराग मार्ग में **समुद्र के मध्य में स्थित है; उसे जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष, हृदय में भूषणार्थ...** छहों द्रव्य सिद्ध करके, धर्मी जीव अपनी अनुभव की दृष्टिसहित, छह द्रव्यों की श्रद्धा अपनी शोभा के लिये धारण करता है - ऐसा कहते हैं। **धारण करता है, वह पुरुष...** आत्मा में अन्तर एक द्रव्य का आश्रय दृष्टि होने पर, अनुभव होकर जो सम्यक् हो, उसे परद्रव्य का व्यवहार से ज्ञान सच्चा होता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्वद्रव्य के-चैतन्य के अवलम्बन से जिसे आत्मद्रव्य का ज्ञान यथार्थ हो, उसे ऐसे परद्रव्य का व्यवहार ज्ञान भी सच्चा होता है - ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अकेला हो, छह द्रव्य न हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह न हो तो ऐसी वस्तु ही नहीं है। छह द्रव्य का ज्ञान तो एक समय की पर्याय में समा जाता है। एक समय की पर्याय ही उसे समाहित करनेवाली है। यह तो अनन्त पर्याय का पिण्ड। क्या कहा यह? एक समय की ज्ञान की अवस्था छह द्रव्यों को जाने, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। इतना जाने तो वह एक समय की पर्याय जाने, परन्तु उस पर्याय का ज्ञान भी द्रव्य के ज्ञान बिना पर्याय का ज्ञान सच्चा नहीं हो सकता - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सब ज्ञान पर चौकड़ी लगाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि एक ही समय की ज्ञान की दशा में छह द्रव्य जानने की सामर्थ्य है। ऐसी एक समय की ज्ञान की पर्याय सामर्थ्यवाली है। जिसने छह द्रव्य जाने, स्वीकार किये, वह एक समय की पर्याय स्वीकार की। परन्तु एक समय की पर्याय की स्वीकृति कब यथार्थ कहलाये? वस्तु की दृष्टि हुई, वह ज्ञायकमूर्ति शुद्ध चैतन्यधातु। छह द्रव्यों में तो अनन्त सिद्ध आ गये। आ गये या नहीं? उन सबकी श्रद्धा का विकल्प का ज्ञान उसे सच्चा होता है कि जिसे आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति अभेद शुद्ध चैतन्यधातु का

अनुभव होकर सम्यग्दर्शन हो, उसे इन छह द्रव्यों का व्यवहार ज्ञान सच्चा होता है। गजब! समझ में आया?

कल दोपहर को अपने नहीं आया था? दोपहर को आया था न? जिसे स्वद्रव्य का ज्ञान हो, वह पानी की शीतलता का और उष्णता का भेद जानता है। उसका व्यवहार ज्ञान सच्चा होता है। जिसे स्वद्रव्य का ज्ञान हो, वह सब्जी और लवण के खारेपन की भिन्नता को वास्तविक (रूप से) जानता है। आहा..हा..! समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं कि जिसे ऐसा छह द्रव्यों का वास्तविक (ज्ञान हो), उसमें तो कारणपरमात्मा, कार्यपरमात्मा सब आ गया न? कारणजीव, कार्यजीव इसमें आ गया। समझ में आया? त्रिकाली भगवान आत्मा, महाप्रभु की जिसे अन्तर में दृष्टि और भान है, उसे छह द्रव्यों का ज्ञान होता है, वह मोक्ष का कामी, अल्प काल में, मोक्ष को जाता है, ऐसा कहते हैं।

वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है... लो! **(अर्थात्, जो पुरुष अन्तरंग में छह द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा करता है, वह मुक्तिलक्ष्मी का वरण करता है)** समझ में आया? उसे केवलज्ञान होकर (वह) मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : छह द्रव्य तो सब-श्वेताम्बर-दिगम्बर सबको मान्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन मानता है छह द्रव्य? वास्तविक छह द्रव्य मानता है, यह किसे कहना? त्रिकाली कारणद्रव्य जीव है, उसका आश्रय ले तो समकित होता है, ऐसा तो उस कारणजीव का स्वरूप है। अब उस कारणजीव को मानता नहीं और राग से होता है, निमित्त से होता है - (ऐसा मानता है), वह एक भी तत्त्व को यथार्थरीति से नहीं मानता। पण्डितजी! आहा..हा..! समझ में आया? छह द्रव्य में तो यह आया नहीं? जीव का वैभाविक परिणमन, परन्तु गति जब, क्षायिक समकिती हो, परन्तु नरक में गति करता हो, वह अपने विभाव परिणमन के कारण गति करता है, कर्म के कारण नहीं।

मुमुक्षु : यह तो इसमें नहीं लिखा, कर्मशास्त्र में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कर्मशास्त्र में क्या लिखे? निमित्त कौन—यह ज्ञान कराया है। यहाँ तो समय-समय का क्षायिक समकिती जीव का विभाव परिणाम नरक में जाये,

तो भी वह स्वयं की गति की विभाविक परिणमन की योग्यता से वहाँ जाता है। उसे कर्म ले जाता है – ऐसा है नहीं। ऐसा द्रव्य का स्वरूप ही नहीं है – ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। छह द्रव्य में उसकी विभाविक परिणति से गति करो या स्वाभाविक परिणति से गति करो, वह अपनी पर्याय की योग्यता है; उसमें पर की कोई अपेक्षा है नहीं। समझ में आया?

बहुत समय पहले एक प्रश्न उठा था न? कि भाई! इस स्कन्ध में जो परमाणु है, वह परमाणु तो स्कन्ध के कारण विभावरूप परिणमा है। पण्डितजी! तो अकेला परमाणु था तब विभाव नहीं था, इसमें (स्कन्ध में) साथ मिला, तब विभाव हुआ। – यह प्रश्न था। कल्याणजीभाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! एक परमाणु पृथक् था, उसमें विभाव नहीं था, यहाँ स्कन्ध में आया तो विभाव हुआ। प्रत्यक्ष दिखता है कि पर-संयोग हुआ तो विभाव हुआ।

मुमुक्षु : तब आप इनकार क्यों करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है नहीं। उस समय परमाणु अन्दर विभावरूप से परिणमित है, स्वभावरूप से नहीं। पृथक् (परमाणु) स्वभावरूप से था; यहाँ विभावरूप (हुआ)। विभावरूप परिणमन उसकी अपनी पर्याय की योग्यता से हुआ है। उस स्कन्ध के रजकण तो निमित्त है; उपादान तो इसका स्वयं का है। समझ में आया? यह प्रश्न वहाँ से उनकी ओर से ईसरी से आता है। समझ में आया? क्यों इस स्कन्ध में परमाणु विभावरूप हुआ है? कि निश्चित स्कन्ध का अन्दर कुछ असर है। स्कन्ध के सम्बन्ध से परमाणु विभावरूप परिणमा है। अकेला परमाणु है, ऐसा यहाँ क्यों नहीं रहा? पण्डितजी! समझ में आया? अकेला परमाणु है, ऐसा यहाँ क्यों नहीं रहा? इसलिए विभावरूप स्कन्ध के कारण हुआ है। (ऐसे प्रश्न आते हैं)। ऐसा है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : सूक्ष्म था, वह स्थूल हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थूल हुआ, परन्तु स्थूल क्यों हुआ? स्वयं के कारण हुआ।

मुमुक्षु : स्थूल में आया, इसलिए नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह प्रश्न कान्तिभाई देसाई ने बहुत वर्षों पहले किया था। ऐसा कहते हैं कि देखो! अकेला परमाणु सूक्ष्म हो, ऐसा ही यहाँ (स्कन्ध में) सूक्ष्म रहा

है ? यहाँ आया, इसलिए स्थूल हुआ है। यहाँ स्थूल नहीं हुआ तो एक परमाणु स्थूल नहीं तो सब स्थूल नहीं। इसलिए स्थूल हुआ, वह स्थूल के संग से स्थूल हुआ है। ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

इसी प्रकार जीव भी कर्म के संग में है, इसलिए कर्म के संग के कारण विभावरूपी गति करे या विभावरूप परिणमे - ऐसा नहीं है। समझ में आया ? बात तो स्वतन्त्र सब आ गयी। ज्ञानावरणीय कर्म के सम्बन्ध में है; इसलिए ज्ञान हीन परिणमता है - ऐसा नहीं है। स्वयं की हीन परिणमने की उस समय की पर्याय की योग्यता से परिणमता है। कर्म का -जड़ का-दर्शनमोहनीय का निमित्त है, इसलिए यहाँ राग-द्वेष, मिथ्यात्व होता है, ऐसा नहीं है। यहाँ पर द्रव्य की स्वतन्त्र बात का वर्णन किया न ? मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप भी—विभावरूप भी जीव उस-उस समय की उस-उस योग्यता से स्वतन्त्र (परिणमता) है। निमित्त भले हो, परन्तु निमित्त हो, इसलिए यह परिणमन है - ऐसा नहीं है। उस निमित्त की मौजूदगी है, इसलिए विभाव की अस्ति है - ऐसा नहीं है। इसकी स्वयं की पर्याय की... परिणमन की अस्ति है, इसलिए विभाव की अस्ति है। आहा..हा.. ! बड़ा विवाद तुम्हारे यहाँ। कर्म से ऐसे होता है... ।

देखो न ! कितना स्पष्टीकरण किया है ! यहाँ परमाणु, स्कन्ध में है। प्रत्येक परमाणु गति में विभावरूप से परिणमित हुआ है। तो क्यों ? कि वे अधिक इकट्ठे हैं, इसलिए ? नहीं। स्वयं स्वतन्त्र उस समय की पर्याय से, विभावरूप से हुआ है और स्थिर हुआ है, वह भी स्वयं विभावरूप से होने से (परिणमा है); पर के कारण नहीं। उस समय स्थिर है। वह स्थिर हो गया है ऐसे। समय-समय की परमाणु और जीव की विभावपर्याय भी भिन्न-भिन्न समय की स्वतन्त्र है। आहा..हा.. ! कहो, भीखाभाई ! यह कहा न ? जिनपति के मार्ग में यह होता है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मार्ग में यह वर्णन होता है; अन्यत्र होता नहीं। यह १६वाँ कलश हो गया। ९वीं गाथा हुई। (अब) १०वीं।

गाथा-१०

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं ति।।१०।।

जीव उपयोग-मयः उपयोगो ज्ञान-दर्शनं भवति।
ज्ञानोपयोगो द्विविधः स्वभावज्ञानं विभावज्ञानमिति।।१०।।

अत्रोपयोगलक्षणमुक्तम्। आत्मनश्चैतन्यानुवर्ती परिणामः स उपयोगः। अयं धर्मः। जीवो धर्मी। अनयोः सम्बन्धः प्रदीपप्रकाशवत्। ज्ञानदर्शनविकल्पेनासौ द्विविधः। अत्र ज्ञानोपयोगोऽपि स्वभावविभावभेदाद् द्विविधो भवति। इह हि स्वभावज्ञानं अमूर्तं अव्याबाधं अतीन्द्रियं अविनश्वरम्। तच्च कार्यकारणरूपेण द्विविधं भवति। कार्यं तावत् सकलविमलकेवलज्ञानम्। तस्य कारणं परमपारिणामिकभावस्थितत्रिकालनिरुपाधिरूपं सहजज्ञानं स्यात्। केवलं विभावरूपाणि ज्ञानानि त्रीणि कुमतिकुश्रुतविभङ्गभाञ्जि भवन्ति। एतेषां उपयोगभेदानां ज्ञानानां भेदो वक्ष्यमाणसूत्र-योर्द्वयोर्बोद्धव्य इति।

उपयोगमय है जीव वह उपयोग दर्शन-ज्ञान है।
ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभाव द्विविध विधान है॥१०॥

अन्वयार्थ :—[जीवः] जीव, [उपयोगमयः] उपयोगमय है। [उपयोगः] उपयोग, [ज्ञानदर्शनं भवति] ज्ञान और दर्शन है। [ज्ञानोपयोगः द्विविधः] ज्ञानोपयोग, दो प्रकार का है - [स्वभावज्ञानं] स्वभावज्ञान और [विभावज्ञानम् इति] विभावज्ञान।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में) उपयोग का लक्षण कहा है।

आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला) परिणाम, सो उपयोग है। उपयोग, धर्म है; जीव, धर्मी है। दीपक और प्रकाश जैसा उनका सम्बन्ध है। ज्ञान और दर्शन के भेद से यह उपयोग दो प्रकार का है (अर्थात्, उपयोग के दो प्रकार हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग)। इनमें ज्ञानोपयोग भी स्वभाव और विभाव के भेद के कारण दो प्रकार का है। (अर्थात्, ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं

- स्वभावज्ञानोपयोग और विभावज्ञानोपयोग)। उनमें स्वभावज्ञान, अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है; वह भी कार्य और कारणरूप से दो प्रकार का है (अर्थात्, स्वभावज्ञान के भी दो प्रकार हैं—कार्यस्वभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान)। कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है और उसका कारण, परम-पारिणामिकभाव से स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक सहजज्ञान है। केवल विभावरूप ज्ञान, तीन हैं—कुमति, कुश्रुत, और विभङ्ग।

इस उपयोग के भेदरूप ज्ञान के भेद, अब कहे जानेवाले दो सूत्रों द्वारा (११ और १२वीं गाथा द्वारा) जानना।

[*भावार्थ :*— चैतन्यानुविधायी परिणाम, वह उपयोग है। उपयोग, दो प्रकार का है—(१) ज्ञानोपयोग, और (२) दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं—(१) स्वभावज्ञानोपयोग, और (२) विभावज्ञानोपयोग। स्वभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है — (१) कार्यस्वभावज्ञानोपयोग (अर्थात्, केवलज्ञानोपयोग), और (२) कारणस्वभाव -ज्ञानोपयोग (अर्थात्, सहजज्ञानोपयोग*)। विभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है—(१) सम्यक् विभावज्ञानोपयोग, और (४) मिथ्या विभावज्ञानोपयोग (अर्थात्, केवल विभाव -ज्ञानोपयोग)। सम्यक् विभावज्ञानोपयोग के चार भेद (सुमतिज्ञानोपयोग, सुश्रुतज्ञानोपयोग, सुअवधिज्ञानोपयोग, और मनःपर्ययज्ञानोपयोग) अब अगली दो गाथाओं में कहेंगे। मिथ्या विभावज्ञानोपयोग के, अर्थात् केवल विभावज्ञानोपयोग के तीन भेद हैं—(१) कुमति-ज्ञानोपयोग, (४) कुश्रुतज्ञानोपयोग, और (३) विभंगज्ञानोपयोग अर्थात् कुअवधिज्ञानोपयोग]।

गाथा-१० पर प्रवचन

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं ति।।१०।।

* सहजज्ञानोपयोग, परमपारिणामिकभाव से स्थित है तथा त्रिकाल उपाधिरहित है, उसमें से (सर्व को जाननेवाला) केवलज्ञानोपयोग प्रगट होता है। इसलिए सहजज्ञानोपयोग, कारण है और केवलज्ञानोपयोग, कार्य है। ऐसा होने से सहजज्ञानोपयोग को कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है और केवलज्ञानोपयोग को कार्यस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है।

उपयोगमय है जीव वह उपयोग दर्शन-ज्ञान है।
ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभाव द्विविध विधान है॥१०॥

देखो! वर्णन किया है। **यहाँ (इस गाथा में) उपयोग का लक्षण कहा है। आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती परिणाम, सो उपयोग है।** देखो! व्याख्या। भगवान आत्मा चैतन्य, उसका अनुवर्ती—उसे अनुसरकर होनेवाले परिणाम, वह उपयोग है। भाषा देखो! जीव में केवलज्ञानरूपी परिणमन हो, मतिज्ञानरूप हो, श्रुतज्ञानरूप हो, अवधिरूप हो, मन:पर्ययरूप हो या अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणारूप हो, वह स्वयं चैतन्य को अनुसर कर होनेवाले परिणाम हैं। वे कर्म को अनुसरकर होनेवाले परिणाम नहीं है। क्या है? सेठी!

आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला)... जो कुछ अवग्रह हो। मति (ज्ञान) के चार भेद हैं न? अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा। वह पर्याय भी चैतन्य को अनुसरण कर होती है। सुनने के कारण या कर्म के अभाव के कारण ऐसे होती है, ऐसा नहीं है। पण्डितजी! क्या अवग्रह होता है तो विभावज्ञान है? यह कहेंगे। विभावज्ञान है, इन चार ज्ञान को विभावज्ञान कहेंगे। केवलज्ञान को स्वभावज्ञान कहेंगे, तथापि चार ज्ञान के सब अन्तर्भेद—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, श्रुत के भी, थोड़ा श्रुत, विशेष श्रुत सब—ऐसा जो परिणाम, वह चैतन्य को अनुसरण कर (होता है)। आत्मा द्रव्य, उसका चैतन्य गुण, उसे अनुसरण कर परिणाम होता है। यह द्रव्य, गुण और पर्याय की स्वतन्त्रता। सुनने को अनुसरणकर परिणाम नहीं होते, ऐसा कहते हैं। क्या है? सेठी! क्या कहते हैं? अभी थोड़ा खोलो, ऐसा कहते हैं।

आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला) परिणाम,... परिणाम में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान। और मति के भेद तथा श्रुत के भेद जितने अन्दर पर्याय में दिखते हैं, वे सब पर्याय / परिणाम चैतन्य को अनुसरण करके हुए हैं। पण्डितजी! यह देखो तो सही! क्या है? कर्म के क्षयोपशम के कारण हुए हैं, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। वस्तु की स्थिति ऐसी है।

(चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला) परिणाम, सो उपयोग है। देखो,

भाषा! आहा..हा..! एक ही शब्द में... जो अन्तर ज्ञान के, मति के, श्रुत के परिणाम होते हैं, वे उसके द्रव्य के गुण को अनुसरण कर होते हैं। सुनने को अनुसरण कर होते हैं, पढ़ने को अनुसरण कर होते हैं, शब्द से यहाँ (होते हैं), ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा मार्ग! कहो, यह कहते हैं या नहीं? यह चश्मा हो तो अन्दर जानने का उपयोग हो। बिल्कुल झूठ बात है। इस समय के ज्ञान के उपयोग के परिणाम वे द्रव्य को और गुण को अनुसरण कर हुए हैं; चश्मे को अनुसरण कर हुए नहीं। देखो! इसमें है या नहीं परन्तु?

मुमुक्षु : सुनते हैं तो विचार बदलते हैं या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार बदलते हैं, आत्मद्रव्य को अनुसरकर बदलते हैं। यह तत्त्व की विपरीतता की निकालवर्ती चीज बताते हैं।

आत्मा अपना स्वभाव जो ज्ञानदर्शन। यहाँ उपयोग तो अभी दो है न? ज्ञान और दर्शन दो। चैतन्य आत्मा और उसका ज्ञान-दर्शन गुण। उसमें जितनी ज्ञान, दर्शन की पर्याय / परिणाम हो, वह सब आत्मा को अनुसरकर है; निमित्त को अनुसरकर, वाणी को अनुसरकर, सुनने को अनुसरकर, पृष्ठ को अनुसरकर या कर्म के क्षयोपशम को अनुसरकर वे परिणाम (होते) हैं, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! कल्याणजीभाई! ऐसा वीतराग का तत्त्व है। आहा..हा..! समझ में आया? साधारण बात हो परन्तु उसमें स्वतन्त्रता का ढिंढ़ोरा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : जीव की पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव की पर्याय जीव को अनुसरकर होती है।

मुमुक्षु : चाहे तो स्वभावपर्याय हो या....

पूज्य गुरुदेवश्री : या विभावपर्याय हो। वे कहते हैं न? नहीं कहा? संसारी प्राणी को तो पुद्गल के सहारे से ही सब काम चलता है, ऐसा आया था। अरे! भगवान! क्या करता है तू यह? एक-एक समय की ज्ञान की पर्याय। मति की, अवग्रह की, ईहा की, अवाय की, धारणा की, वह एक-एक समय की पर्याय चैतन्य को अनुसरकर हुई है; निमित्त को अनुसरकर, सुनने को अनुसरकर नहीं। इसका नाम अनेकान्त है। ऐसा नहीं कि उसे अनुसरकर हुई और सुनने को अनुसरकर भी हुई, ऐसे दो कहो तो अनेकान्त हो, ऐसा नहीं है। पण्डितजी! यह सब पण्डिताई के झगड़े।

मुमुक्षु : ....सिद्ध नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध नहीं होता। अपनी ज्ञान की पर्याय का उस समय का अंश स्वयं से है, ऐसे पर के कारण है—ऐसा सिद्ध नहीं होता। आहा..हा..! समझ में आया? ऐ भीखाभाई!

देखो! **(इस गाथा में) उपयोग का लक्षण कहा है। आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला)...** होनेवाला, परिणमनेवाला **परिणाम, सो उपयोग है।** ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम है, इसलिए मति (ज्ञान) के परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। भाई! यह लेख पूरे गोम्मटसार में तो यह आता है, लो! वह तो निमित्त क्या है, उसका ज्ञान कराया है।

मुमुक्षु : होवे ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। कब नहीं है? उसका प्रश्न ही कहाँ है? यहाँ अपने परिणाम मति के जितने भेद हैं, उनमें का कोई भी भेद अपने में हो, वह अपने को (स्वयं को) अनुसरणकर हुआ है। कहो, भीखाभाई! यह सुनने को अनुसरणकर नहीं। ऐसा कहते हैं। पढ़ने को अनुसरणकर नहीं। देखो तो सही!

मुमुक्षु : वह निमित्त तो रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब निमित्त है तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये तब रहता है।

मुमुक्षु : निमित्त की बात न करो, तब तक मजा नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त भी परद्रव्य है - ऐसी अपनी पर्याय के काल में वह पर्याय परिणमती है, तब उसका स्वतन्त्रपना है। इसके कारण निमित्तरूप परिणमता है, ऐसा है? इसके कारण नहीं, इसके कारण नहीं। आहा..हा..! जैनदर्शन का कोई भी तत्त्व एक बोल में इतना स्वतन्त्र खड़ा होता है।

मुमुक्षु : मोक्ष की सिद्धि स्वतन्त्रता से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्रता से सिद्धि होती है। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं कि **आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके...)** आत्मा द्रव्य, चैतन्य गुण, उसे अनुसरणकर होनेवाला परिणाम, वह पर्याय। भाषा तो देखो!

द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य अर्थात् आत्मा, चैतन्य गुण, उसकी जितनी उपयोग की जानने-देखने की पर्याय (हो), वह चैतन्य को अनुसरकर होती है। देखो! ये सब चश्मे से हो, अमुक से हो, बड़ा विवाद करते हैं न?

मुमुक्षु : हाँ परन्तु चश्मा तो चढ़ाना पड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन चढ़ावे? चढ़ावे कौन और उतारे कौन? वह तो उसकी जड़ की क्रिया है। यह तो आ नहीं गया? एक परमाणु विभावरूप परिणमित है, विभावरूप परिणमकर स्थिर रहता है, वह तो उसके कारण से। क्या अंगुली के कारण, नाक के कारण अन्दर स्थिर रहा है?

मुमुक्षु : दिखता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका दिखता है? दिखे तो वह उसमें है, ऐसा दिखता है और यह इसमें है, ऐसा दिखता है। वह इसके कारण है, ऐसा कौन देखता है? भीखाभाई! वीतराग सर्वज्ञ का तत्त्व, छह द्रव्य की यह व्याख्या चलती है। उसमें से उपयोग की व्याख्या ली है, चैतन्य का पहला उपयोगलक्षण है न? आहा..हा..!

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण-पर्याय से तादात्म्य कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी स्वयं से है। समझ में आया? आहा..हा..! आता है उसे अनुसरकर, परन्तु मानता है कि उसके (पर के) कारण हुआ। यह मिथ्याभ्रम अज्ञान है। पहले विचार ऐसे नहीं थे और अभी ऐसे नये अधिकाई के हुए, इसलिए तो कुछ अन्तर पड़ा या नहीं, ये सुनने के अनुसार? नहीं, ऐसा कहते हैं। उस काल में भी वे परिणाम उसके चैतन्य को अनुसरकर हुए हैं। कहो, समझ में आया?

आहा..हा..! ऐसा कहते हैं कि भगवान आत्मा वस्तु और उसमें चैतन्यगुण त्रिकाल है। अब गुण की पर्याय में यहाँ उपयोगगुण लेना है न? उपयोग की जो पर्याय होती है, वह पर्याय, गुण के अनुसार ही होती है। उसकी योग्यता उस समय की पर्याय (होने की है), उस गुण के अनुसार होती है। पर के अनुसार होती है, ऐसा नहीं है। उपयोग की वर्तमान पर्याय स्वयं से स्वयं को अनुसरकर होती है, ऐसा माने उसे वास्तविक चैतन्य के उपयोग को वर्तमान स्वतन्त्र माना, परन्तु जो ऐसा मानता है कि पर के कारण होती है, उसने आत्मा

के उपयोग को नहीं माना। वह तो पर के कारण हुआ, ऐसा माना और पर था तो हुआ (ऐसा मानता है)। कहो, समझ में आया?

लींबड़ी में हमारे चन्द्रशेखर के साथ हुआ था न? तुम्हारे साथ (वार्ता) करते हैं। विचार... ऐसे वाद-विवाद करना नहीं परन्तु अपने विचार करते हैं। यह तो समझना हो तो वह सब समझे। हम कोई उसके साथ विवाद नहीं करते, विचार नहीं करते। हमारी बात सूक्ष्म है। कहा, भाई! यह तुम्हारे लोग समझे और हम न समझें? अरे भगवान! समझने के लिए कहाँ आये हो? तुम तो वाद करने के लिये आये हो। फिर थोड़ी बात हुई, वहाँ बोलो इन सबको पूछो कि देखो! कि चश्मे से ज्ञान होता है या नहीं होता? चश्मा न हो तो होता है? बोलो। तुम्हारा प्रश्न आ गया, कहा, चर्चा हो गयी। कठिन काम, बहुत कठिन काम। ऐई! चन्द्रशेखर है न, जीवाप्रताप का भतीजा, अभी नहीं दिखता। दमा का रोग है। भाई को खबर है। अभी भावनगर आया था। वह आत्मा है, हों!

मुमुक्षु : उसे ऐसा भासित हुआ तो क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्या करे? बात ऐसी है कि इस वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है कि इसकी जिस समय की जो पर्याय ज्ञान और दर्शन की, चक्षु की-अचक्षु की, अवधि की केवलज्ञान की, कहा न? केवलज्ञान के परिणाम हुए, वे जीव के चैतन्य को अनुसरकर हुए हैं। यह संहनन मजबूत है और ज्ञानावरणीय का क्षय हुआ, इसलिए केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! जैन में तो यह विपरीतता (घुस गयी है), ज्ञानावरणीय से (ज्ञान हीन होता है)।

यह वस्तु स्वतन्त्र सत्य ऐसी है। आहा..हा..! भगवान! जैसे द्रव्य स्वतन्त्र है। जैसे किसी की अपेक्षा है नहीं; उसका गुण भी स्वतन्त्र है, किसी की अपेक्षा नहीं है; वैसे एक समय की पर्याय भी वास्तव में स्वतन्त्र है। यहाँ तो अभी चैतन्य को अनुसरकर कहा। क्योंकि उपयोग है, त्रिकाली में से अनुसरकर, ऐसा कहा। नहीं तो उस समय की पर्याय, वह गुण बिना स्वतन्त्र है। यह तो चिद्विलास में से बताया था। चिद्विलास। गुण बिना पर्याय, पर्याय का कारण है। यहाँ तो अभी गुण को अनुसरकर लेना है।

मुमुक्षु : पर्याय को भी स्वतन्त्र बताया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र है। आहा..हा..! ऐसा है। आहा..हा..! कुछ खबर नहीं

और झगड़ा तथा वाद-विवाद (करे)। 'वाद-विवाद करे सो अन्धा, सद्गुरु कहे सहज का धन्धा।' यह तो सहज का धन्धा है। इस ज्ञानावरणीय से ज्ञान होता, ज्ञानावरणीय में क्षयोपशम न हो तो ज्ञान (खुलता नहीं)। यह रतनचन्दजी बहुत लिखते हैं। जरा कुछ प्रश्न आया और कर्म के कारण ऐसा हुआ, कर्म के कारण ऐसा हुआ। रतनचन्द मुख्तार है न?

मुमुक्षु : धवल में ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले लिखा, परन्तु किस नय का कथन है, ये समझे बिना? वह यथार्थनय का कथन है, यह व्यवहारनय का कथन है, निमित्त का (कथन है)। आहा..हा..! समझ में आया?

उपयोग, धर्म है; जीव, धर्मी है। बारह प्रकार का उपयोग, उसकी पर्याय वह धर्म है। धर्म अर्थात् इसने धारण कर रखा हुआ धर्म। धर्म अर्थात् यह मोक्षमार्ग अभी नहीं। उपयोग जीव ने धारण कर रखा है, इसलिए धर्म और आत्मा धर्मी। समझ में आया? **उपयोग, धर्म है; जीव, धर्मी है।** आहा..हा..! ऐसे कथन सन्तों ने, दिगम्बर मुनियों ने इतने संक्षिप्त शब्दों में एकदम छह द्रव्य का ढिंढ़ोरा पीटा है। प्रत्येक समय की वह-वह वैभाविक या स्वाभाविक पर्याय का कर्ता वह द्रव्य है; दूसरा नहीं, नहीं, और नहीं। यहाँ तो छहों द्रव्यों का विभाजन हो गया। चार तो शुद्ध ही है। दो अशुद्ध (होते हैं), जीव और पुद्गल, तो भी कहते हैं कि यहाँ चार ज्ञान और तीन दर्शन विभाव कहेंगे और केवलज्ञान-केवलदर्शन को स्वभाव कहेंगे, तथापि वह सब स्वभाव कहो, विभाव कहो, परन्तु वह स्वयं को अनुसरकर हुआ है। समझ में आया? आहा..हा..! गजब बात है न! स्वतन्त्रता का ढ़िंढ़ोरा... आहा..हा..! यह स्वतन्त्र है। ढ़िंढ़ोरा अर्थात? ऐसा है, ऐसे प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया?

ये आँखें न हो तो कहीं उपयोग काम करे? कहो, ठीक। कान फूट जाये तो सुनने का उपयोग काम करे? ऐई! देवानुप्रिया! भगवान! प्रत्येक समय की पर्याय हीन हो, अधिक हो या विपरीत हो, वह स्वयं को अनुसरकर हो रही है। पर की कोई अपेक्षा है नहीं। निश्चय का स्वतन्त्र का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय अन्दर से आती है, तथापि अज्ञानी को भास होता है कि यह, यह इसमें से हुई। उसे यह भ्रम हो जाता है। पोपटभाई! आहा..हा..! ऐसी स्पष्टता... मुनियों, सन्तों, दिगम्बरों ने सर्वज्ञ को अनुसरणकर पन्थ टिका रखा है। आहा..हा..! समझ में आया?

यह तो (संवत्) १९७१ में यह कहा। लाठी के चातुर्मास में। १९७१। ५६ वर्ष हुए। ज्ञान-दर्शन और विकार कर्म के कारण बिल्कुल नहीं, जरा भी नहीं; अपने कारण से है। खलबलाहट हो गयी थी, खलबलाहट हो गयी। दामोदर सेठ बहुत कर्म का माननेवाला था, कर्मपक्षी बहुत कर्मपक्षी। तुम्हारे बातचीत हुई थी। वह इसे गिने नहीं। ऐसा सत्ता प्रिय। चर्चा तुम्हारे बहुत हुई थी। अरे! आहा..हा..! कर्म के कारण होता है, कर्म के बिना नहीं होता, ऐसा किसने सिखाया? हमारे गुरु ने तो सिखाया नहीं था, ऐसा कहते थे। हीराजी महाराज ने तो कहा नहीं था, तो यह कहाँ से लाये?

मुमुक्षु : अन्दर के गुरु के पास से।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पतंग उड़कर कहाँ जायेगी?

मुमुक्षु : सोनगढ़।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते थे।

मुमुक्षु : उस समय सोनगढ़ था ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ था नहीं, परिवर्तन भी कुछ नहीं था। ५६ वर्ष पहले। १९७१ के वर्ष। संवत् १९७१। (संवत्) १९७० में दीक्षा ली थी। यह १९७१ की बात है। दोपहर को व्याख्यान चलता था। अष्टमी और चतुर्दशी और पाखी... वे लोग पाखी करते हैं न? तब एक घण्टे मुझे कहते थे। तुम पढ़ो। फिर उसमें आता था। सब सुने। ऐसा कहे कि यह तो कुछ नया कहते हैं। यह गुरु ने कहा नहीं। वह हीराजी महाराज पीछे बैठे, वे सुनें। कुछ दृष्टान्त दिया। भगवती (सूत्र) में पहले शतक के तीसरे उपदेश में ऐसा कहा है कि अपने उठान्तर के बल से वीर्य पुरुषार्थ से ज्ञान की, दर्शन की, आनन्द की इत्यादि विकारी आदि पर्याय स्वयं से होती है, पर से नहीं होती।

मुमुक्षु : भगवती का नाम आवे, इसलिए बोल न सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोल न सके। परन्तु तब तो यह था ही कब? यह पढ़ा ही कहाँ था? दिगम्बर शास्त्र नहीं पढ़े थे।

मुमुक्षु : बहुत जल्दी हकीकत को पकड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो यह है। कर्म के कारण होता है, यह बात बिल्कुल इस

जैनशासन में है नहीं। कल्याणजी भाई! यह देखो! निकला यह। है या नहीं अन्दर?

मुमुक्षु : भगवती सूत्र में यह लिखा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह निकाला था, परन्तु वह थोड़ी अटपटी भाषा है। थोड़ी कठिन भाषा है। कांक्षा मोहनीय की भाषा है वहाँ। कांक्षा मोहनीय की जो मिथ्यात्व करता है, वह अपने पुरुषार्थ से करता है, ऐसा पाठ अन्दर है। उसमें से ये सब सिद्धान्त निकाले। कांक्षा मोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व।.... मिथ्यात्व वह कांक्षा मोहनीय अपने पुरुषार्थ से करता है। पुरुषार्थ से, वीर्य से, ऐसा पाठ है। इसलिए उसमें से कोई एकदम निकाल नहीं सकता। भगवती (सूत्र) पढ़ा। पहले-पहले ही पढ़ा (संवत्) १९७१ में पढ़ा और कहा यह तो ऐसा है। श्वेताम्बर शास्त्र में से निकाला था। तब तो यह (दिगम्बर शास्त्र) कहाँ पढ़े थे? यह तो १९७८ में सब हाथ आया। १९७८ में। ऐसा मार्ग भगवान का है कहा, भाई! कर्म के, कर्म के कारण कहते हो, वह अपने को जँचता नहीं। हमें यह बात जँचती नहीं। कहो, हरीभाई! समझ में आया इसमें? यह सब ऐसा सूक्ष्म है। अहो! भगवान आत्मा...। और उपशम करे तो भी पुरुषार्थ से करे, ऐसा वहाँ पाठ है। कर्म उपशम हो जाये अपने आप और यहाँ हो जाये, ऐसा नहीं। अपने पुरुषार्थ से अपना भाव उपशम करे। कर्म का उपशम कर्म के कारण। आत्मा अपने पुरुषार्थ से करता है।

यहाँ तो देखो क्या कहा? एक ही शब्द में गजब किया है! ओहो! आत्मा वस्तु, उसमें ज्ञान और दर्शन शक्ति चैतन्य गुण, उसकी समय-समय में जिस काल में जो पर्याय उपयोग की हो, उस काल में वह पर्याय उसके गुण को अनुसरकर होती है। एक ही सिद्धान्त। कहो, समझ में आया? ज्ञानी के पास से ज्ञान मिलना चाहिए, ऐसे शब्द श्रीमद् में आते हैं, वह सब व्यवहार की बातें हैं, क्योंकि ज्ञानियों के शब्द उसके कान में पड़ते हैं, परन्तु पड़ने पर इसका लक्ष्य द्रव्य पर जाये, तब इसे ज्ञान होता है। ऐसे न जाये तो भी अज्ञानी को जो कुछ ज्ञान होता है, वह द्रव्य को अनुसरकर होता है। यहाँ तो बाहर उपयोग है न? मति, श्रुत और विभंग अज्ञान है, वह भी अपने चैतन्य को अनुसरकर होता है। यहाँ बाहर उपयोग है न? समझ में आया? वीतराग का मार्ग ऐसा है, भाई! आहा..हा..!

मुमुक्षु : वह पर्याय भी स्वतन्त्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र। यहाँ तो अभी गुण को अनुसरकर कहा है। यहाँ

प्रवचनसार की १०१ गाथा में कहा है कि जो कोई केवलज्ञान या मति (ज्ञान) आदि की पर्याय उत्पन्न होती है, वह उत्पाद, उत्पाद के आश्रय है; ध्रुव के आश्रय नहीं, व्यय के आश्रय नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : क्रमबद्ध हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध ही है परन्तु क्रमबद्ध ऐसा मानना, ऐसे नहीं। वस्तु में से पर्याय आती है, वह वस्तु कैसी है? इसका भान होने पर उसे क्रमबद्ध का ज्ञान सच्चा कहने में आता है। समझ में आया? जैन वीतरागमार्ग, बापू! गम्भीर मार्ग है। जिसे गणधर-चार ज्ञान के धनी जिसकी रचना करे, तथापि वे भगवान को सुनें। आहा..हा..! इन्द्र, तीन ज्ञान का धनी शकेन्द्र और उसकी पत्नी एकावतारी, एक भव में मोक्ष जानेवाले। आहा..हा..! अरे! आस्था तो लाओ, आस्था तो लाओ। ऐसे जीव हैं, वे जीव भी भगवान के पास सुनते हैं, तथापि वे ऐसा मानते हैं कि यह मेरी पर्याय मुझे अनुसरकर होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चैतन्य अनुसारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं को अनुसरकर। बाहर से तो ऐसा बोले, हे नाथ! भरत चक्रवर्ती ने कहा न? जब ऋषभदेव भगवान मोक्ष पधारे। क्या कहलाता है? अष्टापद। भरत चक्रवर्ती को पता पड़ा कि भगवान मोक्ष पधारे हैं। (वे) आये। ऐसे देखने पर आँसुओं की धारा बहती चली जा रही है। इन्द्र, शकेन्द्र भी आये हैं। ये तो बहुत इन्द्र बदल गये, हों! अभी दूसरे इन्द्र हैं, उस समय दूसरे थे। ऋषभदेव भगवान के समय में नहीं। वे तो दूसरे इन्द्र थे। अभी दूसरे इन्द्र हैं। वे इन्द्र आये। (उन्होंने कहा) क्यों भरत! अरे यह भरत का सूर्य आज अस्त होता है। अरे! हमारा समाधान करनेवाला सूर्य जाता है। वे तो ऐसा बोले। यहाँ तो कहते हैं कि समाधान की पर्याय तो अन्दर से आती है परन्तु व्यवहार की रीति ही ऐसी होती है। भाषा और व्यवहार के कथन इस प्रकार के होते हैं। विनय है, बहुमान है। क्षायिक समकिती हैं, उस समय तीन ज्ञान हैं—मति, श्रुत, अवधि, भरत को।

मुमुक्षु : तद्भव मोक्षगामी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस भव में मोक्ष। इन्द्र ने कहा, भरत! तुम्हें तो इस भव में मोक्ष है न, हमें तो अभी एक देह धारण करना है। हम इन्द्र हैं, मनुष्य होकर हम मोक्ष जायेंगे। तुम तो इस भव में (मोक्ष जाओगे)। (भरतजी कहते हैं), इन्द्र! सब खबर है, परन्तु यह

विकल्प ऐसा आये बिना रहता नहीं है, इस कारण से, इस योग्यता के कारण यह विकल्प आता है, तथापि वे मानते हैं कि मेरी ज्ञान की दशा के समाधान मुझे अनुसरकर होते थे। गजब बातें, भाई! समझ में आया?

उपयोग, धर्म है; जीव, धर्मी है। दीपक और प्रकाश जैसा उनका सम्बन्ध है। दीपक, वह धर्मी है; प्रकाश, वह धर्म है। उनका सम्बन्ध है। कहो, समझ में आया? आगे आयेगा, उपयोग की व्याख्या में कहीं। ३१९ लिखा है। पृष्ठ ३१९ है न? (शुद्धोपयोग अधिकार में है) ३१९ में है। इस ज्ञान का धर्म तो दीपक की भाँति स्व-पर प्रकाशकपना है। दीपक की उपमा है, ३१९ पृष्ठ है। इस ज्ञान का धर्म तो दीपक की भाँति स्व-पर प्रकाशकपना है। ऐसी बीच में लाईन है। ये तो पढ़ा हो न, इसलिए लिखा हो। देर लगे, भाई! पृष्ठ वापस अलग पड़ना चाहिए न। इस ज्ञान का धर्म तो दीपक की भाँति स्व-पर प्रकाशकपना है। है या नहीं? ओहो..हो..! अभी तो ज्ञान या दर्शन की एक समय की पर्याय उसकी स्वतन्त्रता से हो, ऐसी भी अभी खबर नहीं और उसके (पर के) कारण होती है, वे तो बड़ी भ्रमणा में पड़े हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

दीपक और प्रकाश जैसा उनका सम्बन्ध है। ज्ञान और दर्शन के भेद से यह उपयोग दो प्रकार का है... ज्ञान-दर्शन के भेद से उपयोग के दो प्रकार हैं। **(अर्थात्, उपयोग के दो प्रकार हैं — ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग)। इनमें ज्ञानोपयोग भी स्वभाव और विभाव के भेद के कारण दो प्रकार का है।** देखो! वापस ज्ञान-उपयोग के दो प्रकार। पहला उपयोग साधारण कहा। उस उपयोग के दो प्रकार : ज्ञान और दर्शन। अब, ज्ञान-उपयोग के भी दो प्रकार। एक स्वभाव और (दूसरा) विभाव। प्रत्येक समय की पर्याय स्वतन्त्र है। विभाव हो या स्वभाव हो। आहा..हा..!

(अर्थात्, ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं - स्वभावज्ञानोपयोग और विभावज्ञानोपयोग)। स्वभावज्ञान तो कैसा है? **अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है;...** आहा..हा..! वापस स्वभावज्ञान के दो प्रकार कहेंगे। **स्वभावज्ञान, अमूर्त, अव्याबाध,...** है। बाधा / पीड़ारहित है। निमित्त की कोई बाधा नहीं। **अतीन्द्रिय और अविनाशी है; वह भी कार्य और कारणरूप से दो प्रकार का है...** स्वभावज्ञान भी कारण और कार्य दो प्रकार का है। **(अर्थात्, स्वभावज्ञान के भी दो प्रकार हैं—कार्यस्वभावज्ञान**

और कारणस्वभावज्ञान)। कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है... यह स्वभावज्ञान है। उपयोग है, उसके दो भेद—ज्ञान और दर्शन। ज्ञान के दो भेद—स्वभाव और विभाव। स्वभावज्ञान के दो भेद—कारणस्वभाव और कार्यस्वभाव। समझ में आया?

(कार्यस्वभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान)। कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है.... लो। यह क्या कहा? केवलज्ञान भी चैतन्य को अनुसरकर होनेवाला केवलज्ञान है। ऐसा पहला शब्द है, वह यहाँ ले लेना। केवलज्ञान, केवलज्ञानावरणीय का नाश हो तो केवलज्ञान हो तो ऐसा कहते हैं। सोनगढ़वाले कहते हैं केवलज्ञानपर्याय स्वयं से होती है, तब केवलज्ञानावरणीय उसके कारण से नाश होता है, ऐसा नहीं, केवलज्ञानावरणीय नाश हो तो केवलज्ञान होता है, ऐसा लो। ऐई! यह क्या? रतनचन्दजी ऐसा लिखते हैं। बहुत लिखते हैं... बहुत लिखते हैं। बेचारे लोगों को भान नहीं होता। बनियों को समय नहीं मिलता। कितने ही तो चौबीस घण्टों में घण्टे-दो घण्टे आते हैं। उसमें वे ऊपर बैठे वे बातें करे। सुनकर जाना। भान कुछ होता नहीं। दस बोधा, दस बोधरी, दस बोधा का बच्चा, ऊपर कहे गप्पा, वह कहे, सच्चा। भान नहीं होता। पण्डितजी! आहा..हा..!

यह कहाँ ले गये, देखो! उपयोग की व्याख्या चैतन्य को अनुसरकर होनेवाले परिणाम। वे परिणाम चैतन्य के सामान्य दो। अब उनके भी दो भेद—ज्ञान और दर्शन। उस ज्ञान के भी दो भेद—स्वभाव उपयोग और विभाव उपयोग। स्वभाव उपयोग के भी दो भेद—कारणस्वभाव उपयोग और कार्यस्वभाव उपयोग। उसमें कार्यस्वभाव उपयोग की व्याख्या चली। सर्वथा निर्मल केवलज्ञान। वह केवलज्ञान की पर्याय हुई। चैतन्य को अनुसरकर होती है। देखो! पूर्व के चार ज्ञान थे, इसलिए केवलज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं, भाई! क्या कहा? जीव में केवलज्ञान होता है, तो केवलज्ञानावरणीय का नाश होता है, इसलिए होता है - ऐसा नहीं है। पूर्व में चार ज्ञान थे, उनका नाश होकर केवलज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। चैतन्य को अनुसरकर केवलज्ञान होता है। पण्डितजी! उसमें ऐसा है? पहले ऐसा पढ़ा था?

मुमुक्षु : ....चैतन्य अनुविधायी परिणाम, वह उपयोग, यह तो पढ़ लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात। बात तो ऐसी है। स्पष्टीकरण समझे बिना... आहा..हा..!

समझ में आया ? यह तो तत्त्व की स्थिति है, ऐसा इसे मानना चाहिए। जिस प्रकार से स्थिति से विपरीत माने तो वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है।

केवलज्ञान सकल-विमल। पर्याय है न ? इसलिए कार्य (है)। पर्याय है न ? इसलिए कार्य है। **सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है...** एक समय में तीन काल, तीन लोक जानने की पर्याय है। वह भी पर्याय उस समय में जो हुई, वह चैतन्य को अनुसरकर हुई है। निमित्त के अभाव को अनुसरकर या पूर्व के चार ज्ञान थे, उन्हें अनुसरकर (हुई है), ऐसा नहीं है। आहा..हा..! अथवा वह केवलज्ञान की पर्याय चैतन्य को अनुसरकर (हुई है)। अन्दर दूसरे गुणों को अनुसरकर हुई है, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया ? अन्दर तो त्रिकाल श्रद्धागुण है, आनन्दगुण है, उन्हें अनुसरकर हुई, ऐसा नहीं। समझ में आया ? वह केवलज्ञान की पर्याय कार्यस्वभाव निर्मल ज्ञान-परिपूर्ण दशा, वह भी चैतन्य के गुण को अनुसरकर हुई है। उस गुण में उस शक्ति की ताकत थी, वह उस समय बाहर आयी है।

मुमुक्षु : दूसरे गुण को...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे गुण की यह पर्याय नहीं। यह तो चैतन्यगुण की पर्याय है। समझ में आया ? दूसरे गुण का आश्रय इसमें है नहीं। भले अभेद में आ जाये परन्तु ज्ञान -उपयोग चैतन्य को अनुसरकर हुआ है। समझ में आया ?

नियमसार (अर्थात्) मोक्ष का मार्ग और मोक्ष की बात करूँगा, कहते हैं। '**मग्गो मग्गफलं**' '**मग्गफलं**' यह केवलज्ञान। यह केवलज्ञान कैसे हुआ ? चैतन्य को अनुसरकर होता है। मोक्षमार्ग हुआ; इसलिए हुआ, ऐसा भी नहीं। देखो न! यह स्वतन्त्र...

मुमुक्षु : नियमसार अर्थात् नियम बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नियम बताया कि इसका निश्चय नियम क्या है ? इसकी वास्तविक स्थिति क्या है, वह बताते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

यह नियमसार, जीव अधिकार चलता है। १०वीं गाथा। अन्त में आया, अन्त में, देखो! है पीछे। ज्ञान के प्रकार की बात चलती है। आत्मा ज्ञानस्वभाव है, उसमें स्वभावज्ञान.. है अन्दर देखो! आत्मा में ज्ञान है और ज्ञान के दो प्रकार हैं। एक स्वभावज्ञान और एक विभावज्ञान। विभावज्ञान की व्याख्या जरा आ गयी थोड़ी। उसमें स्वभावज्ञान के दो प्रकार हैं। वह स्वभावज्ञान अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है। वह भी कार्य और कारणरूप दो प्रकार का है, अर्थात् स्वभावज्ञान के भी दो प्रकार हैं—कार्यस्वभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान। कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है। क्या कहते हैं, देखो! आत्मा में त्रिकाली ज्ञान गुणस्वभाव है, उसे तो यहाँ कारणस्वभावज्ञान कहा है, और उसमें से प्रगट होती केवलज्ञानपर्याय, उसे कार्यस्वभावज्ञान कहते हैं।

वह कार्यस्वभावज्ञान केवलज्ञान आत्मा में हो, वह अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है। केवलज्ञान जो आत्मा में होता है। किस प्रकार होता है, वह पाठ में है। अभी टीका में आयेगा। कार्यस्वभावज्ञान, ज्ञान की पर्याय में पूर्णता प्रगट हो तो (उस) कार्यस्वभावज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। वह केवलज्ञान अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है। कार्य तो सकल विमल केवलज्ञान है। एक समय की पर्याय, सर्वज्ञ की पर्याय-केवलज्ञान, वह तो सकल विमल-सर्वथा निर्मल केवलज्ञान (है)। उसे कार्यस्वभाव (ज्ञान) कहा जाता है। वह कार्य किस प्रकार होता है? केवलज्ञान की पर्याय आत्मा में होती है तो वह किस प्रकार होती है, वह कहते हैं। केवलज्ञान है, उसका कारण परमपारिणामिकभाव में स्थित..। देखो न!

अन्तिम लाईन है न यह? **चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है - गहरा उतर जाता है,...** २६ पृष्ठ पर है। सूक्ष्म बात है, भाई! जैनदर्शन का वास्तविक तत्त्व क्या है, उसमें अभी गड़बड़ हो गयी। आहा..हा..! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ, जिन्हें एक समय में त्रिकाल ज्ञान हुआ। तो कहते हैं कि उन्हें त्रिकाल ज्ञान कैसे हुआ? और जिन्हें केवलज्ञान होता है, उन्हें केवलज्ञान किससे होता है? भगवान आत्मा में ज्ञानस्वभाव, अतीन्द्रिय अव्याबाध, अमूर्त, अविनाशी - ऐसा जो स्वभाव है, उसमें अन्तर्मुख होकर

प्रवेश करके, अन्दर गहरा उतरकर, केवलज्ञान की कारणरूप शक्तिरूप ज्ञान है, उस ज्ञान के पाताल को पकड़ने से... सेठी! आहा..हा..! केवलज्ञान होता है। इसका अर्थ कि कोई देह की क्रिया, पंच महाव्रत की क्रिया, वह तो राग है, उससे भी केवलज्ञान नहीं होता; और पूर्व में चार ज्ञान की, मति (ज्ञान) की पर्याय हो या बारह अंग का श्रुतज्ञान (हो), समझ में आया? पर्याय में केवलज्ञान होने से पहले चौदह पूर्व के ज्ञान की पर्याय (हो), मति (ज्ञान) में जातिस्मरण इत्यादि अनेक हजारों भवों का ज्ञान आदि उसकी शक्तिप्रमाण हो, उस ज्ञान से भी केवलज्ञान नहीं होता। देखो! अभी भारी गड़बड़ (चलती है)। यह करे तो केवल (ज्ञान) होगा, यह करे तो मोक्ष होगा। क्या मोक्ष होगा? मोक्ष किसे कहते हैं? इसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? पोपटभाई!

यह शास्त्र का पठन और बाहर का उघाड़ हो तो उसके कारण से केवलज्ञान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन-क्षायिक समकितपूर्वक चार ज्ञान की पर्याय हो तो भी क्षायिक समकित की पर्याय जो समकित है, उससे भी केवलज्ञान नहीं होता। आहा..हा..! केवलज्ञान का कारण परमपारिणामिकभाव से स्थित.. अहो! आत्मा और उसमें ज्ञानस्वभाव, मूलस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, अविनाशी स्वभाव है। उसमें एकाग्र होने से, उस गुण में एकाग्र होने से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया? एकरूप ज्ञानस्वभाव, ज्ञायकभाव वहाँ कहा। यहाँ ज्ञानस्वभाव गुण कहा है। पर्याय (का) वर्णन करना है न अकेला। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह इकाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इकाई।

भगवान आत्मा सत्ता-अस्तित्व है न? अविनाशी अस्तित्व है, तो उसमें ज्ञानगुण है। ऐसे अनन्त गुण अविनाशी हैं, परन्तु अभी तो केवलज्ञान की पर्याय का कारण बताना है। अन्दर में दूसरे श्रद्धागुण, चारित्रगुण, आनन्दगुण हैं, वह भी केवलज्ञान की पर्याय का कारण नहीं। समझ में आया? आत्मा में केवलज्ञान-उत्पत्ति का कारण, कहते हैं कि देह की क्रिया तो नहीं, (क्योंकि) वह तो जड़ की है। अन्दर में पाँच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह राग है; उससे भी केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती और केवलज्ञान उत्पन्न होने से पूर्व राग के पीछे अन्दर चार ज्ञान की पर्याय हो, तो भी उन चार ज्ञान की पर्याय से भी केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता और अन्तर में श्रद्धा, शान्ति, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण

हैं, उन गुणों के कारण भी केवलज्ञान नहीं होता। यह 'आतम भावना भावतां...' श्रीमद् में आता है न? 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे', परन्तु आत्मा क्या, भावना क्या और केवल (ज्ञान) क्या? कुछ खबर नहीं। क्यों, प्रेमचन्दभाई! किया था न, कितनी बार? बहुत किया था।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा अर्थात् अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि शक्ति का पिण्ड। अब उसकी भावना; यहाँ केवलज्ञान की बात लेना है। तो भावना का अर्थ ज्ञानगुण जो त्रिकाल है, उसमें एकाग्र होना, वह भावना है। उसमें 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे..' श्रीमद् में आता है। ऐई! चेतनजी! इसे बहुत रटाया होगा तब। श्रीमद् में इसने दीक्षा ली थी।

मुमुक्षु : जाप करावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाप करना, वह तो विकल्प है। आहा..हा..! भाई! मार्ग कोई (अलग है)। अनन्त काल से इसने यथार्थरूप से यह बात सुनी नहीं। बाहर की प्रवृत्ति ऐसा करना, वैसा करना, जाओ, वह धर्म है और मोक्ष होगा। धूल में भी मोक्ष नहीं होगा, अच्छा पुण्य भी नहीं बँधेगा। समझ में आया? आहा..हा..! अच्छा पुण्य नहीं बँधेगा, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : आतम भावना भावतां।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उस ज्ञानानन्दस्वभाव आत्मा में ज्ञान। परम स्वभावभाव आत्मा में ज्ञान ध्रुव पड़ा है, उस ज्ञान की भावना, ज्ञान में अन्तर्मुख एकाग्र होना। अन्तर में प्रवेश करना, अन्दर गहरा उतर जाना। वह इस कलश में आयेगा। समझ में आया? कितना स्पष्ट किया है?

मुमुक्षु : जाप में भी बाह्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाप तो कहीं रह गया विकल्प। वह तो राग है। परन्तु जाप करने के पश्चात् कदाचित् सम्यग्दर्शन-ज्ञान उत्पन्न हुआ, तो वह पर्याय भी केवलज्ञान का कारण नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? इतने थोड़े शब्दों में (कितना भरा है)! पद्मप्रभमलधारिदेव जंगलवासी दिगम्बर मुनि थे। आत्मध्यान (में लीन थे)। आनन्दकन्द प्रभु, सच्चिदानन्द आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें ज्ञानस्वभाव त्रिकाली अव्याबाध पड़ा है। अतीन्द्रिय

अव्याबाध है। उसमें अन्तर्मुख होने से, उसे कारण बनाकर, अन्तर में से कार्य-केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। समझ में आया? क्योंकि केवलज्ञान की पर्याय, ऐसी अनन्त (पर्यायें) ज्ञानगुण स्वभावभाव में शक्तिरूप पड़ी है। समझ में आया? देखो! यहाँ तो समकित के कारण या अन्दर श्रद्धागुण त्रिकाली है, उसके कारण से भी केवलज्ञान नहीं। समझ में आया? एक गुण का कार्य दूसरे गुण से नहीं होता। गजब बात है! ओहो..हो..! सन्तों की बात! आहा..हा..! अन्दर स्थिर हो जाये, स्थिर। स्थिर हो जा, बापू! अन्दर में जा। आहा..हा..!

मुमुक्षु : एक गुण का कार्य दूसरे गुण से नहीं होता तो एक द्रव्य का कार्य दूसरे द्रव्य से किस प्रकार हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान से तो होता है या नहीं? देव-गुरु का भजन करे। देव-गुरु... देव-गुरु... देव-गुरु... शुद्ध हैं वे। शुद्ध हैं, इसलिए उनसे होता है या नहीं? शिवलालभाई नहीं। वे गये। उनके पिता कहते थे, (संवत्) २०१० के वर्ष में। देव-गुरु-शास्त्र जो शुद्ध हैं, तो शुद्ध के कारण होता है, शुद्ध के कारण शुद्धता होती है। वे कहाँ अशुद्ध हैं? अरे! वे शुद्ध हैं परन्तु उनका आश्रय करने जायें, वहाँ अशुद्धता उत्पन्न होती है। देव-शास्त्र-गुरु पर हैं, उनका आश्रय अवलम्बन करने जाये तो विकल्प / राग उठता है। समझ में आया? उनसे कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। यहाँ तो केवलज्ञान की बात है, परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय, वास्तव में अन्दर श्रद्धागुण जो परमपारिणामिकस्वभाव में पड़ा है, परमपारिणामिकस्वभावभाव ध्रुव में श्रद्धागुण शक्तिरूप त्रिकाल है। उसके कारण से वास्तव में श्रद्धागुण की पर्याय उत्पन्न होती है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया? समझाय छे कांई? हमारी गुजराती थोड़ी आवे न यह तो। बाद में आये। पहले देखा था। नहीं दिखे तो सबेरे गुजराती में चलाया। बाद में आये थे। समझ में आया? आहा! अरे! वास्तविक भगवान तीर्थंकर ने क्या मार्ग कहा है, (उसकी) खबर नहीं; बाहर की प्रवृत्ति ऐसे करो, वैसे करो। कर-करके मर गया।

यहाँ तो कहते हैं कि एक गुण की पर्याय दूसरे गुण के कारण नहीं होती, भाई! आहा..हा..! देखो न! पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका बनायी है न! अब (कुछ लोगों को) यह टीका मान्य नहीं। कहो, अरे!

मुमुक्षु : गाथा स्पष्ट थी, यह मैला कर डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट कर डाला। कितना स्पष्ट किया है! आहा..हा..! यथार्थ-यथार्थ वस्तु।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव से तो शक्तिरूप से कारणज्ञानरूप तो त्रिकाल अन्दर में पड़ा है। आहा..हा..! ध्रुव, वह ध्रुव ज्ञान जो त्रिकाली अविनाशी है, उसका अन्तर आश्रय करना, उसमें एकाग्र होना; अन्दर में जो गुण है, वहाँ वर्तमान पर्याय को ले जाना। आहा..हा..! गहरे उतर जाना, गहरे। सागर में-समुद्र में नीचे जैसे मोती हो तो गहरे उतरे तो मोती हाथ में आते हैं। समझ में आया? समुद्र में ऊपर-ऊपर जाये तो मिले? अन्दर मोती हों, वे ऊपर से मिलें? इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान समुद्र अन्दर है... आहा..हा..! उस ज्ञानस्वभावरूपी निज स्वभावरूप ज्ञानसमुद्र में प्रवेश करे। पर्याय में नहीं, राग में नहीं; गुण में प्रवेश करे, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! प्रवेश का अर्थ? उसमें एकाग्र होना। देखो, यह पद्धति। केवलज्ञान अथवा मोक्ष पाने की पद्धति। कितनों ने तो जिन्दगी में सुना भी नहीं होगा। कहे मोक्ष होता है... मोक्ष होता है.. धर्म करें तो। परन्तु धर्म क्या? मोक्ष क्या? तुझे खबर ही नहीं।

मुमुक्षु : कर्म का क्षय हो तब होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म तो उसके घर में रहे। कर्म का क्षय हो तो केवलज्ञान हो, यह बात यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो क्षायिक समकित हुआ है तो उससे केवलज्ञान होता है, यह भी नहीं है। यहाँ तो चार ज्ञान की सम्यक् पर्याय उत्पन्न हो तो उससे केवलज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है और अन्तर आत्मा में अनन्त आनन्द पड़ा है तो आनन्द के आश्रय से केवलज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? देखो! टीका, देखो! यह शास्त्र। वर्तमान में तो सब धूल धमाका.. ऐसा करूँ, वैसा करूँ, सुधार करूँ... किसका सुधार? तत्त्व में सुधार हुए बिना सुधार कहना किसे? समझ में आया? जिसे कल्याण करना है तो बात है। समझ में आया? बाहर में दिखाव करना हो कि हम धर्म करते हैं। ऐसा है, वैसा है, हो, दुनिया में बाहर प्रसिद्ध हो अर्थात् संसार में पड़ो। आहा..हा..! समझ में आया?

कहते हैं **कार्य तो सकल विमल...** बस, कार्य में इतना शब्द प्रयोग किया है। **केवलज्ञान है और उसका कारण, परम-पारिणामिकभाव से स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक...** केवलज्ञान तो नया उत्पन्न होता है। यह ज्ञान तो त्रिकाल निरुपाधि अन्दर है। उपाधि तो कुछ

है ही नहीं। कर्म के अभाव की अपेक्षा भी नहीं। कर्म के निमित्त की तो नहीं, परन्तु कर्म के अभाव की अपेक्षा भी नहीं। वह तो त्रिकाल निरुपाधिक तत्त्व है। कहो, यह सेठी जयपुर के रहनेवाले हैं। जयपुर तो जैन का बड़ा गाँव कहलाता है। जैनपुरी, लो! आहा..हा..! भाई! तेरा वास्तविक स्वभाव क्या है, वह कभी सुना ही नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह बात पूरे हिन्दुस्तान में नहीं तो जयपुर में कहाँ से आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में तो है। सब आत्मा में है। आहा.हा..!

केवलज्ञान का कारण, एक-एक गुण की पर्याय का कारण, केवलज्ञान पर्याय है न? केवलज्ञान कार्य कहो, केवलज्ञान पर्याय कहो, या दशा कहो, या अवस्था कहो, वह स्वाभाविक केवलज्ञान की पर्याय सकल विमल है और उस कार्य का कारण त्रिकाल निरुपाधि ज्ञानगुण ध्रुव है। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ तो अभी विवाद उठाना है, भाई! इस व्यवहार से होता है, ऐसा व्यवहार करो तो निश्चय होता है (ऐसा विवाद करना है)। अब इतना विवाद। अरे, भगवान! सुन तो सही भाई! यहाँ तो (कहते हैं), व्यवहार से तो नहीं, परन्तु निश्चय से भी जो अपने स्वभाव के आश्रय से मोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न हुई, उससे भी केवलज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, रतिभाई! तुम्हारे श्वेताम्बर में था कुछ? तुम स्थानकवासी थे न? यह स्थानकवासी, तुम मन्दिरमार्गी। तुम्हारी तो खबर है न। यह चुनीभाई स्थानकवासी है। आहा..हा..! वासी में वासी रह गया।

भगवान आत्मा... आहा..! कैसी बात की है! गजब बात की है! ओहो..हो..! तीर्थंकर का पेट (अभिप्राय) खोलकर रखा है, भाई! तुझे केवलज्ञान चाहिए, केवलज्ञान की अविनाशी कार्यदशा हो, कायम रहे, ऐसा लिया न यहाँ तो? है तो एक समय की पर्याय, परन्तु वह उत्पन्न हुआ तो ऐसा का ऐसा केवलज्ञान सादि-अनन्त रहेगा। उस केवलज्ञान का कारण अन्दर ज्ञान-गुण स्वभाव है, उसे दृष्टि में लेकर, ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञान में ध्येय बनाकर, एकाग्र होने से केवलज्ञान होगा, भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में है। बाहर से कहाँ से आयेगा? अन्दर में भी एक-एक गुण की पर्याय उस गुण के कारण से आयेगी, ऐसा कहते हैं। कितनी स्वतन्त्रता और स्पष्टता।

केवल विभावरूप ज्ञान, तीन हैं... लो, स्वभावज्ञान के दो भाग आ गये। **केवल विभावरूप ज्ञान, तीन हैं—कुमति, कुश्रुत, और विभङ्ग।** वह भी मति, श्रुत और विभंग अज्ञान, वह भी अपने चैतन्य को अनुसरकर होते हैं। ऐसा सिद्ध करना है न? कर्म का नाश होकर हुए हैं, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

इस उपयोग के भेदरूप ज्ञान के भेद, अब कहे जानेवाले दो सूत्रों द्वारा (११ और १२वीं गाथा द्वारा) जानना। आगे कहेंगे...

भावार्थ :— भावार्थ है न यह? **चैतन्यानुविधायी परिणाम, वह उपयोग है।** कल आया था। परन्तु कल गुजराती में आया था, भाई! आज वापस हिन्दी में आ गया। आहा..हा..! भगवान तेरा मार्ग कुछ अलग है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मुख से निकली हुई बात आगम में... ऐसा कहा न, आगम में ऐसा कहा है, ऐसा आया था न? आगम में ऐसे तत्त्व कहे हैं। क्या कहा? सर्वज्ञ भगवान, उनकी वाणी, उसमें छह द्रव्य कहे। यह बात चलती है। उसमें भी आत्मद्रव्य में केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो? आगम में क्या कहा है? शास्त्र में क्या कहा है? यह बात चलती है।

भगवान के आगम में ऐसा कहा कि केवलज्ञान का कार्य जब उत्पन्न होता है, वह अन्तर ज्ञानगुण के कारण से उत्पन्न होता है - ऐसा आगम में कहा है। भगवान ने ऐसा कहा तो वाणी में ऐसा आया। आहा..हा..! समझ में आया? यह वाणी देखो! परमागम शास्त्र। यह श्वेताम्बर की वाणी में यह बात है ही नहीं। यह तो एक समझने के लिये (बात है), हों! किसी के साथ विरोध की बात नहीं है। वह भी आत्मा है। किसी के प्रति विरोध करना, द्वेष करना, यह बात नहीं है। सब आत्मा हैं, परन्तु वस्तु का स्वरूप यह है। समझ में आया? आहा..हा..!

यहाँ तो क्या आया अभी? कि भगवान की वाणी परमागम और परमागम में ऐसा कहा है। उनके (श्वेताम्बर के) ३२-४५ सूत्र हैं तो उनमें यह बात है ही नहीं, हमने तो सब देखें हैं न। समझ में आया? ४५-३२ में करोड़ों श्लोक। टीका में कहीं थोड़ा लेकर डाला हो, परन्तु वस्तु में नहीं है। आहा..हा..! परन्तु तुमने कितने वर्ष वहाँ मुंडाया है। कितने वर्ष हुए?

मुमुक्षु : पचपन वर्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : पचपन वर्ष। श्वेताम्बर में बहुत क्रियाकाण्ड करते-करते... **चैतन्यानुविधायी परिणाम, वह उपयोग है।** यह व्याख्या। भगवान आत्मा का चैतन्यगुण, उसे अनुसरकर दशा हो, उसे उपयोग कहते हैं। चैतन्य एक आत्मा का चैतन्यगुण। आत्मा द्रव्य-वस्तु, उसका चैतन्यगुण। उसे अनुसरण करके परिणाम, जो अवस्था हो, उसे उपयोग कहते हैं। वह **उपयोग, दो प्रकार का है—(१) ज्ञानोपयोग, और (२) दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं—(१) स्वभावज्ञानोपयोग, और (२) विभावज्ञानोपयोग। स्वभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है—(१) कार्यस्वभाव -ज्ञानोपयोग (अर्थात्, केवलज्ञानोपयोग)**, अभी कहा वह। **और (२) कारणस्वभाव -ज्ञानोपयोग (अर्थात्, सहजज्ञानोपयोग)।**

नीचे नोट। ***सहजज्ञानोपयोग, परमपारिणामिकभाव से स्थित है...*** अभी आ गया है वह। आहा..हा..! वस्तु-वस्तु भगवान आत्मा में ज्ञानगुण, चैतन्य का नूर-पूर अन्दर पड़ा है। आहा..हा..! वह ***परमपारिणामिकभाव से स्थित है तथा त्रिकाल उपाधिरहित है,...*** आत्मा का ज्ञानस्वभाव त्रिकाली निरुपाधि (उपाधि) रहित है। ***उसमें से (सर्व को जाननेवाला) केवलज्ञानोपयोग प्रगट होता है।*** उसमें से केवलज्ञान की दशा प्रगट होती है। ***इसलिए सहजज्ञानोपयोग, कारण है और केवलज्ञानोपयोग, कार्य है।*** है नीचे? भगवान आत्मा में सहजज्ञानोपयोग त्रिकाल। त्रिकाल ज्ञानोपयोग जो पड़ा है, वह कारण है और केवलज्ञानोपयोग, कार्य है। आहा..हा..! ऐसा कारण और कार्य, देखो तो सही! कारण-कार्य जाना, वह सब जाना। यह चिद्विलास में आता है न? भाई! जैनदर्शन का यथार्थ कारण-कार्य जाने तो सब जाने। आहा..हा..! कारण-कार्य यह।

ऐसा होने से सहजज्ञानोपयोग को कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है और केवलज्ञानोपयोग को कार्यस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है। लो! ऐसी व्याख्या! यह कन्दमूल नहीं खाना, यह व्रत पालना, यह सम्मेदशिखर की यात्रा करना, इसमें तो ठीक पड़ता है, भाई! उसमें तो राग की मन्दता हो तो पुण्य है; धर्म-वर्म है नहीं। जिसको शान्ति से आत्मा का जो वास्तविक तत्त्व है, उसकी समझ करनी हो तो यह है। बाकी तो सर्वत्र हो.. हा.. हो..हा.. चलता है, चलो, संसार अनादि का है तो चलता है। अन्दर सहज ज्ञान हो गया न?

अब **विभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है...** यह आगे आयेगा। **(१) सम्यक् विभावज्ञानोपयोग, और (४) मिथ्या विभावज्ञानोपयोग (अर्थात्, केवल विभाव - ज्ञानोपयोग)। सम्यक् विभावज्ञानोपयोग के चार भेद (सुमतिज्ञानोपयोग, सुश्रुतज्ञानोपयोग, सुअवधिज्ञानोपयोग, और मनःपर्ययज्ञानोपयोग)...** यह विभाव कहने में आता है। है सम्यग्ज्ञान परन्तु अभी अपूर्ण है, इस अपेक्षा से इसे विभाव कहा जाता है। वास्तविक पूर्णता नहीं, इसलिए विभाव कहने में आता है। समझ में आया? जैसे इन्द्रिय पूर्ण नहीं हो तो विकलेन्द्रिय कहते हैं न? वैसे ज्ञान पूर्ण नहीं तो उसे विभावज्ञान कहा है। आहा..हा..!

अब अगली दो गाथाओं में कहेंगे। मिथ्या विभावज्ञानोपयोग के, अर्थात् केवल विभावज्ञानोपयोग के तीन भेद हैं — (१) कुमति-ज्ञानोपयोग, (४) कुश्रुतज्ञानोपयोग, और (३) विभङ्गज्ञानोपयोग अर्थात् कुअवधिज्ञानोपयोग]।

श्लोक-१७

[अब, दसवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं]

(मालिनी)

अथ सकल-जिनोक्त-ज्ञानभेदं प्रबुद्ध्वा,
परिहृतपरभावः स्वस्वरूपे स्थितो यः।
सपदि विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः।।१७।।

(वीरछन्द)

जो नर जिनवर कथित ज्ञान के सकल भेद को लेता जान।
निजस्वरूप में थिर रहकर वह परभावों को तजे सुजान॥
निज चैतन्य चमत्कारमय भावमात्र में होता लीन।
परमश्रीरूपी कामिनी को त्वरित वरे यह पुरुष प्रवीण॥१७॥

श्लोकार्थ :- **जिनेन्द्रकथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर, जो पुरुष परभावों का परिहार करके, निजस्वरूप में रहते हुए, शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है - गहरा उतर जाता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है (अर्थात्, मुक्तिसुन्दरी का पति होता है।)॥१७॥**

श्लोक-१७ पर प्रवचन

अब, दसवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-

विशति का अर्थ किया, नहीं ? **विशति** ऐसा शब्द होगा। विशत। १७वाँ कलश। पृष्ठ २६। हमें हिन्दी नहीं आती है, थोड़ी-थोड़ी (आती है)। हमारे (गुजराती में) सत्तर कहते हैं, एक और सात को सत्तर कहते हैं। तथा सात और शून्य को सीतेर कहते हैं।

अथ सकल-जिनोक्त-ज्ञानभेदं प्रबुद्ध्वा,
परिहृतपरभावः स्वस्वरूपे स्थितो यः।
सपदि विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।१७।।

दो शब्द कठोर-भारी। **सपदि विशति** शीघ्ररूप से अन्दर प्रवेश कर। आहा..हा..! शीघ्रता से। श्रीमद् में आया है न यह ? शीघ्रता से होओ, शीघ्रता से तजो, वैसे इस **सपदि** का अर्थ शीघ्रता से है और विशति का अर्थ अन्दर प्रवेश कर। नीचे इसका अर्थ।

श्लोकार्थ :- जिनेन्द्रकथित... जिनेन्द्रकथित-वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ। आया न ? जिनेन्द्र और आगम कहा था न ? आगम में ऐसा कहा, तो **जिनेन्द्रकथित...** वीतराग परमेश्वर पूर्ण परमात्मा, जिनकी दशा पूर्ण वीतराग हो गयी है। अन्तर स्वभाव में एकाकार होकर वीतरागस्वभाव है, चारित्रस्वभाव है, उसका आश्रय करने से भगवान को वीतरागभाव उत्पन्न हुआ है। ऐसा **जिनेन्द्रकथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर,...** समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर करना क्या ?

जो पुरुष परभावों का परिहार करके,... विकल्पादि परभाव का लक्ष्य छोड़कर। **निजस्वरूप में रहते हुए,...** अपना ज्ञानस्वभाव भगवान, निजस्वभाव में स्थित रहता हुआ

अन्दर रहता हुआ। राग को छोड़कर और एक समय की पर्याय की ओर का भी लक्ष्य छोड़कर। **निजस्वरूप में रहते हुए,...** अपने शाश्वत् ध्रुवस्वरूप में रहता हुआ। **शीघ्र...** यह **सपदि** का अर्थ है। **सपदि** अर्थात् शीघ्र। और फिर **विशति चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है...** है न? **विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं ,** यह चैतन्य चमत्कार सृष्टि के ख्याल में नहीं है। अन्तर में भगवान चैतन्य चमत्कार ऐसा अपना निज स्वभाव, उसमें शीघ्ररूप से जो आत्मा अन्तर में **गहरा उतर जाता है,...** प्रवेश करता है, उसे केवलज्ञान हो जाता है। आहा..हा..! लो, पोपटभाई!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान की शुरुआत में धर्म की पहली दशा अन्तर्मुख होकर होती है परन्तु यहाँ तो पूर्व की बात करनी है न? सम्यग्दर्शन जो धर्म की पहली सीढ़ी, उस सम्यग्दर्शन का भी कारण वह आत्मद्रव्य है। त्रिकाली ध्रुव पूरा द्रव्य लो तो। नहीं तो अन्दर श्रद्धा-गुण है, त्रिकाली श्रद्धा-गुण परमपारिणामिकस्वभाव में स्थित है। ऐसे द्रव्यस्वभाव का अन्तर्मुख आश्रय करके सम्यग्दर्शन होता है। कहो, समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। देव-गुरु शास्त्र की भक्ति का विकल्प उठे, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता, वैसे एक समय की व्यक्त पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। यहाँ की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन त्रिकाल श्रद्धागुण जो परमस्वभाव में पड़ा है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। शान्तिभाई! गजब, भाई! यहाँ तो नव तत्त्व की श्रद्धा करो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, वह सम्यग्दर्शन। हैरान.. हैरान कर डाला है।

मुमुक्षु : करते-करते आगे बढ़ा जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर पीते-पीते अमृत की डकार आयेगी, ऐसा कभी होता नहीं। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है? राग जहर है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छोड़े? छोड़े कौन और रखे कौन? समझ में आया? ज्ञानी को भी आता है। आता है तो आओ, जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। उसके कारण से होता है। भारी कठिन। तुम्हारे गाँव के कोई कबीर का था। भूराभाई के साथ कोई आया था। कबीर का कोई किसान (था)। बड़ी अध्यात्म की बातें बोलता था। बहुत वर्ष पहले की बात है। बाजार में कमरा है, वहाँ उतरे थे। वहाँ बाजार में बड़ा कमरा है न वहाँ, फिर रात्रि

में भूराभाई और .... कल्पवेदिक नाम की कोई बड़ी सज्झाय है उनकी। वस्तु में कुछ नहीं परन्तु ऐसे आध्यात्मिक बात करे। किसान था। भूराभाई का उसे संग था। यह तो जिनेन्द्रकथित बात तो अन्यत्र कहीं है नहीं। आहा..हा..! भले अध्यात्म की बातें थीं।

वस्तु जहाँ अन्तर्मुख भगवान शक्ति का पिण्ड है। उस शक्ति का स्पर्श भी किया नहीं। वहाँ तो, तीन बोल हो गये। द्रव्यवस्तु, शक्तिवान। शक्तिवान एक, शक्ति अनन्त और अनन्त शक्ति के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली पर्यायें भी अनन्त। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त, जिनेन्द्र के अतिरिक्त कहीं नहीं है। समझ में आया?

शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व... देखो, यह तत्त्व! श्रीमद् ने कहा है न? गुप्त चैतन्यचमत्कार सृष्टि के लक्ष्य में नहीं है, ऐसा शब्द है। गुप्त चैतन्यचमत्कार सृष्टि के लक्ष्य में नहीं है। भगवान आत्मा में अन्दर गुप्त चमत्कार पड़ा है। अन्दर शक्तिरूप निधान पड़ा है, वह गुप्त चमत्कार है। समझ में आया? राग का माहात्म्य, निमित्त का माहात्म्य, एक समय की वर्तमान अवस्था का माहात्म्य परन्तु गुप्त चमत्कार इसे कहते हैं। चैतन्यचमत्कार! अन्तर में चैतन्यचमत्कार स्वभावरूप भगवान में शीघ्र प्रवेश करते हैं, स्पर्श करते हैं, पर्याय में से निकलकर गहरे-गहरे ध्रुव में जाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : शीघ्रता की प्रेरणा दी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शीघ्रता। पहले व्यवहार करना नहीं, ऐसा कहते हैं। पहले व्यवहार करो तो ऐसा होता ही नहीं। वस्तु के स्वभाव का भान होने में व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस ओर की दृष्टि छोड़ दे। रागादि विकल्प वह तो विकार है। विकार का लक्ष्य छोड़ दे। स्वभाव का लक्ष्य कर, चैतन्यचमत्कार में घुस जा। **गहरा उतर जाता है,...** देखो! गहरा उतर जाता है। गहरा.. गहरा.. गहरा.. पाताल की थाह लेने अन्दर जाता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! बात भी सुनी नहीं होगी। ऐई, पोपटभाई! आहा..हा..! सर्वज्ञ जिनेन्द्र परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग ऐसा है।

शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र.... प्रभु भगवान आत्मा। केवलज्ञान की पर्याय की बात है न! चैतन्यचमत्कारमात्र भगवान आत्मा ध्रुव। ध्रुवस्वभाव, ज्ञायकभाव, एकरूप भाव,

सदृशभाव, नित्यभाव, अचलभाव, अभेदभाव में गहरा उतर जा। अन्दर में जा। गहर उतर जा। तुझे केवलज्ञान प्राप्त होगा। **वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है (अर्थात्, मुक्तिसुन्दरी का पति होता है।)** उसे मुक्तिरूपीदशा प्रगट होती है। आहा..हा..! यह मार्ग है। जयपुर में आता है। ऐसी बातें लोगों को सुनना कठिन पड़े। झगड़ा, वाद-विवाद उत्पन्न हो। ऐई! पण्डितजी! तुम तो दो व्यक्ति जयपुर के हो, तुम क्यों बोलोगे? जयपुर की हाँ की है न? यह कोई सेठिया इनकार करे। यह पण्डितजी जयपुर के हैं। मैंने ऐसा कहा, जयपुर में। यह कैसे चले, कैसे माने, लोगों का विरोध करे।

मुमुक्षु : ....माननेवाले बहुत हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठिया अस्ति से बोलनेवाले हैं न? आहा..हा..! अरे भगवान! मार्ग तो प्रभु तेरा तीनों काल, तीन लोक में ऐसा है, हों! सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग। आहा..हा..! देखो न, एक शब्द रचा है न।

सपदि विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं भगवान आत्मा अपना चिच्चमत्कार उसमें से अनन्त... अनन्त... अनन्त... केवलज्ञान पर्याय उत्पन्न हो, ऐसा चिच्चमत्कार भगवान अन्दर पड़ा है। उसे शीघ्र अविलम्ब-विलम्ब छोड़कर। भीखाभाई! पहले यह करूँ और पहले यह करूँ, बाद में यह, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। भारी गजब किया है। थोड़ा सुन तो लूँ, समझ तो लूँ, पहले समझ तो लूँ, इससे भी इनकार करते हैं। ऐई, रामजीभाई! आहा..हा..! **सपदि** में ऐसा आता है या नहीं? इसमें उग्र-एकदम। पहले यह कर लूँ, यह कर लूँ, यह करके फिर यह करूँगा, यह करके फिर यह करूँगा, ऐसा नहीं। आहा..हा..! ए.. कान्तिभाई! होते-होते होगा। पहले व्यवहार सुधारो फिर (होगा)। आहा..हा..! वीतरागमार्ग... सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागता बताते हैं। पर की अपेक्षा रखे, वह तो राग है। आहा..हा..! समझ में आया? वीतराग धर्म है, वीतराग धर्म अर्थात् निर्दोष धर्म। वीत अर्थात् नहीं। राग नहीं, द्वेष भी नहीं। कुछ नहीं। यह ऐसा माल है।

कहते हैं, भगवान तेरी दृष्टि पहले चिद्चमत्कार में जानी चाहिए। चारों ओर से दृष्टि हटाकर एक ध्रुव चैतन्य भगवान पर तेरी दृष्टि का ध्येय, झुकाव, सन्मुखता होनी चाहिए। आहा..हा..! समझ में आया? **वह पुरुष...** जो कोई आत्मा ऐसा करेगा, वह पुरुष मुक्तिसुन्दरी का पति होगा। मुक्ति की निर्मल पर्याय प्राप्त होगी, यह बात है, भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हमें केवलज्ञान ऐसे हुआ है, इस विधि से हुआ है तो तुम्हें वाणी द्वारा कहते हैं, आगम में ऐसा कथन है। इससे विरुद्ध कथन हो, वह आगम नहीं है। आहा..हा..! भारी बात, भाई! कहीं व्यवहार से कहा है न, परन्तु वह व्यवहार से ज्ञान कराया है। व्यवहार से होता है, ऐसी चीज़ नहीं है। ओहो! जिसे एक आत्मा चैतन्यचमत्कार की जहाँ अपेक्षा है, दूसरी कोई अपेक्षा है नहीं। ऐसा मार्ग वीतराग का है। यह १० गाथा हुई।

मुमुक्षु : धन लुटाया जाता है, लेना हो तो ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : ११-१२ गाथा। १० गाथा हुई।

मुमुक्षु : निज की सम्पत्ति मिल गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तेरी सम्पत्ति तेरे पास परिपूर्ण है। कहीं जाना-आना है नहीं। आहा..हा..! अब ११-१२।

गाथा-११-१२

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं।।११।।

सण्णाणं चउभेयं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं ति-वियप्पं मदियाई भेददो चेव।।१२।।

केवलमिन्द्रियरहितं असहायं तत्स्वभावज्ञानमिति।
सञ्ज्ञानेतरविकल्पे विभावज्ञानं भवेद् द्विविधिम्।।११।।

सञ्ज्ञानं चतुर्भेदं मतिश्रुतावधयस्तथैव मनःपर्ययम्।
अज्ञानं त्रि-विकल्पं मत्यादेर्भेदतश्चैव।।१२।।

अत्र च ज्ञानभेदलक्षणमुक्तम्। निरुपाधिस्वरूपत्वात् केवलं, निरावरणस्वरूपत्वात् क्रमकरणव्यवधानापोढं, अप्रतिवस्तुव्यापकत्वात् असहायं, तत्कार्यस्वभावज्ञानं भवति। कारणज्ञानमपि तादृशं भवति। कुतः, निजपरमात्मस्थितसहजदर्शनसहजचारित्रसहजसुख-सहजपरमचिच्छक्तिनिजकारणसमयसारस्वरूपाणि च युगपत् परिच्छेत्तुं तथाविधमेव।

इति शुद्धज्ञानस्वरूपमुक्तम्।

इदानीं शुद्धाशुद्धज्ञानस्वरूपभेदस्त्वयमुच्यते। अनेकविकल्पसनाथं मतिज्ञानं उपलब्धि-भावनोपयोगाच्च अवग्रहादिभेदाश्च बहुबहुविधादिभेदाद्वा। लब्धिभावनाभेदाच्छ्रुतज्ञानं द्विविधम्। देशसर्वपरमभेदादवधिज्ञानं त्रिविधम्। ऋजुविपुलमतिविकल्पान्मनःपर्ययज्ञानं च द्विविधम्। परमभावस्थितस्य सम्यग्दृष्टेरेतत्सञ्ज्ञानचतुष्कं भवति। मतिश्रुतावधिज्ञानानि मिथ्या-दृष्टिं परिप्राप्य कुमतिकुश्रुतविभङ्गज्ञानानीति नामान्तराणि प्रपेदिरे।

अत्र सहजज्ञानं शुद्धान्तस्तत्त्वपरमतत्त्वव्यापकत्वात् स्वरूपप्रत्यक्षम्। केवलज्ञानं सकल-प्रत्यक्षम्। 'रूपिष्ववधेः' इति वचनादवधिज्ञानं विकलप्रत्यक्षम्। तदनन्तभागवस्त्वन्शग्राहक-

त्वान्मनःपर्ययज्ञानं च विकलप्रत्यक्षम्। मतिश्रुतज्ञानद्वितयमपि परमार्थतः परोक्षं, व्यवहारतः प्रत्यक्षं च भवति।

किञ्च उक्तेषु ज्ञानेषु साक्षान्मोक्षमूलमेकं निजपरमतत्त्वनिष्ठसहजज्ञानमेव। अपि च पारिणामिकभावस्वभावेन भव्यस्य परमस्वभावत्वात् सहजज्ञानादपरमुपादेयं न समस्ति।

अनेन सहजचिद्विलासरूपेण सदा सहजपरमवीतरागशर्मामृतेन अप्रतिहतनिरावरणपरम-चिच्छक्तिरूपेण सदान्तर्मुखे स्वस्वरूपाविचलस्थितिरूपसहजपरमचारित्रेण त्रिकालेष्व-व्युच्छिन्नतया सदा सन्निहितपरमचिद्रूपश्रद्धानेन अनेन स्वभावानन्तचतुष्टयेन सनाथं अनाथ-मुक्तिसुन्दरीनाथं आत्मानं भावयेत्।

इत्यनेनोपन्यासेन सन्सारव्रततिमूललवित्रेण ब्रह्मोपदेशः कृत इति।

इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल वह स्वाभाविक ज्ञान है।
दो विधि विभाविक-ज्ञान सम्यक् और मिथ्याज्ञान है॥११॥
मति, श्रुत, अवधि, अरु मनःपर्यय चार सम्यग्ज्ञान हैं।
अरु कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन भेद मिथ्याज्ञान हैं॥१२॥

अन्वयार्थ :—[केवलम्] जो (ज्ञान) केवल, [इन्द्रियरहितम्] इन्द्रियरहित और [असहायं] असहाय है, [तत्] वह [स्वभावज्ञानम् इति] स्वभावज्ञान है; [संज्ञानेतरविकल्पे] सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानरूप भेद किये जाने पर, [विभावज्ञानं] विभावज्ञान [द्विविधं भवेत्] दो प्रकार का है।

[संज्ञानं] सम्यग्ज्ञान, [चतुर्भेदं] चार भेदवाला है - [मतिश्रुतावधयः तथा एव मनःपर्य्ययम्] मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यय; [अज्ञानं च एव] और अज्ञान, (-मिथ्याज्ञान) [मत्यादेः भेदतः] मति आदि के भेद से [त्रिविकल्पम्] तीन भेदवाला है।

टीका :—यहाँ (इन गाथाओं में) ज्ञान के भेद कहे हैं।

जो उपाधिरहित स्वरूपवाला होने से केवल* है; आवरणरहित स्वरूपवाला होने से क्रम, इन्द्रिय और (देश-कालादि) व्यवधान[१] रहित है; एक-एक वस्तु में व्याप्त नहीं होता (समस्त वस्तुओं में व्याप्त होता है), इसलिए असहाय है, वह कार्यस्वभावज्ञान है। कारणज्ञान भी वैसा ही है। काहे से ? निजपरमात्मा में विद्यमान

---

* केवल=अकेला, शुद्ध, मिलावटरहित (निर्भेल) १. व्यवधान=आड़, परदा, अन्तर, आँतर-दूरी, विघ्न।

सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजसुख और सहजपरमचित्शक्तिरूप निजकारणसमयसार के स्वरूपों को युगपद् जानने में समर्थ होने से वैसा ही है। इस प्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा।

अब, यह (निम्नानुसार) शुद्धाशुद्धज्ञान का स्वरूप और भेद कहे जाते हैं — उपलब्धि[१], भावना और उपयोग से तथा अवग्रहादि[२] भेद से अथवा बहु[३], बहुविध आदि भेद से मतिज्ञान अनेक भेदवाला है। लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। देश, सर्व और परम के भेद से (अर्थात्, देशावधि, सर्वावधि तथा परमावधि — ऐसे तीन भेदों के कारण) अवधिज्ञान तीन प्रकार का है। ऋजुमति और विपुलमति के भेद के कारण मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का है। परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को ये[४] चार सम्यग्ज्ञान होते हैं। मिथ्यादर्शन हो, वहाँ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान 'कुमति ज्ञान', 'कुश्रुतज्ञान' तथा 'विभंगज्ञान' — ऐसे नामान्तरों को (अन्य नामों को) प्राप्त होते हैं।

यहाँ (ऊपर कहे हुए ज्ञानों में) सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष[५] है। केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष (सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है। ''रुपिष्ववधेः (अवधि-ज्ञान का विषय-सम्बन्ध रूपी द्रव्यों में है)'' ऐसा (आगम का) वचन होने से अवधिज्ञान, विकलप्रत्यक्ष (एकदेशप्रत्यक्ष) है। उसके अनन्तवें भाग में वस्तु के अंश का ग्राहक (ज्ञाता) होने से मनःपर्ययज्ञान भी विकलप्रत्यक्ष है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, दोनों परमार्थ से परोक्ष हैं और व्यवहार से प्रत्यक्ष हैं।

---

१. मतिज्ञान तीन प्रकार का है, उपलब्धि, भावना, और उपयोग। मतिज्ञानावरण क्षयोपशम जिसमें निमित्त है - ऐसी अर्थग्रहणशक्ति (पदार्थ को जानने की शक्ति), सो उपलब्धि है; जाने हुए पदार्थ के प्रति पुनः पुनः चिन्तन, सो भावना है; 'यह काला है' 'यह पीला है' इत्यादिरूप अर्थग्रहणव्यापार (पदार्थ को जानने का व्यापार) सो उपयोग है।

२. मतिज्ञान चार भेदवाला है : अवग्रह, ईहा (विचारणा), अवाय (निर्णय) और धारणा। (विशेष के लिए ''मोक्षशास्त्र (सटीक)'' देखें।)

३. मतिज्ञान बारह भेदवाला है : बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव तथा अध्रुव। (विशेष के लिए ''मोक्षशास्त्र (सटीक)'' देखें।)

४. सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान, सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होते हैं। सुअवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं सम्यग्दृष्टि जीवों को होता है। मनःपर्ययज्ञान किन्हीं-किन्हीं मुनिवरों को-विशिष्टसंयमधरों को होता है।

५. स्वरूपप्रत्यक्ष=स्वरूप से प्रत्यक्ष; स्वरूप-अपेक्षा से प्रत्यक्ष; स्वभाव से प्रत्यक्ष।

और विशेष बात यह है कि उक्त (ऊपर कहे हुए) ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहजज्ञान ही है तथा सहजज्ञान, (उसके) पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण, भव्य का परमस्वभाव होने से, सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है।

इस सहजचिद्विलासरूप (१) सदा सहज परमवीतराग सुखामृत, (२) अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप, (३) सदा अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज परमचारित्र, और (४) त्रिकाल अविच्छिन्न (अटूट) होने से सदा निकट, ऐसी परम चैतन्यरूप की श्रद्धा — इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से जो सनाथ (सहित) है — ऐसे आत्मा को, अनाथ मुक्तिसुन्दरी के नाथ को भाना चाहिए (अर्थात्, सहजज्ञान-विलासरूप से स्वभाव अनन्त चतुष्टययुक्त आत्मा को भाना चाहिए-अनुभवन करना चाहिए)।

इस प्रकार संसाररूपी लता का मूल छेदने के लिए हँसियारूप इस उपन्यास[१] से ब्रह्मोपदेश किया।

गाथा-११-१२ पर प्रवचन

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं।।११।।

सण्णाणं चउभेयं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं ति-वियप्पं मदियाई भेददो चेव।।१२।।

नीचे हरिगीत।

इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल वह स्वाभाविक ज्ञान है।
दो विधि विभाविक-ज्ञान सम्यक् और मिथ्याज्ञान है॥११॥

मति, श्रुत, अवधि, अरु मनःपर्यय चार सम्यग्ज्ञान हैं।
अरु कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन भेद मिथ्याज्ञान हैं॥१२॥

१. उपन्यास=कथन, सूचन, लेख, प्रारम्भिक कथन, प्रस्तावना।

(इन गाथाओं में) ज्ञान के भेद कहे हैं। नीचे टीका है न?

टीका- जो उपाधिरहित स्वरूपवाला होने से केवल है;... केवलज्ञान। यह त्रिकाल की बात नहीं है। केवलज्ञान, सकल विमल पर्याय जो प्रगट हुई। उपाधिरहित है- उसे उपाधि नहीं है, इसलिए स्वभावज्ञान कहा। **स्वरूपवाला होने से केवल है; आवरणरहित स्वरूपवाला...** अकेला, शुद्ध, निर्मेल (मिलावटरहित) **आवरणरहित स्वरूपवाला होने से क्रम,...** रहित है। केवलज्ञान में क्रम नहीं है। एक के बाद एक जानना, ऐसा नहीं है। **इन्द्रिय...** की सहायता नहीं है। **और (देश-कालादि) व्यवधान रहित है;...** आड़ नहीं, पर्दा नहीं, अन्तर नहीं, दूरी नहीं, दूरी नहीं, विघ्न नहीं। केवलज्ञान में कोई अन्तर पर्दा नहीं पड़ता। आहा..हा..! ऐसा होता है। देखो, क्रम नहीं, इन्द्रियों की सहायता नहीं, इसलिए इन्द्रियरहित है। **(देश-कालादि) व्यवधान रहित है;...** इतने क्षेत्र को जानना और इतने क्षेत्र को न जानना, ऐसा कुछ उसमें नहीं है। तीन काल-तीन लोक, अनन्त लोकालोक ज्ञान की पर्याय में-केवलज्ञान में ज्ञात होते हैं। आहा..हा..!

एक-एक वस्तु में व्याप्त नहीं होता, इसलिए असहाय है,... पहले एक वस्तु को जाने, फिर दूसरी वस्तु को जाने, ऐसा नहीं है। केवलज्ञान में एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता है। कहो, समझ में आया? **(समस्त वस्तुओं में व्याप्त होता है), इसलिए असहाय है,...** केवलज्ञान में कोई चीज़ बाकी नहीं है। तीन काल-तीन लोक की पर्याय जहाँ होती है, जहाँ-तहाँ निमित्त कैसा है, वह सब एक समय में ज्ञात होता है।

मुमुक्षु : निमित्त की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, निमित्त होता है, वह जाना। जिस समय में जो पर्याय होती है, उसे जाना। उस समय निमित्त कौन था, वह जाना। भगवान के ज्ञान में सब आ गया है; कुछ बाकी नहीं है। आहा..हा..! णमो अरिहंताणं करे परन्तु केवलज्ञान किसे कहते हैं, इसकी खबर नहीं।

वह कार्यस्वभावज्ञान है। देखो, इसका नाम कार्यस्वभावज्ञान है। केवलज्ञान है न?

कारणज्ञान भी वैसा ही है। देखो! अब अन्दर ज्ञानस्वभाव त्रिकाल, वह भी वैसा ही है। **काहे से ? निजपरमात्मा में विद्यमान सहजदर्शन,...** क्या कहते हैं? देखो अब।

अन्तर में ज्ञानस्वभाव-गुण जो ध्रुव पड़ा है। वह अन्तर में विद्यमान सहजदर्शन, यह त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली चारित्र, अन्दर त्रिकाली वीतरागता, सहज आनन्द, त्रिकाली आनन्द। सहज शब्द पड़ा हुआ है न? पर्यायरहित बताना है। स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक चारित्र, स्वाभाविक आनन्द और स्वाभाविक परमचित्शक्तिरूप वीर्य। **परमचित्शक्तिरूप निजकारणसमयसार के...** अपने निजकारणसमयसार के **स्वरूपों को युगपद् जानने में समर्थ...** अन्तर का ज्ञान, अपना गुण सबको जानने को समर्थ है। ज्ञानस्वभाव अपनी अनन्त शक्तियाँ हैं, उन प्रत्येक को जानने में समर्थ है। चार (गुण) तो मुख्य लिये। **सहजपरमचित्शक्तिरूप...** यहाँ ज्ञान लिया। उसे जानता है, ज्ञान अपनी चित्शक्ति को, सुख को, चारित्र और दर्शन को जानता है। वह **निजकारणसमयसार के...** देखो निजकारणसमयसार। ध्रुवस्वभाव, वह निजकारणसमयसार। आहा..हा..!

टीका देखो न नियमसार की! भागवत्शास्त्र है। यह जैन का भागवत्शास्त्र है। आहा..हा..! वह भागवत्शास्त्र कहते हैं न? आगे कहेंगे। भागवत्शास्त्र है। भगवान का कहा हुआ, भगवान होने की शक्तिवाला, बतानेवाला यह भागवत्शास्त्र है।

इस प्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा। देखो! शुद्धज्ञान का कार्य और कारण दोनों की व्याख्या की। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१७, गाथा-११-१२, बुधवार, फाल्गुन कृष्ण ५, दिनांक १७-०३-१९७१

---

२८ वें पृष्ठ पर है। पहले कारणज्ञान और कार्यज्ञान की व्याख्या हुई। कारणज्ञान उसे कहते हैं कि जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, ज्ञानस्वभाव (है, वह) और उसमें से कार्य- केवलज्ञान आदि को कार्यज्ञान कहते हैं। समझ में आया? यह पहले आ गया। २८वें पृष्ठ में पहला पैराग्राफ हो गया। दूसरा पैराग्राफ है। २८वें पृष्ठ में, ऊपर दो भाग आ गये। एक कारणस्वभावज्ञान और कार्यस्वभावज्ञान। कारणस्वभावज्ञान का स्पष्टीकरण यहाँ करेंगे। जिसे धर्म करना है, उसे तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव जो ज्ञानभाव है, उसका आश्रय करने से उसे धर्म होता है। पश्चात् दूसरे भेद हैं, वे जाननेयोग्य हैं।

मुमुक्षु : उनसे लाभ न हो तो भी जानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने की अस्ति जितने प्रकार हैं, उस व्यवहार का ज्ञान तो करना न ? ज्ञान करने के लिये सब व्यवहार भेद हैं। भेद हैं न ? नहीं ? आश्रय करनेयोग्य तो एक ही त्रिकाल उपादेय आत्मा। ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ध्रुवस्वभाव। कारणभाव त्रिकाल। धर्मी को वही आश्रय करनेयोग्य और उपादेय है। क्या है ?

मुमुक्षु : व्यवहार ज्ञान करनेयोग्य है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान करने का भेद है, ज्ञान न करे ?

मुमुक्षु : ज्ञान करने का अर्थ क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना। अर्थ क्या, है ऐसा जानना।

मुमुक्षु : जानने जाना क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना। व्यवहार जैसा है, वैसा जानना। स्वभाव का आश्रय करके, अपने ज्ञान का भान हुआ, (वह व्यवहार है), ऐसा जानकर लक्ष्य छोड़ना। परन्तु जाने बिना किसका लक्ष्य छोड़े ? समझ में आया ?

कहते हैं कि मतिज्ञान के इतने भेद। मतिज्ञान, जो पहले सम्यग्ज्ञान होता है। पहला मतिज्ञान। उसके इतने भेद : उपलब्धि, भावना और उपयोग - तीन (भेद)। और पश्चात् अवग्रह आदि से चार अथवा बहु, बहुविध आदि से बारह, ये सब भेदवाली ज्ञान की पर्याय है, ऐसा उसे जानना चाहिए। अब ?

लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। कहो समझ में आया ? नीचे थोड़ा स्पष्टीकरण किया है, देखो ! उपलब्धि है न ? नीचे। ***२. मतिज्ञान तीन प्रकार का है,...*** आत्मा ज्ञायक ज्ञानस्वभाव है, ऐसा अन्तर में लक्ष्य करके जो मतिज्ञान, ज्ञान, यह तो पहला स्पष्टीकरण आ गया है कि चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग; अतः मतिज्ञान जो है, वह चैतन्य गुण जो है, उसे अनुसरकर हुई मतिज्ञान की पर्याय है। आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ? यह देहादिक तो पर है, जड़ है। उनकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो उनके ज्ञानस्वभाव का एकपना और अनेकपना की व्याख्या है। समझ में आया ? उसमें पुण्य-पाप के भाव होते हैं, उनका भी अभी कोई काम नहीं है। यहाँ तो ज्ञान के प्रकार की बात है।

कहते हैं कि जो तीन—उपलब्धि भावना, उपयोग। नीचे नोट में। ***मतिज्ञानावरण***

क्षयोपशम जिसमें निमित्त है - ऐसी अर्थग्रहणशक्ति (पदार्थ को जानने की शक्ति),... अर्थ ग्रहण अर्थात् जानना। पदार्थ को जानने की शक्ति, ***सो उपलब्धि है;....*** यह उपलब्धि, मतिज्ञान का एक परिणाम है और वे मतिज्ञान के परिणाम, त्रिकाल ज्ञायकभाव अथवा ज्ञानभाव को-चैतन्य को अनुसरकर होते हैं। समझ में आया ? ***सो उपलब्धि है;....***

जाने हुए पदार्थ के प्रति पुनः पुनः चिन्तन, सो भावना है;... जानी हुई बात हो, उसे बारम्बार विचारना, घुमाना, वह भावना है। पश्चात् उपयोग ***'यह काला है' 'यह पीला है' इत्यादि...*** भेद पाड़कर। ***इत्यादिरूप अर्थग्रहणव्यापार...*** पहले अर्थग्रहण शक्ति थी। उपलब्धि में पदार्थ को जानने की शक्ति थी और यह उसका व्यापार है। देखो! इन सर्वज्ञ के मार्ग में ही ऐसा होता है। ऐसा अस्तित्व, उसे बराबर निर्णय करना, ऐसा कहते हैं।

वस्तु आत्मा में ज्ञानगुण तो एकरूप है। उसके फिर जब पर्याय में प्रकार पड़े, तब पाँच (प्रकार पड़ते हैं)—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल। केवल (ज्ञान) वह तो पूर्ण ज्ञान में डाला। अब ये चार ज्ञान हैं, वे विभावज्ञान हैं। उनमें भी वापस मतिज्ञान के इतने प्रकार हैं। समझ में आया ? ***सो उपयोग है।(पदार्थ को जानने का व्यापार), सो उपयोग है।*** यह उपलब्धि, भावना और उपयोग तीन आ गये।

अब अवग्रहादि भेद— ***३. मतिज्ञान चार भेदवाला है :....*** मतिज्ञान में पहला अवग्रह होता है। अव-निश्चय कुछ थोड़ा ज्ञात हो। पश्चात् उसकी ***ईहा (विचारणा), अवाय (निर्णय) और धारणा।*** ये चार प्रकार मतिज्ञान के भेद हैं। ये भी चार चैतन्य-अनुविधायी परिणाम हैं। निमित्त का लक्ष्य हुआ, इसलिए निमित्त तो ऐसा है, ऐसे नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भगवान जानने में आये, वीतराग वाणी अवग्रह में (आयी) ...समझ में आया ? परन्तु उस अवग्रह की पर्याय चैतन्य को अनुसरकर हुई है, भगवान को देखकर नहीं हुई। समझ में आया ? सूक्ष्म मार्ग है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग लोगों ने बाहर में स्थूल कर डाला है। स्थूल का अर्थ विपरीत कर डाला है। यह तो मार्ग ही सूक्ष्म है।

परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं कि भाई! तेरा आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु है। वह ज्ञान है, वह त्रिकाल है और त्रिकाल ज्ञान का आश्रय करके जो यह कुछ मति, श्रुत, अवधि आदि प्रगट हों, वे सब भेद, ज्ञान की पर्याय के हैं, ऐसा इसे जानना चाहिए। वे भेद पर के कारण पड़ते हैं, ऐसा नहीं है। वे ज्ञान के भेद के प्रकार भी चैतन्य को अनुसरकर ही हुए वे भाव हैं। समझ में आया ?

चार भेद *अवग्रह, ईहा (विचारणा), अवाय (निर्णय) और धारणा। (विशेष के लिए ''मोक्षशास्त्र (सटीक)'' देखें।)* फिर चौथा भेद है न ? बहु। *मतिज्ञान बारह भेदवाला है : बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनि:सृत, नि:सृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव तथा अध्रुव।* हैं तो यह सब पर्याय के भेद, हों! ध्रुव और अध्रुव सब। *(विशेष के लिए ''मोक्षशास्त्र (सटीक)'' देखें।)* ये मति के भेद कहे। समझ में आया ?

लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। अब श्रुतज्ञान के दो प्रकार। भावश्रुतज्ञान, हों! आत्मा में होता भावश्रुत। वह होता है चैतन्य को अनुसरकर, परन्तु उसके अनुसरने के थोड़े भेद पड़ते हैं, थोड़ा अनुसरण, विशेष अनुसरण, ऐसे ज्ञान की पर्याय के भेद पड़ें, उन्हें इसे जानना चाहिए। आदरनेयोग्य नहीं है परन्तु जाननेयोग्य हैं, ऐसा कहते हैं। (श्रुतज्ञान) दो प्रकार का है—लब्धि और भावना। उघाड़ और व्यापार।

देश, सर्व और परम के भेद से अवधिज्ञान तीन प्रकार का है। अवधिज्ञान। **(अर्थात्, देशावधि, सर्वावधि तथा परमावधि — ऐसे तीन भेदों के कारण)** यह भी जानना चाहिए। **ऋजुमति और विपुलमति के भेद के कारण मन:पर्ययज्ञान दो प्रकार का है।** मन:पर्यय। मुनि का आत्मज्ञानसहित की चारित्र की दशा हो, उन्हें मन:पर्ययज्ञान प्रगट होता है जो कि सामनेवाले के मन को जाने, ऐसी ज्ञान की पर्याय (है) परन्तु वह ज्ञान की पर्याय है तो चैतन्य को अनुसरकर हुई। समझ में आया ? ऐसे ऋजुमति और विपुलमति। ऋजुमति की शक्ति थोड़ी है, विपुल की विशेष है।

परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को... अब देखो। **परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को ये चार सम्यग्ज्ञान होते हैं।** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा, परमभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव, आत्मा का नित्य भाव, नित्य-शाश्वत् में स्थित। धर्मी उसमें स्थित दृष्टि है। समझ में आया ? **परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को ये चार सम्यग्ज्ञान होते हैं।** ये चार—मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय। मति के भेद, श्रुत के भेद, अवधि के भेद और मन:पर्यय के भेद। क्या कहा, समझ में आया ?

धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि (जीव) उसे कहते हैं कि जो परमभाव त्रिकाली ज्ञायक चैतन्यभाव में उसकी दृष्टि है, उसमें उसका ध्येय है और उसमें उसकी एकाग्रता है। समझ में आया ? भगवान आत्मा का ज्ञानगुण एकरूप सदृश ध्रुव में जिसकी दृष्टि है, उसे

सम्यग्दृष्टि कहते हैं। दूसरे सब भेद हैं, उन्हें भले जाने, परन्तु दृष्टि ज्ञानभाव त्रिकाल ध्रुव में है। ऐसी सब सूक्ष्म बातें हैं।

मुमुक्षु : जयपुर में.....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो मीठे व्यक्ति हैं तो.... यह तो सब सुनेंगे। अमुक होगा, ऐसा बोलते हैं। देखो! सार देखो, सार।

परमभाव भगवान आत्मा...! शरीर, वाणी, मन तो जड़ है। पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह तो विकार है। एक समय की पर्याय अंश तो व्यवहार है। त्रिकाली ज्ञायकभाव में चैतन्य भाव जो है, उसमें जिसकी दृष्टि स्थिर हुई है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, उसे यह चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? वस्तु को जानने की लब्धिरूप शक्ति, वह भी परमभाव में स्थित को वह पर्याय प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। बहुत वांचन करे, बाहर में यह करे, उसे यह ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है —ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

भगवान आत्मा परमस्वभाव, ज्ञानभाव में स्थित है। व्याख्या ही ऐसी की है। परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि की व्याख्या की है। आहा..हा..! धर्मी पहले छोटे दर्जे का, सम्यग्दृष्टि, धर्म की शुरुआत की पहली दशा, उस सम्यग्दृष्टि की दृष्टि परमभाव में पड़ी है। परमभाव में दृष्टि (पड़ी है)। कहो, पण्डितजी! गजब! समझ में आया? शास्त्र के पन्नों में और वाणी में उसकी दृष्टि नहीं है, ऐसा कहते हैं। **परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि...** व्याख्या ऐसी। आहा..हा..! त्रिकाल ज्ञानभाव जो एकरूप त्रिकाल ज्ञानभाव सदृशभाव, में जिसकी दृष्टि है, ऐसे सम्यग्दृष्टि को ये चार सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं। कहो, समझ में आया? एक है न?

सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान, सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होते हैं। नीचे (फुटनोट) ***सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान, सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होते हैं। सुअवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं सम्यग्दृष्टि जीवों को होता है। मनःपर्ययज्ञान किन्हीं-किन्हीं मुनिवरों को-विशिष्टसंयमधरों को होता है।*** चारित्र अन्तर प्रगट हुआ होता है, उसमें भी विशिष्ट-खास चारित्र के धारक को वह चौथा ज्ञान (होता है) परन्तु वह परमभाव में स्थित है, इसलिए होता है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? चारित्र हुआ, इसलिए मनःपर्ययज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। यहाँ तो ऐसा कहा है। चारित्र से हो तो सबको मनःपर्ययज्ञान होना

चाहिए परन्तु जिन्हें उस परमभाव में स्थित जितने प्रकार से है, उतने प्रकार से उसकी प्रगट पर्याय होती है। बहुत सूक्ष्म! इसकी अपेक्षा दया पालना, व्रत पालना, सीधा-सट्ट (था)। पोपटभाई! वह भटकने का मार्ग। कुछ भान नहीं होता, क्या चीज़ है। वह तो राग है, विकल्प है।

वस्तु की स्थिति, भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा वस्तु कही और उसमें एकरूप सदृश ध्रुव ज्ञानगुण में एकाकार होकर प्रगट हुई पर्याय, ऐसी सम्यग्दृष्टि, वह भी पर्याय है। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को, परमभाव में स्थित है, इसलिए उसे ये चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं। आहा..हा..! लो, इसमें तो ऐसा कहा। ऐई! बहुत पढ़ते हैं, पठन करते हैं, इसलिए मति-श्रुत होते हैं, ऐसा नहीं कहा।

आत्मा में समुद्र पड़ा है। आत्मा ज्ञान का समुद्र है। अपरिमित-बेहद ज्ञानस्वभाव जिसका स्वभाव... स्वभाव.. स्वभाव.. यहाँ गुण की अपेक्षा की बात की है न? भिन्न पाड़कर। ज्ञान में स्थित है, उसे ये प्रगट होते हैं। इस प्रकार ज्ञायकभाव कहा। वह तो पूरी वस्तु, समस्त गुणों का पूरा पिण्ड, ऐसा जो ज्ञायकभाव त्रिकाल एकरूप भाव है, उसके आश्रय से सम्यग्दृष्टि होता है। यहाँ तो कहते हैं कि परमभाव जो ज्ञानभाव, उसमें जो स्थित है, उसे ये चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं। पश्चात् ज्ञायकभाव में स्थित है कहो, ज्ञानगुण में स्थित है कहो (एकार्थवाची है)। यह ज्ञानगुण परमभाव है। कहो, समझ में आया?

मिथ्यादर्शन हो, वहाँ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान 'कुमति ज्ञान', 'कुश्रुतज्ञान' तथा 'विभंगज्ञान'—ऐसे नामान्तरों को (अन्य नामों को) प्राप्त होते हैं। लो, जिसकी श्रद्धा मिथ्यात्व है, जो निमित्त को ही मानता है, राग को ही मानता है और अल्पज्ञ पर्याय को ही मानता है अथवा पुण्य परिणाम, वह धर्म है, ऐसा मानता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को मति-श्रुत और अवधि अर्थात् **'कुमतिज्ञान', 'कुश्रुतज्ञान' तथा 'विभंगज्ञान'...** ऐसे तीन प्रकार होते हैं परन्तु उसे ये चैतन्य को अनुसरकर होते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ (ऊपर कहे हुए ज्ञानों में) सहजज्ञान,... लो, अब कहते हैं। अन्तर का स्वाभाविक ज्ञान। आत्मा वस्तु, उसका जो स्वरूप ज्ञान / स्वाभाविक ज्ञान। **सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में व्यापक होने से,...** क्या कहते हैं? स्वाभाविक ज्ञान, ध्रुव ज्ञान, वह **शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व....** आत्मा में वह ज्ञान व्यापक है - पसर गया है।

अभी तो शब्दों के अर्थ समझना कठिन पड़ते हैं। भीखाभाई! स्वाभाविक ज्ञान जो त्रिकाल। आत्मा और अविनाशी तथा उनका ज्ञान ध्रुव, वह अन्त:तत्त्व ऐसा जो आत्मा है, उसमें वह सहजज्ञान व्यापक है, पसरा है, विस्तरित है। आहा..हा..!

शुद्ध अन्त:तत्त्वरूप परमतत्त्व.... देखो! उसमें **व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है**। वह ज्ञान त्रिकाल स्वरूपप्रत्यक्ष है। नीचे स्पष्टीकरण किया है। ***स्वरूपप्रत्यक्ष=स्वरूप से प्रत्यक्ष; स्वरूप-अपेक्षा से प्रत्यक्ष; स्वभाव से प्रत्यक्ष।*** स्वभाव से प्रत्यक्ष ज्ञान त्रिकाल है। आहा..हा..! वह केवलज्ञान की अपेक्षा नहीं। त्रिकाल ज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष ही है। प्रत्यक्ष है, ऐसा कहते हैं। वस्तु है, वह प्रत्यक्ष ही है। आहा..हा..! देखो! यह शब्द अन्यत्र कहीं नहीं है। यहाँ ही इन्होंने (कहा है)। समझ में आया? दूसरे शास्त्रों में, दिगम्बरों में भी नहीं तो अन्य में तो है नहीं। देखो! है? स्वाभाविक ज्ञान। जो आत्मा वस्तु है, अनादि-अनन्त अविनाशी, वैसा उसमें ज्ञानस्वभाव, अन्त: तत्त्व जो परमस्वरूप, उसमें वह व्याप्त रहा है। वह गुण (ज्ञान) अन्त:तत्त्व में पसरा हुआ है, विस्तरित है, उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहा जाता है।

मुमुक्षु : वह तो प्रत्येक अवस्था में रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल। अवस्था में नहीं, त्रिकाल गुण में। हालत तो पर्याय है। त्रिकाल ध्रुवरूप रहे, उसे यहाँ प्रत्यक्ष, स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान कहा है। पण्डितजी! स्वरूपप्रत्यक्ष कभी सुना था? स्वरूपप्रत्यक्ष। यह पद्मप्रभमलधारिदेव, ये तो कहते हैं कि गणधरों ने यह सब टीका की है। हम क्या करें? गणधर आदि से यह टीका चली आ रही है। समझ में आया?

वस्तु ऐसी, वस्तु तो वस्तु प्रत्यक्ष पड़ी है, ऐसा कहते हैं, तो उसका ज्ञान भी यहाँ प्रत्यक्ष ध्रुवरूप से अन्दर पड़ा ही है। समझ में आया? आहा..हा..! वस्तु भगवान आत्मा, ऐसा जो अन्त:तत्त्वरूप परमतत्त्व आत्मा, उसमें जो सहज स्वाभाविक ज्ञान स्वरूपप्रत्यक्षरूप है। ऐसा का ऐसा अनादि-अनन्त पड़ा है। यह ध्रुव की व्याख्या चलती है, हों! स्वरूपप्रत्यक्ष अर्थात् पर्याय नहीं। समझ में आया? ऐसा धर्म भी किस प्रकार का?

मुमुक्षु : वीतराग भगवान का।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग भगवान का। वे तो कहें कन्दमूल नहीं खाना, रात्रि के आहार का त्याग करना, प्रतिक्रमण, मिच्छामि दुक्कडं देना, ऐसी सब बातें इसमें तो कहीं

आयी नहीं। पोपटभाई! वह तो सब विकल्प की राग की बातें हैं। आत्मा तो उनसे पार भिन्न है। उसके ज्ञानस्वभाव की यहाँ तो बात है। आहा..हा..! राग आवे उसे वह जाने, उसकी -अपनी अस्ति का आश्रय लेकर। ऐसे आत्मा की यहाँ बात की है।

वह स्वरूपप्रत्यक्ष भगवान आत्मा... आहा..हा..! अरे! उसका अस्तित्व, उसकी सत्ता की मौजूदगी की अस्ति, वह आत्मा और उसका वह सहजज्ञान, स्वरूपप्रत्यक्ष, त्रिकाल स्वरूपप्रत्यक्ष है। यह आत्मा के गुण की और आत्मा की अस्ति ध्रुवरूप से (रही है)। पर्यायदृष्टि में उसे इस द्रव्यदृष्टि की खबर नहीं पड़ती। यह व्यापक भगवान आत्मा, पूरे तत्त्व के अन्दर ज्ञान ध्रुवरूप से व्यापक है। उस ध्रुव में दृष्टि जाये तो उसे उसकी खबर पड़े। समझ में आया?

केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष (सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है। प्रत्यक्ष के दो भेद किये। अन्तर ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, ज्ञान ध्रुवरूप रहे, उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहते हैं और उसका आश्रय होकर केवलज्ञान प्रगट हो, वह सकलप्रत्यक्ष है, सम्पूर्ण प्रत्यक्ष है। वह (सहजज्ञान) स्वरूप से प्रत्यक्ष; यह (केवलज्ञान) सकलप्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु : विस्तार से जरा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्याख्या तो होती है। यहाँ चार ज्ञान की बात इसमें नहीं लेना।

यहाँ तो पूर्ण प्रत्यक्ष और स्वरूपप्रत्यक्ष - दो भाग। अर्थात् वस्तु भगवान आत्मा अविनाशी प्रभु ऐसा जो अन्तःतत्त्व, ऐसा परमतत्त्व। केवलज्ञान की पर्याय आयी, वह परमतत्त्व नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व भगवान अनन्त गुण का पिण्ड एक अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व में व्यापक रहा हुआ ज्ञान, उसे सहजज्ञान कहकर स्वरूपप्रत्यक्ष कहा गया है और उस स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान का आश्रय लेकर... रात्रि को कहा था न? परमभाव में स्थित होकर। वह परमध्रुवभाव, नित्यभाव, परमभाव, अन्तःतत्त्वरूप परमस्वभाव में उसमें रहा हुआ जो ज्ञान, वह स्वरूपप्रत्यक्ष है। स्वरूप से प्रत्यक्ष, स्वभाव से प्रत्यक्ष। वह स्वभाव से प्रत्यक्ष है। वह ज्ञान, पर्याय में नहीं आता, वह ध्रुवरूप रहता है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में स्वरूपप्रत्यक्ष ध्रुव नहीं आता। पर्याय में परिणमन पर्याय का होता है। ध्रुव तो सदृश रहता है।

मुमुक्षु : ध्रुवरूप प्रत्यक्ष....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ध्रुव वह स्वरूपप्रत्यक्ष। वह केवलज्ञान (सकल) प्रत्यक्ष। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ऊपर कहे हुए ज्ञानों में सहजज्ञान शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व में....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, ऊपर कहे हुए चार नहीं। **(ऊपर कहे हुए ज्ञानों में)** ऐसा कहा है। चार की बात नहीं की है। सब ज्ञान के प्रकार वर्णन किये थे न? चार नहीं, इनके अतिरिक्त ज्ञान भी वर्णन किये थे। वह कारणज्ञान, कार्यज्ञान सब वर्णन किया गया है। कारणज्ञान, कार्यज्ञान चार ज्ञान उन सब ज्ञानों के भेद में, ऐसा कहते हैं। वे अकेले चार नहीं। पहले आ गये हैं न? पहले पैराग्राफ में देखो न! केवलज्ञान असहाय है। कारणज्ञान भी वैसा ही है। कार्यस्वभावज्ञान केवलज्ञान है। निज परमात्मा में रहे हुए सहजदर्शन आदि को जाननेवाला सहजज्ञान त्रिकाल है। वह सब ज्ञान, केवलज्ञान, चार ज्ञान, उन सब ज्ञानों में। **सहजज्ञान,...** जो त्रिकाली स्वाभाविक ज्ञान है, जो पहले कह गये थे। कारणज्ञान भी वैसा है, वह। निजकारणसमयसार का स्वरूप युगपद जानने को समर्थ वैसा ही है, वह। वह सहजज्ञान, त्रिकाली ज्ञान, स्वाभाविक ज्ञान, जिसे कोई कर्म के निमित्त की मौजूदगी और अभाव की अपेक्षा नहीं, ऐसा जो त्रिकाली ज्ञान चैतन्यप्रकाश का सत्त्व, चैतन्यरस, चैतन्यरस, प्रकाश का त्रिकाली भाव चैतन्य का, वह। **सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है। केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष (सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है।** उसमें से हुआ केवलज्ञान, उसे सकलप्रत्यक्ष (कहते हैं)। पहला (कारणज्ञान) स्वरूप से प्रत्यक्ष, स्वभाव से प्रत्यक्ष, सहजप्रत्यक्ष; यह (केवलज्ञान) सकलप्रत्यक्ष।

केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, वह ध्रुव के आश्रय से प्रगट हुई है। यह तो बात आ गयी है। केवलज्ञान उपयोग चैतन्य अनुविधायीपरिणाम उपयोगः, तो केवलज्ञान भी उपयोग है, वह चैतन्य को अनुसरकर हुआ उपयोग है। समझ में आया? आहा..हा..! इसमें कितना याद रहे? वह तो एक भगवान की भक्ति करना, जाओ गुरु की भक्ति करना, जाओ अब हो गया, कल्याण हो जायेगा। ऐसे नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! यह भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी त्रिकाल है, उसकी भक्ति करने से, भक्ति अर्थात् एकाग्र होने से कल्याण होगा। कहो, समझ में आया?

सकलप्रत्यक्ष (सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है। केवलज्ञान हुआ कैसे? कि चैतन्य अनुविधायीपरिणाम उपयोग:। समझ में आया? लो! सम्यग्दर्शन, श्रद्धागुण त्रिकाल है और सम्यग्दर्शन वर्तमान में है। इसलिए केवलज्ञान उसे अनुसरकर हुआ, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! कितना विस्तार करते हैं! समझ में आया? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने का कार्य हो, उसे केवलज्ञान कहा जाता है। उस कार्यज्ञान को सकलप्रत्यक्ष कहा जाता है। स्वरूप से प्रत्यक्ष तो त्रिकाल है। यह तो पर्याय का प्रत्यक्ष अर्थात् सकलप्रत्यक्ष कहा जाता है। समझ में आया? कहो, समझ में आया?

केवलज्ञान या मन:पर्ययज्ञान, वह सब चैतन्य को अनुसरकर होनेवाला ज्ञान है। समझ में आया? और चारित्र प्रगट हुआ होता है, वह भी अन्दर चारित्रगुण को अनुसरकर ही चारित्र प्रगट होता है और समकित प्रगट होता है, वह भी वास्तव में तो उस श्रद्धागुण को अनुसरकर ही प्रगट होता है और ज्ञान प्रगट होता है वह चैतन्य के गुण को अनुसरकर प्रगट होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वरूपप्रत्यक्ष अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल। त्रिकाल स्वरूप। स्वरूप का अर्थ उसका स्वरूप-स्वभाव ही यह है। स्वभाव ही है यह। उसका ज्ञान, वह स्वभाव। स्वभाव है, इसलिए प्रत्यक्ष। स्वभाव से प्रत्यक्ष, स्वरूप से प्रत्यक्ष, सहजप्रत्यक्ष, सहजज्ञान। आहा..हा..! ऐसा शब्द नहीं आया था। कहीं आया था? आहा..हा..! दिगम्बर सन्तों ने तो केवलज्ञान का हृदय खोल दिया है। आहा..हा..!

इसे अभी ख्याल में तो ले। ख्याल में लेनेवाली पर्याय है, परन्तु ख्याल करना किसका है? त्रिकाल का। त्रिकाल ज्ञानभाव स्वरूपप्रत्यक्ष है, उसका आश्रय करे, उसे मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल, अवग्रह, ईहा, अवाय, सब होता है। लब्धि कहो, वह सब उसे अनुसरकर होता है। समझ में आया? ऐसे बाहर का बहुत जानने में आया, इसलिए बाहर के कारण बहुत जानने के भाव होते हैं, ऐसा नहीं है। यह जानने का सम्यक्भाव अन्तर त्रिकाल सहज स्वरूपप्रत्यक्ष के आश्रय से होता है, उसे चैतन्य अनुविधायी परिणाम कहो। ओहो..हो..!

दो बातें की हैं। एक कारणस्वरूप प्रत्यक्षज्ञान, एक कार्य-सकलप्रत्यक्षज्ञान।

त्रिकाली कारणज्ञान तो स्वरूपप्रत्यक्ष कहा और केवलज्ञान हुआ, उसे सकलप्रत्यक्ष कहा। स्वरूपप्रत्यक्ष यह नहीं, क्योंकि स्वरूपप्रत्यक्ष तो स्वभाव त्रिकाल है, उसे कहते हैं। यह त्रिकाल नहीं है। यह तो प्रगट हुआ कार्य है। समझ में आया? केवलज्ञान भी सकलप्रत्यक्ष; स्वरूपप्रत्यक्ष पूरा नहीं। ऐसे-ऐसे केवलज्ञान की पर्यायें अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ज्ञानगुण में पड़ी हैं। उस स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान के आश्रय से यह केवलज्ञान होता है। आहा..हा..! कितने अपवास करने से केवलज्ञान होता है? टूट मरे तो नहीं होगा? ये बेचारे करते हैं न, वर्षीतप और ये सब। तुम्हारे घर में कभी किया नहीं था न? कहो, समझ में आया? आहा..हा..!

कहते हैं कि अन्दर भगवान आत्मा अर्थात् भग अर्थात् अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द आदि लक्ष्मी का रूप उसका है। वह अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द जो त्रिकाल है, उसमें उस त्रिकाल ज्ञान को स्वरूपप्रत्यक्ष, स्वाभाविकप्रत्यक्ष, सहजप्रत्यक्ष कहा जाता है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बात परन्तु...

'रुपिष्ववधेः (अवधिज्ञान का विषय-सम्बन्ध रूपी द्रव्यों में है)'... रूपी द्रव्य को जानता है न? अवधिज्ञान पर्याय अपने को अनुसरकर हुई, परन्तु उसमें जानने की ताकत रूपी की है। अवधिज्ञान। **ऐसा (आगम का) वचन होने से अवधिज्ञान, विकलप्रत्यक्ष है।** एक स्वरूपप्रत्यक्ष; एक सकलप्रत्यक्ष; एक विकलप्रत्यक्ष। विकल इन्द्रिय जो है न! एकदेशप्रत्यक्ष। आहा..हा..! मुनियों ने भी जंगल में रहकर...

उसके अनन्तवें भाग में वस्तु के अंश का ग्राहक (ज्ञाता) होने से... कौन? अवधिज्ञान वह जाने, उससे अनन्तवें भाग भी सूक्ष्म को मनःपर्ययज्ञान जाने। मनःपर्ययज्ञान भी विकलप्रत्यक्ष है परन्तु है विकलप्रत्यक्ष। कहो, समझ में आया? प्रत्यक्ष के इतने भेद किये। एक त्रिकाल स्वरूपप्रत्यक्ष—स्वभावप्रत्यक्ष - एक बोल। केवलज्ञान, वह स्वरूपप्रत्यक्ष - दूसरा बोल। अवधिज्ञान वह विकलप्रत्यक्ष और मनःपर्ययज्ञान विशेष जानने की ताकत अवधि से अनन्तवें भाग में सूक्ष्म को जाने, परन्तु है विकलप्रत्यक्ष; वह सकलप्रत्यक्ष नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार फिर से कहो, ऐसा कहते हैं। कहते हैं कि यह आत्मा

है और यह शरीर, वाणी, मन, जड़ ये सब उसके कारण रहे हुए हैं, ये कहीं आत्मा होकर रहे नहीं हैं। यहाँ तो माटी होकर रहे हैं। यहाँ तो आत्मा होकर जो त्रिकाल ज्ञानगुण रहा है, आत्मा का व्यापक होकर रहा है, ऐसा त्रिकाल ज्ञान, उसे स्वाभाविक ज्ञान या स्वरूपप्रत्यक्ष कहा जाता है और उसके आश्रय से केवलज्ञान हुआ, उसे सकलप्रत्यक्ष कहा जाता है। वह पर्याय है। वह (सहजज्ञान) गुण था। यह (केवलज्ञान) पर्याय है। स्वरूपप्रत्यक्ष, वह गुण था। केवलज्ञान, वह सकलप्रत्यक्ष पर्याय है। अवधि भी विकलप्रत्यक्ष है, क्योंकि थोड़ा ही देखता है और मन:पर्ययज्ञान भी अवधि से सूक्ष्म है, तथापि वह विकलप्रत्यक्ष है, सकलप्रत्यक्ष नहीं। कहो, समझ में आया?

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, दोनों परमार्थ से परोक्ष हैं... लो, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों परमार्थ से परोक्ष हैं। यह बात अन्तर की अपेक्षा से यहाँ ली नहीं है, वरना मति-श्रुतज्ञान स्व की अपेक्षा से तो प्रत्यक्ष है परन्तु स्थूलपना ऐसा आता है, उमास्वामी का... **और व्यवहार से प्रत्यक्ष हैं।** मति-श्रुत व्यवहार से प्रत्यक्ष है। यह मैंने प्रत्यक्ष जाना, ऐसा कहते हैं न? देखो! यह मैंने जाना, इस अपेक्षा से व्यवहार प्रत्यक्ष है। कहो, इतने भेद कहे, वे ५६३ भेद जीव के, वे नहीं रटते? जीव के, जड़ परमाणु के और सब। यह तेरे ज्ञानगुण का, त्रिकाल और उसकी पर्याय और भेद को तो जान। समझ में आया? कि जो तेरी अस्ति में हैं, तेरी सत्ता में हैं। सहजज्ञान त्रिकाल सत्ता में है। सकलप्रत्यक्ष, विकलप्रत्यक्ष तेरी पर्याय की सत्ता में होता है। समझ में आया?

और विशेष बात यह है कि उक्त (ऊपर कहे हुए) ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल,... लो, इन सब ज्ञानों के प्रकार कहे, उनमें **साक्षात् मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहजज्ञान ही है...** सहजज्ञान ही है। समझ में आया? आत्मा की मुक्तदशा, सिद्धदशा होने में आत्मा का त्रिकाली सहजज्ञान मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित, निजपरमतत्त्व ऐसा जो आत्मा, उसमें रहा हुआ स्वाभाविक ज्ञान ही, जो स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान है, वह ही मोक्ष का कारण है। लो, ठीक! ज्ञान की बात लेनी है न?

पूरी मोक्ष की दशा का कारण द्रव्य है परन्तु केवलज्ञानरूपी मोक्ष का कारण यह सहजज्ञान त्रिकाल है। आहा..हा..! समझ में आया? क्या कहा? मोक्ष जो पूर्ण मोक्षदशा है, उसका कारण तो पूरा द्रव्य है, परन्तु केवलज्ञानरूपी मुक्तदशा का कारण तो अन्दर सहजस्वरूप ज्ञान है, समझ में आया?

व्यवहार, दया, दान, भक्ति और पूजा, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। अरे! निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय भी मोक्ष का कारण नहीं है, ऐसा यहाँ तो सिद्ध करना है। आहा..हा..! समझ में आया? वे चार ज्ञान कहे थे न? अन्तर्भेद। विकलप्रत्यक्ष, सकलप्रत्यक्ष और मति, श्रुत और अवधि, वे सब भेद केवलज्ञान का कारण नहीं है। आहा..हा..! अन्तर में भगवान आत्मा में व्यापक, कायम रहा हुआ, पसरा हुआ, ऐसा प्रत्यक्ष सहजज्ञान, वह मोक्ष का मूलकारण है। वह मोक्ष का कारण है। आहा..हा..!

तथा सहजज्ञान, (उसके) पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण,... अब कहते हैं कि परन्तु वह चीज क्या है? तथा सहज स्वाभाविकज्ञान, स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान जो कहा था वह। पारिणामिकस्वभाव के कारण। वह तो अपना पारिणामिक सहजस्वरूप का स्वरूप ही वह है। वह **भव्य का परमस्वभाव होने से,...** भव्य जीव का वह परमस्वभाव है। आहा..हा..! स्वाभाविकज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष कहा। समझ में आया? कारणप्रत्यक्ष, स्वभाव से प्रत्यक्ष कहा, उसे यहाँ परमस्वभाव, **भव्य का परमस्वभाव होने से,...** आहा..हा..! मोक्ष की पर्याय प्रगट होनी है, ऐसे भव्य जीवों का यह परमस्वभाव ही कारण है। परमस्वभाव ही उसका स्वभाव है। आहा..हा..! ऐसी धर्म की व्याख्या कैसी! सब अनजानी आवे, लो! उसमें छह काय की दया पालना,... मिच्छामी दुक्कडं तस्सुतरि करणेण... भगवान की स्तुति, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु... ऐसा तो कुछ इसमें आया नहीं। वह तो सब विकल्प की बातें हैं। वस्तु वह है नहीं। आहा..हा..! फिर कठिन पड़े। साधु (होवे तो ऐसा कहे), नहीं, नहीं। यह तो अकेला निश्चय.. निश्चय.. निश्चय.. निश्चय.. (करते हैं) परन्तु निश्चय अर्थात् अकेला सत्य.. सत्य.. सत्य..। निश्चय.. निश्चय.. करके (निकाल डालना है)। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य.. सत्य.. सत्य.. ऐसा। व्यवहार अर्थात् (खोटा.. खोटा.. खोटा..)।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात है।

मुमुक्षु : वह परमभाव में स्थित न रहे तो शुभभाव करना न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा वे लोग कहते हैं। यह तो वह साधु आया था, वह कहता था। कुन्दकुन्द विजय नहीं आया? कुन्दकुन्द विजय, रामविजय का शिष्य। वह यहाँ रहा

था। फिर कहा, बात तो सत्य लगती है परन्तु इस भव में नहीं। कुन्दकुन्द विजय था। अभी है। उस सुलोचन विजय के साथ में। सुलोचन विजय गुजर गये। रामविजय के पास कलकत्ता में दीक्षा ली थी न? वह तो फिर छोड़ दिया। ऐसा सुना, इसलिए उसे ऐसा लगा कि मार्ग कोई दूसरा है। परन्तु वह अगरपंथ... पन्थ में रह गया। ऐई! शान्तिभाई! इन कान्तिभाई के बड़े भाई। दीक्षा ली थी। इनके बड़े भाई शान्तिभाई वे यहाँ रहे और बीच में थे सुलोचनजी। यहाँ आये थे परन्तु सब गड़बड़ हो गयी। न जँचा यह, न वह जँचा। आहा..हा..! वे कहते हैं, वे कुन्दकुन्द विजय, बात तो सत्य लगती है। सुलोचन विजय को तो सुनकर ऐसा हुआ, मार्ग यह है। अब हम यह दूसरी प्ररूपणा नहीं करेंगे, यह करेंगे, ऐसा करके उसने छोड़ दिया। कुन्दकुन्द विजय बोले, मार्ग तो यह लगता है परन्तु इस भव में हो सके, ऐसा नहीं लगता। यह करते हैं, वह तो अनन्त भव में सब किया है। आहा..हा..! और कल कोई कहता नहीं था? कि इसमें समकित नहीं होता। भाई कहते थे न? ऐसे कितनेक बोलते हैं। इस भव में समकित नहीं होता। तब तुम साधु होकर कैसे बैठे? मिथ्यादृष्टि होकर तुम साधु हुए? कुछ भान नहीं होता? गप्पें मारते हैं। आहा..हा..!

यह तो **भव्य का परमस्वभाव होने से, सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है।** देखो, कहो, समझ में आया? भव्य का परमस्वभाव चैतन्य... अभव्य का भी वह स्वभाव है परन्तु उसे प्रगट नहीं होता, इसलिए नहीं कहा जा। प्रगट होता है, उसे परमस्वभाव है। भान में आवे, उसे परमस्वभाव, अन्य को नहीं। है तो सही परन्तु भान में नहीं आता तो उसका नहीं कहा, जाओ। भान में न आवे, उसे क्या परमस्वभाव? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आहा..हा..! दरबार का दरवाजा खोल दिया है। खजाना खोल दिया है। वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ इन्द्रों और गणधरों के समक्ष यह बात कहते थे। सभा में यह बात थी। वह कुछ गुप्त नहीं रखी। इसकी पहले श्रद्धा में निर्णय तो करे। समझ में आया? मार्ग यह है, दूसरा कोई मार्ग है नहीं। आहा..हा..!

सहजज्ञान, देखो! जिसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहा था, जिसे भव्य का परमस्वभाव कहा था। समझ में आया? कि जिसे यह ज्ञान अन्तर के अनन्त आनन्दादि को जाननेवाला कहा था। अनन्त शक्तियाँ हैं न? ज्ञान, दर्शन, आनन्द सबको जाननेवाला यह त्रिकाली ज्ञान है। ऊपर कहा था। ऐसा जो भगवान परमस्वभावज्ञान, उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ उपादेय

नहीं है। इसके अतिरिक्त कोई आदरणीय धर्मी को नहीं है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया?

सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है। त्रिकाली भगवान आत्मा में भरपूर ज्ञान ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... स्वरूपप्रत्यक्ष, स्वभावप्रत्यक्ष, सहजप्रत्यक्ष, सहजस्वभाव, परमभाव, कारणज्ञान के अतिरिक्त भव्य जीव को दूसरा कोई उपादेय / आदरणीय नहीं है। किस पर्याय को आदरणीय रखा इसमें? आहा..हा..! समझ में आया? देव-शास्त्र-गुरु तो उपादेय हैं या नहीं?

मुमुक्षु : प्रभु! यह बात तो अभी डिपॉजिट रखना।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी नहीं कहना, कहते हैं। परन्तु कहते हैं कि प्राप्त कहाँ से हो?

मुमुक्षु : समझानेवाला कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझा स्वयं अपने से है, पर से नहीं। यह सब बात सत्य है परन्तु रखो। अभी गिरवी रखो। आहा..हा..! स्वाभाविक ज्ञान के अतिरिक्त... आहा..हा..! ढ़िंढ़ोरा पीटकर कहा है। कुछ गुप्त रखा है? धर्मी सम्यग्दृष्टि होने को, होनेवाले को, और हुए को सबको एक ही यह स्वाभाविक त्रिकाली ज्ञान ही एक आदरणीय है। आहा..हा..! कहो, जेठाभाई! पुस्तक है या नहीं? नानाभाई को दिया होगा न? उसमें देखो! कैसी बात है! भगवान का ऐसा मार्ग है। आहा..हा..!

भव्य का परमस्वभाव होने से,... वह पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण। ऐसा। सहजभाव पारिणामिक अर्थात् सहज-सहजस्वरूप सहजस्वरूप। उस ज्ञान का रस का सत्व / तत्त्व त्रिकाली ध्रुवरस। आहा..हा..! वह **भव्य का परमस्वभाव होने से, सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य...** अस्ति-नास्ति की है। पहले ऐसा कहा था न कि मोक्ष का मूल उस तत्त्व में रहा हुआ ज्ञान है, यह अस्ति की थी। अब यहाँ कहते हैं, उसके अतिरिक्त दूसरा नहीं है, यह नास्ति की-यह अनेकान्त है। समझ में आया? अनेकान्त ऐसा नहीं कि यह भी आदरणीय और वह भी आदरणीय है। आहा..हा..!

भगवान, रागरहित निष्क्रिय चीज़ और अकेला ज्ञानभाव... भाव... भाव.. यहाँ ज्ञान की व्याख्या चलती है न! उपयोग की चलती है। ऐसा जो सहजस्वभाव, नित्यभाव, सहजभाव, परमभाव, पारिणामिकभाव, पारिणामिकभावस्वरूप रहा हुआ ज्ञान, अन्तःतत्त्व

भगवान में व्यापक ज्ञान, ध्रुवरूप से रहा हुआ ज्ञान, सहजानन्द प्रभु आत्मा का जो ज्ञान, वही उपादेय है; उसके अतिरिक्त कुछ उपादेय नहीं है। उसके अतिरिक्त 'दूसरा कोई' शब्द है या नहीं ?

मुमुक्षु : .....समझने में दिक्कत क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझाने में दिक्कत नहीं।

कुछ उपादेय नहीं है। आहा..हा..! ज्ञान की पर्याय आवे कहाँ से ? बाहर में से आवे ? बाहर में से लाभ माने तो उसे भ्रमणा है। सत्पुरुष मिले तो प्राप्त हो, ऐसा कहा है न उसमें ? भाई सोगानी ने। सोगानी को किसी ने पूछा था कि भाई! सत् मिले तो (प्राप्त हो)। वह सत् है तो तू सत् नहीं ? तू सत् है या नहीं ? या तू असत् है ? है या नहीं अस्तिरूप वस्तु पूरी ? सत् से ज्ञानी मिले और सत् समागम होवे तो उससे हो। उस सत् से हो तो तू सत् है या नहीं ? या तू असत् है ? नहीं ? ऐसा है। फिर विशेष बात लेंगे....

(*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१८, गाथा-११-१२, श्लोक-१८, गुरुवार, फाल्गुन कृष्ण ६, दिनांक १८-०३-१९७१

नियमसार जीव अधिकार। कैसा जीव स्वभाव है ? और उस स्वभाव का ध्यान करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है, इसलिए जीव अधिकार में यह लिया है। कैसे जीव का ध्यान करने से, कैसे जीव का ज्ञान करने से या कैसे जीव में रमणता करने से आत्मा को धर्म और मुक्ति होती है ? अन्तिम पैराग्राफ है। २९पृष्ठ, अन्तिम है न ?

यह आत्मा, अन्दर आत्मा है, वह कैसा है ? कि **इस सहजचिद्विलासरूप...** आत्मा स्वाभाविक ज्ञान का विलास है। आहा..हा..! त्रिकाल आत्मा वस्तु, वह स्वाभाविक ज्ञान के विलासरूप अनन्त चतुष्टयसहित ऐसा आत्मा है, उसे भाना, अनुभव करना - ऐसा कहते हैं। स्वाभाविक ज्ञानविलासरूप आत्मा, वह तो ज्ञान के विलासरूप आत्मा है। उसमें कोई शरीर-वाणी-मन या पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-विकल्प उसमें है नहीं। समझ में आया ? ऐसा जो भगवान आत्मा स्वाभाविक ज्ञान के विलासरूप है।

अब उसमें चार बोल वर्णन करते हैं। स्वाभाविक ज्ञानविलासरूप आत्मा ध्रुव, वह

सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,... रूप है। कैसा है? भगवान आत्मा? सदा—त्रिकाल, स्वाभाविक परम वीतराग सुख का अमृतरूप है वह। सदा—तीनों काल। श्रद्धा में वहाँ त्रिकाल लिया है। इसमें सदा लिया है। टीका में इतना शब्दफेर किया है।

क्या कहते हैं? मूल बात है। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव, वीतराग परमात्मा ने, यह मोक्ष का मार्ग कैसे हो? वह जाना, वैसा उन्होंने कहा। पृष्ठ २९, अन्तिम पैराग्राफ है। है, यहाँ दूसरी बहुत पुस्तकें हैं। मक्खन की बात है पूरी। जिसे धर्म हो और मुक्ति हो, वह कैसे होती है? यह बात करते हैं। अन्दर भगवान आत्मा ध्रुव नित्य सहजज्ञान विलासरूपी प्रभु नित्य है। **सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,...** रूप। अन्तर वस्तु का स्वभाव, अनन्त चतुष्टय में का एक स्वाभाविक परमवीतराग सुखामृत, वीतरागी आनन्द के अमृतस्वरूप आत्मा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आनन्द अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृत आनन्द-सुख। आनन्द कहो या सुख कहो।

मुमुक्षु : वीतरागी....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागी—रागरहित। यह तुम्हारा बाहर का धूल का माना हुआ (अर्थात्) पैसे में सुख है और धूल में सुख है, स्त्री में सुख है, वह तो राग का-जहर का सुख है। इसके लिए वीतरागी सुख कहा। समझ में आया? यह रागवाला माना हुआ है अज्ञानी ने मूढ़ (ने)। पैसे में, इज्जत में, कीर्ति में, धूल में, धमाल में, पाँच-पचास लाख हुए और सुखी हैं। मूढ़ है।

मुमुक्षु : उसमें उसे मूढ़ नहीं कहा जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ नहीं। वह तो महा जहर का प्याला पीता है। ऐई! आहा..हा..! कहते हैं कि पैसा, स्त्री का शरीर, इज्जत, पच्चीस लाख रुपये के बड़े मकान, उन पर लक्ष्य जाता है, वह दुःख का, आकुलता का जहर है। आहा..हा...! वह जहर का, राग का अनुभव है। इसलिए कहते हैं कि आत्मा में तीनों काल स्वाभाविक परमवीतराग सुख का, अमृत का पिण्ड वह प्रभु है। आहा..हा..! समझ में आया?

यह शरीर मिट्टी है, यह तो मिट्टीरूप से रहा है। अन्दर में कर्म हैं, वे कर्मरूप से, अजीवरूप से रहे हैं। अन्दर पुण्य और पाप के विकल्प / भाव हैं, वे विकाररूप से रहे हैं।

एक समय की अवस्था, वह समयरूप से रही है—एक समयरूप से रही है। त्रिकाल आत्मा जो सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर तीर्थंकर ने देखा, वह आत्मा सहज ज्ञानविलासरूपी प्रभु अन्दर है। आहा..हा..! **सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,...** स्वरूप है। उसकी शक्ति सुखामृत है। वीतराग अमृतस्वरूप वह आत्मा है। आहा..हा..!

(२) वह तो अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप,... है। चिद्-ज्ञानविलासरूप से तो कहा परन्तु तत्पश्चात् यह कहते हैं, वह अपना स्वरूप अन्दर अप्रतिहत—कभी नाश न हो, आवरण नहीं, ऐसा ज्ञानस्वरूप। ऐसा चित्शक्तिरूप, ज्ञानशक्तिरूप आत्मा है। अभी आत्मा किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और उसे धर्म हो, (ऐसा नहीं हो सकता)।

मुमुक्षु : किस प्रकार से?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करे, इसलिए हो जाये? व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, अपवास करे। धूल में भी धर्म नहीं है। सुन न। अभी धर्म कैसे हो? कहाँ से हो? करनेवाला कौन है? इसकी खबर बिना धर्म कहाँ से आयेगा? समझ में आया?

कहते हैं कि **अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप,...** भाषा देखो न! इन्हें कम पड़ती है। उसमें **सहज परमवीतराग सुखामृत,...** (कहा)। अप्रतिहत—आत्मा में घात न हो ऐसा, गिरे नहीं, ऐसा स्वाभाविक आवरणरहित परमज्ञानस्वरूप आत्मा अन्दर है। अनन्त चतुष्टय में का यह दूसरा बोल (चलता है)। पहला बोल वीतरागस्वभावी परमसुखामृत, यह पहला। अनन्त चतुष्टय आत्मा में त्रिकाल है, उसमें यह पहला बोल। दूसरा बोल यह परमचित्शक्तिरूप। आहा..हा..!

तीसरा बोल—**सदा अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज परमचारित्र,...** आत्मा में अनादि-अनन्त। इसमें भी सदा शब्द प्रयोग किया है न, देखो! **अन्तर्मुख ऐसा...** अन्दर अन्तर्मुखस्वरूप है। यहाँ पर्याय की बात नहीं है, अवस्था की बात नहीं है। त्रिकाल आत्मा में **अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल...** स्वरूप ज्ञानानन्द में अविचल—चलित नहीं ऐसा, **स्थितिरूप...** स्थिररूप, **सहज परमचारित्र,...** वह आत्मा में अनादि-अनन्त पड़ा है, यह चारित्र अन्दर की व्याख्या हुई। प्रगट चारित्रपर्याय की बाद में। यह तो अन्तरस्वरूप में यह आत्मपदार्थ जो वस्तु है, वह ज्ञानविलासरूपी प्रभु है, उसमें

अनन्त चतुष्टय में के चार बोल हैं। उनमें पहला तो **वीतराग सुखामृत,... अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप,...** और **अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज परमचारित्र,...** शान्ति वीतरागता आत्मा में त्रिकाल पड़ी है। उसे यहाँ चारित्र कहने में आता है। आहा..हा..! गजब बात, भाई! **परमचारित्र,...** है न? अब चौथा बोल। पहले दो में सदा शब्द प्रयोग किया था। एक में सदा का अर्थ अप्रतिहत प्रयोग किया था। वापस गिरे नहीं, इसलिए वही ऐसा का ऐसा है सदा। यहाँ अब श्रद्धा का वर्णन करते हैं। त्रिकाली श्रद्धा, हों! प्रगट समकित पर्याय की बात नहीं है।

(४) त्रिकाल अविच्छिन्न (अटूट).... ऐसा भगवान आत्मा ने तीनों काल टूटे नहीं, छिदे नहीं, एकरूप रहे, ऐसा **होने से सदा निकट, ऐसी परम चैतन्यरूप की श्रद्धा...** सदा निकट। वह श्रद्धा आत्मा में अनादि-अनन्त पड़ी है। आहा..हा..! समझ में आया? आत्मा कैसा, इसने सुना नहीं और ऐसे के ऐसे धर्म हो जाये... इस खबर बिना सब प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये। क्या होगा? पोपटभाई! यही किया था? धूल में भी धर्म नहीं, तुझे अभी आत्मा कौन है? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने केवलज्ञान में प्रत्येक का ऐसा आत्मा देखा है। समझ में आया?

ऐसा जो **(अटूट) होने से सदा निकट, ऐसी परम चैतन्यरूप की श्रद्धा...** प्रगट श्रद्धा होना, वह नहीं। अन्दर में चिद्विलासरूपी प्रभु, गुण ध्रुव में यह सुख, उसमें यह ज्ञान, उसमें यह चारित्र, उसमें यह श्रद्धा, वह त्रिकाल अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप-स्वभावरूप-गुणरूप पड़े हैं। समझ में आया? उसके खजाने में यह चीज़ पड़ी है। आहा..हा..! पण्डितजी! गजब बात, भाई! **ऐसी परम चैतन्यरूप की...** देखो! परम शब्द तो सबको प्रयोग किया है। **परम चैतन्यरूप की...** श्रद्धा पारिणामिकभाव से। आत्मवस्तु में स्वभावभाव से रही हुई श्रद्धा। अटूट, निकट। जेठाभाई! ऐसा सब कहीं सुना था?

मुमुक्षु : ऐसा कहाँ सुने?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? मेहनत तो बहुत की थी। गर्म पानी पीना और..., अरे! क्या कहलाता है वह? ....रखना। ऊपर शत्रुंजय चढ़ना थैली में फूल लेकर जाये, ऐसे गिरने न दे, वह सब क्रियाएँ तो पर हैं। उनमें कदाचित् राग की मन्दता का भाव हो तो वह पुण्य घोर संसार का कारण है। ऐसा कहेंगे अभी, हों! भाई! अरे! गजब बात, भाई! कठोर

वीतरागमार्ग जगत को सुनना कठिन पड़ता है। सेठी! यह प्रभु अन्दर विराजता है, ऐसा कहते हैं। तेरे अन्तर खजाने में ज्ञानविलासरूपी प्रभु तू, उसमें अमृत सुख, ज्ञान, चारित्र और श्रद्धा। इसके फिर विशेषण सब दिये। वह अनंत चतुष्टय स्वभाव ध्रुव, आत्मा के नित्य स्वभाव में वे ध्रुवरूप से पड़े हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की सम्पत्ति है। धूल में भी नहीं, यह मेरे पैसे और यह...। पोपटभाई! तुम्हारे पैसेवालों को बाहर में सामने कुर्सी मिलती है।

मुमुक्षु : यहाँ भी मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ भी मिलती है परन्तु.... यहाँ जमीन ली है, देखो न! छत्तीस हजार की ली है। अब फिर उसमें बंगला बनायेंगे न! जमीन अकेली छत्तीस हजार की ली है। ऐ चिमनभाई! तुम्हारे समधी होते हैं न? उस धूल में बाहर में पच्चीस-पचास लाख हो, करोड़-दो करोड़ हो वहाँ तो मानो.... आहा..हा..!

मुमुक्षु : उन्हें फिर कहाँ डालना, उसकी चिन्ता खड़ी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्ता, आकुलता दाह है। आहा..हा..! यह पहले करने का भाव, वह दाह-अग्नि। रखने का भाव, वह अग्नि; बनाये रखने का भाव, वह अग्नि; यह खर्च करने का भाव, वह अग्नि है। इस धर्म के नाम से खर्च करे तो भी वह कषाय का शुभभाव अग्नि है। राग है न। आहा..हा..! गजब काम भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ, तीर्थंकर का (मार्ग है) यह कोई ऐरे-गैरे, पामर माने, वह मार्ग नहीं है। समझ में आया? प्रकाशदासजी! आहा..हा..! प्रकाशदास, प्रकाश का स्वामी होगा। प्रकाश का स्वामी होना, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहा..हा..!

चैतन्यविलास भगवान। पद्मप्रभमलधारिदेव की भाषा देखो न कितनी संक्षिप्त पड़ती है उन्हें। सहज चिद्विलासरूप से। स्वाभाविक ज्ञान के विलासस्वरूप प्रभु तू है, ऐसा कहते हैं। तेरा विलास तो तेरे स्वभाव में है। आहा..हा..! इस धूल में स्त्री, पुत्र और पैसा, बँगले में तेरा विलास नहीं है, भगवान! वह तो सब जहर का प्याला पिया जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? कहो, कान्तिभाई!

ओहो..! **इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से...** वह स्वभाव अनन्त चतुष्टय-चार हुए

न ? पहला बोल तो स्वाभाविक ज्ञानस्वरूपी, ऐसा मुख्य लिया क्योंकि ज्ञायकरूप से लेना है न ? ज्ञायकभाव भगवान आत्मा। ज्ञानविलासरूप से प्रभु अनन्त चतुष्टय से सहित विराजमान प्रभु ध्रुव है। कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें ?

मुमुक्षु : न समझ में आये तो अभी समझा दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठी ठीक रखता है। कौन समझा दे ?

यहाँ कहते हैं **इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से जो सनाथ (सहित) है...** भगवान आत्मा सनाथ है। किससे ? चिद्विलासरूप से अनन्त चतुष्टयसहित होने से वह आत्मा सनार्थ है; अनाथ नहीं, सनाथ है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वह है, इसलिए सनाथ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सनाथ है। आहा..हा..! भगवान आत्मा नित्य ध्रुव। एक समय की पर्याय की बात नहीं, पुण्य-पाप की तो बात भी यहाँ नहीं। वह तो सब संसार है, जिसे धर्म करना है, उसे ऐसे आत्मा को अन्तर में रहकर भाना, उसका नाम धर्म है। अभी आता है, हों! धीरे-धीरे।

ऐसा जो सनाथ आत्मा, **ऐसे आत्मा को,...** ऐसे आत्मा को, ऐसे आत्मा को **अनाथ मुक्तिसुन्दरी के नाथ को...** मुक्तिसुन्दरी अनाथ है, उसका यह आत्मा नाथ है। समझ में आया ? आहा..हा..! **भाना चाहिए...** जिसे मुक्ति चाहिए हो, उसे ऐसे आत्मा की एकाग्रता करना, ऐसे आत्मा का अनुभव करना तो उसे मोक्ष मिले; नहीं तो मोक्ष मिलेगा नहीं। देखो तो सही! समझ में आया ? आहा..हा..!

जिसके ध्येय में धर्मी की दशा की पर्याय का ध्येय, वह पूरा आत्मा ऐसा चिद्विलासरूप और अनन्त चतुष्टय शक्ति-स्वभावस्वरूप है। उसके सन्मुख होकर, संयोगी चीज़ों से विमुख होकर, दया, दान के विकल्प से भी विमुख होकर, एक समय की अवस्था में अनादि से रुका हुआ है, उससे विमुख होकर (स्वभावसन्मुख होना)। समझ में आया ? अरे! गजब बात भाई! ऐसी।

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय से विमुख होकर अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय तो अनादि मानी हुई है। मैं त्रिकाल ध्रुव

हूँ, ऐसा इसने कभी माना नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? अब आत्मा ऐसा कठिन पड़े। ऐई! पारसमलजी! अब इसमें क्या संग्रहना? ले जाना क्या इसमें? वे पैसे हों तो खबर पड़े कि लो, यह बीस लाख, पच्चीस लाख पैसे (रुपये) हुए। लाओ मारवाड़ में ले जायें। इसमें (क्या ले जाये)? कहते हैं कि यह बात अन्दर ले जाने जैसी है। आहा..हा..! परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव इन्द्रों और गणधरों के समक्ष में दिव्यध्वनि द्वारा कही हुई बात सन्त कहते हैं। यह टीका गणधरों से रचित है। भगवान के पास सुना हुआ है। यह गणधरों से रचित यह टीका पद्मप्रभमलधारिदेव करते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है। दूसरी कोई चीज़ ही नहीं। महेन्द्रभाई को वहाँ पैसा-वैसा जरा भी साथ आनेवाला नहीं है। वे इसके नहीं कि साथ आवे। एक पर्याय भी इसके साथ नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। एक समय रहेगी। यह तो त्रिकाल साथ में रहेगा। देखो न! सनाथ है इसलिए। समझ में आया? आहा..हा..! गजब बातें, भाई! अरे! ऐसी मनुष्य देह मिली, उसमें वास्तविक तत्त्व की दृष्टि को नहीं समझे (तो) सबके वृथा अवतार हैं। चाहे तो साधु होकर क्रियाकाण्ड करके मर जाये। समझ में आया? परन्तु यह आत्मा अनन्त चिद्विलासरूपी प्रभु, अनन्त चतुष्टय के स्वभाव का सनाथ-नाथ प्रभु है, उसे दृष्टि में लेकर उसका अनुभव करना, बस, यही धर्म है; बाकी सब बातें हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

भाना चाहिए.... अर्थात् स्पष्टीकरण किया है। पहला शब्द चिद्विलास है न? शुरुआत में पहला शब्द है। स्वाभाविक ज्ञानविलास। वहाँ चित् शब्द है, यहाँ ज्ञान (शब्द) प्रयोग किया है। चतुष्टय के साथ दोनों का मेल किया है। **सहजज्ञान-विलासरूप से स्वभाव अनन्त चतुष्टययुक्त...** स्वाभाविक ज्ञान-विलासरूप से भगवान आत्मा **स्वभाव अनन्त चतुष्टययुक्त आत्मा को भाना चाहिए...** ऐसे आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता करना चाहिए। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे अन्तर में (भाना चाहिए)। देखो! यह भाने की व्याख्या। वे विरोध करते हैं। अभी आया था कि भाना अर्थात् ऐसे हो। चिन्तवना, अमुक-अमुक। अरे! भगवान! क्या करता है? प्रभु! तुझे तेरा माहात्म्य नहीं आता।

मुमुक्षु : विधि....

पूज्य गुरुदेवश्री : विधि यह है। यह तो दूसरी भाषा है। भाना चाहिए, इसमें विवाद उठा है। भाना अर्थात् कल्पना से चिन्तवन करना। ऐसा नहीं है। पाठ है देखो न!

'**अनाथमुक्तिसुन्दरीनाथम् आत्मानं भावयेत्।**' ऐसे भगवान आत्मा में एकाग्र होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और धर्म है। यह धर्म है। वह धर्मी ऐसा अनन्त चतुष्टययुक्त प्रभु आत्मा के सन्मुख होकर, एकाग्रता से उसमें से दशा प्रगट हो, उसे धर्म कहते हैं। उसे वीतरागमार्ग का धर्म कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..! पुस्तक है या नहीं? भाई! तुम्हारा नाम क्या है? सोहनलालजी? यह तो सोहनलाल आत्मा है, यहाँ तो कहते हैं। आहा..हा..!

कहते हैं, (यह तो) परमात्मा का हुकम है। सन्त बीच में आड़तिया होकर जगत को समझाते हैं। समझ में आया? आहा..हा..! भाई! तुझे माल चाहिए है? धर्मरूपी माल चाहिए है? वह माल आत्मा के स्वभाव में पड़ा है, वहाँ से माल आयेगा। अन्यत्र से कहीं माल आवे, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

इस प्रकार संसाररूपी लता का मूल... संसाररूपी लता / बेल। आकुलता और दु:ख की बड़ी बेल अनादि की है, उसे **मूल छेदने के लिए हँसियारूप इस उपन्यास से ब्रह्मोपदेश किया।** (उपन्यास अर्थात्) ***कथन, सूचन, लेख, प्रारम्भिक कथन, प्रस्तावना।*** इस प्रस्तावना से ब्रह्मोपदेश (कहा है)। भगवान ब्रह्मानन्द प्रभु! ब्रह्म, आनन्द। ब्रह्म अर्थात् आनन्द का स्वरूप भगवान आत्मा का है। अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है। उसकी यह प्रस्तावना का कथन शुरुआत में किया है। आहा..हा..! समझ में आया?

श्लोक-१८

[अब, इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं—]

(मालिनी)

इति निगदित-भेदज्ञान-मासाद्य भव्यः,
परिहरतु समस्तं घोर-सन्सार-मूलम्।
सुकृतमसुकृतं वा दुःखमुच्चैः सुखं वा,
तत उपरि समग्रं शाश्वतं शं प्रयाति।।१८।।

(वीरछन्द)

इस प्रकार जो कहा गया, वह भेदज्ञान को उर में धार।
सुकृत-दुष्कृत या सुख-दुःख का, करते भव्य जीव परिहार॥
ये समस्त शुभ-अशुभ भाव ही, भव-दुःख के हैं कारण मूल।
इन्हें त्याग कर जीव प्राप्त करता है शाश्वत सुख सम्पूर्ण॥१८॥

श्लोकार्थ :— इस प्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर, भव्यजीव घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत[१] या दुष्कृत को, सुख या दुःख को अत्यन्त परिहरो। उससे ऊपर (अर्थात्, उसे पार कर लेने पर), जीव समग्र (परिपूर्ण) शाश्वतसुख को प्राप्त करता है॥१८।।

श्लोक-१८ पर प्रवचन

[अब, इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहतेहैं—] पाँच श्लोक। दो गाथा के पाँच श्लोक। १८वाँ है न ? ऊपर १८वाँ श्लोक है।

इति निगदित-भेदज्ञान-मासाद्य भव्यः,
परिहरतु समस्तं घोर-सन्सार-मूलम्।

१. सुकृत या दुष्कृत=शुभ या अशुभ।

उन लोगों को यह नहीं रुचता, हों! भाई! शुभभाव घोर संसार का मूल.. अर..र..! ऐ..! घोर संसार। भाई! वह शुभभाव है न, पुण्यभाव, भगवान की भक्ति, नाम स्मरण, दया, दान, व्रत, तप—ऐसा जो शुभभाव, कहते हैं कि वह घोर संसार मूल है।

इति निगदित-भेदज्ञान-मासाद्य भव्यः,
परिहरतु समस्तं घोर-सन्सार-मूलम्।
सुकृतमसुकृतं वा दुःखमुच्चैः सुखं वा,
तत उपरि समग्रं शाश्वतं शं प्रयाति।।१८।।

इस प्रकार कहे गये... अर्थ है न नीचे? नीचे अर्थ है। **भेदज्ञान को पाकर,...** देखो! क्या कहा? **इस प्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर,...** अर्थात् द्रव्यस्वभाव ऐसा है और पर्याय से भी वह भिन्न है, राग से भिन्न है—ऐसे इस प्रकार से भेदज्ञान को पाकर, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! **इस प्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर,...** भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप से चिद्विलासरूप से चारित्र की अविचल स्थितिरूप से और अनादि-अटूट श्रद्धारूप से और ज्ञानरूप से जो पड़ा है, पर से उसका भेद भाना चाहिए। आहा..हा..! पर से उसे भिन्न करके **भेदज्ञान को पाकर, भव्यजीव...** भव्यजीव। यह तेरा तेरा-तिरने का अभिलाषी जीव-तेरा जीव इस प्रकार से तिर जाता है, ऐसा कहते हैं। यह सूक्ष्म तो आया, नवलचन्द्रभाई! भाई को अभी पहला-पहला है न इसलिए। परन्तु अब सुने तो सही यहाँ कलकत्ता से आकर। मार्ग ऐसा है, बापू! ऐसा सूक्ष्म मार्ग। बाहर में कहीं नहीं है। तब ऐसा लगे कि यह क्या होगा? आहा..हा..!

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा हुकम फरमाते हैं, भाई! तेरा चिद्विलास स्वरूप भगवान अनन्त-अनन्त सुखामृतस्वरूप, अनन्त-अनन्त चिद्स्वरूप, अनन्त-अनन्त अविचल चारित्रस्वरूप त्रिकाल और अनन्त बेहद अटूट अनादि-अनन्त ऐसी निकट स्वभाव में रही हुई श्रद्धा, ऐसे आत्मा को, पर से भेद करके **भव्यजीव घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत या दुष्कृत को,...** देखो! है? नीचे है। ***सुकृत या दुष्कृत=शुभ या अशुभ*** भाव। शुभ और अशुभभाव वह विकार है। आत्मा स्वभावस्वरूप है और यह पुण्य-पाप के भाव विभाव दुःखरूप हैं। आत्मा के अमृतस्वरूप से विरुद्धभाव हैं। जब भगवान आत्मा संसार के अभाव-स्वभाव करनेवाला है, तब पुण्य-पाप संसार करनेवाला है, ऐसा

कहते हैं। आहा..हा..! कठिन बात है। जगत को यह जँचना कठिन (पड़ता है)। ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ़ का है, परन्तु यह शास्त्र कहता है या क्या कहते हैं यह? सोनगढ़ का कहाँ आया? यह सोनगढ़ की पुस्तक है?

मुमुक्षु : सबको तकलीफ पड़ती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रकार कहते हैं, वह तो दूसरे प्रकार से कहते हैं। यहाँ का विरोध करने के लिये कहते हैं। आत्मा है, भाई!

मुमुक्षु : यह सोनगढ़ सोना का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी राजकोटवाले आये थे न, भाई। गये? कलकत्ता। गये, वे बेचारे कहते थे। सोनगढ़ अर्थात् पाखण्ड। पाखण्ड.. पाखण्ड। अरे! भगवान! बापू! यह शास्त्र क्या कहता है? किसके घर का शास्त्र है यह?

मुमुक्षु : भगवान के घर का।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्लोक किसका है? नौ सौ वर्ष पहले का श्लोक है। दो हजार वर्ष पहले का मूल श्लोक (गाथाएँ) हैं। प्रकाशदासजी! आहा..हा..!

मुमुक्षु : घोर संसार का....

पूज्य गुरुदेवश्री : सात-आठ जगह है। पुरानी प्रति में लिखा है।....पुरानी प्रति में लिखा है। यह तो नयी आयी है। पृष्ठ ३० में घोर संसार आया। पृष्ठ ९० में है दुष्ट पाप मूल। पृष्ठ ९०। पृष्ठ १९६, वहाँ दुष्पाप मूल है। पृष्ठ २३६, अघ-पाप तथा पुण्य दोनों अघ हैं। अघ। २७६, अघ पाप तथा पुण्य। पृष्ठ २७६, पृष्ठ २५७ अघ-पाप। पृष्ठ २८६-दुरित। पाप तथा पुण्य दुरित है और पृष्ठ २९३-दुरघ- दु अघ—महापाप, पुण्य और पाप दोनों। पृष्ठ २९९ - अन्धकूप और २११ घोर संसार का मूल पाप है। यह पहले थे न, उसमें से लिखा है। उसका कुछ नहीं, अपने इस एक जगह हो, वहाँ सब समान है। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : समयसार में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं नियमसार। इस नियमसार में, यह तो नयी पुस्तक है न! पहले पढ़ते थे, उसमें लिख लिया था। पहले वह पढ़ते थे। अभी यह और अच्छा गत्ता

-बत्ता अच्छा हो, इसलिए लोगों को अच्छा लगे। ऐसा रखे। वह सब साधारण लगता है। समझ में आया? उसमें कहीं सबमें कितना लिखने को निवृत्त हो। चन्दुभाई थोड़ा सुधारकर लिखे। आहा..हा..!

कहते हैं... ओहो..हो..! सन्तों की वाणी तो देखो! पंच महाव्रत धारक ऐसे विकल्प से व्यवहार से है। वस्तु की निर्मल धारा को धरनेवाले हैं। वह महाव्रत है। स्वरूप में लिपट गये, आनन्दघन में लिपट गये, ऐसे सन्त जंगल में बसते हैं। उन्हें वस्त्र-पात्र नहीं होते, उन्हें वीतराग शासन में सन्त-मुनि कहा जाता है। उन मुनि के यह वाक्य हैं। इतना यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? आहा..हा..!

कहते हैं, **भेदज्ञान को पाकर, भव्यजीव घोर संसार के मूलरूप...** वापस भाषा घोर संसार का मूल (ली है)। ऐई! उसको भट्टी-बट्टी कठिन लगे तो यहाँ तो घोर संसार का मूल कहा है, लो! भाई! वह भट्टी-कही है न शुभ में? भयंकर भट्टी? हाँ, भयंकर भट्टी। भाई में आता है। सोगानी में (सोगानीजी के द्रव्यदृष्टि प्रकाश में) ३१२ प्रश्न। ६४५ में से ३१२वाँ प्रश्न है, उसमें आता है। शुभभाव क्या कहा? शुभभाव भयंकर। आहा..हा..! भयंकर का अर्थ भय को करनेवाला, दु:ख को करनेवाला। उसमें तुझे आपत्ति क्या है? ऐई! वे सब आ गये हैं। दो व्यक्ति (आये थे)। तुम नहीं थे। लालचन्दजी और सुमेरु सेठिया की ओर से। हमारी नजर में दोनों इकट्ठे हों तो यह बात सिद्ध हो ऐसी है। इसके बिना यह बात समझ में नहीं आती। अथवा वहाँ जयपुर आवे और अथवा जयपुर से मैं वहाँ आऊँ। परन्तु दो घण्टे इकट्ठे हुए बिना यह समझ में आवे, ऐसा नहीं है। बात तो सब ऐसी है। यहाँ कहीं किसी के पक्ष की बात नहीं है।

घोर संसार का मूल कहा है, लो! पुण्य और पाप के भाव, दया, दान का, व्रत का, भक्ति, तपस्या का भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना का भाव, दोनों भाव घोर संसार का मूल है। ऐ.. प्रकाशदासजी! है? इसमें लिखा है? आहा..हा..! राग है न! राग है, वह जहर है और जहर का फल संसार है। आत्मा का स्वभाव अमृतस्वरूप है। यहाँ तो यह पहले कहा है। अमृत आनन्द शान्ति अविचल स्थिरता, ऐसा आत्मा का स्वभाव है, उससे यह पुण्य और पाप विरुद्ध भाव है। जब स्वभाव मोक्ष का कारण है, तब पुण्य-पाप वह संसार का कारण है।

मुमुक्षु : परन्तु इसमें पुण्य को घोर किसलिए कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों घोर ही हैं। आत्मा की शान्ति नाश होकर उत्पन्न होते हैं। शान्त.. शान्त.. शान्त.. आहा..हा..! उस शीतलता का सरोबर। समझ में आया? यह वे कुण्ड नहीं कहते? क्या कहलाते हैं गरम पानी के? कुण्ड-कुण्ड। गरम पानी के कुण्ड नहीं (होते)? राजगृही और सर्वत्र है। यह आत्मा शीतल चैतन्य आनन्द का कुण्ड है। आहा..हा..! समझ में आया? शीतल.. शीतल.. शीतल.. शीतल.. भगवान आत्मा का स्वभाव अत्यन्त शीतल-शान्त अकषायस्वभाव है। उससे पुण्य और पाप विरुद्ध कषायस्वभाव है। इसलिए अकषाय स्वभाव मुक्ति का कारण; कषायस्वभाव संसार का कारण है। सीधी बात है।

मुमुक्षु : पुण्य-पाप में भेद डाले, वह घोर संसार का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घोर संसार आया न, देखो! पुण्य-पाप में अन्तर माने, वह घोर मिथ्यादृष्टि है। संसार में भटकेगा। कहा न प्रवचनसार में (गाथा ७७ में) क्या हो? लोगों को (पुण्य की) मिठास (छूटती नहीं)। अभी पाप में तो ठीक परन्तु वह पुण्य आवे, वहाँ उसे आहा..हा..! गले लगे।

मुमुक्षु : पुण्य स्वयं ही पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो पाप ही कहा है। अघ कहकर दोनों को अघ कहकर कहा है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप ही कहा। अनुभवीजन... योगसार (गाथा ७१ में कहा है) पाप को तो पाप सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे। आहा..हा..! क्योंकि आत्मा तो अमृत का कुण्ड प्रभु है। अविकारी वीतराग अमृत का सागर है। उससे विरुद्ध भाव उत्पन्न हो, चाहे तो शुभ या अशुभ, (वह जहर है)। चार बोल लेंगे, इसमें विशिष्टता है। कर्ता और भोक्ता दो को धारकर रखा। शुभ-अशुभ परिणाम, वह घोर संसार और उनमें सुख-दुःख की कल्पना होना, सुख-दुःख की कल्पना होना, वह सब घोर संसार का मूल है। इसे शान्ति से विचारना चाहिए। यदि इसे सत्य चाहिए हो तो। आहा..हा..! भाई! पुस्तक में है या नहीं?

मुमुक्षु : पुस्तक में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका तो अर्थ होता है। यह कहीं घर के अर्थ नहीं होते। आहा..हा..!

मुमुक्षु : हमारी ओर दो चीज़ ही मिलती है, पुण्य और पाप।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य और पाप, बापू! दो कहाँ, वह तो संसार है। आहा..हा..! जिसे उनके फल में मिठास है न, उसे पुण्य-पाप की मिठास हटती नहीं। पैसा, इज्जत, धूल और सब। आहा..हा..!

मुमुक्षु : परन्तु पुण्य हो तो सब मिले, नहीं तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं मिलता। धूल भी नहीं। ऐई.. शान्तिभाई! यह सब पुण्यशाली कहलाते हैं, सब पैसेवाले। कलकत्ता के। कहो, समझ में आया? जयन्तीभाई का लड़का है, वह दिलीप। वह मेरा मजाक उड़ावे। बारह वर्ष का है, बारह वर्ष का। वस्तु ऐसी है। लोगों को क्यों नहीं जँचता? ऐसा बोलता है। नवलचन्दभाई! जाधवजीभाई का पौत्र, जयन्तीभाई का पुत्र। वहाँ कलकत्ता में सब करते हैं न? भाई पहिचानते होंगे। जमुनादासभाई के नाम? क्या? लालचन्दभाई। उसे पहिचानते होंगे। उनके पुत्र का पुत्र है वहाँ। छोटा बारह वर्ष का दिलीप। जब यहाँ पुस्तक लेकर बैठे, तब मजाक करे। तुम्हारे वृद्धों-बूढ़ों का पानी उतार डाले ऐसा है। शान्तिभाई! बोले वीर्य से, हों! शरीर भरा हुआ है जरा। बारह वर्ष पूरे हुए, तेरहवाँ चलता है। यह क्यों जँचता नहीं? ऐसी वस्तु क्यों जँचती नहीं लोगों को? नवलचन्दभाई! यह उसके शब्द हैं, हों! सुनकर भी उसे... ऐसी बात सुनने को मिले, वह भाग्यशाली है, ऐसा बोलता था। ऐसा बोलता था। आवे तब यहाँ बैठे। अभी और उसे पढ़ने ले गये हैं न? पढ़ने ले गये.. उसके पिता जयन्तीभाई न! बेटा! चल.. चल.. पढ़ने। अब पढ़े, कहे। ऐसी पढ़ाई तो अनन्त बार पढ़ा। ....उसके पिता को ऐसा जवाब दिया था। जयन्तीभाई कहे कि चल भाई अब तू। अपने यहाँ अवकाश पूरा हो गया। अवकाश होता है न। अरे! पढ़े। यह पढ़ाई उसे कहा जाता है कि जो पढ़ाई अनन्त बार करके भूल गया, वह किया, वह पढ़ाई नहीं। पढ़ाई तो यह है कायम रहे, नित्य रहे, उसका नाम पढ़ाई। पण्डितजी! ऐसा एक लड़का आया है। उनका पौत्र है। आहा..हा..! उसमें आत्मा है न? वहाँ कहाँ छोटा-बड़ा शरीर है। वह तो जड़ है, वह तो मिट्टी है। छोटी-बड़ी उम्र तो शरीर को है, आत्मा को कहाँ उम्र थी?

कहते हैं, अहो! भव्य जीव! आहा..हा..! ऐसा करके कितना सम्बोधन करते हैं, हों! हे भव्यजीव! भेदज्ञान की ऐसी दशा को पाकर... आहा..हा..! जिससे भिन्न पड़ा है, वह चीज़ क्या है? वह तो संसार का मूल स्वरूप दुःख है और सुख-दुःख, दो लिये। करने का और भोगने का। शुभ-अशुभपरिणाम करना और शुभ-अशुभपरिणाम में हर्ष-शोक का भोगना घोर संसार का मूल है। यह पैसा-वैसा मिले और खाने-पीने में मजा आवे, वह राग घोर संसार का मूल है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अब करना क्या, यह तो बात करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करने की बात तो चलती है। आत्मा अन्दर ऐसा है, उसमें एकाग्र होना, वह करना है। बाकी सब जहर का प्याला पीते हैं, ऐसा कहते हैं। आहा..!

मुमुक्षु : अमृत जैसा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी अमृत नहीं है। यह तो अपने आ गया, नहीं? शराब पीवे, उसे श्रीखण्ड का स्वाद नहीं लगता। उसे श्रीखण्ड का स्वाद दूध जैसा लगता है। शराब के नशे में अच्छा श्रीखण्ड दो तो उसे स्वाद नहीं लगता। उसे नशा है, इसलिए (स्वाद नहीं लगता)। मानो दूध पीता हूँ, ऐसा लगता है। इसी प्रकार यह अमृत जैसा लगे, वह मिथ्यात्व का नशा है इसलिए।

मुमुक्षु : .....पुण्य की बात आवे, तब लकड़ियाँ लेकर बैठे हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : .....यह क्या कहते हैं? यह मुनि क्या कहते हैं? पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि-सन्त हैं। आत्मध्यानी, ज्ञानी, जिनके मुख में से आगम झरता है—ऐसा आगे लिखा है।

मुमुक्षु : यह मूल भूल निकालने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल भूल निकालने की बात है। अभी तेरी समझ का ठिकाना नहीं, अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं और तुझे धर्म हो जाये! (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा में उतरे तो फिर जीने की व्यवस्था क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जीवे? वह तो उसके कारण से जियेगा।

मुमुक्षु : रोटियों के बिना किस प्रकार जियेगा?

मुमुक्षु : वे रोटियाँ उनके कारण से मिलेंगी।

मुमुक्षु : आज कहाँ मिलती थी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके कारण आयेगी। आना होगा तो आयेगी, नहीं आना होगा तो नहीं आयेगी। अपने काठियावाड़ में नहीं कहा जाता ? दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है। तुम्हारे क्या कहते हैं ? दाने-दाने पर मोहर लगी है। इसका अर्थ कि जो दाने आनेवाले हैं, वे आयेंगे; नहीं आनेवाले हैं, वे नहीं आयेंगे। तेरे कारण नहीं है। कौन निभे ? और किसे निभाना है ? आहा..हा..! भगवान तो अपने स्वरूप से निभता है। कहा नहीं ? त्रिकाल अटूट श्रद्धा के स्वभाव से त्रिकाल वह टिक रहा है। आहा..हा..! कायर का कलेजा काँपे, ऐसा है।

कहते हैं, **सुकृत या दुष्कृत को, सुख या दुःख को...** सुख की कल्पना होती है। यह पैसा, स्त्री, लड़के का लड़का अच्छा, उसमें ऐ! पोपटभाई! तुम्हारे छह लड़के। ऐसे बैठे हों। छह बहुएँ और पोते, घर के और यह कुर्सी डालकर बाग में बैठे हों। देख लो वह तो तुम्हारे। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ऐसे कहीं लड़कों के साथ रोज नहीं बैठते।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी दिन फुर्सत में हों, तब तो बैठते हैं न! किसी दिन। अब यहाँ मकान बनाया है तो इनके पिता यहीं रहेंगे, तब तीन-तीन किसी समय होंगे तो इकट्ठे बैठेंगे या नहीं ?

मुमुक्षु : वे तो नम्बर से आवें।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले नम्बर से। परन्तु तीन-तीन तो... ऐसा कहते हैं। उसकी बात कहाँ है ? यह तो सबकी बात है न ? ऐई! चिमनभाई! यह तो एक सामने (बैठे हुए) व्यक्ति की बात होती है। आहा..हा..! क्या हो ?

जगत लुटाया है न, और वापस लुटकर प्रसन्न होकर है। भार कम हुआ। चोर आकर ले गया, भार कम हुआ। आहा..हा..! अरे भगवान! तेरा माल अन्दर अमृत और शान्ति का सागर भरा है, भाई! तुझे तेरी कीमत नहीं है, तुझे तेरी खबर नहीं है, तुझे तेरा भान नहीं है और दूसरे का भान करके बैठा है। ऐसा है और वैसा है। देव का लड़का उतरा मानो संसार की बातें करने बैठा। यहाँ मूर्ख। नवलचन्दभाई! भाई! यहाँ तो यह है। यहाँ कोई हमारे पास मक्खन-बक्खन नहीं है।

मुमुक्षु : कुछ खबर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ खबर नहीं। आहा..हा..! भाषा तो देखो! इतना अन्दर डाला है, हों! इसलिए ब्रह्मोपदेश कहा है न।

इस प्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर,.... आहा..हा..! अनन्त चतुष्टय का नाथ, ऐसा भगवान है। वह राग से, पर से और पर्याय से भिन्न है, ऐसे **भेदज्ञान को पाकर, भव्यजीव...** जिसे अल्प काल में अब मोक्ष निकट है, ऐसे भव्यजीव, सुकृत-दुष्कृत के भाव (जो) संसार के मूल हैं और सुख-दुःख का भाव, वह घोर संसार का मूल है, **अत्यन्त परिहरो।** भाषा है। **अत्यन्त परिहरो।** मात्र परिहरो, ऐसा नहीं। कहो, भीखाभाई! क्या करना इसमें?

मुमुक्षु : मुझे आपकी बात ग्रहण करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रहण करना है। इसे जवाब देना आता है। यह तलेटी है न? क्या कहा जाता है? तलाटी। तलेटी कहा यहाँ। आहा..हा..!

अत्यन्त परिहरो। यहाँ धर्मी जीव को, भव्य जीव को कहते हैं, यदि तुझे सुखी होना हो, धर्म करना हो, मुक्ति का कारण सेवन करना हो तो भगवान आत्मा में एकाकार हो और सुख-दुःख को, शुभ-अशुभपरिणाम को छोड़ो। दृष्टि में से छोड़ दे। यह मेरा स्वरूप ही नहीं। आहा..हा..! यह सब तो अजर-अमर होने का प्याला है। चौरासी में मर गया, अरबोंपति अनन्त बार हुआ। अरबोंपति अनन्त बार और सौ बार माँगे और ग्रास मिले, ऐसा भिखारी (अनन्त बार हुआ।) उसमें नयी चीज़ क्या है? ये सब रंक-भिखारी हैं, दुःखी हैं। आत्मा की बादशाही की जिन्हें खबर नहीं है, वे सब भिखारी-रंक हैं। ऐई! कहाँ गये? ऐ... मलूपचन्दभाई! क्या तुम्हारा अभी आया नहीं? कोई कहता था, थोड़े दिन में आनेवाला है। हैरान-हैरान होता है जहाँ-तहाँ, लड़की के विवाह के लिये खोज करता है। दो करोड़ रुपये हैं। एक लड़की है। अब डालना कहाँ? तो खोजा करता है उसका लड़का।

मुमुक्षु : बाप है तो घूमना ही पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैरान (होता है)। दुःख, सब दुःख के (पंथ हैं)। आहा..हा..! कुँवरजी भाई को कहा था, दृष्टान्त नहीं दिया था? कुँवरजीभाई कंदोईका चूड़ावाला, दृष्टान्त आया... भुजिया या गाठिया बनाते थे। अपने जैन थे कंदोई चूड़ा में कुँवरजीभाई थे। ऐसे

करते थे, उसमें ऊपर से सर्प निकला, कढ़ाई में गिरा, आधा पका कढ़ाई और आधा रहा बाहर। तेल में से झारी से ऐसे निकाला चूल्हे में घुस गया। आधा जला, भुजिया बनाते होंगे और वह ऊपर से सर्प ऐसे निकला होगा। भाप गर्म लगी तो आधा कढ़ाई में गिरा। कुँवरजीभाई जैन, हों! बेचारे। त्रास, त्रास। ऐसा करके बाहर निकाला। आधा अन्दर और आधा बाहर। बाहर निकाला, ऐसा भान न हो, इसलिए उसे ऐसे की बचने जाये तो चूल्हे में गया। सुलगती आग में जला और सुलगा। यह जले हुए का बचाव करने गया, वहाँ जलने में (आग में) घुस गया। इसी प्रकार अज्ञानी अपने सुख के लिये (यत्न) करने जाता है, वहाँ अग्नि को-मिथ्यात्व को, राग को सेकता है। गहरे-गहरे आगे घुस जाता है। समझ में आया? यह तो बना हुआ है, हों! उनके लड़के दो दिन पहले आये थे।

मुमुक्षु : वे तो कुँवरजी स्वयं भी यहाँ आते थे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ आते और पैसा निकालकर यहाँ रखे थे। शुभ खाते में यहाँ दे गये थे। आहा..हा..! उस समय कोई त्रास था। वह आधा जला पड़ा और जहाँ निकाला वहाँ धगधगाती अग्नि में घुस गया। इसी प्रकार अनादि का अज्ञानी मिथ्यात्व से विपरीत श्रद्धा से सुलग रहा है। समझ में आया? उसे जहाँ कोई कहे कि भाई! इसमें से निकल। गहरे-गहरे घुसता है। गहराई। आत्मा में गहरे जाना है, उसके बदले राग और मिथ्यात्व में गहरे जाता है। आहा..हा..! राग, वह मेरी चीज़ है और राग मेरा स्वरूप है, राग से मुझे लाभ होगा, (ऐसी मान्यतावाला)। मिथ्यात्व में, घोर संसार में गहरे-गहरे पड़ता है। समझ में आया? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : .....परन्तु पैसे के बिना नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे के बिना ही चलता है। अनादि से मर गया। पररहित तो रहा है। प्रत्येक तत्त्व स्व से रहा और पर से नहीं। पर से नहीं, तब तो रहा है। कहीं न्याय को समझे नहीं तो क्या करे? यह अंगुली है, लो! यह अंगुली, अंगुली से रही है। इस अंगुली से रही है? इस अंगुली का तो इसमें अभाव है। अभाव के कारण रही है? इसी प्रकार आत्मा आत्मा से रहा है; परवस्तु के अभाव से रहा है। आहा..हा..! परन्तु मिथ्यात्व की मान्यता कि मुझे पर के बिना नहीं चलता। इस मान्यता के बिना इसने नहीं चलाया है। समझ में आया?

अत्यन्त परिहरो। पद्मप्रभमलधारिदेव की भाषा कठिन लगे, हों! इसलिए वह रत्नचन्दजी ऐसा ही कहें... आहा..हा..! **उससे ऊपर (अर्थात्, उसे पार कर लेने पर),...** देखो, यह शुभ-अशुभभाव और सुख-दुःख की कल्पना को उल्लंघ जाये और अन्दर जाये, ऐसा कहते हैं। **जीव समग्र (परिपूर्ण) शाश्वतसुख को प्राप्त करता है।** वह पुण्य-पाप के विकल्प और सुख-दुःख की कल्पना, उसे परिहरकर - छोड़कर अन्तर भगवान आत्मा के अन्तर में एकाग्र होता है, वह शाश्वत् परम सुख को पाता है - वह मुक्ति को पाता है, यह धर्म है। गजब बात, भाई! कायर का तो कलेजा काँप उठे। हाय.. हाय..! यह तो हमने कहते सुना था कि सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं। जो सुना, वह प्रत्यक्ष आया। आहा..हा..! शास्त्र कहता है या सोनगढ़वाले कहते हैं यह? **शाश्वतसुख को प्राप्त करता है।** आहा..हा..!

समग्र... अर्थात् **(परिपूर्ण) शाश्वत...** अर्थात् अनन्त आनन्द। जो कोई पुण्य-पाप और सुख-दुःख की कल्पना छोड़कर अन्तरस्वभाव भगवान आत्मा का आश्रय लेकर और अनुभव करता है, वह **शाश्वतसुख को प्राप्त करता है।** उसे मोक्ष का मार्ग भी कहा और उससे मोक्ष मिलता है, ऐसी दोनों बातें की हैं। समझ में आया? पहले अभी श्रद्धा-रुचि में भी ठिकाना न हो, उसे अन्दर चारित्र कहाँ से आवे और वीतरागता कहाँ से आवे और मोक्ष कहाँ से हो? आहा..हा..! विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१९

(अनुष्टुप्)

परिग्रहाग्रहं मुक्त्वा कृत्वोपेक्षां च विग्रहे।
निर्व्यग्रप्रायचिन्मात्रविग्रहं भावयेद् बुधः ।।१९।।

(वीरछन्द)

परिग्रह का आग्रह छोड़ो बुध ! करो उपेक्षा इस तन की।
चिन्मय तन जो पूर्ण निराकुल, करो भावना उस तन की ॥१९॥

श्लोकार्थ :- परिग्रह का ग्रहण छोड़कर तथा शरीर के प्रति उपेक्षा करके, बुध पुरुष को अव्यग्रता से (निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है, उसे (आत्मा को) भाना चाहिए॥१९॥

प्रवचन-१९, श्लोक-१९ से २२, शुक्रवार, फाल्गुन कृष्ण ७, दिनांक १९-०३-१९७१

१९वाँ कलश है। १८ हो गये हैं, अठारह। १९वाँ

परिग्रहाग्रहं मुक्त्वा कृत्वोपेक्षां च विग्रहे।
निर्व्यग्रप्रायचिन्मात्रविग्रहं भावयेद् बुधः।।१९।।

कहते हैं कि यह भगवान आत्मा आनन्द और शुद्धस्वरूप है, उसकी भावना करनेवाले को क्या करना? भावना अर्थात् आत्मा पवित्र अनन्त गुण के स्वभावरूप पवित्र धाम है। उसके सन्मुख की एकाग्रता करने से मोक्षमार्ग / धर्म प्रगट होता है और उसके फलरूप से मोक्ष होता है; तो इसे वह एकाग्रता किस प्रकार करनी? ऐसा कहते हैं।

परिग्रह का ग्रहण छोड़कर.... जगत की चीज़ें विकल्प से लेकर सब ही छोड़कर, छोड़कर अर्थात् उनका लक्ष्य छोड़कर। यहाँ तो कहना है कि मुनि को जो बाह्य परिग्रह है, वह सब छोड़कर। अन्तिम एक शरीर रहा तो **शरीर के प्रति उपेक्षा करके...** मोक्ष का मार्ग है न? कैसे प्रगट हो? **शरीर के प्रति उपेक्षा...** और सर्व जगत के परिग्रह का, उसके प्रति के विकल्प की ममता का त्याग, वह पर का त्याग कहलाता है।

बुध पुरुष को.... ज्ञानी पुरुष को-धर्मी पुरुष को, जिसे आत्मा का हित करना है उसे, **अव्यग्रता से (निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्यमात्र...** भगवान आत्मा अस्तिरूप से (ऐसा है, ऐसा कहा)। पहली तो नास्ति कही। परिग्रह का त्याग करके, शरीर की उपेक्षा, परन्तु यह आत्मा चीज़ क्या है? **(निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,...** लो, शरीर आया। **कृत्वोपेक्षां च विग्रहे। निर्व्यग्रप्रायचिन्मात्रविग्रहं** सामने-सामने लिया है। यह शरीर तो मिट्टी-जड़ है। इसकी उपेक्षा करना। यह कोई अपनी चीज़ नहीं है। उपेक्षा अर्थात् इसका आदर नहीं करना और **(निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,...** चैतन्यमात्र शरीर - ऐसा कहते हैं। आत्मा में

अनाकुल आनन्द से भरा हुआ चैतन्य है। आहा..हा..!

(निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,... चैतन्यमात्र जिसका शरीर। **(निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,...** आनन्द और ज्ञान दो अर्थ लिये हैं। भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि अनाकुलता का चैतन्यस्वरूप भरा हुआ - आनन्द और चैतन्यस्वभाव से भरा हुआ आत्मा। आहा..हा..! **उसे (आत्मा को) भाना चाहिए।** धर्मी जीव को उसे अनुभव करना। भगवान आत्मा, शरीर आदि परिग्रह से रहित, बाह्य परिग्रह स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी आदि से तो रहित है, परन्तु वह निराकुलता के आनन्दस्वरूप से भरपूर चैतन्यतत्त्व है। आहा..हा..! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द है और अकेला चैतन्यभाव है। वह जिसका शरीर अर्थात् स्वरूप है, उस आत्मा को—ऐसे आत्मा को; वह आत्मा अर्थात् ऐसा आत्मा। है न? **उसे (आत्मा को) भाना चाहिए।** ऐसे आत्मा को भाना। आहा..हा..! बहुत संक्षिप्त में बहुत बातें। सूक्ष्म बहुत। जगत को अभ्यास नहीं होता।

भगवान परमेश्वर कहते हैं कि भाई! यदि तुझे आत्मा का कल्याण करना हो, अर्थात् धर्म करना हो तो कैसे करना और कैसे हो? कि आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ें—यह शरीर, वाणी, मन, यह स्त्री-पुत्र-कुटुम्ब के प्रति लक्ष्य छोड़ दे; ये कोई तेरी अस्ति में नहीं है, तेरी सत्ता में ये चीज़ें नहीं हैं। इसलिए तेरे अस्तित्व में ये नहीं हैं, इनका लक्ष्य छोड़ दे और तेरे अस्तित्व में अनाकुल और ज्ञान से भरपूर चैतन्य वस्तु है, उसमें दृष्टि दे, उसमें एकाग्र हो, उसका अनुभव कर। लो, पोपटभाई! यह धर्म। गजब धर्म, भाई! इसमें चौविहार (रात्रि में चौविध आहार-त्याग) करना, कन्दमूल न खाना, यह करना - यह बात तो आती नहीं। पण्डितजी!

मुमुक्षु : सब ही निकाल दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो परचीज़ है। खा सके कहाँ से वहाँ? वह तो परचीज़ है, यह तो कहा। पर से लक्ष्य छोड़ दे, उसका आग्रह छोड़ दे, ऐसा कहा न? **परिग्रह का ग्रहण छोड़कर...** आग्रह अर्थात् ग्रहण। गजब बात। व्यापार-धन्धा, कुटुम्ब, स्त्री-पुत्र—ये सब चीज़ें तो पर हैं; ये कोई तेरी नहीं है, तुझमें नहीं है; तू उनमें नहीं है। अब तू जहाँ है, वहाँ तो अनाकुल आनन्द और चैतन्यरस से भरपूर आत्मा है। आहा..हा..! **उसे (आत्मा को) भाना चाहिए।** है न पाठ में? भाव एक लिया। आहा..हा..! बहुत संक्षिप्त।

यह भावना अर्थात् मोक्षमार्ग की एकाग्रता। स्वभाव-सन्मुख, चैतन्य आनन्दस्वरूप के सन्मुखता की एकाग्रता का नाम भावना है। इसका नाम चैतन्य के मोक्षमार्ग की दशा, इसका नाम धर्म है।

मुमुक्षु : अभी कहाँ दिखता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं दिखता - यह निर्णय किसने किया ? नहीं दिखता - यह किसकी सत्ता में निर्णय हुआ ? वह ही आत्मा है। जैसे कि मैं दिखता नहीं, इसका अर्थ ही मैं यह हूँ, ऐसा अर्थ हो गया। कभी विचार किया नहीं न ! दिखता है क्या ? ज्ञान ही दिखता है जहाँ हो वहाँ। वह चीज़ नहीं दिखती। चीज़ तो जड़ है, पर है। उसे जाननेवाला ज्ञान ही जहाँ हो वहाँ जानता है। यह जाननेवाला ज्ञान, वह आत्मा है, यह तो यहाँ कहते हैं। मूल इस तरह का अभ्यास नहीं है। यह सब कमाने का और खाने-पीने का और हैरान करने के रास्ते (मार्ग) में पूरी जिन्दगी व्यतीत करता है।

मुमुक्षु : खाने-पीने में कम साहेब ! कमाने में ही अधिक। ऐसी अलौकिक बात इस प्रकार से समझ में नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आती। ठीक कहते हैं। अब ये तो निवृत्त हुए हैं। सब लड़के करते हैं और पैसे बहुत हैं; इसलिए अब तो निवृत्ति लेकर यह करना।

मुमुक्षु : प्रत्येक समय में प्रभु ज्ञान का ही अनुभव करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही करता है। यह शरीर है, वह यह है - ऐसा किसकी सत्ता में ज्ञात हुआ ? किसकी मौजूदगी में ज्ञात हुआ कि यह शरीर है, यह स्त्री है, यह परिवार है, यह धन्धा है। वे हैं भले, परन्तु वह किसकी सत्ता में ज्ञात हुआ ? चैतन्य की सत्ता में ज्ञात हुआ, उस चैतन्य की सत्ता में वे चीज़ें नहीं हैं। उनके सम्बन्धी का अपना जो ज्ञान जानता है, वह ज्ञान इसकी सत्ता में है, परन्तु लोग अन्तर के आत्मा के विचार पर (नहीं आते)। अकेली जगत की मजदूरी (किया करते हैं)। यह सब मजदूरी है ? ऐई ! मजदूरी है ? मलूपचन्दभाई ! कैसे होगा ? परन्तु तुम्हारे कहाँ पैसे इकट्ठे हुए कि तुम...

मुमुक्षु : थोड़े तो थोड़े, परन्तु मजदूरी तो हमने की है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार पूनमभाई कहते थे। खबर है ? एक बार अहमदाबाद

गये थे। उन्हें कहाँ पैसे की... क्या भाषा कुछ थी। ऐसा कुछ था। इन्हें कहाँ पैसा... और स्वाद लिया? ऐसी कुछ भाषा थी। मलूपचन्दभाई को याद नहीं। कहा था। मुझे ख्याल है। बैठे थे और कहा था। ऐसा कहे कि पैसे कहाँ इन्होंने प्राप्त किये हैं कि उनके रस की और उसकी क्या चीज़ है, उसकी खबर पड़े। ऐसा एक था। उसके पिता को उड़ाया तब।

मुमुक्षु : वह तो अनादि का उड़ाया है। बाप था ही कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी भाषा थी परन्तु बराबर याद नहीं। अहमदाबाद में कहा था। ऐसा कहे कि उसे पैसे ज्यादा हो तो खबर पड़े न कि इसमें कैसे प्राप्त किये जाते हैं और कैसे होता है? उस प्रकार का रस ही उसने खड़ा नहीं किया। वहाँ था ही नहीं।

मुमुक्षु : गोपालभाई के मकान में।

पूज्य गुरुदेवश्री : गोपालभाई के बँगले में।

मुमुक्षु : था ऐसा आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो होवे वह आवे, दूसरा उसमें क्या आवे? ऐसा उसने कहा था। ऐसा कि बापू ने कहाँ वहाँ इतने अधिक पैसे, करोड़-दो करोड़ लो न... ऐसा कहे क्या लाख, दो लाख, चार-पाँच लाख। उसके पिता के पास उतने ही कहाँ थे। उनके पास तीस-चालीस हजार थे। उन छोटा भाई के पास। वह और लाखोंपति, वह और करोड़पति। धूल में भी कुछ नहीं। ऐसा कि उन्होंने कहाँ उस पैसे का रस... बराबर शब्द रचा था। उन्होंने कहाँ पैसे देखे हैं कि उनका रस हो। ऐ... भीखाभाई! गजब भाई! संसार तो कालाकेर है न?

यहाँ कहते हैं... आहा..हा..! यह है.. यह है... यह है.. यह किस भूमिका में ज्ञात होता है? जो भूमिका ज्ञान की है, उसमें यह ज्ञात होता है। यह शरीर है, यह धन्धा चलता है, ये पैसे आये-गये। इसमें आये-गये नहीं, यह जानता है। यदि यह जाननेवाला मुख्य न हो तो यह चीज़ है, यह राग हुआ, यह द्वेष हुआ, यह हुआ वह किसने जाना? उस जाननेवाले की भूमिका में जो ज्ञात होता है, वह ज्ञान ज्ञात होता है। वह चीज़ (परचीज़) नहीं। समझ में आया? उस ज्ञान का धारक वह भगवान आत्मा है। कहो, क्या है? ए... लालचन्दभाई! इन भाई ने क्या पूछा?

मुमुक्षु : दिखता नहीं, ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूछने में तो ऐसा आवे। एक लड़का नहीं था? अपने जामनगर में 'परेश' है। अभी तो अब १५-१६ वर्ष हो गये परन्तु तब सात वर्ष का था। नौ वर्ष पहले की बात है। उसके घर में यह चर्चा बहुत चले। त्रम्बकभाई उसके पिता होते हैं? काका होते हैं, परन्तु उन सबके घर में चर्चा बहुत चलती है। जयसुखभाई तो अभी आये। ये तो सामने नहीं देखते थे। एक बार सुना, फिर समझने पर... ओय माँ! यह बात तो दूसरी चले। हमारे घर में चले परन्तु कभी ध्यान ही नहीं दिया। जयसुख बड़ा वकील है। यहाँ बहुत बार आता है।

वह लड़का एक बार चर्चा करते-करते चर्चा में खड़ा हो गया। लालचन्दभाई! उसका प्रश्न सुनना। महाराज! तुम आत्मा देखो-देखो करते हो.... ऐसा प्रश्न किया, हों! कहाँ देखना हमारे? ऐसे तो यह दिखता है-आँखें बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है - ऐसा लड़का बोला। सात वर्ष की उम्र, हों! अभी तो १५-१६ वर्ष हो गये। हमें आत्मा को कहाँ देखना? यह सब दिखता है। खड़ा होकर (बोला), हों! रात्रि-चर्चा के समय (बोला)। यह दिखता है - आँखें बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है। भाई! बापू! यह अन्धेरा किसमें दिखता है? अन्धेरा, अन्धेरे में दिखता है? अन्धेरा जिसकी सत्ता में दिखता है, वह चैतन्यमूर्ति आत्मा है। लालचन्दभाई! सात वर्ष का बालक, हों! बहुत होशियार है। अभी तो बहुत सूक्ष्म प्रश्न करता है।

अन्धेरा किसमें ज्ञात होता है? भाई! यह अन्धेरा है। इस अन्धेरे का अस्तित्व अन्धेरे में ज्ञात होता है? इस अन्धेरे का जाननेवाला चैतन्यमूर्ति, वह ऐसा कहे कि यह अन्धेरा है। मैं अन्धेरा नहीं, मैं तो अन्धेरे का जाननेवाला हूँ। यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! सादी भाषा है, बहुत अटपटी नहीं है, परन्तु कभी उसके सन्मुख देखा न हो, स्वीकार नहीं किया हो, लो! कोर्ट में नया व्यक्ति चढ़े। किसे कितने पैसे दिये जाते होंगे, किसे पान-बान खिलाना क्या देना? रिपोर्ट करता है कि क्या लिखे? रिपोर्ट लिखावे तब काँपे। प्रार्थना-पत्र किससे लिखवाना? सामने बैठा होगा या अन्दर बैठा होगा? उलझन में आवे। किसान नया पहली-पहली बार आया हो, परन्तु जिसने बहुत बार सीढ़ियाँ तोड़ी हों, उसे खबर होती है कि सामने कारकून बैठा हो, उससे लिखाया जाता है। उसे आठ आने दूँगा, लिख

दे। इसी प्रकार इस नये विद्यार्थी को कुछ सुना नहीं हो और चढ़ा हो उसे ऐसा लगता है कि ये क्या कहते हैं ? ऐई पोपटभाई ! भाई ! आहा..हा.. ! यह सब क्रीड़ाएँ जगत की क्रीड़ाएँ और होती है। उसे किसमें ज्ञात होती है ? वह चैतन्य में ज्ञात होती है। कहा न ?

चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,... यह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान है। ज्ञान के तेज-नूर, ज्ञान के नूर के प्रकाश का पूर है। खबर नहीं, कभी विचार किया नहीं। निज घर में कौन है ? पर घर की सब लगायी है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! 'घर का लड़का चक्की चाटे, पड़ोसी को आटा' अपने लोगों में नहीं कहा जाता ? स्त्री कहती है कि परन्तु इस घर में आटा नहीं और तुमने पर की लगायी है। उसे आटा देना, परन्तु यहाँ घर में नहीं, उसका क्या करना ? ऐसी सब पर की लगायी परन्तु तू कौन है ? उसकी खबर नहीं है। आहा..हा.. ! भगवान ! तू तो प्रत्यक्ष है - यहाँ तो ऐसा कहते हैं। क्यों ? कि प्रत्यक्ष अर्थात् जानने की भूमिका में तेरा स्वरूप और पर क्या है, वह जाननेवाला तो प्रत्यक्ष इस जगत में है। यह तो सब चीज़ें बाह्य पर हैं। बाह्य पर हैं। समझ में आया ?

कहते हैं कि **(निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,...** आहा..हा.. ! ऐसा भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव और अनाकुलस्वभाव। स्वभाव में आकुलता नहीं होती। आकुलता तो विकल्प और दुःखरूप है। वह दूसरी भिन्न चीज़ है। निराकुल भगवान ज्ञानस्वरूप है। निराकुल, जाननेवाला-जाननेवाला, उसमें आकुलता कहाँ से आयी ? ऐसा जाननेवाला और निराकुलस्वरूप ऐसा आत्मा है। वह आत्मा, उस आत्मा को देखना, उस आत्मा पर नजर करना और उस आत्मा में एकाग्र होने का नाम धर्म है। समझ में आया ? यह १९ वाँ कलश कहा।

श्लोक-२०

(शार्दूलविक्रीडित)

शस्ताशस्तसमस्तरागविलयान्मोहस्य निर्मूलनाद्,
द्वेषाम्भ:परिपूर्ण-मानसघटप्रध्वन्सनात् पावनम्।
ज्ञानज्योतिरनुत्तमं निरुपधि प्रव्यक्ति नित्योदितं,
भेदज्ञानमहीजसत्फलमिदं वन्द्यं जगन्मङ्गलम्।।२०।।

(वीरछन्द)

शुभ अरु अशुभ राग क्षय करने तथा मोह क्षय करने से।
द्वेषरूप जल पूरित मन-घट को समूल क्षय करने से॥
नित्य उदित निरुपधि सर्वोत्तम प्रगटे ज्ञान प्रकाश पवित्र।
भेदज्ञान-तरु का सत् फल है, वन्द्य जगत को मंगल नित्य॥२०॥

श्लोकार्थ :- मोह को निर्मूल करने से, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त राग का विलय करने से, तथा द्वेषरूपी जल से भरे हुए मनरूपी घड़े का नाश करने से, पवित्र, अनुत्तम[१], निरुपधि[२] और नित्य-उदित (सदा प्रकाशमान), ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट होती है। भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल[३], वंद्य है; जगत को मंगलरूप है॥२०॥

कलश-२० पर प्रवचन

२० वाँ कलश।

शस्ताशस्तसमस्तरागविलयान्मोहस्य निर्मूलनाद्,
द्वेषाम्भ:परिपूर्ण-मानसघटप्रध्वन्सनात् पावनम्।

१. अनुत्तम=जिससे अन्य कोई उत्तम नहीं है, ऐसी सर्वश्रेष्ठ।
२. निरुपधि=उपाधिरहित, परिग्रहरहित, बाह्यसामग्री रहित, छलकपटरहित-सरल।
३. सत्फल=सुन्दरफल, अच्छा फल, उत्तम फल, सच्चा फल।

ज्ञानज्योतिरनुत्तमं निरुपधि प्रव्यक्ति नित्योदितं,
भेदज्ञानमहीजसत्फलमिदं वन्द्यं जगन्मङ्गलम् ।।२०।।

भाषा देखो! वापस कवि हैं न, इसलिए १८७ गाथा और ३११ कलश। कलश अधिक हैं। समयसार में ४१५ गाथा और २७८ कलश हैं। इसमें ३११ कलश हैं। २०वें कलश का श्लोकार्थ, नीचे।

मोह को निर्मूल करने से,... अर्थात् क्या कहा? पुण्य और पाप के विकल्प जिसमें ज्ञात होते हैं, उसके वे नहीं हैं। जाननेवाले के वे पुण्य-पाप के विकल्प और शरीर, वाणी नहीं है। वे मेरे हैं, ऐसा माना था। वे मेरे नहीं हैं। ऐसे मिथ्यात्व का नाश करके **मोह को निर्मूल करने से,...** समझ में आया? पहले मिथ्यात्व की बात ली है। भगवान आत्मा में तो ज्ञान और आनन्द है। उसे छोड़कर जो कुछ उसमें नहीं था, पुण्य-पाप विकल्प, दया, दान, व्रत आदि, राग आदि, शरीर आदि; उन्हें अपना माना था। उस मोह का नाश करके, निर्मोह करके। मुझमें वह राग और विकल्प तथा शरीर नहीं है; मुझमें तो आनन्द और ज्ञान है। उसे जाननेवाला ज्ञान वह मेरा है। वह वस्तु मेरी नहीं है। इस प्रकार मिथ्यात्व का नाश करके... समझ में आया? लो, यह मिथ्यात्व के नाश का उपाय।

अपना—स्वरूप का रूप ज्ञान और आनन्द है। उसमें परवस्तु मेरी, विकल्प आदि (मेरे हैं, ऐसा) माना था, वह मिथ्यात्वभाव था। मुझमें वे नहीं हैं; मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ, ऐसे भान द्वारा मोह को निर्मूल करके, मोह का मूल निकालकर। मिथ्यात्व का एक अंश भी छोड़कर, (ऐसा कहते हैं)। भाई! गजब बात! **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त राग का विलय करने से,...** अब राग-द्वेष के नाश की बात करते हैं। पश्चात् जो शुभ-अशुभ विकल्प उठे। प्रशस्त अर्थात् शुभ, अप्रशस्त अर्थात् अशुभ। **समस्त राग का विलय...** (अर्थात्) नाश। मुझमें वह राग नहीं है, ऐसा तो पहले निर्णय किया था; पश्चात् अस्थिरता का राग रहता है, उसका भी स्वभाव में एकाग्र होकर नाश करने से। समझ में आया?

द्वेषरूपी जल से भरे हुए मनरूपी घड़े का नाश करने से,... राग और द्वेष दो का नाश कहते हैं न? पहले समस्त राग का नाश किया। विकल्पमात्र मैं नहीं हूँ, ऐसा अनुभव निर्णय किया, परन्तु फिर स्वरूप में रमना, वह चारित्र है। चारित्र इसका नाम है। चारित्र यह वस्त्र बदले, स्त्री, पुत्री छोड़कर घर में वस्त्र बदले, इसलिए चारित्र, ऐसा चारित्र नहीं है।

पहले स्वरूप ज्ञान और आनन्द से भरपूर मैं (हूँ), पुण्य-पाप के राग से रहित (हूँ)। शरीर, वाणी, मन से रिक्त, उनके सम्बन्धी का ज्ञान और मेरा ज्ञान, उससे भरा हुआ मैं हूँ। ऐसी आत्मा की अनुभव की दृष्टि हो, तब उसने मिथ्यात्व का नाश किया कहा जाता है। तत्पश्चात् चारित्र आता है। वह चारित्र अर्थात् क्या? राग का नाश करना, द्वेष को फोड़ डालना, तोड़ डालना और स्वरूप में स्थिर होना, इसका नाम चारित्र है। समझ में आया? लो, प्रकाशदासजी! यह चारित्र। किस प्रकार का चारित्र? आहा..हा..!

सम्यग्दर्शन और चारित्र दोनों की व्याख्या की है। मिथ्यात्व और अचारित्र का नाश तथा सम्यक्त्व और चारित्र की उत्पत्ति। समझ में आया? जीव अधिकार है न? ऊपर क्या अधिकार है? जीव। तो जीव का अधिकार जीव के स्वभाव में है। उसका अधिकार पुण्य-पाप, राग आदि शरीर में उसका अधिकार नहीं है। है? आहा..हा..! कहते हैं कि अपना स्वभाव... यह ऊपर तो बात कर गये हैं, निराकुल ज्ञानमात्र से भरपूर पदार्थ, जिसके आनन्द के लिये बाहर खोजना नहीं पड़ता, ऐसे आनन्द से भरपूर है। उसकी दृष्टि करके, उसमें सावधान होकर; पर में सावधानी का जो मिथ्यात्वभाव था, उसका नाश करे। आहा..हा..! कहो, समझ में आया यह? यह किसी बाह्यक्रिया से नाश हो, ऐसा कुछ नहीं है। आहा..हा..!

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त राग का विलय करने से,... जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि की विकल्प वृत्ति उठती है, वह भी राग है। उससे हटकर अन्दर स्वरूप में स्थिर होने पर, आनन्द में रमने पर राग का नाश हो, उसे चारित्र कहते हैं। भाई! गजब (बात है)! सुना नहीं होगा। यह तो स्त्री-पुत्र छोड़े, धन्धा छोड़ा और बैठा। (केश) लोंच करे, गर्म पानी पीवे, यह छोड़ा। धूल में भी छोड़ा नहीं। सुन न! छोड़ा है धर्म।

यहाँ कहते हैं कि इस प्रकार आत्मा स्वभाव का भरपूर भगवान। सामने लिया न? **द्वेषरूपी जल से भरे हुए मनरूपी घड़े का...** मन का स्कन्ध है, वहाँ आगे द्वेष होता है। प्रतिकूल चीज़ देखकर द्वेष, अनुकूल होकर राग, मन का घड़ा फोड़! आहा..हा..! और आत्मा चैतन्यमूर्ति है, उसे जागृत कर, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! गजब बात, भाई! समझ में आया? पवित्र भगवान आत्मा... परन्तु वह आत्मा ऐसा है, यह सुना न हो। सुने बिना इसे जँचे किस प्रकार?

भगवान आत्मा जहाँ राग-द्वेषरहित है, ऐसा अनुभव हुआ। पश्चात् राग-द्वेष का

अभाव करने को स्वरूप में स्थिरता की, तब राग-द्वेष का अभाव हुआ। तब उस स्वरूप में आनन्द की लहर जगे, उसे चारित्र कहा जाता है। अतीन्द्रिय आनन्द की लहर, उफान आवे। आहा..हा..! समझ में आया?

ऐसा पवित्र भगवान आत्मा। **निरुपधि...** जिसमें उपधि नहीं। ***उपाधिरहित, परिग्रहरहित, बाह्यसामग्री रहित, छलकपटरहित-सरल।*** **नित्य-उदित (सदा प्रकाशमान), ऐसी ज्ञानज्योति...** नित्य, सदा ज्ञानज्योति उदित अन्दर प्रगट ही है। उसकी अन्तर में दृष्टि देने से और स्थिर होने से नित्य ज्ञानज्योति प्रगट होती है। वह पर्याय में प्रगट होती है। आहा..हा..! एकरूप सामान्य ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, स्वभावभाव, नित्यभाव है; उसमें एकाग्र होने से विशेष भाव, चारित्रभाव, सम्यग्दर्शनभाव, ऐसा नित्य उदित ज्ञान में आता है। पर्याय में आता है, ऐसा कहते हैं। जैसा नित्य भगवान अन्दर है, **(सदा प्रकाशमान), ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट होती है।** वापस पर्याय में नित्य उदित रहती है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान का भाव प्रगट हुआ। वह प्रगटा, सो प्रगटा।

अहो! **भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल, वंद्य है;...** देखो! यह निर्मल वीतरागी पर्याय। **भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल, वंद्य है;...** ***सुन्दरफल, अच्छा फल, उत्तम फल, सच्चा फल।*** यह क्या कहा? **भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल,...** संयोग से भिन्न, राग से भिन्न, विकल्प से भिन्न, पर्याय के एक अंश जितना नहीं, ऐसा त्रिकाल। ऐसा पर से भिन्न करके अपने स्वभाव में भेदज्ञान करके स्थिर होता है, उसका फल—सत्फल वन्द्य है। सुन्दर फल वन्दन के योग्य है। लो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्विकारी दशा वन्द्य है। वह वन्दनीय है, आदरणीय है, वेदन करनेयोग्य वह है। आहा..हा..! समझ में आया?

जगत को मंगलरूप है। आहा..हा..! लो, यह जीव ने मांगलिक किया। आत्मा नित्यानन्द प्रभु के सन्मुख की एकाग्रता से और पर से भिन्न पड़कर जिसने वीतरागी समकित, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र - स्थिरता प्रगट की, वह जगत में मांगलिक है। मांगलिक हुआ उसके घर में अब। आहा..हा..! मंगल के वांदित्र बजे। समझ में आया? पाँच-पच्चीस हजार, लाख-दो लाख मिले तो (कहता है) आज लापसी बनाना। आज दोपहर को शेयर बाजार में जाकर दो घण्टे में एक लाख कमाये हैं। ऐ! मर गया तुरन्त एक व्यक्ति। पोरबन्दरवाला कल्याणजीभाई था न? कल्याणजी गोविन्दजी। यहाँ तो हमारे पास

बहुत दृष्टान्त होते हैं न! चातुर्मास में हम वहाँ थे पोरबन्दर। एक बजे गये। पहले बीस लाख थे। उसमें दस लाख गये थे। धन्धा किया। एक दिन में एक लाख। लाख जहाँ कमाये... हो गया... लक्ष्मीचन्द पिताम्बर थे। सब भाईबन्ध। ऐई! कलु! बस, कलु कहा वहाँ तो उड़ गया अन्दर से। कुछ नहीं होता। एक लाख कमाये थे।

मुमुक्षु : किसके लिये?

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता के लिये। दस लाख तो थे। पहले बीस लाख थे। दस लाख गये होंगे। इस प्रकार से धन्धा करके वापस इकट्ठे किये। पर्यूषण तक रहे और फिर मुम्बई गये। आहा..हा..! उड़ गये। आहा..हा..! पंछी उड़कर कहाँ गया। यह मेला था इकट्ठा, छूट गया। परन्तु था कब उसके साथ? वह तो सब चीज़ें पर हैं। समझ में आया? आहा..हा..! जगत को यह मांगलिक है। वे तो पैसे इकट्ठे हों तो मांगलिक करो, ऐसा करो, वैसा करो - ऐसा करे लो। पाँच लाख की आमदनी हुई है। पचास लाख में दो लाख का खर्च और पाँच लाख यह और सात लाख का... ९५ लाख इकट्ठे हुए। अंक गिनकर अन्दर से प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। सब अमांगलिक है। पाप के पोटले फोड़े हैं, कहते हैं।

मुमुक्षु : भले यह तो अमांगलिक, परन्तु चक्रवर्ती की अपेक्षा तो कम पैसे हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता में कम कहाँ है इसे? ममता में तो इसे सब चाहिए है। आहा..हा..! एक बार नहीं कहा था? जिसे अन्याय से एक पैसा भी लेने का भाव है, उसे पुण्य के कारण से पूरा जगत मिले तो उसे निगल जाने का भाव है। वक्ररूप से अन्याय से... समझ में आया? एक पैसा भी लेने का जिसको अनीति का भाव है, उसे यदि बाह्य से पुण्य के कारण पूरा जगत मिल जाये, (तो ले लेवे) इतनी ममता उसके अन्दर है। ऐ.. पोपटभाई! आहा..हा..! तृष्णा का गड्ढा बड़ा है। भगवान में आनन्द की खान भगवान। आहा..हा..! उस आनन्द के सन्मुख देखे बिना, उसकी आस्था और श्रद्धा बिना जगत के पदार्थ मिलें तो ठीक, ये तृष्णा के बीज बोकर, फले फल, कहते हैं। यह भी फल फला है। मांगलिक फल यह फला है। उसको। अमांगलिक फल फला है। आहा..हा..!

जगत को मंगलरूप है। आहा..हा..! वाह! जगत में मंगलं बना है। मंग अर्थात् पवित्रता की, ल अर्थात् प्राप्ति। अथवा मं पाप का गल अर्थात् गालना। मंगलं - मंग अर्थात् मिथ्यात्वरूपी पाप। विकल्प से लेकर दूसरी चीज़ें मेरी हैं, ऐसा मिथ्यात्व, उसे मं—पाप।

कहा जाता है। उसे ग अर्थात् गाले-नाश करे, उसे मांगलिक कहा जाता है। समझ में आया? यह तुम्हारी दुकान में शब्द सुने भी नहीं होंगे। सभी भाई इकट्ठे होकर यह बात करो तो यह बात बैठे? वह तुम्हारा एक थोड़ा जगा है। छोटा है, इसलिए उसका बहुत नहीं सुनते। वहाँ दुकान में... नवलचन्दभाई! नहीं? आहा..हा..! कहते हैं कि, आहा..हा..! क्या बात की? देखो! क्या कहते हैं? कि जिसने रागादि से भेद करके स्वभाव के भान में आया, उस वृक्ष के फल वन्द्य हैं, मांगलिक हैं। और जिसने भगवान आत्मा के आनन्द से हटकर, दूसरी चीज़ मेरी है, ऐसे मानने का जो वृक्ष रोपा, उसके फल अमांगलिक हैं। (उसके फल में) बड़ी पाप की दुर्गति होगी। पोपटभाई! आहा..हा..! रुपये भी साथ में नहीं आयेंगे, हों! आयेंगे?

मुमुक्षु : जो मिले वह भोगना तो चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे भोगना, कहा? भोगने का वह पाप है। पैसे भोगे जाते हैं? यह प्रश्न हमारे यहाँ (संवत) १९८३ के वर्ष में हुआ था। वह चारित्रविजय है न? नहीं वह? आश्रम है न दूसरा, यहाँ से १९८३ के साल में यहाँ वलाका अपना उतारा है न? लाठी। वलाका उतारा। वह वृक्ष है वहाँ। हम वहाँ उतरे थे। भावनगर जाना था। १९८३ के वर्ष की बात है। १७ और २७, ४४ वर्ष हुए। फिर हम भावनगर गये। यहाँ चारित्रविजय थे न? वे कहें, अरे! कानजीस्वामी यहाँ निकले और मेरे पास नहीं आये। हम वृद्ध हुए, इसलिए फिर उन्होंने कहलवाया तो लाओ वहाँ जायें। गये थे। फिर उन्होंने ये प्रश्न रखा था। उन्हें ऐसा कि यह तो महाराज हैं और... सब भोगते हैं, इसलिए यह हमें पापी ठहरायेंगे। महाराज! इस पुण्य का फल तो किसे कहना? कहा, पुण्य का फल उसे कहना कि वस्तु की सामग्री मिले उतना। तो भोगे वह? भोगे वह नया पाप। संवत् १९८३ की बात है। १९८३ की बात है। यहाँ सोनगढ़ में चारित्रविजय थे।

मुमुक्षु : वक्ता थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वक्ता-कर्ता चाहे जो थे। यह अभी दूसरा विषय चलता है। विषय दूसरा चलता है, उसमें वक्ता डाला। कहो, समझ में आया? उसे ऐसा कहा था, और कहना था यह कि ये सब अभी पूर्व के पुण्य हैं और ये सब खाते हैं। देखो! साधु होकर भी ऐसा करके बैठे। तुम्हें ऐसा लगे कि यह हम पूर्व का पुण्य खाते हैं। मैंने कहा, पुण्य

की व्याख्या क्या? पूर्व का पुण्य फला, उसकी व्याख्या इतनी कि सामग्री मिले इतनी, परन्तु उसे भोगने का भाव वह नया पाप है।

मुमुक्षु : व्यर्थ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यर्थ क्या? वह था कब वहाँ? ४४ वर्ष पहले यह बड़ा प्रश्न हुआ था, भाई! नवलचन्दभाई! ४४ वर्ष पहले। इस सोनगढ़ में ही यह वह। तब तो वह थे ही कहाँ? तब तो यहाँ रहना है, ऐसा कहाँ था? १९८३ की बात है। समझ में आया? पूर्व के पुण्य की व्याख्या इतनी कि पूर्व का सत्ता में पड़ा हो, कोई शुभभाव किया हो। एकेन्द्रिय में शुभभाव होता है। इस हरितकाय में भगवान तो इस हरितकाय में है न, (उसे) शुभभाव होता है। वहाँ से निकलकर बड़ा करोड़पति राजा हो, परन्तु उस शुभभाव का फल सामग्री। उस सामग्री को भोगने की वृत्ति हो, वह पाप। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पुण्य-पाप...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य-पाप का अन्तर नहीं, बापू! नहीं। वह तो सामग्री मिली इतनी ही बात, बस। अब नये शुभभाव करे तो पुण्य और भोगने का भाव, वह पाप है। समझ में आया? आहा..हा..! ४४ वर्ष हुए। १९८३। लो, यह भोगना या नहीं? उसने ऐसा नहीं कहा था। उसे ऐसा कि ये महाराज हैं। ऐसे तो बहुत वे थे, मैं गया तो खड़े हो गये। आओ.. आओ.. महाराज! खड़े हो गये। बाहर में बहुत वे थे। सत् राजकीय। फिर ऐसे प्रश्न करते-करते यह रखा। समकिती को भी पुण्य कहा है। सातावेदनीय को, रति को पुण्य कहा है। पुण्य का अर्थ क्या? वह पुण्य नहीं है। यह बात ४४ वर्ष पहले हो गयी। श्वेताम्बर के तत्त्वार्थसूत्र में इन हास्य, रति, समकित मोहनीय को पुण्य में डाला है। तत्त्वार्थसूत्र में बदल डाला। तब १९८३ में यह बात हुई कि इसमें पुण्य कहा है न? बिल्कुल नहीं। ऐ.. चेतनजी! बिल्कुल नहीं। समकित मोहनीय को श्वेताम्बरों ने बदल डाला। पाप है, उसे पुण्य में डाला है। बिल्कुल नहीं। तब ४४ वर्ष पहले यह बात हुई थी। यह नहीं, कहा और पुण्य की मर्यादा इतनी कि पूर्व में शुभभाव हुआ हो तो पुण्य बँधे और बँधने का फल संयोग आवे इतना। अब उन संयोग पर यदि लक्ष्य जाये, कमाने का भाव हो, वह नया पाप है। पुण्य का लोन जल गया और पाप का नया लोन (खड़ा किया)। ऐसी (बात) है, बापू! भगवान के घर की बात तो ऐसी है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया?

यहाँ तो वह वृक्ष आया न? भाई! जिस प्रकार का वृक्ष रोपा होगा, वह फल आयेगा। अनार का रोपा होगा तो अनार का फल आयेगा और अमरूद का फल (बीज) रोपा होगा तो अमरूद का फल आयेगा। इसी प्रकार जिसने तृष्णा के फल (बीज) रोपे होंगे, उसे मरते हुए तृष्णा के फल आयेंगे। यह करो.. यह करो.. लाओ यह.. यह करो.. जाये मरकर नीचे।

जिसने आत्मा के आनन्द के फल रोपे हैं, वृक्ष रोपे हैं, वृक्ष.. आहा..हा..! **भेदज्ञानरूपी वृक्ष...** ऐसा कहा, देखो! भेद करते.. करते.. करते.. एकाग्र आया है। उसका फल तो वन्द्य है, मांगलिक है। आहा..हा..! इसका योगफल तो शान्ति का और आनन्द का है, ऐसा कहते हैं और इस तृष्णा की पूरी दिन होली सुलगी हो, उसका फल तो मरते हुए पागल हो जायेगा, ऐसा उसका फल है। पोपटभाई! पागल-पागल। कहो, समझ में आया? लो, यह २०वाँ कलश कहा।

श्लोक-२१

(मंदाक्रांता)

मोक्षे मोक्षे जयति सहज-ज्ञान-मानन्दतानं,
निर्व्याबाधं स्फुटित-सहजावस्थ-मन्तर्मुखं च।
लीनं स्वस्मिन्सहज-विलसच्चिच्चमत्कारमात्रे,
स्वस्य ज्योतिःप्रतिहततमोवृत्तिनित्याभिरामम् ।।२१।।

(वीरछन्द)

जो अन्तर्मुख अव्याबाधित, आनन्द में जिसका विस्तार।
सहज दशा जिसकी विकसित है, अपने में है सहज विलास॥
लीन सदा चित् चमत्कार में, तमनाशक है ज्योति महान।
जयवन्तो सम्पूर्ण मोक्ष में, सहज ज्ञान शाश्वत अभिराम॥२१॥

श्लोकार्थ :- **आनन्द में जिसका विस्तार है, जो अव्याबाध (बाधारहित) है,**

जिसकी सहजदशा विकसित हो गयी है, जो अन्तर्मुख है, जो अपने में सहज विलसते (खेलते; परिणमते) चित्चमत्कारमात्र में लीन है, जिसने निजज्योति से तमोवृत्ति को (अन्धकारदशा को; अज्ञानपरिणति को) नष्ट किया है और नित्य अभिराम (सदा सुन्दर) है — ऐसा सहजज्ञान, सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तता है॥२१॥

कलश -२१ पर प्रवचन

२१ (वाँ)

मोक्षे मोक्षे जयति सहज-ज्ञान-मानन्दतानं,
निर्व्याबाधं स्फुटित-सहजावस्थ-मन्तर्मुखं च।
लीनं स्वस्मिन्सहज-विलसच्चिच्चमत्कारमात्रे,
स्वस्य ज्योतिःप्रतिहततमोवृत्तिनित्याभिरामम् ॥२१॥

'**आनन्दतानं**' अर्थात् ? आनन्दवाला ? विस्तार। **आनन्द में जिसका विस्तार है,...** '**आनन्दतानं**' फैलाव, विस्तार।

श्लोकार्थ :- आनन्द में जिसका विस्तार है,... ऐसा आत्मा। यह आत्मा कैसा है भगवान ? कि जिसे राग और पर से भिन्न करके आत्मा की एकाग्रता सेवन की है। उस **आनन्द में जिसका विस्तार है, जो अव्याबाध (बाधारहित) है,...** जिसकी दशा-आनन्द की दशा, स्वभाव में सन्मुख होकर जो धर्म हुआ, वह कैसी दशा है ? आनन्द का फैलाव है, बाधारहित है। पहले अस्ति किया। उसे किसी प्रकार का विघ्न नहीं है। **जिसकी सहजदशा विकसित हो गयी है,...** दशा जिसकी अन्दर शक्ति में थी। जैसे कली खिले वैसे आनन्द का नाथ अन्दर था, वह खिल उठा। जिसकी दशा में खिल गया है।

जो अन्तर्मुख है,... यह पर्याय निर्मल है, वह अन्तर्मुख है। ध्रुव के अन्तर्मुख है। **जो अपने में सहज विलसते (खेलते; परिणमते) चित्चमत्कारमात्र में लीन है,...** आहा..हा..! धर्मात्मा का आनन्द का फल अथवा धर्मदशा वह आत्मा में लीनता है, वह धर्मदशा है। **चित्चमत्कारमात्र में लीन है,...** राग नहीं, पुण्य नहीं, कुछ हो, हो, उसके घर में। मेरे घर में तो आनन्द और ज्ञान है। उसमें जो लीन है। **जिसने निजज्योति से तमोवृत्ति को**

(अन्धकारदशा को; अज्ञानपरिणति को) नष्ट किया है... भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु को अन्तर अनुभव करके जिसने अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश किया है। जहाँ सूर्य हो वहाँ अन्धकार नहीं रहता। इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द का भान होकर, स्वरूप के अनुभव की दशा होकर जिसने अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर किया है। गजब बात, भाई! समझ में आया?

और नित्य अभिराम (सदा सुन्दर) है... प्रगट हुआ ज्ञान, हों! **ऐसा सहजज्ञान, सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तता है।** आहा..हा..! जिसने आत्मा के स्वभाव को पर से भिन्न करके भेदज्ञान करके स्थिर हुआ है, अन्तर्मुख दशा जिसकी हुई है, उसे ऐसी सहज ज्ञानदशा सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तती है। वह अन्तर्मुख से हुआ अन्तर्मुख पर्याय का अन्तर्मुखपना है। केवलज्ञान बहिर्मुखपना नहीं। आहा..हा..! गजब काम भाई!

मुमुक्षु : .....सुखी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अच्छी गाड़ी, लाड़ी, घोड़ी, बाड़ी हो तो सुखी हो (ऐसा मानता है)। यह तो सब होली है। यह तो अन्दर आत्मा में आनन्द है। चैतन्य का लाल आनन्द का है। आहा..हा..! जैसे चौसठ पहरी पीपल में चौसठ पहरी चरपराहट भरी है, वह बाहर आती है, वैसे आत्मा में आनन्द पड़ा है। उसकी एकाग्रता से उसे आनन्द बाहर आता है। वह उसका आनन्द है। धूल का आनन्द कब था? मूढ़ ने बाहर से माना है। यह पैसा, स्त्री, इज्जत, कीर्ति, मकान... चारों ओर सब होली सुलगती है। आहा..हा..!

आनन्द तो आत्मा का स्वरूप है। वस्तु जो हो, वह दु:खरूप नहीं हो सकती। उसका स्वभाव दु:खरूप नहीं होता। उसके संयोग में वह चीज़ नहीं होती। वह अपने स्वभाव में होता है। स्वयं भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का स्वभाव है, उसमें से आनन्द आता है। सिद्ध भगवान आनन्द को भोगते हैं। आनन्द को भोगते हैं। वजुभाई! इनका बारह वर्ष का लड़का दिलीप है न? जयन्तीभाई का। उसके पिता जयन्ती ने पूछा था उससे, दिलीप! यह महाराज कहते हैं कि साधु जंगल में रहते हैं। लालचन्दभाई! पहिचानते हो न यह जाधवजीभाई? तुम्हारे कलकत्ता। जयन्तीभाई हैं न बड़े? लड़का ऐसा पका है। घर जाकर उसका पिता पूछे, ऐ दिलीप! यह महाराज कहते हैं कि साधु ऐसे होते हैं कि जंगल में रहें, उन्हें साधु कहते हैं। जंगल में उन्हें कैसे सुहाता होगा? ऐ..! पप्पा! ऐसा करके कहा, हों! वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में लहर करते हैं। कैसे सुहाता होगा, यह तुम क्या कहते हो?

जयन्तीभाई को ऐसा जवाब दिया था। अतीन्द्रिय आनन्द में। अकेले कैसे सुहाता होगा ? वे आनन्द में रहते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में। फिर दूसरा जवाब दिया, तदुपरान्त दलील दी। पप्पा! सिद्ध अकेले रहते हैं या नहीं ? सिद्ध-सिद्ध। णमो सिद्धाणं। उन्हें अकेले नहीं सुहाता होगा उन्हें ? पप्पा! अतीन्द्रिय आनन्द में लहर करते हैं। तुम्हारे यह... क्या कहलाता है ? यह तुम्हें घोंघाट सुहाता है। तुम्हें निवृत्ति नहीं चाहिए। बोले तो उसके बाप के सामने धड़ाका ले। ठीक बेटा! तुम्हें घोंघाट सुहाता है। यह करना, यह करना। इसलिए घोंघाटरहित चीज़, तुम्हें निवृत्ति चाहिए नहीं। सिद्ध निवृत्ति लेकर बैठे हैं और मात्र आनन्द में हैं। तुम्हें घोंघाट में दिखते हैं और घोंघाटरहित चीज़ आनन्दवाली कैसी होती है ? ऐई! लालचन्दभाई! अभी बारह वर्ष का हुआ है, हों! तेरहवाँ वर्ष चलता है। कलकत्ता में है। छुट्टी पड़ती है न ? क्या कहलाता है ? वेकेशन पड़े तब यहाँ आता है। पिता को जवाब दिया। यह नहीं सुहाता होगा सिद्ध को ? सिद्ध हैं या नहीं ? अकेले वहाँ नहीं रुचता होगा ? वे अतीन्द्रिय आनन्द में मजा करते हैं। तुमको घोंघाट चाहिए है। यह करना और वह करना, इसके बिना तुम्हें चैन नहीं आता। ठीक भाई! सच्चा हो तो लड़का कहे तो भी आपत्ति नहीं। उसमें क्या है ? क्यों शान्तिभाई! वह तो लड़का है, हमें समझावे तो हम उसके पास समझें। आहा..हा..!

और नित्य अभिराम (सदा सुन्दर) है—ऐसा सहजज्ञान,... जैसा शक्ति में आनन्द और ज्ञान था। जैसे पीपर में चौंसठ पहरा चरपरा रस और हरा रंग था, वह बाहर आया है; उसी प्रकार आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का सम्पूर्ण.. सम्पूर्ण.. सम्पूर्ण.. सत्व, तत्त्व था, वह एकाग्रता द्वारा बाहर आया है। आहा..हा..! अरे! विश्वास तो लावे, उसे खबर नहीं होती। ऐसा भगवान चिदानन्द प्रभु है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया ? यह तो बाहर से धर्म मानकर बैठे हों—यह किया और वह किया, सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण (करे)। भानरहित को सामायिक कैसी तुझे ? प्रौषध, प्रतिक्रमण वह तो सब एक रहित शून्य हैं। रण में शोर मचाने जैसा है। शोर कोई सुने, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं, अहो! ऐसा भगवान! यह सहजज्ञान की पर्याय की व्याख्या होती है। **सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तता है।** वस्तु के स्वभाव में जयवन्त सहजज्ञान-स्वाभाविक ज्ञान तो है, परन्तु उसका अनुभव होने पर पर्याय प्रगट हुई, वह भी सहजज्ञान मोक्ष में वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया ?

श्लोक-२२

(अनुष्टुप्)

सहज-ज्ञान-साम्राज्य-सर्वस्वं शुद्ध-चिन्मयम्।
ममात्मानमयं ज्ञात्वा निर्विकल्पो भवाम्यहम्।।२२।।

(वीरछन्द)

सहज ज्ञान साम्राज्य अहो, जिसका सर्वस्व शुद्ध चेतन।
निज आतम को लखकर होता हूँ, मैं निर्विकल्प चिद्घन॥२२॥

श्लोकार्थ :- सहजज्ञानरूपी साम्राज्य जिसका सर्वस्व है — ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर, मैं यह निर्विकल्प होऊँ॥२२॥

कलश-२२ पर प्रवचन

२२, छोटा श्लोक है।

सहज-ज्ञान-साम्राज्य-सर्वस्वं शुद्ध-चिन्मयम्।
ममात्मानमयं ज्ञात्वा निर्विकल्पो भवाम्यहम्।।२२।।

सहजज्ञानरूपी साम्राज्य जिसका सर्वस्व है... यह त्रिकाल की स्वाभाविक बात है। स्वाभाविक ज्ञानरूपी **साम्राज्य जिसका सर्वस्व है...** आत्मा का राज्य आत्मा में है। देखो! साम्राज्य। समझ में आया? यह साम्राज्य। कहा था न? उन जामनगर के दरबार के पास गये थे न, एक बार (संवत्) २०१० के वर्ष में। यह क्या कहलाता है? अभी गुजर गये न? दिग्विजय, उन्होंने कहा, महाराज! मुझे दर्शन करना है, मुझे ठीक नहीं है। दिग्विजय, एक करोड़ की आमदनी है। अभी गुजर गये। इनका लड़का। २०१० के वर्ष में गये थे। आहा..हा..! नौखा-नौखा.. उन्हें आँख का ऑपरेशन करवाना था। मुझे दर्शन करने हैं। मैं उनके बंगले के पास जंगल जाता था। पाँच मिनिट के रास्ते में, इसलिए उन्हें खबर पड़ी की महाराज यहाँ आते हैं। उनका मूल व्यक्ति अपना स्थानकवासी जैन था।

महाराज यहाँ आते हैं, इसलिए हमारे दर्शन करना हो तो, महाराज को प्रार्थना करो। फिर गये थे। पन्द्रह मिनिट बैठे। गुलाबरानी उनकी बहू थी। तुम्हारे एक करोड़ की आमदनी का यह साम्राज्य नहीं, कहा। यह तो धूल का राज है। साम्राज्य तो आत्मा में ज्ञान और आनन्द का अनन्त गुण का राज, वह साम्राज्य है। फिर रानी बोली-हाँ, महाराज! यह बात सत्य है। (रानी) होशियार है। पाव घण्टे गये थे। सबेरे दिशा को गये थे, समय नहीं था। पाव घण्टे (गये थे)। एक हजार रुपये रखे। एक हजार देते हैं। पाव घण्टा हुआ, उसके बदले में। जल्दी सबेरे दिशा जाकर। एक हजार गिने थे। अपने मोक्षशास्त्र में डाले थे। यह नहीं... यह नहीं... भाई! यह धूल का ढ़ेर वह राज नहीं है।

आत्मा का **सहजज्ञानरूपी साम्राज्य...** देखो! आहा..हा..! अनन्त-अनन्त बेहद जिसका ज्ञानस्वभाव स्वाभाविक, ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का राज। वह सर्वस्व आत्मा का स्वरूप-राज्य है। उससे वह शोभता है। **ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर,...** देखो, **ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर,...** ऐसा आत्मा हूँ, ऐसा जानकर। ज्ञान से ऐसा भरचक लबालब भरा हुआ। जैसे समुद्र उछलता है, वैसे आत्मा ज्ञान और आनन्द से छलाछल भरा हुआ है। नजर डाले बिना वह नजर में पड़े, ऐसा नहीं है। समझ में आया? खबर नहीं होती। अन्ध की तरह अनादि से चला जाता है। पोपटभाई! घर में भगवान विराजे उसके सामने नहीं देखना और पर के सामने देखना, लो!

भरे-पूरे घर में खाता नहीं और जूठन चाटने जाता है, ऐसा नहीं कहते? उसी प्रकार भगवान कहते हैं कि तीन लोक का नाथ आनन्द का धाम तू यहाँ अन्दर है न! किसी का चाटने जाता है, भोग का, विषय का, इज्जत और कीर्ति का, विकल्प का जूठन चाटता है तू। तुझे शर्म नहीं आती! पिता ऐसा कहता है न कि कुछ बदचलन हो तो। घर में स्त्री खानदानी लड़की है और तू उस गन्दी स्त्री को लेकर बैठा, तुझे शर्म नहीं आती? स्त्री खानदान की, बाहर निकले तो मुँह ऊँचा करे नहीं, ऐसी है, उसे छोड़कर भरे पूरे (को छोड़कर) यह अन्यत्र जहाँ-तहाँ भटकता है, ऐसा पिता उसे कहता है।

इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि तेरा साम्राज्य अन्दर है न, भगवान! इस दूसरे का राज्य करने कहाँ चला तू? पुण्य तेरा, शरीर मेरा, वाणी मेरी, राज्य मेरा, धूल मेरी—जूठन चाटने जाता है? समझ में आया? निर्लज्ज हो गया है न, उसे चाबुक लगते नहीं, जेठाभाई! आहा..हा..!

कहते हैं, अरे! हमारा सर्वस्व राज तो चैतन्य आनन्द है। **ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को...** देखो! ऐसा चैतन्य, ऐसा। रागवाला, कर्मवाला, शरीरवाला नहीं। **ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर,...** पहले जानकर, ऐसा कहा है न? **मैं यह निर्विकल्प होऊँ।** यह वस्तु ज्ञानमय है, आनन्दमय है, ऐसे उसका ज्ञान करके, अब मैं स्थिर होता हूँ। विकल्परहित होकर निर्विकल्प होता हूँ। इसका नाम धर्म है। कहो, समझ में आया? बात तो बड़ी लगे। ऐई! भीखाभाई! बात तो तेरे घर की बड़े में बड़ी है। आहा..हा..! क्या करे? रंक होकर चार गति में भटकता है। यह कलश कहा, लो, २२ हुए न? अब गाथा। ११-१२ गाथा के कलश।

इस ज्ञानोपयोग की व्याख्या में यह सब आया है। आहा..हा..! ज्ञान के बहुत भेद आये थे न? अब इस दर्शन के भेद लेते हैं। अन्तर सहजानन्द, सहजज्ञान त्रिकाल है, उसे कारणज्ञान कहा था। केवलज्ञान को कार्यस्वभावज्ञान कहा था। चार ज्ञान को विभाव ज्ञान कहा था। केवलज्ञान के तो प्रकार करेंगे। केवलज्ञान मोक्षदशा में जो वर्ते, अन्तिम कहा वह। वह केवलज्ञान स्वाभाविक ज्ञान है, ऐसा कहा। इसमें भाव में उसे विभावभाव वाला कहेंगे।

मुमुक्षु : अधूरा ज्ञान है इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... अधूरा कहाँ है? पर्याय है इसलिए। केवलज्ञान, वह कार्यस्वभावज्ञान है। अरे! यह भाषा किस प्रकार की! और त्रिकाली ज्ञान, वह कारणस्वभावज्ञान है। अब कार्यस्वभावज्ञान को तीन प्रकार से बतलायेंगे, उसे विभाव कहेंगे। केवलज्ञान को विभावज्ञान कहेंगे। त्रिकाली परमस्वभावज्ञान की अपेक्षा से (ऐसा कहेंगे) और उसे कार्यपर्यायज्ञान कहेंगे। भाई! कार्यपर्यायज्ञान। स्वभावकार्यपर्यायज्ञान। पर्याय को? समझ में आया? आहा..हा..! कितना याद रखना इसमें? इसमें इनकार नहीं करना। यह केवलज्ञान की व्याख्या इस प्रकार कही। अथवा ज्ञानभाव की। अब दर्शनभाव की व्याख्या उपयोग की (व्याख्या) करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१३

तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं।।१३।।

तथा दर्शनोपयोगः स्वस्वभावेतरविकल्पतो द्विविधः।
केवलमिन्द्रियरहितं असहायं तत् स्वभाव इति भणितः।।१३।।

दर्शनोपयोगस्वरूपाख्यानमेतत्। यथा ज्ञानोपयोगो बहुविधविकल्पसनाथः दर्शनोपयोगश्च तथा स्वभावदर्शनोपयोगो विभावदर्शनोपयोगश्च। स्वभावोऽपि द्विविधः कारणस्वभावः कार्यस्वभावश्चेति। तत्र कारणदृष्टिः सदा पावनरूपस्य औदयिकादिचतुर्णां विभावस्वभावपरभावानामगोचरस्य सहजपरमपारिणामिकभावस्वभावस्य कारणसमयसारस्वरूपस्य निरावरणस्वभावस्य स्वस्वभावसत्तामात्रस्य परमचैतन्यसामान्यस्वरूपस्य अकृत्रिमपरमस्वस्वरूपाविचलस्थितिसनाथशुद्धचारित्रस्य नित्यशुद्धनिरञ्जनबोधस्य निखिलदुरघवीरवैरिसेनावैजयन्तीविध्वन्सकारणस्य तस्य खलु स्वरूपश्रद्धानमात्रमेव।

अन्या कार्यदृष्टिः दर्शनज्ञानावरणीयप्रमुखघातिकर्मक्षयेण जातैव। अस्य खलु क्षायिकजीवस्य सकलविमलकेवलावबोधबुद्धभुवनत्रयस्य स्वात्मोत्थपरमवीतरागसुखसुधासमुद्रस्य यथाख्याताभिधानकार्यशुद्धचारित्रस्य साद्यनिधनामूर्तातीन्द्रियस्वभावशुद्धसद्भूतव्यवहारनयात्मकस्य त्रैलोक्यभव्यजनताप्रत्यक्षवन्दनायोग्यस्य तीर्थकरपरमदेवस्य केवलज्ञानवदियमपियुगपल्लोकालोकव्यापिनी।

इति कार्यकारणरूपेण स्वभावदर्शनोपयोगः प्रोक्तः विभावदर्शनोपयोगोऽप्युत्तरसूत्रस्थित-त्वात् तत्रैव दृश्यत इति।

दर्शनपयोग स्वभाव और विभाव दो विधि जानिये।
इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल, दृग्स्वभाविक मानिये॥१३॥

अन्वयार्थ :—[तथा] उसी प्रकार [दर्शनोपयोगः] दर्शनोपयोग, [स्वस्वभावेतरविकल्पतः] स्वभाव और विभाव के भेद से [द्विविधः] दो प्रकार का है।

[केवलम्] जो केवल [इन्द्रियरहितम्] इन्द्रियरहित और [असहायं] असहाय है, [तत्] वह [स्वभावः इति भणितः] स्वभावदर्शनोपयोग कहा है।

टीका :—यह दर्शनोपयोग के स्वरूप का कथन है।

जिस प्रकार ज्ञानोपयोग बहुविध भेदोंवाला है, उसी प्रकार दर्शनोपयोग भी वैसा है; (वहाँ प्रथम, उसके दो भेद हैं) स्वभावदर्शनोपयोग और विभावदर्शनोपयोग। स्वभाव-दर्शनोपयोग भी दो प्रकार का है—कारणस्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग।

वहाँ कारणदृष्टि[१] तो सदा पावनरूप और औदयिकादि चार विभावस्वभाव[२] परभावों को अगोचर—ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है; जो कारणसमयसार स्वरूप है; निरावरण जिसका स्वभाव है; जो निज स्वभावसत्तामात्र है; जो परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है; जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचल -स्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है; जो नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है, और जो समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रु सेना की ध्वजा के नाश का कारण है—ऐसे आत्मा के यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र[३] ही है (अर्थात्, कारणदृष्टि तो वास्तव में शुद्धात्मा की स्वरूपश्रद्धामात्र ही है)।

दूसरी, कार्यदृष्टि दर्शनावरणीय-ज्ञानावरणीयादि घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न होती है। इस क्षायिक जीव को, जिसने सकलविमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान द्वारा तीन भुवन को जाना है; निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले परमवीतराग सुखामृत का जो समुद्र है; जो यथाख्यात नामक कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप है; जो सादि-अनन्त अमूर्त

---

१. दृष्टि=दर्शन (दर्शन अथवा दृष्टि के दो अर्थ हैं : १. सामान्य प्रतिभास, और २. श्रद्धा। जहाँ जो अर्थ घटित होता हो, वहाँ वह अर्थ समझना। दोनों अर्थ गर्भित हों, वहाँ दोनों समझना।)

२. विभाव=विशेषभाव, अपेक्षितभाव। (औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, और क्षायिक — ये चार भाव, अपेक्षितभाव होने से उन्हें विभावस्वभाव परभाव कहा है। एक सहज परमपारिणामिकभाव को ही सदा-पावनरूप निजस्वभाव कहा है। चार विभावभावों का आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव का आश्रय नहीं होता। परमपारिणामिकभाव का आश्रय करने से ही सम्यक्त्व से लेकर मोक्षदशा तक की दशाएँ प्राप्त होती हैं।)

३. स्वरूपश्रद्धान=स्वरूप अपेक्षा से श्रद्धान। (जिस प्रकार कारणस्वभावज्ञान, अर्थात् सहजज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष है; उसी प्रकार कारणस्वभावदृष्टि, अर्थात् सहजदर्शन स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है।)

अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूत -व्यवहारनयात्मक[१] है, और जो त्रिलोक के भव्यजनों को प्रत्यक्ष वन्दनायोग्य है— ऐसे तीर्थंकरपरमदेव को केवलज्ञान की भाँति, यह (कार्यदृष्टि) भी युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।

इस प्रकार कार्यरूप और कारणरूप से स्वभावदर्शनोपयोग कहा। विभावदर्शनोपयोग अगले सूत्र में (१४वीं गाथा में) होने से, वहीं दर्शाया जायेगा।

प्रवचन-२०, गाथा-१३, रविवार, फाल्गुन कृष्ण ८, दिनांक २१-०३-१९७१

नियमसार, जीव अधिकार १३ वीं गाथा।

तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं।।१३।।

दर्शनपयोग स्वभाव और विभाव दो विधि जानिये।
इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल, दृग्स्वभाविक मानिये॥१३॥

क्या अधिकार चलता है ? उपयोग। यह आत्मा जो वस्तु है, उसका ज्ञान और दर्शन उपयोग त्रिकाली स्वभाव और वर्तमान उसकी दशा का स्वरूप चलता है। ज्ञान की व्याख्या आ गयी। अब दर्शन की।

टीका :— यह दर्शनोपयोग के स्वरूप का कथन है। सामान्यरूप से वस्तु को देखे, ऐसे भाव को दर्शनोपयोग कहते हैं। सूक्ष्म है। **जिस प्रकार ज्ञानोपयोग बहुविध भेदोंवाला है,...** ज्ञान के भी बहुत भेद किये थे—एक, कारणस्वरूपज्ञान त्रिकाल; एक, कार्यस्वरूपज्ञान स्वभावज्ञान वर्तमान; और उसमें भी मतिश्रुतादि के बहुत भेद (कहे थे)। चार ज्ञान विभाव, केवलज्ञान स्वभाव—ऐसे बहुत भेद किये थे। वैसे ही यह दर्शनोपयोग भी वैसे बहुत भेदवाला है। इतने अधिक नहीं, परन्तु भेदवाला है।

स्वभावदर्शनोपयोग और विभावदर्शनोपयोग। स्वभावदर्शनोपयोग भी दो प्रकार का है—कारणस्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग। क्या कहते हैं ?

---

१. तीर्थंकरपरमदेव शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप हैं, कि जो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय सादि-अनन्त, अमूर्तिक और अतीन्द्रियस्वभाववाला है।

आत्मा में एक दर्शन नाम का स्वभाव-उपयोग त्रिकाल है। आत्मा वस्तु है, उसमें दर्शन नाम का उपयोग त्रिकाल है, उसे यहाँ कारणस्वभावदर्शन-उपयोग कहते हैं और वर्तमान उसकी कार्य / दशा आवे; स्वभावदर्शन, कारण त्रिकाल उपयोग, उसमें एकाग्र होकर जो कार्यदर्शन-उपयोग स्वभाव, केवलदर्शन को यहाँ कार्यस्वभाव-उपयोग कहा जाता है। यह सब सूक्ष्म विषय है। जिसे अभ्यास न हो, उसे यह सब सूक्ष्म लगता है।

अब कारणस्वभावदर्शनोपयोग को यहाँ कारणदृष्टिरूप से वर्णन करते हैं। आत्मा एक वस्तु है, पदार्थ। उसमें त्रिकाली सामान्य दर्शनोपयोग को यहाँ कारणदृष्टि भी कहते हैं। कारणदर्शनोपयोग भी कहते हैं और उसे कारणदृष्टि भी कहते हैं। वह **कारणदृष्टि...** दृष्टि नीचे है। ***दृष्टि=दर्शन (दर्शन अथवा दृष्टि के दो अर्थ हैं : १. सामान्य प्रतिभास,...)*** यह दर्शन-उपयोग। सामान्य, आत्मा में सामान्यरूप से अर्थात् भेद पाड़े बिना देखने का एक उपयोग आत्मा का त्रिकाल है, उसे सामान्यदर्शनोपयोग कहते हैं, उसे ही उसे श्रद्धा की अपेक्षा से दृष्टि भी कहते हैं। कारणदृष्टि, कारणदर्शनोपयोग, कारणश्रद्धा। इतने शब्द उसमें प्रयोग किये हैं। ***(२. श्रद्धा। जहाँ जो अर्थ घटित होता हो, वहाँ वह अर्थ समझना। दोनों अर्थ गर्भित हों, वहाँ दोनों समझना।)*** इसमें दोनों हैं। कारणदृष्टि, स्वरूपश्रद्धानमात्र कहेंगे। अथवा त्रिकाल कारणदर्शनोपयोग ध्रुवरूप से। आत्मा... यह सब सूक्ष्म बात है। यह उस खजूर जैसी नहीं कि एकदम समझ में आ जाये। मनुभाई!

आत्मा, यह वस्तु है आत्मा, उसमें उसका त्रिकाली दर्शनोपयोगस्वभाव है। उसे कारणदृष्टि भी कहते हैं, स्वरूपश्रद्धान भी कहते हैं। त्रिकाली, हों! उसे कारणदर्शनोपयोग भी कहते हैं। दोनों प्रकार से कहा जाता है। वह **सदा पावनरूप और औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर....** है। सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा में त्रिकाल कारणदृष्टि अथवा कारणसामान्य उपयोगदर्शन अथवा स्वरूपश्रद्धान। वस्तु त्रिकाल है, उसके स्वरूप की श्रद्धा त्रिकाल। पर्याय नहीं। कहते हैं कि वह कारणदृष्टि, कारणदर्शन-उपयोग अथवा स्वरूपश्रद्धान स्वरूप वस्तु। इन चार विभावस्वभाव परभाव को अगम्य है।

वस्तु जो आत्मा है, भगवान आत्मा में जो दर्शनोपयोग अथवा कारणदृष्टि त्रिकाल है, वह उदय—दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, वह उदयभाव है, उसे भी वह दर्शन-उपयोग शाश्वत् अथवा कारणदृष्टि त्रिकाल उससे अगम्य है। उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है।

समझ में आया ? ऐसे उपशम। दर्शन, चारित्र आदि का उपशम होता है न ? उस उपशमभाव से भी, उसका आश्रय करने से अगम्य है, मूल तो ऐसा कहना है। उपशमभाव से अगम्य है, इसका अर्थ ? कि उपशमभाव का आश्रय करने से यह भाव प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। यह भाव समझ में आये, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म है, पोपटभाई ! बाहर में तो सब ऐसा का ऐसा स्थूल चला हो। पुण्य हो उसके कारण पैसा-वैसा ढगला धन हो, उसे जगत में चतुर कहा जाता है। जगत में, हों ! यह वस्तु अलग है। आत्मा को पहिचानना और आत्मज्ञान, वही मोक्ष का मार्ग है। वही धर्म और सुख के पन्थ में आने का मार्ग है। आहा..हा.. !

यह कहते हैं कि आत्मा कारणदृष्टि अथवा कारणदर्शनोपयोग स्वरूपश्रद्धानस्वरूप सब इसने साथ में लिया है। वह उदय अर्थात् रागादि के विकल्प से अगम्य है। उपशम के आश्रय से भी अगम्य है। चार ज्ञान आदि का क्षयोपशम जो है, उससे भी अगम्य है। उसका आश्रय करने से भी समझ में नहीं आता। वैसे ही क्षायिकभाव। इन चार को विभावस्वभाव कहा है, क्योंकि जिसमें वि—विशेष विशेषपना आता है और जिसमें पर की कोई अभाव आदि की अपेक्षा आती है, इससे उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार को विभावस्वभाव-परभाव कहा है। है न ? विभावस्वभाव परभाव। आज का विषय सूक्ष्म है। आज रविवार है न ! रविवार आता है, इसलिए ये भावनगरवाले आते हैं, तब सूक्ष्म आता है।

आत्मा सत्वस्तु सत् है, है। उसमें उसका उपयोग अर्थात् गुण, दर्शनोपयोग सामान्यरूप से जो देखने की शक्ति अथवा कारणदृष्टि, वह सम्यग्दर्शन, वह कारणदृष्टि अन्दर वस्तु त्रिकाल, हों ! अथवा वह स्वरूपश्रद्धान। त्रिकाली वस्तु है, उसके स्वरूप की श्रद्धामात्र ध्रुव। घर में मानो पढ़ने का समय मिलता नहीं। मनुभाई ! किसी दिन ऐसा सुनने को मिले, उसमें (ऐसी सूक्ष्म बात आवे)। कहो, समझ में आया ?

जिसे आत्मा का हित करना है, सुखी होना हो, उसे किस प्रकार सुखी हुआ जाये और हित हो ? कि जो आत्मा वस्तु है, उसमें त्रिकाली दर्शनोपयोग है या त्रिकाली स्वरूप -श्रद्धान या कारणदृष्टि जो त्रिकाली है, उसका आश्रय करे तो उसे कल्याण और सुख हो, तो उसे लाभ हो। क्या कहा, समझ में आया ?

चार भाव वर्तमान प्रगट है। पुण्य-पाप का विकार, उपशमसमकित और उपशमचारित्र या क्षयोपशमज्ञान या क्षयोपशमचारित्र; क्षायिकज्ञान या क्षायिकचारित्र। वे सब उदय,

उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार भाव हैं। उन चार भाव का आश्रय करने से स्वरूप का लाभ नहीं होता, धर्म का लाभ नहीं होता। आहा..हा..! कहो, भीखाभाई! परन्तु कहाँ गये? इसमें देव-गुरु तो कहीं रह गये।

मुमुक्षु : बाजू में रख दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा यह? बाजू में रख दिये। आहा..हा..! तुझमें ऐसी खान है, कहते हैं। अन्दर स्वरूपश्रद्धान नाम का त्रिकाल एक गुण है - श्रद्धा नाम का गुण त्रिकाल है अथवा कारणदृष्टि नाम का गुण है अथवा दर्शनोपयोग कारणरूप वह त्रिकाल गुण है। आहा..हा..! उसका लाभ यह जीव का परमस्वभावभाव है। आत्मा वस्तु है, उसका परमस्वभावभाव, कारणदृष्टि, कारण-उपयोग, स्वरूपश्रद्धान, यह उसका शाश्वत् ध्रुवस्वभाव है। इसका आश्रय करे तो इसे सम्यग्दर्शन और आनन्द की प्राप्ति हो। समझ में आया? आहा..हा..! क्योंकि चार तो विशेष अपेक्षित भाव हैं। नीचे कहा है, देखो!

विभाव=विशेषभाव, अपेक्षितभाव। (औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, और क्षायिक—ये चार भाव, अपेक्षितभाव होने से उन्हें विभावस्वभाव परभाव कहा है।)... उन्हें यहाँ विभावस्वभाव कहा, उन्हें ही पहले केवलज्ञान को स्वभावभाव भी कहा था। केवलज्ञान जो प्रगट होता है, उसे स्वभाव-उपयोग कहा था। केवलदर्शन को भी स्वभाव-उपयोग इसमें कहा है, तथापि यहाँ विशेष भाव है, इस अपेक्षा से उसे विभावस्वभाव कहने में आता है। समझ में आया? नहीं समझ में आया। कहा न?

आत्मा में जो त्रिकाल ज्ञानस्वभाव है, उसे तो कारण ज्ञानोपयोग कहते हैं। अब उसके आश्रय से हुआ केवलज्ञान कार्यस्वभाव-उपयोग, केवलज्ञान को वहाँ स्वभाव-उपयोग कहा था, उसे यहाँ विभावस्वभाव कहा है और परभाव कहा है। त्रिकाली परमस्वभाव की अपेक्षा से विशेषभाव, अपेक्षितभाव अथवा परभाव (कहा है)। सेठी यह पढ़ा है या नहीं? तुम्हारे घर से तो किया है यह। हिन्दी कराया है। आहा..हा..!

फिर से। यह आत्मा वस्तु है। शरीर, वाणी वह तो जड़ है। वह कहीं आत्मा में नहीं और आत्मा के नहीं। बराबर है? इस आत्मा के नहीं? खजूर के थैले (आत्मा के नहीं?) यहाँ कहते हैं कि जो यह अन्दर कर्म है, वह आत्मा में नहीं, आत्मा के नहीं। बराबर है? अब कहते हैं, उसकी पर्याय में / अवस्था में / हालत में चार भाव हैं। अनादि से एक

उदयभाव है, अनादि से क्षयोपशमभाव भी है। धर्म पावे तब उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव होता है। ऐसे चार प्रकार इसकी दशा में है। वह दशा में है, उसमें जो केवलज्ञान का उपयोग है, उसे स्वभाव-उपयोग कहा था। इसे यहाँ विभाव-उपयोग कहकर परभाव कहा है। त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव, ज्ञानोपयोग त्रिकाल की अपेक्षा से वर्तमान प्रगट हुई केवलज्ञान की दशारूपी भाव को अपेक्षित भाव गिनकर, विशेषभाव गिनकर, विभाव गिनकर परभाव कहा है।

दर्शनोपयोग भी ऐसा कहा है। इसी गाथा में दर्शनस्वभाव-उपयोग कहा है। त्रिकाल एक दर्शनस्वभाव-उपयोग, त्रिकाली और उसमें से प्रगट हुआ केवल दर्शनोपयोग कार्य है। वह कार्य-उपयोग जो है, उसे स्वभाव-उपयोग कहा है, तथापि यहाँ उसे विभाव अपेक्षा लेकर, अपेक्षितभाव गिनकर, विशेषभाव गिनकर उसे विभाव-स्वभाव परभाव कहने में आता है। समझ में आया? यह नियमसार है। घर में है न हिम्मतभाई? पढ़ा है? .....उसमें नहीं। ....घर में पुस्तक है या नहीं? घर में पैसा है, वे खर्च करते हैं या नहीं? पुस्तक है, उसे प्रयोग करते हैं या नहीं? ऐसा कहा। देखो! यह लेख। आहा..हा..!

तेरी सम्पत्ति में-पूँजी में क्या है और पूँजी में से प्रगट क्या होता है? यह बात है। तेरी पूँजी में अन्दर में कारणज्ञानोपयोग त्रिकाल पड़ा है और तेरी पूँजी में कारणदर्शनोपयोग त्रिकाल पड़ा है। तेरी पूँजी में कारणदृष्टि स्वरूपश्रद्धानमात्र भाव त्रिकाल पड़ा है। अब उसमें से प्रगट होने के लिये... वह तो शक्तिरूप है, ध्रुवरूप है, अब प्रगट धर्म होने के लिये कहते हैं कि इस पर्याय में जो चार भाव हैं, उनका आश्रय करने से धर्म की पर्याय प्रगट नहीं होती। धर्म जो प्रगट हुआ हो, उसके आश्रय से भी परमपारिणामिकस्वभाव जानने में नहीं आता। उसके आश्रय से, हों! उससे होता है, वह अलग बात है। यह तो सब अटपटा जैसा है। आहा..हा..!

कहते हैं, भाई! तेरी रिद्धि, समृद्धि, चैतन्य की समृद्धि में अन्तर के दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग आत्मा के, शक्ति के, ध्रुव में सामान्यरूप से (रहे हुए हैं)। ज्ञान सामान्य और दर्शन सामान्य अर्थात् पर्यायरहित ऐसा। ऐसा त्रिकालभाव पड़ा है, ऐसे कारणदृष्टि भी आत्मा में ध्रुवरूप से त्रिकाल पड़ी है और स्वरूपश्रद्धान, पूरे स्वरूप के श्रद्धानरूप अभेद ऐसी श्रद्धा भी त्रिकाल पड़ी है। समझ में आया? उसे परमपारिणामिकस्वभावभाव कहने

में आता है और प्रगट हुए चार भाव को विभावस्वभाव परभाव कहने में आता है। पण्डितजी!

त्रिकाली ज्ञायकभाव, त्रिकाली दर्शनभाव, त्रिकाली स्वरूपश्रद्धानभाव, त्रिकाली कारणदृष्टिभाव, उस स्व परमस्वभाव की अपेक्षा से पर्याय में प्रगट हुए उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक को परभाव, परस्वभाव, विभावभाव कहने में आया है। आहा..हा..! समझ में आया? इन चार विभावस्वभाव परभावों को अगम्य है अर्थात् कि, देखो! नीचे लिखा है न (***चार विभावभावों का आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव का आश्रय नहीं होता।***) (फुट)नोट में है। (***परमपारिणामिकभाव का आश्रय करने से ही सम्यक्त्व से लेकर मोक्षदशा तक की दशाएँ प्राप्त होती हैं।***) आहा..हा..! भगवान आत्मा अन्तर्मुख की शक्ति में ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा इत्यादि कारणदृष्टि, वह शक्तिरूप जो ध्रुव है, वह परमस्वभावभाव है। उसका आश्रय करने से धर्म होता है।

सम्यक्त्व से लेकर केवलज्ञान आदि की पर्यायें उत्पन्न होती हैं, वह त्रिकाली स्वरूपश्रद्धा, कारणदृष्टि, दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग के आश्रय से अन्तर में ध्रुव को अवलम्बन करने से। त्रिकाली शक्तिवाला तत्त्व की शक्ति का वर्णन है। उस त्रिकाली शक्ति का अवलम्बन करने से... फिर कोई शक्ति और शक्तिवान, ऐसा भेद वहाँ नहीं रहता। त्रिकाली शक्तिवान और शक्ति, उसका अन्तर आश्रय करने पर सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली भूमिका प्रगट होती है। कहो, समझ में आया? वहाँ से लेकर मोक्षदशा, कैवल्यदशा वे सब दशाएँ, हालत-पर्यायें त्रिकाली वस्तु की शक्तियों में आश्रय करने से प्रगट होती हैं। निमित्त का राग का और निर्मल पर्याय क्षयोपशम आदि का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

वह तो यह सब रात्रि को पूछे तो आयेगा या नहीं? उसमें सब आयेगा? हाँ किया। बहुत वैसी हाँ नहीं करते। हसमुखभाई! घर में रुपये कितने हैं, उसकी इसे खबर नहीं होगी? वह तो निश्चित होगी। आहा..हा..! उसे फिर रटना पड़ता होगा? एकदम कहे, भाई! मेरे लिये दूसरे भले इतने सोचें, परन्तु मेरे पास इतने तो हैं। आहा..हा..! इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि आत्मा में तेरे लिये दूसरे चाहे जैसा सोचे, परन्तु अन्दर में क्या है, उसकी तुझे खबर है? ऐसा कहते हैं।

अन्दर में त्रिकाली आनन्दकन्द भगवान आत्मा में यह कारणज्ञान, कारणदर्शन, कारणस्वरूपश्रद्धान, कारणदृष्टि ऐसा ध्रुवस्वभाव तुझमें—खान में—पड़ा है। ऐसी खान का आश्रय अन्तर्मुख (होकर) ले तो तुझे धर्म की पर्याय, चारित्र की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, मोक्ष की पर्याय प्रगट होगी। व्यवहार से व्यवहार के कारण आश्रय नहीं होता, ऐसा इनकार किया है। क्षयोपशमज्ञान हुआ हो, क्षायिकसमकित हुआ हो तो उसके आश्रय से नयी पर्याय नहीं होती, ऐसा यहाँ कहते हैं। उसके बदले व्यवहार, दया, दान, व्रत, और कषाय की मन्दता से निश्चय प्रगट होता है, यह तो कहीं रह गया। आहा..हा..! अभी विधि की खबर नहीं होती। मार्ग की विधि क्या है? सुखी होने का पन्थ, उसकी विधि क्या है? यह सूक्ष्म है, हों मनीष! बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। लिखना चाहते हैं और आज सूक्ष्म है, आज सूक्ष्म। कहो, समझ में आया? आहा..हा..!

परभावों को अगोचर... ऐसे वापस अगम्य हैं। उसका अर्थ यह कि परभावों के आश्रय से वह होता नहीं। ऐसा उसका अर्थ है। अगम्य तो उपशमभाव को गम्य है, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव को पारिणामिकभाव गम्य है। त्रिकालभाव उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तो गम्य है परन्तु यहाँ अगम्य है, ऐसा कहने का आशय (यह है कि) उनके आश्रय से वह ज्ञात होता नहीं। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म किसने किया होगा? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। उसमें किसने किया? सत् ही वह है।

वस्तु सत् है। आत्मा त्रिकाल सत् है, तो उसके कारण उपयोग और कारणदृष्टि वे भी त्रिकाल सत् हैं। उनमें से धर्म प्रगट करने के लिये अर्थात् ज्ञान का सम्यक् उपयोग प्रगट करने के लिये और दर्शन का उपयोग प्रगट करने के लिये, सम्यक्त्व प्रगट करने के लिये त्रिकाली, चार भाव से रहित **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** यह जो कारण-उपयोग कहो, कारणदृष्टि कहो, स्वरूपश्रद्धान कहो, वह **कारणसमयसार स्वरूप है;...**

सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;... त्रिकाली स्वभावभाव सहज वस्तु है, वैसे उसकी शक्तियाँ अर्थात् गुण भी ऐसे के ऐसे हैं। समझ में आया? **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप...** यह परमपारिणामिक कौन सा? वह कारणदृष्टि, कारण-उपयोग, कारणज्ञान इत्यादि। यहाँ दर्शन की बात है। त्रिकालस्वरूपश्रद्धान वह सब

सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;... भारी सूक्ष्म! ये दो भाई किसी दिन आते हैं, उसमें ऐसा सूक्ष्म आया। समझ में आया? उसमें मनुभाई बुद्धिवाले गिने जाते हैं। लौकिक में गिने जाते हैं, ऐसा कहा। कहो, समझ में आया इसमें? भाई! ऐसा धर्म गजब। वह तो कहे व्रत करना, तप करना, रोटियाँ न खाना, अपवास करना, जाओ (हो गया धर्म)। धूल में भी धर्म नहीं है। अब सुन न! अमुक यह मैंने त्याग किया, यह मैंने ग्रहण किया, यह मिथ्यात्व का पोषण है। पर्याय में इसे ग्रहण करूँ, इसे छोड़ूँ, यह लूँ और यह छोड़ूँ... आहा..हा..! अरे रे! यह तो विकल्प का भाव (है) और मानता है कि इससे मुझे लाभ। मिथ्यात्व को पोषण करता है। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा में जैसे प्रभु स्वयं अविनाशी अनादि है, वैसे उसमें अविनाशी कारणदर्शनोपयोग, अविनाशी स्वरूपश्रद्धान, अविनाशी कारणदृष्टि, वह आत्मा में त्रिकाल पड़ी है। वह **परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** वे चार भाव हैं, वे तो पर्याय की बात है। यह चार त्रिकाल स्वभाव की बात है। आहा..हा..! समझ में आया? अन्तर भगवान का दरबार अलौकिक है, ऐसा कहते हैं परन्तु कभी सुना नहीं। आहा..हा..! तेरे अन्तर दरबार में कारणदृष्टि, कारणदर्शनोपयोग और स्वरूपश्रद्धा परमसहजस्वभावरूप पड़े हैं।

जो कारणसमयसार स्वरूप है;... लो। कारण आत्मस्वरूप है। **कारणसमयसार स्वरूप है;...** वह दर्शनोपयोग त्रिकाल और कारणदृष्टि त्रिकाल या स्वरूपश्रद्धान, वह था शक्ति और गुण का वर्णन परन्तु कहते हैं कि वह **कारणसमयसार स्वरूप है;...** अभेद वर्णन किया। ये तीनों द्रव्यस्वरूप ही हैं, द्रव्यस्वरूप ही हैं। समझ में आया? यह क्या कहा? **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है; जो कारणसमयसार स्वरूप है;...** वस्तु भगवान आत्मा इन गुण के भेद से बतलाते हैं, तथापि ये गुण सब कारणस्वरूप परमात्मा आत्मा के स्वरूप ही ये सब हैं। भेद नहीं हैं। समझ में आया?

कारणसमयसार स्वरूप है;... आहा..हा..! कौन? यह आत्मा जैसे अविनाशी सत् है.. है.. है.. है.. है.. है.. वैसे उसमें दर्शन, कारणदृष्टि अथवा स्वरूपश्रद्धान, वे भी परमस्वभावभाव से है.. है.. है.. है.. है.. है.. है.. और उन सबको कारणसमयसारस्वरूप भी कहते हैं। समझ में आया? **निरावरण जिसका स्वभाव है;...** भगवान आत्मा जैसे वस्तु

है, उसका जैसे आवरणरहित निरावरणस्वभाव है, वैसे उसका त्रिकाल दर्शनोपयोग, कारणदृष्टि अथवा स्वरूपश्रद्धान निरावरणीय वस्तु त्रिकाल पड़ी है। समझ में आया? पर्याय की अपेक्षा से बात नहीं है। यह गुण जो कारणसमयसारस्वरूप है, वह त्रिकाल निरावरण जिसका स्वभाव है। आहा..हा..!

जो निज स्वभावसत्तामात्र है;... जो निज स्वभावसत्तामात्र है। कारणदर्शनोपयोग, कारणदृष्टि अथवा स्वरूपश्रद्धान वह निज स्वभावसत्ता—अपने स्वभाव का अस्तित्वरूप है। आत्मा में निज स्वभावसत्ता अस्तित्वरूप से है। पहले ऐसा कहीं आया था। सम्प्रदाय है न? इन चेतनजी ने कारणपर्याय का पूछा था न? यह वहाँ कहीं था? क्या हो? लोगों को अपना पक्ष छोड़ना नहीं। आहा..हा..! यह सब पहरावणी बताते हैं। तेरे घर में क्या है? समझ में आया?

कहते हैं कि वह तो त्रिकाल निरावरणस्वभाव है। वस्तु जैसे निरावरण है, वैसे उसका शक्ति स्वभाव निरावरण है। निज स्वभावसत्तामात्र है। भगवान आत्मा जैसे है, वैसे यह शक्तिरूप निजस्वभावसत्ता त्रिकाल है। यह पर्याय की बात नहीं, अवस्था की बात नहीं। आहा..हा..! **जो परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है;...** जो परमचैतन्य सामान्य, अभी दर्शन की व्याख्या है न? ऐसा। उस दर्शन के साथ कारणदृष्टि आवे और स्वरूपश्रद्धान सब उसमें आवे। **परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है;...** परमचैतन्य सामान्यस्वरूप अन्दर है। आहा..! भाषा ही पकड़ना कठिन पड़े। समझ में आया? **जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचलस्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है;...** त्रिकाल। अकृत्रिम-नया नहीं किया हुआ, ऐसा परमस्वस्वरूप में परमस्वस्वरूप अन्दर का। चलित न हो, ऐसी स्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप वह सब है। त्रिकाल, हों! भारी गाथा है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब साथ में ही है न। इकट्ठे ही हैं न! भिन्न कहाँ हैं। अभेद वर्णन करना है न।

जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचल... कभी चलित न हो, ऐसा चारित्र सुचारित्र ध्रुवस्वभाव है। वह सत्ता-निजसत्तामात्र कारणदृष्टि में, कारण-उपयोग में यह सब पड़ा है। आहा..हा..! गजब भाई! धर्म की ऐसी व्याख्या होगी! जो अकृत्रिम नहीं,

पर्यायरूप से कराना, ऐसा परमस्वस्वरूप में, परमस्वस्वरूप में, त्रिकाल ध्रुवस्वरूप में, अविचल-चलित न हो, ऐसी स्थिरतारूप, स्थितिरूप परमशुद्ध चारित्रस्वरूप है।

जो नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है,... भगवान आत्मा, जैसे यह कारण-उपयोग कहते हैं, कारणदृष्टि कहते हैं, स्वरूपश्रद्धान कहते हैं, परमस्वभावभाव में। और वह समयसारस्वरूप है। उसमें **नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है,...** वह तो शाश्वत् निर्मल ऐसा अंजनरहित ज्ञानस्वरूपरूप से स्वयं ऐसा है। देखो, पद्मप्रभमलधारिदेव ने ऐसी टीका की है। वे (अन्य लोग) कहते हैं क्लिष्ट की है। कितनी स्पष्ट है!

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट बात की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : -बात करते हैं। यह कहते हैं कि इस टीका के करनेवाले हम तो कौन? गणधर से लेकर ये टीकाएँ चली आती हैं। हम मन्दबुद्धि तो कौन? आहा..हा..! समझ में आया? भगवान परमात्मस्वरूप महाराजा की अन्दर की ऋद्धि का यह वर्णन चलता है।

नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है, और जो समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रु सेना की ध्वजा के नाश का कारण है... समस्त दुष्ट पापरूपी वीर शत्रु। सब, हों! पुण्य-पाप सब इकट्ठा। दुश्मनों की सेना की ध्वजा को लूटनेवाला है। लूटनेवाला अर्थात् उसके स्वभाव में वे हैं नहीं। उस स्वभाव का आश्रय ले, उसके इस पाप का नाश हुए बिना नहीं रहता। आहा..हा..! **समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर...** पापरूप वीर की-इसके शत्रु की सेना, उसके नाश का कारण। **ऐसे आत्मा के यथार्थ...** ऐसा जो आत्मा, यह सब होकर कहा वह। उसका **यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है...** ऐसे आत्मा का स्वरूपश्रद्धान त्रिकाल है। प्रगट की बात नहीं है। त्रिकाल स्वरूपश्रद्धान **ऐसे आत्मा के यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है...** स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है। लो, समझ में आया? **(अर्थात्, कारणदृष्टि तो वास्तव में शुद्धात्मा की स्वरूपश्रद्धामात्र ही है)**। ऊपर से पहले यह आया था न? कारणदृष्टि वहाँ से शुरु किया। पैराग्राफ से। वह कारणदृष्टि वास्तव में शुद्धात्मा के, त्रिकाली शुद्धस्वरूप के श्रद्धास्वरूप, श्रद्धामात्र त्रिकाल ऐसी श्रद्धा अन्दर पड़ी है। नीचे (फुट)नोट एक।

स्वरूपश्रद्धान=स्वरूप अपेक्षा से श्रद्धान। अपना जो त्रिकाली ध्रुवस्वरूप, उसकी श्रद्धा अन्दर में, हों! क्योंकि प्रगट सम्यग्दर्शन हो, उसका कारण भी स्वरूपश्रद्धान त्रिकाल

है। समकित की, धर्म की दशा प्रगट हो, उसका कारणरूप स्वरूपश्रद्धान त्रिकाल है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

(जिस प्रकार कारणस्वभावज्ञान, (त्रिकाल) अर्थात् सहजज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष है;...) पहले स्वरूपप्रत्यक्ष कहा था न? जैसे ज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष है, त्रिकाल, हों! जैसे त्रिकाल ज्ञान अन्दर स्वरूपप्रत्यक्ष ही है। ***(उसी प्रकार कारणस्वभावदृष्टि, अर्थात् सहजदर्शन स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है।)*** सहजदर्शन कहो या स्वरूपश्रद्धानमात्र, ऐसे दो इकट्ठे डाले न! कहो, समझ में आया इसमें? पहले स्वरूपप्रत्यक्ष कह गये थे। कारणस्वरूप प्रत्यक्ष है, ऐसा कह गये थे। अर्थात् क्या? कि त्रिकाल आत्मा जो है, उसका ज्ञान अन्दर, वह स्वरूप प्रत्यक्ष ही है। अपने स्वयं के आश्रय से प्रत्यक्ष है। उसे किसी की अपेक्षा नहीं है। जैसे वह स्वरूप प्रत्यक्ष ज्ञान भी त्रिकाल है, वैसे स्वरूपश्रद्धानमात्र भी त्रिकाल है। जैसे स्वरूपज्ञान की अपेक्षा से स्वरूपप्रत्यक्ष कहा तो यहाँ दर्शन की अपेक्षा से अथवा श्रद्धा की अपेक्षा से स्वरूपश्रद्धान कहा। बस।

अरे! चीज़ कितनी पड़ी है! लोग स्वाध्याय करते नहीं, पढ़ते नहीं, मनन करते नहीं। ऐसे का ऐसा बाहर का अकेला यह पालो, यह पालो, और यह पालन करो। पाला डालकर अन्दर पड़े हैं। पाला-पाला, यह धूल का पाला खेत में नहीं डालते? पानी भरा रहे। वैसे पाला डाले हैं। सच्चा समझना एक ओर रख दिया। आहा..हा..! कहो, समझ में आया?

(जिस प्रकार कारणस्वभावज्ञान, अर्थात् सहजज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष है; उसी प्रकार कारणस्वभावदृष्टि, (त्रिकाल) अर्थात् सहजदर्शन स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है।) कहो, समझ में आया? यह त्रिकाल कारणदृष्टि, स्वरूपश्रद्धान त्रिकाल दर्शनोपयोग, उसे किस भाव से यहाँ कहा? परमपारिणामिकभाव से कहा। तुम्हें नहीं पूछा। त्रिकाल परमपारिणामिकभाव से कहा। कारणदर्शनोपयोग त्रिकाल, कारणस्वरूप दृष्टि या कारणदृष्टि या कारणस्वरूप श्रद्धान, वह सब परमपारिणामिकभाव से है। सहज कहा था न? ऊपर आ गया। **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** पहली लाईन। बहुत भर दिया है। उसका अन्तरस्वभाव ऐसा है, उसका आश्रय करे तो धर्म हो; बाकी कोई देह की क्रिया या दया, दान, व्रत की क्रिया से धर्म-वर्म है नहीं - ऐसा सिद्ध करना है। आहा..हा..! समझ में आया? यह कारण की व्याख्या की।

जैसे ज्ञान में कारस्वरूप में स्वरूपप्रत्यक्ष कहा था, वैसे यहाँ कारणदर्शनोपयोग में स्वरूपश्रद्धान और स्वरूपकारणदृष्टि सिद्ध की। अब कार्य। पहले कारणदृष्टि थी और उसके सामने कार्यदृष्टि। देखो! यहाँ दृष्टि दर्शनोपयोग को भी दृष्टि कहने में आता है और क्षायिक समकित को भी दृष्टि कहने में आता है और स्वरूपश्रद्धान में से प्रगट हुई समकित दशा को भी कार्यदृष्टि कहने में आता है। परन्तु यह कार्यदृष्टि पूर्ण दर्शन की अभी व्याख्या है।

दर्शनावरणीय-ज्ञानावरणीयादि घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न होती है। कार्यदृष्टि कैसे होती है? आत्मा में केवलदर्शन और केवलज्ञान और स्वरूपदृष्टि पूरी प्रगट बाहर में, हों! वह कैसे होती है? वह **दर्शनावरणीय-ज्ञानावरणीयादि घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न होती है।** इन चार कर्म का नाश होने से यह कार्यदृष्टि प्रगट होती है। दर्शनोपयोग, कार्य-उपयोग तब प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानावरणीय शामिल ले लिया है क्योंकि वह साथ ही है न। सामने पुस्तक है। किस शब्द का अर्थ होता है, उसका जरा ख्याल आवे ऐसा है।

कार्यदृष्टि अर्थात् केवलदृष्टि। केवलज्ञान के साथ रहा हुआ प्रगट केवलदर्शनोपयोग, वह चार घातिकर्म के क्षय से उत्पन्न होता है। लो, ठीक। वरना तो कार्यदृष्टि तो दर्शन-उपयोग के आश्रय से प्रगट होती है। दर्शनावरणीय कर्म के नाश से प्रगट होती है परन्तु सब साथ में लेना है न? समझ में आया? उसमें आया था न? 'चैतन्य अनुविधायीपरिणाम, उपयोग' आत्मा वस्तु, उसमें चैतन्यगुण, उसे अनुसरकर होनेवाला उपयोग। वह चैतन्य सामान्य और विशेष गुण दोनों वाला, सहित। चैतन्यद्रव्य, उसका सामान्य-विशेषवाला चैतन्य। उसे अनुसरकर होनेवाला ज्ञान और दर्शन का उपयोग। वहाँ इतना लिया था। अकेला उपयोग, उसके आश्रय से। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि ऐसी कार्यदृष्टि, चार कर्म के नाश से (उत्पन्न होती है)। क्योंकि कार्यदृष्टि में दर्शनोपयोग के साथ यह सब होता है। पण्डितजी! बहुत सूक्ष्म।

पहले ऐसा आया था। 'चैतन्य अनुविधायीपरिणाम उपयोगः' यहाँ कार्यदृष्टि को सिद्ध करते हुए, चार घातिकर्म का नाश होकर, ज्ञानोपयोग-दर्शनोपयोग स्वरूपश्रद्धान, पूर्ण क्षायिक दृष्टि इत्यादि चार घाति के नाश से उत्पन्न होते हैं, एक साथ उत्पन्न होते हैं - ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? वरना वहाँ तो ऐसा कहा कि चैतन्य के उपयोग के

आश्रय से अनुसरकर बारह उपयोग हो, तो श्रद्धा के आश्रय से सम्यक्, चारित्र के आश्रय से चारित्र इत्यादि। परन्तु यह गुणभेद न लेकर, यहाँ तो कार्यदृष्टि प्रगट हुई। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि का क्षय होकर उसके साथ कार्यदृष्टि, कार्य केवलज्ञान इत्यादि साथ में प्रगट हुए हैं। पूर्ण वीर्य, पूर्ण आनन्द। कहो, समझ में आया? मनुभाई! ऐसा सूक्ष्म है यह। घर में पुस्तक रखकर थोड़ा पढ़ना चाहिए कभी-कभी। कभी-कभी, हों! आहा..हा..! कितनी बड़ी ऋद्धि है।

दूसरी, कार्यदृष्टि... ऐसा कहा न? पहली कारणदृष्टि कही थी। अब यह दूसरी कार्यदृष्टि। **दर्शनावरणीय-ज्ञानावरणीयादि घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न...** होती है। यह तो एक निमित्त की बात की। परन्तु कार्यदृष्टि प्रगट होती है तो पूर्ण द्रव्य का आश्रय करके केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द प्रगट होता है, इसलिए चार घातिकर्म का नाश हो जाता है। समझ में आया? **इस क्षायिक जीव को,...** देखो, इस जीव को ही पर्यायवाला क्षायिक जीव कहा। परमपारिणामिक त्रिकालस्वभाव के आश्रय से जो क्षायिक ज्ञान प्रगट हुआ, उसे यहाँ क्षायिक जीव कहा। समझ में आया? **इस क्षायिक जीव को, जिसने सकलविमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान द्वारा तीन भुवन को जाना है;...** आहा.हा..! अन्त में कहेंगे कि क्षायिक जीव को **केवलज्ञान की भाँति, यह (कार्यदृष्टि) भी युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** धीरे-धीरे से तो यह चलता है, भाई!

आत्मा परमस्वभावभाव से भरपूर त्रिकाली तत्त्व है। उसका आश्रय करने से कार्यदृष्टि अथवा दर्शनोपयोग पूर्ण प्रगट होता है। कहते हैं कि उस जीव को कार्यदृष्टि जो प्रगट हुई अथवा कार्य-उपयोग प्रगट हुआ, वह क्षायिक भाव है; इसलिए **क्षायिक जीव को,...** ऐसा (कहा), वह क्षायिक दशा प्रगट हुई, ऐसे जीव को **(कार्यदृष्टि) भी युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** तीर्थंकर का आधार देंगे। आहा..हा..! **सकलविमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान द्वारा तीन भुवन को जाना है;...** तीन भुवन शब्द अर्थात् लोक के तीन भाग जाने, ऐसा नहीं, सब जाना है। **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले परमवीतराग सुखामृत का जो समुद्र है;...** कहते हैं कि क्षायिक जीव को क्या-क्या है और इससे उसे कार्यदृष्टि का क्या कार्य है। यह बात करते हैं। **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले परमवीतराग सुखामृत का जो समुद्र है;...** आहा..हा..! पहले ज्ञान लिया, (अब) आनन्द

लिया। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसमें से प्रगट होता, ऐसा। त्रिकाल आनन्द में से, **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले...** वह आत्मा भी पूरा लिया। अनन्त गुण का, अन्तरस्वभाव का एक सागर, ऐसे आत्मा से उत्पन्न होनेवाला। वह पर्याय है। वह केवलज्ञान और आनन्द, वह पर्याय की बात है।

परमवीतराग सुखामृत... ओहो..! दुनिया के राग के सुख जहर जैसे (लगते हैं)। वह छूटकर जिसे परम वीतराग सुखामृत का समुद्र उछला है। आहा..हा..! यहाँ जरा पाँच-पचास लाख या दो करोड़-पाँच करोड़ हो जाये तो ऐसा कहे। आहा..! अपने तो झरना इतनी पैसे का आता है। जैसे गड्ढे में से पानी आया करता है। गड्ढे का पानी दिखे दो छालिया क्या कहलाता है? छालिया। गड्ढे में दो छालिया पानी दिखता है। गड्ढा समझते हो? हमारे तो सब वहाँ उमराला में होता है न, इसलिए देखा है। प्यास लगे, वहाँ जायें। महिलाएँ पानी भरती हो तो लाओ पीने का। स्वच्छ पानी मिले न ताजा। गड्ढा में दो छालिया होते हैं परन्तु निकाले तो हजारों छालिया निकला ही करें। उसमें से झरना आया ही करे। ऐसे यह पैसे की आमदनी हो, उसमें झरना आया ही करे। वह धूल का, हों! यहाँ आत्मा में से झरना आया ही करे, ऐसा कहते हैं। वह ऐसा समुद्र है। सुखामृत का सागर। आहा..हा..!

उसे **यह (कार्यदृष्टि) भी युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** ऐसा सिद्ध करना है न? **जो यथाख्यात नामक कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप है;...** कार्यजीव कैसे हैं? यहाँ क्षायिक जीव कहा। कार्य जीव उसमें लिया। जीव को कारणजीव और कार्यजीव (कहा है) यहाँ कार्यजीव को क्षायिक जीव कहा है। समझ में आया? इसमें कितना याद रहे? वह तो छह काय की दया पालना, छह काय के पीयर... लिखते हैं न, उस पत्र में? छह काय के ग्वाल, छह काय के पीयर, छह काय के रक्षक। कोई रक्षक नहीं। किसे पाले? आत्मा कहीं पर को पाल सकता होगा? व्यवहार के कथन ऐसे अच्छे लगें। छह काय के ग्वाल, छह काय के ग्वाल। जैसे गायों को उसका ग्वाल रखे न, छह काय के जीव को रखे। रख सकते हैं? फिर दया पालना या नहीं, नहीं रख सके तो? विकल्प आवे कि इस जीव को मैं नहीं मारूँ, परन्तु इससे इस विकल्प के कारण वह बच जाये या उसकी दया पल जाये, ऐसा है नहीं और विकल्प आया, वह भी दया नहीं। अपने आत्मा की वहाँ उतनी हिंसा हुई।

यहाँ तो **यथाख्यात नामक कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप है;...** आहा..हा.. ! देखो ! प्रगट की बात है, हों ! **यथाख्यात नामक कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप है;...** वह क्षायिक जीव। उसे ऐसी कार्यदृष्टि होती है। समझ में आया ? ऐसी महिमा भी किसी दिन सुनी नहीं होगी, लो। ऐसा आत्मा है और उसकी ऐसी परहावणी अन्दर भरी है। आत्मा है बस एक, लो ! परन्तु क्या आत्मा है। आहा..हा.. !

जो सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूत -व्यवहारनयात्मक है,... कहते हैं, लो। नयस्वरूप है। देखो ! **जो सादि...** केवलदर्शन आदि सादि हुआ न ? नया (हुआ न) ? वह अनन्त काल रहनेवाला है। वह अमूर्त है। क्षायिक जीव अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। **शुद्धसद्भूत-व्यवहारनयात्मक है,...** शुद्धसद्भूत-व्यवहारस्वरूप ही है, कहते है लो। भारी टीका, भाई ! वह **शुद्धसद्भूत-व्यवहारनयात्मक है,...** नीचे (अंक फुटनोट में) दो (अंक) है न ? **तीर्थंकरपरमदेव शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप हैं,...** कार्य है न वह। वह तो व्यवहारनयस्वरूप है। आहा..हा.. ! पर्याय है, वह व्यवहार है। उसकी है; इसलिए सद्भूत है; अंश है, इसलिए व्यवहार है। शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप भगवान है। तीर्थंकर केवलज्ञानी, केवलदर्शन, वह शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप है। लो। **कि जो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय सादि-अनन्त,...** जब से दशा प्रगट हुई, तब से सादि। **अमूर्तिक और अतीन्द्रियस्वभाववाला है।** वह नय ऐसा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें ?

और जो त्रिलोक के भव्यजनों को प्रत्यक्ष वन्दनायोग्य है... सिद्ध भगवान तो परोक्ष हो गये। वे प्रत्यक्ष वन्दनयोग्य नहीं है। ये तो तीर्थंकर समवसमरण में विराजते हैं, कार्यदृष्टिवाले, तीन लोक के भव्यजनों को। देखो, यहाँ तो सबको पूजनीय कहते हैं। कितने ही विरोध करनेवाले होते हैं न ? यह उनकी गिनती यहाँ नहीं है। **त्रिलोक के भव्यजनों को प्रत्यक्ष वन्दनायोग्य है—ऐसे तीर्थंकरपरमदेव को केवलज्ञान की भाँति, यह (कार्यदृष्टि) भी युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** अर्थात् साथ में लोकालोक को देखनेवाली है। एक समय में लोकालोक को देखे, ऐसी उन्हें कार्यदृष्टि प्रगट होती है। वह त्रिकाली ज्ञायकभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव, पारिणामिकभाव का आश्रय करने से धर्म की शुरुआत से पूर्णता उसके आश्रय से प्रगट होती है, यह यहाँ सिद्ध करना है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-२१, गाथा-१३,१४, श्लोक-२३,२५, सोमवार, फाल्गुन कृष्ण १०, दिनांक २२-०३-१९७१

१३वीं गाथा में ३४वें पृष्ठ पर है न, हिन्दी। है ? ३४, दोनों में समान। ३४वें पृष्ठ पर। पहली लाईन।

इस प्रकार कार्यरूप और कारणरूप से स्वभावदर्शनोपयोग कहा। आया सेठी ? क्या कहा ? यह आत्मा जो वस्तु है, उसमें दर्शनोपयोग अन्दर में त्रिकाल है। उसे यहाँ कारणरूप से कहा है। कारणरूप दर्शनोपयोग। आत्मा वस्तु है वस्तु, उसमें त्रिकाल दर्शनोपयोग है, उसे कारणदर्शनोपयोग कहा और उसमें से केवलदर्शनोपयोग प्रगट हुआ, वह कार्यदर्शनोपयोग हुआ। समझ में आया ? सेठी ! क्या ? दो बातें हुई।

जिसे केवलज्ञानरूपी अथवा केवलदर्शन कार्योपयोग प्रगट करना हो, तो उसे कारण-उपयोग जो त्रिकाली आत्मा में है, उसका आश्रय करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अपना स्वरूप चैतन्य में त्रिकाल दर्शनोपयोग ध्रुवरूप पड़ा है, उसे कारणस्वभाव-उपयोग कहा गया है और उसमें से केवलदर्शनोपयोग प्रगट हुआ, उसे कार्यस्वभाव-उपयोग कहा गया है। उसका अर्थ कि केवलदर्शनोपयोग का कारण त्रिकाल दर्शनोपयोग है। उससे वह प्रगट होता है। समझ में आया ? पहली बात कल बहुत चल गयी है। नोंध थी न ? कारणदृष्टि का बहुत कहा था।

त्रिकाल आत्मा, जैसे अविनाशी त्रिकाल वस्तु आत्मा है, वैसे उसमें दर्शनोपयोग अथवा दृष्टि अथवा स्वरूप श्रद्धान, वह अन्दर में त्रिकाल पड़ा हुआ है। उसे यहाँ कारणदृष्टि कहते हैं, कारणदर्शनोपयोग कहते हैं और स्वरूपश्रद्धानमात्र श्रद्धान की अपेक्षा से कहते हैं। गजब भाई ! और उससे प्रगट हो, वह कार्यदृष्टि, कार्यदर्शनोपयोग इत्यादि कहा जाता है।

विभावदर्शनोपयोग अगले सूत्र में (१४वीं गाथा में) होने से, वहीं दर्शाया जायेगा। यह तो स्वभावदर्शनोपयोग की व्याख्या हुई। विभावदर्शनोपयोग की व्याख्या १४वीं गाथा में आयेगी।

अब, १३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं—जंगल में बसनेवाले दिगम्बर मुनि सन्त थे।

आत्मध्यानी, ज्ञानी, अमृत के-अमृत के प्रवाह में अनुभव करते थे। ऐसे मुनि श्लोक कहते हैं, देखो, २३। ऊपर २३वाँ श्लोक है।

श्लोक-२३

(इन्द्रवज्रा)

दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकमेकमेव चैतन्यसामान्यनिजात्मतत्त्वम्।
मुक्ति-स्पृहाणा-मयनं तदुच्चैरेतेन मार्गेण विना न मोक्षः।।२३।।

(वीरछन्द)

दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो एक निजातम चित् सामान्य।
वह प्रसिद्ध शिवपथ मुमुक्षु को, इसके बिना न मोक्ष सुजान॥२३॥

***श्लोकार्थ :*— दृशि-ज्ञप्ति-वृत्तिस्वरूप (दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित), ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व, वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है; इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है॥२३॥**

श्लोक-२३ पर प्रवचन

दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकमेकमेव चैतन्यसामान्यनिजात्मतत्त्वम्।
मुक्ति-स्पृहाणा-मयनं तदुच्चैरेतेन मार्गेण विना न मोक्षः।।२३।।

आहा..हा..! नीचे उसका अर्थ है।

श्लोकार्थः —दृशि... दृशि अर्थात् दर्शन / सम्यग्दर्शन। अपना शुद्धध्रुव चैतन्य की प्रतीति अनुभव में होना, ऐसा सम्यग्दर्शन। त्रिकाल ध्रुवज्ञायक कारण प्रभु, अपना निज त्रिकाल स्वभाव, उसकी प्रतीति करना, अनुभव करके यह आत्मा शुद्ध आनन्द है, ऐसा अनुभव करके प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, मोक्ष का मार्ग है। कहो, पण्डितजी! गजब बात।

ज्ञप्ति.... दूसरा बोल है न ? ज्ञप्ति। अपना निज शुद्ध ध्रुवस्वरूप, परमात्मा निजस्वभाव का ज्ञान करना। स्वरूप भगवान आत्मा त्रिकाली आनन्द आदि ज्ञायकभाव का धारक, ऐसे ध्रुवस्वभाव का ज्ञान करना, वह ज्ञान है। वह मोक्ष का मार्ग है। भारी सूक्ष्म! और तीसरा...

वृत्तिस्वरूप... चारित्रस्वरूप। भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु में लीन होना, अतीन्द्रिय आनन्द ध्रुव में लीन होना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द का विशेष उपभोग करना, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया ? देह की क्रिया चारित्र नहीं; नग्नपना, वह भी चारित्र नहीं; पंच महाव्रत का विकल्प / राग उठे, वह भी चारित्र नहीं। समझ में आया ? भगवान आत्मा नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है, उसके श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक शुद्धस्वरूप में लीन (होना) रमना, जमना, चरना, आनन्द के अनुभव में चरना, उसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं।

इन **(दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित),...** ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणमित अवस्था में उसकी दशा होना। **ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व,...** आहा..हा..! ऐसा जो एक चैतन्यस्वभाव सामान्यस्वरूप-भेद पड़े बिना। मात्र चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... सदृश स्वभावरूप ऐसा आत्मतत्त्व। गजब भाई! सन्तों की वाणी देखो! भगवान आत्मा यह शरीर, वाणी तो नहीं, कर्म नहीं, पुण्य-पाप नहीं, एक समय की विकास की दशा है, वह भी नहीं और गुणभेद भी नहीं। एकरूप त्रिकाल। **एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व,...** सामान्य चैतन्यस्वभाव ध्रुव, एकरूप ऐसा सामान्य चैतन्यस्वभाव। सामान्य अर्थात् भेद पड़े बिना एकरूप चैतन्यसामान्य तत्त्व, ऐसा जो आत्मतत्त्व, वह **निज आत्मतत्त्व,...** भगवान का तत्त्व भी नहीं। आहा..हा..! तीर्थंकर परमेश्वर जो हुए, धर्म की शरण में वह चीज़ भी नहीं। आहा..हा..! उसमें तो निज आत्मा का शरण है। आहा..हा..! पण्डितजी! मार्ग गजब, भाई!

एक ही चैतन्यसामान्यरूप... ध्रुव, नित्यानन्द चैतन्यस्वभावस्वरूप, ऐसा जो आत्मतत्त्व, भाव, स्वभाववान वह निजात्म तत्त्व। वह अपना आत्मस्वभाव, आत्मतत्त्व, उसका आश्रय करने से **मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का)...** इच्छुक - इच्छा करनेवाले को मोक्ष का मार्ग वहाँ से शुरु होता है। आहा..हा..! **निज आत्मतत्त्व, वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** देखो! क्या कहते हैं ? बहुत मार्मिक बात है। अनन्त काल में इसने निज आत्मतत्त्व की शरण ली ही नहीं। वैसे तो मांगलिक में कहते हैं न! अरिहन्ता

शरणम्, सिद्धा शरणम्, साहू शरणम्, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणम् - मांगलिक में ऐसा आता है या नहीं? वह तो व्यवहार की बात है, भगवान! निश्चय से तो अपना ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान, वह निज शरण है। समझ में आया? आहा..हा..!

निज आत्मतत्त्व,... अपना निज स्वरूप। त्रिकाल अस्ति सत्तामात्र शुद्धस्वभाव का भण्डार भगवान, ऐसा आत्मतत्त्व। **वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** यह आत्मतत्त्व, वही मोक्ष का प्रसिद्ध मार्ग है अर्थात् उसके आश्रय से ही उत्पन्न होता है, वह मोक्षमार्ग। भारी सूक्ष्म बात, भाई! क्या कहा, समझ में आया? अन्दर आत्मा जो वस्तु है वस्तु, अनादि-अनन्त—आदि और अन्तरहित—और उसका स्वभाव, ज्ञान आदि। सामान्य चैतन्य, सामान्य अर्थात् एकरूपस्वरूप। ऐसे सामान्य स्वभावरूप जो आत्मतत्त्व है, वह मोक्ष की इच्छावाले जीव को उसी आत्मतत्त्व का शरण हुआ, वही मोक्षमार्ग है। लो, यहाँ दो मोक्षमार्ग है, इससे इनकार करते हैं। निश्चय भी मोक्षमार्ग है और व्यवहार भी मोक्षमार्ग है, इससे आचार्य इनकार करते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त जंगलवासी थे। मुनि तो पहले जंगल में ही रहते थे। समझ में आया? महा आनन्दस्वरूप में मस्त, बाहर में नग्नदशा, वस्त्र का एक टुकड़ा भी नहीं, ऐसी सन्तों की दशा थी। वे जंगल में रहते थे। वीतरागमार्ग में, हों! दूसरे मार्ग में नग्न रहे, वह मार्ग नहीं। समझ में आया? आहा..हा..!

भगवान आत्मा अन्तर में सामान्य अर्थात् एकरूप। आनन्द-ज्ञान चैतन्य सामान्य आदि सदृश शक्तियाँ पड़ी हैं। ऐसी सदृश शक्ति का तत्त्व जो भगवान आत्मा वही एक मोक्षमार्ग है अर्थात् उसका आश्रय करने से मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है। गजब बात है। है? श्लोक है देखो! अन्दर श्लोक है। पुस्तक रखी है या नहीं?

निज आत्मतत्त्व,... कैसा निज आतमत्त्व? कि एक चैतन्यसामान्यरूप, सदृश स्वभाव का पिण्ड भगवान आत्मा, **वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** अनादि से प्रसिद्ध है, ऐसा कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में वह तो प्रसिद्ध है। समझ में आया? आत्मतत्त्व भगवान, नित्यानन्द प्रभु, ध्रुवस्वभावी, एक स्वभावी, सामान्य स्वभावी सदृश ज्ञान-आनन्द आदि अनन्त स्वभावी वस्तु, वह आत्मतत्त्व ही मोक्षमार्ग है। अर्थात् उस आत्मतत्त्व के आश्रय से उत्पन्न हुआ, वही मोक्षमार्ग है। पर के आश्रय से, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि विकल्प है, वह मोक्षमार्ग नहीं - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

कहो, पण्डितजी! इसमें ऐसा अर्थ है? ये जयपुर में संस्कृत के प्रोफेसर हैं। ये हमारे जयपुर के वृद्ध हैं। समझ में आया? जयपुर जाना है न? पन्द्रह दिन तो कहे हैं।

मुमुक्षु : इक्कीस दिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने?

मुमुक्षु : इक्कीस।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मैंने कहा ही नहीं। तुमने अपने आप कहा है। यह तो पन्द्रह दिन कहा है। कदाचित् शरीर अनुकूल हो तो बीस दिन, बस। इक्कीस दिन नहीं और यह कहाँ से निकाला? तुम लोभी हो गये। समझ में आया?

कहते हैं, आहा..हा..! प्रभु! तेरे पास तो भण्डार भरा है। तेरे स्वभाव में तो महाभण्डार-खजाना है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, सामान्य अनन्त स्वभाव पड़ा है। ऐसे आत्मतत्त्व भगवान (में) अन्तर्मुख दृष्टि करके, विकल्प और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर, भगवान आत्मा निज आत्मतत्त्व का जो अवलम्बन लेता है, वही मोक्ष का मार्ग प्रसिद्ध है। वीतराग जिनवर तीर्थंकरदेव के मार्ग में यह मार्ग अनादि से प्रसिद्ध है। समझ में आया?

इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है। लो, अस्ति-नास्ति की है, यह अनेकान्त किया। कितना स्पष्ट किया है! अपना भगवान अनन्त-अनन्त सामान्य शक्तिस्वभावस्वरूप भगवान आत्मतत्त्व के आश्रय से, उसके अवलम्बन से, उसके सन्मुख से जो दृष्टि-ज्ञान और लीनता होती है, वह एक ही मोक्षमार्ग जैनदर्शन में प्रसिद्ध है। **इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है।** व्यवहार बीच में उत्पन्न होता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक व्यवहार बीच में आता है परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है।

मुमुक्षु: मार्ग पर्याय में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग का अर्थ ज्ञान, उपचार, कथन।

इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है। तीन काल तीन लोक में (मोक्ष नहीं है)। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! भारी सूक्ष्म, हों! सत्य बात है। **(मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** वैसे तो शब्द कहा है। आहा..हा..! बापू! अनन्त काल से प्रभु! ऐसा प्रसिद्ध मार्ग इन्द्रों, गणधरों के बीच भगवान फरमाते थे। आहा..हा..! समझ में आया? अर्धलोक के दक्षिण

के स्वामी शकेन्द्र, उत्तर के अर्धलोक के स्वामी ईशान इन्द्र, ऐसे सौ-सौ इन्द्रों के बीच, गणधरों-सन्तों के प्रमुख ऐसे सन्त गणधर के बीच भगवान ऐसा कहते थे। समझ में आया? यह बात कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं, वही बात पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं (कि) हम तो कुछ कहते नहीं। यह तो परम्परा गणधरों से चली आयी है, वह बात हम कहते हैं। समझ में आया? गजब मार्ग, भाई!

इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है। है अन्दर? देखो! **'रेतेन मार्गेण विना न मोक्षः'** संस्कृत में है। व्यवहार से मोक्षमार्ग नहीं है। आहा..हा..! निमित्त के अवलम्बन से विकल्प उत्पन्न होता है, उससे मोक्षमार्ग नहीं। अपने निज स्वभाव के अवलम्बन से निर्विकल्प वीतरागी पर्याय उत्पन्न हो, वह मोक्षमार्ग एक ही है। आहा..हा..! समझ में आया? यह १३ गाथा। मूल तो उसमें कारण कहना था न! उस कारण को यहाँ चैतन्य सामान्य कहा। कारणदृष्टि, कारणदर्शनोपयोग। यह तेरहवीं गाथा में है न?

मुमुक्षु : त्रिकाली द्रव्य को ही मोक्षमार्ग कह दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग ही वह है। उसका आश्रय करने का अर्थ कि वह ही मोक्षमार्ग है। आहा..हा..! जगत को सत्य बात सुनना कठिन पड़ गयी है, दुर्लभ हो गयी है और समझना तथा अन्तर में रुचि करना, परिणमन (होना), वह तो अलौकिक बात हो गयी।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं, भगवान! देखो! आत्मा को भगवानरूप से ही सम्बोधन करते हैं। तेरा सामान्य त्रिकाली स्वभाव, पर्याय-विशेष अवस्थारहित, वर्तमान अवस्था जो दशा विशेष है, उससे रहित। त्रिकाल ज्ञायक ध्रुवस्वभावभाव चैतन्य सामान्य दर्शनोपयोग इत्यादि-इत्यादि ऐसे सामान्य स्वभावरूप आत्मतत्त्व, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। तीन बातें ली हैं। त्रिकाल सामान्य स्वभाव, वह शक्ति; ऐसा आत्मतत्त्व शक्तिवान और उसके आश्रय से मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह पर्याय है। द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों आ गये। यह और क्या कहा?

फिर से, देखो! **एक ही चैतन्यसामान्यरूप...** एक ही निज आत्मतत्त्व, ऐसा। कैसा है? कि चैतन्यसामान्यरूप। यह तो अध्यात्म की बात है, गम्भीर बात है। भगवान आत्मा वह तो वस्तु / द्रव्य / तत्त्व हुआ, परन्तु उसका सामान्य दर्शनोपयोग, त्रिकाली कारण उपयोग, त्रिकाली स्वभाव सामान्य उपयोग, वह गुण हुआ और उस गुण का धारक तत्त्व,

वही मोक्षमार्ग। इसका अर्थ यह कि उस तत्त्व में अन्तर्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय उत्पन्न हो, वह मोक्षमार्ग है, तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ गये। सेठी! समझ में आया? द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? भगवान जाने। हो गया। अपने तो करो न धर्म! परन्तु कहाँ से? धूल में धर्म होगा? चीज़ क्या है, यह समझे बिना धर्म कहाँ से उत्पन्न होता है और उत्पन्न होनेवाले की शक्ति कितनी सामर्थ्यशाली है, इसकी खबर बिना धर्म कहाँ से होगा? भगवान आत्मा... आहा..हा..! गजब परन्तु... ऐसी तो टीका करते हैं और कहते हैं कि हमें मान्य नहीं है। इसे उड़ाते हैं। दर्शनोपयोग की बात थी न इसमें? भाई! कारणदर्शनोपयोग। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसमें से स्वरूपश्रद्धा निकली, उसमें से मोक्षमार्ग निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब। कारणदर्शनोपयोग त्रिकाली, कारण त्रिकाली श्रद्धा, स्वरूपश्रद्धा त्रिकाली, वह सब सामान्य। वह चैतन्य सामान्य, एकरूप सामान्य ऐसा जो आत्मतत्त्व, वह आत्मतत्त्व ही मोक्षमार्ग। अर्थात्? उस मोक्षमार्ग की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का आधार आत्मा है; पर है नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग जो कहा गया है, वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहा है। वस्तु वह नहीं है। वस्तु यह एक ही मोक्षमार्ग है।

वह (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;... ऐसा कहा न? '**मुक्तिस्पृहाणामयनं तदुच्चै-**' मोक्ष का मार्ग। '**णामयनं**' अर्थात् मार्ग कहा। '**तदुच्चै-**' अर्थात् प्रसिद्ध है। जैनमार्ग में, वीतरागमार्ग में अनादि से केवली होते आये हैं। संसार-जगत अनादि है। केवली भी अनादि से साथ ही है। इस जगत में कभी भी केवली नहीं थे, ऐसा कभी नहीं बनता। अनादि से केवली हैं, अनादि से सिद्ध हैं, अनादि से मोक्षमार्ग है, अनादि से मिथ्यामार्ग भी है। समझ में आया? अनादि से केवली भगवान ऐसा कहते आये हैं। प्रसिद्ध मार्ग है, ऐसा कहते हैं। ओहो..हो..! अन्दर भगवान अन्तरस्वभाव का माल लेकर पड़ा है। ऐसे सामान्य स्वभावरूप आत्मतत्त्व, वही मोक्षमार्ग। अर्थात्? उस तत्त्व की अन्तर्मुख होकर शक्ति में से जो व्यक्तता सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वीतरागी निर्दोष आनन्दरूपी दशा प्रगट हुई, वही एक मोक्षमार्ग है, अन्य कोई मोक्षमार्ग नहीं। कहो, समझ में आया? यह १३वीं गाथा हुई। १४वीं (गाथा)।

गाथा-१४

चक्खु अचक्खू ओही तिण्णि वि भणिदं विहावदिट्ठि त्ति।
पज्जाओ दु-वियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो।।१४।।

चक्षुरचक्षुरवधयस्तिस्रोऽपि भणिता विभावदृष्टय इति।
पर्यायो द्वि-विकल्पः स्वपरापेक्षश्च निरपेक्षः।।१४।।

अशुद्धदृष्टिशुद्धाशुद्धपर्यायसूचनेयम्। मतिज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमेन यथा मूर्तं वस्तु जानाति तथा चक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मक्षयोपशमेन मूर्तं वस्तु पश्यति च। यथा श्रुतज्ञानावरणीय-कर्मक्षयोपशमेन श्रुतद्वारेण द्रव्यश्रुतनिगदितमूर्तामूर्तसमस्तं वस्तुजातं परोक्षवृत्त्या जानाति तथैवाचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मक्षयोपशमेन स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रद्वारेण तत्तद्योग्यविषयान् पश्यति च। यथा अवधिज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमेन शुद्धपुद्गलपर्यन्तं मूर्तद्रव्यं जानाति तथा अवधिदर्शनावरणीयकर्मक्षयोपशमेन समस्तमूर्तपदार्थं पश्यति च।

अत्रोपयोगव्याख्यानानन्तरं पर्यायस्वरूपमुच्यते। परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः। अत्र स्वभावपर्यायः षड्द्रव्यसाधारणः अर्थपर्यायः अवाङ्मनसगोचरः अतिसूक्ष्मः आगमप्रामाण्यादभ्युपगम्योऽपि च षट्स्थानिवृद्धिविकल्पयुतः। अनन्तभागवृद्धिः असङ्ख्यात-भागवृद्धिः सङ्ख्यातभागवृद्धिः सङ्ख्यातगुणवृद्धिः असङ्ख्यातगुणवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिः, तथा हानिश्च नीयते। अशुद्धपर्यायो नरनारकादिव्यञ्जनपर्याय इति।

चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन, ये विभाविक दर्श हैं।
निरपेक्ष, स्वपरापेक्ष - ये पर्याय द्विविध विकल्प हैं॥१४॥

अन्वयार्थ :—[चक्षुरचक्षुरवधयः] चक्षु, अचक्षु और अवधि [तिस्रः अपि] यह तीनों [विभावदृष्टयः] विभावदर्शन [इति भणिताः] कहे गये हैं। [पर्य्यायः द्विविकल्पः] पर्याय द्विविध है— [स्वपरापेक्षः] स्वपरापेक्ष (स्व और पर की अपेक्षा युक्त) [च] और [निरपेक्षः] निरपेक्ष।

टीका :— यह अशुद्धदर्शन की तथा शुद्ध और अशुद्धपर्याय की सूचना है।

जिस प्रकार मतिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को जानता है; उसी प्रकार चक्षुदर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को देखता* है। जिस प्रकार श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत से कहे हुए मूर्त-अमूर्त समस्त वस्तुसमूह को परोक्षरीति से जानता है; उसी प्रकार अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से (जीव), स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र द्वारा, उस-उसके योग्य विषयों को देखता है। जिस प्रकार अवधिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), शुद्धपुद्गलपर्यन्त (परमाणु तक के) मूर्तद्रव्य को जानता है; उसी प्रकार अवधिदर्शनावरणीय -कर्म के क्षयोपशम से (जीव), समस्त मूर्तपदार्थों को देखता है।

(उपरोक्तानुसार) उपयोग का व्याख्यान करने के पश्चात्, यहाँ पर्याय का स्वरूप कहा जाता है —

परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः, अर्थात् जो सर्व ओर से भेद को प्राप्त करे, सो पर्याय है।

उसमें, स्वभावपर्याय, छह द्रव्यों को साधारण है, अर्थपर्याय है, वाणी और मन को अगोचर है, अति सूक्ष्म है, आगमप्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य तथा छह हानि-वृद्धि के भेदोंसहित है, अर्थात् अनन्त भागवृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि सहित होती है और इसी प्रकार (वृद्धि की भाँति) हानि भी लगायी जाती है।

अशुद्धपर्याय, नर-नारकादि व्यंजनपर्याय हैं।

गाथा-१४ पर प्रवचन

चक्खु अचक्खू ओही तिण्णि वि भणिदं विहावदिट्ठि त्ति।
पज्जाओ दु-वियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो।।१४।।

* *देखना=सामान्यरूप से अवलोकन करना; सामान्य प्रतिभास होना।*

नीचे हरिगीत

चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन, ये विभाविक दर्श हैं।
निरपेक्ष, स्वपरापेक्ष - ये पर्याय द्विविध विकल्प हैं॥१४॥

उस तेरहवीं गाथा में कारणदर्शनोपयोग और कार्यदर्शनोपयोग की व्याख्या हो गयी। कारणस्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग। शान्तिभाई! १३वीं गाथा में। भगवान आत्मा में त्रिकाली दर्शनोपयोग शक्ति है, उस कारणदर्शनोपयोग की व्याख्या हुई, जो त्रिकाल है; और उसमें से व्यक्त कार्य केवलदर्शन प्रगट होता है, वह कार्यस्वभावदर्शनोपयोग स्वभावदर्शनोपयोग कहा गया है। अब, विभावदर्शनोपयोग की व्याख्या करते हैं।

यह अशुद्धदर्शन की... अशुद्ध दर्शन, देखो! विभाव कहो या अशुद्ध (कहो) **तथा शुद्ध और अशुद्धपर्याय की...** भाषा ऐसी ली है। अशुद्धदर्शन कहो या विभावदर्शन। विभावदर्शन कहा था न? उसे यहाँ अशुद्धदर्शन की व्याख्या कहा है और **शुद्ध और अशुद्धपर्याय की सूचना है।** अवस्था। शुद्धदशा और अशुद्धदशा। दशा अर्थात् पर्याय।

जिस प्रकार मतिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को जानता है;... अपने पुरुषार्थ के कारण मतिज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम हुआ, तो अपनी ज्ञान की पर्याय में विकास-क्षयोपशमरूप ज्ञान की दशा उत्पन्न हुई। उस दशा से मूर्त वस्तु को आत्मा जानता है। मतिज्ञान का न्याय दिया।

उसी प्रकार चक्षुदर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम से... चक्षु तो निमित्त है। उससे कुछ जानता या देखता नहीं है, परन्तु जानने के पहले देखने का उपयोग अन्दर में होता है, उस **चक्षुदर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को देखता है।** देखने का अर्थ कि ***सामान्यरूप से अवलोकन करना;...*** नीचे नोट है। ***सामान्य प्रतिभास होना।*** यह सूक्ष्म बात है। जानने का व्यवहार होने से पहले एक अन्तर्मुख अन्तर का व्यापार होना, उसका नाम सामान्यदर्शनोपयोग कहते हैं, देखना कहते हैं। गजब, भाई! जैसे मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से-विकास से मूर्त वस्तु को जानता है, वैसे **चक्षुदर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को देखता है।** ऐसा कहते हैं। जानता है, उसके पहले देखता है। यह तो पहली छद्मस्थ की बात है न!

जिस प्रकार श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत

से कहे हुए... कैसा आया देखा ? उसमें इतना नहीं कहा। मात्र क्षयोपशम से मूर्त वस्तु को जानता है। इसमें आत्मा में स्वभाव के आश्रय से जो भावश्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, उस **श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत से कहे हुए...** शास्त्र के शब्दों में, द्रव्यश्रुत में भगवान ने जो कहा है, **मूर्त-अमूर्त समस्त वस्तुसमूह को परोक्षरीति से जानता है;...** श्रुतज्ञान से जानता है - ऐसा कहते हैं। यहाँ पर को जानने की बात है। स्व को जानने की बात नहीं है। **श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत से कहे हुए मूर्त-अमूर्त समस्त वस्तुसमूह को परोक्षरीति से जानता है;...** देखो! श्रुतज्ञान में-अपनी पर्याय में, भगवान ने द्रव्यश्रुत में समस्त वस्तु कही, उसे परोक्षरीति से जानता है। परोक्ष कहा। द्रव्यश्रुत द्वारा कहे हुए समस्त वस्तु को-मूर्त-अमूर्त को भावश्रुतज्ञान अपनी पर्याय में जानता है। उसे भावश्रुत कहा जाता है।

उसी प्रकार अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से (जीव), स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र द्वारा, उस-उसके योग्य विषयों को देखता है। देखने का अर्थ (यह है कि) सामान्यरूप से अवलोकन करना। **जिस प्रकार अवधिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), शुद्धपुद्गलपर्यन्त (परमाणु तक के) मूर्तद्रव्य को जानता है; उसी प्रकार अवधिदर्शनावरणीय -कर्म के क्षयोपशम से (जीव), समस्त मूर्तपदार्थों को देखता है।** लो! जानना-देखना दोनों साथ लेना है।

(उपरोक्तानुसार) उपयोग का व्याख्यान करने के पश्चात्, यहाँ पर्याय का स्वरूप कहा जाता है- व्याख्या बहुत लम्बी। पहले तो यह कहा कि आत्मा का ज्ञानोपयोग दो प्रकार का है। एक त्रिकाल ज्ञानोपयोग और (एक) वर्तमान कार्य ज्ञानस्वभाव-उपयोग। ज्ञानोपयोग के दो प्रकार : एक कारणस्वभाव-उपयोग... समझ में आया ? और एक ज्ञानोपयोग के स्वभाव की बात हुई। विभाव में चार ज्ञान। चार ज्ञान विभाव है न! परन्तु होते हैं चैतन्य-अनुविधाय से, स्वयं से। देखो! यहाँ डाला है कि कर्म के क्षयोपशम में, हों! परन्तु पहले स्पष्टीकरण दे दिया है। समझ में आया ? इसी प्रकार दर्शनोपयोग के दो भेद— कारणदर्शनोपयोग त्रिकाली और कार्यदर्शनोपयोग; और विभावदर्शनोपयोग के तीन प्रकार। उस विभावज्ञान के चार प्रकार थे - मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय। दर्शन में तीन है - चक्षु, अचक्षु और अवधि। उनकी व्याख्या हुई। अब पर्याय की व्याख्या करते हैं। उपयोग की व्याख्या हुई। है तो उपयोग—कार्य-उपयोग वह भी पर्याय, परन्तु यहाँ भिन्न पर्याय की बात अब करनी है। क्या कहा ? नहीं तो आत्मा वस्तु त्रिकाली है; ज्ञान-दर्शन कारणज्ञान

(कारणदर्शन)वे तो ध्रुव हैं, परन्तु स्वभावकार्यज्ञान, स्वभावकार्यदर्शन, विभाव चार ज्ञान और विभाव तीन दर्शन है तो पर्याय, परन्तु यहाँ तो दूसरी प्रकार की पर्याय अब कहनी है। वजुभाई! यह कार्यपर्याय, पर्याय नहीं?

मुमुक्षु : अशुद्धदर्शन स्वयं ही पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है, परन्तु यह दूसरी प्रकार की पर्याय वर्णन करनी है। पर्याय का भेद अब कहा जाएगा। आहा..हा..!

यहाँ पर्याय का स्वरूप कहा जाता है—परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः, अर्थात् जो सर्व ओर से भेद को प्राप्त करे, सो पर्याय है। वस्तु, आत्मा और उसकी शक्तियाँ, उनमें पर्याय अंशरूप से भेद पड़े, उसे पर्याय कहा जाता है। समझ में आया? वस्तु आत्मा; उसके ज्ञान-दर्शन आदि त्रिकाली गुण; उनकी एक समय की अवस्था भेदरूप पर्याय। गुण और द्रव्य त्रिकाली, वे तो अभेद हुए। उनकी एक समय की पर्याय अवस्था भेदरूप, उसे पर्याय कहा जाता है।

उसमें, स्वभावपर्याय, छह द्रव्यों को साधारण है,... स्वभावपर्याय। छह द्रव्य हैं न? भगवान ने देखे हैं। भगवान ने केवलज्ञान में जाति से छह द्रव्य देखे हैं। संख्या (अपेक्षा) अनन्त। अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, कालाणु असंख्य, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश (एक-एक)—ऐसे छह द्रव्य केवली भगवान ने देखे हैं। तीर्थंकर भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। सम्प्रदाय में बात कैसी घट गयी। क्रियाकाण्ड में घुस गये। तत्त्व की दृष्टि दूर पड़ी रही। तत्त्व की समझ करना क्या चीज़ है? (यह रहा नहीं)। सेठी! लो! इसमें क्या समझ में आया? मामूली-सा लगता है। क्या कहते हैं यह?

स्वभावपर्याय, छह द्रव्यों को साधारण है,... भगवान ने छह द्रव्य कहे, उनमें स्वभावपर्याय छहों द्रव्यों को (साधारण है)। वह स्वभावपर्याय **अर्थपर्याय है,...** वह स्वभावपर्याय, अर्थपर्याय है। वरना तो केवलज्ञान, केवलदर्शन, वह स्वभावपर्याय है। कार्य नहीं, कार्यरूप से ही लिया, यहाँ पर्यायरूप से दूसरी बात ली। **वाणी और मन को अगोचर है,...** वह स्वभावपर्याय अर्थपर्याय वाणी और मन से अगम्य है। **अति सूक्ष्म है, आगमप्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य...** है। भगवान की वाणी से स्वीकार करनेयोग्य है।

छह हानि-वृद्धि के भेदोंसहित है, अर्थात् अनन्त भागवृद्धि,... थोड़ी सूक्ष्म बात

है। **असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि सहित होती है और इसी प्रकार (वृद्धि की भाँति) हानि भी लगायी जाती है।** एक समय में अनन्तगुनी वृद्धि होती है। असंख्यगुनी और संख्यगुनी। एक समय में अनन्तगुण हानि, असंख्यगुण हानि और संख्यगुण हानि होती है। ऐसे छह द्रव्यों में एक समय में अनन्त षट् प्रकाररूप से परिणमना, ऐसी कोई स्वभावपर्याय भगवान ने देखी है। समझ में आया?

अशुद्धपर्याय, नर-नारकादि व्यंजनपर्याय हैं। लो! यह एक शुद्धपर्याय में यहाँ डाला यह। (गाथा) १५ में शुद्धपर्याय दूसरे प्रकार से है। अशुद्धपर्याय चार गति है— मनुष्य, नारकी, देव, पशु। उसकी अन्दर व्यंजनपर्याय, हों! विभाव। शरीर नहीं।

श्लोक-२४

[अब, १४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, तीन श्लोक कहते हैं—]

(मालिनी)

अथ सति परभावे शुद्ध-मात्मान-मेकं,
सहज-गुणमणीना-माकरं पूर्ण-बोधम्।
भजति निशितबुद्धिर्यः पुमान् शुद्धदृष्टिः,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।२४।।

(हरिगीतिका)

परभाव होते हुए भी जो सहज गुण-मणि खान है।
जो पूर्ण ज्ञान स्वरूप निज शुद्धात्म तत्त्व महान है॥
उस एक को जो तीक्ष्णबुद्धि शुद्धदृष्टि नर भजे।
परमश्रीमय कामिनी का वह पुरुष वल्लभ बने॥२४॥

श्लोकार्थ :—**परभाव होने पर भी, सहजगुणमणि की खानरूप तथा पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को, एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का (मुक्तिसुन्दरी का) वल्लभ बनता है॥२४॥**

श्लोक-२४ पर प्रवचन

[अब, १४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, तीन श्लोक कहते हैं—]

अथ सति परभावे शुद्ध-मात्मान-मेकं,
सहज-गुणमणीना-माकरं पूर्ण-बोधम्।
भजति निशितबुद्धिर्यः पुमान् शुद्धदृष्टिः,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः।।२४।।

भगवान पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। परमेष्ठी हैं न! **परभाव होने पर भी,...** क्या कहते हैं? अरे! आत्मा की वर्तमान दशा में **परभाव होने पर भी,...** परभाव अर्थात् विभावपर्याय। रागादि की तो यहाँ बात नहीं, यहाँ तो ज्ञानदर्शन की अपेक्षा से तो परभाव। वे चार ज्ञान, तीन दर्शन, वे सब परभाव - विभावभाव हैं। यद्यपि यहाँ तो केवलज्ञान को परभाव कह दिया है, परन्तु यहाँ साधक को तो वह है नहीं, इसलिए वह बात नहीं है। क्या कहते हैं? आत्मा, उसकी वर्तमान दशा में चार ज्ञान विभाव और तीन दर्शन विभाव होने पर भी, राग-द्वेष होना, वह तो ठीक, क्योंकि वह तो विभाव है।

ऐसा होने पर भी भगवान आत्मा अन्दर कैसा है? **सहजगुणमणि की खानरूप...** है। स्वाभाविक सहजगुणमणि की खान। आहा..हा..! **सहजगुणमणि की खानरूप...** आत्मा है। अनन्त-अनन्त ज्ञान, आनन्द उसमें से निकालो तो भी उसमें से कम न हो, ऐसी भगवान आत्मा में शक्ति पड़ी है। ऐसे आत्मा का माहात्म्य इसे नहीं आता और बाहर का आता है। विकल्प का, निमित्त का और एक समय की पर्याय का माहात्म्य आता है। कहते हैं कि ऐसा होने पर भी हम तो सहजगुणमणि... भगवान आत्मा में स्वाभाविक गुण की मणि पड़ी है। आहा..हा..! अनन्त ज्ञान स्वाभाविक गुणमणिरत्न की खान (भरी है)।

तथा पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को,... पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को। अन्तर ज्ञानस्वभाव.. स्वभाव.. वस्तु में ज्ञानस्वभाव पूर्ण भरा है, द्रव्यस्वभाव पूर्ण है। ऐसे **पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को, एक को... एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** ऐसे शुद्धात्मा को एक को ही। एक को तीक्ष्णबुद्धिवाला, जिसकी ज्ञानबुद्धि

उग्र होकर द्रव्यस्वभाव में घुसी है। आहा..हा..! त्रिकाल ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, स्वभावभाव, गुणमणि की खान, ऐसे एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला (भजता है)। लो, उसे तीक्ष्णबुद्धिवाला कहा। जिसके ज्ञान की वर्तमान दशा **एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** आहा..हा..! देखो, **तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** आत्मा का भजन। अनन्त ज्ञानमणि की खान भगवान और ज्ञान से परिपूर्ण प्रभु, उसे दृष्टि को तीक्ष्ण करके, पकड़कर, ऐसे द्रव्यस्वभाव को पकड़कर उसका भजन करता है अर्थात् उसमें एकाग्रता होती है, उसे शुद्धदृष्टि तीक्ष्णबुद्धिवाला पुरुष कहा जाता है। दूसरा क्षयोपशमज्ञान कम हो तो उसके साथ सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं। सहजगुणमणि खान प्रभु को जिस बुद्धि से पकड़ लिया, बस! वह मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा..! यह क्या कहते हैं? अनजाने व्यक्ति को तो अटपटा जैसा लगता है। मार्ग ऐसा है, भगवान! तुझे खबर नहीं। सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु, सर्वज्ञ अर्थात् पूर्ण ज्ञान कहा न यहाँ? पूर्ण ज्ञानस्वभाव। पूर्ण ज्ञानस्वभाव ऐसा शुद्ध, शुद्ध आत्मा एक ही, सामान्य-विशेष ले लिये। सामान्य का धारक। शुद्धात्मा एक को ही; दूसरे को नहीं, पर्याय को नहीं, व्यवहार को नहीं, निमित्त को नहीं।

तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि... तीक्ष्णबुद्धि और शुद्धदृष्टि। तीक्ष्णबुद्धिवाला, अन्दर ज्ञान की वर्तमान ज्ञानकला को अन्तर में झुकाकर शुद्धदृष्टिवन्त पुरुष भजता है। ध्रुवस्वभाव की एकाग्रता करता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! वह शुद्ध गुणमणि की खान। वह गुण की खान आत्मा हुआ न, और पूर्ण ज्ञानवाला शुद्धात्मा, गुणवाला आत्मा। **एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** उसे शुद्धदृष्टि कहते हैं। द्रव्यस्वभाव में एकाग्र हो, वह शुद्धदृष्टि। पण्डितजी! यह नियमसार कभी देखा है या नहीं?

मुमुक्षु : ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम तो संस्कृत के प्रोफेसर हो। जयपुर में संस्कृत के प्रोफेसर हो। संस्कृत के प्रोफेसर इसमें क्या काम करे? आहा..हा..! देखो तो सही, मुनि ने कैसा श्लोक रखा है।

ऐसा जो भगवान अन्तर में, जिसमें से अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्ददशारूपी पर्याय प्रगट होती है, ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय प्रगट हो तो भी कमी न हो, ऐसी खान आत्मा है। आहा..हा..! ऐसे भगवान आत्मा को एक को ही; दूसरे को नहीं।

भगवान को भी नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... वह नहीं। तेरा भगवान यह।

एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,... वह मोक्ष का मार्ग। शुद्ध ध्रुवस्वभाव, ज्ञानस्वभाव, सहजमणिरत्न की खान—ऐसा तत्त्व, उसके सन्मुख होकर एकाग्र होता है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। **वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का (मुक्तिसुन्दरी का) वल्लभ बनता है।** उसे मुक्ति प्राप्त होती है। आहा..हा..! **परमश्रीरूपी कामिनी...** अर्थात् मुक्ति। आहा..हा..! मुक्तदशा, सिद्धदशा। मार्ग और मार्ग का फल दोनों का वर्णन कर दिया। आहा..हा..! बात बहुत थोड़ी है, परन्तु है बड़ी गम्भीर।

भगवान आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा परिपूर्ण गुणवन्त, परिपूर्ण गुणवन्त। सहजमणि की खान कहा न! और पूर्ण ज्ञानवन्त सर्वज्ञस्वभावी, उसे एक को ही भजता है। बस, एक को ही भजता है। ऐसे स्वभाव को, द्रव्यस्वभाव को एक को ही भजता है। उसमें ही श्रद्धा-ज्ञान और लीनता करता है, वह अल्पकाल में पूर्ण लक्ष्मी ऐसी जो मुक्तिसुन्दरी, उसका बल्लभ अर्थात् प्रिय होता है अर्थात् उस पर्याय को प्राप्त होता है। आहा..हा..!

वह पुरुष (मुक्तिसुन्दरीरूपी) कामिनी का... जिसके पास सिद्धपद में अनन्त आनन्द आदि पड़े हैं। मुक्ति में अनन्त आनन्द, अनन्त पूर्ण कार्यदशा, उसका बल्लभ बनता है अर्थात् वह पर्याय उसे छोड़ती नहीं। उस पर्याय को प्राप्त करता है। देखो! मोक्ष का मार्ग और मोक्ष दोनों का वर्णन एक श्लोक में कह दिया। गागर में सागर भर दी है, लो! यह २४वाँ कलश हुआ।

मुमुक्षु : मार्ग की बात की।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग कहा न! जो आत्मा अपने स्वाभाविक गुणमणि, स्वाभाविक अर्थात् परमस्वभावरूप पड़े हुए ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि अनन्त गुणमणि और उसमें एक सर्वज्ञपना विशेष लिया और पूर्ण ज्ञानमय भगवान आत्मा ध्रुव, उस एक को ही भजता है। बस, दूसरे किसी का काम नहीं। परमेश्वर तो भगवान परमेश्वर का परमेश्वरपना उनके पास रहा। भगवान परमेश्वर को भजने जायेगा तो राग उत्पन्न होगा। कहो, समझ में आया? णमो अरिहन्ताणं... णमो... ऐई! पण्डितजी! परमेश्वर को भजने जायेगा तो विकल्प उत्पन्न होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, बात यही है। वीतराग का स्वरूप ही यह मार्ग है। निज परमात्मा। आहा..हा..! अपना निजस्वभावरूप परमात्मा। अपना निजस्वरूप। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द आदि शक्ति से भरपूर है। गुणमणि, मणि लिखा है, देखो न! गुणमणि। जैसे स्वयंभूरमणसमुद्र मात्र मणिरत्न की रेत से भरा हुआ है; वैसे भगवान आत्मा महास्वयंभू, और स्वयंभू आया। वह अनुत्पन्न का आया। **निजोगम** आत्मा स्वयं से है। दूसरे किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ। अनादि है। उसका कोई कर्ता-हर्ता नहीं है। स्वयंसिद्ध भगवान आत्मा अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है। आहा..हा..! नित्यानन्दस्वभाव पर दृष्टि रखकर एकाग्र होता है, वह मुक्ति का बल्लभ होता है। आहा..हा..! स्वयंवर। उसे मुक्ति कन्या मिलती है, शिवरमणी। यह मार्ग और मार्ग का फल दोनों बतायें हैं। परन्तु यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय... परन्तु बीच में व्यवहार (आवे उसका क्या?) भाई! व्यवहार हो तो विकल्प है, वह कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। इसीलिए तो यहाँ जोर दिया है।

ऐसे शुद्धात्मा को—**एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** उसे मुक्ति प्राप्त होती है। आहा..हा..! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव का भी भजन नहीं करना, ऐसा कहते हैं। वह तो राग है।

मुमुक्षु : तीर्थंकर भगवान की तो बहुत महिमा और पूजा (आती है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भाव हो, तब ऐसी बात आवे न! विकल्प आता है, तब भगवान ऐसे हैं, परन्तु वह सब विकल्प का कारण है। शुभभाव में निमित्त है। भगवान के दर्शन इत्यादि शुभभाव का निमित्त है। शुद्ध का नहीं। आहा..हा..! वीतरागमार्ग में ऐसा कहते हैं। दूसरे तो कहते हैं हमें दो, हमें आहार-पानी दो, हमारी सेवा करो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। यहाँ कहते हैं कि हमारी सेवा करने से तुझे विकल्प उत्पन्न होगा।

मुमुक्षु : तेरा कल्याण रुक जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरे निजानन्द भगवान को भज, तेरी मुक्ति हो जायेगी। यह कहनेवाले एक वीतरागी सन्त ही हैं। आहा..हा..! तुझमें क्या कमी है कि तू पर को भजने जाता है। तुझमें क्या अपूर्णता है कि पूर्ण होने के लिये पर का आश्रय लेने जाता है? ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! प्रकाशदासजी! यह भगवान साक्षात् परमात्मा को भजे तो विकल्प होता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : मुनि को आहार दे तो संवर-निर्जरा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी संवर-निर्जरा नहीं होती। तीर्थंकर जैसे छद्मस्थ को आहार-पानी दे तो वह पुण्यबंध है। केवली को तो आहार-पानी होते ही नहीं। तीर्थंकर जब छद्मस्थ होते हैं, तब आहार लेने जाते हैं। उन्हें निहार नहीं परन्तु आहार है, आहार है तो आहार देनेवाले को तो पुण्यभाव होता है; संवर-निर्जरा बिल्कुल नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! संवर-निर्जरा अर्थात् धर्म तो स्वद्रव्य के आश्रय से ही होता है - ऐसा अनादि प्रसिद्ध मार्ग वीतराग में है, दूसरे में तो यह मार्ग है ही नहीं। अन्यत्र कहीं यह मार्ग है ही नहीं। आहा..हा..! सत्य बात समझना, सुनने मिलना महाकठिन है। बाकी तो गप्प चलती है। आहा..हा..! सच्ची बात तो मिथ्या गिनाते हैं, एकान्त है, एकान्त है - (ऐसा कहते हैं)। एकान्त ही कहते हैं, देखो! **एक को ही...** उसमें दूसरा नहीं। यहाँ तो एकान्त कहते हैं।

मुमुक्षु : अनेकान्त नहीं कहा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए कहा न, ऊपर कहा। आहा..हा..!

श्लोक-२५

(मालिनी)

इति पर-गुण-पर्यायेषु सत्सूत्तमानां,
हृदय-सरसि-जाते राजते कारणात्मा।
सपदि समयसारं तं परं ब्रह्म-रूपं,
भज भजसि निजोत्थं भव्यशार्दूल स त्वम्॥२५॥

(हरिगीतिका)

पर-गुण तथा पर्याय है, पर जो पुरुष उत्तम अहा।
उनके हृदय पंकज विराजित एक कारण आत्मा॥

निज से हुआ उत्पन्न परम-ब्रह्म वह शुद्धात्मा।
तुम भज रहे, जल्दी भजो, हो वह तुम्हीं भव्यात्मा॥२५॥

***श्लोकार्थ :*—इस प्रकार पर गुण-पर्यायें होने पर भी, उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में कारणआत्मा विराजमान है। अपने से उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को कि जिसे तू भज रहा है, उसे हे भव्यशार्दूल (भव्योक्तम)! तू शीघ्र भज; तू वह है॥२५॥**

श्लोक-२५ पर प्रवचन

कलश - २५

इति पर-गुण-पर्यायेषु सत्सूत्तमानां,
हृदय-सरसि-जाते राजते कारणात्मा।
सपदि समयसारं तं परं ब्रह्म-रूपं,
भज भजसि निजोत्थं भव्यशार्दूल स त्वम्॥२५॥

'**स त्वम्**' '**सत्वम्**' पूरा नहीं। '**स**' उसे '**त्वम्**' तू भज। उसे भज। वह भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है, उसे भज। भाई! भक्ति-वक्ति तो भगवान की होती है। तू भगवान नहीं? सत्समागम से सब मिलता है। तो तू सत् नहीं? सोगानी ने एक जगह ऐसा कहा है, भाई! हमारे सत्समागम हो तो सत् का लाभ हो। बराबर है। तू सत् है या नहीं? या तू असत् है? भगवान! तू सत् है या नहीं? और सत्य है या नहीं? सत्यसाहिब त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, सत्यसाहिब तू है। तेरी अपेक्षा से पूरी दुनिया असत् है। समझ में आया?

इस प्रकार पर गुण-पर्यायें होने पर भी,... देखो! नीचे अर्थ है न? **इस प्रकार पर गुण-पर्यायें...** अर्थात्? चार ज्ञान, विभाव-रागादि, **होने पर भी, उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में कारणआत्मा विराजमान है।** आहा..हा..! अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान कारणपरमात्मा, कार्य का कारण अन्दर त्रिकाल विराजमान है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उत्तम पुरुष को न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्तम पुरुष के हृदय में। भान नहीं, उसे क्या? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सब जीवों को....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; भान हो, उसे विराजमान है। भान नहीं, उसे क्या है ? वह तो पामर होकर पड़ा है। समझ में आया ? आहा..हा..! ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। किसी जगह गन्ध नहीं है।

मुमुक्षु : क्यों नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे कहाँ से ? विपरीत दृष्टि करके तो सब खड़े हुए हैं। यह तो सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर, त्रिलोकनाथ का प्रवाह सन्तों के पास तो है। दिगम्बर मुनि तो पूर्व के प्रवाह में वे तो जुड़ गये हैं। समझ में आया ? बात तो देखो न! ऐसा एक श्लोक देखो, तत्त्व देखो मध्यस्थ से। ऐई!

उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में (अन्तर आत्मा में) कारणआत्मा विराजमान है। जिसमें से कार्य होता है, ऐसा कारणस्वरूप भगवान तो तेरी चीज़ तू है। आहा..हा..! **अपने से उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को...** वह आत्मा तो स्वयं से ही है। स्वयं ही है। **ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को कि जिसे तू भज रहा है,...** देखो! तू जिसे अन्दर में भज रहा है, उसे भज। **हे भव्यशार्दूल (भव्योत्तम)! तू शीघ्र भज; तू वह है।** आहा..हा..! वह तू है। भगवान ज्ञायकभाव ध्रुव नित्यानन्द प्रभु उसे भजता है तो भज। वह तू है। दूसरी कोई चीज़ तेरी है नहीं। ऐसा कहकर उसे स्वरूप का त्रिकाल का शरण लेने के लिये पुकारती है। वही उत्तम है, वह शरण है, वह मंगल आत्मा त्रिकाल है। द्रव्यदृष्टि में द्रव्य का आश्रय लेकर एकाग्र हुआ, वही आत्मा का भजन कहने में आता है। वही मोक्ष का मार्ग है। उससे ही मोक्ष होता है।

(*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-२६

(पृथ्वी)

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः,
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः।
सनाथ-मपि जीव-तत्त्व-मनाथं समस्तैरिदं,
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्ध्यै सदा।।२६।।

(वीरछन्द)

कभी सद्गुणोंयुत विलसित है और कभी अशुद्ध गुणरूप।
कभी सहज पर्याय सहित अरु कभी मलिन पर्याय स्वरूप॥
जो इन सबसे सहित तथापि इन सबसे है रहित अहो।
सकल अर्थ की सिद्धि हेतु उस जीवतत्त्व को भाऊँ नमो॥२६॥

श्लोकार्थ :— जीवतत्त्व, क्वचित् सद्गुणों सहित विलसता * है, दिखाई देता है; क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है; क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है और क्वचित् अशुद्ध पर्यायों सहित विलसता है। इन सबसे सहित होने पर भी, जो इन सबसे रहित है—ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए सदा नमता हूँ, भाता हूँ॥२६॥

प्रवचन-२२, श्लोक-२६, गाथा-१५, मंगलवार, फाल्गुन कृष्ण ११, दिनांक २३-०३-१९७१

नियमसार जीव अधिकार १४वीं गाथा का अन्तिम कलश। २६ (वाँ कलश)।

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः,
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः।
सनाथ-मपि जीव-तत्त्व-मनाथं समस्तैरिदं,
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्ध्यै सदा।।२६।।

* *विलसना=दिखाई देना; दिखना; झलकना; आविर्भूत होना; प्रगट होना।*

नीचे श्लोकार्थ। जीवपदार्थ है न? जीवपदार्थ।

श्लोकार्थः—जीवतत्त्व, क्वचित् सद्गुणों सहित विलसता है,... निर्मल गुण की पर्याय सहित **दिखाई देता है;...** गुण तो त्रिकाल हैं परन्तु सद्गुणों अर्थात् पर्याय। ऐसे गुण से वह विलसता है, आविर्भाव होता है। जो शक्तिरूप से गुण हैं, वे आविर्भावरूप से विलसते हैं, दिखायी देते हैं। **दिखाई देता है; झलकता है।... क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है;...** व्यंजनपर्याय बिना के गुणों की अशुद्धपर्याय, उसे यहाँ अशुद्धरूप गुण कहा गया है। यह क्या कहा?

मुमुक्षु : व्यंजनपर्याय के अतिरिक्त अर्थपर्यायें हों...

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थपर्यायें कही नहीं। व्यंजनपर्याय के अतिरिक्त गुण, उनकी जो पर्याय अशुद्ध है, उसकी यह बात है। बहुत स्पष्ट हो, ऐसा नहीं है। यह धीरे-धीरे समझ में आये, ऐसा है। सेठी! १५ वीं गाथा का विषय बहुत सूक्ष्म आयेगा। इस अधिकार के समय किसी समय तुम होंगे या नहीं, यह खबर नहीं। नियमसार की शुद्धकारणपर्याय के समय किसी समय यहाँ थे?

क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है... यह गुण की निर्मल अवस्था-शुद्धपर्यायें। **क्वचित् अशुद्ध पर्यायों...** यह व्यंजनपर्याय। **इन सबसे सहित होने पर भी,...** जीवतत्त्व पर्याय में इस प्रकार से **होने पर भी, जो इन सबसे रहित है...** वस्तु जो जीवतत्त्व ध्रुव है, वह ऐसे सब भेदों से रहित है। समझ में आया? किसी समय निर्मल शुद्ध ज्ञानगुण आदि की प्रगट अवस्था से शोभता हे, किसी समय अशुद्धगुण अर्थात् विकारी पर्याय आदि से शोभता है। व्यंजनपर्याय के अतिरिक्त। किसी समय सहज पर्यायें केवलज्ञान आदि की, उनसे शोभता है। किसी समय अशुद्ध व्यंजनपर्यायों से विलसता है। दिखायी दे, दिखायी दे, ऐसे दिखायी दे - ऐसा कहते हैं। **इन सबसे सहित होने पर भी,...** पाठ है न? **सनाथमपि जीवतत्त्वमनाथं...** इसकी व्याख्या की। स्वाभाविक। ये सब भाव पर्याय में होने पर भी, परन्तु इन पर्यायरहित।

जो इन सबसे रहित है — ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए सदा नमता हूँ,... ध्रुव तत्त्व, जिसमें अनन्त-अनन्त शान्ति-सामग्री आदि अनन्त पड़ी

है। ध्रुवरूप सामान्य स्वभाव। ये सब पर्यायें होने पर भी, पर्याय का आश्रय / लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है। आश्रय करनेयोग्य नहीं है - ऐसा कहते हैं। जाननेयोग्य भले हो, परन्तु भगवान आत्मा जो पर्यायों की निर्मलता, सहजता इत्यादि दशा में होने पर भी, वस्तु जो ध्रुव चैतन्य नित्य (रही है), ऐसे **जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए...** मेरी शान्ति और आनन्द की पूर्ण प्रयोजनदशा-मुक्ति के लिये **सदा नमता हूँ,...** मेरा झुकाव ही सदा ध्रुव पर है, ऐसा कहते है, उसे मैं ध्रुव को भाता हूँ, ध्रुव को नमता हूँ और उसे **भाता हूँ।** है न दो ? **परिभावयामि** और **नमामि** दो है। भगवान आत्मा जीवतत्त्व, ऐसी पर्यायवाला होने पर भी, मैं तो जीवतत्त्व, जो अखण्ड अभेद ध्रुव है, वह पर्यायरहित तत्त्व है। समझ में आया ?

ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए... मेरे केवलज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति के लिये मैं उस ध्रुव को **सदा नमता हूँ,...** मेरा झुकाव उसमें है और ध्रुव की भावना मैं करता हूँ। कहो, समझ में आया ? ऐसा मार्ग कैसा होगा यह ? पर्याय ऐसी, तथापि वस्तु पर्यायरहित; और पर्यायरहित को मैं भाता हूँ। 'भाता हूँ' - यह पर्याय है, परन्तु भाना ध्रुव को। **नमता हूँ,...** यह पर्याय है। **भाता हूँ।** यह पर्याय है। परन्तु भाता किसे है ? और नमता किसे है ? ध्रुव को। समझ में आया ?

भगवान सर्वज्ञ ने ऐसा जीव देखा है। उसकी पर्यायों में ऐसे प्रकार होने पर भी, अवस्था में यह सब दशायें होने पर भी वस्तु तो उन अवस्थारहित है। उन अवस्थारहित वस्तु है, उसे मैं नमता हूँ। मेरा अन्तर की दृष्टि का झुकाव वहाँ गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसे मैं **सदा नमता हूँ,...** वापस ऐसा लिया है न ? **सदा 'नमामि परिभावयामि'** निरन्तर। भगवान आत्मा पर्याय के भेदरहित, ऐसे द्रव्यस्वभाव के नमन में, आदर में, निरन्तर मेरा आदर है। कहो, समझ में आया ? निमित्त का आदर नहीं, विकल्प का नहीं, ऐसे पर्याय के भेद का भी आदर नहीं। यह १४वीं गाथा हुई। अब यह १५वीं गाथा। लो, यह, शशीभाई, प्रवीणभाई इसके लिये आये हैं न ! प्रवीणभाई ! खबर थी ? ठीक। भाई आया नहीं ? मनीष। पढ़ने में होगा।

गाथा-१५

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।।१५।।

नरनारकतिर्यक्सुराः पर्यायास्ते विभावा इति भणिताः।
कर्मोपाधिविवर्जितपर्यायास्ते स्वभावा इति भणिताः।।१५।।

स्वभावविभावपर्यायसङ्क्षेपोक्तिरियम्। तत्र स्वभावविभावपर्यायाणां मध्ये स्वभावपर्यायस्तावत् द्विप्रकारेणोच्यते। कारणशुद्धपर्यायः कार्यशुद्धपर्यायश्चेति। इह हि सहजशुद्धनिश्चयेन अनाद्यनिधनामूर्तातीन्द्रियस्वभावशुद्धसहजज्ञानसहजदर्शनसहजचारित्रसहजपरमवीतरागसुखात्मकशुद्धान्तस्तत्त्वस्वरूपस्वभावानन्तचतुष्टयस्वरूपेण सहाञ्चितपञ्चमभावपरिणतिरेव कारणशुद्धपर्याय इत्यर्थः। साद्यनिधनामूर्तातीन्द्रियस्वभावशुद्धसद्भूतव्यवहारेण केवलज्ञानकेवलदर्शनकेवलसुखकेवलशक्तियुक्तफलरूपानन्तचतुष्टयेन सार्धं परमोत्कृष्टक्षायिकभावस्य शुद्धपरिणतिरेव कार्यशुद्धपर्यायश्च। अथवा पूर्वसूत्रोपात्तसूक्ष्मऋजुसूत्रनयाभिप्रायेण षड्द्रव्यसाधारणाः सूक्ष्मास्ते हि अर्थपर्यायाः शुद्धा इति बोद्धव्याः। उक्तः समासतः शुद्धपर्यायविकल्पः।

इदानीं व्यञ्जनपर्याय उच्यते। व्यज्यते प्रकटीक्रियते अनेनेति व्यञ्जनपर्यायः। कुतः? लोचनगोचरत्वात् पटादिवत्। अथवा सादिसनिधनमूर्तविजातीयविभावस्वभावत्वात्, दृश्यमानविनाशस्वरूपत्वात्।

व्यञ्जनपर्यायश्च पर्यायिनमात्मानमन्तरेण पर्यायस्वभावात्, शुभाशुभमिश्रपरिणामेनात्मा व्यवहारेण नरो जातः, तस्य नराकारो नरपर्यायः, केवलेनाशुभकर्मणा व्यवहारेणात्मा नारको जातः, तस्य नारकाकारो नारकपर्यायः, किञ्चिच्छुभमिश्रमायापरिणामेन तिर्यक्कायजो व्यवहारेणात्मा, तस्याकारस्तिर्यक्पर्यायः, केवलेन शुभकर्मणा व्यवहारेणात्मा देवः, तस्याकारो देवपर्यायश्चेति। अस्य पर्यायस्य प्रपञ्चो ह्यागमान्तरे दृष्टव्य इति।

(हरिगीत)

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

अन्वयार्थ :—[नरनारकतिर्यक्सुराः पर्य्यायाः] मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देवरूप पर्यायें, [ते] वे [विभावाः] विभावपर्यायें [इति भणिताः] कही गई हैं; [कर्मोपाधिविवर्जितपर्य्यायाः] कर्मोपाधि रहित पर्यायें, [ते] वे [स्वभावाः] स्वभावपर्यायें [इति भणिताः] कही गयी हैं।

टीका :— यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है।

वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।

यहाँ सहज शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र-सहज परमवीतरागसुखात्मक शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति (उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली जो पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति), वही कारणशुद्धपर्याय है — ऐसा अर्थ है।

सादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, केवलज्ञान-केवल -दर्शन-केवलसुख-केवलशक्तियुक्त फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की (अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली) जो परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति, वही कार्यशुद्ध-पर्याय* है। अथवा, पूर्व सूत्र में कहे हुए सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से, छह द्रव्यों को साधारण और सूक्ष्म — ऐसी वे अर्थपर्यायें शुद्ध जानना (अर्थात्, वे अर्थपर्यायें ही शुद्धपर्यायें हैं)।

(इस प्रकार) शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप में कहे।

अब, व्यंजनपर्याय कही जाती है। जिससे व्यक्त हो-प्रगट हो, वह व्यंजनपर्याय है। किस कारण ? पटादि की (वस्त्रादि की) भाँति चक्षुगोचर होने से (प्रगट होती

* सहजज्ञानादि स्वभाव-अनन्त चतुष्टययुक्त कारणशुद्धपर्याय में से केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टययुक्त कार्यशुद्ध पर्याय प्रगट होती है। पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति, वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्ध क्षायिकभावपरिणति, वह कार्यशुद्धपर्याय है।

है) अथवा, सादि-सान्त मूर्त विजातीय-विभावस्वभाववाली होने से, दिखकर नष्ट होनेवाले स्वरूपवाली होने से (प्रगट होती है)।

पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा, पर्यायस्वभावाला होता है; इसलिए शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम से आत्मा, व्यवहार से मनुष्य होता है, उसका मनुष्याकार वह मनुष्यपर्याय है; केवल अशुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, नारक होता है, उसका नारक-आकार वह नारकपर्याय है; किंचित्शुभमिश्रित मायापरिणाम से आत्मा, व्यवहार से तिर्यञ्चकाय में जन्मता है, उसका आकार वह तिर्यञ्चपर्याय है और केवल शुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, देव होता है, उसका आकार वह देवपर्याय है। यह व्यंजनपर्याय है। इस पर्याय का विस्तार अन्य आगम में देख लेना चाहिए।

गाथा-१५ पर प्रवचन

गाथा १५

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।।१५।।

नीचे हरिगीत।

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

भगवान ने ऐसा 'भाखिया' ऐसा कहते हैं। '**भणिदा**' है न? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने यह स्वभाव-विभावपर्याय का वर्णन किया है। समझ में आया? इसकी टीका।

***टीका :—* यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है। वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।** यह सब बारीक / सूक्ष्म बात है आज। आत्मा में स्वभावपर्याय और विभावपर्याय का अस्तित्व है। इन दो प्रकारों में स्वभावपर्याय जो है, उसके दो प्रकार हैं। जीवद्रव्य है न? जीवद्रव्य अर्थात् वस्तु; उसके अस्तित्व में स्वभावपर्याय और विभावपर्याय, ऐसे दो प्रकार उसके अस्तित्व में है। पर के कारण नहीं, पर में नहीं। ऐसी स्वभाव-विभावदशाओं में यहाँ स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही गयी है।

एक कारणशुद्धपर्याय उसके अस्तित्व में है और एक कार्यशुद्धपर्याय जीवतत्त्व के अस्तित्व में है। अब कारणशुद्धपर्याय। यह आत्मा है। एकदम सूक्ष्म विषय है, यह विषय पूरे हिन्दुस्तान में कहीं चला नहीं और चलता नहीं। कहो, समझ में आया? यहाँ से शुरुआत (संवत्) २००० में इसका विस्तार हुआ था। भगवान ने यह कहा है, ऐसा कहा न? स्वभावपर्याय और विभावपर्याय यह भगवान ने कही है। उस स्वभावपर्याय के दो प्रकार करते हैं : एक कारणशुद्धपर्याय और एक कार्यशुद्धपर्याय। अब कारणशुद्धपर्याय बहुत सूक्ष्म है। उसका पहले वर्णन करते हैं। कारण कि वह अनादि की वस्तु है। कार्यशुद्धपर्याय तो बाद में सादि होती है। समझ में आया? केवलज्ञान आदि कार्यशुद्धपर्याय की सादि / आदि है और इस कारणशुद्धपर्याय की आदि नहीं है। इसलिए इसे पहले वर्णन किया जाता है। रतिभाई! यह सूक्ष्म है। समझ में आये उतना पकड़ना। समझ में आया, लो! वाह!

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी परमेश्वर ने स्वभावपर्याय और विभावपर्याय के प्रकार कहे हैं। अब उनमें स्वभावपर्याय। पाठ में पहले व्यंजनपर्याय है, भाई! तो उसका वर्णन बाद में करेंगे। मूल गाथा। पहले यह समझे तो उसकी व्यंजनपर्याय यथार्थ समझ में आये, ऐसा। कहते हैं कि आत्मा में... यह तो अगम-निगम की बातें हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर के पेट में से—अन्दर ज्ञान में से आयी हुई बात है।

कहते हैं कि कारणशुद्धपर्याय किसे कहना?

जो **सहज शुद्ध निश्चय से,...** स्वाभाविक शुद्धनिश्चय से आत्मा में है। भेदवाली, व्यवहारवाली, कार्यवाली नहीं। त्रिकाल सहज स्वाभाविक शुद्धनिश्चय से। यह पहला नय लिया है। इसमें नय पहला लिया है, भाई! और कार्य में नय बाद में लेंगे। समझ में आया? तत्पश्चात् अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्ध सद्भूतव्यवहार से, ऐसा लेंगे। यहाँ पहले शुद्धनिश्चय लिया है। यह और क्या कहा? एक बोले तो समझ में आये नहीं पहली बार, नहीं?

इस अनादि-अनन्त आत्मा में कारण शुद्ध ध्रुवपर्याय है, वह स्वाभाविक शुद्धनिश्चय से अनादि है अर्थात् उसे पहला नय, सहजशुद्धनिश्चय पहला लिया। समझ में आया? वह अनादि-अनन्त है।

मुमुक्षु : पर्याय अनादि-अनन्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि-अनन्त पर्याय है। बहुत सूक्ष्म बात है। द्रव्य-गुण

अनादि, उनके साथ पर्याय भी अनादि-अनन्त है। भाई! यह बात हिन्दुस्तान में कहीं चली नहीं। यह बात जब निकली थी, तब एकाध-दो पण्डितों को पूछा तो गड़बड़ करने लगे कि यह बाहर कहाँ निकाली? वरना तो नक्शा डालना था। है न नक्शा? वह नक्शा है। १ से १९ गाथा (की पुस्तक में) नियमसार में नक्शा डालना था। उस खिड़की के पास ऊपर। उसमें समुद्र का दृष्टान्त दिया है। समुद्र-समुद्र। जो समुद्र होता है न? समुद्र, उस समुद्र के अन्दर जो पूरा समुद्र का दल है, वह अन्दर का सामान्य ध्रुव है और उसके ऊपर सरीखी सपाटी, ऐसी वट रहित ऊपर की सरीखी सपाटी है, उसे यहाँ कारणशुद्धपर्याय में गिनने में आया है। उसका दल जो ध्रुव दल सामान्य है... समुद्र होता है न यह पूरा समुद्र? उसका सामान्य दल है और ऊपर सरीखी सपाटी (होती है।) उसके ऊपर चार भाव।

मुमुक्षु : लहररहित

पूज्य गुरुदेवश्री : लहररहित। और ऊपर में चार लहर आवे, वह उपशम, क्षयोपशम, उदय, क्षायिक चार भाव की ऊपर की लहर है। इसमें नीचे डाला है। समझ में आया? नक्शा देखा है या नहीं कभी? जेठाभाई! बस, देखा नहीं। वह रहा, देखो ऊपर। इस पहले तख्ते के ऊपर। द्रव्यदृष्टि के नीचे। उस तख्ते के ऊपर है, देखो! छोटा तख्ता है। प्रकाशदासजी लिखते थे। इसमें कुछ समझ में आये ऐसा नहीं था।

कहते हैं, यह भगवान आत्मा, इसके अन्दर **सहज शुद्ध निश्चय से,...** अर्थात् स्वाभाविक शुद्ध निश्चय से। ऐसा। **अनादि-अनन्त,...** है। अनन्त चतुष्टय अन्दर अनादि-अनन्त है। उसके साथ यह कारणपर्याय भी अनादि-अनन्त है। अनन्त चतुष्टययुक्त यह कारणपर्याय अनादि-अनन्त है। **अमूर्त,...** है। यह अन्दर अमूर्त है, मूर्तपना नहीं। **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** यह सब शब्दार्थ तो कार्य में भी आयेगा। **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** क्या? **शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** त्रिकाली, स्वाभाविक ज्ञान त्रिकाली। ध्रुवज्ञान सहज त्रिकाली, **सहजदर्शन...** त्रिकाली। स्वाभाविक दर्शन-ध्रुवदर्शन त्रिकाली। **सहजचारित्र...** स्वाभाविक चारित्र त्रिकाली ध्रुवचारित्र त्रिकाली और **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** स्वाभाविक परम वीतराग आनन्दस्वरूप त्रिकाली आहा..हा..! **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** ये चार बोल लिये हैं। **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** वह शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप है। आहा..हा..! अरूपी भगवान आत्मा का यह अन्तर्दल है, अन्तःतत्त्वस्वरूप है। **जो स्वभाव-अनन्त**

चतुष्टय का स्वरूप,... स्वभाव, अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। यहाँ स्वरूप शब्द की एक विशेषता है। कार्य में फल की विशेषता है। समझ में आया? शुद्ध अन्त:तत्त्व का स्वरूप, **स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** यहाँ तक तो उसके सामान्य दर्शन-ज्ञान आदि के भाव-स्वभाव वर्णन किये। ध्रुव.. ध्रुव... ध्रुव।

उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति.... उस अनन्त चतुष्टययुक्त स्वभाव के साथ तन्मयरूप से रही हुई **पूजित पंचम भावपरिणति....** जैसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, इन चार पदार्थों की उत्पाद-व्ययवाली पर्याय सदृश एकरूप त्रिकाल शुद्ध है। समझ में आया? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल के उत्पाद-व्यय में अशुद्धता या भेद कहीं नहीं है। एक सरीखी उत्पाद-व्यय... उत्पाद-व्यय परिणतिभाव अनादि-अनन्त है। ऐसी एक आत्मा में वर्तमान पर्याय जो प्रगट है, उसके अतिरिक्त की। उन चार में प्रगटरूप पर्याय एकरूप है, तो आत्मा में प्रगटरूप पर्याय एकरूप नहीं, क्योंकि अनादि अशुद्धपर्याय है। मोक्षमार्ग उत्पाद-व्ययवाली (पर्याय है)। सम्यग्ज्ञान-भान होने पर साधकदशा में कुछ शुद्ध और अशुद्ध है। पूर्ण होने पर अकेली शुद्ध है - इतने भेद पड़ जाते हैं। एकरूप दशा जैसे चार द्रव्यों में है, वैसे इसकी उत्पाद-व्ययदशा में ऐसी एकरूप दशा नहीं है; इसलिए इसकी एकरूप दशा कारणपर्याय को ध्रुव गिनने में आया है। इसमें बहुत वंसमोर हो, ऐसा नहीं है। इसमें तो मुश्किल से पकड़ में आये ऐसा है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : वह पर्याय सदृश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सदृश। किसी समय होंगे नहीं इसमें। यह नियमसार की १५वीं गाथा, किसी समय थे? याद नहीं होगा। पहले मैंने पूछा था।

भगवान जीवतत्त्व, वह जैसे शुद्ध सहज निश्चय से त्रिकाल है, वैसे वह सहजशुद्धनिश्चय से उसके चतुष्टय त्रिकाल है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और आनन्द। देखो! इसमें आनन्द भी लिया है। समकित नहीं लिया, परन्तु वह श्रद्धा त्रिकाल, यह सब इसमें आ जाता है। सहज दर्शन में डालना हो तो भी इस प्रकार से कारणदृष्टि आयी है, उसमें आ जाता है। और नहीं तो यह परमवीतराग अमृत, इसमें भी सम्यग्दर्शन (आ जाता है)। यद्यपि इसमें चारित्र पृथक् किया है।

ऐसा जो शुद्ध अन्त:तत्त्वस्वरूप, चार भाव - स्वभावरूपी अन्त:तत्त्व ध्रुवस्वरूप, जो स्वभाव अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। कार्य में फल कहेंगे। यह तो उसका स्वरूप है। अनन्त चतुष्टय त्रिकाल स्वरूप है। **उसके साथ की जो पूजित...** इसमें **उसके साथ जो 'पूजित'...** शब्द विशेष प्रयोग किया है, और कार्य में उसके साथ की परम उत्कृष्ट शब्द प्रयोग करेंगे। दोनों में अन्तर है। समझ में आया? **अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति...** पूजनेयोग्य, आदरनेयोग्य, सत्कार करनेयोग्य, उपादेय करनेयोग्य। त्रिकाल जो चतुष्टययुक्त स्वभाव है, उसके साथ रही हुई यह पंचम भावपरिणति, पारिणामिकभाव की परिणति, हों! है न? यह पंचम भावपरिणति है। यह उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक के उत्पाद-व्यय की नहीं है। समझ में आया?

ऐसी पंचम भाव... वह त्रिकाली, चार भाव के साथ जो पूजनेयोग्य, कि जिसमें से कार्यपर्याय प्रगट हो, ऐसी **पूजित...** अर्थात् आदरनेयोग्य। **पंचम भावपरिणति...** आत्मा में। जैसे चार द्रव्यों में एकरूप उत्पाद-व्यय पारिणामिकभाव से सरीखा है, ऐसा इसके उत्पाद-व्यय में एक सरीखा भाव नहीं है। इसलिए इसमें यह एक उत्पाद-व्यय की पारिणामिकभाव की पर्याय त्रिकाल सरीखी है, तब इसका सामान्यरूप एक सरीखा होता है। उत्पाद-व्यय वह विशेष है। मोक्ष-मोक्ष का मार्ग वह सब उत्पाद-व्यय-पर्याय का है। प्रगट आविर्भाव का है। यह शक्तिरूप पर्याय की बात चलती है। आहा..हा..!

(उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली...) किसके साथ? अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, स्व-रूप। **(उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली जो पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति),...** परिणति कहा, परन्तु है वह पंचम भाव की परिणति। वह कोई क्षायिक परिणति या उदय अवस्था, वह अवस्था नहीं है। **वही कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा अर्थ है।** पण्डितजी! ऐसा कभी पढ़ा था? (नहीं पढ़ा)। इस कारणशुद्धपर्याय की तो बात ही नहीं।

मुमुक्षु : यह समयसार की गाथा में भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं.. नहीं। थोड़ी बहुत बात निकली थी। एकाध-दो पण्डितों को पूछा था। यह क्या? (तो) गड़बड़ी करने लगे। अरे! कहा, यह क्या? बाहर रखना कठिन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह उत्पाद-व्ययरूप नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। पर्याय त्रिकाली ध्रुव।

मुमुक्षु : जैसे द्रव्य ध्रुव, गुण ध्रुव....

पूज्य गुरुदेवश्री : वैसे यह पर्याय ध्रुव। बस!

वही कारणशुद्धपर्याय है... (वापस ऐसा) **ऐसा अर्थ है।** कारणशुद्धस्वभावपर्याय... कारणशुद्धस्वभावपर्याय। यह स्वभावपर्याय है न? स्वभावपर्याय का भेद है न? अर्थात् स्वभावपर्याय का भेद कारणशुद्धपर्याय। स्वभावपर्याय के दो भेद में एक स्वभावपर्याय कारणशुद्धपर्याय और एक स्वभावपर्याय कार्यशुद्धपर्याय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्थायी है? महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्थायी है। त्रिकाल। इसलिए पहले कहा न, देखो! **सहज शुद्ध निश्चय...** वहाँ से ही शुरु किया है। स्वाभाविक निश्चय सत्य, त्रिकाल निश्चय सत्य। **अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले...** उसमें (कार्यशुद्धपर्याय में) विशेषण बदलेंगे। शुद्धनिश्चय नहीं, अनादि नहीं। बाकी ये सब विशेषण उसमें आयेंगे। इसमें शुद्ध ऐसे त्रिकाली ज्ञान-दर्शन-आनन्द और चारित्र, ऐसा शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप आत्मा का अन्तःस्वभावस्वरूप। आहा..हा..! आत्मा कैसा है, उसके भान बिना, उसके आदर बिना जो कुछ किया जाये, वह सब व्यर्थ है। यह मुनिव्रत पाले या व्रत करे, छह-छह महीने की तपस्यायें करे, वह सब चार गति में भटकने के लिए है।

ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसकी एक समय की प्रगट पर्याय में अनन्त द्रव्य, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल, भाव बेहद द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, जिसके ज्ञान की प्रगट उत्पाद एक समय की पर्याय में, उसे भले असंख्य समय लगे परन्तु असंख्य समय में इतना अनन्त जिसके एक समय की पर्याय में ख्याल आता है। वह तो ख्याल तो एक समय में ही आता है, परन्तु असंख्य समय हो, तब इसका उपयोग काम करता है। इसलिए प्रगट इसकी पर्याय में बेहद क्षेत्र, बेहद काल, बेहद भाव और बेहद द्रव्य-क्षेत्र-काल, त्रिकाल, उसका ख्याल जो इसकी ज्ञान की वर्तमान उत्पाद प्रगट पर्याय में आता है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें, जिसके अन्तर के ध्रुव स्वभाव में पड़ी हैं, उसकी कारणपर्याय में भी इतनी अनन्त शक्ति पड़ी है। समझ में आया?

जिसके एक क्षण के भाव में मर्यादारहित क्षेत्र, मर्यादारहित काल, मर्यादारहित अपरिमित शक्तियों की संख्या और अपरिमित द्रव्यों की संख्या - जिसे प्रगट एक समय की पर्याय में इतना ख्याल आता है। ऐसी जिसकी एक पर्याय के स्वभाव का सामर्थ्य भाव है। इसके अतिरिक्त शुद्धकारणपर्याय में इससे अनन्तगुना सामर्थ्य स्वभाव है। समझ में आया? यह तो अगम-निगम की बातें हैं। पण्डितजी! आहा..हा..! वाद-विवाद से यह कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वभाव ही कोई अचिन्त्य है। आहा..हा..!

ऐसी-ऐसी शक्तियाँ, जिसका स्वभाव कहा न यहाँ तो? यहाँ शुद्धकारणस्वभाव कहा। ऐसा कहा न? शुद्धकारणपर्यायस्वभाव, शुद्धकारणपर्यायस्वभाव। स्वभाव तो पहले लिया था, इसलिए अन्त में कहा कि वह कारणशुद्धपर्याय है। स्वभावपर्याय के दो भेद हैं न... स्वभावपर्याय के दो भेद हैं। समझ में आया? स्वभाव की दशा के पर्याय के ये प्रकार हैं। अन्त में भी कहेंगे। शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप से कहे। ऐसा आता है न? भाई! अन्त में आता है न? '**उक्तः समासतः शुद्धपर्याय-विकल्पः।**''**शुद्धपर्याय-विकल्पः।**' संस्कृत है। यह सब शुद्धपर्याय के भेदों का यह वर्णन किया। उसकी एक पर्याय का यह वर्णन किया। आहा..हा..!

पहला शुद्धनिश्चय। स्वाभाविक अकेला नहीं, परन्तु वापस शुद्धनिश्चय लिया। त्रिकाल-त्रिकाल शुद्धनिश्चयभाव। फिर भले नय नहीं डाला। समझ में आया? परन्तु यह सहजशुद्धनिश्चयभाव **अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले...** एक बात। **और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र...** सहज। उत्पाद-व्ययरूप, प्रगटरूप नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! इस परमात्मा के दरबार में अन्दर ऐसा भरा है, ऐसा कहते हैं। तू स्वयं परमात्मा है, हों! आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....उत्पाद-व्यय तो रहा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यहाँ उत्पाद-व्यय है नहीं। उत्पाद-व्यय की पर्याय तो बाद में कार्यस्वभावपर्याय में लेंगे। समझ में आया? पकड़ में आये, उतना पकड़ना, परन्तु कुछ गम्भीर गहरी बात है, इतना तो लक्ष्य में रहे न! आहा..हा..!

वही कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा अर्थ है। कारणशुद्धपर्याय इत्यर्थः। संस्कृत किया है। ओहो..हो..! यह बात तो पहले कर गये हैं। इसकी टीका गणधर से परम्परा से

की गयी है। मेरे जैसे मन्दबुद्धि का क्या काम है ? आहा..हा.. ! भाई ! पहली बात आ गयी है न ? गणधरों से परम्परा से जिसका अर्थ चला आया है। आहा..हा.. ! अरे ! महाव्रतधारी हैं, बापू ! सन्त हैं, मुनि हैं, दिगम्बर हैं। मात्र नग्न ऐसा नहीं। ऐसा नग्नपना तो अनन्त बार लिया और पंचम महाव्रत की क्रियाएँ भी अनन्त बार कीं। वह वस्तु नहीं। वह कोई धर्म नहीं। समझ में आया ? वह तो राग की पर्याय भी वास्तव में पुद्गल की पर्याय है। उसे कठिन पड़ता है। आहा..हा.. !

भगवान आत्मा चैतन्य का पिण्ड प्रभु, क्षेत्र भले असंख्य प्रदेश हो, परन्तु उसके भाव तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. स्वभावभाव से भरपूर हैं। जिसका स्वभाव है, उसे मर्यादा क्या ? जिसका स्वभाव है, उसके सामर्थ्य की मर्यादा / परिमितता क्या उसकी ? ऐसा भगवान आत्मा अनादि-अनन्त, जिसके स्वाभाविक गुण आदि से भरपूर और उन गुणसहित का तथा पूजित पंचम भावपरिणति भी साथ में रही हुई। आहा..हा.. ! उसे यहाँ कारणशुद्धपर्याय कहा जाता है। वह कारणशुद्धपर्याय पूजनीय है, कहते हैं। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : .....सब गुण....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब-सब इकट्ठे। यहाँ कोई एक पर्याय की... ऊपर में से... बात करते हैं। पूरा दल तो है ही परन्तु ऊपर की बात करते हुए सब इकट्ठा अभेद है। यह तो ऊपर में से इतना आवे तो सब दल की क्या बात करना ? ऐसा अभेद है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह तो वीतराग के विज्ञान का विज्ञान है। इसे स्वभाव शब्द प्रयोग किया था और इसे अनन्त चतुष्टय का स्वरूप शब्द प्रयोग किया था। इसका स्वरूप है न ? ऐसा कहते हैं। अपना रूप ही ऐसा है। ऐसी उनके साथ रही हुई यह... अहो ! जिसे उपादेयरूप से आदरणीय हो तो वह शुद्धकारणपर्याय है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों एकरूप पारिणामिकभाव से है। बस। धर्मास्ति आदि में पारिणामिकभाव से द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों हैं। उत्पाद-व्यय भी उनके पारिणामिकभाव से हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति में उत्पाद-व्यय पारिणामिकभाव से है। इसमें पारिणामिकभाव से उत्पाद-व्यय नहीं है। इससे इसे यह पारिणामिकभाव से कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल है। ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। समझ में आया ?

श्रीमद् में ऐसा टुकड़ा (वाक्यांश) एक बार रखा था। बड़े शब्द थे परन्तु वहाँ अर्थ नहीं। श्रीमद् में एक शब्द है। उसमें पुराने में बड़े अक्षर हैं। अब उसने निकाल दिया था। दूसरे ने बड़ा अक्षर निकाल दिया था। उसे कुछ नहीं लगा होगा। है न वह जैन? जैनधर्म में नहीं। है? ५०० ? वह पृष्ठ फट गया है। यह है, लो! ३६वाँ बोल है। ३५ में यह है कि सिद्धत्वपर्याय सादि-अनन्त और मोक्ष अनादि-अनन्त। यह जैनदर्शन मार्ग का स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। तब पारिणामिक पदार्थ निरन्तर साकार परिणामी होता है, तो भी अवस्थित... फट गया है, हों! साकार परिणामी हो तो भी अवस्थित परिणामी अर्थात् क्या? बड़ा अक्षर रखा है, हों! परन्तु फिर वापस निकाल दिया है। परन्तु उसका अर्थ...

मुमुक्षु : समझे न हों, इसलिए निकाल दिया होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु साकार शब्द बड़ा पड़ा था। परिणामी पदार्थ निरन्तर स्व-आकार परिणामी होता है वास्तव में। भेद नहीं होता, तथापि उसमें अव्यवस्थितपना, वह भी एक जैनमार्ग की स्थिति है। यह तब (संवत्) २००० में देखा था। देखो! वह नया है न? दूसरा समयसार है नया। वह है न अपने। स्व आकार परिणामी, ऐसा कहते हैं। जैसा अपना स्वभाव है, उस आकार से ही परिणामी होना चाहिए, तथापि पर्याय में वापस अव्यवस्थितपना। उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थितपना। आहा..हा..! स्व-आकार परिणाम में व्यवस्थितपना, तथापि उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थितपना। यह तब यह निकाला था। जैनमार्ग यह है। उनका मस्तिष्क बहुत-श्रीमद् का क्षयोपशम बहुत। ऐसा क्षयोपशम पुरुष हिन्दुस्तान में उस समय कोई नहीं था। इतना काम किया हुआ, परन्तु अमुक स्थिति बाहर नहीं आयी, उम्र छोटी और काम कर गये। देखो, यह! यह स्पष्ट शब्द हैं, उसमें फट गया है।

परिणामी पदार्थ निरन्तर स्व-आकार परिणामी। स्व-आकार इतने बड़े अक्षर में है। तो भी अव्यवस्थित परिणामीपना, अनादि से हो वह केवलज्ञान में भाष्यमान... यह सब विवाद उठाते हैं न? अनन्त हों वह किस प्रकार ज्ञात हों? अनादि हो वह किस प्रकार ज्ञात हो? परन्तु अनादि, अनादि ज्ञात होता है। जाननेवाला जैसे जानता है, वैसा है। है, वैसा जानता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न परिणामी पदार्थ निरन्तर स्व-आकार परिणामी होता है।

अव्यवस्थित परिणामी पर्याय में, तथापि उसका स्वभाव स्व-आकार परिणामी होता है। श्रीमद् राजचन्द्र। समयसार में नहीं। जैनधर्म की व्याख्या है उसमें। जैनमार्ग इस प्रकार से होता है। लोकसंस्थान, धर्म, अधर्म, आकाशद्रव्य जैनमार्ग में ऐसा स्वरूप है। जैन में है। अरूपीपना सूक्ष्म इत्यादि... इत्यादि की बात है। विभावितदशा पारिणामिकभाव से। विभाव का उपादानकारण वीर्य आदि का आत्मगुण का चेतनपना। जैनमार्ग में ऐसी व्याख्या है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय में भी स्व-आकार परिणामी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में भी स्व-आकार परिणामी होता है। एकरूप, ऐसा। और तथापि पर्याय में उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थितपना वापस। स्व-आकार पर्याय परिणाम हों, तथापि उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थितपना। यह एक जैनमार्ग का स्वभाव है कि जो वीतराग में देखा है और वैसा स्वरूप है।

मुमुक्षु : उत्पाद-व्यय है, इसलिए अव्यवस्थित...

पूज्य गुरुदेवश्री : अव्यवस्थित है न? उत्पाद-व्यय अव्यवस्थित है। उसमें एकपना कहाँ है। उत्पाद-व्यय में एकपना नहीं है। संसार है, वहाँ मिथ्यात्व का उत्पाद है। मोक्षमार्ग में निर्मल पर्याय और मलिन का थोड़ा उत्पाद होता है। सिद्ध में पूर्ण सिद्धपर्याय होती है अर्थात् उत्पाद-व्यय में एक सरीखा स्व आकार परिणाम नहीं रहा। चार द्रव्य में तो एक आकार उत्पाद-व्ययरूप है। ऐसा एक आत्मा में कारणपर्यायरूप स्व-आकार परिणामी पर्याय त्रिकाली अनादि-अनन्त है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म है, जाधवजीभाई!

मुमुक्षु : पूर्ण द्रव्य। द्रव्य, गुण और पर्याय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तीनों अभेद एकरूप हैं। उत्पादरहित चीज़। उत्पाद-व्यय व्यवहार है। ये तीनों होकर निश्चय है। समझ में आया? उत्पाद-व्यय, वह पर्याय व्यवहार है। सिद्धपर्याय भी व्यवहार है। आहा..हा..! वह अभूतार्थ है। ये तीन होकर भूतार्थ हैं। आहा..हा..! पकड़ में आये उतना पकड़ना। इसमें कुछ... लो, यह कारणशुद्धपर्याय की व्याख्या हुई। अब कार्यशुद्धपर्याय। यह उत्पाद-व्ययवाली।

मुमुक्षु : उसमें भी स्वभाव लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव लिया है। कार्य भी स्वभाव है। पर्यायस्वभाव। एक

अपेक्षा से पर्यायस्वभाव लिया है, एक अपेक्षा से भाव की अपेक्षा से विभावभाव लिया है, एक अपेक्षा से कर्मरहित लिया है यहाँ, एक अपेक्षा से पंचास्तिकाय में कार्यभाव को कर्म बिना कार्य नहीं, ऐसा लिया है। अपेक्षा समझनी चाहिए न, भाई!

फिर से। केवलज्ञान की पर्याय को स्वभाव क्यों लिया? यहाँ स्वभावपर्याय के दो भेद चलते हैं। एक कारणस्वभावपर्याय, कार्यस्वभावपर्याय। केवलज्ञान तो यहाँ भाव की अपेक्षा से तो क्षायिकभाव को विभावभाव कहा पहले और पंचास्तिकाय में कहा, कर्म बिना चार भाव होते नहीं। अपेक्षा रही न, कर्म के अभाव की तो अपेक्षा रही न! क्षायिकभाव, इतनी अपेक्षा। वह अपेक्षा यहाँ नहीं गिनी है।

यहाँ तो चार ज्ञान में कर्म के वर्तमान निमित्त की विद्यमानता है, इसलिए उन्हें विभाव गिना और विद्यमानता नहीं है, इसलिए उसे स्वभाव कहकर कार्य केवलज्ञानस्वभाव कहने में आया। कितने प्रकार? ऐई! वजुभाई! पहले कहा था कि केवलज्ञान स्वभाव है। चार ज्ञान विभाव है। ऐसा कहा था न? भाई! चार ज्ञान विभाव है, केवलज्ञान स्वभाव है - एक बात। और कहा कि केवलज्ञान विभावभाव है। चार भाव में उसे गिनने में आया है, इसलिए विभावभाव है, वह परभाव है। परमपारिणामिकभाव की अपेक्षा से विभाव अर्थात् विशेष भाव है, अपेक्षित है, पर के निमित्त के अभाव की अपेक्षा इसमें है, इसलिए इसे विभावभाव कहा जाता है। यहाँ वर्तमान इसे निमित्तपने की कर्म की अस्ति नहीं है, इसलिए इसे स्वभाव कार्यपर्याय कहा गया है। समझ में आया? कहो, प्रवीणभाई! इसके लिए सब भावनगर से आये हैं। यह तो अन्दर के खजाने की बातें हैं। खजाने में क्या-क्या भरा है। आहा..हा..! समझ में आया?

पहले चार ज्ञान में उन्हें विभाव गिनकर और केवलज्ञान को स्वभाव कहा। वापस पारिणामिकभाव की अपेक्षा से चार भाव में क्षायिकभाव को विशेष पर्याय की अपेक्षा से विभावभाव कहा था। यहाँ इसे-केवलज्ञान को स्वभावकार्यपर्याय कहते हैं। वर्तमान निमित्त का अभाव है, इससे इसे स्वभाव कहा जाता है। गजब, भाई! यह बात दिगम्बर शास्त्रों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। होती ही नहीं। यह तो परम्परा सत्य है। केवलज्ञानी परमात्मा का परम्परा से कहा हुआ सत्य है। इसलिए कहा न कि गणधरों से रची हुई यह टीका है, मैं तो रचनेवाला कौन? आहा..हा..!

मुमुक्षु : मार्ग शास्त्र में तो है नहीं। उसके स्पष्टीकरण की शुरुआत तो यहाँ से हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर सन्तों ने मार्ग सरल कर दिया है। मुनियों ने... आहा..हा..! सनातन सत धोध उत्सर्गमार्ग भगवान का, उसमें जन्मे, उसमें सन्त हुए, उन्होंने तो केवलज्ञान को ऐसे हथेली में बता दिया है और उसके कारणरूप वस्तु कैसी? इसकी स्पष्टता अन्यत्र कहीं है नहीं। परन्तु बाड़ा में उपजे, इसलिए इसे समझ में आ जाए, ऐसा नहीं है।

अब कार्यस्वभावपर्याय की व्याख्या में पहला नय न लेकर, पहले सादि-अनन्त लिया है। उसमें (कारणशुद्धपर्याय में) पहले **सहज शुद्ध निश्चय...** था। यहाँ सादि-अनन्त लिया है। नय बाद में लेंगे। समझ में आया? **सादि-अनन्त,...** वह **शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त,...** ऐसा था। यहाँ तो नयी पर्याय प्रगट हुई है; इसलिए प्रगट हुई पर्याय का वर्णन सादि-अनन्त कहकर, फिर क्या है? सदभूतव्यवहारनय है, ऐसा कहेंगे। वह (कारणपर्याय) तो प्रगट हुई नहीं है, वह तो अनादि ऐसी की ऐसी है, है और है। समझ में आया? ठीक, यह अब गुजराती में सब आया, हों! हिन्दी में ऐसा नहीं आ सकता।

सादि-अनन्त,... केवलज्ञान वह सादि-अनन्त है। केवलज्ञान अनादि-अनन्त नहीं है। पारिणामिकभाव से नहीं है। कारणपर्याय पारिणामिकभाव से अनादि-अनन्त है। यह क्षायिकभाव है, इसलिए सादि-अनन्त है। नयी प्रगट होती है। केवलज्ञानदशा नयी प्रगट होती है।

मुमुक्षु : वह अनादि-अनन्त और यह सादि-अनन्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : सादि-अनन्त। वह अमूर्त, यह भी अमूर्त। वह अतीन्द्रिय स्वभाववाली, यह भी अतीन्द्रिय स्वभाववाली। अब यहाँ अन्तर पड़ा।

शुद्धसद्भूतव्यवहार से,... वहाँ **सहज शुद्ध निश्चय से,...** पहले डाला था। कहते हैं कि केवलज्ञान शुद्ध है, सद्भूत है और व्यवहार है। एक समय की पर्याय, इसलिए व्यवहार है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध है, सद्भूत है, अस्ति है, एक समय की पर्याय भी अस्ति है, परन्तु एक अंश है; इसलिए व्यवहार है। समझ में आया? सब सूक्ष्म तो है परन्तु अब। यह हीराभाई साथ आये हैं न। तीन व्यक्ति आये हैं? तीन। ठीक। आहा..हा..!

अब वह कार्य लेना है न? वह किसके साथ रहा हुआ है, ऐसा सिद्ध करना है। वह

(कारणपर्याय) त्रिकाल साथ में रही हुई कहा था न? अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और आनन्द, चारित्र और आनन्द, उनके सहित कारणपर्याय थी। ये कार्यपर्याय किसके सहित, किसके साथ है? आहा..हा..! **केवलज्ञान-केवल-दर्शन-केवलसुख-केवलशक्तियुक्त...** ठीक। यह वीर्य वहाँ लिया परन्तु वहाँ अनन्त चतुष्टय का स्वरूप लिया था। यहाँ लिया **केवलशक्तियुक्त फलरूप...** यह फलरूप, इतना अन्तर डाला है। वह तो त्रिकाली स्वरूप था, वह कोई फलरूप नहीं था। यह तो फल आया है। अनन्त चतुष्टय त्रिकाल और कारणपर्याय, उसका आश्रय करके फलरूप पर्याय कार्यशुद्धपर्याय प्रगट हुई है। समझ में आया? उसमें स्वभाव अनन्त चतुष्टय का स्वरूप था। त्रिकाल है, इसलिए (ऐसा था)। यह तो फलरूप दशा है, यह फल पका।

फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की... है न? वे चार पहले कहे थे न? उसमें भी पहले चार कहे थे, और फिर अनन्त चतुष्टय कहा था। शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप वहाँ कहा था। समझ में आया? यह तो पर्याय प्रगट है, इसलिए अन्तःतत्त्वस्वरूप नहीं। उसमें **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** ऐसा। यह तो **अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलशक्तियुक्त फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की...** ऐसा। वह अन्तःतत्त्वस्वरूपवाली यह नहीं। अन्तःतत्त्व तो पारिणामिकभाव से त्रिकाल है।

फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की (अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली)... वहाँ कहा था कि **उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति...** जबकि यह उसके साथ परम उत्कृष्ट क्षायिक, इतना भेद कर दिया है। वह **साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति...** तब यह **परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति,...** पूजित-पूजित शब्द यहाँ नहीं। आहा..हा..! देखो न!

मुमुक्षु : पूजित आदरणीय....

पूज्य गुरुदेवश्री : आदरणीय वह त्रिकाल। उसके आदर में से फलरूप यह आती है। समझ में आया? यहाँ **परमोत्कृष्ट...** शब्द प्रयोग किया है। चार भाव है न? उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक,... उनसे भी यह शुद्ध परिणति। **वही कार्यशुद्ध-पर्याय है।** लो। उसमें थ न, **वही कारणशुद्धपर्याय है...** यहाँ कहते हैं, **वही कार्यशुद्ध-पर्याय है।**

(*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-२३, श्लोक-२७, गाथा-१५, बुधवार, फाल्गुन कृष्ण १२, दिनांक २४-०३-१९७१

नियमसार, जीव अधिकार, १५वीं गाथा। अन्तिम भाग रह गया था।

इस १५वीं गाथा में अधिकार स्वभावपर्याय और विभावपर्याय (का चलता है)। अर्थात् कि आत्मा तो द्रव्य और गुण से तो ध्रुव है। उसमें स्वभावपर्याय भी एक ध्रुव है - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। वस्तु स्वयं आत्मा, सत् ध्रुवरूप से, द्रव्यरूप से अनादि-अनन्त है। अनन्त गुण भी अनादि-अनन्त है। उसमें उसकी एक पर्याय, स्वाभाविक पर्याय, ध्रुवपर्याय, वह भी अनादि-अनन्त है। उसका आश्रय करने से धर्म होता है। समझ में आया? वस्तु शुद्ध चैतन्यपदार्थ, उसकी शक्ति ध्रुव, गुण और उसकी कारणपर्याय, वह भी ध्रुव है। उसका आश्रय करने से, उसकी दृष्टि करने से, धर्म अर्थात् आत्मा को शान्ति मिले। इससे उसे जन्म-मरण टले। दूसरी कोई रीति है नहीं। समझ में आया?

स्वभावपर्याय के दो प्रकार लिये न? कारणस्वभावपर्याय, त्रिकाल; एक, कार्यस्वभावपर्याय, यह केवलज्ञान आदि। केवलज्ञान, केवलदर्शन, ये सब कार्यस्वभावपर्यायहें हैं? यह उसका फल है। फल आया था न? फल आया था कहीं? परन्तु फल कहाँ आया था? बराबर ऐसा नहीं। फलरूप, बस यह। तुम बहिया पढ़नेवाले कहलाते हो न इसलिए।

आत्मा, जिसे धर्म करना है, अर्थात् कि जिसकी दशा में अनादि अधर्म है, उसे धर्म करना हो तो वह धर्म स्वभाव वस्तु में पड़ा हुआ है। समझ में आया? जो धर्म करना है - ऐसी जो निर्मल पर्याय, उन सब स्वभावों-अनन्त पर्यायों का पिण्ड, वे तो वस्तु में पड़ी है। वस्तु स्वयं अनादि-अनन्त सत् पदार्थ है। ऐसे उसके गुण अनादि-अनन्त सत् हैं, ऐसे उसकी पर्याय भी कारणपर्याय अनादि-अनन्त शुद्धनिश्चय से सत् है। भारी सूक्ष्म, भाई!

मुमुक्षु : कारणपर्याय का आश्रय लेना या परमपारिणामिकभाव का?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सब एक ही हो गया। उसका आया, इसलिए सबका आ गया न? तीनों इकट्ठे हैं, भिन्न कहाँ है? समझ में आया? ऐसी पूजनीय परिणति त्रिकाल, उसके सन्मुख का अन्तर्मुख मनन, ध्यान और ध्येय को पकड़कर लीनता, उसका नाम धर्म है। उसे वीतरागधर्म कहते हैं। बाकी बीच में यह दया, दान, व्रत, और भक्ति आदि के परिणाम हों, वह धर्म नहीं, वह धर्म नहीं।

इस अनन्त कारणपर्याय का फल, अनन्त अन्तर्मुख होने से **अनन्त चतुष्टय के साथ की (अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली) जो परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति,...** उसका वेदन, अनुभव, उसे मोक्षपर्याय अथवा कार्यशुद्धपर्याय कहते हैं। अरे! बस, यह तो आ गया है। पहली बात आ गयी है। उसे यहाँ कहते हैं। **अथवा** स्वभावपर्याय उसे भी कहा जाता है। षटगुण-हानि-वृद्धि पहले आ गयी। १४वीं गाथा में (आ गयी)। **अथवा, पूर्व सूत्र में कहे हुए सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से,...** सूक्ष्म बात है, भगवान! इसकी पर्याय में सूक्ष्म एक समय के षट्गुण हानि-वृद्धिवाली पर्याय होती है। यद्यपि वह भी पर्याय है; द्रव्य में वह नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म ऋजु-वर्तमान आत्मद्रव्य की वर्तमानदशा में सूक्ष्म ऋजु अर्थात् एक समय के परिणाम को सीधे देखना, ऐसे **अभिप्राय से, छह द्रव्यों को साधारण...** वह पर्याय है। अर्थपर्याय छह द्रव्यों में (साधारण है)। भगवान तीर्थंकर ने छह द्रव्य देखे हैं। उन प्रत्येक द्रव्य में यह षट्गुण-हानि-वृद्धिवाली पर्याय अवस्था में है। **छह द्रव्यों को साधारण...** है, अर्थात् सबमें है।

सूक्ष्म—ऐसी वे अर्थपर्यायें शुद्ध जानना... उन्हें शुद्धपर्यायें जानना। वह कारणशुद्धपर्याय है, वह तो बात की। परन्तु इसे भी शुद्धपर्याय जानना। यह शुद्धपर्याय जो है, वह व्यवहारनय का विषय है और कारणशुद्धपर्याय है, वह निश्चयदृष्टि द्रव्यार्थिक का विषय है।

मुमुक्षु : हानि-वृद्धिवाली....

पूज्य गुरुदेवश्री : हानि-वृद्धिवाली व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है न! आहा..हा..! समझ में आया?

(इस प्रकार) शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप में कहे। लो।

मुमुक्षु : सब ओर से शुद्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धपर्याय-अर्थपर्याय छहों द्रव्यों में। सिद्ध में भी है। जाननेयोग्य है। आदरणीय तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया?

अब, व्यंजनपर्याय कही जाती है। वह अर्थपर्याय कही अथवा कारणपर्याय कही अथवा कार्यपर्याय कही। **अब, व्यंजनपर्याय कही जाती है। जिससे व्यक्त हो-प्रगट हो, वह व्यंजनपर्याय है। किस कारण ?** वस्त्रादि ऐसे बाहर में दिखायी देते हैं न, ऐसे आकार

वस्त्र का, पात्र का, किसी चीज़ का ऐसे आकार दिखायी देता है, देखो! बाहर में यह आकार दिखायी देता है न, उस आकार का व्यंजनपर्याय कहा जाता है। वह **चक्षुगोचर होने से...** वह आकार चक्षु को गम्य है। **(प्रगट होती है)...** वे अवस्थायें—समय-समय में व्यंजन आकृति की पर्याय छह द्रव्यों में प्रगट होती है।

अथवा, सादि-सान्त मूर्त विजातीय-विभावस्वभाववाली होने से,... अब, वह व्यंजनपर्याय, इस आत्मा की विकारी व्यंजनपर्याय। यह मनुष्यगति, देवगति आदि है न? वे सादि-सान्त हैं। वह आकृति-चार गति की पर्याय उत्पन्न होती है और नाश होती है। वह **सादि-सान्त मूर्त विजातीय-विभावस्वभाववाली होने से, दिखकर नष्ट होनेवाले स्वरूपवाली होने से (प्रगट होती है)**। शरीर का आकार लिया, भाई! शरीर का आकार मूर्त है न, मूर्त? विजातीय है न? चैतन्य से भिन्न। उसे जीव की आकृति है।...परन्तु उसके शरीर की आकृति यह होवे न? यह शरीर-मिट्टी की, यह मूर्त है - जड़ है; चैतन्य से विजातीय है। इस जड़ का आकार, चैतन्य अरूपी भगवान से विजाति है। वह **विजातीय-विभावस्वभाववाली होने से, दिखकर नष्ट होनेवाले स्वरूपवाली होने से (प्रगट होती है)**। समय-समय में शरीर की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ जड़ में, जड़ की होती हैं। कल नीचे नोट (फुटनोट) रह गया था। प्रश्न हुआ था, नहीं? मनहर या कोई कहता था। नीचे नोट है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ की आकृति यह....

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...ले लेना। नीचे है नोट।

सहजज्ञानादि स्वभाव-अनन्त चतुष्टययुक्त.... है नीचे? भगवान आत्मा वस्तु है। उसमें स्वाभाविक ज्ञान आदि-अनन्त चतुष्टयसहित कारणशुद्धपर्याय में से.. वह सहित आया था न पाठ में? अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की - ऐसा था न? इसलिए यहाँ अनन्त चतुष्टयसहित (कहा है)। भगवान आत्मा वस्तु है। उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य अथवा सुख, यह अनन्त चतुष्टय ध्रुवरूप से आत्मा में अनादि पड़े हैं। इसकी खान में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त बल, अनन्त वीर्य आदि वह सामान्य ध्रुवरूप से आत्मा के स्वभाव में पड़े हैं। आहा..हा..!

यह ***अनन्त चतुष्टययुक्त कारणशुद्धपर्याय....*** कारणशुद्धपर्याय जो त्रिकाली अनादि-अनन्त निर्मल ध्रुव, उसमें से ***केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टययुक्त कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है।*** लो, समझ में आया? केवलज्ञान, केवलदर्शन अरिहन्त भगवान को - परमेश्वर को प्रगट होते हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, विभुता सर्वव्यापक पर्याय अन्दर में—अनन्त में, ऐसी जो अनन्त पर्यायें प्रगट होती हैं, वे सब स्वभाव की अन्तर एकाग्रता से प्रगट होती है। अन्तर में से प्रगट होती हैं। है न? पर्याय में से प्रगट होती है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यह। यह तो त्रिकाली पर्याय कही न! वह कहाँ वर्तमान पर्याय में से पर्याय आती है? समझ में आया? वर्तमान पर्याय जो प्रगट है, उसमें से नयी पर्याय नहीं होती। यह तुम्हारा प्रश्न किया। 'पालीताणा' कहा था। प्रश्न पूछा था न कि पर्याय में से पर्याय होती है? तो कहा - हाँ! क्यों? कि दस परमाणु में से पंच परमाणु का स्कंध हो, वह पर्याय में से पर्याय हुई, ऐसा जवाब दिया था। कुछ खबर नहीं होती। बड़े आचार्य (कहलाते हैं)। समझ में आया? दस परमाणु हैं न? ये दस रजकण हैं। यह तो स्थूल है, परन्तु इसका पोईन्ट, अन्तिम रजकण, अन्तिम टुकड़ा, अन्तिम। एक, दो तीन - ऐसे दस परमाणु का पिण्ड हो, वह विभाविक पर्याय है और फिर पाँच परमाणु इकट्ठे हों तो पन्द्रह परमाणुओं का स्कंध हो। देखो, पर्याय में से पर्याय हुई या नहीं? कहाँ हुई पर्याय में से पर्याय? तर्क तो क्या करें अब? वह तो दस परमाणुओं की पर्याय का स्कन्ध था, उसका व्यय होकर, पाँच इकट्ठे होकर उत्पादरूप से पन्द्रह परमाणु के स्कन्ध की पर्याय उत्पन्न हुई। नयी हुई। पर्याय में से पर्याय कहाँ से आयी? अरे! मूल तत्त्व की बात की खबर नहीं होती और यह धर्म.. धर्म.. धर्म.. जगत में चलता है। धूल में भी कहीं धर्म नहीं। शत्रुंजय में नहीं और सम्मेदशिखर में भी नहीं।

मुमुक्षु : पर में कहाँ है....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाश्रय में भी नहीं और मन्दिर में भी नहीं।

मुमुक्षु : यहाँ तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में है। समझ में आया? आत्मा अनन्त आनन्द आदि

स्वभाव, उसकी जो कारणपर्याय, उसमें से यह पर्याय प्रगट होती है, ध्रुव में से यह पर्याय उत्पाद होती है।

मुमुक्षु : यह पर्याय तो अमूर्त और वह मूर्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों अमूर्त हैं। दोनों अमूर्त हैं। केवलज्ञान पर्याय अमूर्त है। यह तो आ गया न! यहाँ शुद्ध चलता है। वह अन्दर आ गया न? सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय। व्यंजनपर्याय दूसरी। वह बात यहाँ नहीं है। नीचे तो अन्दर अर्थपर्याय जो त्रिकाल। आहा..हा..!

कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है। कान्तिभाई ने कल प्रश्न किया था न! मनन करने से... कल पूछा था न? वह इसमें मनन करने से नहीं। उस नियमसार में 'मनन करने से' शब्द पड़ा है - भाई में—शीतलप्रसादजी में। शीतलप्रसादजी में है, खबर है। उसमें है। कारणशुद्धपर्याय का मनन करने से—ऐसा शब्द वहाँ शीतलप्रसादजी में पड़ा है। उस दिन पढ़ा था, पुरानी पुस्तक में। यहाँ नहीं रखी? कल रखी थी। मनन का अर्थ कि अन्तर एकाग्रता। वापस कोई मनन का ऐसा अर्थ कर डाले कि विकल्प से ऐसे चिन्तवन करे (तो) ऐसा नहीं है। अन्तर आनन्दमूर्ति भगवान शुद्ध आनन्द का धाम आत्मा है, उसमें अन्दर स्थिर हो जाना। उसमें से उसे केवलज्ञान आदि प्रगट होते हैं। कहो, समझ में आया?

पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति, वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्ध क्षायिकभावपरिणति, वह कार्यशुद्धपर्याय है। ऐ... प्रकाशदासजी! कभी सुनी भी नहीं, इसलिए समझने में कठिन पड़े, ऐसी बात है। यह आत्मा वस्तु है न? वस्तु। अस्ति है न? सत्तावाला पदार्थ है। यह शरीर, वह तो मिट्टी जड़ है। इसकी सत्ता तो जड़ है। इसकी सत्ता का अस्तित्व चैतन्य में नहीं है और चैतन्य की सत्ता के कारण यह सब सत्तावाली चीज़ें हैं, ऐसा नहीं है। यह तो भिन्न-भिन्न चीज़ें हैं। जड़ मिट्टी है, धूल है। आत्मा एक सत्तावाली, अस्तित्ववाली चीज़ भगवान अन्दर है। उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप से, ध्रुवरूप से पड़े हैं। ऐसे अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द के चतुष्टय-चार स्वरूपसहित अनादि-अनन्त, समुद्र की सपाटी की भाँति कारणशुद्धपर्याय जो ध्रुव है, उसमें एकाग्र होने से परिणाम को परिणामी में एकाकार करने से इसे धर्म की पर्याय प्रगट हुई और पूर्ण पर्याय केलवज्ञानादि प्रगट होते हैं। ऐसी बात है। आहा..हा..! समझ में आया?

अब इस ओर आया। ३९ पृष्ठ पर। **पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना...** क्या कहते हैं? पर्यायी अर्थात् पर्याय का धारक, ऐसा व्यवहार से तो यहाँ कहना है न! ऐसा द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा। पर्यायी आत्मा अर्थात् पर्यायवाला द्रव्य आत्मा, ऐसा। भगवान आत्मा **पर्यायी...** अर्थात् द्रव्यस्वभाववाला आत्मा, उसके **ज्ञान बिना...** वस्तु भगवान शुद्धचैतन्य द्रव्य ध्रुव, नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। केवलज्ञानी तीर्थंकर को वह प्रगट हुआ है। वह अवस्था अन्दर में थी, उसमें से प्रगट हुई है, वह कहीं बाहर से नहीं आती। समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा, **पर्यायी आत्मा...** ऐसा। पर्यायी अर्थात् द्रव्य आत्मा, ऐसा। पर्याय आत्मा नहीं, परन्तु **पर्यायी आत्मा...** अर्थात् द्रव्य आत्मा। पर्याय का धारण करनेवाला आत्मा, यह जरा कठिन पड़े, इसलिए ऐसा कर डाला। जैसे पर्याय को धारण करनेवाला, फिर द्रव्य, पर्याय को धारण करता है। प्रमाण की अपेक्षा से वह बराबर है। प्रमाण की अपेक्षा से द्रव्य, पर्याय को धारण करता है, इस अपेक्षा से बराबर है, परन्तु निश्चय की अपेक्षा से द्रव्य, पर्याय को धारण नहीं करता। बहुत सूक्ष्म, बहुत। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है। अभी तो सब गप्प चलती है चारों ओर। समझ में आया? मूलमार्ग छोड़कर अन्यत्र (चलने लगे हैं।) आहा..हा..! **पर्यायी...** अर्थात् द्रव्य। पर्यायवाला। वापस ऐसा कहा। द्रव्य।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पर्यायवाला-ऐसा कहना, वह व्यवहार है, ऐसा। परन्तु वास्तव में वह पर्यायवाला अर्थात्? पर्याय जिसकी अवस्था में है, ऐसा जो द्रव्य। आत्मा में आनन्द है, वह आनन्द त्रिकाली है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का रस छलाछल भरा है। आहा..हा..! वह पर्यायी आत्मा। समझ में आया? उसकी दशा में, हालत में प्रगट होता है, वह तो पर्याय है, वह अवस्था है।

जैसे चौंसठ पहरी पीपर में चरपराहट भरी है। वह चौंसठ पहरी पूरी-पूरी भरी है, उसमें से प्रगट होती है। उसमें से प्रगट होती है, वह पर्याय है। चौंसठ पहरी बाहर प्रगट होती है न? उसी प्रकार यह आत्मा, चौंसठ अर्थात् रुपया-रुपया, पूर्ण आनन्द का धाम आत्मा है। उसमें अनन्त आनन्द है। जिसका स्वभाव है, उसकी मर्यादा क्या होगी? उसके क्षेत्र का छोटापन देखकर उसके भाव का छोटापन जानना, यह भ्रम है। समझ में आया?

उसका क्षेत्र शरीर प्रमाण भिन्न है। इतना क्षेत्र है, इसलिए उसका भाव अपरिमित नहीं और परिमित है, ऐसा नहीं है। पण्डितजी! आहा..हा..!

भगवान आत्मा अपने स्वक्षेत्र में है। इस शरीर के रजकण में वह नहीं। वह तो अन्दर भिन्न चीज़ है। यह (शरीर) तो मिट्टी है। अजीव, धूल, मिट्टी परमाणु पुद्गल है। उसमें आत्मा नहीं और आत्मा में वह नहीं। आत्मा में तो अनन्त ज्ञान-आनन्द आदि धामस्वरूप भगवान परिपूर्ण छलाछल भरा हुआ है परन्तु राग और निमित्त और एक समय की पर्याय की एकता में उसे भगवान आत्मा दिखायी नहीं देता। समझ में आया? अनादि से धर्म के नाम पर जैन का साधू हुआ, दिगम्बर हुआ, मुनि हुआ, जंगल में रहा, पंच महाव्रत पालन किये परन्तु वह सब एक समय की पर्याय की क्रीड़ा में रमता था। उस पर्यायरहित पूरा द्रव्य है, ऐसी उस पर इसकी दृष्टि की नहीं। आहा..हा..!

पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना... भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दधाम, जिसके आनन्द को लेने के लिए कहीं बाहर में आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! जिसे धर्म करने के लिए बाहर के किसी आश्रय और अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है। उसे धर्म करने के लिए द्रव्य के अवलम्बन की आवश्यकता है, ऐसा कहते हैं। यह बातें जरा समझनेयोग्य हैं। बाकी पर्याय स्वयं है, वह कहती है कि मैं तेरा अवलम्बन नहीं लेती। मैं एक सत् हूँ। यह तो पराश्रय में से निकालने को यहाँ अवलम्बन लेती है, ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : झुकाव वहाँ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का झुकाव होता है न! इस अपेक्षा से वहाँ द्रव्य का अवलम्बन लिया, (ऐसा कहा जाता है)। बाकी पर्याय, वह सत् है या नहीं? यह प्रभु महासत् है तो वह भी क्षणिक सत् है। क्षणिक सत् भी द्रव्य सत् का अवलम्बन नहीं लेती। आहा..हा..! अवलम्बन अर्थात्? उसका आश्रय ले ले तो दोनों एक हो जाते हैं। भिन्न रहकर, द्रव्य पर ध्येय करके पर्याय प्रगट होती है। यह किस प्रकार का धर्म?

मुमुक्षु : अरे! प्रभु वीतराग का आपने दर्शाया, बापू!

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई कहे, ऐसा जैनधर्म होगा? भाई! जैनधर्म तो यह हरितकाय न खाना, कन्दमूल न खाना, रात्रि भोजन न करना, अमुक... अभी तक तो ऐसा सुना था। अष्टमी, चतुर्दशी, पर्व के अपवास करना, सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण

करना, ऐसा सुनते हैं। बापू! वह बातें दूसरी और धर्म दूसरी चीज़ है, भाई! वीतराग का धर्म कोई दूसरी चीज़ है। वह तो सब विकल्प की क्रिया के, राग की क्रिया की बातें हैं। समझ में आया? आहा..हा..! ऐ... प्रकाशदासजी! बहुत सूक्ष्म है, हों! आहा..हा..!

प्रभु कितना सूक्ष्म! कि जिसकी एक समय की पर्याय में श्रुतज्ञान की प्रगट पर्याय में लोकालोक समाहित हो जाये तो भी वह पर्याय बहुत जानने को बाकी रह गयी है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी उसकी एक समय की प्रगट पर्याय की इतनी ताकत! लोकालोक को जाने, तथापि जानने का हो वह पूरा जाने, ऐसी उसकी ताकत है। एक समय की प्रगट दशा में (ऐसी ताकत है) तो पूरा भगवान परिपूर्ण है। **पर्यायी आत्मा...** ऐ... प्रेमचन्दभाई! गजब बातें यह! धर्म नहीं परन्तु धर्म के नाम पर अभी तक सब ढकोसले किये हैं।

यह वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर, इन्द्र और गणधरों के समक्ष धर्म का ऐसा स्वरूप कहते थे। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्तर्मुख स्वभाव से भरपूर प्रभु को यहाँ पर्यायआत्मा कहा जाता है। आहा..! उसके **ज्ञान बिना...** उसके ज्ञान बिना **आत्मा, पर्यायस्वभावाला होता है;...** यह आत्मा तो एक समय की दशावाला हूँ, ऐसा यह मानता है। आहा..हा..! रागवाला माने, पुण्यवाला माने, कर्म के सम्बन्धवाला माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है, परन्तु एक समय की पर्यायस्वभाववाला मैं हूँ, यह मान्यता भी मिथ्यादृष्टि की है। यह सब कठिन बातें हैं, सेठी!

मुमुक्षु : एक समय की पर्यायवाला माना।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय जितना मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। त्रिकाल ज्ञायकभाव भगवान ध्रुवस्वरूप के ज्ञान बिना पर्यायस्वभाववाला चार गति में भटकता है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहा..हा..!

पर्यायी आत्मा के... वस्तु.. वस्तु... वस्तु.. भगवान अन्तरवस्तु, उसमें अनन्त गुणों का वास बसा हुआ है। ऐसी जो वस्तु, उसके ज्ञान बिना। यहाँ ऐसा नहीं कहा कि इसने यह दया, दान और व्रत नहीं पालन किये थे, इसलिए भटकता है। समझ में आया? ऐसा तो इसने अनन्त बार पालन किया है। यह तो भटकने के लक्षण हैं, यह यहाँ सिद्ध करते हैं। ऐई! आहा..हा..! मात्र भटकने का कारण, कि स्वयं वस्तु भगवान द्रव्यस्वभाव

चैतन्यध्रुव, जिसमें परिणाम का एक अंश का भी जिसके अन्दर प्रवेश नहीं, उस परिणाम से तो वह वस्तु भगवान खाली / शून्य है और उसके त्रिकाली स्वभावभाव से तो छलाछल भरा हुआ है, भरा हुआ छलाछल है। उसमें तो अनन्त केवलज्ञान और अनन्त आनन्द की पर्याय की सत्वरूप शक्ति तो पूरी भरी है। समझ में आया? मूल आत्मा की खबर नहीं और वह आत्मा सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। दूसरे सब बातें करे कि आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है, अद्वैत है, व्यापक है, अमुक है। इसका ध्यान करो। किसका ध्यान? वस्तु का भान न हो, उसे ध्यान कहाँ से आया? समझ में आया? आहा..हा..! देव-गुरु-शास्त्र के ज्ञान बिना, ऐसा इसमें नहीं कहा। नवतत्त्व के ज्ञान बिना भटकता है, ऐसा भी नहीं कहा।

मुमुक्षु : प्रभु!... भूमिका, इससे पहले इसका...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहले और बाद में कुछ है नहीं। यह बाद में करेगा, उसका बाद में रह जायेगा। ऐई!

मुमुक्षु : यह वस्तु समझानेवाले देव-गुरु-शास्त्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देव-गुरु-शास्त्र-वास्त्र उसमें कहीं है नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र जिस पर्याय ने जाने, वह पर्याय इसमें नहीं। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं है। ऐ.. लालजीभाई! यह तो सब क्रीड़ा अलग प्रकार की है। आहा..हा..! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मार्ग की रीति कोई अलग है। जगत कहीं चलता है और मानता है कि हम भगवान का धर्म करते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो दो बातें ली हैं कि **पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा,...** स्वयं **पर्यायस्वभावाला होता है;...** द्रव्यस्वभाववाला माना नहीं, इसलिए पर्यायस्वभाववाला माना है, ऐसा कहते हैं। गजब टीका, ओहो..हो..! टीका तो कोई टीका! इस एक लाईन में इतना भरा है। गजब बात है। आहा..हा..! **पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा,...** स्वयं अपने त्रिकाली द्रव्य के ज्ञान बिना, वह आत्मा पर्यायस्वभाववाला होता है। एक समय की अवस्थावाला वह मानता है। बस, इसलिए वह मिथ्यात्व है और उसके कारण चार गति के कारण का सेवन करता है। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े, महँगा लगे, इसलिए बेचारे इस

रास्ते से निकल गये और सस्ता पड़े उसमें घुस गये। सस्ता नहीं परन्तु महँगा पड़ेगा। भटकने का मार्ग है, सुन न! समझ में आया? लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो समझ में आये। प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करो, अपवास करो, अपवास आठ दिन में चौविध आहारत्याग कर डालो, लो। पर्यूषण के आठ दिन में चौविध आहारत्याग। तेरा लंघन है, सुन न अब। ऐ.. लंघन है, क्योंकि आत्मा क्या चीज़ है, वह ज्ञान बिना वह सब व्यर्थ है। समझ में आया? क्या करते हैं यह? महाजन के पास जाए और क्या करते हैं। लंघन करते हैं। क्या कहते हैं यह? जिद-हठ। वे हठ करते हैं यह। आत्मा अन्तर में भगवान परमेश्वर ने त्रिलोकनाथ ने कहा, ऐसा जो आत्मा का अन्तर अनन्त आनन्द का महास्वरूप, उसके भान बिना वे सब हठ करते हैं। हठ नहीं परन्तु कुछ दूसरा। पैसा माँगने के लिए बाबा आते हैं न? फिर पैसा देने में जरा देर लगे तो यहाँ छुरी मारे। हमें तो हिन्दी भाषा बहुत आती नहीं। यहाँ तो हमारी काठियावाड़ी भाषा है न। बाबा आते हैं न? बाबा! पैसा देने में थोड़ी देर लगे तो ऐसे छुरी लगावे। और बहुत कठिन हो जाए, इसलिए वह पैसा दे तो वापस उसे छुआकर और उसके खोली में डाल दे। पैसा ले ले वापस। वापस वह खून निकला हो न, उसे छुआकर अन्दर खोली में डाल दे। हमने देखा है। हमारी दुकान में आते थे। हमने तो बहुत देखा है न। उसमें भाई एक बार तप गये थे। नहीं दिया था तो ऐसा किया था। ऐसा सब चलता है।

यहाँ क्या कहना है? आहा..हा..! अरे! भगवान! तेरा अन्तर भगवान पर्यायआत्मा वस्तुस्वरूप के ज्ञान बिना जो कुछ तेरे एक अंश को भी मानकर जो कुछ क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, तप, वे सब त्रागा हैं। खून निकले और खून है। चार गति में भटकानेवाले वे भाव हैं। ऐसा कहते हैं। ऐई! मलूपचन्दभाई!....रात्रि में नींद नहीं आती होगी? कहो समझ में आया इसमें? आहा..हा..!

कहते हैं कि है तो स्वभावभाववाला आत्मा। त्रिकाल आनन्द आदि वस्तुस्वभाव अन्दर है, ऐसी त्रिकाली शक्ति के स्वभाववाला तत्त्व है। उसके भान बिना, उसके ज्ञान बिना, उसकी श्रद्धा बिना, ऐसा आत्मा पर्यायस्वभाववाला एक समय की अवस्था के भाव को माननेवाला-जाननेवाला मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? पहला-पहला है न आज तो अभी! सवा आठ से सवा नौ। वरना फिर सवा नौ का ध्यान रखना। क्योंकि पहला दिन है न। कहो समझ में आया इसमें? आहा..हा..! गजब बात की है, हों!

कहते हैं जिसे भगवान एक समय का प्रभु तू पूर्णमिदं पूरा आत्मा, अनन्त.. अनन्त.. आनन्द की दशा प्रगट परमात्मा को हो, वैसी अनन्त दशाओं को अन्दर समेटकर पड़ा है, ऐसा पिण्ड प्रभु, ऐसे आत्मा का जिसे स्वसन्मुख का ज्ञान नहीं, वह एक समय की पर्यायवाला, बहिर्मुखदृष्टिवाला है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई! और बनिये बेचारे साधारण व्यापारी हों, अब उन्हें सामायिक करनी हो तो एक घण्टे, दो घण्टे मिलें। कर आवे। उसे ऐसा समझना कठिन पड़ता है। इसकी अपेक्षा अष्टमी का एक उपवास कर डालना। धूल भी नहीं। त्रागा है तेरा, सुन न! अधर्म है, वहाँ धर्म नहीं। ऐ.. चिमनभाई! भारी कठिन काम, भाई!

इसलिए शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम से आत्मा, व्यवहार से मनुष्य होता है,... भाषा देखो! आहा..हा..! पुस्तक है न वजुभाई? देखो! यह कोई अलौकिक बातें हैं। वहाँ जलगाँव में कुछ नहीं मिलेगा। वीतरागी परमात्मा तीर्थंकरदेव का स्वरूप यह है। लोग कहते हैं, हम धर्म करते हैं।....जाओ, भगवान कहे वह सच्चा। परन्तु क्या? अभी समझे बिना? सच्चा किसका तू? अपने भगवान कहते हैं, वह सच्चा। क्या भगवान कहते हैं, वह सच्चा? परन्तु तुझे भान तो कुछ नहीं। भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरा स्वभाव अर्थात् त्रिकाली स्वभाव वस्तु के ज्ञान बिना का तू खाली और एक समय की पर्याय में रहा हुआ, क्रीड़ा में खेलता हुआ, मिथ्यादृष्टि है। इसलिए ऐसा जीव **शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम से आत्मा, व्यवहार से मनुष्य होता है,...** वस्तु में नहीं परन्तु पर्याय की दृष्टिवाला है, इसलिए वह पर्याय में शुभाशुभपरिणाम करके मनुष्य होता है। पर्याय ज्ञानवाला आत्मा, वह मनुष्य होता ही नहीं। उसे शुभाशुभपरिणाम होते ही नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसे कहाँ चार में-गति में कहीं नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु परिणाम ही नहीं। उसे विकल्प कहाँ है? वह तो भिन्न है। समझ में आया?

कहते हैं, **इसलिए शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम...** मनुष्य है न? मनुष्य। व्यवहार से मनुष्य होता है। निश्चय से कहीं आत्मा मनुष्य नहीं हो जाता, ऐसा कहते हैं। पर्यायदृष्टिवाला अर्थात् व्यवहारदृष्टिवाला व्यवहार से मनुष्य होता है, ऐसा कहते हैं। गजब भाई! लोगों के पास ऐसा धर्म परोसा गया है न, कि जिसमें धर्म की गन्ध नहीं। ऐसा परोसा गया है और थाली भरकर खाने बैठ गया है। पत्थर परोसे, पत्थर। पण्डितजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग बात है। अभी यह बात कहाँ है ? कहीं का कहीं लगाते हैं। कहो, समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि यह आत्मा वस्तु भगवान आत्मा, सिद्धसमान अपना स्वरूप। अरे! सिद्ध की पर्याय का सदृशपना भी जिसके द्रव्य को लागू नहीं पड़ता। ऐसी सिद्ध की अनन्त पर्यायें जिसके अन्तर में, आत्मा में है, ऐसा यह भगवान आत्मा देह के परमाणु के मन्दिर में अन्दर विराजमान है। जो तीर्थंकर, सर्वज्ञ हुए, वे सब वे दशाएँ कहाँ से आयी ? वह अन्तर वस्तु के स्वभाव में थी, उसमें से आयी है। ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना के प्राणी अनादिकाल से शुभ और अशुभ मिश्रभाव करे (और मनुष्य हों)। चार गति में भटकें। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

भगवान इस देह में चैतन्यमूर्ति प्रभु (विराजमान है)। ये रजकण तो मिट्टी की हड्डियाँ हैं ये तो। उनसे (भिन्न) अमृत का सागर अन्दर प्रभु (विराजमान है)। उसके भान बिना, उसके ज्ञान बिना, उसका आश्रय लिये बिना, अनादि से अज्ञानी एक समय की दशा की क्रीड़ा में रमते हुए, उसे शुभाशुभपरिणाम हों, तब मनुष्य होता है। व्यवहार से मनुष्य होता है; निश्चय से कहीं आत्मा, मनुष्य नहीं होता। आहा..हा.. ! **उसका मनुष्याकार, वह मनुष्यपर्याय है;...** लो, ठीक। **उसका मनुष्याकार, वह मनुष्यपर्याय है;...** आहा..हा.. ! अलग प्रकार की टीका ही गजब की है। आहा..हा.. !

केवल अशुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, नारक होता है,... नारकी में अनन्त बार गया क्यों ? (इसलिए) कि पर्यायदृष्टिवाला, एक समय की अवस्था की क्रीड़ा में रमता हुआ, वस्तु के स्वभाव की सन्मुखता को छोड़ता हुआ, एक समय की दशा में रमता हुआ, इसने नरक के ऐसे अशुभपरिणाम किये (कि वह) मरकर नरक में गया। पर्यायदृष्टिवाला ऐसे भाव करे, वह नरक में जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दूसरे प्रकार से कहें तो मिथ्यादृष्टि की ही यह व्याख्या है। पर्यायस्वभाववाला अर्थात् ही मिथ्यादृष्टि। आहा..हा.. ! अभी तो यह नियमसार चलता है। दोपहर को समयसार नाटक चलता है। दोनों बार यह टीका चलती है, लो यह तो समझने की चीज़ है। वाद-विवाद से कुछ पार पड़े ऐसा नहीं है। आहा..हा.. !

वस्तु भगवान आत्मा, कहते हैं कि अपनी जाति, वह तो नित्यानन्द की जाति है। पूर्ण शान्ति और पूर्ण ज्ञान की जातिवाला तत्त्व आत्मा है। ऐसे पूर्ण आत्मा को कृतकृत्य है, परिपूर्ण है, अचल है, अविनाशी है, ध्रुव है, नित्य है, अभेद है। ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना, उसके भान बिना इसने ऐसे मिश्र परिणाम भी अनन्त बार किये हैं। इसलिए इसे मनुष्यपना मिला, अशुभभाव किये (तो) नरक हुआ, नारकी हुआ। सम्यग्दृष्टि नारकी और मनुष्य नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि तो आत्मा के द्रव्यस्वभाव के भानवाला है, उसकी भान की दशा में तो वीतरागता ही उत्पन्न होती है। इसलिए उसे चार गति और चार गति के कारण, सम्यग्दृष्टि उनसे दूर हो गया है। समझ में आया? जेठाभाई! दूर हो गया। आहा..हा..!

अशुभभाव करने से... उसमें मिश्रपरिणाम से कहा था और यहाँ **अशुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, नारक होता है,...** ऐसा कहा है। उसमें परिणाम कहे थे, परन्तु यहाँ समझ लेना। केवल अशुभभाव से और उसका अशुभकर्म बँधने से **व्यवहार से आत्मा, नारक होता है,...** वह आत्मा अन्तरस्वरूप के सम्यक् भान बिना पंच महाव्रत पालनेवाला जैन का साधु भी अनन्त बार हुआ। हजारों रानियाँ छोड़कर जंगल में रहनेवाला। परन्तु पर्यायस्वभाववाला, द्रव्यस्वभाववाला नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! **उसका नारक-आकार वह नारकपर्याय है;...**

किंचित्शुभमिश्रित मायापरिणाम से आत्मा, व्यवहार से तिर्यञ्चकाय में जन्मता है,... किंचित्शुभमिश्रित लिया। माया / कपट / कुटिलता। आत्मा का दर्शन नहीं। आत्मा का ज्ञान नहीं, आत्मा कौन है, उसका भान नहीं। उस भानरहित, एक समय की पर्याय में ही खड़ा रहा हुआ, उसे ऐसे माया के-कपट के परिणाम हुए, (वह) मरकर ढोर होता है। कहो, समझ में आया? पशु-पशु। किंचित्शुभ थोड़ा साथ में। **आत्मा, व्यवहार से तिर्यञ्चकाय में जन्मता है, उसका आकार वह तिर्यञ्चपर्याय है....**

और केवल शुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, देव होता है,... दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, करुणा, कोमलता, ऐसे परिणाम पर्यायदृष्टिवाले को होते हैं। क्या कहा, समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को होते हैं। सम्यग्दृष्टि को वे परिणाम नहीं होते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..! **केवल शुभ...** अकेले पुण्यपरिणाम किये, देव होता है। आत्मा अन्तर आनन्द की मूर्ति भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वैसा वस्तु के स्वभाव का

ज्ञान नहीं, वस्तु के स्वभाव की दृष्टि सम्यक् नहीं, एक समय की पर्याय की लीनता में मिथ्याज्ञान और मिथ्यादृष्टि ऐसे दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा अनन्त बार किये और उनके कारण देव हुआ। समझ में आया?

शुभकर्म से... कहा है न? उसमें (तिर्यंच में) माया परिणाम लिये थे। उसमें (मनुष्य में) समुच्चय परिणाम पहले, दूसरे में अशुभकर्म लिया, तीसरे में वापस माया परिणाम लिये, चौथे में वापस केवल शुभकर्म लिया। यह तो सब एक प्रकार बताते हैं। परिणाम और कर्म... परिणाम और कर्म... समझ में आया? केवल शुभभाव से अकेले शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या ऐसे महीने-महीने के वर्षी तप का पारणा आदि के भाव है न, वे शुभभाव हैं, परन्तु है मिथ्यादृष्टि क्योंकि उसे स्वभाव की दृष्टि और वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं है। ऐसी पर्याय के एक समय के अंश को माननेवाले मिथ्यादृष्टि ऐसे परिणाम करें तो देव होते हैं। **उसका आकार वह देवपर्याय है।** लो, आकार, हों! **यह व्यंजनपर्याय है।** वह व्यवहारव्यंजनपर्याय मिथ्यादृष्टि को मिलती है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को नहीं। क्योंकि वह तो चार गति और चार गति के भाव से भिन्न है। स्वभाव से अभेद है और पर से भिन्न है। आहा..!

मुमुक्षु : व्यवहार से मुक्त?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुक्त ही है। व्यवहार से मुक्त ही है। यह तो पर्यायदृष्टिवाला तो व्यवहार से सहित ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा धर्म कहाँ से निकाला होगा यह? कोई कहे, समयसार, यह नया निकाला लगता है। कहाँ से क्या, अनादि का मार्ग भगवान का यह है। किसी का निकाला हुआ है? अनादि तीर्थंकर केवली परमात्मा ऐसा कहते आये हैं। अभी महाविदेह में भगवान विराजते हैं। वे विराजते हैं, वे कहते हैं, अनन्त होंगे वे ऐसा ही कहेंगे और ऐसी ही उनकी रीति है। आहा..हा..! सत्य हो, ऐसा सत्य कहें।

यह व्यंजनपर्याय है। इस पर्याय का विस्तार अन्य आगम में देख लेना चाहिए। यहाँ कहना है क्या? कि ऐसी व्यंजनपर्याय चार गति की मिथ्यादृष्टि को मिलती है। जिसे आत्मा के स्वभाव की दृष्टि का भान नहीं, उसे अंश पर जिसकी लीनता है, वह परिणाम में रमनेवाला है। परिणाम परिणामी के साथ में जिसने जोड़े नहीं हैं। समझ में आया? वे बहियाँ पढ़ा करे तो उसमें से कुछ ऐसा नहीं निकलता। आहा..हा..! यह तो भगवान के दरबार की बात है, भाई! परमेश्वर त्रिलोकनाथ... आहा..हा..! ऐसी बात अन्यत्र कहीं है नहीं।

श्लोक-२७

अब, १५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(मालिनी)

अपि च बहुविभावे सत्ययं शुद्धदृष्टिः,
सहजपरमतत्त्वाभ्यासनिष्णातबुद्धिः ।
सपदि समयसारान्नान्यदस्तीति मत्त्वा,
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।२७।।

(वीरछन्द)

बहु विभाव होने पर भी जो करते परम तत्त्व अभ्यास।
अतः प्रवीण हुई है जिनकी बुद्धि शुद्धदृष्टि का वास॥
''समयसार से अन्य कुछ नहीं'' वे नर यह श्रद्धा करते।
शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दर नारी के वल्लभ होते॥२७॥

श्लोकार्थ :—बहु विभाव होने पर भी, सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है - ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष, 'समयसार से अन्य कुछ नहीं है' — ऐसा मानकर, शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दरी का वल्लभ होता है।।२७॥

श्लोक-२७ पर प्रवचन

अब, १५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं — लो!

अपि च बहुविभावे सत्ययं शुद्धदृष्टिः,
सहजपरमतत्त्वाभ्यासनिष्णातबुद्धिः ।

सपदि समयसारान्नान्यदस्तीति मत्त्वा,
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।२७।।

आहा..हा..! देखो! क्या कहते हैं? कहते हैं कि अज्ञानी के तो विभावभाव जो हैं, वह पर्यायबुद्धिवाला है, इसलिए चार गति का कारण है। अब धर्मी को? जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य की दृष्टि हुई, द्रव्यस्वभाव का भान हुआ, उसे **विभाव होने पर भी,...** उसकी पर्याय में विभाव **होने पर भी, सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** आहा..हा..! समझ में आया? यह तो आत्मा भगवान, सहजपरमतत्त्व स्वभाविक परमस्वरूप भगवान आत्मा के **अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** कहो, समझ में आया? वह पर्यायस्वभाववाला लिया। अब द्रव्यस्वभाववाले को क्या होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

बहु विभाव होने पर भी,... धर्मी जीव को सम्यग्दृष्टि को वस्तु जो त्रिकाल द्रव्यस्वभाव, उसका उसमें अभ्यास होने से इस विभाव का अभ्यास उसे नहीं है, कहते हैं। आहा..हा..! विभाव होने पर भी विभाव का अभ्यास ज्ञानी को नहीं है। **सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** निपुण है न? आया था न? निष्णात है। यह लोग नहीं कहते? इस बावत् में यह व्यक्ति निष्णात है। भगवान कहते हैं कि जिसकी बुद्धि आत्मा के लिये निष्णात है। **सहज परमतत्त्व के अभ्यास...** करने में, अन्तर्मुख जाने में जिसकी बुद्धि निष्णात है। आहा..हा..!

ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष,... अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है, ऐसा लिया। ज्ञान लिया। **ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष, 'समयसार से अन्य कुछ नहीं है'...** ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, इसके सिवाय दूसरी कोई चीज़ नहीं है। **ऐसा मानकर, शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दरी का वल्लभ होता है।** वह (मिथ्यादृष्टि) चार गति में भटकता है। आत्मा के वस्तु पर्याय, आत्मा के भान बिना और श्रद्धा अनुभव बिना, एक समय की पर्याय की लीनतावाला चार गति में भटकता है। वस्तुस्वभाव होने पर भी उसका ज्ञान नहीं है, इसलिए इसमें भटकता है। इसको विभाव होने पर भी स्वभाविक परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि निष्णात हो गयी है।

अहो! मैं तो पुण्य-पाप की क्रिया के विकल्प से भी भिन्न हूँ। यह दया, दान, व्रत

के विकल्प भी विभाव और आस्रव हैं। ऐसा जिसे आत्मतत्त्व का अन्तर में अभ्यास हुआ है, उसे समयसार से अधिक कुछ नहीं है। इस भगवान आत्मा से उत्कृष्ट कोई चीज़ नहीं है। ऐसी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान की रमणता होने से। देखो न! है न? पहले ज्ञान लिया और फिर दृष्टि ली। समयसार जैसा दूसरा कुछ नहीं है। उसमें रमता है। **शीघ्र परमश्रीरूपी...** वह अल्पकाल में मुक्तिरूपी सुन्दरी का वल्लभ अर्थात् मुक्तिपने की पर्याय को प्राप्त होता है। वह (पूर्व कथित) मिथ्यादृष्टि जीव चार गति को प्राप्त करता है; सम्यग्दृष्टि मुक्ति को पाता है, ऐसी दो बातें ली हैं। विशेष लेंगे.....

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१६-१७

माणुस्सा दुवियप्पा कम्ममहीभोगभूमिसंजादा।
सत्त-विहा णेरइया णादव्वा पुढवि-भेदेण।।१६।।
चउदह भेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसिं वित्थारं लोय-विभागेषु णादव्वं।।१७।।

मानुषा द्वि-विकल्पाः कर्ममहीभोगभूमिसञ्जाताः।
सप्त-विधा नारका ज्ञातव्याः पृथ्वी-भेदेन।।१६।।
चतुर्दशभेदा भणितास्तिर्यञ्चः सुरगणाश्चतुर्भेदाः।
एतेषां विस्तारो लोक-विभागेषु ज्ञातव्यः।।१७।।

चतुर्गतिस्वरूपनिरूपणाख्यानमेतत्। मनोरपत्यानि मनुष्याः। ते द्विविधाः, कर्मभूमिजा भोगभूमिजाश्चेति। तत्र कर्मभूमिजाश्च द्विविधाः, आर्या म्लेच्छाश्चेति। आर्याः पुण्यक्षेत्र-वर्तिनः। म्लेच्छाः पापक्षेत्रवर्तिनः। भोगभूमिजाश्चार्यनामधेयधरा जघन्यमध्यमोत्तमक्षेत्र-वर्तिनः एकद्वित्रिपल्योपमायुषः। रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभिधानसप्त-पृथ्वीनां भेदान्नारकजीवाः सप्तधा भवन्ति। प्रथमनरकस्य नारका ह्येकसागरोपमायुषः। द्वितीय-नरकस्य नारकाः त्रिसागरोपमायुषः। तृतीयस्य सप्त। चतुर्थस्य दश। पञ्चमस्य सप्तदश। षष्ठस्य द्वाविन्शतिः। सप्तमस्य त्रयस्त्रिन्शत्।

अथ विस्तारभयात् सङ्क्षेपेणोच्यतो। तिर्यञ्चः सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तकापर्याप्तकबादरैकेन्द्रिय-पर्याप्तकापर्याप्तकद्वीन्द्रियपर्याप्तकापर्याप्तकत्रीन्द्रियपर्याप्तकापर्याप्तकचतुरिन्द्रियपर्याप्तका-पर्याप्तकासञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकापर्याप्तकसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकापर्याप्तकभेदाच्चतुर्दशभेदा भवन्ति। भवनव्यन्तरज्योतिःकल्पवासिकभेदाद्देवाश्चतुर्णिकायाः। एतेषां चतुर्गतिजीवभेदानां भेदो लोकविभागाभिधानपरमागमे दृष्टव्यः। इहात्मस्वरूपप्ररूपणान्तरायहेतुरिति पूर्वसूरिभिः सूत्रकृद्भिरनुक्त इति।

हैं कर्म-भूमिज, भोग-भूमिज मनुज की दो जातियाँ।
अरु सप्त पृथ्वीभेद से हैं सप्त नारक राशियाँ॥१६॥

तिर्यञ्च चौदह भेदवाले, देव चार प्रकार के।
इन सर्व का विस्तार है, ज्ञातव्य लोकविभाग से॥१७॥

अन्वयार्थ :—[मानुषाः द्विविकल्पाः] मनुष्यों के दो भेद हैं : [कर्ममहीभोगभूमि-संजाताः] कर्मभूमि में जन्मे हुए और भोगभूमि में जन्मे हुए; [पृथ्वीभेदेन] पृथ्वी के भेद से [नारकाः] नारक [सप्तविधाः ज्ञातव्याः] सात प्रकार के जानना; [तिर्यञ्चः] तिर्यञ्चों के [चतुर्दशभेदाः] चौदह भेद [भणिताः] कहे हैं; [सुरगणाः] देवसमूहों के [चतुर्भेदाः] चार भेद हैं। [एतेषां विस्तारः] इनका विस्तार [लोकविभागेषु ज्ञातव्यः] लोकविभाग में से जान लेना।

टीका :—यह, चार गति के स्वरूपनिरूपणरूप कथन है।

मनु* की सन्तान वह मनुष्य है, वे दो प्रकार के हैं — कर्मभूमिज और भोगभूमिज। उनमें कर्मभूमिज मनुष्य भी दो प्रकार के हैं — आर्य और म्लेच्छ। पुण्यक्षेत्र में रहनेवाले, वे आर्य हैं और पापक्षेत्र में रहनेवाले, वे म्लेच्छ हैं। भोगभूमिज मनुष्य, आर्य नाम को धारण करते हैं; जघन्य, मध्यम अथवा उत्तम क्षेत्र में रहनेवाले हैं और एक पल्योपम, दो पल्योपम अथवा तीन की आयुवाले हैं।

रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा नाम की सात पृथ्वी के भेदों के कारण, नारकजीव सात प्रकार के हैं। पहले नरक के नारकी, एक सागरोपम की आयुवाले हैं; दूसरे नरक के नारकी, तीन सागरोपम की आयुवाले हैं; तीसरे नरक के नारकी, सात सागरोपम की आयुवाले हैं; चौथे नरक के नारकी, दस सागरोपम; पाँचवें नरक के सत्रह सागरोपम; छठवें नरक के बाईस सागरोपम और सातवें नरक के नारकी, तैंतीस सागरोपम की आयुवाले हैं।

अब, विस्तार के भय के कारण संक्षेप से कहने में, तिर्यंचों के चौदह भेद हैं - (१-२) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त (३-४) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और

---

* भोगभूमि के अन्त में और कर्मभूमि के आदि में होनेवाले कुलकर मनुष्यों को आजीविका के साधन सिखाकर लालित-पालित करते हैं; इसलिए वे मनुष्यों के पिता समान हैं। कुलकर को मनु कहा जाता है।

अपर्याप्त, (५-६) द्वीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (७-८) त्रीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (९-१०) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (११-१२) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (१३-१४) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त।

देवों के चार निकाय (समूह) हैं - (१) भवनवासी, (२) व्यंतर, (३) ज्योतिष्क, और (४) कल्पवासी।

इन चार गति के जीवों के भेदों के भेद, लोकविभाग नामक परमागम में देख लें। यहाँ (इस परमागम में) आत्मस्वरूप के निरूपण में अन्तराय का हेतु होगा; इसलिए सूत्रकर्ता पूर्वाचार्यमहाराज ने (वे विशेष भेद) नहीं कहे हैं।

प्रवचन-२४, श्लोक २८-२९, गाथा-१६-१८, गुरुवार, फाल्गुन कृष्ण १४, दिनांक २५-०३-१९७१

नियमसार, जीव अधिकार। १६-१७वीं गाथा। १५ गाथा हुई।

माणुस्सा दुवियप्पा कम्ममहीभोगभूमिसंजादा।
सत्त-विहा णेरइया णादव्वा पुढवि-भेदेण।।१६।।

चउदह भेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसिं वित्थारं लोय-विभागेषु णादव्वं।।१७।।

हैं कर्म-भूमिज, भोग-भूमिज मनुज की दो जातियाँ।
अरु सप्त पृथ्वीभेद से हैं सप्त नारक राशियाँ॥१६॥

तिर्यञ्च चौदह भेदवाले, देव चार प्रकार के।
इन सर्व का विस्तार है, ज्ञातव्य लोकविभाग से॥१७॥

टीका : — यह, चार गति के स्वरूपनिरूपणरूप कथन है। चार गति के स्वरूप के (निरूपणरूप) कथन है। निरूपण अर्थात् कहनेरूप। **मनु की सन्तान वह मनुष्य है,...** मनु है न? मनु—कुलकर। अन्यमति में आता है, मनुस्मृति ग्रन्थ। यह कुलकर है न? नीचे (अर्थ) है, देखो! ***भोगभूमि के अन्त में...*** यह भोगभूमि होती है न? जुगलिया। उसके अन्त में जुगलिया पूरे हो, तब ऐसी मनुष्य भूमि में। ***कर्मभूमि के आदि में...*** जैसे ऋषभदेव भगवान के पहले भोगभूमि का अन्त आ गया और वहाँ से कर्मभूमि की शुरुआत हो गयी।

ऋषभदेव भगवान से। ***होनेवाले कुलकर...*** उसमें होनेवाले कुलकर। यद्यपि ऋषभदेव भगवान से पहले भी कुलकर होते हैं। ***मनुष्यों को आजीविका के साधन सिखाकर...*** उस समय आजीविका के साधन, कल्पवृक्ष सूख गये, कल्पवृक्ष नहीं थे, इसलिए कुलकर आजीविका के साधन सिखाते हैं। ऋषभदेव भगवान भी अन्तिम कुलकर थे।

लालित-पालित करते हैं;... व्यवहार की बात है। राजा स्वयं उस समय कुलकर बुद्धिवाले वे होते हैं। साधारण प्राणी लाखों-करोड़ों, उन्हें दूसरा साधन नहीं होता। जुगलिया थे। कल्पवृक्ष से जीते थे। कल्पवृक्ष समाप्त हो गये। उस समय यह मनुष्य-कुलकर ***लालित-पालित करते हैं; इसलिए वे मनुष्यों के पिता समान हैं। कुलकर को मनु कहा जाता है।*** लो! यह मनु शब्द पड़ा है सही न! वे सब कुलकर हैं। शास्त्र में तो ऐसा लेख है, कुलकर हैं, वे सब क्षायिक सम्यग्दृष्टि। ऋषभदेव भगवान भी अन्तिम कुलकर हैं। क्षायिक समकिती, तथापि सबको सिखाने का विकल्प होता है। वे लोग अनजान हैं। कैसे पकाना, वासन-बर्तन कुछ नहीं होते। सब अनजाने लोग थे। उन्हें ये सिखाते थे कि ऐसा करना... ऐसा करना... इसलिए उन्हें **मनु की सन्तान...** उनसे प्रवृत्ति चली, इसलिए उन्हें मनुष्य कहा जाता है।

वे दो प्रकार के हैं—कर्मभूमिज और भोगभूमिज। उनमें कर्मभूमिज मनुष्य भी दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ। यह कर्मभूमि है न। **पुण्यक्षेत्र में रहनेवाले, वे आर्य हैं...** यह पुण्यक्षेत्र है, इसमें रहनेवाले आर्य हैं। **पापक्षेत्र में रहनेवाले, वे म्लेच्छ हैं।** आर्यक्षेत्र के अतिरिक्त दूसरे सब पापक्षेत्र हैं। पाँच खण्ड हैं न? अन्तिम म्लेच्छ हैं। **भोगभूमिज मनुष्य, आर्य नाम को धारण करते हैं;...** समस्त भोगभूमियाँ जो होती हैं न? कल्पवृक्ष से जीवें, वे भी आर्य हैं, वे म्लेच्छ नहीं हैं।

उनमें **जघन्य, मध्यम अथवा उत्तम क्षेत्र में रहनेवाले हैं...** उनमें तीन प्रकार। **एक पल्योपम, दो पल्योपम अथवा तीन पल्योपम की आयुवाले हैं।** जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट तीन पल्य आयुष्यवाले होते हैं। लो! देवकुरु, उत्तरकुरु आता है न? वह मनुष्य की बात की है। भोगभूमिज और कर्मभूमिज।

अब नारकी की बात करते हैं। जीव अधिकार है न? जीव का त्रिकाल स्वरूप बताया और उसकी वर्तमान पर्याय में कितने प्रकार होते हैं, वह भी बताते हैं। नीचे नारकी हैं।

रत्नप्रभा,... नारकी का नाम रत्नप्रभा है। **शर्कराप्रभा,...** कंकर, **बालुकाप्रभा,...** बालू। **पंकप्रभा,...** कीचड़ **धूमप्रभा,...** धुँआ, **तमःप्रभा और महातमःप्रभा...** सात पृथ्वी के नाम हैं। भगवान ने सात नारकी (नरक पृथ्वियाँ) नीचे देखी हैं। इन **पृथ्वी के भेदों के कारण, नारकजीव सात प्रकार के हैं। पहले नरक के नारकी, एक सागरोपम की आयुवाले हैं;....** पहला नरक है, वहाँ एक सागरोपम का आयुष्य है। **दूसरे नरक के नारकी, तीन सागरोपम की आयुवाले हैं; तीसरे नरक के नारकी, सात सागरोपम की आयुवाले हैं; चौथे नरक के नारकी, दस सागरोपम; पाँचवें नरक के सत्रह सागरोपम; छठवें नरक के बाईस सागरोपम और सातवें नरक के नारकी, तैंतीस सागरोपम की आयुवाले हैं।** यह जीव का अधिकार है न? पहले तो स्वरूप से तो कारणस्वरूप भगवान आत्मा है, ऐसा वर्णन किया। त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवस्वभाव, वह कारण प्रभु, उसका आश्रय करने से धर्म होता है, ऐसा पहले कहा। उसमें से कार्यपरमात्मा प्रगट हो। वह पूर्ण उसके फलरूप से आनन्द की पूर्ण दशा को अनुभवते हैं। ऐसा वर्णन करके फिर यह जीव के अधिकार लिये।

अब, विस्तार के भय के कारण संक्षेप से कहने में, तिर्यंचों के चौदह भेद हैं... पशु। एकेन्द्रिय से लेकर। **(१-२) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (३-४) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (५-६) द्वीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (७-८) त्रीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (९-१०) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (११-१२) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (१३-१४) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त।** चौदह भेद हैं, लो।

देवों के चार निकाय (समूह) हैं - (१) भवनवासी,... नीचे हैं। **(२) व्यंतर, (३) ज्योतिष्क, और (४) कल्पवासी।** ...हैं। देखो! ये ज्योतिष के देव हैं, ऐसा कहा है।

इन चार गति के जीवों के भेदों के भेद, लोकविभाग नामक परमागम में देख लें। लोकविभाग नाम का शास्त्र है, उसमें से देखना। **यहाँ (इस परमागम में) आत्मस्वरूप के निरूपण में अन्तराय का हेतु होगा;...** यहाँ तो आत्मस्वरूप की व्याख्या है। इसीलिए विस्तार करने जाएँ, वहाँ अन्तराय होगा। **इसलिए सूत्रकर्ता पूर्वाचार्यमहाराज ने (वे विशेष भेद) नहीं कहे हैं।** उनका बहुत विस्तार नहीं किया है।

श्लोक-२८

[अब, इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, दो श्लोक कहते हैं-]

(मंदाक्रांता)

स्वर्गे वास्मिन्मनुज-भुवने खेचरेन्द्रस्य दैवा-
ज्ज्योतिर्लोके फणपतिपुरे नारकाणां निवासे।
अन्यस्मिन् वा जिनपतिभवने कर्मणां नोऽस्तु सूतिः,
भूयो भूयो भवतु भवतः पाद-पङ्केज-भक्तिः ।।२८।।

(वीरछन्द)

दैवयोग से हे प्रभु! यदि मैं पाऊँ स्वर्ग, नरक, नर-लोक।
विद्याधर, नागेन्द्र नगर हो या फिर होवे ज्योतिष-लोक॥
जिनपति के भवनों में अथवा अन्य कोई भी हो स्थान।
किन्तु न हो कर्मोद्भव, होवे पुनः पुनः तव भक्ति महान॥२८॥

श्लोकार्थ :—(हे जिनेन्द्र!) दैवयोग से मैं स्वर्ग में होऊँ, इस मनुष्यलोक में होऊँ, विद्याधर के स्थान में होऊँ, ज्योतिष्क देवों के लोक में होऊँ, नागेन्द्र के नगर में होऊँ, नारकों के निवास में होऊँ, जिनपति के भवन में होऊँ या अन्य चाहे जिस स्थान पर होऊँ, (परन्तु) मुझे कर्म का उद्भव न हो; पुनः पुनः आपके पादपंकज की भक्ति हो॥२८॥

श्लोक-२८ पर प्रवचन

स्वर्गे वास्मिन्मनुज-भुवने खेचरेन्द्रस्य दैवा-
ज्ज्योतिर्लोके फणपतिपुरे नारकाणां निवासे।
अन्यस्मिन् वा जिनपतिभवने कर्मणां नोऽस्तु सूतिः,
भूयो भूयो भवतु भवतः पाद-पङ्केज-भक्तिः ।।२८।।

(हे जिनेन्द्र!) दैवयोग से मैं स्वर्ग में होऊँ,... आहा..हा.. ! पुण्य के कारण मैं स्वर्ग में होऊँ। मुनि हैं, वे स्वर्ग में ही जाएँगे; इसलिए पहले स्वर्ग की बात ली है। पंचम काल के सच्चे सन्त-मुनि को केवलज्ञान नहीं हो सकता; इसलिए वे स्वर्ग में ही जाते हैं। सच्चे, हों! खोटे तो चाहे जिस व्यन्तर आदि में (जाते हैं)। सच्चे आत्मज्ञानी, ध्यानी, जिन्हें क्षण और पल में छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान आता हो, जिनकी निद्रा पौण सेकेण्ड के अन्दर ही हो, ऐसे मुनि दैवयोग से ऐसे पुण्य के कारण, हे नाथ! **मैं स्वर्ग में होऊँ, इस मनुष्यलोक में होऊँ,...** वहाँ से मनुष्यरूप से भी आऊँ, क्योंकि दूसरा कुछ उपाय नहीं है, **विद्याधर के स्थान में होऊँ,...** विद्याधर की भूमिकायें हैं, वहाँ कदाचित् जन्म हो, **ज्योतिष्क देवों के लोक में होऊँ,...** कदाचित् ज्योतिष में होऊँ। सब साधारण बात की। **नागेन्द्र के नगर में होऊँ,...** प्रवचनसार में विभाव लिया है न! मुनि कोई भवनपति आदि में भी उत्पन्न होते हैं। विराधक हो जाए तो वहाँ जाते हैं।

नागेन्द्र के नगर में होऊँ, नारकों के निवास में होऊँ,... कदाचित् कोई भव सम्यग्दर्शन का हुआ और आयुष्य बँध गया हो। जैसे श्रेणिक राजा। आत्मभान था, पहले नरक का आयुष्य बँध गया। नारकी में गये। पहले नरक में (गये)। **जिनपति के भवन में होऊँ...** लो! शाश्वत् जिनमन्दिर है न! उनमें कदाचित् मैं होऊँ। **या अन्य चाहे जिस स्थान पर होऊँ, (परन्तु) मुझे कर्म का उद्भव न हो;...** बस, यह एक बात। मैं तो आत्मा के ध्यान में रहूँ और कर्म की उत्पत्ति न हो, यह मेरी भावना है। कहो, समझ में आया? इसका अर्थ यह कि सम्यग्दर्शन में मैं रहूं। राग, शरीर और कर्म से रहित मेरा भगवान परमात्मस्वरूप ऐसा शुद्ध चैतन्य, उसके आनन्द में रहूँ। समझ में आया? इससे कर्म का उदय होगा नहीं। कर्म का उद्भव ही नहीं होगा। बन्धन ही नहीं। अबन्ध परिणामी आत्मा के भान के काल में उसे बन्धन है नहीं - ऐसा सिद्ध करते हैं। चाहे जहाँ होऊँ, परन्तु मैं तो मेरे आत्मा के भान में होऊँ; इससे मुझे कर्मबन्धन नहीं होगा। समझ में आया?

पुनः पुनः आपके पादपंकज की भक्ति हो। आहा..हा.. ! जिसे कर्म का उद्भव न हो, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसा कहना है। उसे तो **आपके पादपंकज की भक्ति हो।** जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ, परमात्मा, विकल्प उठे तो उनकी भक्ति हो, ऐसा कहते हैं। दो बातें स्थापित कीं। प्रभु! मैं चाहे जहाँ होऊँ, परन्तु मैं मेरे स्वभाव में होऊँ। क्षेत्र से चाहे जहाँ होऊँ,

परन्तु मेरा आनन्द, ज्ञानस्वभाव, ऐसा चैतन्यप्रभु, ऐसे भाव में मैं होऊँ, कि जिससे मुझे राग-द्वेष की उत्पत्ति ही न होवे और होवे तो भी वे पृथक् हैं; मेरे स्वभाव में हैं नहीं; और स्वभाव में न रह सकूँ, उस काल में, तो उस समय भगवान! आपके चरणकमल की भक्ति हो। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : भगवान की भक्ति करना, वह तो दोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष भी आता है न! दोष तो है। दोष किसका? आये बिना रहता नहीं। बीच में (साधकदशा में) आता है। दूसरे का राग न आकर ऐसा राग उसकी भूमिका में होता है - ऐसा बतलाते हैं। दोष भी आता है, आये बिना रहता नहीं। (न आवे) तो वीतराग हो जाए। शुभभाव तो आकुलता है, अग्नि है, भट्टी है, दुःख है, ज़हर है; परन्तु है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : किसी को न भी आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : न आवे, ऐसा रहता नहीं। थोड़े काल ही न आवे। एकदम न आवे, तो हो गया, मिथ्यादृष्टि हो जाए। थोड़ा काल... एकदम... तो उसे। पहले तो विकल्पभाव होता है न, भगवान ऐसे हैं, सर्वज्ञदेव ऐसे हैं। समझ में आया? यहाँ तो लम्बे काल की बात है न? मैं उसमें होऊँ... उसमें होऊँ... उसमें होऊँ... बाहर के संयोग क्षेत्र में होऊँ, स्वभाव के क्षेत्र से हटूँ नहीं, ऐसा कहते हैं। मेरे स्वभाव की भावना से हटूँ नहीं; इसलिए मुझे कर्मबन्धन उत्पन्न हो नहीं; और हो तो विकल्प ऐसा हो। ऐसा हो।

मुमुक्षु : हो, ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। **आपके पादपंकज की भक्ति हो।** इसका अर्थ ही यह। ऐसा भाव हो। जब तक वीतरागता न हो, (तब तक) आप त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिनपति वीतराग के प्रति वीतरागस्वभाव के स्वामी, जिन्होंने अन्तर में स्थिर होकर सब समाहित कर दिया है; राग को उड़ा दिया है। ऐसे वीतरागपति, जिनपति वे मेरे पतिरूप से-स्वामीरूप से हो तो विकल्प में उनकी भक्ति हो, ऐसा कहते हैं। यह तो व्यवहार से सब कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आवे अवश्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे आवश्य। आवे अवश्य, ऐसा कहे। व्यवहारनय से ऐसा कहे कि भक्ति कर - ऐसा भी कहे, परन्तु वास्तव में तो (भक्ति का भाव) आता है, उसका जाननेवाला है, परन्तु उस काल में मेरा ज्ञान ही ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। कि स्वभाव की उत्पत्ति न हो और विभाव की होने पर भी उसे ज्ञान में मैं जानूँ, ऐसी ज्ञान की मेरी दशा हो उस काल में—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कैसी जैनदर्शन की पद्धति है! नय, नय का जाल ऐसा है। इन्द्रजाल कहा न? उसमें उलझा जाए - ऐसा नहीं? ऐसी अटपटी बात है कि उसे समझने के लिए गहरी दृष्टि चाहिए - ऐसा कहते हैं। इसमें उलझाने की बात नहीं है। कोई कहे कि शुभभाव जहर है; हमें हो, तब तो उसकी भावना हो गयी। परन्तु होता है, आता है, हो जाता है, तो उसे कहा कि प्रभु! हो तो मुझे आपकी भक्ति हो। आपके पाद पंकज। पाद अर्थात् चरण, पंकज अर्थात् कमल। चरणकमल की भक्ति हो। अन्तर में वीतरागस्वभाव की भक्ति; बाहर में आप वीतराग के स्वभाव का विकल्प, बस!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों लेना। उस जयविराज में कुछ नहीं मिलता। कहो, समझ में आया? श्वेताम्बर में आता है न वह? मूल का ठिकाना नहीं होता और... पूरी बात (में) ही अन्तर है। क्या करना? मूलमार्ग का अन्तर है। उनकी कथनी सब तत्त्व से विरुद्ध है। ऐसी बात है। यह तो जो कथन का मेल है, उसे मेल कराते हैं। उस जयविराज में सब मिथ्या है। उसकी तो कथनी अकेली व्यवहार की है। यहाँ तो भानसहित की बात है। समझ में आया? आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई!

कारण कि अभी मैं पंचम काल का मुनि हूँ, इसलिए कुछ भव तो है, ऐसा कहते हैं। इसलिए कहीं होऊँगा तो सही - ऐसा कहते हैं, तो उस जिनपति के भवन में भी होऊँ, ऐसा कहते हैं, कमजोरी है। मेरी जाति नहीं, परन्तु अन्दर आये बिना रहता नहीं। **पुनः पुनः आपके पादपंकज की भक्ति हो।** पाद अर्थात् चरण; पंकज अर्थात् कमल। चरणकमल की ही **भक्ति हो।** निश्चय में वीतरागस्वरूप कारणपरमात्मा की भक्ति और व्यवहार में वीतराग परमात्मा की भक्ति - ये दो बातें करते हैं।

मुमुक्षु : दोनों एक साथ में होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एक साथ होती है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया?

श्लोक-२९

(शार्दूलविक्रीडित)

नानानून-नराधिनाथ-विभवा-नाकर्ण्य चालोक्य च,
त्वं क्लिश्नासि मुधात्र किं जडमते पुण्यार्जितास्ते ननु।
तच्छक्तिर्जिन-नाथ-पाद-कमल-द्वन्द्वार्चनायामियं,
भक्तिस्ते यदि विद्यते बहुविधा भोगाः स्युरेते त्वयि।।२९।।

(वीरछन्द)

विविध महावैभव नरेश के सुन-सुन कर अवलोकन कर।
हे जड़मति ! क्यों व्यर्थ प्राप्त करता तू क्लेश महादुखकर॥
वे मिलते हैं पुण्योदय से पुण्य मिले जिनपूजा से।
जिनचरणों की भक्ति तुम्हें यदि, बहुविधि भोग स्वयं होंगे॥२९॥

श्लोकार्थ :—नराधिपतियों के अनेकविध महा-वैभवों को सुनकर तथा देखकर, हे जड़मति, तू यहाँ व्यर्थ ही क्लेश क्यों प्राप्त करता है! वे वैभव, सचमुच पुण्य से प्राप्त होते हैं। वह (पुण्योपार्जन की) शक्ति, जिननाथ के पादपद्मयुगल की पूजा में है। यदि तुझे उन जिनपादपद्मों की भक्ति हो, तो वे बहुविध भोग तुझे (अपने आप) होंगे॥२९॥

श्लोक-२९ पर प्रवचन

दूसरा श्लोक। २९।

नानानून-नराधिनाथ-विभवा-नाकर्ण्य चालोक्य च,
त्वं क्लिश्नासि मुधात्र किं जडमते पुण्यार्जितास्ते ननु।
तच्छक्तिर्जिन-नाथ-पाद-कमल-द्वन्द्वार्चनायामियं,
भक्तिस्ते यदि विद्यते बहुविधा भोगाः स्युरेते त्वयि।।२९।।

नराधिपतियों के अनेकविध महा-वैभवों को सुनकर तथा देखकर, हे जड़मति,...

बड़े राजा, अरबोंपति, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव की वृद्धि देखकर, मानो ठाठबाट हो। अरे! यह क्या है, कहते हैं। **नराधिपतियों के अनेकविध महा-वैभवों को सुनकर...** उनके बड़े वैभव सुनकर **तथा देखकर,...** कदाचित नजर से देखने में आवे, बड़े। आहा..हा..! चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव। परन्तु क्या है, भाई!

हे जड़मति, तू यहाँ व्यर्थ ही क्लेश क्यों प्राप्त करता है! उसे देखकर तुझे प्रमोद क्यों आता है? कहते है। आहा..हा..! यह वैभव! क्या है यह? यह तो धूल है, कहते हैं। आहा..हा..! यह तो तुझे तेरे आत्मा के स्वरूप के ध्यान में कमजोरी का विकल्प आयेगा तो उसके फलरूप से तो आ जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : आश्वासन देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्वासन नहीं। उसका ऐसा स्वरूप फलरूप से होता है। तू ऐसा देखकर ऐसी इच्छा क्यों करता है?

व्यर्थ ही क्लेश क्यों प्राप्त करता है! वे वैभव, सचमुच पुण्य से प्राप्त होते हैं। देखो! लो! अभी के वैभव तो सब धूल जैसे हैं। समझ में आया? वे तो महापुण्य के वैभव- वासुदेव, बलदेव, तीर्थंकर। ओहो..हो..! इन्द्र (भी) जिन्हें ऐसे खम्मा-खम्मा करते हैं, तथापि वे तो उदास हैं। यह (वैभव) मेरा नहीं। मैं हूँ, वहाँ यह नहीं। समझ में आया? यहाँ तो सामग्री हो, उसे देखकर या सुनकर किसलिए विकल्प उठाता है? क्या है यह? वह चीज़ तो तुझे पुण्य से प्राप्त होती है।

वह (पुण्योपार्जन की) शक्ति, जिननाथ के पादपद्मयुगल की पूजा में है। भाषा कैसी है? देखो! ओहो..हो..! भगवान आत्मा वीतरागमूर्तिस्वरूप त्रिकाल ध्रुवस्वरूप वीतरागस्वरूप की जहाँ दृष्टि है, उसे **जिननाथ के पादपद्मयुगल की पूजा...** भगवान के चरणकमल युगल की पूजा में वह शक्ति है। कहते हैं कि तुझे भगवान की पूजा का विकल्प आवे, उसके फलरूप से तो तीर्थंकरपना; बलदेव, वासुदेव तो ठीक। समझ में आया? चक्रवर्तीपना तो सहज ही आयेगा। समझ में आया? अमृत की फसल पके, वहाँ तो साथ में थोड़ा भूसा होता है। भूसा की आशा किसलिए करता है? - ऐसा कहते हैं। आशा किसलिए करता है? भाई! होगा; हो, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। ऐसे.. खम्मा.. खम्मा.. खम्मा.. हाथियों का ठाठ चौरासी लाख, हिनहिनाते घोड़े, ऊपर हीरा-माणेक... क्या कहते

हैं उसे? उसके शृंगार। हाथी के और घोड़े के (शृंगार)। एक चक्रवर्ती, बलदेव। तीर्थंकर को तो—शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ (को तो) छह खण्ड का राज था। वह सब पुण्य का फल है। वह पुण्य का फल तो तुझे वीतराग भगवान के चरणकमल युगल की सेवा करने से सहज प्राप्त होगा, होगा। उसमें कुछ आदरनेयोग्य है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

जिननाथ के पादपद्मयुगल की.... पाद, पद्म अर्थात् कमल और युगल अर्थात् दो। भगवान के दो पादकमल की सेवा। आहा..हा..! अर्थात् कि परमात्मा के प्रति भक्ति का (भाव)। परमात्मा तो स्वयं ही है, जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान (हुए हैं), उसे सच्ची भक्ति है, उसे ऐसे पादकमल भगवान की भक्ति का विकल्प (आता है)। उसे तो सहज वह वस्तु तो आयेगी। कुछ माँगने जैसा नहीं है। जिसे विस्मयता, उसके वैभव की अधिकता है। आहा..हा..! समझ में आया?

बहुत विशाल धूमधाम से विवाह होता हो और घोड़ा-हाथी... काँच का वह क्या कहलाता है? बड़े काँच रखते हैं? बत्तियाँ, फूलवाड़ी, काँच की फूलवाड़ी रखते हैं न? दियाबत्ती और जगमग निकलता हो, ऐसे हजारों-लाखों लोग, घोड़े हिनहिनाते हों, हाथी आवे। आहा..हा..! उसमें वह वर घोड़े पर निकला हो और वे लोग... आहा..हा..! क्या है परन्तु? सुन न! वह सब पुण्य का-धूल का ठाठ है। तुझे तो जिनपति की भक्ति है तो ऐसे पुण्य सहज बन जाएँगे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुनि है न! वे स्वर्ग में जायेंगे। बड़ी ऋद्धि (प्राप्त होनेवाली है)। आराधक हैं। उनकी ऋद्धि का क्या कहना? वहाँ से निकलकर बड़े वैभवशाली राजा होंगे। समझ में आया? पश्चात् (उसे) छोड़कर मुनि होकर मोक्ष जाएँगे, ऐसा कहते हैं। बीच में ऐसा आएगा, कहते हैं। हो, आहा..हा..! वह पुण्य उपार्जन की शक्ति तो... ऐसा पुण्य, हों! अन्य पुण्य तो ठोठ विद्यार्थी जैसे हैं। यह तो तीर्थंकरों के पुण्य देखो, बलदेव के पुण्य देखो, चक्रवर्ती के, जिनके पुण्य के सामने नहीं ऐसा दिखाव। वे तो कहते हैं कि वीतराग परमात्मा स्वयं निजानन्द प्रभु की जिसे भक्ति अर्थात् भजन, उनका भजन जगा है, उसे बाकी रही हुई दशा में त्रिलोकनाथ की भक्ति का विकल्प आता है। उसके फल में वह आयेगा। उसमें तुझे कुछ इच्छा करने योग्य नहीं है। जाननेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

यदि तुझे उन जिनपादपद्मों की भक्ति हो,.... देखा! वीतराग त्रिलोकनाथ चैतन्य परमात्मा जिनेन्द्रदेव के अन्तर की भक्ति तो तुझे है। अब यदि ऐसी भक्ति का विकल्प हो, ऐसा कहते हैं। **तो वे बहुविध भोग तुझे (अपने आप) होंगे।** अपने आप आयेंगे। तुझे जलसा नहीं करना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बनावटी जलसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जलसा करते हैं न? पाँच वर्ष नौकरी को जाता हो, फिर जलसा करे। कुछ बड़ों को कहे, तुम ऐसा करना, इसकी शोभा कहलाये। पाँच वर्ष यहाँ रहा हूँ। पोपटभाई! यह सब पापानुबन्धी पुण्यवाले। यह तो पुण्यानुबन्धी पुण्य। आत्मा के आनन्द के भान में, जहाँ राग का आदर नहीं... आहा..हा..! ऐसे राग में जो पुण्य बँध जाये, वह सहज अपने आप बाह्य सामग्री आ जाएगी। यह जानने के लिए बात है, हों! सामग्री आवे तो ठीक, ऐसा यहाँ प्रश्न नहीं है। आहा..हा..! ठीक तो यह आत्मा भगवान, कारण प्रभु चैतन्य परमात्मा का आदर है और उसे देखकर वह पर्याय प्रगट हो—धर्मी को यह भावना होती है परन्तु बीच में ऐसा राग होवे तो उसके फलरूप से ऐसा आता है। उसे ज्ञेयरूप से जानने का ज्ञान ही उस प्रकार का खड़ा होगा। उस प्रकार के उसे ज्ञेय होंगे, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

गाथा-१८

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारा।
कम्मज-भावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो।।१८।।

कर्ता भोक्ता आत्मा पुद्गलकर्मणो भवति व्यवहारात्।
कर्मज-भावेनात्मा कर्ता भोक्ता तु निश्चयतः।।१८।।

कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रकारकथनमिदम्। आसन्नगतानुपचरितासद्भूतव्यवहारनयाद् द्रव्यकर्मणां कर्ता तत्फलरूपाणां सुखदुःखानां भोक्ता च, आत्मा हि अशुद्धनिश्चयनयेन सकलमोहराग-द्वेषादिभावकर्मणां कर्ता भोक्ता च, अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण नोकर्मणां कर्ता, उपचरिता-सद्भूतव्यवहारेण घटपटशकटादीनां कर्ता इत्यशुद्धजीवस्वरूपमुक्तम्।

है जीव कर्ता-भोगता जड़कर्म का व्यवहार से।
है कर्म-जन्य विभाव का कर्ता नियत नय द्वार से॥१८॥

अन्वयार्थ :—[आत्मा] आत्मा, [पुद्गलकर्मणः] पुद्गलकर्म का [कर्ता-भोक्ता] कर्ता-भोक्ता, [व्यवहारात्] व्यवहार से [भवति] है [तु] और [आत्मा] आत्मा, [कर्मजभावेन] कर्मजनित भाव का [कर्ता-भोक्ता] कर्ता-भोक्ता, [निश्चयतः] (अशुद्ध) निश्चय से है।

टीका :—यह, कर्तृत्व-भोक्तृत्व के प्रकार का कथन है।

आत्मा, निकटवर्ती अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से, द्रव्यकर्म का कर्ता और उसके फलरूप सुख-दुःख का भोक्ता है; अशुद्धनिश्चयनय से, समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म का कर्ता और भोक्ता है; अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से, (देहादि) नोकर्म का कर्ता है; उपचरित असद्भूतव्यवहार से घट-पट-शकटादिक का (घड़ा, वस्त्र, छकड़ा इत्यादि का) कर्ता है। ऐसा अशुद्धजीव का स्वरूप कहा।

गाथा-१८ पर प्रवचन

१८वीं गाथा।

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारा।
कम्मज-भावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो।।१८।।

है जीव कर्ता-भोगता जड़कर्म का व्यवहार से।
है कर्म-जन्य विभाव का कर्ता नियत नय द्वार से॥१८॥

यह, कर्तृत्व-भोक्तृत्व के प्रकार का कथन है। आत्मा, निकटवर्ती अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से, द्रव्यकर्म का कर्ता और उसके फलरूप सुख-दुःख का भोक्ता है;... देखो! अब नय डाला। कहते हैं कि आत्मा निकट अर्थात् नजदीक का। वे कर्म नजदीक में हैं न? स्वक्षेत्र में हैं न? अपने क्षेत्र में हैं, वहाँ कर्म है, इसलिए निकटवर्ती है। अनुपचरित है, दूर नहीं यहाँ नजदीक है। अनुपचरित अर्थात् उपचार नहीं। यह तो अनुपचार यहाँ नजदीक सम्बन्ध है, परन्तु असद्भूत है। वह आत्मा की पर्याय में नहीं है।

असद्भूतव्यवहारनय... निमित्त है। **व्यवहारनय से, द्रव्यकर्म का कर्ता...** ऐसा कहा जाता है। वास्तव में उनका कर्ता नहीं है, परन्तु नजदीक में परमाणु का परिणमन है, उसमें निमित्तरूप अज्ञानी के राग-द्वेष हैं, इसलिए उसे व्यवहार से द्रव्यकर्म का कर्ता कहने में आया है।

मुमुक्षु : अनुपचरित।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुपचरित, नजदीक। उसे घर-मकान आदि उपचरित। यहाँ नजदीक है तो उपचरित। निकट उपचरित - नजदीक में उपचार नहीं, परन्तु उपचार सम्बन्ध है नजदीक में। ऐसे असद्भूतव्यवहारनय से-झूठी दृष्टि से जड़कर्म का कर्ता। **उसके फलरूप सुख-दुःख...** अर्थात् संयोग। कर्म का फल संयोग है। यह राजपाट, कुटुम्ब, निर्धनता, दरिद्रता, यह उसका फल, उसे भोगता है, वह भी उस प्रमाण है। भोगता नहीं परन्तु नजदीक में दरिद्रता, निर्धनता आदि होती है; सधनता और धनाढ्यपना ऐसा नजदीक में होता है, इसलिए उसका फल भोगता है, ऐसा कहना वह असद्भूतव्यवहारनय

से-झूठे नय से कहा जाता है। क्योंकि उसे वह भोग नहीं सकता; मात्र अपने राग-द्वेष के अनुभव के काल में वे चीज़े निमित्तरूप हैं, इसलिए उन्हें भोगता है, ऐसा व्यवहार असद्भूत-झूठी दृष्टि से कहा जाता है। समझ में आया? इस शरीर को भोगता है, दाल-भात इत्यादि (भोगता है), यह कहना। उस काल में स्वयं को राग का जो अनुभव है, उस राग के अनुभव में, उन चीज़ों में निमित्तपना है; इसलिए उन्हें भोगता है, ऐसा झूठे नय से -व्यवहार से कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

एक बार कहा था न? बहुत वर्ष पहले की बात है। चारित्र आश्रम। ऐसा कि पुण्य किसे कहा जाता है? ऐसा प्रश्न किया था। कहा, पुण्य उसे कहा जाता है कि जो संयोग प्रयोग करे इतना। भोगे न वह? भोगे वह पुण्य नहीं, वह तो नया पाप है। उसे नहीं भोगता परन्तु उस ओर का झुकाव होकर राग आदि को भोगता है न? यह प्रश्न हुआ था (संवत्) १९८३ के वर्ष में। १७ और २७=४४ वर्ष पहले की बात है। यहाँ सोनगढ़ में चारित्र आश्रम है (उसमें) चारित्रविजय थे न? उन्होंने प्रश्न किया था। अभी थोड़े दिन पहले कहा था। ऐसा कि साधु को यह सब क्या? यह तो पुण्य हो, उसे भोगे। पुण्य को क्या भोगे? राग को भोगे, दुःख के भाव को (भोगे), तब उस पुण्य को भोगता है, ऐसा झूठे नय से कहने में आता है। उसके अस्तित्व में उसका भोगना आता नहीं। उस जड़ का भोगना, वह आत्मा की पर्याय के अस्तित्व में नहीं आता। वह तो बाहर दूर रहता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ऐसा मान बैठा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मानता है। पागल तो चाहे जो माने। आत्मा की वर्तमान पर्याय की अस्ति में यह शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वैभव का अनुभव इसकी पर्याय में आता नहीं। समझ में आया? द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। वस्तु त्रिकाल द्रव्य-गुण में तो कुछ है नहीं, परन्तु वर्तमान पर्याय-अवस्था है, उसमें जड़ का अनुभव नहीं आता। अनुभव तो उसे राग-द्वेष का, हर्ष और शोक का होता है परन्तु उस हर्ष-शोक के अनुभव में वह चीज़ निमित्त पड़ी। निमित्त अर्थात् व्यवहार और इसमें (आत्मा में) नहीं है, इसलिए असद्भूत। असद्भूतव्यवहारनय से भोगता है, ऐसा कहने में आता है। कहो, पोपटभाई! आहा..हा..! छह लड़के बैठे (हों)। पूज्य पिताश्री, पूज्य माताश्री। कल पत्र आया था न? दो के नाम थे। तुम बैठे थे या नहीं? सब सुना था। उसे लगे कि आहा..हा..! परन्तु यह इसका भोगना नहीं है। उनके शब्द हैं, वे तो जड़ हैं। जड़ यहाँ स्पर्श नहीं करते। आत्मा

की दशा में वर्तमान पर्याय में उस जड़ का आना है ही नहीं। जड़ स्पर्श नहीं करता। स्पर्श किये बिना उसे किस प्रकार भोगना?

मुमुक्षु : .....असर करे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल। असर क्या करे? जड़, जड़ में अस्तित्व की मौजूदगी, आत्मा की पर्याय में, पर्याय के अस्तित्व की मौजूदगी। इसकी पर्याय में उसके अस्तित्व की नास्ति। क्या कहा? राग और द्वेष का अनुभव, उसकी पर्याय में अस्ति और जड़ की पर्याय का अनुभव, इसमें नास्ति। उसका अनुभव कहाँ है? वह वस्तु तो यहाँ है ही नहीं। मात्र अनुभव में निमित्तपना पड़ा। पृथक् वस्तु है, इसलिए असद्भूतव्यवहारनय से भोगता है, ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। आहा..हा..! समझ में आया? यह जड़ की बात की। अब इसके विकार की बात करते हैं।

जड़ को भोगे, भोगा है परन्तु झूठे नय से, निमित्त देखकर, ऐसे कथन इसे ज्ञान करने के लिए है। आहा..हा..! किसे भोगे? भगवान स्वयं अरूपी। अभी लड़के पूछते थे, आत्मा अरूपी कैसे होगा? उसे रस, गन्ध, स्पर्श कहाँ है उसमें? वह तो रंग, गन्ध, स्पर्श का तो पृथक् रहकर जाननेवाला है। रंग, गन्ध, स्पर्श को छूकर जाननेवाला है?

मुमुक्षु : यह सब कौन विचार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के साढ़े सात बजे जाते हैं न वे लोग? जल्दी आये थे। एक व्यक्ति ने पूछा कि यह अरूपी आत्मा कैसे कहा?

अरूपी (कहा क्योंकि) उसे रंग, गन्ध, स्पर्श कहाँ है? उसमें रंग, गन्ध, स्पर्श है? रंग, गन्ध, स्पर्श का अस्तित्व तो जड़ में है। इसके अस्तित्व में वे नहीं, इसलिए यह अरूपी है। समझ में आया? बात सुनते हुए लोगों को प्रश्न तो उठे न।

आत्मा के अस्तित्व में तीन प्रकार : एक द्रव्य का अस्तित्व, गुण का अस्तित्व, पर्याय का अस्तित्व। अब पर्याय में भी एक शुद्ध और अशुद्ध दो का अस्तित्व, बस। इसके अतिरिक्त उसमें दूसरा अस्तित्व नहीं है। बराबर है? उसके अस्तित्व में, उसके क्षेत्र में, उसके भाव में वह द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्तियाँ और वर्तमान दशा है। उस दशा के दो प्रकार, एक शुद्ध और एक अशुद्ध। इतना अस्तित्व उसमें है, बस। इतना अस्तित्व उसमें है। अब उसमें यह दाल, भात, रोटी, स्त्री, कुटुम्ब, शरीर इसके अस्तित्व में वह है

ही नहीं। समझ में आया ? इसकी सत्ता में वह सत्ता है नहीं, तथापि उस सत्ता का अनुभव करता है—ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहारनय के कथन हैं। झूठे नय के (कथन हैं)। ज्ञान कराने के लिए (कहा) कि यह निमित्त ऐसा है। आहा..हा..! समझ में आया ?

भूख वास्तव में लगी हो ऐसे। भूख वह तो जड़ को होती है। जठराग्नि जड़ की दशा है। वह आत्मा को स्पर्श करती है ? उसमें और शरीर निरोगी हो तथा झरते हुए घी का गर्म हलुवा आया हो। सफेद गेहूँ का। सफेद गेहूँ का। कुछ आवश्यकता न हो। फटफट उठे अन्दर। मानो मैं कुछ खाता हूँ परन्तु क्या खाता है तू ? सुन न! आहा..हा..! तुझे तो यह दिखायी देता है कि यह है। यह मुझमें है, ऐसा नहीं और उसमें मैं हूँ, ऐसा भी नहीं। यह है, ऐसा दिखायी देता है, इतना; और वह क्रिया होती है, वह दिखायी देती है, परन्तु वह क्रिया किसमें ? पर में होती है; तुझमें है नहीं। इसलिए उसे जड़ का भोगना कहना, स्त्री के शरीर का भोगना कहना, ये सब दाल, भात और मौसम्बी का जूस पीते हैं, उसका ठण्डा अनुभव होता है, ऐसा कहना, वह सब असद्भूत-झूठे नय का कथन है। कहो, समझ में आया ?

भगवान जड़ को कैसे स्पर्श करे और भगवान जड़ में कैसे आवे ? जहाँ रहा है, वह पर में कैसे जाये और पर जहाँ रहा है, वह आत्मा में कैसे आये ? समझ में आया ? आहा..हा..! इसलिए जड़ का भोग, ऐसा अनुपचार नजदीक में परमाणु हैं, इसलिए उन्हें असद्भूत अनुपचरित गिनकर कर्ता और भोक्ता दोनों व्यवहारनय से कहा है।

अशुद्धनिश्चयनय से, समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म का कर्ता... लो, **अशुद्धनिश्चयनय से,...** इसकी पर्याय में मिथ्या राग-द्वेष का भावकर्म का कर्ता। यह अज्ञानभाव की बात है। समझ में आया ? कर्म इसे मिथ्यात्व कराता है, ऐसा इनकार करते हैं, देखो! कर्म के कारण मिथ्यात्व और राग-द्वेष जीव करता है, ऐसा नहीं है। अशुद्धनिश्चयनय से। शुद्धनिश्चय की दृष्टि में तो कर्म करना, भोगना है नहीं। शुद्धनिश्चयदृष्टि में तो राग का कर्ता, भोगना है ही नहीं। अशुद्धनिश्चय की दृष्टिवाला अर्थात् मिथ्यादृष्टि... आहा..हा..! **समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म...** मिथ्यात्व और पुण्य के, पाप के भाव, राग-द्वेष का परिणमन करे। करता हो, उस जड़रूप से तो यह परिणमन नहीं करता, इसलिए कर्ता नहीं है परन्तु यह तो परिणमन करता है, इसलिए कर्ता है। समझ में आया ? यह क्या कहा ? जड़कर्मरूप से आत्मा परिणमन नहीं करता और जड़ के फलरूप से भी आत्मा परिणमन नहीं करता, इसलिए उसे व्यवहार असद्भूत झूठे नय से कर्ता और भोक्ता कहा है। यह तो

परिणमता है। **अशुद्धनिश्चयनय से, समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म का कर्ता...** परिणमन करता है। परिणमन करता है, इसलिए कर्ता कहने में आता है। समझ में आया? आहा..हा..!

अशुद्धनिश्चयनय से, समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म का कर्ता और भोक्ता है;... दोनों लेना। है न? क्योंकि जीव राग-द्वेष को भोगनेरूप परिणमता है। कहीं स्त्री और दाल, भात, शाक भोगनेरूप परिणमता नहीं। परिणमता नहीं, इसलिए झूठा नय है। इन रूप तो (राग-द्वेषरूप तो) परिणमता है। आहा..हा..! राग-द्वेष, पुण्य और पाप आदि भाव, विकल्प की वृत्ति का भाव, उस रूप परिणमता है; अर्थात् अवस्था में होता है, इसके अस्तित्व में होता है, इसलिए अशुद्धनिश्चयनय से इसके परिणाम का कर्ता कहना और इसके परिणाम में हर्ष-शोक होते हैं, हर्ष-शोक से परिणमता है, हर्ष-शोक को अनुभव करता है। इसके अस्तित्व में अनुभव करता है। पर्याय के अस्तित्व में अनुभव करता है। पर के अनुभव के अस्तित्व में यह कुछ नहीं आता। समझ में आया?

भोक्ता है;... लो। यहाँ समुच्चय बात करनी है। ज्ञानी भोक्ता है कैसे, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। ऐसे जीव आत्मा के भान बिना, जड़कर्म के परिणमने के काल में अपने अशुद्धभाव का परिणमन है, इसलिए उसका कर्ता इसे कहा जाता है। और इसमें यह परिणाम निमित्त होकर बन्ध पड़ा, उसे निमित्त हुए। समझ में आया? इसलिए जड़ का कर्ता व्यवहार से कहने में आया है। पाठ में ऐसा है। '**कर्मजभावेन**' ऐसा है न? कर्मजनित भाव। इसका अर्थ यह कि आत्मस्वभावभाव यह नहीं है परन्तु वहाँ से कोई ऐसा ले लेवे कि यह तो कर्म के कारण हुए भाव हैं। ऐसा नहीं है। कर्म जिसमें निमित्त हैं और उपादान से अपने में हुआ है। पाठ है न? मूल पाठ है। '**कर्मजभावेन**' कर्म से उत्पन्न हुए भाव का। आनन्द और सम्यग्दर्शन, वह कहीं कर्म से नहीं (हुए हैं), वे तो आत्मा से उत्पन्न हुए हैं। उनका अनुभव करनेवाला धर्मी शुद्धनिश्चय में है। समझ में आया?

धर्म की पर्याय का करनेवाला धर्मरूप परिणमता है, निश्चय से अपने परिणाम का-निर्मल का कर्ता है और निर्मल का भोक्ता है। यह तो इसके अस्तित्व में है। यह अशुद्धरूप परिणमता है। भगवान स्वयं अपना शुद्धभाव, आनन्दस्वभाव भूलकर पर के निमित्त का लक्ष्य करके मिथ्याभ्रान्ति खड़ी करे कि यह मुझे ठीक पड़ता है और राग-द्वेष

खड़े करे, वह अशुद्धनिश्चय से कर्मजनित भाव कहे जाते हैं। आत्मजनित नहीं। उनका अशुद्धनिश्चय से अज्ञानी कर्ता है। समझ में आया? अशुद्धनिश्चय से भोक्ता है।

अब **निकटवर्ती अनुपचरित असद्भूत...** लिया था, उसके साथ अब **अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से,...** शरीर लिया यह। यह निकटवर्ती नहीं लिया क्योंकि कर्म तो ऐसे के ऐसे सदा साथ के साथ ही हैं। शरीर तो जाये और आये। इसलिए उसे निकटवर्ती न गिनकर **अनुपचरित असद्भूत...** नजदीक है, इसलिए अनुपचरित निकटवर्ती नहीं। कायम साथ में नहीं रहा। **अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से,...** आहा..हा..! कितना याद रखना इसमें? यह तो न्याय का प्रश्न है। यह कहीं याद रखने की वस्तु नहीं है। जो कर्म के रजकण हैं, वे अत्यन्त निकटवर्ती कायम रहे हैं, इसलिए उन्हें निकटवर्ती अनुपचरित—उपचाररहित झूठे नय की बात कही। यह भी उपचाररहित असद्भूत शरीर, निकटवर्ती नहीं परन्तु बारम्बार नया-नया आया करता है। ऐसे **अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से, (देहादि) नोकर्म का कर्ता है;...** लो। है नहीं, हों! परन्तु कर्ता किसलिए कहा? कि आत्मा स्वयं विकारीभाव का कर्ता हो, उसमें यह विकारी परिणाम देहादि को निमित्त होते हैं, इसलिए इसे व्यवहार से कर्ता कहने में आता है। आहा..हा..! गजब!

देहादि अर्थात् वाणी, मन, शरीर, नोकर्म, इन सबका-नजदीक का कर्ता कहना, वह अनुपचार असद्भूतव्यवहार से (कथन है)। वह अनुपचार और निश्चय दो एक गिने हैं एक जगह। आया था न? जैनतत्त्व मीमांसा में। अनुपचार अभेदनय से। वह अलग अनुपचार है। भाई! आया था न उसमें? अनुपचार अर्थात् अभेद नहीं, ऐसा आया था। उपचार नहीं, ऐसा। उपचार तो भेदनय व्यवहार से। वह यहाँ नहीं। यहाँ तो नजदीक में कायम रहनेवाले ये कर्म। नजदीक में नहीं परन्तु बारम्बार रहनेवाले सही, वह शरीर। ऐसा, इसलिए उसे अनुपचार कहने में आया है। यह अनुपचार अर्थात् अनुपचार अभेद निश्चय वह यह नहीं। जैनतत्त्व मीमांसा में आया। समझ में आया? देखो! यह कर्ता है, कहा है। कहते हैं, लो। **कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारा।** व्यवहार से कर्ता है। परन्तु व्यवहार से कर्ता अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : यह व्यवहार हो, तब ही भगवान ने कहा होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, व्यवहार अर्थात्? कि आत्मा विकार करे, उसमें उस चीज़

का निमित्तपना देखकर अथवा उस चीज़ में इस परिणाम का निमित्त देखकर व्यवहार से कर्ता, ऐसा कथन करने में आता है। है नहीं और कहना, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : कर्ता का अर्थ समझाने के लिये बहुत लम्बी बात की।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो, भीखाभाई! स्वयं अपने विकारी भाव को करे और भोगे परिणमकर, वह परिणाम उसे निमित्त कहने में आता है। निश्चय अपना, उसको निमित्त; इसलिए वह असद्भूतव्यवहारनय से। है नहीं कर्ता, नहीं भोक्ता, अपने अस्तित्व में, तथापि कहने का नाम व्यवहार है। आहा..हा..! झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा...। झगड़ा मिटाने के मार्ग में झगड़ा खड़ा किया। **उपचरित असद्भूतव्यवहार से घट-पट-शकटादिक का (घड़ा, वस्त्र, छकड़ा इत्यादि का) कर्ता....** उपचार से-झूठे नय से घड़े को कहे, पट को करे, शकट (गाड़ी) को करे। यह तो चलावे तो है तो राग, इसलिए स्वयं राग को चलाता है परन्तु राग इसे निमित्त होता है, इसलिए उसका कर्ता यह व्यवहार से कहा जाता है। वास्तव में बिल्कुल कर्ता-भोक्ता नहीं है, तब तो व्यवहार कहा। उसरूप परिणमता है? कर्ता नहीं है, इसलिए उसे उपचार लागू पड़ता है। परिणमता है उसरूप? घटरूप परिणमता है? बस, परिणमता नहीं, इसलिए उसकी परिणमने की पर्याय को निमित्त होता है, इसलिए व्यवहार से कर्ता कहा जाता है, बस।

मुमुक्षु : परिणमें तो घटरूप हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ हो जाए। घटपने का आया है, अपने (समयसार की) १००वीं गाथा में नहीं आया? अज्ञानी के योग और उपयोग, उसकी पर्याय घट-पट के परिणमन के कार्यकाल में अज्ञानी के योग-उपयोग निमित्त हैं। समझ में आया? समयसार की १००वीं गाथा में आया है। घट-पट, गाड़ी, शाक, दाल, भात, मकान आदि का कार्यकाल होने के समय में। है तो उनका कार्यकाल। समझ में आया? उस समय निमित्त किसे कहना? कि योग और राग की कर्ताबुद्धि जिसकी पर्यायबुद्धि है, उसकी पर्याय उनके साथ निमित्तरूप कहने में आती है। पर्याय को और उन्हें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। द्रव्य-गुण को सम्बन्ध नहीं है परन्तु किस पर्याय को? विकारी पर्याय का कर्ता होता है, वह भिन्न पड़ा नहीं, ऐसी विकारी पर्याय का कर्ता विकार से भिन्न पड़ा नहीं, ऐसी विकारी पर्याय का कर्ता जीव उस कार्यकाल में उसका विकारीपन निमित्त होता है। कहो,

पण्डितजी! यह कहाँ याद रखना? भाई! विपरीतता बहुत घुस गयी है, उसे उतने प्रमाण में वापस सुलटा समझना पड़ेगा या नहीं? समझ में आया?

उपचरित झूठे नय से... उपचार है न? ....यहाँ तो कहते हैं। घट-पट, गाड़ी, दुकान का कर्ता कहना, वह तो उपचार आरोपित झूठे नय से कथन है। ऐसे नय इसमें उतारे हैं। पण्डितजी! आहा..हा..! इत्यादि का कर्ता होता है।

ऐसा अशुद्धजीव का स्वरूप कहा। देखो, लो। यह तो अशुद्धजीव स्वरूप का कथन है। अशुद्धरूप परिणमता है। जो इसका स्वभाव नहीं, ऐसे अशुद्धरूप परिणमता है। उसके लिए ये दो बोल लागू पड़ते हैं। निश्चय से विकार का कर्ता और भोक्ता; निकटवर्ती अनुपचरित कर्म का कर्ता और भोक्ता, अनुपचार से देहादि का कर्ता, उपचार से घट-पट आदि का कर्ता। ऐसे निमित्तपने के इतने अन्तर से ऐसा कहने में आता है। यह अशुद्धजीव का स्वरूप कहा, लो! फिर इसका श्लोक कहेंगे। (*श्रोता:* प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-३०

[अब, १८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, छह श्लोक कहते हैं-]

(मालिनी)

अपि च सकलरागद्वेषमोहात्मको यः,
परमगुरुपदाब्जद्वन्द्वसेवाप्रसादात्।
सहजसमयसारं निर्विकल्पं हि बुद्ध्वा,
स भवति परमश्रीकामिनीकान्तकान्तः।।३०।।

(वीरछन्द)

कोई नर यदि सकल मोह अरु राग द्वेष होने पर भी।
पाता है सेवा प्रसाद वह परम गुरु पद-पंकज की॥

निर्विकल्प अरु सहज समय का सार जानता है निर्भ्रान्त।
परमश्रीरूपी सुन्दर कामिनि का होता है प्रिय कान्त॥३०॥

***श्लोकार्थ :*—सकल मोहरागद्वेषवाला जो कोई पुरुष, परमगुरु के चरणकमल युगल की सेवा के प्रसाद से, निर्विकल्प सहज समयसार को जानता है, वह पुरुष, परमश्रीरूपी सुन्दरी का प्रियकान्त होता है॥३०॥**

प्रवचन-२५, श्लोक ३०-३४, शनिवार, चैत्र शुक्ल १, दिनांक २७-०३-१९७१

जीव अधिकार। ३०वाँ कलश है। ३० है न? ३० कलश। सेठी! कहाँ है? पृष्ठ ४३ है न, ३०वाँ कलश। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने कहे हुए इस नियमसार का मोक्षमार्ग अधिकार है। धर्म का अधिकार क्या है और मोक्ष किस प्रकार होता है, उसकी व्याख्या है। ३०वाँ कलश है।

अपि च सकलरागद्वेषमोहात्मको यः,
परमगुरुपदाब्जद्वन्द्वसेवाप्रसादात्।
सहजसमयसारं निर्विकल्पं हि बुद्ध्वा,
स भवति परमश्रीकामिनीकान्तकान्तः॥३०॥

इसका अर्थ दूसरी ओर ४४ पृष्ठ पर है। क्या कहते हैं? देखो! थोड़ा सूक्ष्म अध्यात्म विषय है। अनन्त काल में कभी सुना नहीं और कभी किया नहीं। कहते हैं कि **सकल मोहरागद्वेषवाला जो कोई पुरुष,...** यह आत्मा है, वह अनादि से पर्याय-अवस्था में मिथ्यात्व और राग-द्वेषस्वरूप पर्याय में है। वस्तु जो आत्मा है, वह तो शुद्ध आनन्दकन्द है परन्तु उसकी दशा में अनादि से मोह अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेषवाला है। पर्याय में-वर्तमान हालत-दशा में। ऐसा पुरुष भी, ऐसा कहते हैं।

कोई पुरुष, परमगुरु के चरणकमल युगल की सेवा के प्रसाद से,... सन्त-मुनि, वीतरागी—जिन्हें वीतरागभाव आत्मा का अनुभव हुआ हो। आत्मा तो पुण्य-पाप के क्रियाकाण्ड के राग से भिन्न है। ऐसा जिन्हें अन्तर में भान (हुआ हो) और निर्ग्रन्थ सन्त मुनि हुए हों। कहते हैं कि जीव को उनका उपदेश मिलता है। पहले तो उपदेश /

देशनालब्धि (मिलती है)। कैसी ? **परमगुरु के चरणकमल युगल की सेवा के प्रसाद से,...** सेवा का अर्थ, इसने जो सुना, उसका विनय करके, कि यह महाराज सन्त आत्मा के धर्म की बात करते हैं। पण्डितजी! क्या (कहा) ?

निर्विकल्प सहज समयसार को जानता है,... ऐसा उन्होंने कहा। गुरु ने ऐसा कहा - भगवान! तेरा स्वरूप जो अन्दर है, वह पर्याय / अवस्था में मोह-राग-द्वेष होने पर भी, तेरी चीज में वे नहीं हैं। अवस्था में / पर्याय में मोह-राग-द्वेष होने पर भी **निर्विकल्प सहज समयसार...** शुद्ध आनन्दकन्द भगवान आत्मा, जिसमें पुण्य और पाप, शुभ-अशुभराग के विकल्प से रहित ऐसी निर्विकल्प चैतन्यसत्ता, वीतरागस्वभावभावस्वरूप आत्मा है, वह निर्विकल्प है। सहज, अनादि सहज है। वह किसी से बना हुआ है, ऐसा नहीं है। अनादि से है। **सहज समयसार...** समयसार अर्थात् आत्मा। शुभ-अशुभपरिणाम से भिन्न निर्विकल्प आत्मा सहज समयसार-आत्मा को जानता है, उसे धर्म होता है। समझ में आया? पण्डितजी! है ?

पर्याय में / अवस्था में / हालत में सकल मोह-राग-द्वेष होने पर भी। पर्याय में तो अनादि से है परन्तु जब धर्मात्मा, ज्ञानी उसे मिलते हैं, तब उससे कहते हैं कि तेरा आत्मा सहजानन्दस्वरूप, पूर्णानन्द के स्वभाव से भरपूर, ऐसा निर्विकल्प अभेद, समयसार अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरहित है। द्रव्यकर्म जड़ आठ; नोकर्म शरीर; भावकर्म पुण्य-पाप का विकल्प राग, इनसे भिन्न तेरी चीज़ है। उसे जान। बसन्तीलालजी! गजब बात भाई यह तो! सीधा धर्म ऐसा ?

वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा ने जो फरमाया, वही कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यहाँ कहा और वही बात यहाँ पद्मप्रभमलधारिदेव इस टीका के कलश बनाकर कहते हैं। जंगलवासी दिगम्बर मुनि थे। कुन्दकुन्दाचार्य तो दो हजार वर्ष पहले संवत् ४९ में यहाँ हुए। कुन्दकुन्दाचार्य (सीमन्धर) भगवान के पास गये थे। वर्तमान में सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में विराजमान हैं। (वहाँ) गये थे और आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह बनाया और इसके टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव जंगलवासी दिगम्बर सन्त मुनि आत्मध्यान में मस्त (हैं)।

वे कहते हैं कि अनादि का कोई भी प्राणी, मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष की दशा

तो उसमें है। निगोद से लेकर उसमें है। समझ में आया? ऐसा होने पर भी गुरु के ज्ञान का उसे उपदेश मिला। कैसा उपदेश? सर्वज्ञपंथ में सत् का क्या उपदेश है? सन्तों का क्या उपदेश है? ज्ञानियों का क्या उपदेश है? कि निर्विकल्प सहज समयसार को जान। यह उपदेश है। ऐसा उपदेश था, ऐसा जाना। अहो! मैं शरीर से तो भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न, एक समय की अवस्था से भी मेरी चीज़ तो अभेद भिन्न है। आहा..! सूक्ष्म बात है। सम्यग्दर्शन क्या है, यह कभी इसने जाना ही नहीं। उसके बिना अनन्त बार (भटका है)। समझ में आया?

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ' यह छहढाला में आता है। छहढाला में आता है? दौलतराम। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ' पंच महाव्रत लिये, नग्नपना धारण किया। ऐसी क्रिया अनन्त बार की और नौवें ग्रैवेयक में चला गया परन्तु आत्मज्ञान—आत्मा क्या चीज़ है, उसके स्वभाव का स्पर्श किये बिना इसके जन्म-मरण मिटे नहीं। स्पर्श अर्थात् अनुभव। आहा..हा..! समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा, गुरु ने ऐसा, ऐसा जाना। गुरु ने ऐसा कहा था। भगवान! तेरी चीज़ तो अन्दर निर्विकल्प अर्थात् भेदरहित अभेदवस्तु है और स्वाभाविक समयसार शुद्ध भगवान आत्मा तेरा स्वरूप है। तेरी दृष्टि वहाँ लगा, तो तुझे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन होगा; नहीं तो धर्म की शुरुआत होगी नहीं। समझ में आया? है? इसमें है न पण्डितजी! आहा..हा..!

गुरु की सेवा के प्रसाद का अर्थ यह कि उन्होंने यह कहा था। समझ में आया? इस वीतरागमार्ग का स्वाभावभाव गुरु ने कहा। भगवान! तेरी चीज़ तो अन्दर अभेद निर्विकल्प अखण्ड आनन्द, ज्ञान आदि गुण का रसकन्द पिण्ड आत्मा है। ऐसे समयसार का ज्ञान कर। अन्तर्मुख होकर उसका अनुभव कर। अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर तो तेरा कल्याण होगा। समझ में आया? है इसमें? आहा..हा..! दुनिया को परम सत्य क्या है, यह समझ में आया नहीं। सुनने में आया नहीं कि वह चीज़ क्या है?

अखण्डानन्द प्रभु, पूर्ण शान्तरस पूर्ण ज्ञान और आनन्दरस, ऐसा एकरूप सदृश सामान्य ध्रुवस्वभाव पड़ा है, उसे जान, ऐसा कहते हैं। शास्त्र को जानना या दूसरे को जानना, पुण्य-पाप को जानना या एकसमय की पर्याय को जानना, यह बात नहीं की है।

आहा..हा..! बापू! यह बात तूने भगवान! अनन्त काल में कभी सुनी नहीं। यह बात तूने सुनी नहीं। ऐसे क्रियाकाण्ड ऐसे करना... ऐसे करना... यह व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो सब विकल्प का भाव राग है। तेरी चीज़ तो राग से भिन्न है। आहा..हा..! ऐसा परम सहज समयसार जानता है। जानता है अर्थात् उसका अनुभव करता है। समझ में आया?

अनादि से पर्याय में-हालत / दशा में मिथ्यात्व और राग-द्वेष का जो अनुभव करता था, उसे छोड़कर, जिसने अखण्डानन्दमूर्ति भगवान आत्मा का अनुभव किया, उस ओर की दृष्टि करके अभेद का अनुभव हुआ तो उसने आत्मा को जाना, ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..! भारी सूक्ष्म, भाई! समझ में आया? ऐसी चीज़ कभी भी इसने यथार्थरूप से सुनी नहीं। बाहर का यह क्रियाकाण्ड, ऐसा करो और वैसा करो, व्रत करो, तप करो, अपवास करो, यात्रा करो... यह सब है। वह शुभराग है, शुभपुण्य राग है; वह धर्म नहीं। आहा..हा..! बहुत कठिन काम!

वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में इन्द्रों और सन्तों के बीच ऐसा फरमाते थे। भाई! प्रभु! आचार्य अमृतचन्द्राचार्य भगवानरूप से ही बुलाते हैं। तेरी चीज़ अन्दर निर्लेप, कर्म और राग के लेपरहित की तेरी चीज़ अन्दर है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा राग का लेप, वह तो भावबन्ध है, वह तो आस्रवतत्त्व है और कर्म का बन्धन, वह तो अजीवतत्त्व है। तेरी चीज़ में वह अजीव का बन्ध और राग के बन्धरहित की तेरी चीज़ है। आहा..हा..! यह तो कहा न, राग-द्वेष-मोह तो पर्याय में है। भावबन्ध है। पर्यायदृष्टि में वह तो अनादि से ऐसा सेवन किया है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष का अनुभव किया, वह तो अधर्म है। उससे तो नरक और निगोद में अनन्त बार गया।

तेरा भगवान आत्मा अन्दर है, उसका अनुभव कर। जानता है अर्थात् अनुभव करता है, वह पुरुष अनुभव करता है, वह मोक्ष का मार्ग, वह धर्म है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा हुआ मार्ग है। आहा..हा..! है न? सामने पाँच श्लोक है। देखो! अन्दर है। **समयसार को जानता है,...** ऐसा लिखा है। दूसरे को जानता है, अमुक को जानता है, व्यवहार को जानता है, निमित्त को जानता है (-ऐसा नहीं कहा)। आहा..हा..! पहले करने की चीज़ तो यह है। यह कभी किया नहीं, इसलिए इसके जन्म-मरण कभी मिटे नहीं। आहा..हा..!

है (यह) तो सिद्ध किया। राग-द्वेष-मोह तो है और कर्म भी है। वस्तु है। है तो उसमें क्या हुआ? मेरी सत्ता में वह है नहीं। पूर्णानन्द प्रभु स्वाभाविक वीतराग समयसार। सम-सार ऐसा आत्मा राग, कर्म, नोकर्म से रहित है, ऐसे आत्मा का तू अनुभव कर, यह मोक्षमार्ग है, यह धर्म है। यह वीतराग का धर्म है। समझ में आया?

वह पुरुष, परमश्रीरूपी सुन्दरी का प्रियकान्त होता है। मोक्ष होगा। ऐसे आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और आत्मा का अनुभव करेगा तो वह मुक्तिसुन्दरी का प्रिय होगा अर्थात् उसे मुक्ति मिलेगी। इसके अतिरिक्त किसी क्रियाकाण्ड से मुक्ति-बुक्ति नहीं मिलती। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : क्रियाकाण्ड से नहीं मिले, ऐसा कहाँ लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें क्या कहा? इतनी बात है। यही है। दूसरा मोह-राग पहले कहा था कि मोह-राग-द्वेष है, उनसे तो संसार है।

मुमुक्षु : अनेकान्त.....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त है। आत्मा से होता है और उनसे नहीं होता, यह अनेकान्त है। समझ में आया? यह तो पहले कहा न, मोह-राग-द्वेष है, व्यवहार आदि, विकल्प आदि है तो है, उसमें क्या? आहा..हा..! कठिन है। अन्तर भगवान चिद्घन अतीन्द्रिय आनन्द रसकन्द प्रभु नित्यानन्दस्वरूप आत्मा है। उस नित्यानन्द का अनुभव करने से आनन्द का स्वाद आता है, उसे धर्म कहते हैं। वीतरागमार्ग में तो यह है। अन्य में तो यह कुछ है ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? लो, यह एक श्लोक हुआ। दूसरा श्लोक, ३१, ऊपर।

श्लोक-३१

(अनुष्टुप्)

भावकर्मनिरोधेन द्रव्यकर्मनिरोधनम्।
द्रव्यकर्मनिरोधेन सन्सारस्य निरोधनम्।।३१।।

(दोहा)

भावकर्म निरोध से द्रव्यकर्म निरोध।
द्रव्यकर्म निरोध से ही संसार निरोध॥३१॥

***श्लोकार्थ :*—भावकर्म के निरोध से, द्रव्यकर्म का निरोध होता है; द्रव्यकर्म के निरोध से, संसार का निरोध होता है॥३१॥**

श्लोक-३१ पर प्रवचन

भावकर्मनिरोधेन द्रव्यकर्मनिरोधनम्।
द्रव्यकर्मनिरोधेन सन्सारस्य निरोधनम्।।३१।।

...बोल संवर में आता है। वह यहाँ सब प्रकार से लिया।

श्लोकार्थ :- भावकर्म के निरोध से,... यहाँ क्या कहते हैं ? कि शुभ और अशुभ जो विकल्प उठता है, वह भावकर्म है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का, यात्रा का शुभराग और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग-वासना, पाप राग है। इन दोनों राग को यहाँ भावकर्म कहा गया है। **भावकर्मनिरोधेन** भावकर्म को रोकने से। भाषा तो उपदेश के वाक्य हैं। भावकर्म की उत्पत्ति नहीं होने से। **द्रव्यकर्म का निरोध होता है; द्रव्यकर्म के निरोध से, संसार का निरोध होता है।** आहा..हा..! क्या कहते हैं ?

भगवान आत्मा परम आनन्दस्वरूप, ध्रुव, नित्यानन्द को स्पर्श करने से, उसके अनुभव से भावकर्म रुक जाते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प की उत्पत्ति नहीं होती और इसके

कारण नये द्रव्यकर्म भी नहीं आते। आत्मा में शान्ति, स्वच्छता, स्वभाव में-अन्तर में शक्ति में-सत्त्व में, तत्त्व के सत्त्व में ज्ञान और आनन्द जो भरे हुए हैं, उनका अनुभव करने से उसे धर्म होता है, उसकी मुक्ति होती है।

मुमुक्षु : व्यवहारमोक्षमार्ग कहाँ जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार-फ्यवहार मोक्षमार्ग है ही नहीं। मोक्षमार्ग एक ही है-निश्चय। समझ में आया? अभी तो आगे कहेंगे अन्त में, सिद्ध और संसार आत्मा में है ही नहीं। वह तो पर्याय में है। आत्मा तो आत्मा है। आत्मा में संसार और व्यवहार कहाँ है? छठे श्लोक में कहेंगे। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ मार्ग अलौकिक है, भाई! आहा..हा..! लोगों को सुनने को नहीं मिलता, इसलिए मान लेते हैं कि यह क्या? यह क्या? यह क्या नहीं, यह है। पण्डितजी! आहा..हा..! परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का यह सन्देश है। कुन्दकुन्दाचार्य यह सन्देश लेकर आये। आठ दिन भगवान के पास गये थे। संवत् ४९ (में) गये थे। दिगम्बर सन्त यह समाचार—सन्देश लाए कि भगवान तो ऐसा कहते हैं, भाई!

त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा कहते हैं कि भावकर्म की उत्पत्ति न हो, उसका अर्थ कि तेरे आनन्दस्वभाव की उत्पत्ति हो, शुद्धोपयोग की उत्पत्ति हो, स्वभाव के आश्रय से शुद्धभाव की उत्पत्ति हो तो अशुद्धभाव की उत्पत्ति न हो। अशुद्ध की उत्पत्ति न हो तो इसे कर्म नहीं आते, कर्म रुक जाते हैं। अत: इसे भावधर्म हुआ और उससे भावमुक्ति होती है। समझ में आया? ऐसा कठिन काम, भाई!

मुमुक्षु : भावधर्म किसे कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? भावकर्मरहित, वह भावधर्म। पुण्य-पाप का विकल्प वह भावकर्म अर्थात् अधर्म है। उसे रोकने का अर्थ स्वभावसन्मुख होना। स्वभावसन्मुख होकर जो निर्मल श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति की उत्पत्ति हो, उसका नाम भावधर्म है। उस भावधर्म से भावकर्म की उत्पत्ति नहीं होती और कर्म का आना रुक जाता है और मुक्ति होती है। आहा..हा..!

एक-एक कलश में बहुत भरा है। पद्मप्रभमलधारिदेव जंगलवासी दिगम्बर सन्त-मुनि थे। आत्मध्यान में, अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त! थोड़ा विकल्प आया और शास्त्र बन गया, टीका बन गयी। समझ में आया?

श्लोक-३२

(वसंततिलका)

सज्ज्ञानभावपरिमुक्तविमुग्धजीवः,
कुर्वन् शुभाशुभमनेकविधं स कर्म।
निर्मुक्ति-मार्ग-मणु-मप्यभिवाञ्छितुं नो,
जानाति तस्य शरणं न समस्ति लोके।।३२।।

(वीरछन्द)

करे शुभाशुभ कर्म मूढ़ जो वह है सम्यग्ज्ञान विहीन।
लेश न जाने वाञ्छा शिवपथ की वह जग में शरण विहीन॥३२॥

श्लोकार्थ :—**जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है, वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ, मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता, उसे लोक में (कोई) शरण नहीं है॥३२॥**

श्लोक-२४ पर प्रवचन

३२ वाँ।

सज्ज्ञानभावपरिमुक्तविमुग्धजीवः,
कुर्वन् शुभाशुभमनेकविधं स कर्म।
निर्मुक्ति-मार्ग-मणु-मप्यभिवाञ्छितुं नो,
जानाति तस्य शरणं न समस्ति लोके।।३२।।

श्लोकार्थ : —**जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित...** देखो ! क्या कहते हैं ? यहाँ जीव से शुरु किया। जो भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उसके ज्ञान से रहित है, उसका ज्ञान नहीं है। **सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है, वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ,...** क्या कहते हैं ? देखो ! आहा..हा.. ! जिसे भगवान आत्मा ज्ञानानन्द और आनन्दस्वरूप है, उसका जिसे अनुभव नहीं, ज्ञान नहीं, ऐसे ज्ञान से रहित जीव अनादि से शुभाशुभ अनेक कर्म करता है। शुभाशुभपरिणाम को करता है, जो विकार है। समझ में आया ? **सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है, वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ,...** पुण्य और पाप के विकल्पों के भाव करता हुआ, शुभ उपयोग और अशुभ उपयोग, वह सम्यग्ज्ञानरहित पुरुष उसे करता है, ऐसा कहते हैं। धर्मी, सम्यग्दृष्टि जीव, शुभाशुभपरिणाम को नहीं करता, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! गजब बातें, भाई ! चैतन्यस्वरूप भगवान, चैतन्य का नूर, ऐसा प्रकाश का पूर, उसका जिसे ज्ञान नहीं, अनुभव नहीं, वह मिथ्यादृष्टि तो पुण्य-पाप के भाव करता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है,... यह भ्रान्ति मिथ्यादृष्टि, शुभाशुभ परिणाम तो करता है। आहा..हा.. ! क्योंकि वस्तु शुद्ध चिदानन्दस्वरूप का तो भान नहीं है और अज्ञान भूमिका में वस्तु के स्वरूप का अज्ञान है तो अज्ञान भूमिका में अज्ञानभावरूप पुण्य-पापभाव का कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ? तुम्हारी भाषा में, समझ में आता है ? समझाये छे कांई ? - हमारी गुजराती भाषा है। आहा..हा.. !

भगवान तीर्थंकरदेव, पीछे नाम भी आया न ? मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, पश्चात् मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य आये। वे कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं, उसका अर्थ पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। आहा..हा.. !

यहाँ तो क्या कहते हैं ? कि जिसे आत्मा आनन्द और परिपूर्ण ध्रुवस्वरूप है, उसका ज्ञान नहीं, वे तो भ्रान्ति में पड़े हैं। क्योंकि मैं राग हूँ, मैं एक समय की पर्याय हूँ, ऐसी भ्रान्ति में पड़े हैं तो भ्रान्तिवाला क्या करेगा ? शुभ और अशुभपरिणाम करेगा। उसे शुद्धता का तो भान नहीं है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में खाते-खाते होगा ? यह तो कल आया था या नहीं ? जहर खाते-खाते अमृत की डकार आयेगी ? अमृत की डकार नहीं आयेगी ? जहर-जहर पीता है। ऐई ! लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी ? इसी प्रकार राग करते-करते धर्म होगा ? यह तो वीतरागधर्म है। राग करते-करते तो अज्ञानभाव होगा, ऐसा कहते हैं। देखो, अज्ञानभाव में राग का कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

सम्यग्ज्ञानभावरहित है, वह शुभाशुभ का कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। धर्मी जीव है, उसे तो शुद्ध आत्मा का भान है, अत: शुभ-अशुभपरिणाम का कर्ता ज्ञानी नहीं होता। होते हैं, उन्हें जाननेवाला रहता है। गजब काम ! प्रकाशदासजी ! देखो ! कलश देखो ! कैसा भरा है कलश में ! कलश में अमृत भरा है। कलश में पानी भरा होता है न ? इसी प्रकार यह कलश कहते हैं। मुनि, सन्त, जंगल में आनन्द में रहनेवाले दिगम्बर धर्म का ऐसा स्वरूप प्रसिद्ध करते हैं कि धर्म यह है। ऐसी बात वीतराग परमेश्वर के अतिरिक्त, दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं है ही नहीं। ऐसा कोई कह नहीं सकता। समझ में आया ? आहा..हा.. ! उसमें है न ? उसमें देखो न !

जो जीव,... एक बात। जीव तो द्रव्य हुआ। **सम्यग्ज्ञानभावरहित....** अर्थात् कि अपने द्रव्यस्वभाव का भान नहीं, तो वह सम्यग्ज्ञानरहित मिथ्यादृष्टि है। देखो ! यहाँ सम्यग्ज्ञान -भावरहित कहा और उसे मिथ्यात्वी कहा। **वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को...** शुभभाव और अशुभभाव असंख्य प्रकार के हैं, तो शुभ-अशुभभाव को कर्ता है। राग से भिन्न आत्मा क्या चीज़ है, इसकी तो उसे खबर नहीं। क्रियाकाण्ड में जो शुभभाव है, वह तो आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व को करता है। क्योंकि आस्रव से रहित भगवान आत्मा भिन्न है, उसका तो भान नहीं, अत: भानरहित प्राणी पुण्य-पाप के भाव को करता है। समझ में आया ?

मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,... है ? शुभाशुभभाव को करनेवाला सम्यग्ज्ञानरहित जीव, **मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,....** मोक्षमार्ग, जो पवित्र आनन्दस्वरूप आत्मा, निर्विकल्प आनन्दघन आत्मा, उस ओर का शुद्ध उपयोग, वह मोक्ष का मार्ग है तो शुद्ध उपयोग की वांछा। **लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,....** ऐसा कहते हैं, देखो !

मुमुक्षु : अर्थात् शुद्ध उपयोग हो सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ कि उससे वांछा नहीं करता। वह वहाँ ही किया करता है। यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... इससे शुद्ध उपयोग होगा? शुभाशुभभाव करते-करते शुद्ध होगा? ऐसा कहते हैं। देखो! ऐसे करते हुए, ऐसा है न? करता है न? राग... राग... राग... राग... शुभराग.. शुभराग.. शुभगरा।

करता हुआ, मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,... यहाँ कहाँ होगा? ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी नहीं वांछता, ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ कि शुभाशुभभाव करता है तो शुद्धस्वभाव पर दृष्टि नहीं तो निर्मल उपयोग जो शुद्ध हो, उसे वह वांछता नहीं। वांछता है पुण्यकर्म ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... सेठी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं चलता क्यों? सेठ सामने बैठायेगा। चलेगा वह तो। वह तो अस्ति में है, नास्ति में नहीं। जयपुर में आगे बैठेगा। कहो समझ में आया? जयपुर जाना है न? जयपुर। वहाँ शिक्षण शिविर चलेगा, बीस दिन चलेगा। ज्येष्ठ कृष्ण ५, तुम्हारी जयपुर बीस दिन का है। बाहर से बहुत लोग आयेंगे। बीस दिन का शिक्षण शिविर है। भोजन मुफ्त बीस दिन। वहाँ जयपुर में। हम वहाँ जानेवाले हैं। समझ में आया? यह जयपुर का सेठ है। आहा..हा..! जयपुर तो यह भगवान आत्मा जय का पुर है। जिसमें राग-द्वेष को जीतकर, आत्मा की वीतरागता प्रगट करे, वह जयपुर तो भगवान आत्मा है। सेठी! तुम्हारे गाँव में यह होता है। बाकी तो हारपुर है। पुण्य और पाप करनेवाले हारपुर हैं। अपने राज्य की वह हानि करता है। आहा..हा..! समझ में आया? क्या कहते हैं?

लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,... शुभभाव करते-करते कुछ तो होगा या नहीं? तो कहते हैं, उसे शुद्ध की लेशमात्र वांछा नहीं है। आहा..हा..! शुभभाव करते-करते अन्दर कुछ होगा या नहीं? अंश है या नहीं? बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : थोड़ा शुद्ध का अंश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। आहा..हा..! देखो!

मुमुक्षु : वीतरागभाव की व्याख्या क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागभाव अर्थात् राग की अनुत्पत्ति होना और स्वभाव के आश्रय से निर्दोषदशा उत्पन्न होना, वह वीतरागभाव है, वह धर्म है। पहले विकल्पसहित निर्णय तो करे कि ऐसी चीज़ है और उस निर्णय में अभी यथार्थ आनन्द आया नहीं। यथार्थ निर्णय तो अनुभव करे, तब यथार्थ निर्णय होता है, तब आनन्द साथ में आता है, तो यथार्थ निर्णय कहने में आता है। समझ में आया? आहा..हा..!

अनेकविध शुभाशुभ करता है। **मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,...** वांछना नहीं जानता, ऐसा कहते हैं। जानता भी नहीं कि मोक्षमार्ग की वांछा किस प्रकार हो? यह तो पुण्य.. पुण्य.. पुण्य.. पुण्य.. दया, दान, व्रत, भक्ति.. भक्ति... करते.. करते.. करते.. होगा। उसे मोक्षमार्ग की वांछा का जानपना भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! भारी, जगत के प्रवाह में यह बात ऐसी टकराये। समझ में आया? **लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता, उसे लोक में (कोई) शरण नहीं है।** देखो, शुभाशुभपरिणाम अज्ञानी करता है, उसे कोई शरण नहीं। शरण तो शुभाशुभभाव से रहित अपना आनन्दस्वरूप भगवान का स्पर्श तो किया नहीं, अनुभव किया नहीं। महासत्ता का, चैतन्य महाप्रभु का, आनन्दसहित निर्णय तो किया नहीं, उसे कोई शरण नहीं है। समझ में आया? यह ३२वाँ कलश हुआ। ३३, ऊपर कलश है।

श्लोक-३३

यः कर्म-शर्म-निकरं परिहृत्य सर्वं,
निःकर्मशर्मनिकरामृतवारिपूरे।
मज्जन्त-मत्यधिकचिन्मय-मेकरूपं,
स्वं भाव-मद्वय-ममुं समुपैति भव्यः ।।३३।।

(वीरछन्द)

कर्मज सुख त्यागे निष्कर्म सुखामृत सर में लीन रहे।
भव्य पुरुष वह अद्वितीय चैतन्य एक निज भाव लहे ॥३३॥

श्लोकार्थ :—**जो समस्त कर्मजनित सुखसमूह को परिहरण करता है, वह भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए, ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय, एकरूप, अद्वितीय निजभाव को प्राप्त होता है॥३३॥**

श्लोक-३३ पर प्रवचन

यः कर्म-शर्म-निकरं परिहृत्य सर्वं,
निःकर्मशर्मनिकरामृतवारिपूरे।
मज्जन्त-मत्यधिकचिन्मय-मेकरूपं,
स्वं भाव-मद्वय-ममुं समुपैति भव्यः॥३३॥

जो समस्त कर्मजनित सुखसमूह को परिहरण करता है,... कर्ता परिहर है। क्या कहते हैं? आत्मा में जो पुण्य-पापभाव उत्पन्न होता है, उसमें जो कर्मजनित सुख मानता है। ऐसा कहते हैं कि जो शुभाशुभभाव में ठीकपना मानता है, उनमें सुख मानता है, **सुखसमूह को परिहरण करता है,...** यह नहीं। शुभ-अशुभभाव में सुख नहीं है। समझ में आया? सुख तो मेरी चीज़ आत्मा आनन्द में सुख है। आहा..हा..! कभी दिशा देखी नहीं। कैसे जाना और कहाँ से निकलना, वह कभी भी सुना नहीं। ऐसे का ऐसे अनादि के अन्ध का अन्ध चला आता है। आहा..हा..!

कहते हैं कि **समस्त कर्मजनित सुखसमूह को...** सुखसमूह अर्थात् यह कल्पना की थी कि इस पुण्य में ठीक है, शुभभाव में मुझे शान्ति मिलती है। समझ में आया? यह पैसे में सुख है, धूल में सुख है - ऐसा माननेवाला तो महामूढ़ है। समझ में आया? ये करोड़पति हैं, वे सुखी हैं-मूढ़ हैं। धूल में कहाँ सुख आया?

मुमुक्षु : उद्योगपति तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उद्योगपति है न? वह तो पाप का उद्योगपति है। सेठी! उद्योगपति सुखी है-मूढ़ है। वह तो राग है और राग तो दुःख है। आहा..हा..! पैसे में, स्त्री में, परिवार में, अनुकूलता में हम सुखी हैं। कहाँ से सुख आया? पर में सुख कहाँ था (कि) वह सुखी है। ऐई! दो-पाँच-पच्चीस लाख मिले, करोड़-दो करोड़ मिले तो सुखी हैं-मूढ़ हैं। तुझे

कौन सुखी कहता है ? तुझे मूर्ख सुखी कहते हैं ? तू माने मूर्ख। यहाँ वीतरागमार्ग में तो ऐसी बात है। समझ में आया ?

कहते हैं, देखो! **कर्मजनित सुखसमूह...** ऐसे कुटुम्ब, परिवार, पैसा, इज्जत, रूपवान सुन्दर शरीर... धूल में भी नहीं है। वे तो पर हैं। समझे न ? कर्मसमूह लिया न सब ? शरीर सुन्दर, वाणी मीठी, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, मान, मकान और दो-पाँच-पच्चीस लाख की आमदनी, सुखी है। धूल में भी सुख नहीं, मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। पर में सुख मानता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि (है), जैन नहीं। कहो, समझ में आया ? ऐसा है ? बसन्तीलालजी ? तुम पैसेवालों को सुखी कहते हो।

मुमुक्षु - पैसे के कारण से आकुलता होगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता करता है, इसलिए होती है। पैसे पर लक्ष्य जाए, वह आकुलता है। वहाँ धूल में कहाँ सुख है।

कर्मजनित सुखसमूह... आहा..हा..! यह शुभविकल्प उठता है, इसमें भी ठीक है - ऐसा मानता है, वह मूढ़ जीव है। (उसे) **परिहरण करता है, वह भव्य पुरुष,...** लो! विकल्प को छोड़कर, शुभविकल्प में भी सुख नहीं है; सुख तो मेरी चीज़ में अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा में है। मैं अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा हूँ; नित्यानन्द प्रभु मेरा अतीन्द्रिय -आनन्द-सुख मुझमें है। इन पुण्य-पाप के भाव में तो नहीं; तो बाहर में तो है ही नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही यहाँ कहते हैं। **वह भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी...** अभी तो इसके विशेषण आयेंगे। आहा..हा..! ऐसा कहते हैं कि शुभ-अशुभराग में जो मीठास-रुचि है, उसे उठा ले - ऐसा कहते हैं। कुछ भी शुभराग में अन्दर मीठास लगे, वह मिथ्यात्वभाव है। उसमें से दृष्टि उठाकर **वह भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी...** देखो! वहाँ भी कर्मजनित सुखसमूह था। यहाँ भी **निष्कर्म सुखसमूहरूपी...** भगवान आत्मा में राग और विकल्परहित आनन्द पड़ा है। सुखसमूह आनन्द का समुद्र है। आहा..हा..!

जैसे समुद्र जल से लबालब भरा हुआ है; वैसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा हुआ है। कहाँ होगा, खबर नहीं। जैसे समुद्र में पानी लबालब भरा हुआ है;

वैसे भगवान आत्मा देह से भिन्न, राग से भिन्न, पुण्य से भिन्न; अन्तर स्वभाव से अभिन्न, अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा हुआ है। ऐसे **अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए,...** चैतन्यमय स्वरूप कैसा है ? यह तो अनादि की बात चलती है। यह तो **अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए, ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय,...** ऐसा भगवान आत्मा। कहते हैं कि चैतन्यमयस्वरूप अन्तर अमृतस्वरूप, ऐसे आनन्द में अनादि से मग्न ही है। समझ में आया ? अरे ! ऐसा कभी सुना नहीं।

क्या कहते हैं ? **भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी...** कर्मरहित आनन्द आत्मा में है। राग के कार्यरहित अन्तर में आनन्द है। ऐसे **सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में...** अमृत के सरोवर में भगवान अन्दर विराजमान आत्मा है। आहा..हा.. ! यह आत्मा अतीन्द्रिय **अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए, ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय,...** जिसकी महाविशेष चैतन्यदशा, जिसका ज्ञायकभाव, परिपूर्ण भगवान अनादि-अनन्त ऐसा आत्मा **एकरूप,...** देखो ! **अद्वितीय निजभाव को प्राप्त होता है।** ऐसा निजभाव जो द्रव्यस्वभाव, उसे प्राप्त होता है, वह पर्याय है। फिर से। मार्ग बहुत सूक्ष्म है। लोग बाहर में मानकर बैठे हैं। मार्ग निकला दूसरा।

कहते हैं, भगवान ! तेरा आत्मा निष्कर्म सुख आनन्द-समूह अमृत सरोवर में आत्मा अन्दर मग्न है। ध्रुव आनन्द। **ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय,...** वस्तु अभेद एकरूप अद्वितीय-उसके साथ दूसरे किसी की साम्यता नहीं - ऐसा निज भाव आत्मा। त्रिकाली निजभाव आत्मा, उसे प्राप्त होता है। निजस्वभावभाव आत्मा, उसे जो प्राप्त होता है, वह मुक्ति का मार्ग है।

मुमुक्षु : इसमें छोड़ने का क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ने-फोड़ने का कुछ नहीं। अन्दर में एकाकार होना (है)। यह तो पहले छोड़ने की बात की। भाई ! तेरा मार्ग तो दूसरा है, भाई ! क्या हो ?

कहते हैं कि विकल्पमात्र है, वह दुःखरूप है। अज्ञानी उसे सुख का समूह मानता है। उसे छोड़कर। इसका अर्थ (कि) उसका लक्ष्य छोड़कर। भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप अपने आनन्द में मग्न है। आत्मा अनन्त आनन्दस्वरूप अमृत सरोवर में अतिशय चैतन्यमय आत्मा, उसमें अनादि से लीन है। ऐसे आत्मा को जो दृष्टि में प्राप्त करता है, स्वसन्मुख

होकर जो अनुभव में प्राप्त करता है, उसे मुक्ति का कारण प्राप्त हुआ। अभी तो भाषा समझना कठिन। धर्म तो कहीं रहा। आहा..हा..! देखो न! आचार्य क्या कहते हैं? साधारण लोगों को तो यह ऐसा लगता है। अभी तक माना हो, उसमें से यह दूसरी चोट पड़े कि यह नहीं, यह नहीं।

मुमुक्षु : यह तो शूरवीर बना दे - ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीर, वीर। वीर के रास्ते चढ़े, वह वीर। वह वीरता। बाहर में रोम खड़े हो जाएँ। आहा..हा..! ऐसा आता है न उसमें? रोमांच, अनुभव में? सविकल्प अनुभव करे, तब रोमांच... ऐसा आता है न? रोमांच खड़ा होता है। आहा..हा..!

ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय, एकरूप, अद्वितीय निजभाव... ऐसे त्रिकाली ज्ञायकभाव को पाता है। उसे छोड़ता है और इसे पाता है, ऐसा कहते हैं। रागादि को छोड़ता है, वह स्वभाव को प्राप्त करता है। कहो, पण्डितजी! ऐसा मार्ग है। सब छूट गया। अपना निजस्वरूप भगवान अमृत में मग्न सरोवर - ऐसा चैतन्य। आनन्द और चैतन्य दो भाग लिये। ऐसे आत्मा को अर्थात् ऐसे निजस्वभाव को; परभाव को छोड़कर निज स्वभाव को प्राप्त करता है, वह धर्मी है। कहो, समझ में आया? अभी तो ख्याल भी नहीं कि मार्ग क्या है और धर्म हो गया! धर्म... धर्म। बापू! धर्म का (फल) बहुत ऊँचा है, जिसका फल मुक्ति है। समझ में आया? पाँचवाँ श्लोक। ३४वाँ।

श्लोक-३४

(मालिनी)

असति सति विभावे तस्य चिन्तास्ति नो नः,
सतत-मनुभवामः शुद्ध-मात्मान-मेकम्।
हृदय-कमलसन्स्थं सर्व-कर्म-प्रमुक्तं,
न खलु न खलु मुक्तिर्नान्यथास्त्यस्ति तस्मात्।।३४।।

(वीरछन्द)

सकल विभाव असत् होने से उनकी चिन्ता हमें नहीं।
हम तो हृदय कमल में स्थित एक शुद्ध आतम का ही॥
'सर्व कर्म से मुक्त सदा हूँ' सतत अनुभवन हैं करते।
क्योंकि मुक्ति का मार्ग नहीं है अन्य किसी भी कारण से॥३४॥

***श्लोकार्थ :*—(हमारे आत्मस्वभाव में) विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है; हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त, शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं, क्योंकि अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है॥३४॥**

श्लोक-३४ पर प्रवचन

असति सति विभावे तस्य चिन्तास्ति नो नः,
सतत–मनुभवामः शुद्ध–मात्मान–मेकम्।
हृदय–कमलसन्स्थं सर्व–कर्म–प्रमुक्तं,
न खलु न खलु मुक्तिर्नान्यथास्त्यस्ति तस्मात्॥३४॥

***श्लोकार्थः*—**आहा..हा..! (हमारे आत्मस्वभाव में) विभाव असत् होने से,...** देखो! क्या कहते हैं? मुनि स्वयं की बात करते हैं और जगत को उपदेश देते हैं। स्वयं की पर्याय में विकार असत् है। हमारे स्वभाव में वह विकार है ही नहीं। आहा..हा..! पुण्य और पाप के विकल्प, **विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है;...** हमारे में नहीं है, उसे छोड़ने की हमें चिन्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! पुण्य और पाप का भाव / विभाव असत् है; त्रिकाली सत् में नहीं है। द्रव्यस्वभाव सत् है तो विभावस्वभाव असत् है। स्वभाव की अपेक्षा से वह वस्तु (विभाव) असत् है, ऐसा कहते हैं।

(हमारे आत्मस्वभाव में) विभाव असत् होने से,... आत्मस्वभावी है न? भगवान आत्मा का तो निर्दोष वीतरागीस्वभाव है। अविकारी निर्दोष स्वभाव की अपेक्षा से विकार तो असत् है। जैसे अपने द्रव्य की अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य है, अवस्तु है; वैसे अपने

स्वभाव की अपेक्षा से राग / विभाव असत् है। आहा..हा..! गजब बातें, भाई! ऐसा धर्म होगा? भाई!

विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है;... क्योंकि हमारे में नहीं है; उसे हमें छोड़ना क्या और रखना क्या? - ऐसा कहते हैं। हम तो शुद्ध आनन्दघन हैं। उसके स्वभाव में-अपना निजस्वभाव, त्रिकाली आनन्द आदि स्वभाव में विभाव का अभाव है। समझ में आया? देखो न! कैसा कलश रखा है! जंगल में मुनि थे, जंगल में, हों! पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त जंगल में बसते थे। पहले तो मुनि जंगल में ही रहते थे न! आत्मध्यानी ज्ञानी मुनि उन्हें कहते हैं। अन्तर में तो हजारों बार छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान हजारों बार आता था। आनन्द में-आनन्द में मस्त। उपदेश का विकल्प उठता था, वह भी दु:खरूप लगता था। आहा..हा..! पंच महाव्रत का विकल्प आता था, वह भी दु:खरूप लगता था। आहा..हा..! क्योंकि हमारे में नहीं है, ऐसा कहते हैं। ओहो..हो..!

विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है; हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त,... अन्तर में भगवान द्रव्यस्वभाव हृदयकमल में अन्दर भिन्न विराजमान है। **हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त,...** मैं तो हूँ। समझने के लिए ऐसा कहा। **सर्व कर्म से विमुक्त, शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** आहा..हा..! हम तो कर्म से विमुक्त, (यह) नास्ति और **शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** (यह अस्ति)। शुद्ध ध्रुव चैतन्य भगवान अभेद को-एक को ही निरन्तर अनुभव करते हैं। लो, इसका नाम मोक्षमार्ग है। आहा..हा..! कायर का तो कलेजा काँप उठे, ऐसा है। अरे! ऐसा मार्ग होगा! व्यवहार-फ्यवहार कुछ है ही नहीं? हो, (परन्तु वह) दु:खरूप है। यह क्या कहते हैं? असत् है। उसके घर में है, स्वभाव में नहीं।

हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त, शुद्ध आत्मा का एक का... देखो! शुद्ध आत्मा का - एक का। एकरूप स्वरूप है, उसे ही **सतत अनुभवन करते हैं,...** यह पर्याय हुई। **शुद्ध आत्मा का एक का...** यह द्रव्यस्वभाव हुआ। **सतत अनुभवन करते हैं,...** यह पर्याय हुई। करने का यह कार्य है। **क्योंकि अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है।** आता है न, अपने वहाँ? **'न खलु यस्मात अन्यथा साध्यसिद्धि'** (समयसार) १७-१८ गाथा में। वह सब... **शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,**

क्योंकि अन्य किसी प्रकार से... भाषा देखो! अन्य किसी प्रकार से। कि भाई! शुभभाव से ऐसा हो, थोड़ा ऐसा हो, अमुक हो... **किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है।** है या नहीं इसमें?

मुमुक्षु : 'न खलु न खलु'

पूज्य गुरुदेवश्री : 'न खलु न खलु' नहीं है, नहीं है। शुभभाव से धर्म नहीं, मुक्ति नहीं। अपने द्रव्यस्वभाव के आश्रय से शुद्धोपयोग उत्पन्न होता है, वही एक मुक्ति का उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। कहो, आहा..हा..! समझ में आया?

शुद्ध आत्मा का एक का सतत... देखो, भाषा! पर्याय कही, अशुद्ध है, परन्तु वह हमारे में कहाँ है? हमारे में तो है ही नहीं। लो, तो फिर तुम कौन हो? हम तो शुद्धात्मा हैं। और आगे छह श्लोक में तो बहुत ले जाएँगे। सिद्ध और संसार दो में से एक भी हमारे में नहीं है। हम तो एक ही ध्रुव हैं। समझ में आया? **अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है,...** यह छठवें श्लोक में कहेंगे। समय हो गया। (*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-३५

(मालिनी)

भविनि भवगुणाः स्युः सिद्धजीवेऽपि नित्यं,
निजपरमगुणाः स्युः सिद्धिसिद्धाः समस्ताः।
व्यवहरणनयोऽयं निश्चयान्नैव सिद्धि-
र्न च भवति भवो वा निर्णयोऽयं बुधानाम्॥३५॥

(वीरछन्द)

संसारी जीवों में सांसारिकगुण ही हैं सदा रहें।
अरु सिद्धों में सिद्धिसिद्ध गुण ऐसा नय व्यवहार कहे॥
निश्चयनय से सिद्ध नहीं है और नहीं संसारी भी।
बुध पुरुषों का यह निर्णय है अनुभव करते विज्ञ सभी॥३५॥

श्लोकार्थ :—**संसारी में सांसारिकगुण होते हैं और सिद्ध जीव में सदा समस्त सिद्धिसिद्ध (मोक्ष से सिद्ध, अर्थात् परिपूर्ण हुए) निज परमगुण होते हैं — इस प्रकार व्यवहारनय है। निश्चय से तो सिद्ध भी नहीं है और संसार भी नहीं है, यह बुध पुरुषों का निर्णय है।**

प्रवचन-२६, श्लोक ३०-३६, रविवार, चैत्र शुक्ल २, दिनांक २८-०३-१९७१

जीव अधिकार चलता है। कैसा जीव का स्वभाव दृष्टि में आने पर समकित होता है? मोक्षमार्ग का अधिकार है। मोक्षमार्ग तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान कैसे जीव की प्रतीति करने से, अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है, यह बात चलती है। ३५ वाँ कलश है। ३५ वाँ कलश है न ऊपर? पृष्ठ ४५ है।

भविनि भवगुणाः स्युः सिद्धजीवेऽपि नित्यं,
निजपरमगुणाः स्युः सिद्धिसिद्धाः समस्ताः।
व्यवहरणनयोऽयं निश्चयान्नैव सिद्धि-
र्न च भवति भवो वा निर्णयोऽयं बुधानाम्।।३५।।

जरा सूक्ष्म विषय है। क्या कहते हैं? यह जीव का अधिकार है न? तो यह जीव जो आत्मा है, वह संसारदशा में अनादि से उसमें संसारीगुण होते हैं। क्या कहते हैं? गुण शब्द से (आशय है) पर्याय। आत्मा की पर्याय में, संसारदशा में संसारी-विकारी पर्याय होती है। वह एक समय की पर्याय है। है?

श्लोकार्थ :—संसारी में सांसारिकगुण... यहाँ गुण शब्द से (आशय है) पर्याय। भगवान आत्मा जो ध्रुव चैतन्यमूर्ति आत्मा, उसकी वर्तमान पर्याय संसारदशा में, सांसारिक गुण अर्थात् संसारी मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष आदि विकारी अवस्था होती है। एक बात।

और सिद्ध जीव में सदा समस्त सिद्धिसिद्ध... और सिद्धभगवान में-सिद्ध जीव में, वह जीव है न यह? **सदा समस्त सिद्धिसिद्ध (मोक्ष से सिद्ध, अर्थात् परिपूर्ण हुए)...** मोक्ष के योग्य जो परिपूर्णदशा—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि अवस्था; यहाँ गुण कहा, परन्तु अवस्था, ऐसे परिपूर्ण **निज परमगुण होते हैं...** सिद्ध में परम निज

परम गुण का अर्थ, निज परम निर्मलदशा होती है। समझ में आया? जीव वस्तु-आत्मा। जीव कहो या आत्मा कहो, (दोनों एक है।) उसकी पर्याय में—अवस्था में संसारीदशा में विकारी अवस्था होती है और मोक्षदशा में निर्विकारी परिपूर्ण शुद्ध अवस्था होती है। समझ में आया?

कहते हैं, **इस प्रकार व्यवहारनय है।** आहा..हा..! एक समय, सैकेण्ड के असंख्य भाग में, आत्मा में, एक समय की विकारी संसारदशा, और जब मोक्ष होता है, तब एक समय की निर्विकारी (अवस्था होती है)। निर्विकारी अवस्था में विकारी अवस्था नहीं; विकारी अवस्था में निर्विकारी अवस्था नहीं। परन्तु वह निर्विकारी-निर्दोष, परमात्म सिद्धदशा और संसारदशा दोनों व्यवहारनय का विषय है। आहा..हा..! जो वर्तमान अवस्था का लक्ष्य करे, ऐसे व्यवहारनय का वह विषय है। सूक्ष्म है। वह निश्चय वस्तु नहीं। समझ में आया?

जीव के दो भाग। जीव-आत्मा वस्तु द्रव्य है न? उसमें एक संसार अवस्था (होवे, तब) मोक्ष अवस्था नहीं होती। जब परिपूर्ण निज गुण की मोक्षदशा (होवे), तब संसारदशा नहीं होती, परन्तु कहते हैं कि जीव की वह अवस्था वर्तमान नय का विषय-व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है, आदर करनेयोग्य नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! संसारदशा होवे, तब तो वह विकार है। आत्मा में वह एकसमय की दशा है; और सिद्धदशा होती है, वह भी एक समय की सिद्धदशा है। सिद्धदशा दो समय नहीं रहती। एक समय में जो दशा हुई, वह दूसरे समय में दूसरी होकर एक-एक समय ही रहती है। कहते हैं कि दोनों अवस्था, वर्तमान भेद पाड़कर देखना, ऐसा जो व्यवहारनय, उसका विषय है। आहा..हा..! पण्डितजी!

निज परमगुण... लिखा है, देखो! सिद्ध में निज परमपर्याय। भगवान आत्मा मुक्तदशा हो, तब निज स्वभाव शुद्ध है, उसकी पर्याय में शुद्धता, परिपूर्ण-परिपूर्ण शुद्धता (होती है), वह सिद्ध। वह भी एक समय की अवस्था है, पर्याय है, व्यवहार है, हेय है, आदरणीय नहीं। आहा..हा..! सूक्ष्म विषय है, भाई! समझ में आया?

निश्चय से तो सिद्धि भी नहीं है और संसार भी नहीं है,... आहा..हा..! भगवान आत्मा... यहाँ निश्चय में नय नहीं डाला। व्यवहार में नय शब्द पड़ा है, परन्तु (निश्चय)

नय लेना। निश्चयनय से तो भगवान आत्मा ध्रुव, नित्यानन्द 'अप्पा सो परमप्पा' आत्मा स्वयं निजस्वरूप, अपना परमात्मस्वरूप शुद्ध, ध्रुव, वह निश्चय, जीव का वास्तविक वह स्वरूप है, उसे ही यथार्थ में जीव कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? सूक्ष्म विषय है, भाई!

आत्मा में अनादि से कर्म, शरीर आदि तो है नहीं। एक समय की विकारी दशा है और विकार नाश होने से सिद्धदशा उत्पन्न हो तो एक समय की पूर्ण शुद्धदशा एक समय की है। वह दो समय नहीं रहती क्योंकि सिद्धदशा है, वह पर्याय है, दशा है, हालत है, अवस्था है। वह अवस्था एक समय में रहनेवाली, व्यवहारनय है। पर्याय, वही व्यवहार है। आहा..हा..! यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति और परिणाम, वह व्यवहार और उससे निश्चय हो, ऐसा कुछ नहीं है। समझ में आया? पण्डितजी!

भगवान आत्मा, सच्चिदानन्दस्वरूप, सिद्धस्वरूप, त्रिकाल उसका सिद्धस्वरूप परमात्मस्वरूप ही है। ध्रुव, नित्य परिणाम की क्रिया से भी रहित, सिद्ध की पर्याय से रहित, संसार की पर्याय से रहित। समझ में आया? ऐसा भगवान यह आत्मा, निश्चय से देखो तो अन्तर्मुखदृष्टि से-ज्ञाननिश्चय से उसे देखो तो सम्यग्दर्शन का विषय जो ध्रुव है, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी ध्रुव जो चीज़ है, उसमें तो सिद्धि भी नहीं। उसमें मोक्षदशा नहीं। मोक्षदशा तो एक समय की पर्याय है। आहा..हा..!

मोक्षदशा उत्पन्न होकर रहती सादि-अनन्त है न? जब से उत्पन्न हो, तब से अनन्त काल रहती है। नहीं, नहीं। एक समय की अवस्था दूसरी हो जाती है। वह की वह अवस्था नहीं रहती। सिद्ध में भी केवलज्ञान की पर्याय एक समय की होती है। दूसरे समय में वह पर्याय नहीं; वैसी हो परन्तु वह नहीं होती। आहा..हा..! कहते हैं कि सिद्ध-मुक्तदशा भी व्यवहारनय का विषय है। जीव एकरूप में दो भेद पड़ गये, वह व्यवहार है। आहा..हा..! वह व्यवहार भी अभूतार्थ है।

त्रिकाल भगवान आत्मा ज्ञायकमूर्ति ध्रुव, एकरूप जो निश्चयस्वभाव, परमस्वभावभाव ध्रुव नित्य अनाकुल आनन्द का रसकन्द एकरूप सदृशस्वभाव, निश्चय से वह चीज़ आत्मा की है, वह आत्मा है। समझ में आया? उस आत्मा में सिद्धगति की पर्याय, संसार की पर्याय की नास्ति है। सूक्ष्म विषय है, भाई! समझ में आया? सूक्ष्म विषय है।

भगवान आत्मा... तारणस्वामी तो बारम्बार कहते हैं कि 'अप्पा सो परमप्पा' उसमें आता है। वह क्या? आत्मा एक समय में परिपूर्ण चैतन्यध्रुव, वह अप्पा सो परमात्मा। सिद्ध की पर्याय और संसारी पर्याय, वह परमात्मा नहीं। आहा..हा..! गजब बात है। समझ में आया? कहते हैं कि निश्चयनय से देखो तो, देखो! यहाँ नय लिया। पहला ज्ञान। भाई अकेली दृष्टि दृष्टि करते हैं न! दृष्टि, परन्तु साथ में ज्ञान है। ज्ञान साथ में है। उस वस्तु का लक्ष्य करना, वह तो नय से लक्ष्य होता है। समझ में आया? समझाये छे, यह हमारी गुजराती भाषा है।

अन्तर में भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण ध्रुव निष्क्रिय, सिद्ध और केवलज्ञान की पर्याय से भी रहित तथा संसार के मिथ्यात्व, राग-द्वेष, अज्ञान, इस पर्याय से भी रहित है। जिसे एकरूप स्वभाव कहो, ध्रुव कहो, अभेद कहो, सामान्य कहो, एक ज्ञायकभाव चैतन्यध्रुव जो शुद्ध निश्चयनय का विषय है, वह निश्चय आत्मा है। अन्य व्यवहार आत्मा। आहा..हा..! जीव अधिकार है न? सिद्ध की पर्याय और सिद्ध का आत्मा, वह व्यवहार आत्मा कहते हैं। आहा..हा..! ऐई! एक समय की अवस्था है, दो समय नहीं है। भगवान तो त्रिकाल ध्रुव.. ध्रुव.. कन्द चिदानन्द अभेद, एकरूप स्वभाव से आत्मा पूर्ण पड़ा है, उस निश्चयनय के विषय में सिद्ध की पर्याय और संसार की पर्याय तथा मोक्षमार्ग की पर्याय उसमें है ही नहीं। समझ में आया?

अपना चैतन्य भगवान पूर्ण सत्ता-अस्तित्व, शुद्ध ध्रुव की दृष्टि करने से सिद्ध आदि पर्याय की उसमें नास्ति है। पर्याय, पर्याय में है। सिद्धपर्याय, केवलज्ञान, वह तो पर्याय है। केवलज्ञान गुण नहीं है। यहाँ शब्द ऐसा लिया है कि निजपरमगुण। गुण का अर्थ पर्याय। मिथ्यात्व और राग-द्वेष जो अवगुण हैं, वह पर्याय है। उस अवगुण का व्यय होकर जो निजगुण की निर्मल पर्याय हुई, उसे गुण कहा जाता है। परन्तु वह उत्पाद और व्यय दोनों व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? आहा..हा..!

अभी तो उसका झगड़ा... यह व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव से धर्म होता है। अरे भगवान! तू कहाँ है, बापू? तुझे खबर नहीं है। समझ में आया? दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो, भगवान की पूजा करो, भक्ति करो, यात्रा करो... भाई! यह तो एक विकल्प-राग है। यह राग है, वह धर्म नहीं है। राग से पृथक् होकर ज्ञायकभाव शुद्धचैतन्य भगवान है, उसकी दृष्टि करने से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति हो,

उसका नाम धर्म है। उसका नाम धर्म है। वह धर्म मुक्ति का उपाय है। समझ में आया? नवरंगभाई! यह छठे श्लोक का लालूभाई कहते थे। वही बराबर यहाँ आया। कल बहुत अच्छा था, हों! छहों श्लोक अच्छे थे। कल बहुत चला था।

मुमुक्षु : फिर से लो तो कुछ आपत्ति नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वापस कुछ पार नहीं आता। कहो, समझ में आया?

परिपूर्ण आत्मा की केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, पूर्ण स्वच्छता, ऐसी दशा प्रगट हो वह उत्पाद है, नयी अवस्था है। सिद्ध भी पुरानी शक्ति नहीं। सिद्ध भी नयी अवस्था है और संसारी भी नयी अवस्था विकारी है, पुरानी वस्तु नहीं है। रतिभाई! पुराना तत्त्व तो उस एक समय की पर्याय के अतिरिक्त का। सिवाय कहते हैं न? अलावा। हमें हिन्दी नहीं आती, हों! हम तो काठियावाड़ी गुजराती हैं न, थोड़ी-थोड़ी हिन्दी आती है। एक समय की सिद्ध की दशा-अवस्था है, उससे रहित भगवान आत्मा पूर्णानन्द ध्रुव चैतन्य भगवान, वही निश्चयनय का विषय कहो, अथवा वही निश्चय है अथवा वही तत्त्व है, बस। वही सत्व है और वही परमात्मा है। आहा..हा..! बासन्तीलालजी! लोग कहीं का कहीं भटका-भटक करते हैं, यहाँ से धर्म होगा और यहाँ से होगा। आहा..हा..! ऐई! प्रकाशदासजी! मानो सम्मेदशिखर जायेंगे, वहाँ से मुक्ति होगी। शत्रुंजय जायेंगे, वहाँ से मुक्ति होगी, (ऐसा मानते हैं)। यह तो मुक्ति होगी तेरे द्रव्य से। वह पर्याय भी तेरे द्रव्य में नहीं है। पर के कारण मुक्ति-बुक्ति नहीं होती। समझ में आया? भगवान की ऐसी बात है।

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर परमात्मा, सर्वज्ञ ज्ञान से सब देखा, वाणी द्वारा वैसा कथन आया, उसे आगम कहा गया। उस परमागम में ऐसा फरमान है। भगवान! तू आत्मा है? हाँ, तो आत्मा में दो प्रकार : एक पर्याय और एक ध्रुव। सिद्ध की और संसारी की ये दोनों पर्याय व्यवहार है। त्रिकाल स्वरूप में नहीं है, इस अपेक्षा से तो असत्यार्थ है, अभूतार्थ है। अरे रे! पर्याय की अपेक्षा से पर्याय है। वस्तु की अपेक्षा से वह है ही नहीं। असत् है। जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य असत् है, अद्रव्य है; वैसे भगवान निश्चय की अपेक्षा से पर्याय असत् है। असत् है, उसका अर्थ नहीं है - ऐसा नहीं। उससे (पर्याय से) तो सत् है। स्वभाव की अपेक्षा से असत् है। आहा..हा..! त्रिकाल ज्ञायकभाव की

अपेक्षा से सिद्धपर्याय असत् है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। जीवद्रव्य का अधिकार है न? जीव अधिकार। वास्तविक जीव, यथार्थ जीव, भूतार्थ, सत्यार्थ, सच्चा प्रयोजनभूत जीव, वह तो निश्चय ध्रुव है, जिसमें बन्ध की क्रिया भी नहीं और मोक्ष की क्रिया भी नहीं और मोक्ष के मार्ग की क्रिया भी उसमें नहीं। आहा..हा..!

इस प्रकार व्यवहारनय है। आहा..हा..! गजब बात है। सिद्ध, केवलज्ञान व्यवहारनय है। केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं; गुण तो त्रिकाल है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञायक... ज्ञायक... सदृशध्रुव... सदृशध्रुव... अभेदध्रुव, परमार्थ से आत्मा उसे कहा जाता है और उस आत्मा की दृष्टि करना, उसे सम्यग्दर्शन में ऐसा आत्मा प्रतीति में आता है। ऐसा आत्मा प्रतीति में आवे, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। अभी सम्यग्ज्ञान और चारित्र तो बाद में है। समझ में आया? साथ में आंशिक ज्ञान, आंशिक चारित्र है, परन्तु ऐसी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर गये बिना, वास्तविक सत् की श्रद्धा उसे नहीं होती। समझ में आया? वास्तविक सत् भगवान आत्मा, चिदानन्द ज्ञायकध्रुव, अनादि-अनन्त, एकरूप सदृश वह वास्तविक आत्मा, यथार्थरूप से आत्मा, सत्यरूप से, निश्चय से आत्मा है, उसकी दृष्टि करे तो वह आत्मा ऐसा है, ऐसी प्रतीति होवे तो उस दर्शन को सम्यग्दर्शन कहते हैं। क्योंकि उसके विषय में पूरा आत्मा दृष्टि में आ गया है। आहा..हा..! गजब बात है, भाई! धर्म कैसा है, यह समझना कठिन पड़ता है।

वह **निश्चय से तो सिद्धि भी नहीं...** जिसे यथार्थ भगवान, भूतार्थ (स्वभावदृष्टि में) आया.. यह तो छठवीं गाथा में कहा और ग्यारहवीं गाथा में कहा, वही बात है। आहा..हा..! ज्ञायक ध्रुवस्वभाव भगवान आत्मा। वहाँ ऐसा कहा कि प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्था की नास्ति। यहाँ सिद्ध की पर्याय और संसार की नास्ति, इतना विस्तरित किया, भाई!

मुमुक्षु : यहाँ सब पर्यायें लीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सब पर्यायें ले लीं। वहाँ जरा शुरुआत है, इसलिए इसकी संसार अवस्था की पहले से चौदहवें तक की अवस्था। एक ज्ञायकभाव, '**ण वि होदि अपमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो**' यह ज्ञायकभाव जो ज्ञायकभाव है, उसमें तो प्रमत्त-अप्रमत्त की पर्याय का अभाव है, नास्ति है। उसमें, हों! पर्यायरूप से पर्याय हो; वस्तु में उसका अभाव है। ऐसा ग्यारहवीं गाथा में कहा है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' अथवा

'**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ त्रिकाल एक समय की पर्याय के अतिरिक्त का पूरा आत्मा, वही सत्य है और वही शुद्धनय है और वही निश्चयवस्तु है। उसका आश्रय करने से, उसका लक्ष्य करने से, उसमें दृष्टि देने से, जो निर्मल अनुभव हो, उसकी प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करो, समकित है। नौ तत्त्व की श्रद्धा करो (वह समकित है), ऐसा है नहीं। नौ तत्त्व की श्रद्धा करो, वह सम्यग्दर्शन है, ऐसा है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

कहते हैं, वास्तव में निश्चय से भगवान आत्मा को अन्तर में खोजे तो ऐसा नित्यानन्द भगवान नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... उसमें मुक्ति भी नहीं। **संसार भी नहीं है, यह बुध पुरुषों का निर्णय है।** आहा..हा..! '**निर्णयोऽयं बुधानाम्।**' ज्ञानियों का यह निर्णय है। समझ में आया? ज्ञानियों का यह निर्णय है। अनन्त ज्ञानी, तीर्थंकर, सर्वज्ञ मुनियों (का यह निर्णय है)। सच्चे की बात है, हों! वस्त्र बदलकर नग्न होकर बैठे, वे कोई साधु हैं, ऐसा नहीं है। अभी आत्मा क्या चीज़ है? और उसमें क्या राग आदि नहीं? और उसमें सिद्ध की पर्याय तथा संसार की पर्याय नहीं है। ऐसे आत्मा के अनुभव बिना सम्यग्दर्शन नहीं और सम्यग्दर्शन बिना चारित्र-फारित्र होता नहीं। अंकरहित शून्य है। क्या कहते हैं? शून्य।

निश्चय से तो सिद्धि भी नहीं है और संसार भी नहीं... लो, यह ज्ञानी पुरुषों का निर्णय। इस निर्णय में आनन्द साथ में आता है, यह निर्णय। ऐसा विकल्प से निर्णय करना... समझ में आया? उसमें आनन्द आया नहीं तो पूरा द्रव्य दृष्टि में नहीं आया। समझ में आया? विकल्प से, मन से निर्णय करे तो उस निर्णय में तो दुःख दशा खड़ी है। उसमें अनन्त-अनन्त गुण की राशि प्रभु चैतन्य, ऐसा द्रव्य / वस्तु का निर्णय हो तो उसमें जितने गुण हैं, वे सब पर्याय में, वेदन में, अनुभव में आये बिना नहीं रहते। उसे यहाँ बुध पुरुषों का निर्णय कहते हैं। आहा..हा..! ऐसे निर्णय-निर्णय करते हैं न? निर्णय में ऐसे बड़ा अन्तर है। सेठी! आहा..हा..!

अरे! तेरा मार्ग तो देख, भगवान! तेरा स्वरूप तो एक समय के केवलज्ञान में भी आता नहीं। सिद्ध की एक समय की केवलज्ञान की पर्याय है, उसमें द्रव्य नहीं आता। वस्तु (पर्याय में) आ जाये तो दूसरे समय में नाश हो जाये। समझ में आया? आहा..हा..! वह

तो जो है, वह है। उसमें कुछ हलन-चलन, फेरफार, हीनाधिकता कुछ नहीं है। आहा..हा..! जेठाभाई! ऐसा आत्मा! गजब भाई! यह तो ५६४ भेद जीव के सीख गये। अमुक भेद। परन्तु वे भी सब विकार के। वह कहाँ मूल जीव है। समझ में आया? वे तो सब भेद हैं।

यहाँ तो प्रभु स्वयं। पर्याय दो प्रकार की—संसार और मुक्ति की। वह पर्याय भी व्यवहार आत्मा है। यह सत्य आत्मा, निश्चय आत्मा, भूतार्थ आत्मा नहीं। पण्डितजी! गजब ऐसा मार्ग, भाई! सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं। इन्द्रों और गणधरों के बीच दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा आया और कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जान लिया, अनुभव किया, चारित्र हुआ, वे ऐसा कहते हैं कि भाई! मार्ग यह है। समझ में आया? ओहो..हो..! गजब श्लोक, भाई! लो, ऐ... रतिभाई! तुम बराबर आये और यह श्लोक बाकी रह गया। कल विचार था, कहा दो मिनिट रह गये थे। यह कहाँ अभी चलेगा? पाँच श्लोक तो चले थे।

मुमुक्षु : आज पाँचवाँ रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचवाँ हुआ।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आया न।

मुमुक्षु : विभाव असत् होने से....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। कहा न वह। पाँचवाँ फिर से लो, ऐसा कहते हैं। वह ३४, ३५ है और इसके ऊपर ३४ है। ये सब श्लोक ऐसे हैं। छहों श्लोक ऐसे हैं।

पहले श्लोक से देखो। पहला, ३०वाँ कलश।

सकल मोहरागद्वेषवाला जो कोई पुरुष,... यहाँ तो कहते हैं कि सकल मोह-राग-द्वेष की पर्याय, पर्याय में हो, तथापि **जो कोई पुरुष, परमगुरु के चरणकमल युगल की सेवा के प्रसाद से, निर्विकल्प सहज समयसार को जानता है,...** इतना कहते हैं। एक समय में सकल मोह-राग-द्वेष हो। पर्याय में हो, वस्तु में नहीं। गुरु की सेवा करने से अर्थात् गुरु कहते हैं कि तेरा द्रव्यस्वभाव सम्पूर्ण निर्विकल्प सहज समयसार को जानो। गुरु में ऐसा कहा। गुरु का उपदेश यह है। दूसरे प्रकार का उपदेश हो कि राग से (होगा), वह गुरु का उपदेश नहीं है।

देखो! **परमगुरु के चरणकमल युगल की सेवा के प्रसाद से,...** ३०वाँ है, भाई! ३०वाँ कलश। निर्ग्रन्थ मुनि, राग में से निकलकर स्वभाव का भान हुआ, उनका उपदेश यह हुआ। उनका मुख्य उपदेश यह है कि निर्विकल्प, भगवान! तेरी चीज़ तो विकल्प के भेद से रहित निर्भेद है। पर्याय का भेद भी उसमें नहीं है और तू सहज समयसार है। स्वाभाविक आत्मा जो ध्रुवस्वरूप है, उसे जानो, ऐसा गुरु ने कहा था। उसे जाना। जानता है इसका अर्थ कि अनुभव किया। **समयसार को जानता है, वह पुरुष, परमश्रीरूपी सुन्दरी...** उसे मुक्तिरूपी पर्याय प्राप्त होती है। सिद्ध की पर्याय उसे प्राप्त होती है। समझ में आया? आहा..हा..! देखो तो सही! श्लोक लिखे हैं न! थोड़ा-थोड़ा ले लिया। ३१वाँ श्लोक, लालभाई कहे, थोड़ा-थोड़ा लो। ३१।

भावकर्म के निरोध से, द्रव्यकर्म का निरोध होता है; द्रव्यकर्म के निरोध से, संसार का निरोध होता है। पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग, भावकर्म है। उसकी अनुत्पत्ति होना। निरोध का अर्थ (कि) उसकी अनुत्पत्ति होना। इस कारण से द्रव्यकर्म की भी उत्पत्ति न होना। **द्रव्यकर्म के निरोध से, संसार का निरोध होता है।** वर्तमान विकारी पर्याय की उत्पत्ति नहीं हुई, तो कर्म भी नहीं आते, तो द्रव्यस्वभाव के आश्रय से विकारी पर्याय उत्पन्न नहीं हुई तो कर्म भी नहीं आते तो वस्तु के स्वभाव के आश्रय से मुक्ति होती है। किसी व्यवहाररत्नत्रय, दया, दान और उनसे मुक्ति होती है, ऐसा नहीं है क्योंकि भावकर्म के निरोध से... तो व्यवहाररत्नत्रय, शुभराग भावकर्म है, उसे रोकने से। निरोध का अर्थ रोकने से। रोकने का अर्थ तो उपदेश की शैली है न! जिसमें राग नहीं, ऐसा चैतन्य भगवान आत्मा, उसका अन्तर आश्रय करने से परमानन्द की दशारूप मुक्ति होती है तो भावकर्म और द्रव्यकर्म खिर जाते हैं। समझ में आया? गजब बात, भाई! ३२वाँ श्लोक।

जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है,... जिसने, आत्मा ज्ञायकभाव चिदानन्द शुद्ध ध्रुव, उसे ज्ञेय बनाकर जिसने ज्ञान किया नहीं, ऐसी चीज़ का जिसने ज्ञान किया नहीं, ऐसी वस्तु का जिसने ज्ञान किया नहीं, वह भ्रान्तिरूप प्राणी है। पूरी पर्याय में उसकी एकता है, ऐसा कहते हैं। **जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित...** है। अपना निजस्वभाव ध्रुवस्वरूप प्रभु के ज्ञानरहित है। वह द्रव्यस्वभाव के ज्ञानरहित है। पर्याय के भान में रमता है तो मिथ्याभ्रान्ति है।

वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ,... अज्ञानी है न? वह अज्ञानी पुण्य-पाप के भाव का कर्ता होता है। ज्ञानी पुण्य-पाप का कर्ता है नहीं। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि अपनी वस्तुस्वभाव का भान होने से, उसमें विकार नहीं तो वह विकार का कर्ता नहीं है। जब तक विकार और स्वभाव के बीच एकता मानता था, जिसे एक मानता है, उसका कर्ता होता है। यह कहते है, देखो, **वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ,...** अज्ञानी। क्यों? कि वह शुभ और दया, दान विकल्प, वह मेरी चीज़ है, जिसमें एकता मानी है, उसका वह कर्ता होता है। अज्ञानी करता होता है, ज्ञानी कर्ता नहीं होता, क्योंकि ज्ञानी ने स्वभाव में एकता मानी है। राग से अनेकता / भिन्नता कर दी है। आहा..हा..! गजब बातें, भाई! विकल्प जो होता है, उससे एकत्व तोड़ डाला है तो द्रव्यस्वभाव में एकता हुई है। वह पुण्य-पाप का कर्ता नहीं है। समझ में आया? कल थे? रतिभाई कल नहीं थे। परसों थे। यह तो कल का थोड़ा फिर से (लेते हैं)। रविवार है न, इसलिए (लेते हैं)।

मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,... आहा..हा..! कहते हैं, जो शुभ और अशुभ विकल्प रागभाव और शुभ-अशुभउपयोग है, उसमें अज्ञानी की अस्तित्व बुद्धि है। यहाँ अस्तित्व जो महाप्रभु विद्यमान है, उसके ज्ञान से रहित है। महाचैतन्य प्रभु की सत्ता के ज्ञान से रहित है, इसलिए वह शुभाशुभ परिणाम में रुका हुआ है। अज्ञानी उनका कर्ता होता है, इसलिए लेशमात्र भी मोक्ष की वांछा की उसे खबर नहीं है। **वांछना नहीं जानता,...** जानता नहीं। पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत के विकल्प का कर्ता होता है, वह **मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,...** आहा..! यह राग की क्रिया करते हैं, और इससे मुझे लाभ होगा, ऐसा मिथ्यादृष्टि। **मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,...** आहा..हा..! गजब काम, भाई! समझ में आया?

भगवान की भक्ति, पूजा, दया, व्रत और तप, यह सब शुभविकल्प हैं और विकल्प का करनेवाला; कर्तारहित ज्ञाता है, उसका मोक्षमार्ग स्वभाव से शुरु होता है, उसे बिल्कुल वांछता नहीं, जानता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं न कि व्यवहार करते-करते होगा। यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार का कर्ता होता है, उसे लेशमात्र भी मोक्षमार्ग की इच्छा नहीं है। मोक्षमार्ग कैसे उत्पन्न होता है, उसे जानता नहीं है।

मुमुक्षु : परमसत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमसत्य है। यह तो त्रिकाल परमसत्य है। दुनिया, माने, न माने, उससे कहीं सत्य का असत्य हो जाता है ? आहा..! समझ में आया ?

३३वाँ श्लोक। **जो समस्त कर्मजनित सुखसमूह को परिहरण करता है,...** क्या कहते हैं ? जिसे शुभविकल्प में भी अच्छा लगता है, उसे कर्मसमूह के सुख में अच्छा लगता है कि यह ठीक है... ठीक है। वह आत्मा के आनन्दसमूह को आदरता नहीं है। **समस्त कर्मजनित सुखसमूह...** देखो! शुभभाव में सुख मानता है, ठीक मानता है, हित मानता है। उसे परिहरण करता है, उसे छोड़ता है। शुभभाव में भी सुख नहीं, हित नहीं, मददगार नहीं। समझ में आया ? किसमें ? आत्मा में सम्यग्दर्शन में यह शुभभाव किंचित् मददगार नहीं है। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : समयसार में हस्तावलंब कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का ज्ञान कराया है। फल संसार बताया है। हस्तावलंब कहा परन्तु फल संसार बताया है। आता है ? जेठाभाई! कहाँ आता है ?

मुमुक्षु : समयसार....

पूज्य गुरुदेवश्री : ११वीं गाथा। आहा..हा..! उस हस्तावलंब का अर्थ ? राग की मन्दता, वहाँ ऐसा होता है, बस परन्तु उसका फल तो बन्धन, संसार है। आत्मा का धर्म उसके कारण फले / प्रगट हो, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है। अगम्य बातें हैं, भाई! चिदानन्द भगवान निर्विकल्प सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है। उसमें वह राग... आहा..हा..! वह तो सुखसमूह की कल्पना अज्ञानी की है। (उसे) छोड़ता है। इसका अर्थ ऐसा कि उससे कुछ प्राप्त होगा, शुभराग में ठीक है, सुख है, मदद मिलेगी, ऐसी दृष्टि छोड़ता है।

वह भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए,... कल जरा सूक्ष्म बात आ गयी है। जिसने विकल्प का भाव ठीक है, ऐसी दृष्टि छोड़ दी है, वह **निष्कर्म सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में मग्न...** कौन ? अतिशय चैतन्यमय द्रव्य। अपना द्रव्य, निष्कर्म सुख, आनन्द समूहरूपी अमृत के सरोवर में ज्ञानमय चैतन्य मग्न है। अनादि से मग्न है। समझ में आया ? तुम कल थे। बसन्तीलालजी! कल सबेरे थे या नहीं ?

वह भव्य पुरुष,... बस, इस राग से ठीक है, ऐसा छोड़ता है। शुभभाव पुण्य वह ठीक है, ऐसी दृष्टि छोड़ता है, वह किसमें लीन होता है ? इस भाव को छोड़ता है तो कैसे

भाव की प्राप्ति होती है ? अनादि निष्कर्म, कर्मरहित चीज़, सुख समूह आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा के अमृत सरोवर में वह मग्न है। कौन ? ऐसी अतिशय चैतन्यमय वस्तु। आनन्द और ज्ञान दो लिये हैं। चैतन्यमय स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द में लीन है। एकरूप। वह वस्तु त्रिकाल एकरूप है। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त, अतिशय चैतन्यमय मग्न है। ऐसा भगवान एकरूप, एकरूप है। पर्याय आदि तो दो रूप हो गयी।

अद्वितीय निजभाव को प्राप्त होता है। लो। वह अजोड़ निजभाव को प्राप्त होता है। वह निजस्वभाव को प्राप्त होता है तो पर्याय में आनन्द की प्राप्ति होती है। आहा..हा.. ! गजब बातें, भाई ! लोगों को ऐसा लगता है कि ऐसा कहीं धर्म होगा ! वीतराग का धर्म ऐसा होगा ? वीतराग में तो कन्दमूल नहीं खाना, वनस्पति नहीं खाना, सूर्यास्त से पूर्व भोजन करना, रात्रि को आहार नहीं करना, छह परबी खाना नहीं, ब्रह्मचर्य पालन करना, व्रत करना, अपवास करना, पूजा करना - ऐसा होता है। ऐई... पण्डितजी ! वह तो राग की मन्दता की क्रिया क्या है, उसे बताते हैं। समझ में आया ? यह कहीं धर्म नहीं है। आहा..हा.. !

धर्म तो अद्वितीय चैतन्य निजभाव जो अनादि-अनन्त, उसको प्राप्त होता है। आहा..हा.. ! यहाँ राग की सुखबुद्धि छोड़कर, सुख समुद्र में मग्न चैतन्यमय एक अद्वितीय आत्मा को प्राप्त होता है। समझ में आया ? एक ओर छोड़ता है तथा एक ओर प्राप्त होता है। एक ओर व्यय होता है तथा एक ओर उत्पन्न होता है। त्रिकाली में दृष्टि की तो निजभाव की प्राप्ति होती है। आत्मा, आत्मा है, वह भाव तो कहीं बाहर नहीं आता परन्तु निजभाव यह है, उसकी पर्याय में प्राप्ति (होती है, उसे) पर्याय में ज्ञायकभाव आ गया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

ग्यारहवीं गाथा में कहा नहीं ? ज्ञायकभाव तिरोभाव था, वह आविर्भाव हो गया। ज्ञायकभाव तिरोभाव था ? ज्ञायकभाव का जो भान नहीं था, वह भान हुआ तो ज्ञायकभाव का आर्विभाव है, ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, (ऐसा कहा)। इसी प्रकार यह निजभाव प्राप्त होता है। समझ में आया ? व्यवहार के विकल्प को छोड़कर... उपदेश की पद्धति में नास्ति से तो ऐसा आता है। छूटता कब है ? नित्यानन्द भगवान चैतन्यमय स्वरूप है, उसकी दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से, वह है उसकी सत्ता का स्वीकार अनुभव में हुआ तो व्यवहार का नाश हुआ। निश्चय के आश्रय से शान्ति की प्राप्ति हुई। जो प्राप्ति हुई, वह धर्म है। आहा..हा.. ! कहो, कान्तिभाई ! ऐसा धर्म। बहुत महंगा धर्म, भाई ! दुर्लभ धर्म यह तो

कहे। दुनिया में तो बाहर में जरा कर लिया—जाओ एक दया पालो, एक भक्ति करो, एक भगवान की यात्रा कर लो, जाओ हो गया धर्म।

मुमुक्षु : समझ पीछे सब सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....ऐसा श्रीमद् का वाक्य है। बराबर।

ऐसे **अद्वितीय निजभाव को प्राप्त होता है।** अजोड़ निजभाव ज्ञायक त्रिकाल, उसकी भेंट ज्ञानी को होती है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अब ३४वाँ श्लोक।

(हमारे आत्मस्वभाव में) विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है;... हम तो आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द हैं। उसमें तो संसार, विभाव है ही नहीं। समझ में आया? वहाँ संसारमार्ग नहीं। पश्चात् कहते हैं संसार, सिद्धि हमारे में नहीं है। यह बाद के श्लोक में डाला। चैतन्य भगवान अभेद एकरूप सदृश त्रिकाली वस्तु में—हमारे स्वभाव में, त्रिकाली स्वभाव में विभाव तो असत् है, झूठा है। उसकी हमें चिन्ता नहीं है। हमारे में है ही नहीं। उसे निकालने की या छोड़ने की चिन्ता क्या? ऐसा कहते हैं। हमारे में वह विभाव है ही नहीं, फिर उसे छोड़ने की चिन्ता हमें कहाँ है? हमारा स्वभाव है, उसे पकड़ लिया तो असत्भाव उत्पन्न होता नहीं, छूट जाता है। छोड़ने-फोड़ने का हमारे है नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसी चिन्ता ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है;... उसका अर्थ? विभाव छोड़ूँ, व्यवहार त्यागूँ... परवस्तु त्यागूँ, वह तो अन्तर में है ही नहीं। यहाँ तो अभी पर का त्याग किया और धर्म हो गया... धूल में भी धर्म नहीं है। सुन तो सही! पर का तो त्याग ही है तेरे आत्मा में। (पर) कब घुस गया है? शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, ये कोई आत्मा में घुस गये हैं? आत्मा में पर्याय ही नहीं तो यह चीज़ कहाँ से आयी? ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! परन्तु लोगों को ऐसा लगता है कि यह सोनगढ़ की बात एकान्त है... एकान्त है, ऐसी पुकार करते हैं। उनकी बात सच्ची है। सम्यक् एकान्त है, सच्चा एकान्त है। आहा..हा..! ऐसा एकान्त हो, तब उसे पर्याय का ज्ञान होता है, यह बाद में १९ गाथा में लेंगे। ऐसा सम्यक् एकान्त का भान हो, उसे पर्याय का ज्ञान होता है कि पर्याय है, बस! समझ में आया?

अहो! **हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त,...** भगवान आत्मा

हृदयकमल अर्थात् अन्तर ज्ञानस्वरूप प्रभु, उसमें सर्व कर्म से विमुक्त है। रागादि, विकल्पादि, कर्म से रहित वह तत्त्व, वह द्रव्यस्वभाव वस्तु है। **शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** आहा..हा..! देखो, दिगम्बर मुनि हैं। सन्त पद्मप्रभमलधारिदेव जंगल में बसते थे, वनवास में थे। समझ में आया? (वे कहते हैं), हम तो **शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** ऐई.. जाधवजीभाई! लो, यह तुम्हारे पौत्र ने पूछा था न, तुम्हारे लड़के ने-तुम्हारे पौत्र ने पूछा था। इनके लड़के का लड़का दिलीप बारह वर्ष का है, बहुत होशियार है, बारह वर्ष का, हों! वह बारह वर्ष का। उसके पिताजी ने पूछा, अरे दिलीप! ....अभी तो कलकत्ता है न! दिलीप! महाराज कहते हैं कि जंगल में मुनि रहते हैं तो उन्हें कैसे रुचता होगा? गोठे कहते हैं? हिन्दी में क्या कहते हैं? कैसे अच्छा लगता होगा? वह काठियावाड़ी भाषा बोले इनका पुत्र और उसका पुत्र। इनने पूछा था, अरे दिलीप! महाराज कहते हैं कि मुनि तो जंगल में बसते हैं। उन्हें कैसे अच्छा लगता होगा? अरे... पप्पा! ऐसा कहा, बारह वर्ष का लड़का है। अभी वहाँ कलकत्ता है। पप्पा! वे मुनि तो आनन्द में लहर करते हैं। दिलीप को कभी देखा है? कलकत्ता में। जयन्तीभाई का लड़का है। वे मुनि तो आनन्द की लहर करते हैं। पप्पा! तुम्हें कहा? सिद्ध भगवान अकेले कैसे रहते हैं? ऐसा कहा। ऐसे वापस तर्क दिया। बारह वर्ष का लड़का है। सिद्ध भगवान अकेले रहते हैं या नहीं? उन्हें दु:ख होगा? अकेले रहते हैं। अनन्त आनन्द में सिद्ध विराजते हैं। पप्पा! तुम्हारे कौलाहल चाहिए है, तुम्हें निवृत्ति नहीं चाहिए। ऐसा लड़का है। कौलाहल—ऐसा करना और ऐसा करना, ब्याज-बट्टे का धन्धा है न? गृहस्थ व्यक्ति है, कलकत्ता में हुण्डी और ब्याज के बटाव का धन्धा है, तो कहा कि तुम्हें झंझट चाहिए। घोंघाट समझते हो? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। झंझट / कोलाहल। पप्पा! तुम्हें कोलाहल चाहिए ऐसा चाहिए और वैसा चाहिए, तुम्हें निवृत्ति अच्छी नहीं लगती।

देखो! **हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त, शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** हम तो आनन्द में हैं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! नग्न मुनि मात्र वस्त्र छोड़े हैं, इतना नहीं। ऐसा नग्नपना तो अनन्त बार हुआ। पंच महाव्रत के विकल्प और अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार पालन किये। वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? मैं तो सर्व कर्म से मुक्त। **शुद्ध आत्मा का एक का...** भाषा देखो! **एक का...** साथ में दूसरा

विकल्प नहीं। आहा..हा..! यह मुनिपना है। आहा..हा..! लोगों ने अभी मुनिपना सुना ही नहीं है और हो गये मुनि। आहा..हा..!

कहते हैं कि **शुद्ध आत्मा का एक का सतत...** निरन्तर हमारे आनन्द का अनुभव हमें है। अन्दर राग और विकल्प का मिश्रित भाव नहीं है, इसका नाम मुनिपना और मोक्षमार्ग है। आहा..हा..! **क्योंकि अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है। न खलु न खलु।** आहा..हा..! अपना निजानन्द भगवान, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अन्तर का अनुभव करने से मुक्ति होती है। इसके अतिरिक्त किसी क्रियाकाण्ड से मुक्ति-फुक्ति नहीं होती। आहा..हा..! लो, **नहीं है, नहीं है।** फिर छठे श्लोक में कहते हैं, संसारी और सिद्ध दोनों पर्याय हमारे में नहीं है। पहले तो कहा था कि विभाव हमारे में नहीं है। फिर कहते हैं कि संसार की विकारी पर्याय और मुक्ति की अनन्त आनन्द पर्याय, वह व्यवहार है, व्यवहार है। एक समय... एक समय... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आदि-अन्तरहित चीज़ के समक्ष एक समय की अवस्था व्यवहार है। उसे छोड़कर हम तो त्रिकाली आनन्दकन्द में रमते हैं। उसका नाम धर्म है। यह कहते हैं।

(*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१९

दव्वत्थिएण जीवा वदिरित्ता पुव्वभणिदपज्जाया।
पज्जय-णएण जीवा संजुत्ता होंति दुविहेहिं।।१९।।

द्रव्यार्थिकेन जीवा व्यतिरिक्ताः पूर्वभणितपर्यायात्।
पर्याय-नयेन जीवाः संयुक्ता भवन्ति द्वाभ्याम्।।१९।।

इह हि नयद्वयस्य सफलत्वमुक्तम्। द्वौ हि नयौ भगवदर्हत्परमेश्वरेण प्रोक्तौ, द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति। द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः। पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः। न खलु एकनयायत्तोपदेशो ग्राह्यः, किन्तु तदुभयनयायत्तोपदेशः।

सत्ताग्राहकशुद्धद्रव्यार्थिकनयबलेन पूर्वोक्तव्यञ्जनपर्यायेभ्यः सकाशान्मुक्तामुक्तसमस्त-जीवराशयः सर्वथा व्यतिरिक्ता एव। कुतः ? ''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' इति वचनात्। विभावव्यञ्जनपर्यायार्थिकनयबलेन ते सर्वे जीवास्संयुक्ता भवन्ति।

किञ्च सिद्धानामर्थपर्यायैः सह परिणतिः, न पुनर्व्यञ्जनपर्यायैः सहपरिणतिरिति। कुतः? सदा निरञ्जनत्वात्। सिद्धानां सदा निरञ्जनत्वे सति तर्हि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्यां द्वाभ्यां संयुक्ताः सर्वे जीवा इति सूत्रार्थो व्यर्थः।

निगमो विकल्पः, तत्र भवो नैगमः। स च नैगमनयस्तावत् त्रिविधः, भूतनैगमः वर्तमान-नैगमः भाविनैगमश्चेति। अत्र भूतनैगमनयापेक्षया भगवतां सिद्धानामपि व्यञ्जनपर्यायत्व-मशुद्धत्वं च सम्भवति। पूर्वकाले ते भगवन्तः सन्सारिण इति व्यवहारात्। किम्बहुना, सर्वे जीवा नयद्वयबलेन शुद्धाशुद्धा इत्यर्थः।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(मालिनी)

उभय-नय-विरोधऽध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के,
जिन-वचसि रमन्ते ये स्वयं वान्त-मोहाः।

सपदि समयसारं ते परं ज्योति-रुच्चै-
रनव-मनय-पक्षाक्षुण्ण-मीक्षन्त एव ।।

तथाहि ह्न

है उक्त पर्ययशून्य आत्मा, द्रव्य-दृष्टि से सदा।
है उक्त पर्यायों सहित, पर्याय-नय से वह कहा ॥१९॥

अन्वयार्थ :—[द्रव्यार्थिकेन] द्रव्यार्थिकनय से [जीवाः] जीव, [पूर्वभणित-पर्यायात्] पूर्व कथित पर्याय से [व्यतिरिक्ता] व्यतिरिक्त * है; [पर्यायनयेन] पर्यायनय से [जीवाः] जीव [संयुक्ताः भवन्ति] उस पर्याय से संयुक्त हैं। [द्वाभ्याम्] इस प्रकार जीव, दोनों नयों से संयुक्त हैं।

टीका :—यहाँ दोनों नयों का सफलपना कहा है।

भगवान अर्हत् परमेश्वर ने दो नय कहे हैं, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनय। द्रव्य ही जिसका अर्थ, अर्थात् प्रयोजन है, वह द्रव्यार्थिक है और पर्याय ही जिसका अर्थ, अर्थात् प्रयोजन है, वह पर्यायार्थिक है। एक नय का अवलम्बन लेता हुआ उपदेश, ग्रहण करनेयोग्य नहीं है किन्तु उन दोनों नयों का अवलम्बन लेता हुआ उपदेश, ग्रहण करनेयोग्य है। सत्ताग्राहक (द्रव्य की सत्ता को ही ग्रहण करनेवाले) शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से, पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से, मुक्त तथा अमुक्त (सिद्ध तथा संसारी) समस्त जीवराशि सर्वथा व्यतिरिक्त ही है। क्यों ? सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया (शुद्धनय से सर्व जीव, वास्तव में शुद्ध हैं) — ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से। विभावव्यंजनपर्यायार्थिकनय के बल से वे सर्व जीव (पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से) संयुक्त हैं। विशेष इतना कि सिद्ध -जीवों के अर्थपर्यायोंसहित परिणति है, परन्तु व्यंजनपर्यायोंसहित परिणति नहीं है। क्यों ? सिद्धजीव, सदा निरंजन होने से। (प्रश्नः—) यदि सिद्धजीव सदा निरंजन हैं तो सर्व जीव, द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक, दोनों नयों से संयुक्त हैं (अर्थात्, सर्व जीवों को दोनों नय लागू होते हैं) — ऐसा सूत्रार्थ (गाथा का अर्थ) व्यर्थ सिद्ध होता है। (उत्तरः— व्यर्थ सिद्ध नहीं होता, क्योंकि)

---

* व्यतिरिक्त = भिन्न; रहित; शून्य।

निगम, अर्थात् विकल्प उसमें हो, वह नैगम*। वह नैगमनय तीन प्रकार का है, भूतनैगम, वर्तमाननैगम और भावीनैगम। यहाँ भूतनैगमनय की अपेक्षा से, भगवन्त सिद्धों को भी व्यंजनपर्यायवानपना और अशुद्धपना सम्भवित होता है क्योंकि पूर्व काल में वे भगवन्त, संसारी थे — ऐसा व्यवहार है। बहु कथन से क्या ? सर्व जीव, दो नयों के बल से शुद्ध तथा अशुद्ध हैं — ऐसा अर्थ है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में चौथे श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

दोनों नय में जो विरोध है उसे नष्ट करने वाले।
स्यात्कार पद से चिर अंकित जिनवच में रमने वाले॥
स्वयं मोह का वमन करें जो कुनय पक्ष कर सके न खण्ड।
परमज्योतिमय समयसार को शीघ्र लखें वे पुरुष प्रचण्ड॥

श्लोकार्थ :—दोनों नयों के विरोध को नष्ट करनेवाले, स्यात्पद से अंकित जिनवचन में जो पुरुष रमते हैं, वे स्वयमेव मोह को वमन करके, अनूतन (अनादि) और कुनय के पक्ष से खण्डित न होनेवाली, ऐसी उत्तम परमज्योति को-समयसार को शीघ्र देखते ही हैं।

प्रवचन-२७, श्लोक-३६, गाथा-१९, सोमवार, चैत्र शुक्ल ३, दिनांक २९-०३-१९७१

नियमसार, जीव अधिकार। १८ गाथा पूरी हुई। १९वीं गाथा।

दव्वत्थिएण जीवा वदिरित्ता पुव्वभणिदपज्जाया।
पज्जय-णएण जीवा संजुत्ता होंति दुविहेहिं।।१९।।

है उक्त पर्ययशून्य आत्मा, द्रव्य-दृष्टि से सदा।
है उक्त पर्यायों सहित, पर्याय-नय से वह कहा॥१९॥

---

* जो भूत काल की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे (अथवा कहे); भविष्य काल की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे (अथवा कहे), अथवा किञ्चित् निष्पन्नतायुक्त और किञ्चित् अनिष्पन्नतायुक्त वर्तमान पर्याय को सर्वनिष्पन्नवत् संकल्पित करे (अथवा कहे), उस ज्ञान को (अथवा वचन को) नैगमनय कहते हैं।

टीका :—**यहाँ दोनों नयों का सफलपना कहा है।** अर्थात् कि आत्मा शुद्ध त्रिकाल द्रव्य होने पर भी, उसकी पर्याय / अवस्था में संसार और सिद्धदशा होती है। वस्तु है, वह तो त्रिकाल ध्रुव शुद्ध परमस्वभावरूप है, परन्तु उसके साथ में पर्याय नहीं है – ऐसा कहा था। परन्तु पर्याय, पर्याय में है। यहाँ तो यद्यपि व्यंजनपर्याय लेंगे। समझ में आया? वस्तु स्वयं शुद्ध चिदानन्द आनन्द, ज्ञायकभाव, वही वस्तु निश्चयनय का विषय है, परन्तु उसके साथ पर्याय नहीं है। उसमें नहीं, परन्तु पर्याय में पर्याय नहीं – ऐसा नहीं है। पर्याय है, व्यवहारनय का विषय है, परन्तु यहाँ तो टीकाकार व्यंजनपर्याय को पर्याय कहकर निषेध करेंगे।

देखो! **भगवान अर्हत् परमेश्वर ने...** सर्वज्ञदेव परमेश्वर वीतराग परमात्मा ने **दो नय कहे हैं, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनय।** देखो! यह तत्त्व इस प्रकार से है, उस प्रकार से न समझे तो उसे एकान्त अज्ञान होता है – ऐसा समझाते हैं। अकेला द्रव्य ही है और पर्याय नहीं, तो वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है। पर्याय है और द्रव्य नहीं, वस्तु नहीं तो भी मिथ्यात्व एकान्त हो जाता है। समझ में आया? परमस्वभाव का वर्णन बहुत आया कि जिसमें सिद्ध और संसार दो दशा ही नहीं। यह बात निश्चय की द्रव्यार्थिक वस्तु दृष्टि से यथार्थ है, परन्तु उसमें पर्याय नहीं – ऐसा नहीं है। पर्याय-अवस्था है, हालत है। समझ में आया? उस अवस्था को न माने, वह तो एकान्त अज्ञान है।

संसार अवस्था है। चार गति की अवस्थायें व्यंजनपर्याय की दशा है। मोक्ष भी एक निर्मल दशा है – ऐसा अरिहन्त भगवान का उपदेश दो नय से है। निश्चय से और पर्याय से। यहाँ निश्चय को द्रव्यार्थिकनय कहा है। देखो, आता है। द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक। अब द्रव्यार्थिक किसे कहना? कि **द्रव्य ही जिसका अर्थ, अर्थात् प्रयोजन है,...** वस्तु, द्रव्य अर्थात् त्रिकाली ज्ञायक आनन्दस्वरूप, वह जिस नय का प्रयोजन द्रव्य है, वस्तु है, उस नय को द्रव्यार्थिक कहा जाता है।

फिर से। नय अर्थात् ज्ञान का एक अंश है। ज्ञान का एक भाग। श्रुतज्ञान प्रमाण का एक भाग, श्रुतज्ञान प्रमाण, वह भी एक पर्याय है। अब श्रुतज्ञान प्रमाण के दो प्रकार : एक द्रव्यार्थिकनय और (दूसरा) पर्यायार्थिकनय। वस्तु इस प्रकार समझे बिना अनादि से गड़बड़ उठी है। बहुत से आत्मा ऐसा कहे कि शुद्धात्मा... शुद्धात्मा... परन्तु शुद्ध क्या है?

उसकी पर्याय में क्या है ? उसके ज्ञान बिना शुद्धपना एकान्त से माने तो उसे पर्याय का ज्ञान नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? कहते हैं, जिसका प्रयोजन द्रव्य—अर्थ। जो ज्ञान का अंश है, उसका प्रयोजन द्रव्य है। वस्तु-वस्तु। उस नय को द्रव्यार्थिकनय कहा जाता है। यह सब समझने के लिये है।

पर्याय ही जिसका अर्थ, अर्थात् प्रयोजन है,... हालत। आत्मा की पर्याय, अवस्था, दशा। धर्म एक दशा है, मोक्षमार्ग भी एक दशा है; कोई त्रिकाली वस्तु नहीं है। त्रिकाली तो ध्रुव चिदानन्द शुद्ध है। समझ में आया ? तो कहते हैं कि जिस ज्ञान का प्रयोजन वर्तमान अवस्था, हालत, दशा है; उसे यहाँ पर्यायार्थिकनय कहा जाता है। है न ? पर्यायार्थिक-अर्थ। पर्याय जिसका प्रयोजन है, उसे पर्यायनय कहा जाता है। **एक नय का अवलम्बन लेता हुआ उपदेश, ग्रहण करनेयोग्य नहीं है...** आहा..हा.. ! अकेला निश्चयनय का ही उपदेश और पर्याय नहीं, ऐसा उपदेश ग्रहणयोग्य नहीं है।

मुमुक्षु : ग्रहणयोग्य नहीं है, अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेयोग्य और आदरनेयोग्य नहीं है। वह उपदेश आदरनेयोग्य नहीं है। उस वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

एक नय का अवलम्बन लेता हुआ... निश्चय को ही अवलम्बन करे और पर्याय को ही अवलम्बन करे, दो में से एक को (अवलम्बन करे), वह वस्तु अज्ञान है, खोटी है। समझ में आया ? **एक नय का...** अर्थात् ज्ञान के एक अंश को, विषय करता **अवलम्बन लेता हुआ उपदेश,...** जाननेयोग्य नहीं, आदरनेयोग्य नहीं। **किन्तु उन दोनों नयों का अवलम्बन लेता हुआ उपदेश, ग्रहण करनेयोग्य है।** ज्ञान तो दोनों नयों का करनेयोग्य है। सूक्ष्म तत्त्व है। वैसे तो सब शुद्ध.. शुद्ध तो बहुत से करते हैं (कि) अभेद है और शुद्ध है। परन्तु अभेद है, शुद्ध है-वह क्या ? और तेरी दशा में क्या ? यदि संसारी दशा भी शुद्ध होवे, तब तो उसे शुद्धता का आनन्द होना चाहिए। इसकी दशा में भूल है और भूल टलकर दशा निर्मल हो, वह भी एक दशा है, वह कहीं त्रिकाली चीज़ नहीं है। समझ में आया ? कहो, बसन्तीलालजी ! ऐसा है।

दोनों नयों का अवलम्बन लेता हुआ... त्रिकाली वस्तु समझावे, वह नय और वर्तमान अवस्था विकारी, अविकारी मुक्ति आदि, उस दशा को बतलावे, उस नय (दोनों

नय) का उपदेश जाननेयोग्य और आदरनेयोग्य है। समझ में आया? आत्मा अकेला कूटस्थ है, ध्रुव ही है, तब तो फिर कूटस्थ हो, उसे समझने का कुछ रहता नहीं और कुछ आनन्द प्रगट करना और आनन्द का अनुभव करना, यह तो रहता नहीं। पण्डितजी! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है, भाई!

सत्ताग्राहक (द्रव्य की सत्ता को ही ग्रहण करनेवाले) शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से,.... अब क्या कहते हैं? दोनों नयों का उपदेश ग्रहण करनेयोग्य-जाननेयोग्य बराबर है। अब जो आत्मा की त्रिकाल सत्ता एकरूप ध्रुवसत्ता है, उस **सत्ताग्राहक (द्रव्य की सत्ता को ही ग्रहण करनेवाले) शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से,....** शुद्ध द्रव्यस्वभाव के ज्ञान के बल से **पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से, मुक्त तथा अमुक्त (सिद्ध तथा संसारी) समस्त जीवराशि सर्वथा व्यतिरिक्त ही है।** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा महासत्ता त्रिकाली ध्रुव, इस दृष्टि के बल से, वे संसारी जीव हों या मुक्त / सिद्ध हों, दोनों **व्यंजनपर्यायों से, मुक्त तथा अमुक्त (सिद्ध तथा संसारी)....** इस व्यंजनपर्याय से सर्वथा व्यतिरिक्त ही है। वस्तु की दृष्टि से त्रिकाल वस्तु है, उसमें यह चार गति की आकृति व्यंजनपर्याय उसमें नहीं है।

पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से, मुक्त... अर्थात् सिद्ध और संसारी दोनों **समस्त जीवराशि सर्वथा व्यतिरिक्त ही है।** देखो न! वस्तु जो सत्ता चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु ध्रुव, इस अपेक्षा से तो उसकी यह चार गति की आकृति की व्यंजनपर्याय उसमें है नहीं। सिद्ध को भी नहीं और संसारी को भी नहीं। समझ में आया? यह सब समझना पड़ेगा। ऊपर-ऊपर से यह ले लिया कि यह आत्मा है, अमुक है... अमुक है। परन्तु वापस उसकी पर्यायें क्या? उसे पर्यायों से मुक्त क्यों कहा? पहले तो कहा कि दो नयों का उपदेश ग्रहण करना; और वापस यहाँ कहा कि यह तो द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य देखें तो व्यंजनपर्यायों का उसमें अभाव है; परन्तु पर्याय में पर्याय है। समझ में आया?

समस्त जीवराशि... समस्त जीवराशि में संसारी और मुक्त सब। व्यंजनपर्याय अर्थात् चार गति की आकृति वस्तु में है ही नहीं। वस्तु में, हों! सत्ताग्राहक द्रव्यार्थिकनय में। **क्यों? 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'** क्योंकि शास्त्र में कहा है कि शुद्धनय से सभी आत्मायें शुद्ध ही हैं। शुद्धदृष्टि से सब भगवान पूर्णानन्द प्रभु निर्मल शुद्ध ही हैं। उसमें

अशुद्ध है - ऐसा आता नहीं। शुद्धनय की सत्ताग्राहक दृष्टि में उसकी - वस्तु की वास्तविक शाश्वत् सत्ता है, उसे जाननेवाले की बल की दृष्टि से व्यंजनपर्याय से तो दोनों मुक्त ही हैं। क्योंकि '**सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया**' शुद्धनय से सब शुद्ध हैं - ऐसा शास्त्र में कहा है। समझ में आया ? गजब, भाई ! यह तो सब ! कितना जानना इसमें !

मुमुक्षु : धर्म करने में नय का क्या काम है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु धर्म नहीं इसकी दशा में, तब इसे धर्म करना है। यदि धर्म हो तो धर्म करना है, ऐसा कहाँ से आया ? तो धर्म नहीं है, तब क्या है ? अधर्म है।

मुमुक्षु : द्रव्य में पूरा-पूरा भरा है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भले भरा हो, परन्तु यहाँ (पर्याय में) अधर्म है, उसका ज्ञान किये बिना धर्म की दृष्टि किस प्रकार होगी ? अधर्म दशा है।

मुमुक्षु : ऐसा बोझा लेकर किसलिए चले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐई ! दशा में अन्दर अशुद्धता है। वस्तु शुद्ध है। यदि अशुद्धता न होवे तो धर्म करना, यह तो रहता नहीं। वह तो है, बस। हो गया, तब तो दशा ही शुद्ध है। ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से। वापस स्पष्टीकरण करते हैं। **विभावव्यंजन-पर्यायार्थिकनय के बल से...** अब इस त्रिकाली द्रव्यार्थिक महासत्ता को देखे तो उसमें पर्याय है ही नहीं। सिद्ध को और संसारी को व्यंजनपर्याय है ही नहीं। यह तो सब आ गया। कहो, समझ में आया ? यह सब रात्रि को पूछे तो कठिन पड़े, ऐसा है। पोपटभाई ! जवाब देंगे। ठीक।

यहाँ तो कहते हैं, वस्तु की स्थिति वर्णन करते हैं। वस्तु ऐसी है कि द्रव्यार्थिक महासत्ता त्रिकाल से देखें तो, इस दृष्टि से तो उसमें व्यंजनपर्याय या पर्याय एक भी नहीं है, परन्तु व्यंजनविभाविक-विकारी पर्याय ऐसा लेना है न, यहाँ तो अभी। **विभावव्यंजन - पर्यायार्थिकनय के बल से वे सर्व जीव (पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से) संयुक्त हैं।** आहा..हा.. ! समझ में आया ? इसमें विशिष्टता (यह कही कि) सिद्ध भी विकारी पर्याय सहित हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई ! ध्यान रखनेयोग्य बात है। **विभावव्यंजनपर्यायार्थिकनय के**

बल से... पहले ऐसा लिया था कि सत्ताग्राहकनय के बल से। यहाँ विभावव्यंजनपर्याय के बल से, ऐसा लिया। अकेली पर्याय नहीं ली। सब अर्थपर्याय। विभावव्यंजन आकृति यह मनुष्यप्रमाण अन्दर जीव का आकार होता है। यह शरीर नहीं, जड़ नहीं। मनुष्य का आकार होता है, देव का, जो-जो अवतार। वह व्यंजनपर्याय विभाविक, उससे **नय के बल से वे सर्व जीव (पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से) संयुक्त हैं।** शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से संयुक्त नहीं; पर्यायार्थिकनय से सब जीव संयुक्त हैं। दो बातें हुई।

सिद्ध हो या संसारी हो; अन्दर ध्रुवस्वभाव महासत्ता की दृष्टि से देखें तो वे दोनों व्यंजनपर्याय से रहित हैं, परन्तु विभावव्यंजनपर्याय की वर्तमान की दृष्टि से देखें, विभावव्यंजनपर्याय के बल से देखें तो सब जीव विभावव्यंजनपर्यायसहित ही हैं। सिद्धसहित। अभी प्रश्न कहेंगे, सिद्ध को क्यों ? कि पूर्व में थी, उसकी अपेक्षा से। सिद्ध को पूर्व में थी न ? उस नैगमनय से वर्तमान में है - ऐसा कहा जाता है। गजब, भाई!

मुमुक्षु : वर्तमान में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान में कहेंगे। अभी कहेंगे। पूर्व नैगमनय की अपेक्षा से।

मुमुक्षु : वर्तमान में ऐसे कहेंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नैगमनय की अपेक्षा से वर्तमान में है।

मुमुक्षु : वर्तमान में नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं तो नहीं, यह तो बराबर है, परन्तु नैगमनय से सर्व जीव कहे न ? **वे सर्व जीव संयुक्त हैं।** उसमें कोई जीव बाकी नहीं रखे। परमात्मा सिद्ध अशरीरी हो गये, वे भी अभी विभावव्यंजनपर्यायसहित हैं। किस प्रकार से ? वह कहेंगे।

विशेष इतना कि सिद्ध -जीवों के अर्थपर्यायोंसहित परिणति है,... देखो! वह निकाल डाली। व्यंजन भिन्न विकारी को निकाल डाली। मात्र गुण की परिणति ही अर्थ है। आनन्द, ज्ञान, शान्ति ऐसे स्वभाव की दशा सिद्धभगवान को-परमात्मा को है। **परन्तु व्यंजनपर्यायोंसहित परिणति नहीं है।** सिद्ध को विभावव्यंजनपर्याय नहीं है। ध्यान रखना। इसमें से प्रश्न उठेगा। **क्यों ? सिद्धजीव, सदा निरंजन होने से।** सिद्ध परमात्मा अशरीरी हुए, वे तो निरंजन शुद्ध हो गये। उन्हें अब अशुद्धता या व्यंजनपर्याय होती नहीं।

(प्रश्नः) यदि सिद्धजीव सदा निरंजन हैं... सदा निरंजन है – ऐसा तुम कहते हो, **तो सर्व जीव, द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक, दोनों नयों से संयुक्त हैं—ऐसा सूत्रार्थ व्यर्थ सिद्ध होता है।** क्या कहते हैं ? जब तुम ऐसा कहते हो कि सिद्धभगवान सदा निरंजन है, वे अशरीरी हो गये हैं। संसार का नाश करके, विकार का नाश करके पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, वे सिद्ध भगवान सदा निरंजन हैं – ऐसा कहते हो; तथा एक ओर तुमने कहा कि सभी जीव दो नय सहित हैं। देखो! अर्थात् **सर्व जीव, द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक, दोनों नयों से संयुक्त हैं...** ऐसा आपने कहा था।

मुमुक्षु : सर्व जीव कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व जीव – ऐसा लिखा है।

सर्व जीव, द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक, दोनों नयों से संयुक्त हैं (अर्थात्, सर्व जीवों को दोनों नय लागू होते हैं) — ऐसा सूत्रार्थ (गाथा का अर्थ) व्यर्थ सिद्ध होता है। क्या कहते हैं ? जब सिद्ध भगवान परमात्मा जो देहरहित हो गये, उन्हें जब तुम सदा निरंजन कहोगे, तो फिर एक ओर कहते हो कि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों से सर्व जीव सहित हैं; तो उसमें व्यंजनपर्यायसहित हैं, ऐसा तो वापस उस नय में आ गया, और तुम सिद्ध को सदा निरंजन कहते हो, तो दोनों में पर्यायार्थिकनय का उपदेश व्यर्थ जाता है।

यह ऊपर-ऊपर से यह सब सामायिक और प्रौषध करते हों, उन्हें समझना कठिन पड़ता है। क्या है यह ज्ञान ? यह किस प्रकार का ज्ञान ? ऐई भीखाभाई! यह वस्तु... प्रकाशदासजी! देखो! यह समझने की चीज़ है। ऐसे ऊपर-ऊपर से पकड़ ले (उससे इनकार करते हैं)। पर्याय नहीं होती, ऐसा कहा था अभी सबेरे। पर्याय पर की है। पर्याय पर की नहीं, जीव की है।

मुमुक्षु : पर्याय पर नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से ?

मुमुक्षु : द्रव्य से पर नहीं तो दोनों एक हो जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य से पर है परन्तु पर्याय से अपने में अपने से है। पर के कारण

पर्याय है, ऐसा नहीं है। पर के कारण पर्याय हो, तब तो द्रव्य में पर्याय रही ही नहीं। हो गया। पर्यायार्थिकनय से भी द्रव्य, मुक्ति और संसारदशा से रहित हो गया (किन्तु) ऐसा नहीं है। यह बड़ी गड़बड़ अभी मूल में है। परन्तु मूल प्रयोजन पकड़ते नहीं; इसलिए समझे बिना सब तुम्बी में कंकड़ लगते हैं।

मुमुक्षु : तुम्बी में कभी कंकड़ होते ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कंकड़ नहीं परन्तु वे सूखे बीज होते हैं न? सूख जाते हैं, इसलिए खड़कते हैं (बजते हैं)।

यहाँ क्या कहते हैं? देखो! शान्ति से, धीरे से समझो। एक ओर ऐसा कहा कि आत्मा में दो नय का उपदेश भगवान का है, वह बराबर इसे ग्रहण करना चाहिए। बराबर है? एक नय का उपदेश है कि वह अवलम्बन करनेयोग्य नहीं है। एक बात। अब दो नय में त्रिकाल सत्ताग्राहक वस्तु है, उस दृष्टि से देखें तो उसमें पर्याय है ही नहीं। अब पर्यायार्थिक विभावव्यंजनपर्याय की दृष्टि से देखें। विभावव्यंजन आकृति संसार के आकार-विकार, उनसे देखें तो सब जीव विभावव्यंजनपर्यायसहित है। तीसरा, सिद्ध सदा निरंजन हैं ऐसा जबकि आप कहते हो तो सब जीव पर्यायार्थिकनय से भी विभावव्यंजनपर्यायवाले हैं, वह बात व्यर्थ जाती है। कहो, समझ में आया? यह सब व्यापारी को पकड़ने जैसा है, वजुभाई!

मुमुक्षु : दो नय के ज्ञान की आवश्यकता क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नय अर्थात्? ज्ञान का विषय करनेवाला। जो वस्तु है, उसका विषय करनेवाला वह नय। वस्तु कैसी है, उसे जाने बिना नय जानेगा किस प्रकार से? वस्तु को उसके दो पहलू हैं, उन्हें- दो पहलुओं को जाननेवाला जो नय अर्थात् ज्ञान, उस ज्ञान का विषय वह द्रव्य और पर्याय है। इसलिए नय जानना चाहिए। अभी तक शुद्ध, बुद्ध बहुत आता था, इसलिए यह और जरा पूरी उलझन खड़ी होगी परन्तु ज्ञान का ही ठिकाना न हो, वहाँ उसमें... बात की वह समझ में आयी?

एक ओर आप ऐसा कहते हो कि दो नय का उपदेश ग्रहण करना और दूसरे प्रकार से ऐसा कहते हो कि पर्यायार्थिकनय से विभाव-विकार की आकृति की पर्याय से सब जीवसहित हैं। एक ओर कहते हो कि सिद्ध भगवान सदा निरंजन हैं, तो पर्यायार्थिकनय

से विकारी व्यंजनपर्यायसहित है, यह बात शास्त्र का उपदेश व्यर्थ जाता है। आहा..हा..! जेठाभाई! इसकी रमत (क्रीड़ा) द्रव्य और पर्याय दो में है। बाहर में कुछ नहीं है। बाहर-बाहर सब दूर का है। आहा..हा..!

(उत्तरः — व्यर्थ सिद्ध नहीं होता,...) जो पर्याय अर्थात् अवस्थादृष्टि से विकारी आकृति की पर्यायें सभी जीव कहे थे, वह बात मिथ्या सिद्ध नहीं होती और सदा सिद्ध निरंजन कहे और पर्यायार्थिकनय से सब विभाव-विकारवाले कहे, उस बात में विरोध नहीं आता। क्यों? क्यों नहीं आता? **निगम, अर्थात् विकल्प उसमें हो, वह नैगम।** नीचे स्पष्टीकरण है, देखो नीचे नोट। ***जो भूत काल की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे...*** विगत काल की दशा हो गयी हो, वह वर्तमान है—ऐसा कहे, वह एक नैगमनय ज्ञान के अंश का भाग है।

भविष्य काल की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे... यह भी एक नैगमनय। ज्ञान के अंश का पूर्व का वर्तमान और भविष्य का वर्तमान बतलाना, वह भी एक नय का विषय है। ***अथवा किञ्चित् निष्पन्नतायुक्त और किञ्चित् अनिष्पन्नतायुक्त वर्तमान पर्याय को सर्वनिष्पन्नवत् संकल्पित करे, उस ज्ञान को (अथवा वचन को) नैगमनय कहते हैं।*** विस्तार है, बापू! यह नैगमनय अर्थात् भूतकाल की दशा वर्तमान कहना, भविष्य की दशा अभी कहना, उसका नाम नैगमनय का विषय है। वह भी एक ज्ञान करनेयोग्य है। समझ में आया?

वह नैगमनय तीन प्रकार का है, भूतनैगम, वर्तमाननैगम और भावीनैगम। यहाँ भूतनैगमनय की अपेक्षा से, भगवन्त सिद्धों को भी... लो, सिद्ध भगवान अशरीरी आत्मा हुए परन्तु पूर्व में तो संसारी थे न? या सिद्ध ही थे? अनादि सिद्ध हैं, इस अपेक्षा से यहाँ बात नहीं है। यह अशरीरी आत्मा वस्तु स्वरूप ऐसा है, वैसा दशा में जिन्हें प्रगट हो गया, उस दशा में पहले संसारी जीव थे, वे संसारी थे, वे भी एकेन्द्रिय (आदि) चार गति में थे। विकारी अंशरूप थे। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ भूतनैगमनय की... विगत काल के अंश की **अपेक्षा से, भगवन्त सिद्धों को भी व्यंजनपर्यायवानपना और अशुद्धपना सम्भवित होता है...** यह विगत काल की अपेक्षा से उन्हें व्यंजनपर्याय और अशुद्धपना वर्तमान है, ऐसा सम्भव है। विगत काल की

अपेक्षा से। आहा..हा..! उनकी पर्याय में अशुद्धता थी न? विकार, दशा में था न? नहीं था तो विकार टालकर निर्विकार हुआ किस प्रकार? अत्यन्तिक दुःख से मुक्त होओ, ऐसा कहा न? तो दुःख था न? मुक्ति अर्थात् आत्यन्तिक दुःख से सर्वथा छूट जाना, परन्तु तब पहले दुःख था न? उस दुःख से मुक्त हुए, तब दुःख नहीं है परन्तु दुःख तो पहली दशा में था। उस पहली दशा का आरोप करके वर्तमान में है—ऐसा कहना, वह नैगमनय का विषय है। आहा..हा..! व्यापारी लोगों को जरा... ऐ... शिवलालभाई! ऊपर-ऊपर का निश्चय का था, वह ठीक लगे। उस द्रव्यस्वभाव में संसार नहीं, भेद नहीं, अकेली पर्याय भी नहीं।

मुमुक्षु : वह तो असत् है, उसका हमारे क्या काम है, वह असत् है, ऐसा तो लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसमें असत्? द्रव्य में असत् है। उसकी अवस्था में सत् है।

मुमुक्षु : उसकी हमारे क्या चिन्ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्ता किस अपेक्षा से चिन्ता नहीं? हमारे स्वभाव में वह विभाव नहीं है। विभाव, विभाव में हो, परन्तु हमने जहाँ दृष्टि लगायी है, उसमें वह नहीं है; इसलिए हमें टालना या रखना या है, उसका हमारे क्या काम है? ऐसा कहते हैं परन्तु पर्याय में है, (ऐसा) रखकर (बात है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : सुमेल करना कठिन पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग... कहा न पहले अरिहन्त भगवान का दो नयों का उपदेश है।

मुमुक्षु : पहले से ही ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से ही शुरु किया है। वस्तु की पर्याय अंश है या नहीं? दशा है या नहीं? दशा न हो तो कार्य तो सब दशा में हैं। संसारदशा, मोक्षमार्गदशा, मोक्षदशा, वह सब दशा है। वस्तु तो त्रिकाली ध्रुव चिदानन्दमूर्ति ध्रुव है। धर्म वह दशा है। धर्म, वह कहीं गुण और त्रिकाली वस्तु नहीं है। अज्ञान और विकार, वह भी एक दशा है। समझ में आया? यह सब व्यापारी को यह सब कहना। ऐई... मलूपचन्दभाई! वे उल्टे-सीधे गोले मारे हों

न, और स्थूल-स्थूल सामने मान लिया गया हो, उसे (ऐसा लगे) और यह क्या! मूल समझ का ठिकाना नहीं है, कहते हैं।

पर्याय आत्मा में सिद्ध को भी पूर्व में थी, वह गिनकर वर्तमान है, ऐसा नैगमनय से कहने में आता है। उन सिद्धभगवान को भी भूतकाल की अपेक्षा से, राजा था, परन्तु फिर राज से उठ गया अभी। एक दृष्टान्त। समझ में आया? तो भी पूर्व की अपेक्षा से उसे (ऐसा कहा जाता है कि) राजा है, भाई! राजा। कहा जाता है या नहीं?

मुमुक्षु : राजा आवे इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही कहे न! वहाँ मूड़बिद्री में... नहीं? वहाँ उतरे थे। दिगम्बर राजा था। राजा था। उसका मकान अभी देखो तो सब ऊँचे स्तम्भ और सब। अब तो बेचारा गरीब हो गया, परन्तु राजा। उसे राज की ओर से कुछ मिलता है। वर्षासन मिलता है परन्तु सेठ अभी... परन्तु राजा थे वे लोग। नाम भूल गये। जगदीश उसका नाम था। दिगम्बर है, राजा था। अभी राजा कहलाता है। मकान देखो तो बड़े ऊँचे स्तम्भ। समझे न? अब तो गरीब हो गये हैं। नया करने का वह कुछ नहीं है। परन्तु उसे राज्य की ओर से आजीविका के लिये कुछ हजारों रुपये मिलते हैं, तो ऐसा कहा जाता है कि ये राजा थे। राजा थे नहीं, परन्तु राजा हैं—ऐसा भी कहा जाता है। यह राजा मनुष्य है, वह तो अलग बात, हों! वे तो और भोले को राजा कहलाये। मूर्ख अर्थात् राजा व्यक्ति है, ऐसा नहीं कहते? अर्थात् मूर्ख न कहकर मीठा शब्द प्रयोग किया है। राजा व्यक्ति है, भाई! अर्थात् क्या? मूर्ख है ऐसा। यह तो गत काल के राजा थे, उन्हें वर्तमान में राजा रूप से बतलाना, ऐसा भी एक नय का विषय कहने में आता है और यह कुँवर हो तो ऐसा कहे, जो राजा का हो तो कहे, यह तो राजा है। भविष्य में राजा होनेवाला। तीर्थंकर भविष्य में होनेवाले हैं, उन्हें वर्तमान में तीर्थंकर कहते हैं।

मुमुक्षु : तीर्थंकर के गर्भकल्याणक।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर के गर्भकल्याणक। तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं। वे कहाँ तीर्थंकर थे? तीर्थंकर तो केवली हों, तब होते हैं। बोले तो ऐसे ही बोला जाये न। भगवान जन्में, तीर्थंकर जन्मे, ऐसा कहते हैं, लो! परन्तु तीर्थंकर तो तेरहवें गुणस्थान में होंगे परन्तु यह बात वर्तमान में कहना, ऐसा एक नैगमनय का विषय है। ज्ञान को भूत-भविष्य को लम्बाकर वर्तमान में कहना, ऐसा भी एक विषय है।

भगवन्त सिद्धों को भी व्यंजन... अर्थात् आकृति-विभावव्यंजनपर्याय भी है और अशुद्धपना भी है, लो! **क्योंकि पूर्व काल में वे भगवन्त, संसारी थे...** पहले वे चार गति में भटकते थे। आहा..हा..! अनादि संसार में तीर्थंकर भी पर्याय में भूतकाल में यह चार गति अनन्त बार की। वह विकारी पर्याय है। उसके अस्तित्व में है। पर्याय के अस्तित्व में है, उसे वर्तमान में कहना, वह नैगमनय का विषय है। **पूर्व काल में वे भगवन्त, संसारी थे—ऐसा व्यवहार है।** ऐसा व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। पूर्व में संसारी थे, ऐसा उन्हें अभी कहना, ऐसा एक व्यवहार है।

बहु कथन से क्या ? सर्व जीव, दो नयों के बल से शुद्ध तथा अशुद्ध हैं—ऐसा अर्थ है। लो, सब जीव त्रिकाली की अपेक्षा से शुद्ध हैं, वर्तमान त्रिकाल शुद्ध हैं और पर्याय से शुद्ध हुए या अशुद्ध रहे हुए दोनों को, सर्व जीवों को वर्तमान में अशुद्ध कहने में आवे, वह भी एक नय का विषय है। समझ में आया? जिसने पर्याय नहीं मानी, उसे यह बात किसी भी प्रकार से नहीं जँचेगी। वह पर्याय है, उस अवस्था को मनवाने, वस्तु की स्थिति मनवाने की यह शैली खड़ी की है। समझ में आया? पर्याय नहीं थी, पर्याय है ही नहीं... पर्याय है ही नहीं (परन्तु) किसमें नहीं? द्रव्य में नहीं - त्रिकाली वस्तु में नहीं। वर्तमान दशा में नहीं तो कार्य तो पर्याय में होता है।

मुमुक्षु : पर्याय तो कार्य किया ही करती है, अपने क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी कब? द्रव्यस्वभाव का अनुभव हुआ तब। अकेली पर्याय.. पर्याय.. किया करे। किसके बिना? किसमें होगी? पर्याय, पर्याय का काम करे। परन्तु किसमें? कौन? वस्तु जो ज्ञायकभाव ध्रुव चिदानन्दस्वरूप है, ऐसा अनुभव दृष्टि में आया। बस, पर्याय, पर्याय का काम करेगी ही अब। द्रव्य, वह पर्याय का काम नहीं करता। अन्तिम गाथा का यह अटपटा विषय है। जीवद्रव्य का अधिकार है न? तो द्रव्य का पूरा रूप तो द्रव्य और पर्याय दो होकर होता है। पण्डितजी! जीव अधिकार है न? जीव का अधिकार—द्रव्य अर्थात् त्रिकाल सत्ता ग्राहक वस्तु से भी है और वर्तमान अवस्था से भी है। वह वर्तमान अवस्था व्यंजनपर्यायवाली (अवस्था) संसार में थी, उसका नाश होकर सिद्ध को निर्मल (पर्याय) हुई, तथापि भूतकाल की अपेक्षा से भी उन्हें अशुद्धता है, व्यंजनपर्याय है। सब जीवों को है तो वे भी इकट्ठे आ गये। समझ में आया? आरोपित से।

मुमुक्षु : वास्तविक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तविक वर्तमान नैगम से कहने में आता है। भूत की अपेक्षा से है। भूत की अपेक्षा से (कहे) परन्तु वर्तमान में है, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : वर्तमान में ऐसा आरोप हो सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आरोप हो सकता है। यह जीव के अधिकार की अन्तिम गाथा पूर्णता की पर्याय के साथ बतलाने के लिये दो नय का (विषय लिया है)। आहा..हा..! इसमें तो बहुत प्रकार आये हैं, हों!

पहले ऐसा कहा कि भगवान अरिहन्त परमेश्वर ने ज्ञान के दो अंश कहे हैं। क्योंकि उनका विषय दो है इसलिए। वस्तु त्रिकाली और वर्तमान दशा। दो अंश / विषय है। विषय है तो उस विषय को जाननेवाले दो नय कहे हैं। विषय है, वह भिन्न चीज़ है। जाननेवाला ज्ञान, वह भिन्न है। एक नय से त्रिकाल है, वह नय का विषय है। एक नय से उसमें वर्तमान अवस्था है। चाहे तो संसारी हो, व्यंजनवाली हो, विकारसहित और सिद्ध भी है। ऐसा दो नय का (विषय है), क्योंकि द्रव्य में दो प्रकार है। द्रव्य और पर्याय, उसके अस्तित्व में दो है; इसलिए भगवान ने दो नय का उपदेश कहा है, वह जाननेयोग्य है।

पहले ऐसा आया था कि द्रव्य जिसका प्रयोजन है, उसे द्रव्यार्थिक कहते हैं। पर्याय जिसकी जरूरत / प्रयोजन है, उसे पर्यायार्थिक कहते हैं। सत्ताग्राहकनय से वस्तु सत्... सत्... सत्... ध्रुव है, उस ग्राहकनय से उसमें पर्याय-फर्याय है ही नहीं। सत्ता-त्रिकाली सत्ता की ग्राहकदृष्टि से, उसके बल से, उसके जोर से उसमें पर्याय नहीं है और पर्यायार्थिकनय के बल से सभी जीवों को पर्याय है, ऐसा सिद्ध किया है।

तब और फिर से लिया कि ये सिद्ध तो सदा निरंजन है, (ऐसा) आप कहते हो न? उन्हें तो अशुद्धता नहीं है। निरंजन शुद्धपरमात्मा हो गये न! सुन न! वह किस अपेक्षा से कहा है। उन्हें भी भूतकाल में वह अवस्था अशुद्ध थी। चार गति की आकृति थी, उसे मिटाकर हुए हैं। वह गयी है, उसे वर्तमान में बतलाना—ऐसा एक नैगमनय का विषय है। समझ में आया?

चावल लेने जाते हों, तो कहे क्या लेने जाते हो? भात। भात तो अभी हुए भी नहीं परन्तु उन्हें बतलाने के लिये (ऐसा कहते हैं)। भात करना है न? (तो कहे) भात लेने जाते

हैं। घर में पका, थोड़ा कच्चा है। भात हो गया। बैठ जाओ खाने। थोड़ा कच्चा है तो भी उसे पूर्ण नहीं, तथापि पूर्ण है ऐसा कहने का नय का एक अधिकार है। बैठ जाओ, पूरा हो गया, लो। ऐसा कहते हैं या नहीं? सब्जी थोड़ी कच्ची और थोड़ी पक गयी हो तो कहते हैं बैठ जाओ। दो मिनिट में पक जायेगी। अनिष्पन्न है, उसे निष्पन्न कहना। नहीं प्राप्ति, उसकी वर्तमान प्राप्ति कहना, ऐसा भी एक (नय है)। क्योंकि ऐसा एक भाग है। भविष्य की पर्याय के साथ वर्तमान को सन्धि करो तो ऐसा भाग उसे लागू पड़ता है। समझ में आया?

तब कहे, तुमने ऐसा कहा और! सर्व जीव व्यंजनपर्यायवाले सभी जीव हैं। एक ओर कहा सिद्ध निरंजन हैं, तो सब जीव विकार, व्यंजन-आकृतिवाले हैं, यह शास्त्र का उपदेश व्यर्थ जाता है। (समाधान यह है कि) व्यर्थ नहीं जाता। पूर्व की अपेक्षा लेकर वर्तमान में कहना, इस अपेक्षा से व्यर्थ नहीं जाता। कहो, समझ में आया? कितना याद रहेगा इसमें? पोपटभाई ने तो कहा है कि कहूँगा ऐसा कहा। उस टाईल्स में क्यों सब याद रहता है? आठ हाथ डालना, अमुक डालना, अमुक डालना। जिसमें जिसका रस, उसमें ही उसका रंग जमा हुआ होता है। बातें करने बैठे तो मानो... आहा..हा..!

यहाँ आत्मा की बात है। आत्मा और प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक वस्तु के दो पहलू हैं। एक द्रव्य पहलू, एक पर्याय पहलू। यह दो पहलू हैं न? शरीर के दो पहलू हैं या नहीं ये? दायाँ और बायाँ। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु, छह द्रव्य (में) कायम रहनेवाला एक अंश। नय है न, इसलिए नय तो अंश को ही विषय करता है। पूर्ण को विषय करे तो प्रमाणज्ञान हो गया। समझ में आया? परमाणु द्रव्य है। उस परमाणु की व्याख्या अब अजीव में लेंगे। इसके बाद। इसमें नहीं परन्तु इसका ज्ञान करके छोड़नेयोग्य है, ऐसा बताते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि सर्व जीव अपने भूतकाल में, वर्तमान में भले पवित्र सिद्ध परमात्मा हो गये, भूतकाल में दोषवाले, आकृतिवाले थे। इस अपेक्षा से उन्हें लागू पड़ता है। वर्तमान कहना ऐसा, वह विरोध को प्राप्त नहीं होता।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में चौथे श्लोक द्वारा) कहा है कि—समयसार में अपने आ गया है।

उभय-नय-विरोधऽध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के,
जिन-वचसि रमन्ते ये स्वयं वान्त-मोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योति-रुच्चै-
रनव-मनय-पक्षाक्षुण्ण-मीक्षन्त एव ।।

यह चौथा श्लोक अपने आ गया है। **दोनों नयों के विरोध को नष्ट करनेवाले,...** निश्चय से जो कहा, उसे उस प्रकार से। पर्याय को व्यवहार से कहा, उसे उस प्रकार से। दोनों का विरोध होने पर भी **स्यात्पद से अंकित जिनवचन में जो पुरुष रमते हैं,...** अपेक्षा से वह कहा था। वस्तु के स्वरूप में-त्रिकाली ध्रुव में यह पर्याय नहीं है। पर्याय, पर्याय में है, उसके अस्तित्व में है। ऐसा दो का ज्ञान करके, वीतराग ने कहा हुआ जो त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, उसमें जो पुरुष रमते हैं। वचन में रमते हैं अर्थात् वचन में कहा हुआ भाव। क्योंकि वस्तु जो त्रिकाल है, वह तो ध्रुव है। अब उसमें रमना, वह तो पर्याय है, नयी दशा है। समझ में आया? तो पर्याय, पर्यायरूप से जानकर; द्रव्य, द्रव्यरूप से जानकर और द्रव्यस्वभाव मुख्यरूप से भगवान की वाणी में आदरनेयोग्य कहा है। समझ में आया?

वस्तु... द्रव्य और पर्याय दो का वर्णन अवश्य किया है। दो का यथावत् ज्ञान करके, प्रयोजनभूत जो वस्तु त्रिकाली है, उसका आश्रय लेना, अर्थात् उसमें रमना, यह वीतराग के कहे हुए दो नयों का सार है। वर्तमान अवस्था को अवस्थारूप से मेलवाली-अशुद्धतावाली जैसी हो, वैसी जाने और त्रिकाल शुद्ध एकरूप है, उसे जाने। जानकर वर्तमान पर्याय से दृष्टि उठा (लेना)। जानने के लिये बराबर है, आदरने के लिये बराबर नहीं। उसमें से (दृष्टि) उठाकर वस्तु जो त्रिकाल वीतराग ने कही वह। वीतराग ने तो ध्रुवस्वभाव को आदरनेयोग्य कहा है। वीतराग की वाणी में तो वीतरागभाव प्रगट करने का (कथन) आता है। वीतरागभाव प्रगट करने का आवे, वहाँ पर्याय की उपेक्षा करने में आवे और द्रव्य की अपेक्षा करने में आवे, वह वीतराग की वाणी कहने में आती है। आहा..हा..! समझ में आया?

इस संसार में, देखो न, पढ़ते हैं। कितने लड़को को परीक्षा चलती है। परीक्षा आयेगी, इसलिए रात और दिन पढ़े-वाँचे। पाप की परीक्षा है और पाप की पढ़ाई है, तो भी उसमें कितनी लगन है। उसी प्रकार यह आत्मा क्या है? वस्तु क्या है? पर्याय क्या है? उसे जानने के लिये कितना ही समय देना पड़ेगा या नहीं?

दोनों नयों का जैसा है, वैसा बराबर ज्ञान करके; अपना प्रयोजन वीतरागमार्ग में ध्रुव का आश्रय करना, पर की उपेक्षा करनी, ऐसा जो साररूप भगवान ने कहा, उसमें जो आत्मा के स्वभाव में रमता है, अखण्ड आनन्द प्रभु में रमता है, आ गया। ध्रुव त्रिकाली है, उसमें रमता है, यह पर्याय हो गयी।

वे स्वयमेव मोह को वमन करके,... अर्थात् क्या कहते हैं ? अखण्ड ध्रुव आनन्द की मूर्ति प्रभु, जो एकसमय की पर्याय से अलग तत्त्व है। जाननेयोग्य पर्याय है – ऐसा तो कहा; परन्तु उस पर्याय से भिन्न द्रव्यार्थिकनय का विषय जो पूरा तत्त्व है, उसमें जो पुरुष रमते हैं, उनका मोह-मिथ्यात्व स्वयं वमन हो जाता है, उन्हें मिथ्यात्व नहीं रहता। स्वभाव सन्मुख होने पर मिथ्यात्व का नाश हुए बिना नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। पर्याय में मिथ्यात्व था तो सही। आहा..हा..! वमन कर देता है, इसमें आ गया। द्रव्य शुद्ध है – ऐसा आश्रय कराया, परन्तु पर्याय में अशुद्धता है, उसका ज्ञान कराया था।

इसलिए कहते हैं कि जो यहाँ भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य है, उसका आश्रय लेकर, अन्तर में श्रद्धा-ज्ञान में रमता है, उसका मिथ्यात्व का भाव **स्वयमेव...** अर्थात् ? नाश करूँ तो नाश हो – ऐसा वहाँ है नहीं। मिथ्यात्व का नाश करूँ तो नाश हो, ऐसा वहाँ है नहीं। वह तो जहाँ आत्मा के स्वभाव सन्मुख ढला, तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति नहीं होती, उसने मिथ्यात्व को वमन कर दिया है। आहा..हा..! भाषा की विशिष्टता यह है। वमन कर दिया है। जैसे कुत्ता वमन किया हुआ खाता है; मनुष्य वमन किया हुआ नहीं खाता। इसी प्रकार जिसने भगवान आत्मा के स्वरूप का; पर्याय का ज्ञान करने पर भी; आश्रय ध्रुव का लिया है, उसका मिथ्यात्व वमन हो जाता है, नष्ट हो जाता है। फिर से मिथ्यात्व नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

वे स्वयमेव... देखो ! स्वयमेव, इसमें भी बहुत विवाद उठे न। कर्ता-कर्म आता है न ? पाँच गाथा। स्वयं, स्वयं। उसका विवाद। अरे ! भगवान ! कब तुझे विवाद निकालना। खोटा लेख है, उसमें ऐसा है। स्वयमेव अर्थात् वह परमाणु, परमाणुरूप से परिणमा, ऐसा स्वयमेव लेना। स्वयं से ही परिणमता है और पर से नहीं, निमित्त से नहीं, यह बात नहीं लेना। स्वयं परिणमता है। स्वयं परिणमने का अर्थ कि पुद्गल, पुद्गलरूप होता है; जीव, जीवरूप होता है। अपनेरूप ऐसा। अपना (स्वयं का) कहा न ? पुद्गल। परन्तु उसका

यहाँ क्या काम है ? क्रमबद्ध में ऐसा डालते हैं न वे ! ऐसा कहते हैं कि यह क्रमनियमित है न ? तो बराबर है। जीव, वह जीवरूप से दूसरी पर्याय होती है; दूसरी पर्याय जड़रूप नहीं होती, ऐसा वहाँ कहा है। लो, ठीक। अरे ! यह विवाद तो विवाद। अरे ! भगवान ! ऐसा अवसर, भाई ! अवसर में काम नहीं करेगा तो फिर नहीं हो सकेगा।

दोनों नयों का परस्पर विरोध है, तथापि कथंचित् द्रव्यदृष्टि से ध्रुव है; कथंचित् पर्यायदृष्टि से अशुद्ध है अथवा पर्यायदृष्टि से पर्याय है —ऐसे विरोध मिटाकर, जो पुरुष वीतरागभाव में वस्तु स्वयं ध्रुव चैतन्य, अन्तर आनन्द का धाम भगवान, वहाँ झुक गया है, वहाँ झुक गया है, उसमें रमता है, उसका मिथ्यात्व सहज नष्ट हो जाता है।

अनूतन (अनादि) और कुनय के पक्ष से खण्डित न होनेवाली,... लो ! अनवम, अनय, अनवम और अनय। अनादि जो कुनय का पक्ष है, उससे खण्डित नहीं होता। वह तो अपने स्वरूप को पाकर आनन्द की दशा का अनुभव करेगा। अनुभव कहीं द्रव्य का और ध्रुव का नहीं है। अनुभव उसका, परन्तु जो पर्याय का पर्याय लक्ष्य से अनुभव था, वह द्रव्य लक्ष्य से पर्याय का अनुभव हुआ; इसलिए ध्रुव का अनुभव साथ में कहा जाता है। समझ में आया ? और कहे कि द्रव्य का अनुभव नहीं होता, पर्याय का अनुभव होता है। किस अपेक्षा से ? अनुभव तो पर्याय का है, परन्तु जो पर्याय / अवस्था है, अवस्थादृष्टि में रहकर जो अनुभव था, वह मिथ्यात्व अनुभव था और इस त्रिकाली ध्रुव में नजर करके अनुभव हो, वह ध्रुव में से आता होने से ध्रुव का अनुभव है - ऐसा कहने में आता है। ध्रुव का और पर्याय का दोनों का अनुभव है - ऐसा कहा जाता है, परन्तु कहने का अर्थ इतना कि ध्रुव के आश्रय से प्रगट होती दशा का अनुभव है। ध्रुव कूटस्थ वस्तु है, उसका अनुभव नहीं हो सकता। खण्डित नहीं होती। किसी कुनय से न्याय खण्डित नहीं होता - ऐसी चीज़ है, कहते हैं। समझ में आया ?

ऐसी उत्तम परमज्योति को-समयसार को शीघ्र देखते ही हैं। अन्दर। भाषा देखो ! **शीघ्र देखते ही हैं।** जो कोई पर्याय को पर्यायरूप से जानने पर भी, उसका आश्रय छोड़कर त्रिकाली ज्ञायक का आश्रय करता है, वह अल्प काल में समयसार को शीघ्र, अल्पकाल में परमात्म पद को प्राप्त करता है। आहा..हा.. !

अब पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं। ३६वाँ।

श्लोक-३६

और (इस जीव अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं —)

(मालिनी)

अथ नय-युग-युक्तिं लङ्घयन्तो न सन्तः,
परमजिनपदाब्जद्वन्द्वमत्तद्विरेफाः।
सपदि समय-सारं ते ध्रुवं प्राप्नुवन्ति,
क्षितिषु परमतोक्तेः किं फलं सज्जनानाम् ।।३६।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ जीवाधिकारः प्रथमश्रुतस्कन्धः।

(वीरछन्द)

उभय नयों के सम्बन्धों का उल्लंघन नहिं करें सुजान।
परमेश्वर के पद पंकज में मत्त हुए जो भ्रमर समान॥
ऐसे महापुरुष ही सत्वर समयसार को पाते हैं।
पृथ्वी पर परमत कथनों से सत्पुरुषों को क्या फल है॥३६॥

श्लोकार्थ :—जो दो नयों के सम्बन्ध का उल्लंघन न करते हुए, परमजिन के पाद-पंकजयुगल में मत्त हुए भ्रमरसमान हैं — ऐसे जो सत्पुरुष, वे शीघ्र समयसार को अवश्य प्राप्त करते हैं। पृथ्वी पर परमत के कथन से सज्जनों को क्या फल है (अर्थात्, जगत में जैनेतर दर्शनों के मिथ्या कथनों से सज्जनों को क्या लाभ है)?॥३६॥

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्यसमान हैं और पाँच इन्द्रियों के फैलावरहित देहमात्र जिनको परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात्, श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य-देवप्रणीत श्री नियमसारपरमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विरचित, तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) जीव-अधिकार नाम का प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक-३६ पर प्रवचन

अथ नय-युग-युक्तिं लङ्घयन्तो न सन्तः,
परमजिनपदाब्जद्वन्द्वमत्तद्विरेफाः।
सपदि समय-सारं ते ध्रुवं प्राप्नुवन्ति,
क्षितिषु परमतोक्तेः किं फलं सज्जनानाम्।।३६।।

आहा..हा..! जो कोई पुरुष, **जो दो नयों के सम्बन्ध का उल्लंघन न करते हुए,...** द्रव्य है, उस द्रव्य को द्रव्यरूप से जाने और पर्याय को पर्यायरूप से मुझमे हैं - ऐसा जाने। यह पर्याय है और पर की है - ऐसा नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? **परमजिन के पाद-पंकजयुगल में मत्त हुए....** परम वीतराग के चरणकमल के युगल में **मत्त हुए भ्रमरसमान हैं—ऐसे जो सत्पुरुष, वे शीघ्र समयसार को अवश्य प्राप्त करते हैं।** लो! वह अल्पकाल में आत्मा.. उसके दो नय कहे न? दोनों को नहीं उल्लंघता हुआ। पर्याय, पर्यायरूप से है, ऐसा बराबर निर्णय करे। मुझमें पर्याय है। पर की नहीं और पर के कारण नहीं तथा द्रव्य, द्रव्यरूप से पर्यायरहित त्रिकाल है। समझ में आया?...

पृथ्वी पर परमत के कथन से सज्जनों को क्या फल है... सर्वज्ञ परमेश्वर ने त्रिकाल ज्ञान से देखा, वैसा कहा, वैसा है। अब दूसरे अभिप्रायों से जगत के प्राणी को क्या काम है? परमेश्वर ने जो यह मार्ग कहा, वह सत् परम पवित्र, परम सत्य की धारा से प्रचलित (है), उसे दूसरे मतों से क्या काम है? लो, ऐसा कहकर यहाँ जीव, वीतराग ने कहा वैसा जीव, ऐसा। जीव अधिकार है न?

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने कहा हुआ, अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य। पर्याय, पर्यायरूप से अनादि-अनन्त पर्याय है। पर्याय भी, कभी पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता और द्रव्य बिना की पर्याय नहीं होती। यह तो पर की अपेक्षा से भिन्न करने पर (ऐसा कहा जाता है)। समझ में आया? ऐसा जो वीतरागमार्ग का उपदेश, उसे भलीभाँति समझकर, अन्य अभिप्राय से तुझे क्या काम है? (कि) अमुक ऐसा कहते हैं... अमुक ऐसा कहते हैं। यह मार्ग ही ऐसा है। ऐसा समझकर अन्तर में आश्रय करना, वह अल्प काल में समयसार को प्राप्त करता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२

अजीव अधिकार

गाथा-२०

अथेदानीमजीवाधिकार उच्यते।

अणुखंधवियप्पेण दु पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।
खंधा हु छप्पयारा परमाणू चेव दुवियप्पो।।२०।।

अणुस्कन्ध विकल्पेन तु पुद्गलद्रव्यं भवति द्विविकल्पम्।
स्कन्धाः खलु षट्प्रकाराः परमाणुश्चैव द्वि-विकल्पः।।२०।।

पुद्गलद्रव्यविकल्पोपन्यासोऽयम्। पुद्गलद्रव्यं तावद् विकल्पद्वयसनाथं, स्वभाव-पुद्गलो विभावपुद्गलश्चेति। तत्र स्वभावपुद्गलः परमाणुः, विभावपुद्गलः स्कन्धः। कार्यपरमाणुः कारणपरमाणुरिति स्वभावपुद्गलो द्विधा भवति। स्कन्धाः षट्प्रकाराः स्युः पृथ्वीजलच्छायाचतुरक्षविषयकर्मप्रायोग्याप्रायोग्यभेदाः। तेषां भेदो वक्ष्यमाणसूत्रेषूच्यते विस्तरेणेति।

परमाणु एवं स्कन्ध हैं, दो भेद पुद्गलद्रव्य के।
है स्कन्ध छै विधि और विविध विकल्प हैं परमाणु के॥२०॥

अन्वयार्थ :—[अणुस्कन्धविकल्पेन तु] परमाणु और स्कन्ध, ऐसे दो भेद से [पुद्गलद्रव्यं] पुद्गलद्रव्य [द्विविकल्पम् भवति] दो भेदवाला है; [स्कन्धाः] स्कन्ध [खलु] वास्तव में [षट्प्रकाराः] छह प्रकार के हैं [परमाणुः च एव द्विविकल्पः] और परमाणु के दो भेद हैं।

टीका :—यह पुद्गलद्रव्य के भेदों का कथन है।

प्रथम तो पुद्गलद्रव्य के दो भेद हैं — स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल।

उनमें परमाणु, वह स्वभावपुद्गल है और स्कन्ध, वह विभावपुद्गल है। स्वभाव -पुद्गल, कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु — ऐसे दो प्रकार का है। स्कन्धों के छह प्रकार हैं — १. पृथ्वी, २. जल, ३. छाया, ४. (चक्षु के अतिरिक्त) चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध, ५. कर्मयोग्य स्कन्ध, और ६. कर्म को अयोग्य स्कन्ध — ऐसे छह भेद हैं। स्कन्धों के भेद, अब कहे जानेवाले सूत्रों में (अगली चार गाथाओं में) विस्तार से कहे जायेंगे।

प्रवचन-२८, श्लोक-३८, गाथा-२०-२४, मंगलवार, चैत्र शुक्ल ४, दिनांक ३०-०३-१९७१

यह नियमसार। जीव अधिकार पूरा हुआ। दूसरा अजीव अधिकार। अजीव अधिकार की शुरुआत होती है। भगवान ने ज्ञान में जीव-अजीव दो द्रव्य देखे हैं और अजीव के पाँच प्रकार हैं। जानना चाहिए न ? भगवान केवली तीर्थंकरदेव ने ज्ञान में छह द्रव्य देखे, उसमें आत्मा तो अखण्ड अभेद, शुद्ध है, उसकी बात कर गये हैं। अब अजीव का स्वरूप वर्णन करते हैं। अजीव में भी पहले पुद्गल का स्वरूप वर्णन करते हैं।

अणुखंधवियप्पेण दु पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।
खंधा हु छप्पयारा परमाणू चेव दुवियप्पो।।२०।।

नीचे हरिगीत

परमाणु एवं स्कन्ध हैं, दो भेद पुद्गलद्रव्य के।
है स्कन्ध छै विधि और विविध विकल्प हैं परमाणु के॥२०॥

जीव का अधिकार। पाँच वर्ष पहले पढ़ा नहीं था, यह छोड़ दिया था। रामजीभाई कहे कि सब क्रमसर है, वह लेना।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहले आया था। पाँच-सात वर्ष पहले।

टीका :— यह पुद्गलद्रव्य के भेदों का कथन है। अजीव के पाँच प्रकार के, उनमें भी पुद्गल है, उसकी यह व्याख्या है। **प्रथम तो पुद्गलद्रव्य के दो भेद हैं...** पुद्गल

है न ? जिसे कहते हैं पुद्गल, उसके दो भेद हैं। **स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल।** यह सब जानकर, वे मेरे आत्मा से भिन्न चीज़ है, इसलिए वह बताया जाता है। **परमाणु, वह स्वभावपुद्गल है...** एक पाइंट है, रजकण, उसे पर का सम्बन्ध कुछ नहीं, उसमें विभाव नहीं, इसलिए उसे स्वभावपुद्गल कहा जाता है। एक परमाणु को स्वभावपुद्गल कहा जाता है, तथापि वह आत्मा के स्वरूप में है नहीं। उसका स्वभाव-पुद्गल का, परमाणु वास्तविक वही पुद्गल है।

और स्कन्ध, वह विभावपुद्गल है। यह दो रजकण से लेकर अनन्त परमाणु जो इकट्ठे दिखते हैं, उन सबको विभावपुद्गल कहने में आता है। शरीर, वाणी, कर्म, मन, पैसा, दाल, भात, सब्जी, रोटी इत्यादि। यह स्कन्ध है। बहुत रजकणों का बना हुआ पिण्ड है। वह विभावपुद्गल है। एक-दूसरे के निमित्त-निमित्त में सम्बन्ध में आये न, इसलिए विकारी पर्यायवाले वे विभावपुद्गल हैं। उन्हें विकार होने पर भी कहीं उन्हें दुःख नहीं है। मात्र उनका स्वरूप ऐसा है, ऐसा वर्णन करते हैं।

स्वभाव-पुद्गल, कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु — ऐसे दो प्रकार का है। एक परमाणु जो अन्तिम पाइंट, वस्तु, अस्ति, जगत का तत्त्व, उसके दो भेद हैं। पहले पुद्गल के दो भेद कहे - स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल। स्वभावपुद्गल परमाणु, विभावपुद्गल स्कन्ध। स्वभावपुद्गल के दो भेद, एक परमाणु के (दो भेद)। कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु दो प्रकार से है। इसका स्पष्टीकरण बाद में करेंगे।

स्कन्धों के छह प्रकार हैं— अनन्त रजकण का जो पिण्ड होता है, उसे स्कन्ध कहा जाता है। उसके छह प्रकार हैं। **१. पृथ्वी, २. जल, ३. छाया, ४. (चक्षु के अतिरिक्त) चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध, ५. कर्मयोग्य स्कन्ध, और ६. कर्म को अयोग्य स्कन्ध—ऐसे छह भेद हैं। स्कन्धों के भेद, अब कहे जानेवाले सूत्रों में (अगली चार गाथाओं में) विस्तार से कहे जायेंगे।** बाद की चार गाथाओं में कहेंगे।

श्लोक-३७

(अब, २०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं —)

(अनुष्टुप्)

गलनादणुरित्युक्तः पूरणात्स्कन्धनामभाक् ।
विनानेन पदार्थेण लोकयात्रा न वर्तते ।।३७।।

(वीरछन्द)

गलने से परमाणु होता, मिलने से स्कन्ध बने।
इस पदार्थ के बिना जगत में, लोकयात्रा नहीं बने॥३७॥

***श्लोकार्थ :*—(पुद्गलपदार्थ) गलन द्वारा (अर्थात्, भिन्न हो जाने से) 'परमाणु' कहलाता है और पूरण द्वारा (अर्थात्, संयुक्त होने से) 'स्कन्ध' नाम को प्राप्त होता। इस पदार्थ के बिना लोकयात्रा नहीं हो सकती ॥३७॥**

श्लोक-३७ पर प्रवचन

(अब, २०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं —) ३७ वाँ श्लोक है।

गलनादणुरित्युक्तः पूरणात्स्कन्धनामभाक् ।
विनानेन पदार्थेण लोकयात्रा न वर्तते ।।३७।।

परमाणु जो है, वह गलन द्वारा स्कन्ध में से पृथक् पड़ता है, ऐसा कहते हैं। उसे यहाँ परमाणु कहा जाता है। यह रजकण-जत्था है, उसमें से अन्तिम पृथक् परमाणु पड़े, उसे यहाँ परमाणु कहा जाता है। **पूरण द्वारा (अर्थात्, संयुक्त होने से) 'स्कन्ध' नाम को प्राप्त होता।** पूरण गलन की व्याख्या की है।

(पुद्गलपदार्थ) गलन द्वारा (अर्थात्, भिन्न हो जाने से) 'परमाणु' कहलाता

है और पूरण द्वारा (अर्थात्, संयुक्त होने से) 'स्कन्ध' नाम को प्राप्त होता। ऐसा कहना है। वैसे तो परमाणु स्वयं पुद्गल स्वभाविक है, परन्तु स्थूल रीति से परमाणु का स्वभाव स्कन्ध से पृथक् पड़ना है, ऐसे गले, पृथक् पड़े, उसे परमाणु कहते हैं; और बहुत रजकणों का पिण्ड-जत्था हो, उसे पूरण कहते हैं।

नजदीक आओ। सामनेवालों को छूट इतनी होती है न कि पीछे खचाखच हो जाती है। छूट होती है न। पहले आवे, वह पहले बैठे न।

इस पदार्थ के बिना लोकयात्रा नहीं हो सकती। यह गमन-फमन सब है, वह जड़ की क्रिया है। वह आत्मा की क्रिया नहीं है। हिलना, चलना, उठना, बैठना, रजकण, यह दाल-भात का बनना, मकानों का बनना, यह सब स्थिति तो पुद्गल परमाणु की है; आत्मा की नहीं। समझ में आया? **इस पदार्थ के बिना लोकयात्रा...** लोकयात्रा अर्थात् लोक में गमन। ऐसे से ऐसे जाना, यह पुद्गल की क्रिया है। आत्मा से भिन्न है। आत्मा की क्रिया नहीं है। यह २०वीं गाथा का कलश हुआ। चार गाथा (२१ से २४ गाथा)।

गाथा-२१-२४

अइथूलथूल-थूलं थूलस्सुहुमं च सुहुमथूलं च।
सुहुमं अइसुहुमं इदि धरादियं होदि छब्भेयं।।२१।।
भूपव्वदमादीया भणिदा अइथूलथूलमिदि खंधा।
थूला इदि विण्णेया सप्पीजलतेल्लमादीया।।२२।।
छायातवमादीया थूलेदरखंधमिदि वियाणाहि।
सुहुमथूलेदि भणिया खंधा चउरक्खविसया य।।२३।।
सुहुमा हवंति खंधा पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो।
तव्विवरीया खंधा अइ-सुहुमा इदि परूवेंति।।२४।।

अतिस्थूलस्थूलाः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्माश्च सूक्ष्मस्थूलाश्च।
सूक्ष्मा अति-सूक्ष्मा इति धरादयो भवन्ति षड्-भेदाः।।२१।।
भू-पर्वताद्या भणिता अति-स्थूलस्थूलाः इति स्कन्धाः।
स्थूला इति विज्ञेयाः सर्पिर्जल-तैलाद्याः।।२२।।
छायातपाद्याः स्थूलेतर-स्कन्धा इति विजानीहि।
सूक्ष्म-स्थूला इति भणिताः स्कन्धाश्चतुरक्ष-विषयाश्च।।२३।।
सूक्ष्मा भवन्ति स्कन्धाः प्रायोग्याः कर्म-वर्गणस्य पुनः।
तद्विपरीताः स्कन्धाः अति-सूक्ष्मा इति प्ररूपयन्ति।।२४।।

विभावपुद्गलस्वरूपाख्यानमेतत्। अतिस्थूलस्थूला हि ते खलु पुद्गलाः सुमेरु-कुम्भिनीप्रभृतयः। घृततैलतक्रक्षीरजलप्रभृतिसमस्तद्रव्याणि हि स्थूलपुद्गलाश्च। छाया-तपतमःप्रभृतयः स्थूलसूक्ष्मपुद्गलाः। स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रेन्द्रियाणां विषयाः सूक्ष्मस्थूल-पुद्गलाः शब्दस्पर्शरसगन्धाः। शुभाशुभपरिणामद्वारेणागच्छतां शुभाशुभकर्मणां योग्याः सूक्ष्मपुद्गलाः। एतेषां विपरीताः सूक्ष्मसूक्ष्मपुद्गलाः कर्मणामप्रायोग्या इत्यर्थः। अयं विभाव-पुद्गलक्रमः।

तथा चोक्तं पञ्चास्तिकायसमये ह्न

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति।।

उक्तं च मार्गप्रकाशे ह्न

(अनुष्टुप्)

स्थूलस्थूलास्ततः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्मास्ततः परे।
सूक्ष्मस्थूलास्ततः सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्मास्ततः परे।।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(वसंततिलका)

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये,
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-
चैतन्यधातु-मय-मूर्तिरयं च जीवः।।

तथाहि ह्न

अतिस्थूलस्थूल रु स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल रु सूक्ष्म ये।
अतिसूक्ष्म, यों छै भेद पृथ्वी आदि पुद्गलस्कन्ध के॥२१॥

भू, भूमिधर इत्यादि ये अतिस्थूल स्कन्ध प्रमानिये।
घृत, तैल, जल इत्यादि इनको स्थूल स्कन्ध सु जानिये॥२२॥

आताप, छाया स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध निश्चय कीजिए।
अरु स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल चारों अक्ष से गहि लीजिए॥२३॥

कार्माणवर्गण योग्य पञ्चम स्कन्ध सूक्ष्म स्कन्ध है।
विपरीत जो इस योग्य नहिं अतिसूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध है॥२४॥

अन्वयार्थ :—[अतिस्थूलस्थूलाः] अतिस्थूलस्थूल, [स्थूलाः] स्थूल, [स्थूल-सूक्ष्माः च] स्थूलसूक्ष्म, [सूक्ष्मस्थूलाः च] सूक्ष्मस्थूल, [सूक्ष्माः] सूक्ष्म, और [अति-सूक्ष्माः] अतिसूक्ष्म [इति] ऐसे [धरादयः षट्भेदाः भवन्ति] पृथ्वी आदि स्कन्धों के छह भेद हैं।

[भूपर्वताद्याः] भूमि, पर्वत आदि [अतिस्थूलस्थूलाः इति स्कन्धाः] अतिस्थूल-स्थूल स्कन्ध [भणिताः] कहे गये हैं; [सर्पिर्जलतैलाद्याः] घी, जल, तेल आदि [स्थूलाः इति विज्ञेया] स्थूल स्कन्ध जानना।

[छायातपाद्याः] छाया, आतप (धूप) आदि [स्थूलेतरस्कन्धाः इति] स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध [विजानीहि] जान [च] और [चतुरक्षविषयाः स्कन्धाः] चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्धों को [सूक्ष्मस्थूलाः इति] सूक्ष्मस्थूल [भणिता] कहा गया है।

[पुनः] और [कर्मवर्गणस्य प्रायोग्याः] कर्मवर्गणा के योग्य [स्कन्धाः] स्कन्ध, [सूक्ष्माः भवन्ति] सूक्ष्म हैं; [तद्विपरीताः] उनसे विपरीत (अर्थात्, कर्मवर्गणा को अयोग्य) [स्कन्धाः] स्कन्ध, [अतिसूक्ष्माः इति] अतिसूक्ष्म [प्ररूपयन्ति] कहे जाते हैं।

टीका :—यह, विभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है।

सुमेरु, पृथ्वी आदि (घनपदार्थ) वास्तव में अतिस्थूलस्थूल पुद्गल हैं। घी, तेल, मट्ठा, दूध, जल आदि समस्त (प्रवाही) पदार्थ, स्थूल पुद्गल हैं। छाया, आतप, अंधकारादि, स्थूलसूक्ष्म पुद्गल हैं। स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रिय के विषय — स्पर्श, रस, गन्ध और शब्द — सूक्ष्मस्थूल पुद्गल हैं। शुभाशुभपरिणाम द्वारा आनेवाले, ऐसे शुभाशुभकर्मों को योग्य (स्कन्ध), वे सूक्ष्म पुद्गल हैं। उनसे विपरीत, अर्थात् कर्मों को अयोग्य (स्कन्ध), वे सूक्ष्म सूक्ष्म पुद्गल हैं — ऐसा (इन गाथाओं का) अर्थ है। यह विभावपुद्गल का क्रम है।

(भावार्थ :— स्कन्ध, छह प्रकार के हैं — १. काष्ठपाषाणादि जो स्कन्ध, छेदन किये जाने पर स्वयमेव जुड़ नहीं सकते, वे स्कन्ध अतिस्थूलस्थूल हैं। २. दूध, जल आदि जो स्कन्ध, छेदन किये जाने पर पुनः स्वयमेव जुड़ जाते हैं, वे स्कन्ध स्थूल हैं। ३. धूप, छाया, चाँदनी, अंधकार इत्यादि जो स्कन्ध, स्थूल ज्ञात होने पर भी भेदे नहीं जा सकते या हस्तादिक से ग्रहण नहीं किये जा सकते, वे स्कन्ध स्थूलसूक्ष्म हैं। ४. आँख से न दिखनेवाले ऐसे जो चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध, सूक्ष्म होने पर भी स्थूल ज्ञात होते हैं। (स्पर्शनेन्द्रिय से स्पर्श किये जा सकते हैं, जीभ से आस्वादन किये जा सकते हैं, नाक से सूंघे जा सकते हैं अथवा कान से सुने जा सकते हैं) वे स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल हैं। ५. इन्द्रियज्ञान को अगोचर, ऐसे जो कर्मवर्गणारूप स्कन्ध, वे स्कन्ध

सूक्ष्म हैं। ६. कर्मवर्गणा से नीचे के (कर्मवर्गणातीत) जो अत्यन्त सूक्ष्म, द्वि-अणुकपर्यन्त स्कन्ध सूक्ष्मसूक्ष्म हैं।)

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (*गाथा द्वारा) कहा है कि —

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति।।

(*गाथार्थ :—*) पृथ्वी, जल, छाया, चार इन्द्रियों के विषयभूत, कर्म के योग्य और कर्मातीत — इस प्रकार पुद्गल (स्कन्ध) छह प्रकार के हैं।

और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

स्थूलस्थूल स्थूल और स्थूल सूक्ष्म अरु सूक्ष्म स्थूल।
छह प्रकार स्कन्ध लखों ये सूक्ष्म और जो हैं अतिसूक्ष्म॥

श्लोकार्थ :—स्थूलस्थूल, पश्चात् स्थूल, तत्पश्चात् स्थूलसूक्ष्म, पश्चात् सूक्ष्मस्थूल, पश्चात् सूक्ष्म और तत्पश्चात् सूक्ष्मसूक्ष्म (इस प्रकार स्कन्ध, छह प्रकार के हैं।)

इस प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ४४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

इस अनादि अविवेकरूप अज्ञान भाव के नाटक में।
वर्णादिक गुणयुक्त एक पुद्गल ही नाचे, अन्य नहीं॥
रागादिक पुद्गल विकार से सदा विलक्षण यह चेतन।
एक शुद्ध चैतन्य धातुमय मूर्तिरूप है यह चेतन॥

'*श्लोकार्थ :*—इस अनादिकालीन महा-अविवेक के नाटक में अथवा नाच में वर्णादिमान् पुद्गल ही नाचता है; अन्य कोई नहीं, (अभेदज्ञान में पुद्गल ही अनेक प्रकार का दिखाई देता है; जीव तो अनेक प्रकार का है नहीं;) और यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण, शुद्ध चैतन्यधातुमय मूर्ति है।'

* देखो, श्री परमश्रुतप्रभावकमण्डल द्वारा प्रकाशित पंचास्तिकाय, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ-१३०

अइथूलथूल–थूलं थूलस्सुहुमं च सुहुमथूलं च।
सुहुमं अइसुहुमं इदि धरादियं होदि छब्भेयं।।२१।।
भूपव्वदमादीया भणिदा अइथूलथूलमिदि खंधा।
थूला इदि विण्णेया सप्पीजलतेल्लमादीया।।२२।।
छायातवमादीया थूलेदरखंधमिदि वियाणाहि।
सुहुमथूलेदि भणिया खंधा चउरक्खविसया य।।२३।।
सुहुमा हवंति खंधा पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो।
तव्विवरीया खंधा अइ–सुहुमा इदि परूवेंति।।२४।।

नीचे हरिगीत—

अतिस्थूलस्थूल रु स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल रु सूक्ष्म ये।
अतिसूक्ष्म, यों छै भेद पृथ्वी आदि पुद्गलस्कन्ध के॥२१॥
भू, भूमिधर इत्यादि ये अतिस्थूल स्कन्ध प्रमानिये।
घृत, तैल, जल इत्यादि इनको स्थूल स्कन्ध सु जानिये॥२२॥
आताप, छाया स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध निश्चय कीजिए।
अरु स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल चारों अक्ष से गहि लीजिए॥२३॥
कार्माणवर्गण योग्य पञ्चम स्कन्ध सूक्ष्म स्कन्ध है।
विपरीत जो इस योग्य नहिं अतिसूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध है॥२४॥

टीका :—**यह, विभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है।** इसकी टीका। परमाणु स्वभावपुद्गल की साधारण व्याख्या आ गयी। विशेष आगे कहेंगे। कार्य और कारण परमाणु। बहुत परमाणु इकट्ठे होते हैं और पृथक् पड़ते हैं, उनकी क्रिया जड़ की है। वह आत्मा की क्रिया बिल्कुल नहीं है। उसे जानकर परमाणु ऐसे प्रकार के हैं, उनकी स्थिति ऐसी है, जानकर तो उनसे लक्ष्य छोड़कर स्वरूप की दृष्टि करना, इसलिए यह बात है। जिसके ऊपर से लक्ष्य छोड़ना है, वह भी चीज़ क्या है? उसे तो इसे जाननी चाहिए न!

सुमेरु, (पर्वत) पृथ्वी आदि (घनपदार्थ) वास्तव में अतिस्थूलस्थूल पुद्गल हैं। स्थूल-स्थूल पुद्गल हैं। स्थूल-स्थूल। मेरुपर्वत आदि टुकड़े होकर अपने आप इकट्ठे नहीं होते, ऐसी वह चीज़ है, इसलिए उसे स्थूल-स्थूल कहते हैं। **घी, तेल, मट्ठा, दूध, जल आदि समस्त (प्रवाही) पदार्थ, स्थूल पुद्गल हैं। छाया, आतप, अंधकारादि, स्थूलसूक्ष्म पुद्गल हैं। स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रिय के विषय—स्पर्श, रस, गन्ध और शब्द—सूक्ष्मस्थूल पुद्गल हैं। शुभाशुभपरिणाम द्वारा आनेवाले, ऐसे शुभाशुभकर्मों को योग्य (स्कन्ध), वे सूक्ष्म पुद्गल हैं। उनसे विपरीत, अर्थात् कर्मों को अयोग्य (स्कन्ध), वे सूक्ष्म सूक्ष्म पुद्गल हैं—ऐसा (इन गाथाओं का) अर्थ है। यह विभावपुद्गल का क्रम है।** पाठ में तो इतना है। इसके अर्थ का स्पष्टीकरण करते हैं।

परमाणु के पिण्ड को यहाँ स्कन्ध कहते हैं। परमाणु के बहुत भाग के इकट्ठे को स्कन्ध पिण्ड कहते हैं। वे स्कन्ध छह प्रकार के हैं। **(१) काष्ठपाषाणादि जो स्कन्ध, छेदन किये जाने पर स्वयमेव जुड़ नहीं सकते, वे स्कन्ध अतिस्थूलस्थूल हैं।** टुकड़े हों तो अपने आप इकट्ठे नहीं होते। **(२) दूध, जल आदि जो स्कन्ध, छेदन किये जाने पर पुनः स्वयमेव जुड़ जाते हैं, वे स्कन्ध स्थूल हैं।** तेल, घी ऐसे पृथक् पड़ें और इकट्ठे हो जायें, ऐसा उनका स्वभाव है। वह पुद्गल का, जड़ का स्वभाव है, ऐसा कहते हैं।

(३) धूप, छाया, चाँदनी, अंधकार इत्यादि जो स्कन्ध, स्थूल ज्ञात होने पर भी भेदे नहीं जा सकते या हस्तादिक से ग्रहण नहीं किये जा सकते,... प्रकाश, छाया को पकड़ा जा सकता है कहीं? पकड़ा जा सकता है? इसलिए **वे स्कन्ध स्थूलसूक्ष्म हैं। (४) आँख से न दिखनेवाले ऐसे जो चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध, सूक्ष्म होने पर भी स्थूल ज्ञात होते हैं। (स्पर्शनेन्द्रिय से स्पर्श किये जा सकते हैं, जीभ से आस्वादन किये जा सकते हैं,...)** यह निमित्त से कथन है, हों! आस्वादे जा सकते हैं का अर्थ, निमित्त में इसकी जीभ जुड़ती है, इतनी बात है। समझ में आया? भाई! एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। यहाँ फिर आस्वादा जा सकता है। है न? स्पर्श किया जा सकता है। यह व्यवहारनय के कथनों से पुद्गलों की जाति को समझाते हैं।

(जीभ से आस्वादन किये जा सकते हैं, नाक से सूंघे जा सकते हैं अथवा कान से सुने जा सकते हैं) वे स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल हैं। ५. इन्द्रियज्ञान को अगोचर, ऐसे जो कर्मवर्गणारूप स्कन्ध, वे स्कन्ध सूक्ष्म हैं। ६. कर्मवर्गणा से नीचे के (कर्मवर्गणातीत) जो अत्यन्त सूक्ष्म, द्वि-अणुकपर्यन्त स्कन्ध सूक्ष्मसूक्ष्म हैं। यहाँ परमाणु नहीं लेना है। स्कन्ध के भेद हैं न, इसलिए दो परमाणु से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्मसूक्ष्म।

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (देखो, श्री परमश्रुतप्रभावकमण्डल द्वारा प्रकाशित पंचास्तिकाय, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ-१३०) कहा है कि —

'पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति॥'

पंचास्तिकाय में श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहा है। यहाँ नियमसार में कहा है, वह भी कुन्दकुन्दाचार्य का है।

पृथ्वी, जल, छाया, चार इन्द्रियों के विषयभूत, कर्म के योग्य और कर्मातीत — इस प्रकार पुद्गल (स्कन्ध) छह प्रकार के हैं। इसमें कहीं लम्बा स्पष्टीकरण बहुत चले, ऐसा नहीं है। सेठी! **और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —**

स्थूलस्थूलास्ततः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्मास्ततः परे।
सूक्ष्मस्थूलास्ततः सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्मास्ततः परे॥

इसमें भी छह के नाम हैं। **स्थूलस्थूल, पश्चात् स्थूल, तत्पश्चात् स्थूलसूक्ष्म, पश्चात् सूक्ष्मस्थूल, पश्चात् सूक्ष्म और तत्पश्चात् सूक्ष्मसूक्ष्म (इस प्रकार स्कन्ध, छह प्रकार के हैं।) इस प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ४४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—** यह समयसार का कलश है।

'अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाटये
वर्णादिमान् नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादि-पुद्गल-विकारविरुद्ध-शुद्ध-
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः॥'

देखो! डाला, अरे! **इस अनादिकालीन महा-अविवेक के नाटक में...** भगवान तो ज्ञानानन्द सहजानन्दमूर्ति आत्मा है। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प और शरीरादि सब पुद्गल है। उन सब पुद्गलों का यह नाटक है। भगवान आत्मा तो सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द और ज्ञान का घन है। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। उसकी दृष्टि हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। इन सब भेदों से जो यह वर्णन चलता है, वह ऐसा कहते हैं। **अविवेक के नाटक में अथवा नाच में वर्णादिमान् पुद्गल ही नाचता है;...** यह नाचे, हिले, चले, यह सब बोले, वे सब पुद्गल जड़ हैं। आत्मा बोले नहीं, आत्मा हिले नहीं, आत्मा शरीर का कुछ करे नहीं।

यहाँ तो ऐसा कहना है, आत्मा तो चिदानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप अखण्ड आनन्दकन्द वह आत्मा है। वह आत्मा कहीं राग में या शरीर की क्रिया में नहीं आता। दया, दान, व्रत के विकल्प उठें, उनमें कहीं आत्मा नहीं आता, वे तो अनात्मा हैं। उस अनात्मा का सब नाटक है, कहते हैं। आहा..हा..! **अन्य कोई नहीं,...** उन वर्णादि में पुद्गल ही परिणमता है, आत्मा नहीं। आहा..हा..! आत्मा तो उसे कहते हैं कि जो आत्मा आनन्द और ज्ञान का पिण्ड, वह अभेदस्वरूप जो प्रभु, उसमें राग का या पर का भेद ही नहीं। ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि होना, उसका नाम प्रथम धर्म और सम्यग्दर्शन कहा जाता है। यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति पूजा का भाव, वह सब पुद्गल का नाटक है - ऐसा कहते हैं। ऐई! पण्डितजी! आहा..हा..! भारी कठिन! वह सब अजीव का नाटक है। भगवान उसमें नहीं आता।

(अभेदज्ञान में पुद्गल ही अनेक प्रकार का दिखाई देता है; जीव तो अनेक प्रकार का है नहीं;) और यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण,... देखो! भगवान आत्मा शरीर, वाणी, स्कन्ध और परमाणु से तो भिन्न है, परन्तु दया, दान, व्रत, आदि के परिणाम से भी भिन्न-विलक्षण है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसा आत्मा अन्दर ज्ञानानन्द राग से-विकल्प से भिन्न, ऐसे आत्मा का अन्तरभान और श्रद्धा हो, उसे धर्म की पहली दशा कहते हैं। बाकी धर्म-वर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से... भाषा ऐसी ली है। यह स्कन्धों का तो वर्णन किया, परमाणु का किया परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में होनेवाले शुभ और

अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, यात्रा आदि यह सब विकल्प, पुद्गल का विकार है। है ? आहा..हा.. ! ये सब पुद्गल के ठाठ-बाट हैं। आहा..हा.. ! भगवान आत्मा तो चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप है। आहा..हा.. ! उसकी पर्याय में पुद्गल के निमित्त से होते (भाव), वे सब उसके हैं, आत्मा के नहीं। समझ में आया ?

रागादिक पुद्गलविकारों... ऐसा कहा न ? क्या कहा ? ये पंच महाव्रत के परिणाम / विकल्प, दया, दान यात्रा का राग, भक्ति-पूजा का राग, वह सब पुद्गल का विकार है। कहो, सेठी! आत्मा की जाति में वह है नहीं। कर्मपुद्गल जड़ है। उसके संग में फड़फड़ाहट सब पुद्गल का विकार है। भगवान आत्मा उससे भिन्न है। आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ? भाषा क्या है ? **यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण,...** ऐसा है न ? यह समयसार की गाथा (कलश) है। **रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण, शुद्ध...** परमाणु और यह छह प्रकार के स्कन्ध, इनसे तो आत्मा विरुद्ध-शुद्ध है, परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, ऐसे विकल्प (उत्पन्न हों), वह भी पुद्गल का विकार है। उससे भगवान आत्मा विलक्षण है। यह लक्षण उसका नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! एक शब्द में कितना डाला, देखो ! समझ में आया ?

अनन्त परमाणु कर्म के स्कन्ध-पिण्ड के लक्ष्य से होनेवाला विकार। वे पुण्य-पाप के भाव कहीं आत्मा के लक्ष्य से नहीं होते। कहते हैं कि पुद्गल जो कर्म है, वह जड़ है, अनन्त स्कन्ध है। स्कन्ध की व्याख्या आयी न ? तो उस स्कन्ध के लक्ष्य से, स्कन्ध के अस्तित्व पर लक्ष्य जाने से जो कुछ पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, उन्हें पुद्गल का विकार कहने में आता है। उनसे भगवान आत्मा विलक्षण है। विलक्षण अर्थात् भिन्न चीज़ है। रागादि का लक्षण आत्मा में है नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? स्कन्ध में, पुद्गल में फिर यह डाला। कहो, समझ में आया ? चूड़ी तो पुद्गल है, कर्म पुद्गल है, परन्तु उनके लक्ष्य से होनेवाला विकल्प, वह पुद्गल का विकार है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कल आप ऐसा कहते थे कि यह तो सम्यग्दृष्टि के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अज्ञानी को होता है परन्तु वह पुद्गल का ही विकार है। वह जीव का स्वभाव नहीं। वह तो स्वभाव की दृष्टि होने पर, रागादि का अल्पपना रहा, वह परिणमन उसकी दशा में है, ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु वस्तु के स्वभाव की दृष्टि से देखने

पर, दृष्टि से-स्वभाव से देखने पर... समझ में आया ? वह पर है; आत्मा का स्वभाव नहीं। समझ में आया ? एक शब्द पूरा... समयसार नाटक का श्लोक है। पाठ में है न ? '**अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाटये**' एकदम द्रव्यस्वभाव को वर्णन करना है न ! '**वर्णादिमान् नटति पुद्गल एव नान्यः।**'

इस जगत के पुद्गल नाचे। भगवान तो एकरूप अभेद है, वह अनेक में कैसे आवे, ऐसा कहते हैं। शरीर, वाणी, मन, यह सब नाटक जड़ का नाटक है। आत्मा का नाटक यह है नहीं। तदुपरान्त रागादि पुद्गल विकार, पुण्य और पाप के भाव, ये सब पुद्गल के विकृत भाव हैं। वस्तु के द्रव्यस्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से। पश्चात् ज्ञान करे, तब जानता है कि राग का भाव जरा पर्याय में है, ऐसा जाने। ज्ञान का स्व और पर दोनों को जानने का स्वभाव है, इसलिए उसे ऐसा कहा। दृष्टि का तो अकेला निर्विकल्प स्वभाव है, अभेद देखने का स्वभाव है, इसलिए उन्हें—रागादि को पुद्गल का विकार कहकर, उससे कोई विलक्षण आत्मा है (ऐसा कहा)। समझ में आया ?

'**रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-**' लो, विरुद्ध का अर्थ विलक्षण किया। क्या कहा ? यह आत्मा जो वस्तु भगवान आत्मा जो अन्दर है, उसे आत्मा कहते हैं कि जो राग, दया, दान, काम, क्रोध, विकल्प हैं, उन पुद्गल के विकार से आत्मा विरुद्ध है। आत्मा के स्वभाव से, पुण्य-पाप के भाव विरुद्ध हैं और उनसे आत्मा विरुद्ध है। समझ में आया ? विरुद्ध है। रागादिभाव से आत्मा विरुद्ध है। आत्मा के स्वभाव से रागादि विरुद्ध है, यह तो ठीक परन्तु यहाँ तो अजीव का अधिकार है न ? वहाँ भी अजीव अधिकार ही अन्तिम आता है न ? समझ में आया ?

राग, पुण्य-पाप आदि भाव, पुद्गल विकार से आत्मा अत्यन्त विरुद्धस्वरूप है। क्योंकि वे अजीवस्वभाव हैं और भगवान जीवस्वभाव है, इसलिए वे विरुद्धभाव हैं। आहा..हा..! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प शुभोपयोग भी पुद्गल का विभाव है। उनसे आत्मा विरुद्ध है। आहा..हा..! ऐसा आत्मा अन्दर राग से रहित, विकल्प से रहित, अकेले आनन्द और शान्ति से सहित, उसका अनुभव करना और आनन्द का स्वाद आवे, अतीन्द्रिय स्वाद के अनुभव में सुख भासे, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। कहो, सेठी !

मुमुक्षु : विकार होता है जीव के भाव में।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव में (होता है) परन्तु वह पर्याय में पर के लक्ष्य से होता है, इस अपेक्षा से पर का कहकर निकाल दिया है। इससे (जीव से) विरुद्ध है। राग बन्ध का कारण है; स्वभाव अबन्धस्वरूप है। राग विपरीत है, स्वभाव चैतन्य उसका अविपरीत भाव है। यह तो ७२ गाथा में आया न? राग विपरीत भाव है '**विवरीयं**' राग आदि आत्मा से विपरीत है, ऐसा वहाँ आया था। आस्रव अधिकार में उससे विपरीत यह है, ऐसा आया। समझ में आया?

शुभ और अशुभभाव... वहाँ (समयसार, गाथा) ७२ में कर्ताकर्म में आया न? '**असुचितं विवरीय दुक्खस्स कारणं**' आहा..हा..! शुभभाव दुःख का कारण है। शुभभाव, शुभ उपयोग वह दुःख का कारण है। वह आत्मा से विपरीत है, वहाँ आस्रव में कहा था। कर्ताकर्म है न, वहाँ आस्रव है न।

मुमुक्षु : आत्मा का सुखस्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का सुखस्वभाव है तो वह रागादि से विलक्षण स्वभाव, दुःख से विपरीत स्वभाव है। आहा..हा..! द्रव्यसंग्रह में आता है न? बसन्तीलाल ने यह प्रश्न किया था न? ५६ गाथा। '**मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह**' वह आज वापस देखा, हों! श्लोक पूरा आता नहीं था न, अभी देखा। कल तुम्हारा प्रश्न था न? भाई! कहते हैं कि '**मा चिट्ठह**' काया के व्यापार से पृथक् हो। काया का व्यापार, वह तेरा नहीं है। ऐसा होना.. ऐसा होना.. ऐसा होना.. वह सब काया का व्यापार है। '**मा जंपह**' बोलना नहीं, कुछ बोलना नहीं। अन्तर्जल्प छोड़ दे। '**मा चिन्तह**' मन लिया। काया, मन और वचन। '**मा चिन्तह**' भगवान आत्मा... यह कल पूछा था न? रात्रि में चिन्तव तक आया था। दूसरा शब्द भूल गये थे।....

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। '**मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह**' चिन्तवन मत कर। मन के विकल्प मत कर, ऐसा कहते हैं। '**चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो**' जिससे स्थिर होगा। '**अप्पा अप्पम्मि रओ**' है? आत्मा, आत्मा में अर्थात् आत्मा ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वभाव में '**अप्पा अप्पम्मि रओ**' इसमें लीन होगा, उसका नाम ध्यान; उसका नाम मोक्ष का मार्ग;

उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र; उसका नाम शुद्धोपयोग। आहा..हा..! उसने यह प्रश्न किया था। रात्रि में यहाँ तक आया था। '**मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह**' पहला आ गया था। '**मा चिन्तह**' देह जड़ है, पुद्गल है। वाणी का, बोलने का विकल्प अन्दर उठे, वह जल्प छोड़, वह तेरा स्वरूप नहीं है। पुद्गलस्वरूप है। मन का राग छूटे, वह भी पुद्गलस्वरूप है। आहा..हा..! '**जेण होइ थिरो**' वस्तु चिद्बिम्बघन आनन्दकन्द पड़ी है। एक विकल्प के पीछे अथवा एक समय की पर्याय के पीछे। समझ में आया? मन, वचन और काया के तीनों सम्बन्ध को दृष्टि में से छोड़, ऐसा कहते हैं और जिससे अन्दर स्थिर होगा। आत्मा ज्ञान, दर्शन और आनन्द में स्थिर होगा। '**अप्पा अप्पम्मि रओ**' आत्मा, आत्मा का जानने-देखने और आनन्द का स्वभाव, उसमें स्थिर होगा, उसका नाम भगवान मोक्ष का मार्ग-ध्यान कहते हैं। वह ध्यान शुद्धोपयोग है, वह मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा..! जगत को भारी कठिन।

यह यहाँ कहा। **यह जीव तो रागादिक पुद्गलविकारों से विलक्षण,...** एक शब्द में तो कितना डाल दिया! आहा..हा..! इन छह स्कन्धों का लक्ष्य छोड़। ये तुझमें नहीं, तेरे नहीं। स्कन्धों में तो सब आया न? शरीर, वाणी, मन, कर्म, दाल, भात, सब्जी, पैसा, यह सब स्कन्ध में आ गया या नहीं? पैसा स्कन्ध में आ गया? पैसा तेरा नहीं, वह पुद्गल का है, ऐसा कहते हैं। दाल, भात, रोटी, पानी, मौसम्बी, वह तेरे नहीं, वे तो पुद्गल के स्कन्ध हैं। वे तो जड़ के स्कन्ध हैं, जड़ का जत्था है। तेरे कारण वे नहीं और तू उनमें नहीं और वे तुझमें नहीं। आहा..हा..!

तू कौन? पुण्य और पाप के पुद्गलविकार से विरुद्ध तेरा स्वरूप है। आहा..हा..! तब है क्या? यह तो विरुद्ध कहा। नास्ति से कहा। अस्ति क्या? शुद्ध **चैतन्यधातुमय मूर्ति है**। अकेला शुद्ध-ज्ञान-आनन्द, अतीन्द्रिय अनाकुल शान्तरस, आनन्दरस, शान्तरस अर्थात् चारित्र। आनन्दरस, सुखरस, ऐसे चैतन्यधातुमय स्वरूप है। मूर्ति अर्थात् स्वरूप। तेरा तो शुद्ध चैतन्यधातु चैतन्यपना जिसने धारण कर रखा है। इस पुण्य-पाप को जीव ने धार नहीं रखा है। आहा..हा..! ऐसा आत्मा कि जिसने ज्ञान, दर्शन, आनन्द को धारा है, रखा है, उसे आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप, शरीर, वाणी को रखा नहीं, उसे धारा नहीं। इस श्लोक को समयसार का आधार दिया है।

और (इन गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विविध प्रकार के पुद्गलों में रति न करके, चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा में ही रति करना, ऐसा श्लोक द्वारा कहते हैं) —

श्लोक-३८

और (इन गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विविध प्रकार के पुद्गलों में रति न करके, चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा में ही रति करना, ऐसा श्लोक द्वारा कहते हैं) —

(मालिनी)

इति विविधविकल्पे पुद्गले दृश्यमाने,
न च कुरु रतिभावं भव्यशार्दूल तस्मिन्।
कुरु रति-मतुलां त्वं चिच्चमत्कार-मात्रे,
भवसि हि परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।३८।।

(वीरछन्द)

विविध भेद वाले पुद्गल के दृष्टिगोचर होने पर।
हे भव्योत्तम! तू इनके प्रति किञ्चित भी रतिभाव न कर॥
केवल चेतन चमत्कारमय निज आतम में तू रति कर।
इससे होगा परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ वर॥३८॥

श्लोकार्थ :—इस प्रकार विविध भेदोंवाला पुद्गल दिखाई देने से, हे भव्यशार्दूल! (भव्योत्तम!) तू उसमें रतिभाव न कर! चैतन्यचमत्कारमात्र में (अर्थात्, चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा में) तू अतुल रति कर कि जिससे तू परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होगा॥३८॥

श्लोक-३८ पर प्रवचन

इति विविधविकल्पे पुद्गले दृश्यमाने,
न च कुरु रतिभावं भव्यशार्दूल तस्मिन्।

कुरु रति-मतुलां त्वं चिच्चमत्कार-मात्रे,
भवसि हि परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।३८।।

हे भव्यसिंह! हे भव्य शार्दूल! ऐसा कहते हैं। सिंह तो हिरण को फाड़कर चीर डालता है। इसी प्रकार, हे भव्य! रागादि को चीर डाल, वे तो भिन्न हैं, तेरी चीज़ में नहीं हैं। आहा..हा..!

इस प्रकार विविध भेदोंवाला पुद्गल... आत्मा तो कुछ भेद है नहीं, वह तो पहले कह गये। **इस प्रकार विविध भेदोंवाला पुद्गल दिखाई देने से,...** ऐसा लिखा है न? **दृश्यमाने,** दिखाई देता है, वह कहीं तेरी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, वे सब विविध पुद्गल दिखाई देते हैं। पुद्गल की जाति है। काली हो, सफेद हो, कोमल हो, आकार गोल हो, चपटा हो, वे सब विविध प्रकार के पुद्गल दिखाई देते हैं, उनमें तू नहीं और वे कोई तुझमें नहीं। आहा..हा..! भाषा नहीं। इसकी वस्तु अस्ति समझना चाहिए। समझ में आया?

हे भव्यशार्दूल! (भव्योत्तम!)... भव्य में उत्तम प्राणी! तेरा मोक्ष अल्प (काल) में है, नजदीक में है, ऐसे प्राणी को सम्बोधन करते हैं। **तू उसमें रतिभाव न कर!** उस राग में रति न कर। आहा..हा..! जो तुझसे विरुद्ध और उससे तू विरुद्ध, ऐसे विरुद्धभाव में प्रेम न कर, भाई! तुझे दुःख, हिंसा होती है। रागादि में प्रेम करने से आत्मा चैतन्यचमत्काररूप नहीं रह सकता; घात हो जाता है। आहा..हा..! अब चैतन्यधातु में प्रेम कर देखो! **चैतन्यचमत्कारमात्र में...** ऐसी भाषा है न? **चैतन्यचमत्कारमात्र में...** यह तो चमत्कार है। जो अपने को जाने, राग को जाने, इतने-इतने विविध प्रकार के पुद्गलों को अपने में रहकर अपनी सामर्थ्य से अपना ज्ञान करे। आहा..हा..! ऐसा चमत्कारी जीव है, कहते हैं। वह चीज़ है, इसलिए जानने का काम करे, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया?

क्या कहते हैं? ये सब रागादिभाव और शरीरादि, ये स्कन्ध कहे, वे सब हैं; इसलिए चैतन्यभाव उन्हें जानने का अस्तित्व का भाव करता है, ऐसा नहीं है। वह तो चैतन्यचमत्कार वस्तु है कि जिसे पर की अपेक्षा नहीं और स्व तथा पर को जानने का कार्य चैतन्यचमत्कार से खड़ा होता है। समझ में आया? आहा..हा..!

एक अंगुली टूटे, आँख फूटे तो इसे अन्दर में कुछ हो जाये। हाय.. हाय.. मेरा अवयव टूटा, हों! एक अंगुली टूट जाये। यह दबाव में आ जाये न? दरवाजा बन्द करते हुए अन्दर घुस गयी। यह रेल में बहुत हो जाता है। वह दरवाजा करता हो और अंगुली चपेट में आ जाये। हाय.. हाय..! परन्तु क्या है? कहते हैं। विविध प्रकार की दशा उसे, उसकी अस्तित्व के कारण नहीं परन्तु तेरी अस्ति में चैतन्यचमत्कार है, इसलिए तू स्व और पर को जानने के स्वभाव को प्रगट करता है। आहा..हा..! समझ में आया? आँख फूटे, वहाँ अरे रे! एक आँख गयी, दो आँख से काम करते थे, एक आँख गयी। परन्तु आँख गयी, वह तो पुद्गल गया। तुझमें से क्या गया? पाँच-दस लाख रुपये हों, उसमें से पाँच हजार, दस हजार जाये तो पैसा गया, ऐसा कहता है। गये कहाँ? विविध प्रकार की दशा है, वह तुझे जानने को मिली। पहले यहाँ थे, ऐसा जाना था। पश्चात् गये, ऐसा जाना। यह तो जानना हुआ। चैतन्यचमत्कार है कि जो उसे जानने का ही काम करता है। आहा..हा..!

चैतन्यचमत्कारमात्र में (अर्थात्, चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा में) तू अतुल रति कर... अन्य में रति न कर। (इसमें) **अतुल रति कर...** जिसकी उपमा नहीं, ऐसा प्रेम अन्दर आत्मा में कर। समझ में आया? यहाँ से रति, प्रेम छोड़ दे। यदि आत्मा का हित करना हो और धर्म करना हो तो राग से लेकर परचीज़ में से प्रेम छोड़ दे। आहा..हा..! और भगवान शुद्ध चैतन्यमात्र चमत्कारमात्र आत्मा। **तू अतुल रति कर...** ठीक।

हे भव्यशार्दूल! सम्बोधन करके कहा है, हों! **कि जिससे तू परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होगा।** भगवान आत्मा चैतन्यचमत्कार ज्ञानानन्दस्वभाव में यदि प्रेम करेगा तो तुझे मुक्ति मिलेगी। जो मुक्ति की दशा तुझसे कभी भिन्न नहीं पड़ेगी। इसका नाम वल्लभ। समझ में आया? है न? **वल्लभ होगा।** अर्थात् क्या? वह पर्याय कभी भिन्न नहीं पड़ेगी। आहा..हा..! आत्मा का चैतन्यचमत्कारस्वभाव है, उसमें अन्तर प्रेम करने से, उस अन्तर की अभेद पर्याय पूर्ण हुई, वह पूर्ण पर्याय अब दूर नहीं रहेगी। तुझसे एक समयमात्र भी दूर नहीं रहेगी। तुझे पूर्ण पर्याय वरण कर जायेगी। आहा..हा..! परन्तु यह प्रेम अन्दर आनन्द में, अनुभव में आनन्द में लेकर प्रेम कर, ऐसा कहते हैं।

परमश्री—परम लक्ष्मी, देखो! मुक्ति है, वह परम लक्ष्मीस्वरूप है। मुक्ति-मोक्ष है,

वह परमश्रीरूपी कामिनी है। इसकी परिणति, इसकी स्त्री है, उसका वल्लभ हो जायेगा। वह पर्याय तुझे कभी छोड़ेगी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? राग का प्रेम करेगा तो राग तो छूट जायेगा। शरीर के पुद्गल का प्रेम करेगा तो पुद्गल छूट जायेगा। तेरा वल्लभ करने से नहीं रहेगा। वहाँ प्रियता जोड़ने से वह वस्तु नहीं रहेगी, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! इन चार गाथा के स्कन्ध की व्याख्या में यह रखा है। आहा..हा..! समझ में आया? स्कन्ध तेरे नहीं हैं, परमाणु तेरे नहीं हैं, परन्तु कर्मरूपी स्कन्ध के लक्ष्य से हुआ भाव भी तेरा नहीं है। उससे विरुद्ध स्वभाव तेरा है। अब स्वभाव, उस परमाणु का कारण और कार्य आया था न? उसका वर्णन करते हैं।

गाथा-२५

धाउचउक्कस्स पुणो जं हेऊ कारणं ति तं णेयो।
खंधाणं अवसाणं णादव्वो कज्ज-परमाणु।।२५।।

धातुचतुष्कस्य पुनः यो हेतुः कारणमिति स ज्ञेयः।
स्कन्धाना-मवसानो ज्ञातव्यः कार्य-परमाणुः।।२५।।

कारणकार्यपरमाणुद्रव्यस्वरूपाख्यानमेतत्। पृथिव्यप्तेजोवायवो धातवश्चत्वारः तेषां यो हेतुः स कारणपरमाणुः। स एव जघन्यपरमाणुः स्निग्धरूक्षगुणानामानन्त्याभावात् समविषमबन्धयोरयोग्य इत्यर्थः। स्निग्धरूक्षगुणानामनन्तत्वस्योपरि द्वाभ्यां चतुर्भिः समबन्धः त्रिभिः पञ्चभिर्विषमबन्धः। अयमुत्कृष्टपरमाणुः। गलतां पुद्गलद्रव्याणां अन्तोऽवसानस्तस्मिन् स्थितो यः स कार्यपरमाणुः। अणवश्चतुर्भेदाः कार्यकारणजघन्योत्कृष्टभेदैः तस्य परमाणुद्रव्यस्य स्वरूपस्थितत्वात् विभावाभावात् परमस्वभाव इति।

तथा चोक्तं प्रवचनसारे ह्न

णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि बज्झन्ति हि आदिपरिहीणा।।
णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो।।

तथाहि ह्न

जो हेतु धातु चतुष्क का कारण-अणु विख्यात है।
अरु स्कन्ध के अवसान में कार्याणु होता प्राप्त है॥२५॥

अन्वयार्थ :—[पुनः] फिर [यः] जो [धातुचतुष्कस्य] (पृथ्वी, जल, तेज, और वायु—इन) चार धातुओं का [हेतुः] हेतु है, [सः] वह [कारणम् इति ज्ञेयः] कारणपरमाणु जानना; [स्कन्धानाम्] स्कन्धों के [अवसानः] अवसान को (पृथक्

हुए अविभागी अन्तिम अंश को) [कार्यपरमाणुः] कार्यपरमाणु [ज्ञातव्यः] जानना।

टीका :—यह, कारणपरमाणुद्रव्य और कार्यपरमाणुद्रव्य के स्वरूप का कथन है।

पृथ्वी, जल, तेज, और वायु — ये चार धातुएँ हैं। उनका जो हेतु है, वह कारणपरमाणु है। वही (परमाणु), एक गुण स्निग्धता या रुक्षता होने से, सम या विषम बन्ध को अयोग्य, ऐसा जघन्य परमाणु है — ऐसा अर्थ है। एक गुण स्निग्धता या रूक्षता के ऊपर, दो गुणवाले का और चार गुणवाले * का समबन्ध होता है तथा तीन गुणवाले का और पाँच गुणवाले का विषमबन्ध * होता है, यह उत्कृष्ट परमाणु है। गलते, अर्थात् पृथक् होते पुद्गलद्रव्यों के अन्त में-अवसान में (अन्तिम दशा में) स्थित, वह कार्यपरमाणु है (अर्थात्, स्कन्ध खण्डित होते-होते जो छोटे से छोटा अविभागभाग रहता है, वह कार्यपरमाणु है)। (इस प्रकार) अणुओं के (परमाणुओं के) चार भेद हैं — कार्य, कारण, जघन्य, और उत्कृष्ट। वह परमाणुद्रव्य, स्वरूप में स्थित होने से, उसे विभाव का अभाव है, इसलिए (उसे) परमस्वभाव है।

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (१६५वीं तथा १६६वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —

'णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि वज्झन्ति हि आदिपरिहीणा॥

णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो॥'

'(गाथार्थ :—) परमाणु के-परिणाम स्निग्ध हों या रूक्ष हों, सम अंशवाले हों या विषम अंशवाले हों, यदि समान की अपेक्षा दो अधिक अंशवाले हों, तो बँधते हैं; जघन्य अंशवाला नहीं बँधता।

स्निग्धरूप से दो अंशवाला परमाणु, चार अंशवाले स्निग्ध (अथवा रूक्ष) परमाणु के साथ बन्ध का अनुभव करता है अथवा रूक्षता से तीन अंशवाला परमाणु, पाँच अंशवाले के साथ जुड़ा हुआ बँधता है।'

---

* समबन्ध, अर्थात् सम संख्या के गुणवाले परमाणुओं का बन्ध और विषमबन्ध, अर्थात् विषम संख्या के गुणवाले परमाणुओं का बन्ध। यहाँ (टीका में) समबन्ध और विषमबन्ध का एक-एक उदाहरण दिया है, तदनुसार समस्त समबन्ध और विषमबन्ध समझ लेना।

गाथा-२५ पर प्रवचन

धाउचउक्कस्स पुणो जं हेऊ कारणं ति तं णेयो।
खंधाणं अवसाणं णादव्वो कज्ज-परमाणु।।२५।।

देखो! यह भाषा दूसरी पाठ में है। कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु पाठ में है। इसलिए फिर कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा इसमें से उठता है। तब परमाणुओं में ऐसा कहा, उसमें लागू पड़ता है। इन्होंने नया घर का डाला है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : घर का डाला हो तो भी ज्ञानी की बात है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; डाले परन्तु उसे ऐसा कि यह कहाँ से डाला? अमुक कहाँ से डाला? अमुक... अब सुन न। सब डाले।

जो हेतु धातु चतुष्क का कारण-अणु विख्यात है।
अरु स्कन्ध के अवसान में कार्याणु होता प्राप्त है॥२५॥

यह, कारणपरमाणुद्रव्य और कार्यपरमाणुद्रव्य के स्वरूप का कथन है। देखो! विशिष्टता क्या है? कि पृथ्वी के परमाणु का स्कन्ध होता है, जल के परमाणु का जो स्कन्ध होता है, वायु के, अग्नि के ये जो स्कन्ध हैं, यह चार धातु है। इनका हेतु वह कारणपरमाणु है। उनका हेतु जीव नहीं कि ये सब लड्डू बनाये और यह बनाया, इकट्ठा हुआ, अमुक हुआ... अमुक हुआ... यह पानी हुआ, पृथ्वी हुई, अग्नि हुई, वायु हुई। उनका हेतु तो कारणपरमाणु है। समझ में आया न? वह परमाणु कारण होकर सब स्कन्ध हुए हैं। जीव कारण होकर स्कन्ध होता है कि भाई! यह लड्डू बाँधो, रोटी बनाओ, यह अक्षर लिखे, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? पहले कारणपरमाणु की व्याख्या की। **वही (परमाणु), एक गुण स्निग्धता...** देखो! भाषा तो गुण है। वास्तव में तो स्निग्धपर्याय है। भाई!

मुमुक्षु : यह पाईन्ट बताने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अगुरुलघु में अनन्त नहीं आया था? अनन्त अगुरुलघु। पंचास्तिकाय में अनन्त अगुरुलघु पर्याय की बात थी। भले गुण शब्द वहाँ प्रयोग किया हो। शब्द से पार नहीं आता। भाव क्या है, वह समझे तो हो। समकित को गुण कहा है, तुम क्या

फिर पर्याय कहते हो ? और वे ऐसा विवाद उठावे। आहा..हा.. ! गुण तो यहाँ कहा। **एक गुण स्निग्धता...** चिकनाई। स्पर्श वह गुण है। यह चिकनाई तो पर्याय है। परमाणु है रजकण, उसमें स्पर्श नाम का गुण है, वह त्रिकाली है। और यह स्निग्धता और चिकनाई तो पर्याय है।

मुमुक्षु : समकित के आठ गुण नहीं कहलाते ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा तो ऐसी ही बोले न, सिद्ध के (आठ गुण)। समकित के नि:शंक आदि आठ गुण कहलाते हैं न ? आठ आचार कहलाते हैं, आठ गुण कहलाते हैं, आठ लक्षण कहलाते हैं। गुण अर्थात् पर्याय है। झगडालू लड़के अन्दर से झगड़ा ही निकालते हैं। कुछ विवाद ही निकालते हैं। आहा..हा.. !

कहते हैं, परमाणु में एक पर्याय चिकनाहट की और एक पर्याय रूक्ष की। **सम या विषम बन्ध को अयोग्य,...** विषम बन्ध को अयोग्य **ऐसा जघन्य परमाणु...** वह जघन्य क्यों कहा ? (इसलिए) कि बन्ध होने के योग्य नहीं है, इसलिए हल्का / जघन्य कहा इसे। समझ में आया ? कारण क्यों कहा ? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु का कारण होता है, इसलिए यह कारणपरमाणु कहा। इसका कारण, वह स्कन्ध का कारण परमाणु है। स्कन्ध का कारण आत्मा और आत्मा का ज्ञान या विकल्प नहीं है। आहा..हा.. ! ये रुपये आते हैं और जाते हैं, उनका कारण उनका परमाणु है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो जब हुए तब आवे, तब तो हमारे पास आते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके पास आते हैं ? राग भी आत्मा के पास नहीं आता तो फिर पैसा कहाँ से आता था यहाँ ? ऐई ! पोपटभाई ! गजब बात, भाई !

राग से भी विरुद्ध चैतन्य का स्वभाव, वह राग भी स्वभाव के समीप में नहीं। वह तो दूर है। जैसे अजीव दूर है, वैसे वह दूर है। आहा..हा.. ! तत्त्व है न दूसरा। एक तत्त्व से दूसरा तत्त्व भिन्न हो तो ही दूसरा तत्त्व कहा जा सकता है। नहीं तो किस प्रकार कहा जा सकेगा ?

मुमुक्षु : दोपना जब....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोपना तो ठीक, परन्तु अन्य है, वह तो अन्य है। आहा..हा.. !

कहते हैं, एक गुण स्निग्ध, दो गुण स्निग्ध, रूक्ष, ऐसा। **सम या विषम बन्ध को**

अयोग्य,... सम या विषम। समझे न ? दो हो या चार हो, एक हो, तीन हो। परन्तु **बन्ध को अयोग्य, ऐसा जघन्य परमाणु है...** उसे जघन्य कहा। बन्ध के योग्य नहीं, उसे जघन्य कहा। **एक गुण स्निग्धता या रूक्षता के ऊपर, दो गुणवाले का और चार गुणवाले का समबन्ध होता है...** लो, यह तो दृष्टान्त है। **समबन्ध, अर्थात् सम संख्या के गुणवाले परमाणुओं का बन्ध और विषमबन्ध, अर्थात् विषम संख्या के गुणवाले परमाणुओं का बन्ध। यहाँ (टीका में) समबन्ध और विषमबन्ध का एक-एक उदाहरण दिया है, तदनुसार समस्त समबन्ध और विषमबन्ध समझ लेना।** इतना ही ऐसा न लेना। समझ में आया ? तीन और पाँच; फिर पाँच और सात; सात और नौ; ऐसा सब ले लेना। विषम में ऐसा लिया है, कहते हैं। दो और चार। दो और चार ही अकेला न लेना। यह तो दृष्टान्त है। छह और आठ; आठ और दस और बारह ऐसे सब में दो अधिक लेना।

तथा तीन गुणवाले का और पाँच गुणवाले का विषमबन्ध होता है, यह उत्कृष्ट परमाणु है। अर्थात् बन्ध के होने के योग्य, उसे उत्कृष्ट परमाणु कहा। उत्कृष्ट का अर्थ ऐसा नहीं कि अनन्त पर्यायरूप से परिणमा है उत्कृष्ट, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। परमाणु अनन्त स्निग्धतारूप या रूक्षतारूप परिणमे तो उत्कृष्ट, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। उत्कृष्ट परमाणु उसे कहते हैं कि जो सम, विषम आदि के बन्ध के योग्य हो, उसे उत्कृष्ट परमाणु कहा जाता है। बन्ध होने के अयोग्य को जघन्य और बन्ध होने के योग्य को, फिर भले तीन और पाँच, दो और चार, छह और आठ, नौ और ग्यारह हो, परन्तु उन सबको उत्कृष्ट परमाणु कहा जाता है। पण्डितजी ! यह प्रकार ही अलग है। आहा..हा.. ! अर्थात् कि उस परमाणु में दूसरे के साथ सम्बन्ध होने की योग्यता हुई, इसलिए उसे उत्कृष्ट परमाणु कहा। आहा..हा.. ! नियमसार की भाषा ही अलग प्रकार की है। पाठ में है, देखो न ! कार्य-कारण तो पाठ में है। उसमें से जघन्य-उत्कृष्ट निकाला। जघन्य-उत्कृष्ट उसमें से निकाला।

गलते, अर्थात् पृथक् होते पुद्गलद्रव्यों के अन्त में-अवसान में (अन्तिम दशा में) स्थित, वह कार्यपरमाणु है... लो.. अन्त में अवसान अर्थात् कार्यपरमाणु। पृथक् होने के योग्य हो गया न ! पृथक् वह कार्यपरमाणु। स्कन्ध में से पृथक् पड़ा, वह कार्यपरमाणु। स्कन्ध का कारण हो, वह कारणपरमाणु। स्कन्ध में से पृथक् पड़ा, वह कार्यपरमाणु। देखो ! यह पुद्गल की विविधता का वर्णन। ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकता। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

(अर्थात्, स्कन्ध खण्डित होते-होते जो छोटे से छोटा अविभागभाग रहता है, वह कार्यपरमाणु है)। (इस प्रकार) अणुओं के (परमाणुओं के) चार भेद हैं — कार्य, कारण, जघन्य, और उत्कृष्ट। वह परमाणुद्रव्य, स्वरूप में स्थित होने से,... वह परमाणुद्रव्य स्वरूप में स्थित, **उसे विभाव का अभाव है,...** उसे विभाव का अभाव है। किसे? परमाणु तो अपने स्वरूप में है। दो परमाणु में जुड़ान नहीं, इसलिए उस विभाव का उसमें अभाव है। **इसलिए (उसे) परमस्वभाव है।** परमाणु को परमस्वभाव कहा जाता है।

स्कन्ध का कारण, उसे कारणपरमाणु कहा था। स्कन्ध के जुड़ने का काम करे, उसे उत्कृष्ट परमाणु कहा। स्कन्ध के परमाणु का कारण, उसे कारणपरमाणु कहा और उस स्कन्ध के पृथक् पड़ने का, उसे कार्यपरमाणु कहा। अथवा उत्कृष्ट, जघन्य अब। स्कन्ध के योग्य नहीं, इसलिए वह जघन्य परमाणु और स्कन्ध होने के योग्य स्निग्धता आदि है, वह उत्कृष्ट परमाणु है। ऐसी बात श्वेताम्बर में है ही नहीं। पुद्गल की रीति का प्रकार श्वेताम्बर में नहीं है। यह बात ही पूरी सनातन अलग है। कहीं नहीं मिलती। फिर प्रवचनसार का दृष्टान्त (उद्धरण) देंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-२९, श्लोक-३९-४०, गाथा-२५-२७, बुधवार, चैत्र शुक्ल ५, दिनांक ३१-०३-१९७१

---

२५ गाथा हो गयी। नियमसार अजीव अधिकार। कारणपरमाणु और कार्यपरमाणु, जघन्य परमाणु और उत्कृष्ट परमाणु ऐसे चार का वर्णन किया है। कारणपरमाणु वह कि जो स्कन्ध है उसका कारण है, इसलिए उसे कारणपरमाणु कहा। उसी कारणपरमाणु को दोनों लागू पड़ते हैं। ऐसा है न पाठ में? **वही परमाणु...** ऐसा। जो परमाणु है, यह रजकण, पाईन्ट ऐसा एक वस्तु का स्वभाव। भले छोटा है परन्तु द्रव्य है। स्वभाव को किसी क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं है। एक परमाणु ऐसा स्वभाव है कि जो स्कन्ध का कारण होता है, उसी परमाणु में एक गुण आदि स्निग्धता हो तो बन्ध के अयोग्य है। उसी परमाणु को जघन्य परमाणु कहा जाता है। एक, दो, तीन आदि हों, दो-तीन, चार आदि, दो और दो चार या तीन और दो पाँच, वह आदि हो तो उसे-परमाणु को बन्ध के योग्य के कारण उत्कृष्ट कहा जाता है। देखो! यह एक वस्तु का - जड़ का स्वतः स्वभाव। उसे तो कुछ

खबर भी नहीं। खबर तो आत्मा को है कि ऐसा इसमें होता है। ऐसा परमाणु है। स्कन्ध का अन्तिम टुकड़ा। टुकड़े करते-करते बाकी रह जाये उसे कार्य परमाणु कहते हैं। ये चार प्रकार हुए। है तुम्हारे यहाँ उसमें ?

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में कहाँ से होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं ? क्यों कहाँ से होगा ? **इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्-कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (१६५वीं तथा १६६वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —**

'णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि वज्झन्ति हि आदिपरिहीणा॥

णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो॥'

इस ओर है, ५६ पृष्ठ। इसका अर्थ। **परमाणु के-परिणाम...** परमाणु जो एक रजकण, पाईण्ट है, उसके परिणाम अर्थात् पर्याय **स्निग्ध हों या रूक्ष हों,..** स्निग्ध हो या रूक्ष हो। **सम अंशवाले हों या विषम अंशवाले हों,...** दो अंशवाले, चार वाले, छह वाले हों या तीन, पाँच और सात वाले हों। **यदि समान की अपेक्षा दो अधिक अंशवाले हों,...** दो और दो चार, तीन और दो पाँच, सात और दो नौ, आठ और दो दस। इस प्रकार दो अधिकवाले हों तो **तो बँधते हैं;...** एक में नहीं बँधते। एक अंश परमाणु बन्ध के योग्य नहीं है।

इसी प्रकार आत्मा में भी अन्तिम गुण, अवगुण का जो अन्ति अंश है, वह उसके बन्ध का कारण नहीं है। समझ में आया ? यह क्या कहा ? मोह का, राग का, अन्तिम अंश है, वह स्वयं अपने बन्ध का कारण नहीं है। दूसरे के बन्ध का कारण हो। राग का अंश राग को बाँधे, ऐसा नहीं होता। समझ में आया ? हीराभाई !

यहाँ जैसे परमाणु में एक स्निग्धता या एक रूक्षता की पर्याय है, वह बन्ध के योग्य है नहीं। इसी प्रकार आत्मा में भी जो क्रोध, मान, माया, दर्शन, मोह, दर्शन में समकित मोह का भी उसका अन्तिम अंश है लो न, तो समकित मोह का अंश भी दर्शनमोह को नहीं बाँधता। अन्तिम अंश है न ? इसी प्रकार रागादि का अन्तिम अंश है वह उसके रागादि को

नहीं मानता। वह राग का अंश छह कर्म का बन्धन भले हो। ऐसा ही वस्तु का स्वत: स्वभाव है। आहा..हा..! यह गाथा कही। दूसरी गाथा। यह नहीं दूसरी गाथा। इसी और इसी की दूसरी।

स्निग्धरूप से दो अंशवाला परमाणु, चार अंशवाले स्निग्ध (अथवा रूक्ष) परमाणु के साथ बन्ध का अनुभव करता है... देखा, अनुभव करता है शब्द है। उसे अनुभव करना है कहाँ? परन्तु होता है। अनुसरण कर होता है। समझ में आया? **अथवा रूक्षता से तीन अंशवाला परमाणु,...** यह तो दृष्टान्त दिये हैं, हों! रूक्ष तीन वाला और यह तो स्निग्धता भी तीन वाला, पाँच वाला हो तो वह बन्ध का पाता है। **परमाणु, पाँच अंशवाले के साथ जुड़ा हुआ बँधता है।**' क्या कहा पण्डितजी! तीन रूक्षवाला, पाँच रूक्षवाले के साथ बँधता है तो दृष्टान्त। परन्तु तीन स्निग्धतावाला, पाँच स्निग्धतावाले के साथ बँधता है। दो और दो चार वाला, तीन और दो पाँच वाला, ऐसे रूक्ष या स्निग्ध चाहे जो हों, तद्नुसार बँधते हैं। एक नहीं बँधता। एकडे एक, बगड़े बे। एक अंशवाला नहीं बँधता। दो अंशवाला बँधता है। देखो, पुद्गल का भी ऐसा स्वभाव है। एक नहीं बँधता।

श्लोक-३९

और (२५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, श्लोक द्वारा पुद्गल की उपेक्षा करके, शुद्ध आत्मा की भावना करते हैं) :—

(अनुष्टुप्)

स्कन्धैस्तैः षट्प्रकारैः किं चतुर्भिरणुभिर्मम।
आत्मान-मक्षयं शुद्धं भावयामि मुहुर्मुहुः।।३९।।

(वीरछन्द)

छह प्रकार स्कन्धों या चौ विधि अणुओं से मुझको क्या?।
मैं तो अक्षय शुद्ध आत्मा को हूँ पुनः पुनः भाता॥३९॥

श्लोकार्थ :—**उन छह प्रकार के स्कन्धों या चार प्रकार के अणुओं के साथ मुझे क्या है ? मैं तो अक्षय शुद्ध आत्मा को पुनः पुनः भाता हूँ॥३९॥**

श्लोक-३९ पर प्रवचन

स्कन्धैस्तैः षट्प्रकारैः किं चतुर्भिरणुभिर्मम।
आत्मान-मक्षयं शुद्धं भावयामि मुहुर्मुहुः।।३९।।

(श्लोकार्थ :—) उन छह प्रकार के स्कन्धों या चार प्रकार के अणुओं के साथ मुझे क्या है ?... पर चीज़ है। मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। वह भी मुझमें रहकर मेरे से जाननेवाला हूँ। आहा..हा..! **मैं तो अक्षय शुद्ध आत्मा को पुनः पुनः भाता हूँ।** मुझे आनन्द का प्रयोजन है तो मेरा आनन्द आत्मा सच्चिदानन्द है। उस आनन्द के अक्षयसुख। अक्षय शुद्ध आत्मा को मैं पुनः पुनः भाता हूँ। मेरा आनन्द का प्रयोजन है तो आनन्द तो मेरे पास है। ऐसे अक्षय-क्षय न हो ऐसा शुद्ध आत्मा, द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण, उसे मैं भाता हूँ। भाता हूँ, इसका अर्थ क्या हुआ ? **पुनः पुनः भाता हूँ।** ऐसा पाठ है, लो। **भावयामि** और चिन्तयामि। विकल्प है यह ?

मुमुक्षु : एकाग्रता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्रता की बात ली है। प्रत्येक अर्थ में फेरफार। शुद्ध आत्मा अक्षय, त्रिकाल ध्रुवस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसमें मैं एकाग्रता करता हूँ। मेरा तो यह काम है। परमाणु के प्रकार चार हो तो हो। मुझे उसके साथ प्रयोजन नहीं है। आहा..हा..! मेरा भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त स्वच्छता, शान्ति, स्थिरता इत्यादि शक्तियों से अक्षय शुद्ध आत्मा है। ऐसे आत्मा को मैं अन्तर्मुख होकर **पुनः पुनः भाता हूँ।** बारम्बार उसमें एकाग्रता करता हूँ। यह करना है। आहा..हा..!

देखो! यह सारांश कहा। अजीव जाननेयोग्य है परन्तु जानकर उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़कर स्वरूप का ध्यान, स्वरूप की भावना करनी है। समझ में आया ?

२६, परमाणु का विशेष कथन।

गाथा-२६

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियग्गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणीहि।।२६।।

आत्माद्यात्ममध्यमात्मान्तं नैवेन्द्रियैर्ग्राह्यम्।
अविभागि यद्द्रव्यं परमाणुं तद् विजानीहि।।२६।।

परमाणुविशेषोक्तिरियम्। यथा जीवानां नित्यानित्यनिगोदादिसिद्धक्षेत्रपर्यन्तस्थितानां सहजपरमपारिणामिकभावविवक्षासमाश्रयेण सहजनिश्चयनयेन स्वस्वरूपादप्रच्यवनत्वमुक्तं तथा परमाणुद्रव्याणां पञ्चमभावेन परमस्वभावत्वादात्मपरिणतेरात्मैवादिः, मध्यो हि आत्म-परिणतेरात्मैव अन्तोऽपि स्वस्यात्मैव परमाणुः। अतः न चेन्द्रियज्ञानगोचरत्वाद् अनिलानलादि-भिरविनश्वरत्वादविभागी हे शिष्य स परमाणुरिति त्वं तं जानीहि।

जो आदि में भी आप है मध्यान्त में भी आप ही।
अविभाग, इन्द्रिय ग्राह्य नहिं, परमाणु सत् जानो वही॥२६॥

अन्वयार्थ :—[आत्मादि] स्वयं ही जिसका आदि है, [आत्ममध्यम्] स्वयं ही जिसका मध्य है और [आत्मान्तम्] स्वयं ही जिसका अन्त है (अर्थात्, जिसके आदि में, मध्य में और अन्त में परमाणु का निजस्वरूप ही है), [न एव इन्द्रियैः ग्राह्यम्] जो इन्द्रियों से ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) नहीं है और [यद् अविभागि] जो अविभागी है, [तत्] वह [परमाणुं द्रव्यं] परमाणुद्रव्य [विजानीहि] जान।

टीका :—यह, परमाणु का विशेष कथन है।

जिस प्रकार सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले सहज निश्चयनय की अपेक्षा से, नित्य और अनित्य निगोद से लेकर सिद्धक्षेत्र पर्यन्त विद्यमान जीवों का निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है; उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से, परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति

का आदि है, स्वयं ही अपनी परिणति का मध्य है और स्वयं ही अपना अन्त भी है (अर्थात्, आदि में भी स्वयं ही, मध्य में भी स्वयं ही और अन्त में भी परमाणु स्वयं ही है; कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। जो ऐसा होने से, इन्द्रियगोचर न होने से, और पवन, अग्नि इत्यादि द्वारा नाश को प्राप्त न होने से, अविभागी है, उसे हे शिष्य! तू परमाणु जान।

गाथा-२६ पर प्रवचन

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियग्गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणीहि।।२६।।

आचार्य कहते हैं,

जो आदि में भी आप है मध्यान्त में भी आप ही।
अविभाग, इन्द्रिय ग्राह्य नहिं, परमाणु सत् जानो वही॥२६॥

आहा..हा..! इस परमाणु में भी छोटा क्षेत्र अनन्त गुण में असंख्यवें भाग का, तथापि जीव के अनन्त गुण की जितनी संख्या है, उतने गुण उसमें हैं। यह तो कैसे (जँचे)! जितने जीव के गुण की संख्या, उतने ही गुण की संख्या (परमाणु में है)। भले उसमें चैतन्य न हो, परन्तु जड़ की पर्याय-गुण की संख्या उतनी ही अनन्त उसमें है। क्या कहा? लो, दो बार कहा तो भी? हीरा में ऐसा कहते होंगे? एक आत्मा में जितने गुण हैं, उतने ही गुण परमाणु के-जड़ के हैं। वे नहीं परन्तु उतने। क्या कहा? पण्डितजी! जितने एक आत्मा में अनन्त गुण की संख्या, उतने ही गुण एक परमाणु में है। वैसे नहीं परन्तु उतने - संख्या से उतने ही हैं। क्या कहा? पण्डितजी!

मुमुक्षु : एक आत्मा में परमाणु जितने गुण हैं उतनी संख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : उतनी संख्या से। वे गुण नहीं। आत्मा में तो ज्ञान, आनन्द आदि है। समझ में आया? आहा..हा..! यह (आत्मा) तो असंख्य प्रदेशी, वह (परमाणु) एक प्रदेशी। वस्तुस्वभाव है, वह वस्तुस्वभाव है। ऐसा माहात्म्य आने पर वह तेरा स्वभाव, तेरा स्वभाव असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है, उसके गुणस्वभाव की चौड़ाई असंख्य प्रदेशी है। उस

परमाणु के गुण की तो एक प्रदेशी चौड़ाई है। तेरे गुण की असंख्य प्रदेशी चौड़ाई है। ऐसा अन्तरस्वभाव। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द पड़ा है, उसका आश्रय कर, उसकी भावना कर। बस, यह करना है। कर-करके, पढ़-पढ़कर, बहुत जानकर भी यह करना है। सुखी होना होवे तो (यह करना है)।

टीका :— **यह, परमाणु का विशेष कथन है।**

जिस प्रकार सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले... क्या कहते हैं? देखो! आत्मा का त्रिकाल सहज स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले उसके कथन का और उसके भाव का आश्रय करनेवाले, **सहज निश्चयनय की अपेक्षा से,...** भगवान आत्मा स्वाभाविक परमपारिणामिक भाव की जिसमें विवक्षा करनी है। जिसमें उदय की, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की (अपेक्षा) नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव, परमस्वभावभाव। वह जिसमें कहना है, ऐसा सहज निश्चयनय। स्वाभाविक निश्चयनय। देखो! उस **निश्चयनय की अपेक्षा से,...** भगवान नित्य है। वह नित्य से कभी च्युत नहीं हुआ। परमपारिणामिकभाव स्वभाव से कभी च्युत हुआ ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

(नित्य) और अनित्य निगोद से लेकर सिद्धक्षेत्र पर्यन्त विद्यमान जीवों का... निगोद से लेकर यह सब पर्याय है न? वह सिद्ध तक। **जीवों का निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है;...** उस निगोद से लेकर सिद्ध की पर्याय तक में, सब उसके द्रव्य जो परमस्वभावभाव हैं, उनसे कभी च्युत नहीं हुए। आहा..हा..! समझ में आया? फिर से। हमारे सेठी! फिर फिर से कहते हैं न! फिर।

जो यह आत्मा नित्य वस्तु है। कैसी? स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव का कथन करनेवाला जो नय, उस नय की अपेक्षा से आत्मा त्रिकाली नित्य.. नित्य.. नित्य.. ध्रुव है। अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्तियों से भरपूर सहज तत्त्व पारिणामिक स्वभाव से नित्य है। वह आत्मा, इस अपेक्षा से सहज पारिणामिकभाव की - निश्चयनय की अपेक्षा से निगोद से लेकर सिद्ध तक की जो पर्यायवाले हैं, वे जीव भी ऐसे नित्य त्रिकाल हैं। वे नित्य से कभी च्युत नहीं हुए। आहा..हा..! वस्तु के स्वभाव की कथन करने की दिगम्बर सन्तों की शैली (अन्यत्र) कहीं है नहीं।

मुमुक्षु : अलौकिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक वस्तुस्वभाव वर्णन करते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात सुनने को दूसरे सम्प्रदाय में मिले, ऐसा नहीं है। ऐसी यह चीज़ है। क्योंकि वहाँ है नहीं। यह तो था उसमें से आया है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

परमाणु की व्याख्या करते हुए (कहते हैं) जैसे परमाणु स्वयं अपने से आदि, मध्य और अन्त है, वैसे आत्मा भी वस्तुस्वभाव से परमस्वभाव निश्चय से, निश्चयनय की अपेक्षा से वह स्वयं अपने से कभी च्युत हुआ नहीं। स्वयं ही अपनी आदि में, स्वयं ही अपने मध्य में, स्वयं ही अपने अन्त में वह वस्तु ध्रुव है, वह ऐसी की ऐसी है। समझ में आया?

(नित्य) और अनित्य निगोद से लेकर... पर्याय की बात है न? **सिद्धक्षेत्र पर्यन्त...** उस सिद्ध की पर्याय में भी, परमस्वभावभाव जो ध्रुव है, वह पर्याय में आया नहीं? वह ध्रुवरूप से च्युत हुआ नहीं। आहा..हा..! वह चैतन्य महाहीरा, उसकी कीमत क्या? जिसका मूल्यांकन करने से अपनी बुद्धि में मूल्यवाला हो जाता है। अमूल्य रहता नहीं। ऐसी यह चीज़ है। आहा..हा..! भगवान आत्मा परम सहज परमपारिणामिकभाव, सहज स्वाभाविक परमपारिणामिक (भाव), जिसे किसी पर्याय की, उदय की अपेक्षा नहीं, ऐसा जो स्वभाव है। ऐसा सहज निश्चय परमपारिणामिकभाव को कहनेवाला ऐसा सहज और निश्चय, ऐसा। ऐसा जो आत्मा, जैसे परमाणु की आदि, मध्य और अन्त में स्वयं ही है। वैसे आत्मा के परमपारिणामिकभाव में-नित्यता में स्वयं ही कायम है। उसमें से कभी हटा नहीं। आहा..हा..! **निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है;...** किस नय से?

मुमुक्षु : व्यवहारनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह निश्चय आया।

सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले... इसे कहने का आश्रय करनेवाला ऐसा निश्चयनय, उसकी अपेक्षा से वह स्वयं नित्य है। अनन्त जीव पर्याय में निगोद हो या पर्याय में त्रस हो या पर्याय में सिद्ध हो, तथापि उन जीवों का निज स्वरूप से अच्युतपना निश्चय से, नित्य से अच्युत है ऐसा कहने में आया है। आहा..हा..! देखो तो एक टीका! समझ में आया? कहते हैं कि निगोद की पर्यायें, सातवीं नरक के नारकी की पर्याय हो, अन्तिम ग्रैवेयक के मिथ्यादृष्टि की पर्याय हो, या क्षायिक समकिती

की पर्याय हो या सिद्ध की पर्याय हो, आहा..हा..! जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति प्रगट हुई है, ऐसी पर्याय हो, तथापि वस्तु जो नित्य है, उसमें से कभी च्युत नहीं हुई। आहा..हा..! समझ में आया?

उन रहे हुए जीवों का... वापिस बहुत अधिक अनन्त जीव हैं न? एक जीव नहीं। अनन्त आत्मायें हैं। निगोद से लेकर सिद्ध। वहाँ तक लिया न? निगोद के अनन्त आत्मायें और सिद्ध के अनन्त आत्मायें और बीच के साधक और बाधक ऐसे अनन्त आत्मायें। समझ में आया? अक्षर के अनन्तवें भाग की ज्ञान की पर्याय निगोद को खुली हुई बाकी है और केवलज्ञान की पर्याय पूर्ण विकसित है और बीच में साधक जीव को मोक्षमार्ग की पर्याय खुली हुई है और मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय आदि में सब आ गये। उनकी पर्याय में तीव्र मिथ्यात्व, गृहीत मिथ्यात्व की पर्याय परिणमित हुई है। या सिद्ध अनन्त केवलज्ञानरूप हुए हैं। आहा..हा..! तथापि वे जीव अपने नित्य ध्रुवस्वरूप से कभी च्युत नहीं हुए हैं। आहा..हा..! समझ में आया? पण्डितजी! वाह! दो लाईन में तो कितना समा दिया है!!

परमाणु जैसे अजीव पदार्थ को रहने के लिये किसी की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही अपने से है। स्वयं स्वयं से आदि में, मध्य में और अन्त में है। इसी प्रकार भगवान आत्मा निगोद से लेकर सिद्ध तक सब आ गये बीच में? बाघ और भालू, माँस के भक्षण करनेवाले की पर्याय। पर्याय उनकी है। बाकी माँस दूसरी भिन्न (पर्याय है)। ऐसी पर्याय में भी, सिद्ध की पर्याय में, तीव्र गृहीतमिथ्यात्व की पर्याय में भी... समझ में आया? आहा..हा..! वस्तु नित्य ध्रुव तो स्वयं से कभी हटी ही नहीं है, कभी वह पर्याय में आयी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? कहो, यह बात थी? देखो! बात है परमाणु की, उसमें आत्मा डाला।

उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से... देखो! **परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से,...** पंचम भाव की अपेक्षा से, हों! **परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से, परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति...** परिणति शब्द से यहाँ पर्याय नहीं लेना। क्योंकि यहाँ पंचम भाव की-त्रिकाल की अपेक्षा है। समझ में आया? परमाणु का जो त्रिकाली पंचम भाव है उसकी यहाँ बात है। नहीं तो उसकी पर्याय, वह पारिणामिकभाव की पर्याय है, परन्तु यहाँ वह सिद्ध नहीं करना है। पाठ में तो आदि स्वयं वस्तु है, परमाणु सूक्ष्म, वह स्वयं अपनी

आदि, स्वयं स्वयं का मध्य और स्वयं स्वयं का अन्त। समय कहने के लिये, दूसरा कुछ भेद है नहीं।

उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से... यह किसका पंचम भाव? परमाणु का। **परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से,...** देखो! फिर ऐसा लिया न वहाँ? उसका परमस्वभाव है अर्थात् द्रव्य लिया। **परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति का आदि है,...** अर्थात् कि परमाणु स्वयं अपने भाव की आदि है, ऐसा। परिणति शब्द से यहाँ पर्याय नहीं, परन्तु उसका भाव। समझ में आया? **स्वयं ही अपनी परिणति का मध्य है...** अर्थात् स्वयं ही अपने स्वभाव का भी स्वयं ही मध्य है। वस्तु ध्रुव... ध्रुव... द्रव्य। आहा..हा..! **और स्वयं ही अपना अन्त भी है (अर्थात्, आदि में भी स्वयं ही,...)** ऐसा लिया है। देखो! साराँश। परिणति में यहाँ पंचम भाव है न यहाँ तो। और परमस्वभाव लिया है न? पंचम भाव में परमस्वभाव साथ में न लेकर बाद में लिया। अर्थात् वह द्रव्य ही सिद्ध करना है यहाँ तो। वस्तु परमाणु द्रव्य। आहा..हा..! अतीन्द्रिय वस्तु एक परमाणु, एक आकाश के प्रदेश में ऐसे अनन्त परमाणु के अनन्त स्कन्ध समाहित होते हैं, ऐसा एक परमाणु ऐसा है, कहते हैं। आहा..हा..! जिसकी आदि, अन्त और मध्य में वस्तु स्वयं ही है, बस। कहो, समझ में आया? स्वयं ही है।

(कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। क्या कहा? वह परमाणु जो द्रव्य है, वह कभी स्निग्धता-रूक्षता की पर्याय में नहीं आता। एक स्निग्ध गुण हो, दो हो या तीन हो; बन्धयोग्य हो या बन्ध के अयोग्य हो। वस्तु द्रव्य जो है, वस्तु पंचम भाववाला तत्त्व, वह कभी पर्याय में नहीं आता। ओहो..हो..! नहीं तो उसकी परमाणु की जो पर्याय है वह तो पारिणामिकभाव की ही पर्याय है, क्योंकि उसे कोई उदय या ऐसा कुछ है नहीं। परन्तु वह वस्तु जो त्रिकाल पंचम भाव है, वस्तु शक्ति, भाव-शक्ति। अरे! देखो तो सही! वस्तु छोटी-बड़ी ऐसा नहीं देखना। उसका स्वभाव (देखना)। अरे! ऐसे परमाणु का ऐसा स्वभाव है कि एक गुण की स्निग्धता हो, अनन्त गुण की स्निग्धता हो, एक गुण की रूक्षता हो, अनन्त गुण की रूक्षता हो। भारी रूप परिणमित हुआ हो या हल्के रूप परिणमित हुआ हो। तथापि परमाणु तो वह का वही है। वह भारी-हल्के में आया नहीं। समझ में आया? कहो, प्रकाशदासजी!! कभी आया था? तीन वर्ष में कभी सुना था? आहा..हा..!

(कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। अर्थात्? पंचम भाववाला अजीव परमाणु तत्त्व कभी अपनी पर्याय में नहीं आया। दुर्गन्ध पर्याय हो या सुगन्ध हो; स्निग्धता हो या रूक्षता की हो; शीत की हो या गर्म की हो या भारी की हो या हल्की की हो। परमाणु में भारी पर्याय होती है? है परमाणु की। भारी और हल्की पर्याय हुई है। देखो विशिष्टता! इसमें हल्की-भारी हुई है। परमाणु एक की, हों! और उसमें भिन्न है तथापि उस हल्की-भारी की पर्याय में वह पंचम भाव का द्रव्य नहीं आया। आहा..हा..! देखो न! कितना लॉजिक है या नहीं यह सब? कि तुम्हारा वकालात का लॉजिक होगा अकेला? वस्तुविज्ञान है। यह वस्तुविज्ञान है। आहा..हा..!

इसमें परमाणु भारी है या ऐसा का ऐसा रहा है? यह देखो इतने स्कन्ध में आने पर स्थिर हुआ या नहीं इतना? पर्याय स्कन्ध में आया तब होकर। पर के कारण हुई है? वह भी खोटी बात है। स्कन्ध में आया इसलिए परमाणु धारी हुई पर्यायरूप परिणमित हुआ है, यह मिथ्या बात है और भारी रूप पर्याय परिणमे तथापि द्रव्य उसमें पर्याय में आया है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वजुभाई! भाई! यह अभी पढ़ना हुआ। उस बार नहीं पड़ा था- पाँच वर्ष पहले यह अजीव का छोड़ दिया था। अजीव, व्यवहार और अन्तिम उपयोग, ये तीन छोड़ दिये थे। इस समय कहें, सब समान पढ़ना।

मुमुक्षु : क्या कहा? महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले वाँचन किया था, तब अधिकार छोड़ दिये थे। यह व्यवहार अधिकार है न? तो छोड़ दिया था। व्यवहार का अधिकार, यह अधिकार और अन्तिम उपयोग का (शुद्धोपयोग) अधिकार है। इस समय धारावाही लिया है। अच्छा किया, लो, हमारे वजुभाई कहते हैं।

मुमुक्षु : महाराज! व्यवहार तो निश्चय को बताता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर ऐसा है। व्यवहार निश्चय को बताता है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसा न मानना कि यह फिर परमाणु की ऐसी व्याख्या क्या? इस व्याख्या में भगवान समाहित हो जाता है। कहते हैं कि ऐसे परमाणु उसकी चाहे जो पर्यायरूप हुआ हो, भारी-हल्का। क्या कहलाता है फिर? दो, चार स्निग्धता-रूक्षता तो है। शीत-उष्ण तो उसमें आया? कठोर और कोमल। कठोर और कोमल पर्याय, भारी और हल्की पर्याय।

वह स्थूल में होती है। परमाणु में होती है। उस समय में भी वह परमाणु उसमें नहीं आया, द्रव्य उसमें नहीं आया। आहा..हा..! पर्याय पर्यायरूप से हुई, द्रव्य पर्यायरूप से आया नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य पर्यायरूप से आ जाये तो द्रव्य का नाश हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश हो जाये। परन्तु आता ही नहीं। दो अंश भिन्न हैं। आहा..हा..! समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा निगोद से लेकर कितने जीव लिये हैं। एक शरीर में अनन्त जीव, एक अंगुल के असंख्य भाग, शकरकन्द में, आलू में असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव, सिद्ध की अपेक्षा अनन्त गुने (जीव)। उन सबकी पर्याय भले अभव्य की पर्याय हो, कहते हैं। आहा..हा..! गृहीतमिथ्यात्व के तीव्र रूप से कषाय खाने के कारखाने लगाकर (बैठा हो), भाव में, हों! यह तो भाव की पर्याय। गाय और भैंस रखते हैं न ऐसे? ऊपर पड़े एकदम। उस ओर अलग और इस ओर अलग। ऐसे मिथ्यात्व की जो तीव्र कषाय की अवस्था है, उसमें भी द्रव्य तो नित्य है। वह द्रव्य उसमें आया नहीं। समझ में आया? और जो सिद्धरूप से परिणमे.. आहा..हा..! उस पर्यायरूप भी द्रव्य तो आया नहीं, कहते हैं। अहो! ऐसा का ऐसा है, कहते हैं। उसमें भेद या खण्ड कुछ है नहीं। आहा..हा..! ऐसा भगवान आत्मा, उसके अन्तर में एकाग्रता कर, वह तेरे कल्याण का मार्ग है। आहा..हा..! यह तो सब बातें करके मर गया, यह व्रत और यह तप। हैरान.. हैरान.. (हो गया)। काय-क्लेश। समझ में आया?

सहजानन्द प्रभु! सहजपरमपारिणामिकभाव को कहनेवाले ऐसे सहज निश्चयनय से वह तो ऐसा का ऐसा है। **जो ऐसा होने से,...** वह परमाणु **इन्द्रियगोचर न होने से,...** इन्द्रियगोचर नहीं है। **और पवन, अग्नि इत्यादि द्वारा नाश को प्राप्त न होने से, अविभागी है, उसे हे शिष्य! तू परमाणु जान।** उसे तू परमाणु जान। आहा..हा..! योगसार में तो कहा है कि छह द्रव्य को प्रयत्न से जान। ऐसी गाथा आती है। छह द्रव्य का व्यवहार ज्ञान भी तू प्रयत्न से जान।

श्लोक-४०

(अब, २६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:)

(अनुष्टुप्)

अप्यात्मनि स्थितिं बुद्ध्वा पुद्गलस्य जडात्मनः।
सिद्धास्ते किं न तिष्ठन्ति स्वस्वरूपे चिदात्मनि।।४०।।

(वीरछन्द)

जड़ पुद्गल की स्थिति पुद्गल में ही जो ऐसा जानें।
सिद्ध प्रभु वे निज चैतन्य स्वरूप मात्र में क्यों न रहें॥४०॥

***श्लोकार्थ :*—जड़ात्मक पुद्गल की स्थिति स्वयं में (पुद्गल में ही) जानकर (अर्थात्, जड़स्वरूप पुद्गल, पुद्गल के निज स्वरूप में ही रहते हैं — ऐसा जानकर), वे सिद्धभगवन्त, अपने चैतन्यात्मक स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे ?(अवश्य रहेंगे!)॥४०॥**

श्लोक-४० पर प्रवचन

अप्यात्मनि स्थितिं बुद्ध्वा पुद्गलस्य जडात्मनः।
सिद्धास्ते किं न तिष्ठन्ति स्वस्वरूपे चिदात्मनि।।४०।।

***श्लोकार्थ :*—जड़ात्मक पुद्गल की स्थिति स्वयं में (पुद्गल में ही) जानकर...** जब परमाणु भी ऐसा जड़ अपने में रहता है.. आहा..हा..! ऐसा कहते हैं। जिसे कुछ भान नहीं, जिसमें ज्ञान नहीं, ऐसा परमाणु भी स्वयं अपने में द्रव्यरूप से कायम रहता है। **(अर्थात्, जड़स्वरूप पुद्गल, पुद्गल के निज स्वरूप में ही रहते हैं—ऐसा जानकर), वे सिद्धभगवन्त, अपने चैतन्यात्मक स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे ?** जब परमाणु भी ऐसे द्रव्यस्वरूप में त्रिकाल रहता है तो सिद्धस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, सिद्ध भगवन्तों की व्याख्या भाषा ली है, परन्तु समस्त आत्माओं की बात है। अरे! यह आत्मा अपने द्रव्य में

क्यों नहीं रहेगा। द्रव्य तो ऐसा का ऐसा रहता है, वहाँ क्यों नहीं जाये ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? गजब बात, भाई ! दिगम्बर सन्तों की कथनी ! जड़ की हो तो भी अलग, चैतन्य की अलग, बातें अलग, भाई ! लोग मानते हैं कि यह सम्प्रदाय है। वाड़ा है ऐसा नहीं भगवान ! यह तो वस्तु की स्थिति की मर्यादा की बात है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आपने स्पष्टीकरण करके बताया, नहीं तो हमें कौन बताता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा.. ! भगवान ! जब परमाणु अपनी जड़ की स्थिति में से च्युत नहीं होता तो द्रव्यस्वभाव ऐसा भगवान अपने में अपने से कैसे हटे ? और वहाँ दृष्टि लगाकर उसमें रहे, ऐसा कहते हैं। वापस पर्याय में, हों ! ऐसा स्वरूप है, वह हटा नहीं। ऐसा जिसे ज्ञान होता है वह उसमें रहता है। रहा है ही। प्रत्येक का रहा है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! कहते हैं कि जड़स्वरूप पुद्गल जब अपनी जाति में रहता है, तो यह भगवान स्वयं द्रव्यस्वभाव जैसा है, उसमें क्यों न रहे अब ? पर्याय से क्यों न रहे ऐसा कहते हैं, हों ! समझ में आया ? इसकी ज्ञान की पर्याय में ऐसा आवे कि यह तो ऐसा का ऐसा है। तब इसने ऐसा का ऐसा है जाना कहलाये। पोपटभाई ! आहा..हा.. !

पोपट है वह नलिनी को पकड़कर ऐसे (उल्टा) हो गया। उसमें उड़ने की शक्ति तो है परन्तु ऐसा हो गया है इसलिए मानो में उल्टा हूँ (ऐसा मानता है)। ऐसे छोड़े तो एकदम उड़ जाये, भले ऐसे नीचे सिर हो। अरे ! ऐसा तेरा स्वभाव। परमाणु ने जब नित्यपना छोड़ा नहीं तो तेरा नित्य आनन्दकन्द प्रभु क्यों स्वयं को छोड़े ? ऐसी दृष्टि कैसे न करे ? और ऐसी स्थिरता क्यों न करे ? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहा..हा.. ! ऐई ! जेठालालभाई !

वह परमाणु नित्य है। ऐसा का ऐसा रहा है। ऐसा उसे उसकी पर्याय को खबर नहीं। परमाणु की पर्याय को खबर है ? उसकी पर्याय की इसे (जीव को) खबर है कि परमाणु ऐसा का ऐसा नित्य रहा है। इस प्रकार जब परमाणु ऐसा उसमें रहता है और पर्याय में आता नहीं, तो मैं एक द्रव्यस्वभाव त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, मैं कैसे पर्याय में आऊँ ? ऐसा मानते हुए पर्याय को द्रव्य में स्थिर करता है। समझ में आया ? वाडीभाई ! ऐसी लहर है दिगम्बर सन्तों की। आहा..हा.. ! ये मुनि हैं, इसलिए इनकी टीका मान्य नहीं ऐसा (कुछ लोग) कहते हैं। अरे ! भगवान ! यह तू क्या करता है ? भाई ! तुझे खबर नहीं। आहा..हा.. ! इनने कहाँ लेकर छोड़ा, देखो तो सही ! बात परमाणु की करते हैं और बात यहाँ कर डाली।

भाई! परमाणु की आदि-अन्त में स्वयं है। उसे कोई अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। उसे तो खबर भी नहीं कि आदि-मध्य में मैं का मैं हूँ या नहीं। उसके जाननेवाले की पर्याय में ऐसा आया कि यह तो ऐसा का ऐसा है। यह जाननेवाले की पर्याय, यह आत्मा ऐसा का ऐसा है, उसमें क्यों न स्थिर हो? ऐसा कहते हैं। हीराभाई!

(स्वरूप में ही रहते हैं — ऐसा जानकर)... जानकर कहा है न? **विहाण** था न? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं **विहाण,** ऐसा था न? विशेष जान परन्तु वापस इस जानने का प्रयोजन क्या? कि परमाणु ऐसा है... जिसने जिस ज्ञान की दशा ने एक-एक परमाणु ऐसे कितने? आत्मा की संख्या अपेक्षा अनन्तगुने। ऐसे परमाणु भी द्रव्य से ऐसे के ऐसे रहते हैं। ऐसी ही वस्तु की स्थिति है। इसकी तो उसे खबर नहीं। उसकी खबर करनेवाला यह ज्ञान, उसे जैसे द्रव्य को ऐसा का ऐसा है, ऐसा रहता है, ऐसा जानता है, तो तू भी ऐसा का ऐसा सहज पारिणामिकभाव से है। उसमें क्यों न स्थिर हो? उसमें क्यों न जाये? आहा..हा..! ऐ.. हीराभाई! ऊँचा किया है ऐसा।

अरे सिद्धभगवन्त। वे सिद्धभगवान ही यह आत्मा है। निश्चय से सिद्धभगवान ही है न। वस्तु स्वयं सिद्ध ही है। शुद्ध ध्रुव। वह **अपने चैतन्यात्मक...** चैतन्यरूप **स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे?** आहा..हा..! जब जिसके ज्ञान में ऐसा आया कि परमाणु द्रव्य, अनन्त-अनन्त जड़, जिन्हें कुछ ज्ञान नहीं, जिनकी कुछ खबर नहीं, हम जगत के तत्त्व है या नहीं ऐसी भी जिन्हें खबर नहीं। आहा..हा..! ऐसे तत्त्वों का, ऐसा का ऐसा द्रव्य रहता है-ऐसा जाननेवाला भगवान, वे अनन्त परमाणु द्रव्यरूप से तो ऐसे के ऐसे हैं। पर्याय में आये नहीं। ऐसा जाननेवाला पर्याय ज्ञान की, वह तेरा द्रव्य भी ऐसा का ऐसा है। बाहर आया नहीं। ऐसा स्वरूप सन्मुख निर्णय करके क्यों स्थिर न हो? आहा..!

(श्वेताम्बर के) ३२-४५ (सूत्र) पढ़ो तो यह मिले, ऐसा नहीं है। एक-एक लाईन में... आहा..हा..! यह दिगम्बर धर्म अर्थात् आत्मधर्म। छोटाभाई कहते थे कि अब यह दिगम्बर धर्म बाहर आया। नहीं तो छिप गया था। छोटाभाई कदोल रहते हैं न (वे कहते थे)। दिगम्बर धर्म कुछ गिनती में नहीं था। बाहर में श्वेताम्बर-श्वेताम्बर। अहमदाबाद में और सर्वत्र भाई दो-तीन दिन पहले कहते थे। भाई कहते थे छोटाभाई। अरे! दिगम्बर धर्म अर्थात् ऐसा आत्मा का सनातन स्वरूप। वह कोई पक्ष और वाड़ा नहीं है।

मुमुक्षु : समझानेवाला नहीं था, इसलिए कहाँ से बाहर आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिस समय हो ऐसा आवे न। कहो, समझ में आया ? आहा..हा.. ! गजब बात, भाई ! कारण परमाणु, कार्य परमाणु... निकालकर फिर डाला कि वह परमाणु पर्याय में नहीं आया, हों ! एक गुणरूप परिणमे... भाई ! गजब बात है। वस्तु की स्थिति तो प्रसिद्ध करने की पद्धति अलौकिक है। ओहो..हो.. ! जब परमाणु जैसे जड़ भी चाहे जितनी भारी हल्की, स्निग्धता-रूक्षतारूप द्रव्य नहीं होता। ओहो..हो.. ! तो ऐसा द्रव्य, भगवान आत्मा का द्रव्य, वह संसार की पर्यायरूप कैसे आवे और कैसे जाये ? कैसे हो ? इसलिए इसकी दृष्टि द्रव्य में जाने पर, वह सिद्धरूप परिणमने की योग्यता अन्दर हो जाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? लो, यह ४०वाँ श्लोक हुआ। २७वीं गाथा !

गाथा-२७

एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं।।२७।।

एकरसरूपगन्धः द्विस्पर्शः स भवेत्स्वभावगुणः।
विभावगुण इति भणितो जिनसमये सर्वप्रकटत्वम्।।२७।।

स्वभावपुद्गलस्वरूपाख्यानमेतत्। तिक्तकटुककषायाम्लमधुराभिधानेषु पञ्चसु रसेष्वेकरसः, श्वेतपीतहरितारुणकृष्णवर्णेष्वेकवर्णः, सुगन्धदुर्गन्धयोरेकगन्धः, कर्कशमृदुगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाभिधानामष्टानामन्त्यचतुःस्पर्शाविरोधस्पर्शनद्वयम्, एते परमाणोः स्वभावगुणाः जिनानां मते। विभावगुणात्मको विभावपुद्गलः। अस्य द्व्यणुकादिस्कन्धरूपस्य विभावगुणाः सकलकरणग्रामग्राह्या इत्यर्थः।

तथा चोक्तं पञ्चास्तिकायसमये ह्न

एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि।।

उक्तञ्च मार्गप्रकाशे ह्न

(अनुष्टुप्)
वसुधान्त्यचतुःस्पर्शेषु चिन्त्यं स्पर्शनद्वयम्।
वर्णो गन्धो रसश्चैकः परमाणोः न चेतरे।।

तथाहि ह्न

दो स्पर्श इक रस गंध वर्ण स्वभावगुणमय है वही।
सर्वाक्षगम्य विभावगुणमय को प्रगट जिनवर कही।।२७।।

अन्वयार्थ :— [एकरसरूपगंधः] जो एक रसवाला, एक वर्णवाला, एक गंधवाला और [द्विस्पर्शः] दो स्पर्शवाला हो, [सः] वह [स्वभावगुणः]

स्वभावगुणवाला [भवेत्] है; [विभावगुणः] विभावगुणवाले को [जिनसमये] जिनसमय[१] में [सर्वप्रकटत्वम्] सर्व प्रगट (सर्व इन्द्रियों से ग्राह्य) [इति भणितः] कहा है।

टीका :—यह, स्वभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है।

चरपरा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा - इन पाँच रसों में का एक रस; सफेद, पीला, हरा, लाल और काला — इन (पाँच) वर्णों में का एक वर्ण; सुगन्ध और दुर्गन्ध में की एक गंध; कठोर, कोमल, भारी, हलका, शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकना) और रूक्ष (रूखा) — इन आठ स्पर्शों में से अन्तिम चार स्पर्शों में के अविरुद्ध दो स्पर्श; यह, जिनों के मत में परमाणु के स्वभावगुण हैं। विभावपुद्गल, विभावगुणात्मक होता है। यह द्वि-अणुकादिस्कन्धरूप[२] विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है — ऐसा (इस गाथा का) अर्थ है।

इस प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (८१वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —

'एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि॥'

'(गाथार्थ :—) एक रसवाला, एक वर्णवाला, एक गंधवाला और दो स्पर्शवाला, वह परमाणु, शब्द का कारण है; अशब्द है और स्कन्ध के भीतर हो, तथापि द्रव्य है (अर्थात्, सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।'

और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

परमाणु को वसु स्पर्श के अन्तिम चार स्पर्शों में।
द्वय स्पर्श इक वर्ण गन्ध रस एक-एक युत ही जानें॥

'(श्लोकार्थ :—) परमाणु को आठ प्रकार के स्पर्शों में अन्तिम चार स्पर्शों में से दो स्पर्श, एक वर्ण, एक गंध तथा एक-एक रस, समझना; अन्य नहीं।'

---

१. समय=सिद्धान्त, शास्त्र, दर्शन, मत।

२. दो परमाणुओं से लेकर अनन्त परमाणुओं का बना हुआ स्कन्ध, वह विभावपुद्गल है।

गाथा-२७ पर प्रवचन

एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं।।२७।।

गुण-गुण शब्द प्रयोग किया है, हों! तथापि यह पर्याय है।

दो स्पर्श इक रस गंध वर्ण स्वभावगुणमय है वही।
सर्वाक्षगम्य विभावगुणमय को प्रगट जिनवर कही॥२७॥

टीका :—**यह, स्वभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है। चरपरा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा - इन पाँच रसों में का एक रस;....** परमाणु में होता है। समझ में आया? क्योंकि परमाणु का गुण रस है, वह तो त्रिकाल है। यह तो पर्यायें हैं, ये पर्यायें हैं। खट्टी-मीठी यह पर्याय है, गुण नहीं। क्या कहा? पण्डितजी! पर्याय है यह तो, रस गुण है। यह खट्टा-मीठा रस, यह तो पर्याय है। यह रस गुण भी पर्याय में आया नहीं।

सफेद, पीला, हरा, लाल और काला — इन (पाँच) वर्णों में का एक वर्ण;... है। वर्णों में से। वर्ण अर्थात् यह गुण का नहीं। वर्ण गुण तो त्रिकाली है, उसकी यह पर्याय है। यहाँ पर्याय को गुण कहने में आता है। समझ में आया? तथापि यह काली, लाल, आदि पर्याय में द्रव्य नहीं आया। नित्य रस से भरपूर तत्त्व ऐसी पर्यायरूप नहीं आता। आहा..हा..! यह वीतराग का विज्ञान ही अलग प्रकार का है। यह पहले अजीव का पढ़ा नहीं था न। अब कहते हैं यह पढ़ो।

सुगन्ध और दुर्गन्ध में की एक गंध;... सुगन्ध-दुर्गन्ध तो पर्याय है। गन्ध नाम का गुण त्रिकाल है। आहा..हा..! अरे! परमाणु का गुण, ध्रुव भी जहाँ पर्याय में नहीं आता, द्रव्य-पर्याय में नहीं आता इसका अर्थ कि द्रव्य के अनन्त गुण पर्याय में नहीं आते। आहा..हा..! वीतराग के कथन वीतरागभाव की प्रसिद्धि करते हैं। आहा..हा..! भगवान! चाहे जिस पर्यायरूप तेरी दशा हो, उसे न देख, ऐसा कहते हैं। तेरा त्रिकाल तत्त्व पर्याय में नहीं आया, उसे देख। यह ऐसा आता है न? देखो न! चौदह मार्गणा में, भाई! मार्गणा न देख, मार्गणा, वह जीव द्रव्य में नहीं है। आहा..हा..! तू भव्य-अभव्य-ऐसा न देख। आहा..हा..!

मुमुक्षु : द्रव्य तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य को देखा तो यह समाप्त हो गया। आहा..हा..! चौदह मार्गणा में आता है न? गति-जाति मार्गणा आती है न? वह जीव में नहीं है ऐसा आयेगा। जीव अधिकार में। जीव में नहीं। तब वह जीव नहीं? कि नहीं। यह पर्याय जीव, वह व्यवहार जीव। आहा..हा..! गजब बात भाई! केवलज्ञान में जीव आया नहीं। एक अंश में पूरा अंशी नहीं आता, उसमें नहीं समाता। आहा..हा..! ज्ञान और आनन्द गुण का तत्त्व-सत्व प्रभु, उसकी पर्याय में नहीं आता। ऐसे ये परमाणु ऐसे रस में नहीं आते, पर्याय में है। आहा..हा..!

कठोर, कोमल, भारी, हलका,... देखो अब आया। **हलका, शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकना) और रूक्ष (रूखा) — इन आठ स्पर्शों में से अन्तिम चार स्पर्शों में के अविरुद्ध दो स्पर्श;...** एक परमाणु में लेना है न? एक परमाणु में दो अविरुद्ध दो स्पर्श। शीत हो तो उष्ण नहीं हो और उष्ण हो तो शीत नहीं हो। उष्ण, चिकना, शीत नहीं। **यह, जिनों के मत में...** ओहो..हो..! वीतराग भगवान के अभिप्राय में **परमाणु के स्वभावगुण हैं।** ये परमाणु द्रव्य की स्वभाव पर्यायें हैं। **विभावपुद्गल, विभावगुणात्मक होता है।** दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु स्कन्ध, वह विभावगुण है। देखो! विभावगुण अर्थात् विभावपर्याय।

यह द्वि-अणुकादिस्कन्धरूप विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है... वह परमाणु इन्द्रियग्राह्य नहीं कहा था। यह पर्याय इन्द्रियग्राह्य है। **विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है — ऐसा (इस गाथा का) अर्थ है।** आहा..हा..!

इस प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (८१वीं गाथा द्वारा) कहा है कि — लो, यह कल कहा था वह।

'एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि॥'

लो, एक यह स्कन्ध है, अंगुली का पिण्ड। इसमें एक-एक रजकण, अपने स्वचतुष्टय से रहा हुआ है। नित्य, पर्याय में तो आया नहीं, परन्तु पर्याय यहाँ दूसरे को स्पर्शित नहीं है, ऐसा कहते हैं। एक रस की पर्यायवाला परमाणु, एक रंग की पर्यायवाला परमाणु, एक गन्धवाला परमाणु और दो स्पर्शवाला परमाणु। **शब्द का कारण है;...** परन्तु स्वयं **अशब्द है...** परमाणु स्वयं अशब्द है। एक रजकण इसमें चाहे जो, वह उसमें शब्द

नहीं है परन्तु शब्द का कारण है। **स्कन्ध के भीतर हो, तथापि...** आहा..हा..! देखो तो सही! ये रजकण देह में हों। उसमें-स्कन्ध में हों **तथापि द्रव्य है (अर्थात्, सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)**। शुद्ध का अर्थ अकेला। वापस है तो विभाव ऊपर परिणमित हुआ, भाई! यह शुद्ध डाल दिया।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; परान्तु तथापि वह बन्ध पर्यायवाला कहा। पर्यायवाला भी... ऐसा है। पर्यायवाला कहा न। **परमाणु, शब्द का कारण है; अशब्द है और स्कन्ध के भीतर हो, तथापि द्रव्य है...** ऐसी पर्यायवाला। **(सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)**। वस्तुरूप से गिनो तो शुद्धद्रव्य है। पर्यायरूप से गिनो तो पर के सम्बन्धरहित भिन्न चीज़ है। समझ में आया? कहो, इतने में एक रहा हुआ है, परन्तु वह अपने स्वचतुष्टय में है। आहा..हा..! ऐसा ज्ञान सर्वज्ञ के अतिरिक्त और वह भी उनके ज्ञानगम्य हो सके इस प्रकार से... समझ में आया? एक-एक परमाणु के स्कन्ध में होने पर भी **(सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)**। लो, आहा..हा..!

और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि — देखो, शब्द का कारण है। कौन? एक परमाणु, हों! शब्द का कारण आत्मा है ऐसा नहीं। यह होंठ शब्द का कारण हैं, ऐसा नहीं। शब्द का कारण परमाणु है। आहा..हा..! आत्मा शब्द का कारण नहीं। शब्द की उत्पत्ति आत्मा है, इसलिए होती है, ऐसा नहीं। आहा..हा..! भाई! गजब बात है।

मुमुक्षु : होंठ चले तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : होंठ है वह वर्गणा दूसरी है - आहारवर्गणा है। यह (शब्द) शब्दवर्गणा है। आहारवर्गणा, वह शब्दवर्गणा की उत्पत्ति नहीं है। आहा..हा..! भारी कठिन काम जगत को। अभी बाहर परद्रव्य का कर्ता न माने तो दिगम्बर जैन नहीं, ऐसा कहते हैं। अरर! क्या किया तूने भगवान? अरे! अकेला व्यवहार से भिन्न है इतना ख्याल में लेना तुझे कठिन पड़ता है। आत्मा शरीर में होने पर भी शरीर से अत्यन्त भिन्न है। राग के साथ दिखने पर भी राग से अत्यन्त भिन्न है। और पर्यायवाला दिखने पर भी द्रव्य, पर्याय से भिन्न है। ऐसी दृष्टि किये बिना इसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। कहो, समझ में आया? लो, विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२७वीं गाथा हो गयी। २६ में कहा था कि यह आत्मा, **सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले सहज निश्चयनय की अपेक्षा से,...** त्रिकाल शुद्धस्वभाव से कभी भ्रष्ट नहीं हुआ। नित्य, अनित्य निगोद में लिया, ऐसा कल ऐसा डाला था। त्रिकाल ज्ञायकभाव नित्य, इस निगोद से लेकर अनित्य पर्याय में आया नहीं, ऐसी बात की थी। अर्थ ऐसा है। भाव में कोई अन्तर नहीं। आत्मा सहजस्वभाव, एकरूप परमभाव वह स्वयं अपने स्वभाव से निगोद से लेकर सिद्ध की पर्याय में कहीं आया नहीं, च्युत हुआ नहीं - ऐसा वह आत्मद्रव्य ध्यान करनेयोग्य है।

मुमुक्षु : ध्यान करनेयोग्य तो पर्याय हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है, परन्तु पर्याय का विषय यह है न।

मुमुक्षु : पर्याय का.... नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान करना है, मोक्षमार्ग है, वह सब पर्याय है।

मुमुक्षु : कथन नहीं करने का, एक ही करने का। ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव..

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ध्रुव.. ध्रुव कौन निश्चित करता है ? ध्रुव का निर्णय कौन करता है ? पर्याय करती है या ध्रुव करता है ?

मुमुक्षु : पर्याय के सामने देखना नहीं। भगवान ने इनकार किया है पर्याय के सामने देखने को।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाने देखने को, परन्तु यह सामने देखती है, वह पर्याय है। इसका इनकार किया है ? ऐई! कान्तिभाई! क्या है ? यह कुछ प्रश्न उठा लगता है। यहाँ तो कहते हैं... यह तो नित्य निगोद, अनित्य इसके साथ सम्बन्ध था, इसलिए जरा फिर से (लिया)। वस्तु एक ज्ञायकभाव शुद्ध परमस्वभाव, परमपारिणामिकभाव जिसमें पर्याय नहीं, उसमें नहीं, परन्तु निर्णय और अनुभव करती है पर्याय।

मुमुक्षु : मैं ध्रुव हूँ, ऐसा तुम कहते नहीं और तुम ऐसा कहते हो कि ध्रुव के समक्ष और शुद्धपने परिणमे बिना धर्म होता नहीं, ऐसा कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो वही का वही हुआ न, उसमें क्या हुआ ? त्रिकाली ध्रुव के सन्मुख होकर दशा प्रगट किये बिना तीन काल में धर्म नहीं होता।

मुमुक्षु : ऐसा आप किसलिए कहते हो ? मैं ध्रुव हूँ.. मैं ध्रुव हूँ.. मैं ध्रुव हूँ... ऐसा कहा करो। मैंने कहा परन्तु यह कहना, वह पर्याय है। मैं ध्रुव हूँ, ऐसा कहना, वह भी पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है ? चेतनजी ! परन्तु मैं ध्रुव हूँ, यह जानता कौन है ? यह ध्रुव जानता है ? ऐई !

मुमुक्षु : उसे कहनेवाला कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय। यहाँ तो आत्मा पूर्णानन्द प्रभु एक समय में...

मुमुक्षु : .....ऐसा किये बिना धर्म नहीं होता, ऐसा किसलिये कहते हो ? ध्रुव कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ध्रुव है, ऐसा जाननेवाला कौन है ?

मुमुक्षु : परन्तु उसका क्या काम है ? वह तो पर्याय हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐ... भीखाभाई ! कैसा ? जेठाभाई ! क्या है यह ? किसके साथ विवाद उठा है।

मुमुक्षु : स्वयं के साथ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा... यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं और ऐसा है कि यह आत्मा त्रिकाल ध्रुवस्वभाव, परमस्वभाववाला तत्त्व, यही आत्मा है। उसका ध्यान करना अर्थात् उसकी दृष्टि करना और ज्ञान करना, वह धर्म है। यह देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति करना, यह सब धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : आप तो इतना ही कहो, अधर्म शब्द नहीं बोलते।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस बात के लिये तो यह बात है। यह भी अभी इसमें आयेगा। समझ में आया ? देव-गुरु-शास्त्र तो पर है, उनके सन्मुख देखकर जितनी भक्ति होती है, वह सब राग है, पुण्य है; धर्म नहीं। समझ में आया ? तीन लोक के नाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ हो, समवसरण में विराजमान हों, सौ इन्द्र पूजते हों, उनकी भी भक्ति, उनकी श्रद्धा, उनके सन्मुख का ज्ञान, वह सब पराधीन और राग है।

मुमुक्षु : शास्त्र का अभ्यास वह ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र का अभ्यास, वह राग और पराधीन है।

मुमुक्षु : इसके बिना काम नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बिना चलाने की बात यहाँ है। बात यह है। दुनिया को सत्य हाथ ही नहीं आया। समझ में आया ? ऐई... बसन्तीलालजी ! आहा..हा.. ! कैसा मार्ग है ? मार्ग को अभी तो सुना नहीं। ऐसा मानो यह भक्ति करते हैं भगवान की, गुरु की और आत्मा का कल्याण हो जायेगा। धूल में भी नहीं होगा। कल्याण नहीं होगा तो गति एक भव नहीं मिटेगा। ऐई !

मुमुक्षु : .....साधन नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भव के नाश का वह उपाय ही नहीं। सच्चा अन्तर भगवान आत्मा भी... इसलिए लिया न **परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले...** निश्चयनय से भगवान नित्य और अनित्य निगोद की पर्यायों से भिन्न है। यह २६वीं गाथा में आ गया। अब दूसरी बात। अब अपने चलता है वह। ४९, वह पंचास्तिकाय का श्लोक आया न ? उसमें भी जरा लेना है, देखो ! पहले १२वाँ कल लिया गया है, परन्तु उसमें जरा विस्तार है।

यह स्कन्ध है न रजकण, ये जत्था, जड़, मिट्टी, अंगुली, पैसा, दाल, भात, सब्जी, कर्म, वाणी इनमें एक परमाणु जो रहा हुआ है, एक पॉइन्ट रजकण उसमें पृथक्, वह **एक रसवाला, एक वर्णवाला, एक गंधवाला और दो स्पर्शवाला, वह परमाणु, शब्द का कारण है;...** आत्मा भाषा का कारण है नहीं। आत्मा बोलता नहीं और आत्मा से भाषा होती नहीं। जगत के सत्व की खबर नहीं होती और ऐसा का ऐसा परिभ्रमण में भटकते हुए धर्म हो जाये (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया ? ऐ कान्तिभाई ! शब्द का कारण परमाणु है, आत्मा नहीं। यह आवाज उठती है, वह आत्मा से नहीं। आहा..हा.. ! जड़ की दशा जड़ से उत्पन्न होती है।

अशब्द है और स्कन्ध के भीतर हो, तथापि द्रव्य है (अर्थात्, सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)। यहाँ तो वह शुद्ध शब्द आया, इसलिए जरा अधिक स्पष्ट करना

है कि है रजकण इसके (स्कन्ध के) अन्दर, परन्तु है वह अकेला स्वतन्त्र; इसलिए उसे शुद्ध कहते हैं। है तो उसकी पर्याय विभाविक।

मुमुक्षु : दूसरे से भिन्न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे से भिन्न; इसलिए शुद्ध कहा जाता है। नहीं तो पर्याय शुद्ध नहीं है। उसमें रहा हुआ रजकण, जो अन्तिम पाइन्ट। वह तो बहुत रजकणों का पिण्ड है, टुकड़ा करते.. करते... करते... अन्तिम पाइन्ट (रहे), वह जो उसमें है, वह शुद्ध है। शुद्ध का अर्थ (यह कि) पर के सम्बन्धरहित है। है तो विभाविक पर्याय। परमाणु उसमें रहा हुआ है, वह विभाविक अवस्थावाला है। विकारी अवस्थावाला है। वह गुण और पर्याय उसमें विकारी है, तथापि उसे शुद्धद्रव्य कहा गया है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बात का कहीं ज्ञान नहीं होता, समझ नहीं होती और उसे धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं होता)। अनन्त काल में चौरासी के (अवतार में) भटकने का मार्ग है।

मुमुक्षु : शुद्ध क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न। यह क्या कहा? पर के सम्बन्धरहित अपने चतुष्टय में रहा है, इस अपेक्षा से शुद्ध कहा है।

मुमुक्षु : अच्छे-बुरे शब्द जो होते हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द जड़ से होते हैं।

मुमुक्षु : अच्छा-बुरा...

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द में अच्छा-बुरा है ही नहीं। वह तो वाणी जड़ है, धूल है।

मुमुक्षु : शास्त्र तो कहते हैं कि यह सुनो, वह नहीं सुनो।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सुनो, इसका अर्थ कि सुनने में विकल्प आता है, वह राग है, धर्म नहीं।

मुमुक्षु : शास्त्र पढ़ना-सुनना।

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ने-सुनने में राग है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं, कुशास्त्र नहीं पढ़ना और सुशास्त्र पढ़ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात व्यवहार से। शुभविकल्प है। शुभराग की अपेक्षा से बात है। सुशास्त्र पढ़े और सुने तो भी शुभराग है, पुण्य है; धर्म नहीं।

मुमुक्षु : कुशास्त्र कोई स्वयं तो नहीं हुए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र तो जड़ है। उससे हुए हैं। शास्त्र, शास्त्र से हुए हैं, जड़ से (हुए हैं); आत्मा से नहीं।

मुमुक्षु : वाणी निमित्त नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वाणी तो जड़ है।

मुमुक्षु : यहाँ पुद्गल लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी पुद्गल है, जड़ है। वह कहाँ आत्मा है? वाणी उठती है, वह जड़ है, वह तो आवाज है, रजकण की आवाज है, आत्मा की नहीं। आत्मा तो उससे भिन्न है। वस्तु की स्थिति की खबर नहीं होती। पोपटभाई! भगवान क्या कहते हैं? यह तो मानो कोई भगवान दे देंगे और गुरु दे देंगे, भक्ति करो, अपने दान दो, कल्याण हो जायेगा... धूल में भी कल्याण नहीं होगा। एक भी भव नहीं घटेगा। तेरे लाख-करोड़ दान दे और भक्ति करके मर जा सौ-सौ वर्ष से, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक भी भव नहीं घटेगा। ऐसे के ऐसे अनन्त भव रहेंगे। पर की भक्ति और पर से मुझे लाभ होगा, इस मान्यता में मिथ्यात्वभाव है। ऐई! पण्डितजी!

यहाँ तो अपने इतना (कि) यह शुद्धद्रव्य से, कहा था न? रात्रि को प्रश्न उठा था न कि शुद्ध से क्या? अकेला द्रव्य है, इसलिए शुद्ध कहना? यहाँ तो मूल तो गुण-पर्यायवाला द्रव्य लिया है। शुद्ध परमाणु। यह नहीं भले परन्तु द्रव्य है न। स्वतन्त्र द्रव्य सिद्ध करना है न? भले कोष्ठक में लिखा, परन्तु उसका अर्थ अपने को ऐसा लेना, ऐसा।

मुमुक्षु : इसमें है न पंचास्तिकाय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध शब्द नहीं। नहीं। शुद्ध शब्द नहीं। यह देखा, ८१ (गाथा) है। गुण-पर्याय मुझे तो देखना है इसमें। यह संस्कृत में है। गाथा है न, देखो **यह परमाणु द्रव्य में गुण-पर्याय वर्तने का (गुण और पर्याय होने का) कथन है।** अकेले द्रव्य की बात नहीं। भाई! यहाँ, संस्कृत है यह। गुण-पर्याय वर्तने का कथन है। **और स्निग्ध-**

रूक्षत्व के कारण बन्ध होने से अनेक परमाणुओं की एकत्वपरिणतिरूप स्कन्ध के भीतर रहा हो, तथापि स्वभाव को नहि छोड़ता हुआ, संख्या को प्राप्त होने से (अर्थात् परिपूर्ण एक की भाँति पृथक् गिनती में आने से) अकेला ही द्रव्य है। बस, शुद्ध शब्द इसमें नहीं, परन्तु अब इसमें शुद्ध डाला है, उसका अर्थ समुचित बैठना चाहिए इसलिए। समझ में आया ? ऐई ! आहा..हा.. ! अब कहते हैं। १३वाँ श्लोक है।

वसुधान्त्यचतुःस्पर्शेषु चिन्त्यं स्पर्शनद्वयम्।
वर्णो गन्धो रसश्चैकः परमाणोः न चेतरे।।

परमाणु अर्थात् एक पाइन्ट, रजकण। वह भी स्वतन्त्र वस्तु है। **परमाणु को आठ प्रकार के स्पर्शों में अन्तिम चार स्पर्शों में से दो स्पर्श, एक वर्ण, एक गंध तथा एक-एक रस, समझना; अन्य नहीं।** परमाणु का स्वरूप स्वतन्त्र है। उसका परिणमन कराये, भाषा हो, वाणी हो, चलना हो, वह स्वतन्त्र जड़ से होता है। आत्मा से बिल्कुल नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। अज्ञानी को वह क्रिया चलने की, बोलने की मेरी है-ऐसा माने, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : व्यवहार से तो कहा जाता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल व्यवहार से नहीं। व्यवहार से कैसा ? व्यवहार अर्थात् निमित्त का कथन है। साथ में कौन था, इतना बताने को (कथन है)। उससे हुआ नहीं। परमाणु से हुई यह भाषा है। परमाणु से हुआ यह शरीर है। यह चले ऐसे-ऐसे तो वह परमाणु से स्वयं चलता है। आत्मा के कारण नहीं। वह जड़ मुझसे चले, माने, वह अजीव को जीव मानता है। मिथ्यात्व महापाप है। पाखण्ड का, मिथ्यात्व का महापाप है। कहो, समझ में आया ? वीतरागमार्ग है, भाई ! इसने सुना नहीं और करने की दरकार ही नहीं की। कहीं सरल मिल जाये, दान मिले, पूजा या भक्ति में से धर्म हो जाये, ऐसा नहीं है।

(किसी श्रोता को आते देखकर कहा) नजदीक आओ। बीच में जगह बहुत है। सब द्वारिका जाने निकले हैं ?

मुमुक्षु : हाँ, द्वारिका की बाजु में....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक। यहाँ का विषय जरा सूक्ष्म बहुत है। सूक्ष्म है। अब यहाँ अपने श्लोक लेते हैं। श्लोक है न ? ४१, ४१वाँ श्लोक, भाई !

श्लोक-४१

और (२७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, श्लोक द्वारा भव्यजनों को शुद्ध आत्मा की भावना का उपदेश करते हैं) —

(मालिनी)

अथ सति परमाणोरेक-वर्णादि-भास्वन्,
निजगुणनिचयेऽस्मिन् नास्ति मे कार्यसिद्धिः।
इति निज-हृदि मत्त्वा शुद्ध-मात्मान-मेकं,
परम-सुख-पदार्थी भावयेद्भव्य-लोकः ।।४१।।

(वीरछन्द)

वर्ण आदि निज गुण समूह में सदा प्रकाशित परमाणु।
किन्तु नहीं उसमें किञ्चित् भी कार्यसिद्धि मम मात्र अणु॥
इस प्रकार अपने अन्तर में, जो जन यह निश्चित माने।
परम सौख्यपद का वाञ्छक, वह भव्य निजातम को जाने॥४१॥

श्लोकार्थ :—यदि परमाणु, एक वर्णादिरूप प्रकाशते (ज्ञात होते), निज गुणसमूह में है, तो उसमें मेरी (कोई) कार्यसिद्धि नहीं है (अर्थात्, परमाणु तो एक वर्ण, एक गंध आदि अपने गुणों में ही है, तो फिर उसमें मेरा कोई कार्य सिद्ध नहीं होता); इस प्रकार निज हृदय में मानकर, परम सुखपद का अर्थी भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये॥४१॥

श्लोक-४१ पर प्रवचन

अथ सति परमाणोरेक-वर्णादि-भास्वन्,
निजगुणनिचयेऽस्मिन् नास्ति मे कार्यसिद्धिः।
इति निज-हृदि मत्त्वा शुद्ध-मात्मान-मेकं,
परम-सुख-पदार्थी भावयेद्भव्य-लोकः ।।४१।।

यह जड़ है जड़। यह मिट्टी है। अंगुली, वाणी, दाल, भात, सब्जी, यह मकान, ये सब जड़ तत्त्व हैं। शरीर, वह जड़ तत्त्व-मिट्टी तत्त्व है। वह कहीं आत्मा नहीं। आत्मा अन्दर भिन्न तत्त्व है, यह (शरीर) भिन्न तत्त्व है। यह तो जड़ मिट्टी तत्त्व है। इस मिट्टी में कहते हैं कि इसका जो परमाणु है, एक पाईन्ट अन्तिम। यह तो बहुत रजकण बनकर अंगुली हुई है। यह कहीं आत्मा नहीं है। आत्मा तो अन्दर अरूपी ज्ञानघन, सच्चिदानन्द, निर्मलानन्द शुद्ध भिन्न है। उस आत्मा में, गुण में मैं रहूँ, ऐसा बताने को, यहाँ ये रजकण उसमें जो है, **एक वर्णादिरूप प्रकाशते (ज्ञात होते), निज गुणसमूह में है,...** ये रजकण जो यह है उनकी शक्ति के गुणसमूह में रहे हुए हैं, आत्मा में नहीं। **तो उसमें मेरी (कोई) कार्यसिद्धि नहीं है...** इन जड़ के गुणों में रहा हुआ जड़, उसके कारण मेरी कार्यसिद्धि क्या? मैं तो आत्मा हूँ, मेरा स्वरूप तो आनन्द और सच्चिदानन्द ज्ञानघन है।

कहते हैं कि परमाणु में यह होता है, उसमें मेरा क्या? **इस प्रकार निज हृदय में मानकर, परम सुखपद का अर्थी...** जिसे आत्मा का आनन्द चाहिए है। **परम सुखपद का अर्थी भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** भाषा में। अभी इसमें बहुत अर्थ है। इसका अर्थ अभी लम्बा होता है। रतिभाई! यह पृष्ठ फिराने से नहीं चलेगा। अभी इसका अर्थ होता है। क्या कहा? उस ओर है। ५९ पृष्ठ पर। यह पृष्ठ फिराया, इसलिए मैंने इनकार किया।

यहाँ कहते हैं, रजकण - यह एक-एक परमाणु मिट्टी है, ये इनके गुण में, शक्ति के गुण में रहे हुए हैं। ये आत्मा में नहीं। इसलिए यहाँ कहते हैं कि जड़ उसके गुणों में रहा है, ऐसा जानकर हम तो हमारे गुण में रहेंगे। हम भगवान आत्मा हैं, उसमें आनन्द और ज्ञान है, शान्ति है, तो वे रजकण जब उनकी शक्ति में, उनकी दशा में रहे हैं तो उनके कारण कहीं हमारी कार्यसिद्धि नहीं है। हम हमारे गुण में रहें, यह हमारी कार्यसिद्धि है। पोपटभाई! सूक्ष्म बात है, भाई! इसने तत्त्व की बात सुनी नहीं।

सुखपद का अर्थी... आत्मा आनन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्द है। सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का उसका रूप है। ऐसे आनन्द का जो अर्थी है। **भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** भाषा देखो! इन देव-गुरु-शास्त्र को भावे, यह नहीं - ऐसा कहते हैं, क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र की भावना करे और उनकी भक्ति आदि (करे), वह

सब राग और शुभ है, पुण्य है; धर्म नहीं और वह पुण्य करते-करते धर्म होगा, ऐसा भी नहीं। सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

सुखपद का अर्थी... भगवान आत्मा आनन्द गुणवाला है। जैसे परमाणु अत्यन्त स्पर्श के गुणवाला है, तो मैं भी एक आनन्द के गुणवाला हूँ। जैसे परमाणु उसके जड़ के गुण में रहे हैं, तो मैं भी मेरे आनन्दगुण में रहूँ। इसमें मेरी कार्यसिद्धि है। अरे! गजब बातें आयीं।

कहते हैं, सुखपद का अर्थी, **परम सुखपद का अर्थी...** अतीन्द्रिय आनन्द भगवान मुक्ति आत्मा का स्वरूप। वह अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर आत्मा में है। उस आनन्दमय आत्मा है। ऐसा भव्य जीव, **सुखपद का अर्थी भव्यसमूह,...** भव्यसमूह। देखो! बहुत जीवों का झुण्ड, भव्यों का। यह काम करे, कहते हैं। भव्यसमूह - योग्य जीव जो जीव हैं, वे शुद्ध आत्मा को परमानन्द प्रभु ध्रुव चैतन्य आनन्द हूँ, उसे एक को भजे। उसकी एक की सेवा करे। पर की नहीं, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति से कहीं कल्याण नहीं। यह राग हो, दया, दान, व्रत, भक्ति का (राग हो), उससे कल्याण नहीं। इस एक समय की वर्तमान दशा को भजने से ही कल्याण नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा की बात है, भाई! यह आत्मा अन्दर प्रभु है। सच्चिदानन्द मूर्ति है। इसमें अनन्त-अनन्त शक्तियाँ हैं। इसमें अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भरा हुआ है। ऐसे **भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** लो, क्या कहा, समझ में आया? देखो! वापस **शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** मैं अखण्ड आनन्द शुद्ध चैतन्य धातु, चैतन्यस्वरूप हूँ। ऐसे स्वरूपसन्मुख होकर उसका एकाग्र होना, उसकी भावना ध्यान में करना। वर्तमान ज्ञान की दशा को ध्रुव का ध्येय, विषय बनाना, उसे भावना कहा जाता है, उसका नाम धर्म है। आहा..हा..! समझ में आया? शुद्ध आत्मा को भव्य का झुण्ड, बहुत भव्य जीव, लायक जीवों को क्या करना? कल्याण करना हो तो क्या करना? उन्हें धर्म करना हो तो क्या करना? आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसका भजन करना अर्थात् उसमें एकाग्रता करना। आहा..हा..!

मुमुक्षु : शुद्ध आत्मा एक कैसा है, यह पहले जानना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध आत्मा क्या है? एक क्या है? पर्याय क्या है? राग क्या?

संयोग क्या ? यह तो जानना पड़े न। नौ तत्त्व की भिन्नता जाने बिना एक तत्त्व में आयेगा कहाँ से ? समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म, भाई ! अनादि से ऐसा तो (जाना नहीं)।

आत्मा (का) अपना स्वभाव सच्चिदानन्द है, उसका ध्यान छोड़कर इसने दूसरे ध्यान अनन्त बार किये। उसमें कुछ हुआ नहीं। ये चौरासी के जन्म-मरण ऐसे के ऐसे खड़े हैं। परमात्मप्रकाश में तो ऐसा भी कहा है, भवो-भवो जिनवर पूजा। आता है न ? भव-भव में जिनवर तीर्थंकर की पूजा अनन्त बार की। व्यर्थ गयी। राग है न, वह कहाँ धर्म था ? ऐई ! प्रकाशदासजी ! आहा..हा.. ! यह तो सम्यग्ज्ञानदीपिका में आता है। तीर्थंकरदेव ऐसे भगवान विराजते थे। मणिरत्न के दीपक, हीरे की थाली, कल्पवृक्ष के फूल (लेकर) ऐसी भगवान की पूजा समवसरण में अनन्त बार की, परन्तु कुछ आत्मा का हुआ नहीं। वह तो शुभराग है, विकल्प है, वह तो पुण्य है, धर्म नहीं। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : आत्मा नहीं मिला, परन्तु ऐसे संयोग तो मिले न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे मिले नहीं। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! सम्प्रदाय में अभी तो ऐसी बड़ी गड़बड़ उठी है कि बाहर के मार्ग में पड़े हैं और कहे इसमें से धर्म होगा। कितने ही दया, दान, व्रत और तप करके धर्म मानते हैं। कितने ही भगवान की भक्ति और गुरु की भक्ति से धर्म मानते हैं। सब मिथ्यादृष्टि विपरीत मार्ग में हैं। समझ में आया ? यह अनादि का भटकने का मार्ग है। उसी-उसी मार्ग में वे हैं।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि भगवान की भक्ति तो करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्प आता है और जानता है कि यह हेय है। हेय है, परन्तु वस्तु में स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए अशुभ से बचने को ऐसा आता है परन्तु वह हेय है। आदरणीय नहीं। स्वभाव आदरणीय है। भाषा देखो न ! जेठाभाई ! जेठाभाई ने बहुत भक्ति की है और बहुत उपवास किये थे। उपधान करके सूख गये थे। धूल में भी उसमें कुछ नहीं हुआ। उपधान में तो बहुत भगवान को... क्या कहलाता है खमासणा। ओहो.. ! खमासणा। बड़ी मजदूरी है। आहा..हा.. !

कहते हैं, भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं कि जो भव्यसमूह जीव हैं, वे तो **शुद्ध आत्मा को एक को भाये**। आहा..हा.. ! जिसमें अनन्त शक्ति पड़ी है, बेहद

गुण आनन्द शान्ति पड़े हैं। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके अन्दर में एकाग्र होकर आत्मा की भावना करे, इसका नाम भगवान धर्म और मुक्ति का उपाय कहते हैं। आहा..हा..! इसने अनन्त काल भटकने में गँवाया चार गति में। धर्म के नाम से भी अधर्म सेवन किया और माना धर्म। सुनने को मिलता नहीं। वहाँ तो दूसरा सुने, करो भक्ति, धुन लगाओ। भगवान की भक्ति करो, धुन लगाओ। वह राग की धुन है। समझ में आया?

एक आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर पूर्णस्वरूप आत्मा है। शान्ति से भरपूर तत्त्व है। आहा..हा..! वह अतीन्द्रिय आनन्द का धाम प्रभु आत्मा है। उसकी अन्दर दृष्टि लगाकर, उसकी एकाग्रता की भावना करने का नाम मुक्ति का उपाय है। कहो, रतिभाई! शब्द तो याद रहते हैं या नहीं? रतिभाई! हमारे आये हैं न, भाई! राजभा! रतिभाई, चम्पकभाई के भाई। पोपटभाई! पहिचानते हो या नहीं? ....उसके पुत्र हैं रतिभाई। चम्पकभाई के भाई। इन्हें बहुत प्रेम है। परन्तु यह थोड़ा अभ्यास हो तो अधिक ठीक पड़े। नहीं तो अपने... समझ में आया? आहा..हा..! बेचारों को-लोगों को कहाँ के कहाँ... हैरान-हैरान होकर मर जाये बाहर में से। शत्रुंजय की यात्रा की, सम्मेदशिखर की यात्रा की, वहाँ से कल्याण होगा। धूल में भी नहीं, सुन न!

मुमुक्षु : अपने भी यात्रा में तो गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो शुभभाव होवे तो हो, तथापि वह आदरणीय नहीं, तथापि वह आदरणीय नहीं। अशुभ से बचने के लिये वह भाव है, धर्म नहीं, धर्म नहीं, धर्म नहीं। उसमें धर्म माने, वह श्रद्धा मिथ्या, उसका ज्ञान करे वह ज्ञान भी मिथ्या, और राग है इसलिए आचरण भी मिथ्या, ऐसी बात है। जगत को कठिन पड़े ऐसी है। समझ में आया? ऐ.. मोहनभाई! ऐसा कठिन है। अभी क्या करना इसमें? भजन कर-करके मर गये।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। वह तो बोलने में कहाँ वहाँ बाधा है?

आहा..हा..! देखो न! मुनि ने कैसा लिखा है? **परमसुखपदार्थी भावयेद्भव्यलोकः।** आहा..हा..! इतने में तो कितना डाला! जो कोई सच्चे सुख का अर्थी हो। सच्चे सुख का। यह सब पैसा-वैसा और धूल में सुख माना, वह तो मूढ़ है। समझ में आया? धूल में कहाँ

सुख था ? पैसे में सुख है ? स्त्री में सुख है ? इज्जत में है ? वह तो सब जड़ है। कल्पना की है कि मुझे सुख है। वह तो मूढ़ है। सुख तो भगवान आत्मा में अन्तर त्रिकाल पड़ा है। आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का अर्थी। **भव्यसमूह,...** वापस अकेला भव्य नहीं। बहुत भव्य जीव। **शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** अकेला भगवान आत्मा नित्यानन्द की पहिचान करके... राग-विकल्प हो, वह भी पर है। शरीर की क्रिया तो जड़ है, वाणी की क्रिया जड़ है। मेरे राग में भी मैं नहीं और उस राग को जाननेवाली एक समय की पर्याय उतना, उसमें भी मैं नहीं। आहा..हा..! पर्याय का वजन नहीं, राग का नहीं और निमित्त का नहीं।

यहाँ तो एक शुद्ध आत्मा त्रिकाल आनन्दकन्द ध्रुव, एक को भावे। उसकी भावना करे अर्थात् एकाग्र हो। भावना अर्थात् कल्पना होगी ? कहो, भीखाभाई! भाई! मार्ग तो ऐसा है। आहा..हा..! यहाँ तो कहते हैं कि हमारी भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण होगा। हमें मानों तो कल्याण होगा। (इस बात से) यहाँ वीतराग इनकार करते हैं। वीतराग तो कहते हैं कि हमें मानोगे तो भी तुम्हें राग है। तुम तुम्हारे चैतन्य के स्वभाव के सन्मुख देखकर एकाग्र होओ, उसका नाम धर्म और मुक्ति का उपाय है। कहो, बसन्तीलालजी! गजब बात! ये गाथा हो गयी। लो, २७ हुई न ? अब २८वीं गाथा। यह तो जरा आत्मा का आया, इसलिए थोड़ा स्पष्ट किया है। है तो इसमें पुद्गल की व्याख्या में। २८वीं गाथा।

गाथा-२८

अण्णणिरावेक्खो जो परिणामो सो सहावपज्जाओ।
खंधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जाओ।।२८।।

अन्यनिरपेक्षो यः परिणामः स स्वभावपर्यायः।
स्कन्धस्वरूपेण पुनः परिणामः स विभावपर्यायः।।२८।।

पुद्गलपर्यायस्वरूपाख्यानमेतत्। परमाणुपर्यायः पुद्गलस्य शुद्धपर्यायः परम-पारिणामिकभावलक्षणः वस्तुगतषट्प्रकारहानिवृद्धिरूपः अतिसूक्ष्मः अर्थपर्यायात्मकः सादिसनिधनोऽपि परद्रव्यनिरपेक्षत्वाच्छुद्धसद्भूतव्यवहारनयात्मकः। अथवा हि एकस्मिन् समयेऽप्युत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वात् सूक्ष्मऋजुसूत्रनयात्मकः। स्कन्धपर्यायः स्वजातीय-बन्धलक्षणलक्षितत्वादशुद्ध इति।

पर्याय पर-निरपेक्ष जो उसको स्वभाविक जानिये।
जो स्कन्धपरिणति है उसे वैभाविकी पहिचानिये॥२८॥

गाथार्थ :—[अन्यनिरपेक्ष] अन्य निरपेक्ष (अन्य की अपेक्षारहित) [यः परिणामः] जो परिणाम, [सः] वह [स्वभावपर्यायः] स्वभावपर्याय है [पुनः] और [स्कन्धस्वरूपेण परिणामः] स्कन्धरूप परिणाम, [सः] वह [विभावपर्यायः] विभावपर्याय है।

टीका :—यह, पुद्गलपर्याय के स्वरूप का कथन है।

परमाणुपर्याय, पुद्गल की शुद्धपर्याय है, जोकि परमपारिणामिकभावस्वरूप है, वस्तु में होनेवाली छह प्रकार की हानि-वृद्धिरूप है, अतिसूक्ष्म है, अर्थपर्यायात्मक है और सादि-सान्त होने पर भी परद्रव्य से निरपेक्ष होने के कारण, शुद्धसद्भूतव्यवहारनयात्मक है अथवा एक समय में भी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक होने से सूक्ष्मऋजुसूत्रनयात्मक है।

स्कन्धपर्याय, स्वजातीय बन्धरूप लक्षण से लक्षित होने के कारण, अशुद्ध है।

गाथा-२८ पर प्रवचन

अण्णणिरावेक्खो जो परिणामो सो सहावपज्जाओ।
खंधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जाओ।।२८।।

नीचे श्लोक

पर्याय पर-निरपेक्ष जो उसको स्वभाविक जानिये।
जो स्कन्धपरिणति है उसे वैभाविकी पहिचानिये॥२८॥

यह परमाणु की व्याख्या है। जड़, जड़ का स्वतन्त्रपना बताते हैं। तेरे कारण वे परमाणु नहीं। परमाणु, परमाणु के गुण-पर्याय के कारण हैं। आहा..हा..! तो तू भी उनके कारण नहीं। तू तेरे गुण और पर्याय के तू रहता है, ऐसा कहते हैं। वाडीभाई!

यह, पुद्गलपर्याय के स्वरूप का कथन है। टीका है न! पुद्गल की पर्याय, हों! परमाणु की अवस्था। दो प्रकार की। **परमाणुपर्याय, पुद्गल की शुद्धपर्याय है,...** क्या कहते हैं? एक परमाणु है न? रजकण पृथक्-पृथक्। यह एक पाइन्ट इसमें शामिल है, वह पृथक् हो, तो वह **परमाणुपर्याय, पुद्गल की शुद्धपर्याय है, जो कि...** अब आया, देखो! **परमपारिणामिकभावस्वरूप...** परमाणु में और परमपारिणामिकभाव किसलिए लिया?

मुमुक्षु : परमाणु की पर्याय ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को भी परमपारिणामिक कहा। उसमें तो पंचम भाव आया था न? ऐसा कहते हैं। चार भाव उसे कहा है कि पंचम भाव उसे लेना। आत्मा में तो अभी है। ऐसा कहते हैं। परन्तु उस पंचम भाव का अर्थ, जगत में पाँच भाव है जीव में। ऐसे यह पंचम भाव परमाणु में है। आत्मा के त्रिकाली भाव में पंचम भाव है। यहाँ तो पर्याय को ही परमपारिणामिकभावस्वरूप कहा है।

मुमुक्षु : द्रव्यसंग्रह में कहा है...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ है न है। अनुभव करता है। आहा..हा..! अभी तो अपनी तो खबर न पड़े। परमाणु जड़, पृथक् कैसे वर्त रहे हैं, इसकी खबर नहीं होती।

कहते हैं, **परमपारिणामिकभावस्वरूप...** एक परमाणु अकेला पृथक्, पर्यायवाला वह परमाणु परमपारिणामिक है। **वस्तु में होनेवाली छह प्रकार की हानि-वृद्धिरूप है, अतिसूक्ष्म है, अर्थपर्यायात्मक है....** वह परमाणु में है, ऐसा कहते हैं। **और सादि-सान्त होने पर भी...** परमाणु की अवस्था एक समय में उत्पन्न होती है और दूसरे समय में नाश होती है, ऐसा **होने पर भी परद्रव्य से निरपेक्ष होने के कारण,...** परमाणु में यह पर्याय उत्पन्न-व्यय होने पर भी, पर की अपेक्षा बिना उत्पन्न-व्यय होती है। देखो।

शुद्धसद्भूतव्यवहारनयात्मक है... वह शुद्धनयस्वरूप है न। एक परमाणु, उसकी अकेली पर्याय वह शुद्ध है। सद्भूत अर्थात् अस्ति रखती है। एक समय की पर्याय है, इसलिये व्यवहारस्वरूप है। समझ में आया? जैसे आत्मा में आत्मा के अन्तर में से केवलज्ञान पर्याय होती है, वह पर्याय एक समय की है, सादि-सान्त है परन्तु शुद्ध है। सद्भूत है, व्यवहारनयस्वरूप है। ऐसे सब कितने पहलू सीखना? पण्डितजी!

यह एक परमाणु इसका। ये तो बहुत रजकणों का पिण्ड है। यह कहीं आत्मा नहीं है तथा यह कोई एक चीज़ नहीं है। यह तो बहुत रजकण इकट्ठे होकर ऐसा हुआ है। इसमें का एक रजकण पृथक्, वह शुद्ध परमाणु की पर्याय है। पर्याय अर्थात् अवस्था। उसमें षट्गुण हानि-वृद्धि की पर्याय होने पर भी एक समय की पर्याय सादि-सान्त है। पर्याय उत्पन्न हो और व्यय हो, उत्पन्न हो और व्यय हो, तथापि परद्रव्य से निरपेक्ष होने से, उसे परद्रव्य का सम्बन्ध नहीं; इसलिए शुद्ध कहलाती है। पर का सम्बन्ध नहीं, इसलिए शुद्ध। अपनी है, इसलिए सद्भूत, एक अंश है, इसलिए व्यवहार। अरे! इसमें...

मुमुक्षु : इसमें नय का क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नय का ज्ञान, इसकी पर्याय कैसा विषय है? द्रव्य कितना विषय है, उसे जानना चाहिए या नहीं? परमाणु त्रिकाली है या पंचम पारिणामिक, वह तो निश्चयनय का विषय है। परमाणु त्रिकाल है, वह निश्चयनय का विषय है। पर्याय है, वह व्यवहारनय का विषय है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय है या नहीं उसकी? उसकी पर्याय है न, वह पारिणामिकभाव की पर्याय है। पर्याय है, इसलिए सद्भूत हो गयी, व्यवहार हो गया,

व्यवहार हो गया। परन्तु है तो पारिणामिकभाव की पर्याय। वहाँ उसे कहाँ उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक है। सूक्ष्म बात है। जैनदर्शन का वीतरागी परमात्मा ने कहे हुए मार्ग को समझना भारी कठिन है। सूक्ष्म बात है। और यह समझे बिना चार गति का भ्रमण बदलनेवाला नहीं है। बाहर की क्रिया कर-करके मर जाये। समझ में आया?

एक समय में भी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक होने से सूक्ष्मऋजुसूत्रनयात्मक है। इसे और इसे। एक समय की पर्याय होने से सादि-सान्त, परद्रव्य से निरपेक्ष होने से शुद्धसद्भूतव्यवहार स्वरूप, परन्तु एक समय में तीन इकट्ठे होने से सूक्ष्मऋजुसूत्रनयस्वरूप भी कहने में आता है। **स्कन्धपर्याय, स्वजातीय बन्धरूप लक्षण से लक्षित होने के कारण, अशुद्ध है।** दो भाग है न। पुद्गलपर्याय का स्वरूप दिखाना है। पाठ में विभावपर्याय है न? **खंधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जाओ** यह स्कन्ध है। यह सब इकट्ठा है। यह सब पिण्ड है।

यह **स्वजातीय बन्धरूप...** परमाणु और परमाणु को एकरूप रहने का। **लक्षण से लक्षित होने के कारण, अशुद्ध है।** लो, विभाव है, ऐसा कहते हैं। वहाँ पाठ में विभाव शब्द डाला है। इसमें अशुद्ध डाला है। आहा..हा..! परमाणु में भी शुद्ध और स्कन्ध में जाये तो अशुद्ध, ऐसे दो प्रकार हैं। ऐसे भगवान आत्मा रागादि में जाये तो भी अशुद्ध है और स्वभाव में आवे तो वह शुद्धपर्याय है। समझ में आया?

श्लोक-४२

(अब, टीकाकार मुनिराज, २८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहते हैं:)

(मालिनी)

पर-परिणति-दूरे शुद्ध-पर्याय-रूपे,
सति न च परमाणोः स्कन्धपर्यायशब्दः।
भगवति जिननाथे पञ्चबाणस्य वार्ता,
न च भवति यथेयं सोऽपि नित्यं तथैव।।४२।।

(वीरछन्द)

पर-परिणति से दूर शुद्ध पर्यायरूप ही होने से।
परमाणु को शब्दरूप स्कन्ध अवस्था नहिं होवे॥
जिस प्रकार जिन-परमेश्वर में कामदेव की बात नहीं।
उस प्रकार परमाणु नित्य में कभी शब्द की बात नहीं॥४२॥

***श्लोकार्थ :*—(परमाणु) पर-परिणति से दूर, शुद्धपर्यायरूप होने से, परमाणु को स्कन्धपर्यायरूप शब्द नहीं होता। जिसप्रकार भगवान जिननाथ में कामदेव की वार्ता नहीं होती; उसी प्रकार परमाणु भी सदा अशब्द ही होता है (अर्थात्, परमाणु को भी कभी शब्द नहीं होता)॥४२॥**

श्लोक-४२ पर प्रवचन

४२ (श्लोक)

पर-परिणति-दूरे शुद्ध-पर्याय-रूपे,
सति न च परमाणोः स्कन्धपर्यायशब्दः।
भगवति जिननाथे पञ्चबाणस्य वार्ता,
न च भवति यथेयं सोऽपि नित्यं तथैव॥४२॥

नीचे अर्थ है। **(परमाणु) पर-परिणति से दूर,...** एक रजकण है, उसमें पर्याय होती है, वह परपरिणति से दूर है, इसलिए **शुद्धपर्यायरूप होने से, परमाणु को स्कन्धपर्यायरूप शब्द नहीं होता।** परमाणु में शब्दरूप स्कन्ध नहीं होता। बहुत परमाणु इकट्ठे हों, तब यह वाणी निकलती है। एक परमाणु में शब्द नहीं। **जिसप्रकार भगवान जिननाथ में कामदेव की वार्ता नहीं होती;...** दृष्टान्त दिया। वीतराग परमात्मा को पाँच इन्द्रिय के भोगों की-काम की वासना नहीं होती। **वार्ता नहीं होती;...** वीतराग पूर्णानन्दस्वरूप। **उसी प्रकार परमाणु भी सदा अशब्द ही होता है (अर्थात्, परमाणु को भी कभी शब्द नहीं होता)।** कहो समझ में आया?

गाथा-२९

पोग्गलदव्वं उच्चइ परमाणू णिच्छएण इदरेण।
पोग्गलदव्वो त्ति पुणो ववदेसो होदि खंधस्स।।२९।।

पुद्गल-द्रव्य-मुच्यते परमाणुर्निश्चयेन इतरेण।
पुद्गलद्रव्यमिति पुनः व्यपदेशो भवति स्कन्धस्य।।२९।।

पुद्गलद्रव्यव्याख्यानोपसंहारोऽयम्। स्वभावशुद्धपर्यायात्मकस्य परमाणोरेव पुद्गल-द्रव्यव्यपदेशः शुद्धनिश्चयेन। इतरेण व्यवहारनयेन विभावपर्यायात्मनां स्कन्धपुद्गलानां पुद्गलत्वमुपचारतः सिद्धं भवति।

'परमाणु पुद्गल द्रव्य है' यह कथन निश्चयनय करे।
व्यवहारनय की रीति है, वह स्कन्ध को पुद्गल कहे॥२९॥

गाथार्थ :—[निश्चयेन] निश्चय से [परमाणुः] परमाणु को [पुद्गलद्रव्यम्] 'पुद्गलद्रव्य' [उच्यते] कहा जाता है [पुनः] और [इतरेण] व्यवहार से [स्कन्धस्य] स्कन्ध को [पुद्गलद्रव्यम् इति व्यपदेशः] 'पुद्गलद्रव्य', ऐसा नाम [भवति] होता है।

टीका :—यह, पुद्गलद्रव्य के कथन का उपसंहार है।

शुद्धनिश्चयनय से स्वभावशुद्धपर्यायात्मक परमाणु को ही 'पुद्गलद्रव्य', ऐसा नाम होता है। अन्य ऐसे व्यवहारनय से विभावपर्यायात्मक स्कन्धपुद्गलों को पुद्गलपना, उपचार द्वारा सिद्ध होता है।

गाथा-२९ पर प्रवचन

पोग्गलदव्वं उच्चइ परमाणू णिच्छएण इदरेण।
पोग्गलदव्वो त्ति पुणो ववदेसो होदि खंधस्स।।२९।।

'परमाणु पुद्गल द्रव्य है' यह कथन निश्चयनय करे।
व्यवहारनय की रीति है, वह स्कन्ध को पुद्गल कहे॥२९॥

यह, पुद्गलद्रव्य के कथन का उपसंहार है। अब यहाँ पूरा होता है। **शुद्धनिश्चयनय से स्वभावशुद्धपर्यायात्मक परमाणु को ही...** देखो! **शुद्धनिश्चयनय से स्वभावशुद्ध-पर्यायात्मक परमाणु...** पर से भिन्न, ऐसी निर्मल पर्यायवाले को पुद्गलद्रव्य कहा गया है। उस स्कन्ध को पुद्गल कहना, वह तो उपचारिक है। वे तो सब जड़ इकट्ठे हुए हैं। अकेला परमाणु (हो), उसे स्वभावशुद्धपर्याय, उसे वास्तव में पुद्गलद्रव्य कहा है। आहा..हा..! जैसे आत्मा को पुण्य-पाप के रागरहित ही निर्मल पर्यायसहित आत्मा को आत्मा कहने में आता है। आहा..हा..!

जैसे परमाणु को... कहते हैं कि शुद्धनिश्चय अपनी सत्ता का अस्तित्व। स्वभावशुद्ध -पर्यायस्वरूप होने से से परमाणु को पुद्गलद्रव्य कहते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा को कैसे कहना आत्मा को? (ऐसे) कि राग और पुण्यरहित स्वभाव शुद्ध है, उसका भान हुआ, ऐसी पर्यायसहित का जो आत्मा, उसे आत्मा कहा जाता है। दया, दान, भक्ति का विकल्प, वह आत्मा नहीं है; वह अनात्मा है। समझ में आया? २३ घण्टे के पाप करे और फिर एक घण्टे रहे थोड़ा सा पढ़े और या आधे घण्टे-घण्टे भक्ति कर ले, हो जायेगा कल्याण! आहा..हा..! ऐसे के ऐसे अवतार अनन्त किये, व्यर्थ गये। एक तो बाहर में मानो धूल के पैसे और इज्जत में सुख मानकर मिथ्यात्व का सेवन किया। मूढ़ता (की)। उसमें फिर यहाँ भक्ति में भाव करके धर्म माना, वह मिथ्यात्व का पोषण है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : .....भक्ति करे, उसे कम मूढ़ता होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पूरी मूढ़ता है। राग को धर्म माननेवाला पूरी मूढ़ता मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : व्यवहार से तो कम है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व कम-ज्यादा का प्रश्न यहाँ नहीं है।

मुमुक्षु : मन्द हो या तीव्र, दोनों एक जाति है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक जाति है। सूक्ष्म बात है, भाई!

ऐसा नाम होता है। देखो! शुद्धनिश्चय से अन्तर वस्तु से देखें तो **स्वभाव-शुद्धपर्यायात्मक परमाणु को ही 'पुद्गलद्रव्य',...** कहते हैं। इस पैसे को, स्त्री, पुत्र के शरीर को, दान, भात को पुद्गल कहना, वह तो व्यवहार है, कहते हैं। क्योंकि इकट्ठे हुए को पुद्गल कहे। अकेला परमाणु उसे वास्तविक पुद्गल कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : जैसे शुद्ध परमाणु को द्रव्य कहा, वैसे आत्मा को.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, आत्मा की बात हुई न। राग से, पुण्य से, विकल्प से भिन्न। अपनी पर्याय से आत्मा का भान हुआ तो ऐसा शुद्ध आत्मा है, उसे शुद्ध कहा। पर्याय तो अनुभव है, उस सहित को आत्मा कहने में आता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्ध परिणमे, तब त्रिकाल शुद्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध परिणमे, तब त्रिकाल शुद्ध का भान हुआ कहलाये न! इसके बिना कहाँ से हुआ।

मुमुक्षु : उस पर्याय सहित।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय सहित त्रिकाली शुद्धता। आत्मा उसे कहते हैं, क्योंकि शुद्धता की पर्याय, उसका अपना स्वभाव है। त्रिकाली स्वभाव और एक समय का पर्याय स्वभाव शुद्ध, उसे आत्मा कहने में आता है। यह आया न? अनुभूति से भिन्न। नहीं कहा? राग आदि से भिन्न, अनुभूति से भिन्न, तो अनुभूति की पर्यायवाला जो आत्मा, उसे आत्मा कहने में आता है। कितना बोल है? २९। गजब बातें, भाई! आहा..हा..!

भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि जिसे शरीर, वाणी, मन, दया, दान, व्रत के विकल्प से भिन्न अनुभूति में वह विकल्प नहीं आता। अनुभव में तो वह आत्मा आता है। ऐसी अनुभूति से भिन्न होने के कारण दूसरे सबको पुद्गल कहा जाता है। अनुभूतिसहित आत्मा को आत्मा कहा जाता है। क्या हो? जगत लुटाया है। एक तो संसार के पाप के नाम से पूरी जिन्दगी लुटाता है, उसमें धर्म के नाम से दूसरे प्रकार से लुटता है। आहा..हा..! अरे रे! आत्मा का क्या होगा? यहाँ से निकलकर कहाँ जायेगा? और इसके सच्चे भाव या मिथ्या क्या है, इसकी खबर नहीं होती। निर्धन, अनाथ, अरक्षक, दु:खी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसीलिए कहा है, आत्मा को शीघ्रता से...

पूज्य गुरुदेवश्री : पराधीन है, पराधीन।

'पुद्गलद्रव्य', ऐसा नाम होता है। अन्य ऐसे व्यवहारनय से विभावपर्यायात्मक स्कन्धपुद्गलों को पुद्गलपना, उपचार द्वारा सिद्ध होता है। लो, समझ में आया?

श्लोक-४३

(अब, २९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, तीन श्लोक कहते हैं —)

(मालिनी)

इति जिनपतिमार्गाद् बुद्धतत्त्वार्थजातः,
त्यजतु पर-मशेषं चेतनाचेतनं च।
भजतु परम-तत्त्वं चिच्चमत्कार-मात्रं,
परविरहितमन्तर्निर्विकल्पे समाधौ।।४३।।

(वीरछन्द)

इस प्रकार जिनवचनों द्वारा जानो तुम तत्त्वार्थ समूह।
जो अपने से भिन्न सदा, त्यागो वह चित्त-अचित्त समूह॥
अन्तरंग में निर्विकल्प होकर समाधि में लीन रहो।
पर से जो है भिन्न परम चित्-चमत्कार निज तत्त्व भजो॥४३॥

श्लोकार्थ :—इस प्रकार जिनपति के मार्ग द्वारा तत्त्वार्थसमूह को जानकर, पर ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को त्यागो; अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में परविरहित (पर से रहित) चित्चमत्कारमात्र परमतत्त्व को भजो॥४३॥

श्लोक-४३ पर प्रवचन

(अब, २९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, तीन श्लोक कहते हैं —)

इति जिनपतिमार्गाद् बुद्धतत्त्वार्थजातः,
त्यजतु पर-मशेषं चेतनाचेतनं च।
भजतु परम-तत्त्वं चिच्चमत्कार-मात्रं,
परविरहितमन्तर्निर्विकल्पे समाधौ।।४३।।

४३, इसका नीचे अर्थ है। है इस ओर ? ६२ पृष्ठ पर।

इस प्रकार जिनपति के मार्ग द्वारा... वीतराग भगवान का यह मार्ग है, कहते हैं। जिनपति, जिनेश्वरदेव वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा के **मार्ग द्वारा तत्त्वार्थसमूह को जानकर,...** इन भगवान के कहे हुए ऐसे तत्त्व को जानकर। अज्ञानी ने कहे हुए, वे नहीं। तत्त्वसमूह है न ? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। **जिनपति के मार्ग द्वारा...** वीतराग कथित, सर्वज्ञ ज्ञान में आयी हुई बात। उनके कहे हुए **तत्त्वार्थसमूह को जानकर,...** देखो, पहले जाने तो सही कि आत्मा शुद्ध है, रागादि अशुद्ध है, कर्म जड़ है, वाणी, शरीर अजीव है, उन्हें और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह पैसा और स्त्री, पुत्र का मेरे साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वे तो अजीव हैं, जगत की जड़ चीज़ है। वे द्रव्य अपनेरूप से होकर रहे हैं। शरीर, शरीर की अवस्थारूप से जड़ होकर रहा हुआ है, वह कहीं आत्मा की पर्याय होकर शरीर रहा हुआ नहीं है। पैसा अजीव होकर रहा हुआ है, वह आत्मा की दशा होकर नहीं रहा है, आत्मा का होकर नहीं रहा है। समझ में आया ? आहा..हा..! जैसे जो होकर रहे हैं, वैसे उन्हें बराबर जानना, ऐसा कहते हैं।

यह शरीर तो अजीव होकर रहा हुआ है। आत्मा का होकर रहा है ? आत्मा अरूपी है तो यह अरूपी हो जाये। यह तो रूपी होकर रहा हुआ, जड़ होकर रहा हुआ है। लक्ष्मी जड़ होकर रही हुई है, वाणी जड़ होकर रही हुई है। ऐसे जड़ के तत्त्व को उस रीति से रहे हुए जानकर; आत्मा, आत्मा का होकर रहा हुआ है। इसी प्रकार ये पुण्य और पाप के भाव

होकर रहे हैं, वे आस्रव, बन्ध, राग और दु:ख है। उनसे रहित भगवान आत्मा रागरहित होकर रहा, वह आत्मा है।

जिनपति के मार्ग द्वारा... वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने जो मार्ग कहा, उस **तत्त्वार्थसमूह को जानकर,...** अन्यमत में, जैन के अतिरिक्त (में) ऐसे तत्त्व नहीं होते। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त कहीं यह बात नहीं होती। समझ में आया? **पर ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को त्यागो;...** देखो! परचेतन देव-गुरु का आत्मा चेतन, स्त्री-पुत्र का आत्मा चेतन, उसे दृष्टि में से त्यागो। वे मुझमें नहीं। **पर ऐसे समस्त चेतन...** पर हैं न चेतन? सिद्धभगवान आत्मा से पर हैं, अरिहन्त भगवान इस आत्मा से पर हैं। आहा..हा..! पंच परमेष्ठी पर आत्मा हैं। इसके कहाँ हैं?

ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को... राग आदि पुद्गल को दृष्टि में से त्यागो। आहा..हा..! जो तुझमें नहीं, उसकी दृष्टि छोड़ - ऐसा कहते हैं। तुझमें है, वहाँ दृष्टि को स्थापित कर। इस अस्तित्व में तेरा अस्तित्व है। आहा..हा..! अभी तो इतनी त्याग की व्याख्या की। यह त्याग है। बाहर का त्याग स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठे और त्यागी हो गये। धूल में भी वह त्याग नहीं है। अन्तर में इस आत्मा के अतिरिक्त सब आत्मायें निगोद से लेकर सिद्ध परमात्मा, अरिहन्त, पंच परमेष्ठी आदि मेरे नहीं हैं; वे मुझसे रहे हुए नहीं हैं; वे रहे हैं, इसलिए मुझे कुछ लाभ नहीं है। समझ में आया? इसमें किसे बाकी रखा? **समस्त चेतन और अचेतन को त्यागो;...** इसमें किसे बाकी रखा?

मुमुक्षु : सब आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गये। गिरनार पर्वत, सम्मेदशिखर, सब आ गया? भगवान का समवसरण और भगवान स्वयं। भगवान ने कहे हुए तत्त्वार्थ के समूह को जानकर, पर **ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को त्यागो;...** अर्थात् उनके प्रति लक्ष्य छोड़ दो। वे कोई तेरे नहीं हैं, तुझमें नहीं है, तू वहाँ नहीं है। आहा..हा..! गजब काम।

अब तू कौन है? **अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में परविरहित (पर से रहित) चित्चमत्कारमात्र परमतत्त्व को भजो।** अन्तरंग में। अन्तर अंग में - वस्तु में। निर्विकल्प भेदरहित अभेद वस्तु भगवान आत्मा। निर्विकल्प समाधि शान्ति **में परविरहित...** शान्ति के

समय में, ऐसा कहते हैं। **अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में परविरहित (पर से रहित)...** विकल्प से रहित **चित्चमत्कारमात्र परमतत्त्व को... अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में परविरहित (पर से रहित) चित्चमत्कारमात्र परमतत्त्व को भजो।** गजब बात, भाई! क्या कहा? अभी तो अर्थ समझना मुश्किल पड़े।

जिनपति के मार्ग द्वारा... वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग, उसके **तत्त्वार्थसमूह को जानकर, पर ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को...** एक रजकण और राग सब अचेतन को छोड़ो। अब क्या करना? **अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में...** राग में तो पर है, ऐसी दृष्टि थी। अब समाधि में रागरहित अन्तर्मुख होकर अभेद समाधि में परविरहित-राग और विकल्प से रहित-ऐसा चित्चमत्कारमात्र तत्त्व भगवान आत्मा को भजो। उसमें अन्दर एकाग्र होओ। वह मुक्ति का मार्ग-धर्म है। भीखाभाई! गजब बात, भाई! यह तो आत्मा को भजो, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : जी, जी, प्रभु बराबर सत्य है। भगवान! आप बोलो वह तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह अन्दर है या नहीं? यह पाठ कहाँ यहाँ का है? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य का है। दो हजार वर्ष पहले के कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं) और अनन्त काल से ऐसा मुनि कहते आये हैं। यह तो नियमसार शास्त्र है। कुन्दकुन्दाचार्य निमित्त थे। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वे तो ऐसा कहते हैं, हम तो आपको पहिचानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इसमें है, ये किसका है, ऐसा कहना है। आहा..हा..!

दो बातें हुई। अब वापस दो की उड़ाते हैं। भगवान! तुझे करना करना हो, हित करना हो, धर्म करना हो तो रागादि परिणाम सब अचेतन हैं। भगवान की भक्ति का भाव / राग, वह अचेतन है, उसका भी लक्ष्य छोड़। मेरे शरीर के परमाणु अच्छे रहें तो धर्म हो, यह भी लक्ष्य छोड़ दे।

अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में... अर्थात् अन्तर में रागरहित शान्ति और श्रद्धा की दशा में। **परविरहित...** रागरहित अपना चैतन्यचमत्कार तत्त्व, ऐसे **परमतत्त्व को भजो।** चैतन्य चित्चमत्कारमात्र। इस भगवान आत्मा में तो अकेला ज्ञानमात्र चमत्कार स्वभाव है।

बाकी कोई दया, दान व्रत विकल्प, वे वस्तु में नहीं हैं। समझ में आया ? परन्तु गजब काम, भाई ! सीधे यह ? पहला उपाय क्या होगा ? यह उपाय है। इससे पहले, पहले कुछ करना या नहीं ? सीधे यह ? यह ही है।

मुमुक्षु : .....तत्त्वार्थ को जानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना। आहा..हा..!

राग का क्या स्वरूप है ? वस्तु का क्या स्वभाव है ? धर्म की दशा होती है तो, उसका स्वरूप क्या है ? निमित्तरूप से विकार में कौन चीज़ है ? परवस्तु क्या है ? स्ववस्तु क्या है ? उसे बराबर भगवान के कहे हुए मार्ग से जानना चाहिए। जानकर अचेतन का त्याग और चेतन का ग्रहण (करना) - ऐसा कहते हैं। चैतन्य भगवान आनन्दस्वरूप का भजन कर अर्थात् उसमें एकाकार हो और पर का लक्ष्य छोड़ दे। तब धर्म की शुरुआत होगी। लो, यहाँ तक आया। फिर तो कहते हैं, चेतन और अचेतन के दोनों के विकल्प भी मुनि को -धर्मी को नहीं होते। यह चेतन, यह तो शुरुआत में विचार आता है कि मैं यह चेतन हूँ और रागादि अचेतन हैं। पश्चात् तो दो के विकल्प भी अभ्यास से—अन्तर के धर्म के ध्यान के अभ्यास से वे दो विकल्प नहीं होते। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्लोक-४४

(अनुष्टुप्)

पुद्गलोऽचेतनो जीवश्चेतनश्चेति कल्पना।
साऽपि प्राथमिकानां स्यान्न स्यान्निष्पन्नयोगिनाम् ।।४४।।

(वीरछन्द)

पुद्गल द्रव्य अचेतन हैं अरु जीव सदा रहता चेतन।
यह विकल्प हो प्रथम भूमि में, करें न योगी जन निष्पन्न ।।४४।।

श्लोकार्थ :—**पुद्गल, अचेतन है और जीव, चेतन है - ऐसी जो कल्पना वह भी प्राथमिकों को (प्रथम भूमिकावालों को) होती है; निष्पन्न योगियों को नहीं होती (अर्थात्, जिनका योग परिपक्व हुआ है, उनको नहीं होती)।।४४।।**

प्रवचन-३१, श्लोक-४४-५१, गाथा-३०-३४ शुक्रवार, चैत्र शुक्ल ७, दिनांक ०२-०४-१९७१

नियमसार, अजीव अधिकार।

पुद्गलोऽचेतनो जीवश्चेतनश्चेति कल्पना।
साऽपि प्राथमिकानां स्यान्न स्यान्निष्पन्नयोगिनाम्।।४४।।

पुदगल की व्याख्या आयी न ? छह प्रकार के स्कन्ध और परमाणु स्वभावपर्याय। स्वभाव और विभावपर्याय इत्यादि बहुत आया। कहते हैं कि हो जगत में पुद्गल। **पुद्गल...** और रागादि **अचेतन है और जीव, चेतन है...** जानने-देखनेवाला जीव भगवान आत्मा है। राग से लेकर परमाणु आदि सब अचेतन हैं। **ऐसी जो कल्पना, वह भी प्राथमिकों को (प्रथम भूमिकावालों को) होती है;....** शुरुआत में जिन्हें भेद करना है अथवा भेद करके ध्यान करना है, उन्हें यह होता है कि रागादि पर अचेतन हैं, आत्मा चेतन है। शुरुआत में जीव को ये विचार होते हैं।

निष्पन्न योगियों को नहीं होती... अर्थात् ? अन्तर में जहाँ रमणता उग्ररूप से प्रगट हो गयी है। स्वभावसन्मुख की, वीतरागभावपने की स्थिरता प्रगट हुई है, उसे यह कल्पना नहीं होती कि यह अचेतन राग है और चेतन मैं हूँ। वे तो ज्ञातादृष्टारूप से परिणमते हैं। ऐसा जीव का स्वभाव है कि जानना-देखना। जैसे सिद्धभगवान जानते-देखते हैं; इसी प्रकार यह भी जीव जानने-देखने के स्वभावस्वरूप है। उसमें जो स्थिररूप से बहुत जमा नहीं है, उसे यह अचेतन और चेतन, ऐसे दो भाग के विकल्प / कल्पना होती है। ज्ञान और आनन्दस्वभाव में जहाँ लीनता जमी, योग अर्थात् अन्तर की एकाग्रता की प्राप्ति हुई, ऐसे सन्तों को यह कल्पना नहीं होती। आहा..हा..! कहो, समझ में आया ?

यह सार निकाला। पुद्गल हैं, छह प्रकार के स्कन्ध हैं। स्वाभाविक कारणपरमाणु हैं, कार्यपरमाणु हैं, जघन्य-उत्कृष्ट परमाणु हैं। हों; उनके साथ मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है।

मात्र विचार में पहले यह आवे कि यह राग आदि कल्पना है, वह अचेतन, उसे जानने प्रकार का, और मैं एक चेतन हूँ तो मेरे चेतन में मुझे स्थिर होना चाहिए, यह वस्तु का स्वरूप है। इस प्रकार पहली कल्पना... योग अर्थात् स्वरूप की जमावट जहाँ अन्दर नहीं हुई, उसे ऐसी कल्पना पहले होती है।

निष्पन्न योगियों को नहीं... जिन्हें आत्मा और राग की भिन्नता उग्ररूप से होकर पक्का योग अर्थात् एकाग्रता हो गयी है। स्वभाव में जहाँ उग्र एकाग्रता हुई है, उन्हें यह कल्पना नहीं होती कि यह पुद्गल अचेतन है और मैं चेतन हूँ। इसका नाम स्वभावसन्मुख की लीनता, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा..! समझ में आया? यह ४४ वें श्लोक में कहा।

मुमुक्षु : प्राथमिक अर्थात् मिथ्यादृष्टि?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि। सम्यग्दृष्टि है परन्तु अभी यह अचेतन है और यह चेतन है, ऐसी जहाँ विचार की धारा चलती है, तब तक उसे निष्पन्न-स्थिरता नहीं हुई। है समकिती। समझ में आया?

मुमुक्षु : समकिती को प्राथमिक कहा जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अभी विकल्प है न।

मुमुक्षु : प्राथमिक को अप्राप्त कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्राथमिक को प्राप्त ही है परन्तु विकल्प है, ऐसे स्थान में यह अचेतन है, मैं चेतन हूँ, ऐसा भाव आता है।

मुमुक्षु : .....प्राथमिक में आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्राथमिक में नहीं। वह जम गये हैं। यह विकल्प, विकल्प के जगह है। अन्तर की दृष्टि में मुझे कुछ है नहीं, ऐसे जम गये हैं। वीतरागता जमी है। ओहो..हो..! जिनेन्द्र स्वरूपरूप ऐसा आत्मा, (उसमें) जम गये हैं। यहाँ तो एक बात (करते हैं कि) पहली कल्पना ऐसी होती है। स्वरूप में स्थिरता होने पर वह नहीं होती। इतनी बात सिद्ध की। समकिती और मुनि, सबकी। ४५ वाँ श्लोक।

श्लोक-४५

(उपेन्द्रवज्रा)

अचेतने पुद्गलकायकेऽस्मिन् सचेतने वा परमात्मतत्त्वे।
न रोषभावो न च रागभावो भवेदियं शुद्धदशा यतीनाम्।।४५।।

(वीरछन्द)

जड़ पुद्गल तन में न द्वेष, नहिं चेतन परमात्मा में राग।
ऐसी शुद्ध दशा यतियों की होती, वे रहते वीतराग।।४५।।

श्लोकार्थ :—**(शुद्धदशावाले यतियों को) इस अचेतन पुद्गलकाय में द्वेषभाव नहीं होता या सचेतन परमात्मतत्त्व में रागभाव नहीं होता — ऐसी शुद्धदशा यतियों की होती है।।४५।।**

श्लोक-४५ पर प्रवचन

अचेतने पुद्गलकायकेऽस्मिन् सचेतने वा परमात्मतत्त्वे।
न रोषभावो न च रागभावो भवेदियं शुद्धदशा यतीनाम्।।४५।।

आहा..हा..! **(शुद्धदशावाले यतियों को) इस अचेतन पुद्गलकाय में द्वेषभाव नहीं होता....** यह नहीं... यह नहीं... ऐसा। समझ में आया? ऐसा भाव नहीं होता। द्वेष नहीं। वे तो ज्ञातादृष्टा हैं। आहा..हा..! शुद्धदशा सच्चे सन्त को, सच्चे मुनि को **इस अचेतन पुद्गलकाय में द्वेषभाव नहीं होता....** अर्थात् कि यह मैं नहीं, ऐसा भी जिन्हें द्वेष नहीं होता। **सचेतन परमात्मतत्त्व में रागभाव नहीं होता....** परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर सचेतन है। उनमें भी रागभाव नहीं होता। वीतरागभाव में स्थित हो गये हैं, ऐसा कहते हैं।

ऐसी शुद्धदशा यतियों की होती है। देखो! यह यति। यह यति कहलाते होंगे वे? यह तो यति कहा है। जिसे आनन्दस्वरूप ज्ञानभाव अनुभव में आया है और उसमें-यत्न में, उसके यत्न में वर्तता है। जिसे एकदम आत्मस्वभाव, समभाव प्रगट हुआ है, ऐसा उसे

परमात्मा के प्रति राग नहीं, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर के प्रति राग नहीं और पुद्गल के प्रति द्वेष नहीं। आहा..हा..! कहो, समझ में आया?

अचेतन पुद्गलकाय में द्वेषभाव नहीं होता या सचेतन परमात्मतत्त्व में रागभाव नहीं होता... ये मेरे परमेश्वर हैं—परमात्मा हैं, ऐसा राग नहीं होता। आहा..हा..! पहले हो, परन्तु वह आदरणीय नहीं है। यह तो न हो, वहाँ आगे अकेला समभाव वर्तता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **ऐसी शुद्धदशा यतियों की....** मुनियों की (होती है)। आत्मध्यान में मस्त हैं। आहा..हा..! समभाव। दुनिया पूरी डोले तो भी वहाँ विषमभाव-विकल्प नहीं उठता। आहा..हा..! इन्द्रों की अनुकूलता आयी हो तो भी कहते हैं कि राग नहीं। प्रतिकूलता, निन्दा की झड़ी बरसती हो तो द्वेष नहीं। वह पुद्गल है। समझ में आया? और जिनके समीप में परमात्मा की उपस्थिति हो, राग नहीं। ऐसा आत्मा रागरहित स्वभाव में समस्थितिपने को प्राप्त है, वह यतियों की दशा है।

नीचे भले राग हो, परन्तु दृष्टि में वह आदरणीय नहीं होता। यहाँ तो वह राग ही नहीं है अब, ऐसा कहते हैं। अस्थिरता ही जहाँ गयी है। नीचे गुणस्थान में परमात्मा के प्रति विकल्प और यह नहीं, यह नहीं हो - ऐसा द्वेष का अंश भी आता है। उस अस्थिरता के द्वेष और अस्थिरता के भाव जहाँ छूट गये हैं, वहाँ आगे तो समभाव... समभाव... वीतरागी बिम्ब होकर पड़े हैं, कहते हैं। आहा..हा..! निन्दा की झड़ी में द्वेष नहीं और साक्षात् परमात्मा हों तो उन्हें सुनने का भी विकल्प और राग नहीं। समझ में आया? ऐसी आत्मा के प्रति समस्थिति है। उसका स्वरूप ही समभावी है। ऐसी दशा में समभाव प्रगट हुआ, उसे दोनों में समतौल-ज्ञातादृष्टा है। पुद्गल हो या परमात्मा हो, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ऐसे पुरुष दिखते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा..! साधु की दशा... समझ में आया?

ऐसी **शुद्धदशावाले यतियों की होती है।** अभी तो सम्यग्दर्शन क्या है? श्रद्धा में भी उस परमात्मा का राग और अचेतन के प्रति द्वेष करनेयोग्य नहीं है, ऐसा श्रद्धा में हो जाता है। अस्थिरता होती है। इन समभावी सन्तों को वह अस्थिरता भी नहीं होती, ऐसी बात है। समझ में आया? अब ३०वीं गाथा। पुद्गल की व्याख्या की। अब धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश। छह द्रव्य की व्याख्या है न?

गाथा-३०

गमणणिमित्तं धम्ममधम्मं ठिदि जीवपोग्गलाणं च।
अवगहणं आयासं जीवादी-सव्व-दव्वाणं।।३०।।

गमननिमित्तो धर्मोऽधर्मःस्थितेः जीवपुद्गलानां च।
अवगाहनस्याकाशं जीवादि-सर्व-द्रव्याणाम्।।३०।।

धर्माधर्माकाशानां सङ्क्षेपोक्तिरियम्। अयं धर्मास्तिकायः स्वयं गतिक्रियारहितः दीर्घिकोदकवत्। स्वभावगतिक्रियापरिणतस्यायोगिनः पञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारणमात्रस्थितस्य भगवतः सिद्धनामधेययोग्यस्य षट्कापक्रमविमुक्तस्य मुक्तिवामलोचनालोचनगोचरस्य त्रिलोकशिखरि-शेखरस्य अपहस्तितसमस्तक्लेशावासपञ्चविधसन्सारस्य पञ्चमगतिप्रान्तस्य स्वभावगतिक्रियाहेतुः धर्मः, अपि च षट्कापक्रमयुक्तानां सन्सारिणां विभावगतिक्रियाहेतुश्च। यथोदकं पाठीनानां गमनकारणं तथा तेषां जीवपुद्गलानां गमनकारणं स धर्मः। सोऽयममूर्तः अष्टस्पर्शविनिर्मुक्तः वर्णरसपञ्चकगन्धद्वितयविनिर्मुक्तश्च अगुरुकलघुत्वादिगुणाधारः लोकमात्राकारः अखण्डैकपदार्थः। सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाश्चेति वचनादस्य गतिहेतोर्धर्मद्रव्यस्य शुद्धगुणाः शुद्धपर्याया भवन्ति। अधर्मद्रव्यस्य स्थितिहेतुर्विशेषगुणः। अस्यैव तस्य धर्मास्तिकायस्य गुणपर्यायाः सर्वे भवन्ति। आकाशस्यावकाशदानलक्षणमेव विशेषगुणः। इतरे धर्माधर्मयोर्गुणाः स्वस्यापि सदृशा इत्यर्थः। लोकाकाशधर्माधर्माणां समानप्रमाणत्वे सति न ह्यलोकाकाशस्य ह्रस्वत्वमिति।

जो जीव-पुद्गल, गमन-स्थिति में हेतु धर्म अधर्म है।
आकाश जो सब द्रव्य का, अवकाश हेतुक द्रव्य है॥३०॥

गाथार्थ :—[धर्मः] धर्म, [जीवपुद्गलानां] जीवपुद्गलों को [गमननिमित्तः] गमन का निमित्त है [च] और [अधर्मः] अधर्म, [स्थितेः] (उन्हें) स्थिति का निमित्त है; [आकाशं] आकाश, [जीवादिसर्वद्रव्याणाम्] जीवादि सर्व द्रव्यों को [अवगाहनस्य] अवगाहन का निमित्त है।

टीका :—यह, धर्म-अधर्म-आकाश का संक्षिप्त कथन है।

यह धर्मास्तिकाय, बावड़ी के पानी की भाँति, स्वयं गतिक्रियारहित है। मात्र (अ, इ, उ, ऋ, लृ - ऐसे) पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण जितनी जिनकी स्थिति है, जो 'सिद्ध' नाम के योग्य हैं, जो छह अपक्रम[१] से विमुक्त हैं, जो मुक्तिरूपी सुलोचना के लोचन का विषय हैं (अर्थात्, जिन्हें मुक्तिरूपी सुन्दरी, प्रेम से निहारती है), जो त्रिलोकरूपी शिखरी[२] के शिखर हैं, जिन्होंने समस्त क्लेश के घररूप पंचविध संसार को (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, और भाव के परावर्तनरूप पाँच प्रकार के संसार को) दूर किया है और जो पञ्चम गति की सीमा पर हैं - ऐसे अयोगी भगवान को, स्वभावगतिक्रियारूप से परिणमित होने में स्वभावगतिक्रिया * का हेतु, धर्म है और छह अपक्रम से युक्त ऐसे संसारियों को वह (धर्म), विभावगतिक्रिया * का हेतु है। जिस प्रकार पानी, मछलियों को गमन का कारण है; उसी प्रकार वह धर्म, उन जीव-पुद्गलों को गमन का कारण (निमित्त) है। वह धर्म, अमूर्त, आठ स्पर्शरहित तथा पाँच वर्ण, पाँच रस और दो गंध रहित, अगुरुलघुत्वादि गुणों के आधारभूत, लोकमात्र आकारवाला (लोकप्रमाण आकारवाला) अखण्ड एक पदार्थ है। 'सहभावी गुण और क्रमवर्ती पर्यायें हैं' — ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, गति के हेतुभूत इस धर्मद्रव्य को शुद्धगुण और शुद्धपर्यायें होती हैं।

अधर्मद्रव्य का विशेषगुण स्थितिहेतुत्व है; इस अधर्मद्रव्य के (शेष) गुण-पर्यायों जैसे, उस धर्मास्तिकाय के (शेष) सर्व गुण-पर्याय होते हैं।

आकाश का अवकाशदानरूप लक्षण ही विशेषगुण है। धर्म और अधर्म के शेष गुण, आकाश के शेष गुणों जैसे भी हैं।

इस प्रकार (इस गाथा का) अर्थ है।

(यहाँ ऐसा ध्यान में रखना कि) लोकाकाश, धर्म और अधर्म, समान प्रमाणवाले होने से कहीं अलोकाकाश को न्यूनता-छोटापन नहीं है (अलोकाकाश तो अनन्त है)।

---

१. संसारी जीवों को अन्य भव में उत्पन्न होने के समय 'छह दिशाओं में गमन' होता है, उसे 'छह अपक्रम' कहने में आता है।

२. शिखरी=शिखरवन्त, पर्वत।

* स्वभावगतिक्रिया तथा विभावगतिक्रिया का अर्थ, गाथा ९ के फुटनोट में देखें।

गाथा-३० पर प्रवचन

गमणणिमित्तं धम्ममधम्मं ठिदि जीवपोग्गलाणं च।
अवगहणं आयासं जीवादी-सव्व-दव्वाणं।।३०।।

जो जीव-पुद्गल, गमन-स्थिति में हेतु धर्म अधर्म है।
आकाश जो सब द्रव्य का, अवकाश हेतुक द्रव्य है॥३०॥

टीका :— यह, धर्म-अधर्म-आकाश का संक्षिप्त कथन है। तीन द्रव्य हैं। जगत में तीन पदार्थ हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। **यह धर्मास्तिकाय,...** इनमें पहला वर्णन धर्मास्तिकाय का (करते हैं)। **बावड़ी के पानी की भाँति,...** बावड़ी का पानी हिलता नहीं। नदी का पानी तो अभी हिलता है, गति करता है। वह स्थिर है। इसी प्रकार धर्मास्तिकाय अरूपी पदार्थ है। **बावड़ी के पानी की भाँति, स्वयं गतिक्रियारहित है।** उसमें गति है नहीं। **मात्र (अ, इ, उ, ऋ, लृ - ऐसे) पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण जितनी जिनकी स्थिति है,...** अयोगी गुणस्थान की बात करते हैं और अयोगी गुणस्थान के अन्त में सिद्ध होने की क्रिया में धर्मास्ति निमित्त है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

जो 'सिद्ध' नाम के योग्य हैं, जो छह अपक्रम से विमुक्त हैं,.... इसमें लिखा है न उसमें से। नियमसार की टीका में ही भूल है। छह काय से विमुक्त है, ऐसा लिखा है, नियमसार की टीका में। फिर अर्थ ऐसा किया, छह काय से विमुक्त है परन्तु छह अपक्रम। अपक्रम अर्थात् छह दिशाओं में जाना। संसारी जीव, देह छूटे तब छह दिशा : पूर्व, उत्तर और चार कोने में जाता है। यह सिद्ध हो और यहाँ से सिद्ध होते जाये, उसे छह दिशा नहीं होती।

जो मुक्तिरूपी सुलोचना के लोचन का विषय हैं (अर्थात्, जिन्हें मुक्तिरूपी सुन्दरी, प्रेम से निहारती है),.... अर्थात् पूर्ण दशा जिन्हें प्राप्त हो गयी है। अयोगी गुणस्थान होता है। छूटे अर्थात् यहाँ से सिद्ध हुए हैं। वे गति करके जाते हैं। ऐसी व्याख्या की है। **जो त्रिलोकरूपी शिखरी के शिखर हैं,...** तीन लोकरूपी पर्वत, तीन लोकरूपी पर्वत के शिखर हैं। सिद्धभगवान ऐसे हैं। **जिन्होंने समस्त क्लेश के घररूप पंचविध संसार को**

(द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, और भाव के परावर्तनरूप पाँच प्रकार के संसार को) दूर किया है... द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के परावर्तन-बदलना, वह जिन्हें बन्ध हो गया है।

जो पञ्चम गति की सीमा पर हैं... पंचम गति के नजदीक हैं। **ऐसे अयोगी भगवान को, स्वभावगतिक्रियारूप से परिणमित...** अयोगी से निकलकर। यह अयोगी ही है न, **स्वभावगतिक्रिया का हेतु, धर्म है...** धर्मास्ति उन्हें गति में निमित्त है। यहाँ से ऐसे सिद्ध होते हैं।

और छह अपक्रम से युक्त ऐसे संसारियों को... वे मुक्त थे। ये युक्त हैं... **विभावगतिक्रिया का हेतु है।** संसारी को चार कोने, ऊपर-नीचे जाना, इस विभावगति का हेतु धर्मास्तिकाय है। **जिस प्रकार पानी, मछलियों को गमन का कारण है; उसी प्रकार वह धर्म, उन जीव-पुद्गलों को गमन का कारण (निमित्त) है। वह धर्म, अमूर्त, आठ स्पर्शरहित तथा पाँच वर्ण, पाँच रस और दो गंध रहित, अगुरुलघुत्वादि गुणों के आधारभूत, लोकमात्र आकारवाला (लोकप्रमाण आकारवाला) अखण्ड एक पदार्थ है।** धर्मास्ति। चौदह ब्रह्माण्ड में (व्यापक है)। **'सहभावी गुण और क्रमवर्ती पर्यायें हैं'...** साथ में रहनेवाले गुण हैं और क्रमशः होनेवाली पर्यायें हैं। वे धर्मास्तिकाय को भी होते हैं, ऐसा कहते हैं। **ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, गति के हेतुभूत इस धर्मद्रव्य को शुद्धगुण और शुद्धपर्यायें होती हैं।** धर्मास्तिकाय में भी अनन्त शुद्ध गुण और अनन्त शुद्धपर्यायें होती हैं।

अधर्मद्रव्य का विशेषगुण स्थितिहेतुत्व है; इस अधर्मद्रव्य के (शेष) गुण-पर्यायों जैसे, उस धर्मास्तिकाय के (शेष) सर्व गुण-पर्याय होते हैं। लो! धर्मास्ति जैसे अधर्मास्तिकाय के गुण होते हैं। **आकाश का अवकाशदानरूप लक्षण ही विशेषगुण है। धर्म और अधर्म के शेष गुण,....** भाषा इतनी बदली है। **शेष गुण, आकाश के शेष गुणों जैसे भी हैं।** नहीं तो आकाश के गुण, धर्मास्ति-अधर्मास्ति के थे, ऐसा होता है, ऐसा चाहिए, उसके बदले ऐसा लिया है। क्या कहा, समझ में आया? धर्मास्ति-अधर्मास्ति के गुण जैसे आकाश के गुण हैं, ऐसा लेना चाहिए परन्तु यह ऐसा लिया है। आकाश के जैसे गुण हैं, वैसे धर्मास्ति-अधर्मास्ति के गुण हैं।

इस प्रकार (इस गाथा का) अर्थ है। लो! **(यहाँ ऐसा ध्यान में रखना कि) लोकाकाश, धर्म और अधर्म, समान प्रमाणवाले होने से कहीं अलोकाकाश को न्यूनता-छोटापन नहीं है...** ये तीन ऐसे हैं, इसलिए अलोक छोटा हो गया है, ऐसा नहीं है। अलोक तो अनन्त... अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. चारों ओर अनन्त है।

श्लोक-४६

(अब, ३०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:)

(मालिनी)

इह गमननिमित्तं यत्स्थितेः कारणं वा,
पदपरमखिलानां स्थानदानप्रवीणम् ।
तदखिलमवलोक्य द्रव्यरूपेण सम्यक्,
प्रविशतु निजतत्त्वं सर्वदा भव्यलोकः ।।४६।।

(वीरछन्द)

इस जग में गति में निमित्त जो और स्थिति का कारण।
सबको जो अवकाश प्रदान करे उनका कर अवलोकन॥
धर्म अधर्म तथा नभ की अस्ति में शंका करो न लेश।
भव्य समूह सर्वदा निज शुद्धात्म तत्त्व में करो प्रवेश॥४६॥

श्लोकार्थ :—यहाँ ऐसा आशय है कि जो (द्रव्य), गमन का निमित्त है, जो (द्रव्य) स्थिति का कारण है और दूसरा जो (द्रव्य) सर्व को स्थान में देने में प्रवीण है, उन सबको सम्यक् द्रव्यरूप से अवलोक कर (यथार्थतः स्वतंत्र द्रव्यरूप से समझकर), भव्यसमूह सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो॥४६॥

श्लोक-४६ पर प्रवचन

मुनिराज श्लोक कहते हैं। ४६ (वाँ श्लोक)

इह गमननिमित्तं यत्स्थितेः कारणं वा,
पदपरमखिलानां स्थानदानप्रवीणम्।
तदखिलमवलोक्य द्रव्यरूपेण सम्यक्,
प्रविशतु निजतत्त्वं सर्वदा भव्यलोकः।।४६।।

जो धर्मास्ति गमन का निमित्त है; अधर्मास्ति स्थिति का निमित्त है। यहाँ कारण कहा। एक को निमित्त कहा, दूसरे को कारण कहा। वस्तु तो वह की वह है। समझ में आया? निमित्त कहो, कारण कहो। कारण को निमित्त भी कहा जाता है और निमित्त को कारण भी कहा जाता है। इस व्यवहारकारण से... **और दूसरा जो (द्रव्य) सर्व को स्थान में देने में प्रवीण है,...** ठीक। प्रवीण है। आकाश प्रवीण है अर्थात् सब द्रव्य उसमें आ गये। **उन सबको सम्यक् द्रव्यरूप से अवलोक कर...** वे सब स्वतन्त्र पदार्थ हैं, ऐसा जानकर - ऐसा कहते हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश जगत के स्वतन्त्र पदार्थ हैं। अनादि अनन्त (पदार्थ हैं, ऐसा) भगवान ने देखा है। **(यथार्थतः स्वतंत्र द्रव्यरूप से समझकर),....** सम्यक् द्रव्यरूप से कहा है न? सम्यक्रूप से देखना अर्थात् स्वतन्त्र सभी द्रव्य हैं। किसी को किसी के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है, स्वतन्त्र है, किसी के कारण कोई द्रव्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। **भव्यसमूह सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो।** हे भव्य! सर्वदा भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है।

मुमुक्षु : समस्त जीवों को ऐसा उपदेश देना।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें भव्यसमूह कहा न! भव्यसमूह योग्य है। **सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो।** यह करने योग्य है।

मुमुक्षु : अभव्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभव्य की यहाँ कहाँ बात है? यह तो भव्यसमूह को कहना है ऐसा। दूसरा कुछ कहना या नहीं? प्रथमानुयोग का, अमुक या कषाय मन्द करने का?

मुमुक्षु : भव्य जीवों को अकेलों को ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा समूह कहा। कल समूह आया था। नहीं ? आया था या नहीं इसमें ? कहीं आया अवश्य था। भव्यसमूह। देखो, इसमें भी आया। **परम सुखपद का अर्थी भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** है ? ४१ वाँ कलश, ५९ पृष्ठ, नीचे। **परम सुखपद का अर्थी भव्यसमूह,...** वहाँ यह भव्यसमूह (आया है)। **शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....व्यवहार को तो स्थापित करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वस्तु करनी है। करना क्या सब ? सब समझ-समझकर समझाकर तो यह चीज़ है इसकी। भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप में प्रवेश करो। राग और उसका (पर का) आलम्बन छोड़ो। इसके लिये यह सब उपदेश है। यहाँ आया, देखो।

भव्यसमूह सर्वदा... वापस सर्वदा, भाषा ऐसी है। बहुत जीवों का समूह और सर्वदा। पहले ऐसा, फिर ऐसा (यह नहीं)। **सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो।** है न ? आहा..हा..! अरे ऐसा पहले-बाद का प्रश्न कहाँ है ? इस वस्तु के स्वभाव को व्यवहार होवे तो, ऐसा होवे तो, ऐसा कुछ वस्तु के स्वभाव में नहीं है। आहा..हा..! भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव ध्रुव में गहरे-गहरे प्रवेश करे, अन्दर जाये ऐसा कहा। वहाँ दृष्टि लगा और वहाँ आगे प्रवेश करो। आहा..हा..!

मुमुक्षु : शास्त्र में आता है कि श्रोता को देखकर उपदेश देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आता है, आता है। व्यवहार का कथन है। यह देखकर क्या आया। आवे, अन्दर विकल्प ऐसा होवे तो आवे। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। मुख्य वह अध्यात्म का उपदेश है। सभा में करना। नहीं आया ? टोडरमलजी (कहते हैं) मोक्षमार्ग वहाँ है ? अन्यत्र यह मोक्षमार्ग नहीं है। जानने की बातें हैं। लो, यह ३०वीं गाथा हुई। ३१वीं, अब काल की व्याख्या है, हों!

गाथा-३१

समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं।
तीदो संखेज्जावलि-हद-संठाणप्पमाणं तु।।३१।।

समयावलिभेदेन तु द्विविकल्पोऽथवा भवति त्रिविकल्पः।
अतीतः सङ्ख्यातावलि-हत-सन्स्थान-प्रमाणस्तु।।३१।।

व्यवहारकालस्वरूपविविधविकल्पकथनमिदम्। एकस्मिन्नभःप्रदेशे यः परमाणुस्तिष्ठति तमन्यः परमाणुर्मन्दचलनाल्लङ्घयति स समयो व्यवहारकालः। तादृशैरसङ्ख्यातसमयैः निमिषः अथवा नयनपुटघटनायत्तो निमेषः। निमेषाष्टकैः काष्ठा। षोडशभिः काष्ठाभिः कला। द्वात्रिन्शत्कलाभिर्घटिका। षष्ठिनालिकमहोरात्रम्। त्रिन्शदहोरात्रैर्मासः। द्वाभ्यां मासाभ्यां ऋतुः। ऋतुभिस्त्रिभिरयनम्। अयनद्वयेन सम्वत्सरः। इत्यावल्यादिव्यवहारकालक्रमः। इत्थं समयावलिभेदेन द्विधा भवति, अतीतानागतवर्तमानभेदात् त्रिधा वा।

अतीतकालप्रपञ्चोऽयमुच्यते ह्न अतीतसिद्धानां सिद्धपर्यायप्रादुर्भावसमयात् पुरागतो ह्यावल्यादिव्यवहारकालः स कालस्यैषां सन्सारावस्थायां यानि सन्स्थानानि गतानि तैः सदृशत्वादनन्तः। अनागतकालोऽप्यनागतसिद्धानामनागतशरीराणि यानि तैः सदृश इत्यामुक्तेः मुक्तेः सकाशादित्यर्थः।

तथा चोक्तं पञ्चास्तिकायसमये ह्न

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोदु-अयण-संवच्छरो त्ति कालो परायत्तो।।

तथाहि ह्न

आवलि, समय दो भेद या भूतादि त्रयविध जानिये।
संस्थान से संख्यातगुण आवलि अतीत प्रमानिये।।३१।।

गाथार्थ :—[समयावलिभेदेन तु] समय और आवलि के भेद से [द्विविकल्पः]

व्यवहारकाल के दो भेद हैं [अथवा] अथवा [त्रिविकल्पः भवति] (भूत, वर्तमान, और भविष्य के भेद से) तीन भेद हैं। [अतीतः] अतीत काल [संख्यातावलिहत-संस्थानप्रमाणः तु] (अतीत), संस्थानों के और संख्यात आवलि के गुणाकार जितना है।

टीका :—यह, व्यवहारकाल के स्वरूप का और उसके विविध भेदों का कथन है।

एक आकाशप्रदेश में जो परमाणु स्थित हो, उसे दूसरा परमाणु मन्दगति से लाँघे उतना काल, वह समयरूप व्यवहारकाल है। ऐसे असंख्य समयों का निमिष होता है अथवा आँख मिचे, उतना काल वह निमिष है। आठ निमिष की काष्ठा होती है। सोलह काष्ठा की कला; बत्तीस कला की घड़ी; साठ घड़ी का अहोरात्र; तीस अहोरात्र का मास; दो मास की ऋतु; तीन ऋतु का अयन, और दो अयन का वर्ष होता है। ऐसा आवलि आदि व्यवहारकाल का क्रम है। इस प्रकार व्यवहारकाल, समय और आवलि के भेद से दो प्रकार का है अथवा अतीत, अनागत, और वर्तमान के भेद से तीन प्रकार का है।

यह (निम्नोक्तानुसार), अतीत काल का विस्तार कहा जाता है : अतीत, सिद्धों को सिद्धपर्याय के प्रादुर्भाव[१] समय से पूर्व बीता हुआ जो आवलि आदि व्यवहारकाल वह, उन्हें संसारदशा में जितने संस्थान बीत गये, उनके जितना[२] होने से अनन्त है। (अनागत सिद्धों को मुक्ति होने तक का) अनागत काल भी-अनागत सिद्धों के जो मुक्तिपर्यन्त अनागत शरीर, उनके बराबर है।

ऐसा (इस गाथा का) अर्थ है।

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पञ्चास्तिकायसमय में (२५वीं गाथा द्वारा) कहा है कि -

'(गाथार्थ :-) समय, निमिष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन-रात, मास, ऋतु, अयन और वर्ष — इस प्रकार पराश्रितकाल (जिसमें पर की अपेक्षा आती है — ऐसा व्यवहारकाल) है।'

---

१. प्रादुर्भाव=प्रगट होना वह, उत्पन्न होना वह।

२. सिद्धभगवान को अनन्त शरीर बीत गये हैं, उन शरीरों की अपेक्षा संख्यातगुनी आवलियाँ बीत गयी हैं; इसलिए अतीत शरीर भी अनन्त हैं और अतीत काल भी अनन्त है। अतीत शरीरों की अपेक्षा, अतीत आवलियाँ संख्यातगुनी होने पर भी दोनों अनन्त होने से दोनों को अनन्तपने की अपेक्षा से समान कहा है।

गाथा-३१ पर प्रवचन

समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं।
तीदो संखेज्जावलि-हद-संठाणप्पमाणं तु।।३१।।

यह गोम्मटसार की गाथा है ५७७, जीवकाण्ड की ५७७ गाथा है। इसमें जरा गिनती में अन्तर होगा। उसमें कुछ नहीं। अरे! प्रयोजनभूत है, उसके सन्मुख देख न! वे रतनचन्दजी इसमें दोष निकालते हैं।

आवलि, समय दो भेद या भूतादि त्रयविध जानिये।
संस्थान से संख्यातगुण आवलि अतीत प्रमानिये॥३१॥

यह, व्यवहारकाल के स्वरूप का और उसके विविध भेदों का कथन है। एक आकाशप्रदेश में जो परमाणु स्थित हो,... इस आकाशप्रदेश में। **उसे दूसरा परमाणु मन्दगति से लाँघे...** आकाशप्रदेश में जो परमाणु स्थित है, उसे दूसरा परमाणु मन्दगति से उल्लंघे, ऐसी भाषा है। नहीं तो एक प्रदेश में परमाणु है, वह दूसरे प्रदेश में जाये। परमाणु, परमाणु को उल्लंघे। एक परमाणु एक प्रदेश में है और दूसरा परमाणु एक प्रदेश को उल्लंघकर दूसरे में जाये। **उतना काल, वह समयरूप व्यवहारकाल है।** उसे एक समय अर्थात् व्यवहार छोटा काल कहा जाता है।

ऐसे असंख्य समयों का निमिष... यह सब इसका माप है। **अथवा आँख मिचे, उतना काल वह निमिष है। आठ निमिष की काष्ठा होती है। सोलह काष्ठा की कला; बत्तीस कला की घड़ी; साठ घड़ी का अहोरात्र; तीस अहोरात्र का मास; दो मास की ऋतु; तीन ऋतु का अयन, और दो अयन का वर्ष होता है। ऐसा आवलि आदि व्यवहारकाल का क्रम है।** भेद हुआ न, सब व्यवहार। **इस प्रकार व्यवहारकाल, समय और आवलि के भेद से दो प्रकार का है...** एक समय का, एक समय और आवली आदि सब प्रकार। **अथवा अतीत, अनागत, और वर्तमान के भेद से तीन प्रकार का है।** पाठ में है। **समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं**

यह (निम्नोक्तानुसार), अतीत काल का विस्तार कहा जाता है : अतीत, सिद्धों

को सिद्धपर्याय के प्रादुर्भाव समय से पूर्व बीता हुआ जो आवलि आदि व्यवहारकाल वह, उन्हें संसारदशा में जितने संस्थान बीत गये, उनके जितना होने से अनन्त है।

मुमुक्षु : .... नहीं देखा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त ही है। दो (अंक) है नीचे (फुटनोट में) देखो।

सिद्धभगवान को अनन्त शरीर बीत गये हैं, उन शरीरों की अपेक्षा संख्यातगुनी आवलियाँ बीत गयी हैं; इसलिए अतीत शरीर भी अनन्त हैं और अतीत काल भी अनन्त है। अतीत शरीरों की अपेक्षा, अतीत आवलियाँ संख्यातगुनी होने पर भी दोनों अनन्त होने से दोनों को अनन्तपने की अपेक्षा से समान कहा है। इस अपेक्षा से समान कहा है। इसमें विवाद निकालते हैं। भाई! विवाद नहीं। आहा..हा..! मुनियों का वाक्य भी उन्हें ठीक नहीं पड़ता, क्योंकि निश्चय की व्याख्या ऐसी आवे। निरपेक्ष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होता है। उसे व्यवहार की आवश्यकता नहीं है। हाय.. हाय..! इसलिए ऐसी भूल निकालकर वह नहीं, जाओ! आहा..हा..!

चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्वभाव से भरपूर है, उसके स्वभाव का आश्रय करने में पर की कोई अपेक्षा नहीं है। उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने में या चारित्र होने में पर की अपेक्षा बिना, स्वद्रव्य की अपेक्षा के कारण जो दृष्टि, ज्ञान प्रगटे, वह निरपेक्ष तत्त्व है। निश्चयमोक्षमार्ग, वह मोक्षमार्ग है। उसे यह विवाद आता है। नहीं, व्यवहार हो तो होता है। व्यवहार की अपेक्षा चाहिए, यह सब विवाद के लिये ये सब बातें निकाली हैं... जीवों को कहाँ... अनादि से ऐसा किया है। आहा..हा..! **अनागत काल भी-अनागत सिद्धों के जो मुक्तिपर्यन्त अनागत शरीर, उनके बराबर है।** लो, फिर श्लोक कहा है।

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोदु-अयण-संवच्छरो त्ति कालो परायत्तो।।

पंचास्तिकाय का है। '**(गाथार्थ :-) समय, निमिष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन-रात, मास, ऋतु, अयन और वर्ष—इस प्रकार पराश्रितकाल (जिसमें पर की अपेक्षा आती है—ऐसा व्यवहारकाल) है।**' यह सिद्ध किया जाता है। आ गया है। अब स्वयं मुनिराज श्लोक कहते हैं।

श्लोक-४७

और (३१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:)

(मालिनी)

समयनिमिषकाष्ठा सत्कलानाडिकाद्याद्,
दिवस-रजनि-भेदाज्जायते काल एषः।
न च भवति फलं मे तेन कालेन किञ्चिद्,
निज-निरुपम-तत्त्वं शुद्ध-मेकं विहाय ।।४७।।

(वीरछन्द)

समय निमिष अरु घड़ी कला दिन रात भेद से यह उत्पन्न।
किन्तु एक निज निरुपम तत्त्व सिवाय न उससे कोई फल ।।४७।।

श्लोकार्थ :—समय, निमिष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन-रात आदि भेदों से यह काल (व्यवहारकाल), उत्पन्न होता है परन्तु शुद्ध एक निज निरुपम तत्त्व को छोड़कर, उस काल से मुझे कोई फल नहीं है ।।४७।।

श्लोक-४७ पर प्रवचन

समयनिमिषकाष्ठा सत्कलानाडिकाद्याद्,
दिवस-रजनि-भेदाज्जायते काल एषः।
न च भवति फलं मे तेन कालेन किञ्चिद्,
निज-निरुपम-तत्त्वं शुद्ध-मेकं विहाय ।।४७।।

आहा..हा..! समय आदि कहे, इन भेदों से व्यवहारकाल होता है। **परन्तु शुद्ध एक निज निरुपम तत्त्व को छोड़कर,....** काल से मुझे कुछ फल नहीं है। शुद्ध एक निज निरुपम अभेद चिदानन्द अनन्त स्वभावस्वरूप, निर्मल एक और निरुपम। जिसकी कोई

उपमा नहीं, ऐसा तत्त्व भगवान आत्मा, उसमें **तत्त्व को छोड़कर,....** ऐसे भगवान आत्मा के अभेद रत्नत्रय का आश्रय ऐसा जो द्रव्य, उस द्रव्य को छोड़कर **उस काल से मुझे कोई फल नहीं है।** पर काल का ज्ञान करने में पराधीन ज्ञान होता है और विकल्प उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का आश्रय करने से निर्विकल्पी आनन्द आता है। आहा..हा..! समझ में आया?

काल वस्तु है। यह अधिक कहेंगे देखो! ३२ वीं गाथा!

गाथा-३२

जीवादु पोग्गलादो णंतगुणा चावि संपदा समया।
लोयायासे संति य परमट्ठो सो हवे कालो।।३२।।

जीवात् पुद्गलतोनन्तगुणाश्चापि सम्प्रति समयाः।
लोकाकाशे सन्ति च परमार्थः स भवेत्कालः।।३२।।

मुख्यकालस्वरूपाख्यानमेतत्। जीवराशेः पुद्गलराशेः सकाशादनन्तगुणाः। के ते? समयाः। कालाणवः लोकाकाशप्रदेशेषु पृथक् पृथक् तिष्ठन्ति, स कालः परमार्थः इति।

तथा चोक्तं प्रवचनसारे ह्न

समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स।
वदिवददो सो वट्टदि पदेस-मागास-दव्वस्स।।

अस्यापि समयशब्देन मुख्यकालाणुस्वरूपमुक्तम्।

अन्यच्च ह्न

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंख-दव्वाणि।।

उक्तञ्च मार्गप्रकाशे ह्न

(अनुष्टुप्)

कालाभावे न भावानां परिणामस्तदन्तरात्।
न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वाभावः प्रसज्यते।।

तथाहि ह्न

रे जीव पुद्गल से समय संख्या अनन्तगुणा कही।
कालाणु लोकाकाश स्थित जो काल निश्चय है वही॥३२॥

गाथार्थ :—[संप्रति] अब, [जीवात्] जीव से [पुद्गलतः च अपि] तथा

पुद्गल से भी [अनन्तगुणाः] अनन्तगुने [समयाः] समय हैं; [च] और [लोकाकाशे संति] जो (कालाणु) लोकाकाश में हैं, [सः] वह [परमार्थःकालः भवेत्] परमार्थ काल है।

टीका :—यह, मुख्यकाल के स्वरूप का कथन है।

जीवराशि से और पुद्गलराशि से अनन्तगुने हैं। कौन ? समय। कालाणु, लोकाकाश के प्रदेशों में पृथक्-पृथक् स्थित हैं, वह काल परमार्थ है।

उसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (१३८वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —

'(गाथार्थ :-) काल तो अप्रदेशी है। प्रदेशमात्र पुद्गलपरमाणु, आकाशद्रव्य के प्रदेश को मन्दगति से लांघता हो, तब वह वर्तता है, अर्थात् निमित्तभूतरूप से परिणमित होता है।'

इसमें (इस प्रवचनसार की गाथा में) भी 'समय' शब्द से मुख्यकालाणु का स्वरूप कहा है।

और अन्यत्र (आचार्यदेव श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित बृहद्द्रव्यसंग्रह में २२वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —

(गाथार्थ :-) लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में जो एक-एक कालाणु, रत्नों की राशि की भाँति वास्तव में स्थित हैं, वे कालाणु असंख्यद्रव्य हैं।

और मार्गप्रकाश में भी (श्लोक द्वारा) कहा है कि -

'(गाथार्थ :-) काल के अभाव में, पदार्थों का परिणमन नहीं होगा और परिणमन न हो तो, द्रव्य भी न होगा तथा पर्याय भी न होगी। इस प्रकार सर्व के अभाव का (शून्य का) प्रसंग आयेगा।'

गाथा-३२ पर प्रवचन

जीवादु पोग्गलादो णंतगुणा चावि संपदा समया।
लोयायासे संति य परमट्ठो सो हवे कालो।।३२।।

देखो! कालद्रव्य को सिद्ध करते हैं, हों!

रे जीव पुद्गल से समय संख्या अनन्तगुणा कही।
कालाणु लोकाकाश स्थित जो काल निश्चय है वही॥३२॥

देखो! कोई काल नहीं मानते न, श्वेताम्बर कालद्रव्य को नहीं मानते; अत: कालद्रव्य सिद्ध करते हैं। अनादि सनातन मार्ग में छह द्रव्य में कालद्रव्य है।

यह, मुख्यकाल के स्वरूप का कथन है। देखो! **जीवराशि से और पुद्गलराशि से अनन्तगुने हैं। कौन? समय।** समय, समय, हों! कालद्रव्य नहीं। **कालाणु, लोकाकाश के प्रदेशों में पृथक्-पृथक् स्थित हैं, वह काल परमार्थ है।** समय आदि को व्यवहार काल कहा है। ये समय अनन्तगुने कहे परन्तु कालाणु जो है। **लोकाकाश के प्रदेशों में पृथक्-पृथक् स्थित हैं,...** असंख्य। वे मूल पदार्थ हैं। वह अरूपी काल नामक पदार्थ है।

छह द्रव्य इतने हैं, इतना न माने तो एक समय की पर्याय के सामर्थ्य की भी प्रतीति नहीं होती। ज्ञान की एक समय की पर्याय में छह द्रव्य को जानने की ताकतवाली पर्याय है, अत: छह द्रव्यों में कोई भी एक द्रव्य न माने, तो उसकी पर्याय की इतनी ताकत है, ऐसी इसने नहीं मानी। समझ में आया?

प्रवचनसार में कहा है, लो!

समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स।
वदिवददो सो वट्टदि पदेस-मागास-दव्वस्स।।

काल तो अप्रदेशी है। काल को प्रदेश नहीं है। दो अणु (कालाणु) इकट्ठे नहीं होते। यह परमाणु तो इकट्ठे होकर ऐसे दिखते हैं। इकट्ठे रजकण। दो कालाणु इकट्ठे नहीं होते। **प्रदेशमात्र पुद्गलपरमाणु, आकाशद्रव्य के प्रदेश को मन्दगति से लांघता हो,...** प्रदेशमात्र पुद्गल परमाणु आकाशद्रव्य के प्रदेश को मन्द (गति से उल्लंघता हो)। यह प्रवचनसार की शैली में आया। इसमें आकाश के प्रदेश में परमाणु था, उसे परमाणु उल्लंघे, (ऐसा कहा था)। समझ में आया?

प्रदेशमात्र पुद्गलपरमाणु, आकाशद्रव्य के प्रदेश को मन्दगति से लांघता हो, तब वह वर्तता है, अर्थात् निमित्तभूतरूप से परिणमित होता है।' 'समय' शब्द से मुख्यकालाणु का स्वरूप कहा है। लो, समय शब्द से मुख्य कालाणु कहा है।

और अन्यत्र (आचार्यदेव श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित बृहद्द्रव्यसंग्रह में २२वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंख-दव्वाणि।।

(गाथार्थ :-) लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में जो एक-एक कालाणु, रत्नों की राशि की भाँति वास्तव में स्थित हैं, वे कालाणु असंख्यद्रव्य हैं। यह वस्तु है।

और मार्गप्रकाश में भी (श्लोक द्वारा) कहा है कि -

कालाभावे न भावानां परिणामस्तदन्तरात्।
न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वाभावः प्रसज्यते।।

काल के अभाव में, पदार्थों का परिणमन नहीं होगा... काल को सिद्ध करना है न! निमित्त सिद्ध करना है परन्तु काल के अभाव में परिणमन उसका है, वह परिणमन नहीं होता, ऐसा है ? ऐसा दृष्टान्त ले। देखो! काल न हो तो परिणमन नहीं होता। इसलिए काल के कारण परिणमन है। क्या करे ?

मुमुक्षु : स्पष्ट बात तो करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कालद्रव्य का परिणमन चला जाता है कहीं ? कोई पर्यायरहित द्रव्य होगा ?

मुमुक्षु : निमित्त न हो तो नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो निमित्त (कहा है) परन्तु इसकी सिद्धि करनी है। प्रत्येक द्रव्य के परिणमन में यह काल नामक द्रव्य निमित्त है, बस! क्या हो ? किस नय का कथन है और क्या कहते हैं ? विवाद ही यह उठा है न ? शास्त्र में जो लिखा है, वह सब सच्चा, जाओ। परन्तु किस नय से ?

मुमुक्षु : ख्याल नहीं आता उन्हें।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आता, इसलिए गड़बड़ उठती है।

काल के अभाव में, पदार्थों का परिणमन नहीं होगा... लो, पदार्थों का परिणमन नहीं होगा। **और परिणमन न हो तो, द्रव्य भी न होगा तथा पर्याय भी न होगी। इस प्रकार**

सर्व के अभाव का (शून्य का) प्रसंग आयेगा। यह तो काल को सिद्ध करते हैं। काल नामक पदार्थ है। समझ में आया? काल नामक पदार्थ जिसने उड़ाया, उसे स्वकाल का अनुभव नहीं है – ऐसा एक बार बहुत वर्ष पहले यह प्रश्न उठा था। हमारे नारणभाई के साथ जब अन्दर चर्चा चलती थी। बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९८९ या १९८८। कालाणु नहीं माना, यह कालद्रव्य नहीं माना, इसलिए उसका काल बदला नहीं। स्वकाल अनुभव का हुआ ही नहीं। होवे तो उसे काल निमित्त है, ऐसा द्रव्य भी उसकी प्रतीति में आवे। समझ में आया? **इस प्रकार सर्व के अभाव का (शून्य का) प्रसंग आयेगा।**

अब दो श्लोक स्वयं कहते हैं।

श्लोक-४८

और (३२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, दो श्लोक कहते हैं) —

(अनुष्टुप्)

वर्तनाहेतुरेषः स्यात् कुम्भकृच्चक्रमेव तत्।
पञ्चानामस्तिकायानां नान्यथा वर्तना भवेत्।।४८।।

(वीरछन्द)

काल द्रव्य वर्तना निमित हैं कुम्भकार के चक्र समान।
काल बिना पञ्चास्तिकाय में वर्तन हो न सके यह मान॥४८॥

***श्लोकार्थ :*—कुम्हार के चक्र की भाँति (अर्थात्, जिस प्रकार घड़ा बनने में कुम्हार का चाक निमित्त है, उसी प्रकार), यह परमार्थकाल (पाँच अस्तिकायों की) वर्तना का निमित्त है। उसके बिना, पाँच अस्तिकायों को वर्तना (परिणमन) नहीं हो सकती॥४८॥**

श्लोक-४८ पर प्रवचन

वर्तनाहेतुरेषः स्यात् कुम्भकृच्चक्रमेव तत्।
पञ्चानामस्तिकायानां नान्यथा वर्तना भवेत्।।४८।।

कुम्हार के चक्र की भाँति (अर्थात्, जिस प्रकार घड़ा बनने में कुम्हार का चाक निमित्त है, उसी प्रकार), यह परमार्थकाल (पाँच अस्तिकायों की) वर्तना का निमित्त है। वास्तव में पाँच द्रव्यों में यह द्रव्य ऐसा है लोकाकाश प्रमाण कि सबके परिणमन में यह निमित्त है।

परमार्थकाल (पाँच अस्तिकायों की) वर्तना का निमित्त है। उसके बिना, पाँच अस्तिकायों को वर्तना (परिणमन) नहीं हो सकती। यह तो काल सिद्ध करना है न? यह सब विवाद निकालते हैं, लो। यह हो तो परिणमे; यह न हो तो न परिणमे। इसका अर्थ यह है कि यहाँ परिणमे, तब वह होता है। निश्चय से द्रव्य का परिणमन स्वकाल में स्वयं के कारण से, पर की अपेक्षा बिना परिणमता है। वहाँ एक दूसरा निमित्तरूप द्रव्य सापेक्ष व्यवहार से गिनने में आया है। उसकी अपेक्षा से व्यवहार, इसकी अपेक्षा से निश्चय है। झगड़ा... झगड़ा... शास्त्रेवाद भयं। **(परिणमन) नहीं हो सकती।**

श्लोक-४९

(अनुष्टुप्)

प्रतीति-गोचराः सर्वे जीव-पुद्गल-राशयः।
धर्माधर्मनभः कालाः सिद्धाः सिद्धान्तपद्धतेः।।४९।।

(वीरछन्द)

हैं सिद्धान्त पद्धति द्वारा सिद्ध जीव अरु पुद्गल राशि।
धर्म अधर्म तथा नभ काल प्रतीतिगम्य सब द्रव्य समाज॥४९॥

श्लोकार्थ :—**सिद्धान्तपद्धति से (शास्त्रपरम्परा से) सिद्ध, ऐसे जीवराशि, पुद्गलराशि, धर्म, अधर्म, आकाश और काल सभी प्रतीतिगोचर हैं (अर्थात्, छहों द्रव्यों की प्रतीति हो सकती है)॥४९॥**

श्लोक-४९ पर प्रवचन

प्रतीति-गोचराः सर्वे जीव-पुद्गल-राशयः।
धर्माधर्मनभः कालाः सिद्धाः सिद्धान्तपद्धतेः॥४९॥

सिद्धान्तपद्धति से (शास्त्रपरम्परा से) सिद्ध, ऐसे जीवराशि, पुद्गलराशि, धर्म, अधर्म, आकाश और काल.... देखो! अनादि की सिद्धान्तपद्धति यह है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान के सिद्धान्तपद्धति की परम्परा की राशि इस प्रकार है। जीवराशि अनन्त, पुद्गल अनन्त, धर्म-अधर्म, आकाश (एक) तथा काल असंख्य। **प्रतीतिगोचर हैं (अर्थात्, छहों द्रव्यों की प्रतीति हो सकती है)**। ऐसा कहते हैं। लो! समझ में आया? वाड़ा में झगड़ा, अलग पढ़ने में झगड़ा, इकट्ठा रहे उसमें अर्थ करने में झगड़ा। आहा..हा..! दूसरे प्रकार से शान्ति से देखो कि यह क्या कहना चाहते हैं? क्या वस्तु है? समझ में आया?

अनादि सिद्धान्त परम्परा से सिद्ध है कि... ऐसा कहा न? जीवराशि आदि काल (आदि) सब प्रतीतिगोचर है। यह काल वस्तु है। असंख्य कालाणु पदार्थ हैं। श्वेताम्बर जीव-अजीव की पर्याय को काल गिनकर, यह कालाणु द्रव्य नहीं है, ऐसा कहा। लो, यह ३२वीं गाथा हुई।

मुमुक्षु : कालद्रव्य को जीव-अजीव की पर्याय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय, वह काल है, ऐसा श्वेताम्बर मानते हैं। जीव-अजीव की पर्याय है न? काल, उसका स्वकाल, वही काल है।

मुमुक्षु : कालद्रव्य भिन्न नहीं गिना

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न नहीं। धर्म, अधर्म, आकाश-काल, आकाश-पुद्गल।

काल नहीं। प्रत्येक काल की पर्याय है न स्व की, उसे ही काल मान लेते हैं। उसका स्वकाल है सही। द्रव्य का पर्याय का स्वकाल एक समय का, उसे काल मान लिया। ऐसा है, भाई! आहा..हा..! ये वापस दिगम्बर सम्प्रदाय में भी अन्दर में झगड़े। वे कहे काल होवे तो परिणमे, न होवे तो न परिणमे। और यह झगड़ा। निमित्त कब नहीं है? तो कहे, नहीं। निमित्त आवे तो परिणमे, न आवे तो न परिणमे।

मुमुक्षु : उसका उत्पाद-व्यय रुक जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पाद-व्यय रुक जाये। धारावाही परिणमन है उसका। आहा..हा..!

गाथा-३३

जीवादीदव्वाणं परिवट्टणकारणं हवे कालो।
धम्मादिचउण्हाणं सहावगुणपज्जया होंति।।३३।।

जीवादिद्रव्याणां परिवर्तनकारणं भवेत्कालः।
धर्मादिचतुर्णां स्वभावगुणपर्याया भवन्ति।।३३।।

कालादिशुद्धामूर्ताचेतनद्रव्याणां स्वस्वभावगुणपर्यायाख्यानमेतत्। इह हि मुख्यकालद्रव्यं जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानां पर्यायपरिणतिहेतुत्वात् परिवर्तनलिङ्गमित्युक्तम्। अथ धर्माधर्माकाश-कालानां स्वजातीयविजातीयबन्धसम्बन्धाभावात् विभावगुणपर्याया न भवन्ति, अपि तु स्वभावगुणपर्याया भवन्तीत्यर्थः। ते गुणपर्यायाः पूर्वं प्रतिपादिताः, अत एवात्र सङ्क्षेपतः सूचिता इति।

रे जीव पुद्गल आदि का परिणमनकारण काल है।
धर्मादि चार स्वभावगुण पर्यायवन्त त्रिकाल हैं॥३३॥

गाथार्थ :—[जीवादिद्रव्याणाम्] जीवादि द्रव्यों को [परिवर्तनकारणम्] परिवर्तन का कारण (वर्तना का निमित्त), [कालः भवेत्] काल है। [धर्मादिचतुर्णां] धर्मादि चार द्रव्यों को [स्वभावगुणपर्यायाः] स्वभावगुणपर्यायें [भवंति] होते हैं।

टीका :—यह, कालादि शुद्ध अमूर्त अचेतन द्रव्यों के निज स्वभावगुणपर्यायों का कथन है।

मुख्यकालद्रव्य, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश की (पाँच अस्तिकायों की) पर्यायपरिणति का हेतु होने से, उसका लिंग परिवर्तन है (अर्थात्, कालद्रव्य का लक्षण वर्तनाहेतुत्व है) ऐसा यहाँ कहा है।

अब (दूसरी बात यह है कि), धर्म, अधर्म, आकाश और काल को स्वजातीय या विजातीय बन्ध का सम्बन्ध न होने से, उन्हें विभावगुणपर्यायें नहीं होतीं, परन्तु

स्वभाव गुणपर्यायें होती हैं — ऐसा अर्थ है। उन स्वभावगुणपर्यायों का पहले प्रतिपादन किया गया है; इसीलिए यहाँ संक्षेप से सूचन किया गया है।

गाथा-३३ पर प्रवचन

जीवादीदव्वाणं परिवट्टणकारणं हवे कालो।
धम्मादिचउण्हाणं सहावगुणपज्जया होंति।।३३।।

रे जीव पुद्गल आदि का परिणमनकारण काल है।
धर्मादि चार स्वभावगुण पर्यायवन्त त्रिकाल हैं॥३३॥

इसमें ऐसा सिद्ध किया उन लोगों ने कि भाई! धर्मास्तिकाय आगे नहीं है, इसलिए सिद्ध आगे नहीं जाते। उसके कारण यह। काल न हो तो परिणमन नहीं होता। ऐसे ही धर्मास्ति न हो तो ऊपर नहीं जाते। अरे रे!

मुमुक्षु : सिद्ध को परतन्त्र माना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह अनेकान्त न हो न। अनेकान्त कब कहलाये? (जब) कि कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र (कहो)। तब वे स्वतन्त्र, तब वह अनेकान्त। यहाँ तो कहते हैं सर्वथा स्वतन्त्र; परतन्त्र जरा भी नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। क्या हो? अरे रे! ३३ गाथा।

यह, कालादि शुद्ध अमूर्त अचेतन द्रव्यों के निज स्वभावगुणपर्यायों का कथन है। निज स्वभावगुण है न, उसे तो सब स्वभावगुण ही है और स्वभावपर्याय है। **मुख्यकालद्रव्य, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश की (पाँच अस्तिकायों की) पर्यायपरिणति का हेतु होने से,...** पाँचों अस्ति के पर्याय परिणति का हेतु होने से **उसका लिंग परिवर्तन है (अर्थात्, कालद्रव्य का लक्षण वर्तनाहेतुत्व है), ऐसा यहाँ कहा है।** वर्तता है, उसे निमित्त होना, उसका नाम वर्तनाहेतु। पर्यायपरिणति का हेतु - ऐसी भाषा है न? पर्यायपरिणति का हेतु, जीव को, पुद्गल को, धर्म को, अधर्म को, आकाश को, उसकी अवस्था की पर्याय परिणमे, उसका हेतु है। **उसका लिंग परिवर्तन है (अर्थात्, कालद्रव्य का लक्षण वर्तनाहेतुत्व है)...**

अब (दूसरी बात यह है कि), धर्म, अधर्म, आकाश और काल को स्वजातीय या विजातीय बन्ध का सम्बन्ध न होने से,... कहो, धर्म-अधर्म स्वजातीय में भी सम्बन्ध नहीं और पर के साथ भी कोई सम्बन्ध नहीं। परमाणु के साथ भी सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। **उन्हें विभावगुणपर्यायें नहीं होतीं,...** धर्मास्ति (अधर्मास्ति) आकाश, काल को विभावगुणपर्यायें नहीं होते। **परन्तु स्वभाव गुणपर्यायें होती हैं...** उन्हें तो गुण और पर्यायें सब अनादि स्वाभाविक शुद्ध होती हैं। **ऐसा अर्थ है। उन स्वभावगुणपर्यायों का पहले प्रतिपादन किया गया है; इसीलिए यहाँ संक्षेप से सूचन किया गया है।**

श्लोक-५०

(अब, ३३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:)

(मालिनी)

इति विरचितमुच्चैर्द्रव्यषट्कस्य भास्वद्,
विवरण-मति-रम्यं भव्य-कर्णामृतं यत्।
तदिह जिन-मुनीनां दत्त-चित्त-प्रमोदं,
भवति भवविमुक्त्यै सर्वदा भव्यजन्तोः ।।५०।।

(वीरछन्द)

इस प्रकार भव्यों को कर्णामृतवत् है अरु अतिशय रम्य।
छह द्रव्यों का यह विवरण दैदीप्यमान विस्तृत मतिगम्य॥
जिन-मुनियों के मन को प्रमुदित करने वाला यह वर्णन।
भव्य जीव को है सदैव यह भव से मुक्ति का कारण॥५०॥

श्लोकार्थ :—इस प्रकार भव्यों के कर्णों को अमृत, ऐसा जो छह द्रव्यों का अति रम्य दैदीप्यमान (स्पष्ट) विवरण विस्तार से किया गया, वह जिन मुनियों के

चित्त को प्रमोद देनेवाला षट् द्रव्यविवरण, भव्य जीवों को सर्वदा भवविमुक्ति का कारण हो॥५०॥

श्लोक-५० पर प्रवचन

इति विरचितमुच्चैर्द्रव्यषट्कस्य भास्वद्,
विवरण-मति-रम्यं भव्य-कर्णामृतं यत्।
तदिह जिन-मुनीनां दत्त-चित्त-प्रमोदं,
भवति भवविमुक्त्यै सर्वदा भव्यजन्तोः॥५०॥

इस प्रकार भव्यों के कर्णों को अमृत, ऐसा... योग्य प्राणी को इन छह द्रव्यों की प्रतीति आती है, कहते हैं। उसके कान में, भव्य जीवों को ऐसे छह द्रव्य हैं, ऐसा कान में श्रवण आता है, ऐसा कहते हैं। **कर्णों को अमृत, ऐसा जो छह द्रव्यों का अति रम्य दैदीप्यमान (स्पष्ट) विवरण विस्तार से किया गया,...** लो, समझ में आया? **वह जिन मुनियों के चित्त को प्रमोद देनेवाला....** वीतरागी दृष्टिवन्त और वीतरागी चारित्रवन्त मुनियों के चित्त को प्रमोद देनेवाला है। इस प्रकार का विकल्प है न? आहा..हा..! छह द्रव्य भगवान ने कहे हैं।

षट् द्रव्यविवरण, भव्य जीवों को सर्वदा... लो, वह **भव्य जीवों को सर्वदा भवविमुक्ति का कारण हो।** उनका वास्तविक ज्ञान होकर स्वभाव सन्मुख ढले, उसे भव की मुक्ति का कारण होता है। वस्तु है न! उसमें से एक भी द्रव्य कम माने तो उसके सामर्थ्य की पर्याय को ही नहीं माना। पर्याय को नहीं माना तो पर्याय की ऐसी सामर्थ्य माने, वह द्रव्य का आश्रय करे तो उसे धर्म हो। समझ में आया? गजब सूक्ष्म बातें! इसकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, दया पालना या यह करना, वह सब सीधा था। 'दया वह सुख की बेलड़ी, दया वह सुख की खान।' लोगों को समझ में भी आवे। 'अनन्त जीव मुक्ति गये, दया के प्रमाण।'

मुमुक्षु : स्वदया या परदया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परदया की ही बात है। गढड़ा में वे, डेलो है न? उस पर

घडियाल के पास लाठीवाले ने एक पाटिया लगाया है। 'दया वह सुख की बेलड़ी,...' विवाद ही यह। शास्त्र में जहाँ-जहाँ दया आवे, वहाँ दया अर्थात् परदया; परदया अर्थात् धर्म। बस, ऐसा यह। रतनचन्दजी ऐसा सिद्ध करते हैं। यह कहते हैं कि दया के दो प्रकार हैं।

मुमुक्षु : परन्तु दो का क्या काम है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आता है इसमें।

मुमुक्षु : परन्तु दो प्रकार किसलिए करते हो ? दया ही कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दया अर्थात् कोई निश्चयनय की दया और कोई व्यवहारनय की दया, ऐसे दो प्रकार हैं।

मुमुक्षु : वे निषेध करते हैं, दया दो किसलिए करते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नय है, इसलिए करते हैं। निश्चय दया तो भगवान आत्मा राग और विकल्परहित प्रभु की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करना, वही जीव की सच्ची दया है, कि जिसे संसार से मुक्त होकर मुक्ति हो, वह दया है। पर की दया का तो विकल्प है, राग है। वास्तव में तो उसमें अपनी हिंसा है। आहा..हा..! यह छह द्रव्य का स्वरूप (कहा)।

छह द्रव्यों का स्वरूप भव्य जीवों को सर्वदा भवविमुक्ति का कारण हो।

गाथा-३४

एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थिकाय त्ति।
णिद्दिट्ठा जिण-समये काया हु बहुप्पदेसत्तं।।३४।।

एतानि षड्द्रव्याणि च कालं मुक्त्वास्तिकाया इति।
निर्दिष्टा जिन-समये कायाः खलु बहु-प्रदेशत्वम्।।३४।।

अत्र कालद्रव्यमन्तरेण पूर्वोक्तद्रव्याण्येव पञ्चास्तिकाया भवन्तीत्युक्तम्। इह हि द्वितीयादिप्रदेशरहितः कालः, 'समओ अप्पदेशो' इति वचनात्। अस्य हि द्रव्यत्वमेव इतरेषां पञ्चानां कायत्वमस्त्येव। बहुप्रदेशप्रचयत्वात् कायः। काया इव कायाः। पञ्चास्तिकायाः। अस्तित्वं नाम सत्ता। सा किम्विशिष्टा ? सप्रतिपक्षाः, अवान्तरसत्ता महासत्तेति। तत्र समस्त-वस्तुविस्तरव्यापिनी महासत्ता, प्रतिनियतवस्तुव्यापिनी ह्यवान्तरसत्ता। समस्तव्यापक-रूपव्यापिनी महासत्ता, प्रतिनियतैकरूपव्यापिनी ह्यवान्तरसत्ता। अनन्तपर्यायव्यापिनी महासत्ता, प्रतिनियतैकपर्यायव्यापिनी ह्यवान्तरसत्ता। अस्तीत्यस्य भावः अस्तित्वम्। अनेन अस्तित्वेन कायत्वेन सनाथाः पञ्चास्तिकायाः। कालद्रव्यस्यास्तित्वमेव, न कायत्वं, काया इव बहुप्रदेशाभावादिति।

विन काल ये जिनधर्म वर्णित पाँच अस्तिकाय हैं।
अरु वस्तु का वह बहु प्रदेशीपन नियम से काय है॥३४॥

गाथार्थ :—[कालं मुक्त्वा] काल छोड़कर, [एतानि षड्द्रव्याणि च] इन छह द्रव्यों को (अर्थात्, शेष पाँच द्रव्यों को) [जिनसमये] जिनसमय में (जिनदर्शन में) [अस्तिकायाः इति] 'अस्तिकाय' [निर्दिष्टाः] कहे गये हैं। [बहुप्रदेशत्वम्] बहुप्रदेशीपना, [खलु-कायाः] वह कायत्व है।

टीका :—इस गाथा में कालद्रव्य के अतिरिक्त, पूर्वोक्त द्रव्य ही पंचास्तिकाय हैं — ऐसा कहा।

यहाँ (इस विश्व में) काल, द्वितीयादि प्रदेशरहित (अर्थात्, एक से अधिक प्रदेशरहित) है, क्योंकि 'समओ अप्पदेसो (काल अप्रदेश है)' ऐसा (शास्त्र का) वचन है। इसे द्रव्यत्व ही है; शेष पाँच को कायत्व (भी) है ही।

बहुप्रदेशों के समूहवाला हो, वह 'काय' है। 'काय' काय जैसे (शरीर जैसे, अर्थात् बहुप्रदेशोंवाले) होते हैं। अस्तिकाय पाँच हैं।

अस्तित्व, अर्थात् सत्ता। वह कैसी है ? महासत्ता और अवान्तरसत्ता - ऐसी सप्रतिपक्ष[१] है। वहाँ, समस्त वस्तुविस्तार में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है; प्रतिनियत[२] वस्तु में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है; समस्त व्यापकरूप में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है; प्रतिनियत एक रूप में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है; अनन्त पर्यायों में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है; प्रतिनियत एक पर्याय में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है। पदार्थ का 'अस्ति[३]' ऐसा भाव, वह अस्तित्व है।

इस अस्तित्व से और कायत्व से सहित, पाँच अस्तिकाय हैं। कालद्रव्य को अस्तित्व ही है; कायत्व नहीं है क्योंकि काय की भाँति उसे बहुप्रदेशों का अभाव है।

गाथा-३४ पर प्रवचन

एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थिकाय त्ति।
णिद्दिट्ठा जिण-समये काया हु बहुप्पदेसत्तं।।३४।।

इसमें छह द्रव्य हैं। वीतराग शास्त्र में तो ऐसा है, ऐसा कहते हैं।

विन काल ये जिनधर्म वर्णित पाँच अस्तिकाय हैं।
अरु वस्तु का वह बहु प्रदेशीपन नियम से काय है॥३४॥

इस गाथा में कालद्रव्य के अतिरिक्त, पूर्वोक्त द्रव्य ही पंचास्तिकाय हैं — ऐसा कहा। काल में अस्तिकाय नहीं न ? काल अस्ति है, प्रदेशी-कायसमूह नहीं है। इसीलिए

---

१. सप्रतिपक्ष=प्रतिपक्षसहित, विरोधीसहित। (महासत्ता और अवान्तरसत्ता परस्पर विरोधी हैं।)

२. प्रतिनियत=नियत, निश्चित, अमुक ही।

३. अस्ति=है। (अस्तित्व=होना)

पाँच अस्तिकाय से वह भिन्न पड़ता है, ऐसा। अस्तिकाय नहीं है। भिन्न पड़ता है, इसलिए अस्ति नहीं है - ऐसा नहीं है।

(इस विश्व में) काल, द्वितीयादि प्रदेशरहित... काल को दो प्रदेश नहीं होते। **(एक से अधिक प्रदेशरहित) है, क्योंकि 'समओ अप्पदेसो (काल अप्रदेश है)' ऐसा (शास्त्र का) वचन है। इसे द्रव्यत्व ही है;...** वस्तु ही है। **शेष पाँच को कायत्व (भी) है ही।** द्रव्यपना भी है और कायपना भी है। काल को अकेला द्रव्यपना है और कायपना नहीं। कहो, समझ में आया?

बहुप्रदेशों के समूहवाला हो, वह 'काय' है। काय की व्याख्या की है। जिसके बहुत प्रदेश हों, दो से लेकर अनंत, उसे काय कहते हैं। **'काय' काय जैसे (शरीर जैसे, अर्थात् बहुप्रदेशोंवाले) होते हैं। अस्तिकाय पाँच हैं।** कहो, उसे काय है। बहुत प्रदेशों का समूह है न? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और पुद्गल।

अस्तित्व, अर्थात् सत्ता। अस्तित्व, वह सत्ता। **वह कैसी है? महासत्ता और अवान्तरसत्ता - ऐसी सप्रतिपक्ष है।** सप्रतिपक्ष - विरोधसहित। महासत्ता, अवान्तरसत्ता परस्पर विरोधी है। **वहाँ, समस्त वस्तुविस्तार में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है;...** भाषा देखो! सब है, ऐसा कहनेवाली, जाननेवाली, वह महासत्ता है। एक ही सत्ता सबमें व्याप्त है, ऐसा नहीं है। (मात्र) है। **समस्त वस्तुविस्तार में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है;....** ऐसी भाषा है। सभी चीज़ में एक ही सत्ता व्याप्त है, ऐसा नहीं, परन्तु सब द्रव्यों में है.. है... है... है.. है... है... है.. है... है... सत्तारूप से, इस प्रकार महासत्ता कही गयी है।

प्रतिनियत वस्तु में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है;... देखो! नियत, निश्चित अमुक ही पदार्थ। एक-एक में। एक परमाणु, एक आत्मा, एक धर्मास्ति इत्यादि। उनमें रहनेवाली, व्यापनेवाली वह अवान्तर-अन्तरभेद है। प्रवचनसार में बहुत विस्तार आता है। **समस्त व्यापकरूप में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है; प्रतिनियत एक रूप में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है;...** लो! एक-एक (सत्ता)। अनन्त पर्याय में व्यापनेवाली वह महासत्ता है। अर्थात्? समस्त पर्यायें हैं, अनन्त हैं, पर्यायें अनन्त हैं। **प्रतिनियत एक रूप में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है;...** पर्याय के अनन्तपने का एकरूप गिनने पर महासत्ता है। एक-एक की पर्याय भिन्न गिनने पर वह अवान्तरसत्ता है। **पदार्थ का 'अस्ति' ऐसा भाव, वह अस्तित्व है।** लो, अस्तित्व / होनापना।

मुमुक्षु : परमाणु भी एक प्रदेशी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। परमाणु की पर्याय।

मुमुक्षु : परमाणु मिलता नहीं तो फिर वह अस्तिकाय कैसे कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलता नहीं। उसकी योग्यता है न! होने की योग्यता है, इसलिए गिना है। काल में है ऐसी? किसलिए? परमाणु में बहुत परमाणु का स्कन्ध होने की योग्यता है, इसलिए उसे अस्तिकाय कहा है।

मुमुक्षु : उपचार से कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार से कहा है। एक परमाणु पुद्गल है, ऐसा आया था न कल?

मुमुक्षु : बहुप्रदेशी तो परमाणु वह उपचार से कहा है, स्कन्ध होने की योग्यता के कारण (कहा है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो स्कन्ध कहा न। स्कन्ध की योग्यता के कारण।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? यह क्या कहा? परमाणु, वह निश्चयपुद्गल है। स्कन्ध, वह व्यवहारपुद्गल है।

इस अस्तित्व से और कायत्व से सहित, पाँच अस्तिकाय हैं। अस्तित्व और समूहरूप से प्रदेशोंवाले पाँच अस्तिकाय हैं। **कालद्रव्य को अस्तित्व ही है; कायत्व नहीं है क्योंकि काय की भाँति उसे बहुप्रदेशों का अभाव है।** बहुत प्रदेशों का जो काय / शरीर है, ऐसा उसमें अभाव है। इसलिए उसे अस्तिकाय कहते हैं। अस्ति कहते हैं परन्तु काय कहने में नहीं आता।

श्लोक-५१

(अब, ३४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:)

(आर्या)

इति जिनमार्गाम्भोधेरुद्धृता पूर्वसूरिभिः प्रीत्या।
षड्द्रव्य-रत्न-माला कण्ठाभरणाय भव्यानाम् ।।५१।।

(वीरछन्द)

प्रीतिपूर्वक पूर्वाचार्यों ने छह द्रव्य रत्न की माल।
भविजन कण्ठाभरण हेतु श्रुत-रत्नाकर से लिया निकाल॥५१॥

श्लोकार्थ :—इस प्रकार जिनमार्गरूपी रत्नाकर में से पूर्वाचार्यों ने प्रीतिपूर्वक षट्द्रव्यरूपी रत्नों की माला, भव्यों के कण्ठाभरण के हेतु बाहर निकाली है॥५१॥

श्लोक-५१ पर प्रवचन

इति जिनमार्गाम्भोधेरुद्धृता पूर्वसूरिभिः प्रीत्या।
षड्द्रव्य-रत्न-माला कण्ठाभरणाय भव्यानाम् ।।५१।।

इस प्रकार जिनमार्गरूपी रत्नाकर में से.... देखो, वीतराग-सर्वज्ञ का जिनमार्गरूपी वीतरागमार्ग रत्नाकर में से,... बड़ा समुद्र है। जैनमार्गरूपी रत्नाकर महासमुद्र है। आहा..हा..! **पूर्वाचार्यों ने प्रीतिपूर्वक...** वापिस ऐसा (कहा)। यह सब पूर्व आचार्य हो गये, कुन्दकुन्दादि वे। उन्होंने **षट्द्रव्यरूपी रत्नों की माला,...** ऐसा तो स्पष्ट किया है। श्रीमद् को नियमसार हाथ नहीं आया था। **रत्नाकर में से पूर्वाचार्यों ने प्रीतिपूर्वक षट्द्रव्यरूपी रत्नों की माला, भव्यों के कण्ठाभरण के हेतु बाहर निकाली है।** रत्नों की माला भव्यों के कण्ठ के आभरण के लिये। ज्ञानरूपी भाव इसकी शोभा है। षट्द्रव्य का ज्ञान, वह शोभा है। यथार्थ ज्ञान षट्द्रव्य का, वह ज्ञान की पर्याय की शोभा है। इसलिए वह छह द्रव्य का ज्ञान होना, वह भव्यजीव के कण्ठ का आभरण है - शोभा है। उसके लिये यह कहा है। ३५-३६ बाद में कहेंगे। (**श्रोता :** प्रवचन वचन गुरुदेव!)

गाथा-३५-३६

संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसा हवंति मुत्तस्स।
धम्माधम्मस्स पुणो जीवस्स असंखदेसा हु।।३५।।
लोयायासे तावं इदरस्स अणंतयं हवे देसा।
कालस्स ण कायत्तं एयपदेसो हवे जम्हा।।३६।।

सङ्ख्यातासङ्ख्यातानन्तप्रदेशा भवन्ति मूर्तस्य।
धर्माधर्मयोः पुनर्जीवस्यासङ्ख्यातप्रदेशाः खलु।।३५।।
लोकाकाशे तद्वदितरस्यानन्ता भवन्ति देशाः।
कालस्य न कायत्वं एकप्रदेशो भवेद्यस्मात्।।३६।।

षण्णां द्रव्याणां प्रदेशलक्षणसम्भवप्रकारकथनमिदम्। शुद्धपुद्गलपरमाणुना गृहीतं नभः-स्थलमेव प्रदेशः। एवम्विधाः पुद्गलद्रव्यस्य प्रदेशाः सङ्ख्याता असङ्ख्याता अनन्ताश्च। लोकाकाशधर्माधर्मैकजीवानामसङ्ख्यातप्रदेशा भवन्ति। इतरस्यालोकाकाशस्यानन्ताः प्रदेशा भवन्ति। कालस्यैकप्रदेशो भवति, अतः कारणादस्य कायत्वं न भवति अपि तु द्रव्यत्वमस्त्येवेति।

होते अनन्त, असंख्य, संख्य प्रदेश मूर्तिक द्रव्य के।
अरु हैं असंख्य प्रदेश आत्मा और धर्म अधर्म के॥३५॥
अनसंख्य लोकाकाश के हैं, अरु अनन्त अलोक के।
नहिं काल को कायत्व है, वह इक प्रदेशी द्रव्य है॥३६॥

गाथार्थ :—[मूर्तस्य] मूर्तद्रव्य को [संख्यातासंख्यातानंतप्रदेशाः] संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश [भवन्ति] होते हैं; [धर्माधर्मयोः] धर्म, अधर्म [पुनः जीवस्य] तथा जीव को [खलु] वास्तव में [असंख्यातप्रदेशाः] असंख्यात प्रदेश हैं।

[लोकाकाशे] लोकाकाश में [तद्वत्] धर्म, अधर्म तथा जीव की भाँति

(असंख्यात प्रदेश) हैं; [इतरस्य] शेष जो अलोकाकाश, उसे [अनंताः देशाः] अनन्त प्रदेश [भवन्ति] हैं। [कालस्य] काल को [कायत्वं न] कायपना नहीं है, [यस्मात्] क्योंकि [एकप्रदेशः] वह एक प्रदेशी [भवेत्] है।

टीका :—इसमें छह द्रव्यों के प्रदेश का लक्षण और उसके संभव का प्रकार कहा है (अर्थात्, इस गाथा में प्रदेश का लक्षण तथा छह द्रव्यों को कितने-कितने प्रदेश होते हैं, वह कहा है)।

शुद्धपुद्गलपरमाणु द्वारा रुका हुआ आकाशस्थान ही प्रदेश है (अर्थात्, शुद्धपुद्गलरूप परमाणु, आकाश के जितने भाग को रोकें, उतना भाग, वह आकाश का प्रदेश है)। पुद्गलद्रव्य को ऐसे[१] प्रदेश, संख्यात, असंख्यात और अनन्त होते हैं। लोकाकाश को, धर्म को, अधर्म को तथा एक जीव को असंख्यात प्रदेश हैं। शेष जो अलोकाकाश, उसे अनन्त प्रदेश हैं। काल को एक प्रदेश है, उस कारण से उसे कायत्व नहीं है परन्तु द्रव्यत्व है ही।

प्रवचन-३२, श्लोक-५२-५३, गाथा-३५-३८ रविवार, चैत्र शुक्ल ९, दिनांक ०४-०४-१९७१

अजीव अधिकार, गाथा ३५ और ३६। जानने की है परन्तु ये तीन गाथायें हैं,

संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसा हवंति मुत्तस्स।
धम्माधम्मस्स पुणो जीवस्स असंखदेसा हु।।३५।।

लोयायासे तावं इदरस्स अणंतयं हवे देसा।
कालस्स ण कायत्तं एयपदेसो हवे जम्हा।।३६।।

होते अनन्त, असंख्य, संख्य प्रदेश मूर्तिक द्रव्य के।
अरु हैं असंख्य प्रदेश आत्मा और धर्म अधर्म के॥३५॥

अनसंख्य लोकाकाश के हैं, अरु अनन्त अलोक के।
नहिं काल को कायत्व है, वह इक प्रदेशी द्रव्य है॥३६॥

---

१. आकाश के प्रदेश की भाँति, किसी भी द्रव्य का एक परमाणु द्वारा व्यपित होनेयोग्य जो अंश, उसे उस द्रव्य का प्रदेश कहा जाता है। द्रव्य से पुद्गल एक प्रदेशी होने पर भी, पर्याय से स्कन्धपने की अपेक्षा से, पुद्गल को दो प्रदेशों से लेकर अनन्त प्रदेश भी सम्भव होते हैं।

टीका :— **इसमें छह द्रव्यों...** है भगवान ने देखे हुए। उनके प्रदेश का लक्षण कहने में आया है। और उनके सम्भव-वे हो सकते हैं या नहीं, इसके प्रकार कहे गये हैं। दो प्रकार कहे। उनका लक्षण और सम्भव। उस ओर अर्थ है।

शुद्धपुद्गलपरमाणु द्वारा रुका हुआ आकाशस्थान ही प्रदेश है (अर्थात्, शुद्धपुद्गलरूप परमाणु, आकाश के जितने भाग को रोकें, उतना भाग, वह आकाश का प्रदेश है)। प्रदेश की व्याख्या की है। आकाश की अपेक्षा से। बाकी तो नीचे है। **आकाश के प्रदेश की भाँति, किसी भी द्रव्य का एक परमाणु द्वारा व्यपित होनेयोग्य जो अंश, उसे उस द्रव्य का प्रदेश कहा जाता है।** वह आकाश की अपेक्षा से कहा था, यह पृथक् दूसरी बार कहा। **द्रव्य से पुद्गल एक प्रदेशी होने पर भी, पर्याय से स्कन्धपने की अपेक्षा से, पुद्गल को दो प्रदेशों से लेकर अनन्त प्रदेश भी सम्भव होते हैं।**

पुद्गलद्रव्य को ऐसे प्रदेश, संख्यात, असंख्यात और अनन्त होते हैं। लोकाकाश को, धर्म को, अधर्म को तथा एक जीव को असंख्यात प्रदेश हैं। शेष जो अलोकाकाश, उसे अनन्त प्रदेश हैं। काल को एक प्रदेश है, उस कारण से उसे कायत्व नहीं है परन्तु द्रव्यत्व है ही। श्लोक।

श्लोक-५२

(अब, इन दो गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:)

(उपेन्द्रवज्रा)

पदार्थरत्नाभरणं मुमुक्षोः कृतं मया कण्ठविभूषणार्थम्।
अनेन धीमान् व्यवहारमार्गं बुद्ध्वा पुनर्बोधति शुद्धमार्गम्।।५२।।

(वीरछन्द)

जीवादिक षट् द्रव्यरूप यह रत्नाभरण सुशोभित है।
मैंने इसे मुमुक्षु कण्ठ की शोभा हेतु बनाया है॥

बुद्धिमान जन इस आभूषण से व्यवहारमार्ग जानें।
इसे जानकर भव्य जीव, वे शुद्धमार्ग को भी जानें॥५२॥

***श्लोकार्थ :*—पदार्थोंरूपी (छह द्रव्योंरूपी) रत्नों का आभरण मैंने, मुमुक्षु के कण्ठ की शोभा के हेतु बनाया है; उसके द्वारा धीमान पुरुष, व्यवहारमार्ग को जानकर, शुद्धमार्ग को भी जानता है॥५२॥**

श्लोक-५२ पर प्रवचन

पदार्थरत्नाभरणं मुमुक्षोः कृतं मया कण्ठविभूषणार्थम्।
अनेन धीमान् व्यवहारमार्गं बुद्ध्वा पुनर्बोधति शुद्धमार्गम्॥५२॥

पदार्थोंरूपी (छह द्रव्योंरूपी) रत्नों का आभरण... मुनि कहते हैं। छह द्रव्य भगवान ने देखे, उनकी व्याख्या की। उन **रत्नों का आभरण मैंने, मुमुक्षु के कण्ठ की शोभा के हेतु बनाया है;...** व्यवहार है न। **उसके द्वारा धीमान पुरुष,...** बुद्धिमान पुरुष। **व्यवहारमार्ग को जानकर,...** छह द्रव्य, उनके प्रदेश, उनकी काय इत्यादि **शुद्धमार्ग को भी जानता है।** शुद्धमार्ग को भी जानते हैं, ऐसा। व्यवहारमार्ग, छह द्रव्य उनके प्रदेश सब हैं। जैसा है, वैसा पहले जाने; जानकर शुद्धमार्ग—आत्मा आनन्दस्वरूप के पवित्र मार्ग को भी जाने। जिसे जानकर यह जानना है, ऐसा कहते हैं।

शुद्धमार्ग को भी जानता है। ऐसा कहा न? वह व्यवहारमार्ग कहा सही न, इसलिए शुद्ध आत्मा को जानते हैं, ऐसा नहीं कहा। शुद्ध व्यवहारमार्ग को जाने और शुद्धमार्ग को भी जाने। क्या कहा? और फिर शुद्ध को जाने। शुद्धमार्ग को जाने, ऐसा कहा। ३७वीं (अजीव अधिकार की) अन्तिम गाथा।

गाथा-३७

पोग्गलदव्वं मुत्तं मुत्तिविरहिया हवंति सेसाणि।
चेदणभावो जीवो चेदणगुणवज्जिया सेसा।।३७।।

पुद्गलद्रव्यं मूर्तं मूर्तिविरहितानि भवन्ति शेषाणि।
चैतन्यभावो जीवः चैतन्यगुणवर्जितानि शेषाणि।।३७।।

अजीवद्रव्यव्याख्यानोपसंहारोऽयम्। तेषु मूलपदार्थेषु पुद्गलस्य मूर्तत्वं, इतरेषाममूर्तत्वम्। जीवस्य चेतनत्वं, इतरेषामचेतनत्वम्। स्वजातीयविजातीयबन्धापेक्षया जीवपुद्गलयोर-शुद्धत्वं, धर्मादीनां चतुर्णां विशेषगुणापेक्षया शुद्धत्वमेवेति।

है मूर्तपुद्गल, शेष पाँचों ही अमूर्तिक द्रव्य हैं।
है जीव चेतन, शेष पाँचों चेतनागुण शून्य हैं॥३७॥

गाथार्थ :—[पुद्गलद्रव्यं] पुद्गलद्रव्य, [मूर्तं] मूर्त है; [शेषाणि] शेष द्रव्य, [मूर्तिविरहितानि] मूर्तत्वरहित [भवन्ति] हैं। [जीवः] जीव, [चैतन्यभावः] चैतन्यभाववाला है; [शेषाणि] शेष द्रव्य, [चैतन्यगुणवर्जितानि] चैतन्यगुणरहित हैं।

टीका :—यह, अजीवद्रव्य सम्बन्धी कथन का उपसंहार है।

उन (पूर्वोक्त) मूलपदार्थों में पुद्गल, मूर्त है; शेष, अमूर्त हैं। जीव चेतन है; शेष, अचेतन हैं। स्वजातीय और विजातीय बन्धन की अपेक्षा से जीव तथा पुद्गल को (बन्धदशा में) अशुद्धपना होता है; धर्मादि चार पदार्थों को विशेषगुण की अपेक्षा से (सदा) शुद्धपना ही है।

गाथा-३७ पर प्रवचन

पोग्गलदव्वं मुत्तं मुत्तिविरहिया हवंति सेसाणि।
चेदणभावो जीवो चेदणगुणवज्जिया सेसा।।३७।।

है मूर्तपुद्गल, शेष पाँचों ही अमूर्तिक द्रव्य हैं।
है जीव चेतन, शेष पाँचों चेतनागुण शून्य हैं॥३७॥

टीका :—**यह, अजीवद्रव्य सम्बन्धी कथन का उपसंहार है। मूलपदार्थों में पुद्गल, मूर्त है; शेष, (पाँच) अमूर्त हैं। जीव चेतन है; शेष, अचेतन हैं। स्वजातीय और विजातीय बन्धन की अपेक्षा से....** परमाणु, परमाणु के साथ सम्बन्ध, वह सजातीय और परमाणु जीव के साथ बँधे, वह विजातीय। यह **जीव तथा पुद्गल को (बन्धदशा में) अशुद्धपना होता है; धर्मादि चार पदार्थों को विशेषगुण की अपेक्षा से (सदा) शुद्धपना ही है।** उनके तो गुण और पर्यायें सब शुद्ध ही हैं।

श्लोक-५३

(अब, इस अजीव-अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं -)

(मालिनी)

इति ललित-पदाना-मावलिर्भाति नित्यं,
वदन-सरसि-जाते यस्य भव्योत्तमस्य।
सपदि समय-सारस्तस्य हृत्पुण्डरीके,
लसति निशितबुद्धेः किं पुनश्चित्रमेतत्।।५३।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ अजीवाधिकारो द्वितीयः श्रुतस्कन्धः।

(वीरछन्द)

जिस भव्योत्तम के मुख में, इन पद की ललित पंक्ति शोभे।
क्या आश्चर्य है कि उसके उर में, समयसार सत्वर शोभे ॥५३॥

***श्लोकार्थ :*—इस प्रकार ललितपदों की पंक्ति, जिस भव्योत्तम के मुखारविंद में सदा शोभती है, उस तीक्ष्ण बुद्धिवाले पुरुष के हृदयकमल में समयसार (शुद्ध आत्मा) शीघ्र प्रकाशित होता है और इसमें आश्चर्य क्या है! ॥५३॥**

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिये जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के फैलाव रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था ऐसे पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) अजीव अधिकार नाम का दूसरा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक-५३ पर प्रवचन

इति ललित-पदाना-मावलिर्भाति नित्यं,
वदन-सरसि-जाते यस्य भव्योत्तमस्य।
सपदि समय-सारस्तस्य हृत्पुण्डरीके,
लसति निशितबुद्धेः किं पुनश्चित्रमेतत् ।।५३।।

***श्लोकार्थ :*—इस प्रकार ललितपदों की पंक्ति,...** छह द्रव्यों का स्वरूप बताया न। **जिस भव्योत्तम के मुखारविंद में सदा शोभती है,...** उत्तम भव्य के मुख में वह शोभती है। छह द्रव्य जगत में हैं, उनके गुण, पर्यायें हैं। व्यवहार सिद्ध करते हैं। यह बात बराबर कहते हैं, स्थापित करते हैं, जानते हैं - ऐसा कहेंगे। **उस तीक्ष्ण बुद्धिवाले पुरुष के हृदयकमल में समयसार (शुद्ध आत्मा) शीघ्र प्रकाशित होता है...** छह द्रव्य का ज्ञान एक समय की पर्याय में आता है, ऐसा जानकर तीक्ष्ण बुद्धिवन्त पुरुष, **हृदयकमल में समयसार (शुद्ध आत्मा) शीघ्र प्रकाशित होता है...** अन्तर्मुख होने पर चैतन्यद्रव्य, ज्ञायकभाव आनन्दरूप से प्रकाशित होता है, इसका नाम धर्म और आत्मा का ज्ञान कहा

जाता है। **इसमें आश्चर्य क्या है!** ऐसा व्यवहारमार्ग जिसने बराबर जाना, और वह पश्चात् वहाँ से निकलकर अन्तर्मुख में... वह वदनारविन्द में कहा था, मुख में शोभता है। छह द्रव्य हैं। यह तो अन्तरबुद्धि करके **तीक्ष्ण बुद्धिवाले पुरुष के हृदयकमल में शीघ्र समयसार...** आनन्द का कन्द प्रभु ज्ञायकभाव, जो वस्तुरूप से अनादि वास्तविक आत्मा, वह अन्तर में प्रकाशित होता है। **और इसमें आश्चर्य क्या है!** उसमें आश्चर्य क्या? आत्मा ऐसा ज्ञात हो और अनुभव में आवे, वह तो उसका स्वरूप है, उसमें आश्चर्य क्या करना? यह अजीव का अधिकार पूरा हुआ।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिये जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के फैलाव रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था... नग्न दिगम्बर मुनि थे न। **ऐसे पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) अजीव अधिकार नाम का दूसरा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।**

शुद्धभाव अधिकार पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन १९८० के दूसरे भाग में प्रकाशित किये गये हैं।